

प्रस्तावना.

अनेक जैन ग्रंथोंके वेत्ता अरु अन्यमतकेजी वदोत ग्रंथोंके अवलोकन करने वाले महामुनि आत्मारामजी आनंदविजयजी हो गये हैं, इनके तत्त्वज्ञानकी शक्ति अरु परोपकारबुद्धि तथा सिद्धांतोक्त उत्सर्गपवाद पूर्वक यथार्थ जैनमार्गी सुत्ताधुयोंकी शुरु क्रियामें प्रवृत्त हो कर पृथ्वीमें विहार करने संबंधी प्रख्याती यह नारतवर्षके श्रावक मंजुसमें प्रसिद्ध है. इनकी तीव्रबुद्धि अरु धर्माजिरुचि आदिक उत्तमगुण इनका बनाया यह ग्रंथ बांचनेसें सदबुद्धिमान् आपही जान जायंगे.

अब पूर्वाचार्योंके संस्कृत अरु मागधी जापामें रचे दूये ग्रंथोंका आशय न जाननेवाले और जैनतत्त्वस्वरूपके अज्ञात जनोके उपर उपकार बुद्धि करके पूर्वोक्त महात्माने यह “ जैनतत्त्वादश ” नामा ग्रंथकी रचना न्यारे न्यारे बारह परिच्छेदरूपसें करी है. सो इस प्रकारसें कि:-

प्रथम परिच्छेदमें शुरु देवतत्त्वका स्वरूप कथन कीया है, दूसरे परिच्छेदमें कुदेवका स्वरूप वर्णन कीया है, तीसरे परिच्छेदमें शुरु गुरुतत्त्वका स्वरूप कहा है, चौथे परिच्छेदमें कुगुरुका स्वरूप कथन करा है, पांचवे परिच्छेदमें शुरु धर्मतत्त्वका स्वरूप नव तत्त्वरूपसें कथन कीया है, छठे परिच्छेदमें सम्यग्ज्ञानका स्वरूप कथन करने वास्ते चौदह गुणस्थानकोंके स्वरूप कहे हैं, सातवे परिच्छेदमें सम्यग्दर्शनका स्वरूप कथन करा है, आठवे परिच्छेदमें सम्यक्चारित्रके स्वरूप कथनमें देशविरतिचारित्र संबंधी श्रावकोंके बारह व्रतोंके स्वरूपका विस्तारपूर्वक वर्णन कीया है, नववे परिच्छेदमें श्रावकोंका दिनकृत्य, श्राद्धविधि ग्रंथानुसारसें लिखा है, दशवे परिच्छेदमें श्रावकोंका रात्रिकृत्य, पाक्षिककृत्य, चौमासीकृत्य, संवत्सरीकृत्य अरु जन्मकृत्य, यह पांचो कृत्यका स्वरूप वर्णन करा है, इग्यारहवे परिच्छेदमें श्रीआदीश्वर जगवान्सें लेकर श्रीमहावीर जगवान् पर्यंतके कितनेक इतिहासोंका वर्णन करके उस्सें जैनमत आनादिहैं ऐसा सिद्धकरा है, अरु दूसरा नवीन बौद्धादिक पाखंडी धर्मके मतों अमुक अमुक वखतसें निकले हैं यहजी दर्साय दीया है. बारहवे परिच्छेदमें श्रीवर्द्धमान स्वामीके निर्वाण पीठें के किंचित् इतिहास लिखे हैं. इस्सेंजी कितनेक नवीन मतों निकलनेका वखत माखुम परजता है. इस प्रकारसें उपर लिखे दूये बारह परिच्छेदों करिकें यह ग्रंथ समाप्त

कीया है. यह ऊपर कहे हुये प्रत्येक परिच्छेदमें मात्र उसमें लिखे जये वि
पयोंकाही वर्णन कीया है, इतनाही नहीं, परंतु उसके साथ भीमांसकादि
अन्यमतवालोंका स्वरूप लिखके पीछे पूर्वाचार्य रचित सम्मतितकांदि
नेक जैनशास्त्रोंके अनुसार उन मतोंका खंमनजी सविस्तर कीया है, ताते
यह ग्रंथके पांचनेपात्रोंके अन्य सांख्यादि दर्शनोंका कतुक स्वरूपजी
मात्र ही जावेगा, फेर उसका यथास्थित खंमनजी जाननेमें आवेगा.

जैसा मनःकल्पनासे निकसे हुये नवीन दर्शनोंका उद्घापन करनेमें यह
ग्रंथ उपयोगी है तैसीही कितनेक जैनमतमें प्रवृत्तनेवाले जैनशास्त्रोंकी
अनेकानेक शैलीको न पीछाननेवाले ऐसे विचित्र विकार युक्त अल्पज्ञ
जनोकी अज्ञानता दूर करनेकोनी यह ग्रंथ बहुत उपयोगी है, क्यों
कि, इस वर्तमान काष्ठमें कितने एक जैनमती अपनी अपनी मरजी मा
फक आप्यात्महानी यनके व्यवहारपद्धका त्याग करके आवश्यकतादि कि
पापोंको उद्धार के एकही निधयमार्गको स्वीकार करनेकाही उपदेश हो
वां हो करते फिरते हैं; ऐसे अक्षरवेत्ता एकांतपद्धके ग्राहक, स्वमतीयोंको
जी बहुत जैनशास्त्रोंके अनुसार तिनकी आशंकाओंके निवारण पूर्वक कि
यादि गुणव्यवहारमें प्रवृत्त करनेका बहुत करके ठेठ परिच्छेदमें चौदह गुण
स्थानोंके स्वरूपमें जहां ठेठ सातमें गुणस्थानकका स्वरूप कथन कीया है,
उसी जगहपर अरु दूसरे परिच्छेदोंमेंजी बहुत स्थानोंमें उपदेश कीया है.

तथा अनेक समयमें कतुक मंमृतादि शास्त्राज्यास करके अरु कोइ ग्रंथ
देखे न देखे ऐसे कितनेक लोक अपनी मनःकल्पित बातों कहते हैं कि जे
मनन बोद्धमननेनू निकसा है, कितनेक कहते हैं कि गौतमरूपिने जैनमत
बघाया है, ऐसी विविध प्रकारकी कल्पना अज्ञानी लोक करते हैं, तथा
बेदोंको सच्चा करते बाने उनके पुराना अर्थोंको उल्टावके नवीन अर्थ व
कने बाडे दयानंदजीने तो जैनमतके सहायधि ग्रंथों आज मौजूद है ति
कोइएक ग्रंथके एक पनेही देखे न देखेंगे तोनी विचारे जइक शिष्यों
अपना पालित्य दर्शावनेके बाने आनेके धनवाये हुये पुस्तकोंमें जैन
कावोंके प दोनु मन एकही करके प्रिय दीये दे, ऐसे ऐसे अपनी कर्त
कदित्त दानों कहे सोते सोकोसो फसाने बाडे कपटी लोकोंका कपट
बुद्धीका छेदन करनेकोही यह ग्रंथ सुनार समान है.

॥ अस्य ग्रंथस्यानुक्रमणिका प्रारब्धते ॥

॥ तत्र ॥

॥ प्रथम परिच्छेदमें देव तत्त्वका स्वरूप है तिसकी अनुक्रमणिका लिखते हैं ॥

अंक.	विषय	पृष्ठ.
१	ग्रंथ करणेका प्रयोजन.	३
२	देवादिक तीनों तत्त्वोंमें प्रथम देवतत्त्वका स्वरूप तिसके अंतर्गत श्री अरिहंतके वारा गुण कहे हैं, तिस बारह गुणोंमें जीवचनातिशय नाना जो छत्तरा गुण हैं, तिनका पैंतीस जेद तथा बारह गुणोंमें तीसरा अपादापगमातिशय गुण, और चौथा पूजातिशय गुण, इन दोनों गुणोंकी विस्तार रूप चौतीस अतिशय होती है, तिनका स्वरूप.	१
३	श्री देवाधिदेव अठारह रूपणसे रहित होते हैं तिसका नाम.	४
४	श्री देवाधिदेवके चौबीस नाम दो श्लोकों करिके कहे हैं.	५
५	पीठली उत्तर्पिणीमें जो चौबीस तीर्थकर दूये हैं, तिनका नाम.	६
६	वर्तमान श्री रूपजादि चौबीस अरिहंतके नाम.	१०
७	चौबीस तीर्थकरोंके नाम किस किस कारणसे दूये हैं, सो सा मान्य और विशेष यह दो अर्थ सहित कहे हैं.	१०
८	चौबीस तीर्थकरोंके कुछ अरु शरीरका वर्ण कहा है.	१४
९	चौबीस तीर्थकरोंके दक्षिण पगोंमें जो चिन्ह होते हैं, सो कहे हैं.	१५
१०	चौबीस तीर्थकरोंके पिताओंका नाम.	१५
११	चौबीस तीर्थकरोंके माताओंके नाम.	१७
१२	चौबीस तीर्थकरोंके साथ वावन बोखका संबंध है तिस वावन बोखका नाम तथा स्वरूप यंत्रबंध लिखा है.	१८
१३	जिस तीर्थकरोंके निवारण हुआ पीठ तीर्थका व्यवच्छेद हुआ सो.	२५

॥ अथ छत्तरे परिच्छेदमें कुदेवका स्वरूप है, तिसकी अनुक्रमणिका लिखते हैं ॥

१. कुदेवमें स्त्रीत्वेनादिक बहुत रूपण बताये हैं.

शकी जापा जाननेवालेकोंजी वांचनेमें यह ग्रंथ अत्यंत सुगम पड़ेगा.

निष्पक्षपात बुद्धिवाले तथा धर्मतत्त्वकी जिज्ञासा करनेके अजिमांनी, सद्धर्म अंगीकार करनेके अधिकारी, विवेकी जव्यजीवोंकूं इस ग्रंथके वांचने तथा पढने सुननेसे उत्तम प्रकारके सद्वोधका लाभ प्राप्त हुवा है अरु होवेगा, औसा जानिकें मेंने यह ग्रंथ कि छित्पावृत्ति ठपा कर प्रसिद्ध कीया है. जैनधर्मकी वृद्धि इष्टनेवाले हमारे साधर्मिक जाइयोंकों में अर्ज करतां हूं कि, उदारतापूर्वक यह ग्रंथके यथाशक्ति पुस्तकों खरीद करके मुजकों अवश्य आश्रय देनां. इस ग्रंथकी श्लोकसंख्या (१६०००) आशरे हैं.

यह ग्रंथके पढने वाले समस्त साहेबोंकों में वनी नम्रतापूर्वक विनति करता हूं कि, जो कुठ ठपनेमें चूक करी होवे, सो गुणज्ञ जनोनें मेरेकों मंद प्रज्ञावाला जानके मेरे पर सुनजरही रखकर दोष सुधार लेनां चाहियें, यही सत्पुरुषके लक्षणका श्रेष्ठ चिन्ह है. किं बहु विवेखनेन.

॥ शा. ज्ञाणजी माया ॥



॥ अस्य ग्रंथस्यानुक्रमणिका प्रारब्धते ॥

॥ तत्र ॥

॥ प्रथम परिच्छेदमें देव तत्त्वका स्वरूप है तिसकी अनुक्रमणिका लिखते हैं ॥

क्रं.	विषय	पृष्ठ.
१	ग्रंथ करणिका प्रयोजन.	१
२	देवादिक तीनों तत्त्वोंमें प्रथम देवतत्त्वका स्वरूप तिसके अंत गत श्री अरिहंतके द्वारा गुण कहे हैं, तिस बारह गुणोंमेंही वचनातिशय नामा जो दूसरा गुण है, तिनका पेंचीस जेद तथा बारह गुणोंमें तीसरा अपापापगनातिशय गुण, और चौथा पूजातिशय गुण, इन दोनों गुणोंकी विस्तार रूप चौती सअतिशय होती है, तिनका स्वरूप.	१
३	श्री देवाधिदेव अछारह रूपमें रहित होते हैं तिसका नाम.	४
४	श्री देवाधिदेवके चौबीस नाम दो श्लोकों करिके कहे हैं.	५
५	पीठजी उत्तर्पितमें जो चौबीस तीर्थकर दूये हैं, तिनका नाम.	९
६	वर्तमान श्री कृष्णजी चौबीस अरिहंतके नाम.	१०
७	चौबीस तीर्थकरोंके नाम कित्त कित्त कारणसे दूये हैं, तो सा नान्य और विशेष यह दो अर्थ सहित कहे हैं.	१०
८	चौबीस तीर्थकरोंके कुछ अत शरीरका वर्ण कहा है.	१४
९	चौबीस तीर्थकरोंके दक्षिण पगमें जो बिन्दु होते हैं, तो कहे हैं.	१५
१०	चौबीस तीर्थकरोंके पिताओंका नाम.	१५
११	चौबीस तीर्थकरोंके माताओंके नाम.	१५
१२	चौबीस तीर्थकरोंके साथ बावन बौद्धका संबंध है तिस बावन बौद्धका नाम तथा स्वरूप यंत्रबंध दिखा है.	१७
१३	जित्त तीर्थकरोंके निवारण दूवा पीठें तीर्थका व्यवहारे दूवा तो.	२५

॥ अथ दूसरे परिच्छेदमें बुद्धदेवका स्वरूप है, तिसकी अनुक्रमणिका लिखते हैं ॥

१ बुद्धदेवमें श्रीसिक्कादिक बहुत रूप बताये हैं.

- ५ करणसित्तरीके सित्तर जेद जेसे कि चार प्रकारकी पिरुविशुद्धि, पांच प्रकारकी समिति, बारह प्रकारकी जावना, इग्यारह प्रकारकी पडिमा, पांच प्रकारे इंद्रियोंका निरोध, पच्चीस प्रतिषेखना, तीन गुप्ति, अरु चार प्रकारका अजिग्रह, यह सित्तर जेद के स्वरूप. १७
- ६ जेसा जैनमतके शास्त्रोंमें गुरुका स्वरूप लिखा है, वैसी वृत्ति बाबा कोइनी जैनका साधु देखनेमें नही आता है ऐसी आशंका करणे बाबेका रुनाधान तथा इस पंचमकालमें कैसी प्रवृत्तिवा सेकों संपत्ती कहनां अरु बकुशादि पांच चारित्रके स्वरूप. १०९

- ॥ पतुर्प परिछेदमें छुगुरुका स्वरूप कहा है, तिसकी अनुक्रमणिका ॥
- १ प्रथम क्रियावादीयोंके काखवादी, ईश्वरवादी, आत्मवादी, नियतवादी अरु स्वभाववादी यह पांच विकल्प करके तिसका पृथक् पृथक् जेद मित्रायके एकसो अस्ती मत कहे हैं. ११६
- २ दूसरे अक्रियावादीयोंके स्वरूप पूर्वक चोराशीमत दिखलाये है. ११९
- ३ तीसरा अज्ञानवादीयोंका स्वरूप अरु तिनका सडसछ मत. १२०
- ४ चौथा विनयवादीयोंके पत्तीस मत. १२५
- ५ क्रियावादीयोंमें प्रथम काखवादीयोंके मतका खंन. १२५
- ६ क्रियावादीयोंमें दूसरे ईश्वरवादीयोंके मतका खंन. १२७
- ७ क्रियावादीयोंमें तीसरे आत्मवादी (अच्छेरा) वादीयोंका खंन १२७
- ८ क्रियावादीयोंमें चौथे नियतवादीयोंके मतका खंन. १२७
- ९ क्रियावादीयोंमें पांचवे स्वभाववादीयोंके मतका खंन. १३१
- १० दूसरे अक्रियावादीयोंमें यदुवादीयोंके मतका खंडन. १३२
- ११ तीसरे अज्ञान वादीयोंके मतका खंन १३३
- १२ चौथे विनय वादीयोंके मतका खंडन १३६
- १३ ज्ञान्यजीवोंको शीघ्र बोध होने वास्ते षट् दर्शनका किंचित् स्वरूप, तिनमें प्रथम बौद्धदर्शनका स्वरूपमें बौद्धमतके गुरुका खिग, बौद्ध जगदान्के पत्तीस नाम, सात बुद्धके नाम और सातमें में पीडना जो शान्यमिद् बुद्ध है, वस्तुके आव नान तथा शून्य वादी बौद्धोंके वे नान तथा ग्रंथोंके करणेबासे गुरुओंका नाम

अंक.	विषय.	पृष्ठ
	तथा तर्क शास्त्रोंके नाम, बौद्धोंकी चार शाखाके नाम तथा बौद्ध मतमें चार वस्तु मानते हैं तिसका नाम इत्यादि.	१३७
१४	दूसरा नैयायिक दर्शनका स्वरूपमें नैयायिक मतके गुरुका लिंग, इनके देवका अष्टारह अवतारका नाम, प्रत्यक्षादि चार प्रमाण, अरु सोलह पदार्थका नाम तथा इनके तर्क शास्त्रोंके नाम इत्यादि.	१४०
१५	तीसरा वैशेषिक मतका संक्षेपमें स्वरूप.	१४२
१६	चौथा सांख्यमतका स्वरूप वहीत विस्तारमें.	१४२
१७	पांचवा मीमांसकमत इसका अपरनाम जैमिनीय तिसका स्वरूप.	१४७
१८	नास्तिक चार्वाक दर्शन इनको लोक वाममार्गी कहते हैं ए नास्तिक दर्शन पट्ट दर्शनमें नहीं गिने जाते हैं, इसका स्वरूप तथा यह मत बृहस्पतिनाम पुरुषमें उत्पन्न हुआ है तिसकी कथा.	१५१
१९	प्रथम बौद्धमतमें पूर्वापर विरोध तथा इत मतका खंडन.	१५९
२०	दूसरे नैयायिक मतमें पूर्वापर विरोध तथा इत मतका खंडन. इतमेंही लुटिका कर्त्ता ईश्वर न मानना चाहिये तथा ईश्वर सुख दुःखादिके देनेवाला नहीं है, यह बात सिद्ध करी है.	१६६
२१	तीसरे वैशेषिक मतका खंडन.	१७९
२२	चौथे सांख्य मतका खंडन.	१८२
२३	पांचवे मीमांसक मतका खंडनमें वेदांतीयोंके ब्रह्म (अद्वैत) का खंडन तो पहिलेही ईश्वरवादमें कर चुके हैं परंतु इसका अपरनाम जैमिनीय मत है, तिसका स्वरूप तथा खंडन.	१८५
२४	वेदोंमें जो यज्ञादि करके हिंसा करणी मिली है तिसका खंडन. इहां प्रसंगमें आखादिक करणमें पाप लगता है यहभी कहा है.	१८६
२५	चार्वाक (नास्तिक) मतका पूर्वपक्ष उत्तर पक्ष करके खंडन.	१९०
<hr/>		
॥ पंचम परिच्छेदमें शुद्ध धर्मतत्त्वका स्वरूप कहा है, तिसकी अनुक्रमणिका ॥		
१	नवतत्त्वमें प्रथम जीवतत्त्वका स्वरूप.	२०७
२	पृथिवी आदिक पांच स्यावरोमें जीवत्व सिद्ध करा है.	२८२
३	दूसरे अजीवतत्त्वके स्वरूपमें धर्मास्तिकायादिक अव्ययोंका अक्षय.	२१२

- ४ तिमरे पुण्य तत्वके स्वरूपमें पुण्य उपार्जन करणका नव प्रकार
अरु पुण्य बेंतासीश प्रकार करकें जोगनेमें आता है, तिसका नाम. २१४
- ५ पाप तत्वके स्वरूपमें कर्माजाववादी नास्तिक अरु वेदां
तिक कहते हैं कि पुण्य पाप जो है, सो आकाशके फूल सदृ
श असत् है अरु इनके फल जोगनेके स्थान जो स्वर्ग नरक सो
नी नहीं है, इसी प्रकारके कथन करणे वालोंका निराकरण क
रकें पाप अछारह प्रकारसें बंधाता है, सो व्यासी प्रकारों करकें
जोगनेमें आना है तिसका नाम, तदंतर्गत २२६ वे पृष्ठमें नीच
दृष्ट पाप नहीं मानने वाले नास्तिक लोकोंका नी निराकरण है. २१७
- ६ पांचवे आश्रय तत्वके स्वरूपमें आश्रयके उत्तर जेद जो पांच
इंद्रिय, चार कषाय, पांच अश्रय, पचीश असत् क्रिया अरु
नीन योग, यह बेंतासीश जेद कहे हैं इसमें आठ मदका स्वरूप
तथा पांच अश्रय अव्य अरु जाय यह दोनो जेदों करकें दीखाये
हैं तथा अव्यहिंसा अरु नावहिंसाका स्वरूप चतुर्नंगी करकें कहा
है अमें पांचोही व्रतोंका स्वरूप चतुर्नंगी पूर्वक कहे हैं. २२७
- ७ ठठे संवरतत्वके स्वरूपमें पांच समिति आदिक सत्तावन जेद
कहे हैं, इनका स्वरूप गुरुतत्त्वमें सिखे हैं आ इहां तो तिसमेंसें
पाचीश परीमर्होंका स्वरूप विस्तारमें है. २३७
- ८ सातवे निर्झंग तत्वके स्वरूप गुरुतत्त्वमें मंकेपसें कहे हैं. २४०
- ९ आठवे बंध तत्वके स्वरूपमें कोशक बार्दी कहते हैं की जीव प्र
थम पुण्य पापके बंध करकें रहित या, पीठमें पुण्य पापका बंध
हूया है. इत्यादि ठ विकल्पका समाधान करकें पीठमें बंधके मूल
हेतु चार और पांच प्रकारकें मिथ्यात्व, बारह प्रकारकी अत्रि रति,
पचीस कषाय अरु पंदरा योग, मिश्रकर सत्तावन उन्नर हेतुके नाम २४०
- १० नवमे तत्त्वमें मरदादि नवछागों करकें सिद्ध जगवान्का स्वरूप. २४१
- ११ पठ परिच्छेदमें जेदह गुणस्थानरुका स्वरूप है, तिसकी अनुक्रमणिका ॥
- १ प्रथम निष्पात्य गुणस्थानरुके स्वरूपमें मिथ्यात्वकों गुणस्था

- नक किसी रीतिसें कहते हैं ? ऐसी आसंकाका समाधान तथा मिथ्यात्वका कठुक् स्वरूपजी कहा है. १५५
- २ दूसरे सास्वादन गुण स्यानकके स्वरूपमें इसका कारण जूत जो औपशमिक सम्यक्त्व है तिसका स्वरूप. १५७
- ३ तीसरा मिश्रगुणस्यानकका स्वरूप. १५८
- ४ चौथे अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्यानकके स्वरूपमें सम्यक् दृष्टिजीवका लक्षण औ यथा प्रवृत्तादि त्रण करणोंका लक्षण. १५९
- ५ पांचवे देशविरति गुणस्यानकके स्वरूपमें श्रावकका पट्कर्मादि. १६१
- ६ ठे प्रमत्तसंयत गुणस्यानकके स्वरूपमें किंचित् धर्मे ध्यानका स्वरूप तथा यह गुणस्यानमें निरालंबन ध्यान होता नहीं है तिसका निश्चय करके, आजके कालमें कितनेक अपनी कल्पनासैं औरका और बोलते हैं तिनकों उपदेश दीया है. १६४
- ७ सप्तम अप्रमत्त गुण स्यानकके स्वरूपमें धर्मध्यानका स्वरूप मैं त्रयादि अनेक जेद रूप तथा यह गुण स्यानमें सामायिकादि पट् आवश्यक नहीं है तिसका व्याख्यानादि करे हैं. १६८
- ८ आठवा, नववा, दसवा, इग्यारहवा, अरु बारहवा, यह पांच गुण स्यानोके स्वरूप एकिठे कहै हैं, इतमें उपशम श्रेणि और कृपक श्रेणिका किंचित् स्वरूप और शुद्धध्यानका स्वरूप अठे विस्तार पूर्वक, रेचक, पूरक, कुंजकादि ध्यानका व्युत्पत्ति सहित अर्थ करके और स्वरूप कहके निरूपण करा है. १७१
- ९ तेरहवे सयोगी गुण स्यानमें सयोगी केवलीका जाव कहा है. तथा तीर्थकरनाम कर्म उपार्जन करनेका बीश स्यानक औ तीर्थ कर जगवान्की महिमा तथा तीर्थकरनाम कर्म वेदनेका स्वरूप, केवली समुद्धातका स्वरूप तथा कौन समुद्धात करता है? अरु कौनसा केवली नहीं करता है? तिसका स्वरूप तथा मना दि योगोंको किसी तरेह सूझ करता है. इत्यादि स्वरूप. १७२
- १० चौदहवा अवयोगी गुण स्यानकका स्वरूप तिसमें कर्मरहित जीवों की जो ऊर्ध्वगति होती है तिसका हेतु औ सिद्धोंकी स्थिति, सिद्धोंका आठ गुण, सिद्धोंका सुख अरु मुक्तिका स्वरूप. १७७

॥ सप्तम परिच्छेदमें सम्यग् दर्शनका स्वरूप लिखा है, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

- १ व्यवहार अरु निश्चय यह दो प्रकारके सम्यक्त्वके स्वरूपमें देवादि तीन तत्त्वोंपर व्यवहार अरु निश्चय यह दो प्रकारके श्रद्धान होते हैं, तिसमेंजी प्रथम व्यवहार श्रद्धानका कथन तथा तीन तत्त्वोंमेंजी प्रथम देवतत्वके स्वरूप कथनमें श्री अरि हंतजीके नामादि चार निक्षेपका स्वरूप. २९३
- २ श्री अरिहंतजीकी प्रतिमाकों पूजना नमस्कार करणां तिसके स्वरूप प्रतिपादनमें मूर्ति अपूजक लोकोंका प्रश्नोत्तर पूर्वक तिनकी कृपुक्तियोंका अष्टी तरेंसे खंडन कीया है. २९३
- ३ गुरुतत्वका स्वरूप.... २९७
- ४ धर्मतत्वके स्वरूपमें दयाका स्वरूप अनेक प्रकारसें कहे हैं २९७
- ५ निश्चय धर्मका स्वरूप.... ३००
- ६ निश्चय सम्यक्त्वका स्वरूप.... ३०१
- ७ सम्यक्त्वकी करणी.... ३०१
- ८ सम्यक्त्वका शंका नाम अतिचारमें पंचम कालमें एक सौ बीस वर्षके आयुष्यकी शंकाका समाधान तथा भरत क्षेत्रके समुद्र अरु भूमिसंघर्षी आशंकायोंके समाधान तथा पृथिवीका गोला फिरेते हैं, एसी आशंकाका समाधान तथा वेदोंका प्राचीन अर्थ ओडके नवीन अर्थ बनानेका कारण तथा जैनमतके ग्रंथ पुस्त कारुड कथसें हूये इत्यादि.... ३०२
- ९ दूसरा आकांक्षा नामा अतिचारका स्वरूप. ३१३
- १० तीसरा वितिगिज्ञा नामा अतिचारका स्वरूप इसमें पुण्य पापादि का पक्ष जीवकों अवश्य प्राप्त होते हैं, यह बातका निश्चय तथा कृपुक्त्योंके अनाचार प्रदर्शित करा है. ३१३
- ११ चौथा मिष्यादृष्टिकी प्रगुंसा रूप अतिचारका स्वरूप. ३१५
- १२ पांचमा मिष्यादृष्टिके परिचय करणेका अतिचार ३१६
- १३ सापानियोगेणादि वे आगारका स्वरूप.... ३१६
- १४ अन्नवृक्षानोगेणादि चार आगारका स्वरूप. ३१७

॥ अष्टम परिच्छेदमें चारित्र्यका स्वरूप कहा है, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

- १ गृहस्थके देशविरति चारित्र्यमें अव्य जावसें प्रथम व्रतका स्वरूप. ३१०
- २ आकुटी आदिक चार प्रकारकी हिंसाका स्वरूप..... ३१०
- ३ गृहस्थसें सवा विश्वा दया पल सक्ति है तिसका स्वरूप. ३११
- ४ प्राणतिपात विरमण व्रतके पांच अतिचारके स्वरूप. ३१२
- ५ दूसरा स्थूल मृपावाद विरमण व्रतका स्वरूप. ३१३
- ६ तीसरा स्थूल अदत्तादान विरमण व्रतका स्वरूप.... ३१६
- ७ चौथा मैथुन त्याग व्रतका स्वरूप. ३१९
- ८ पांचवा स्थूल परिग्रह परिमाण व्रतका स्वरूप. ३२२
- ९ ठठा दिक् परिमाण व्रतका स्वरूप. ३२६
- १० सातमा जोगोपजोग व्रतका स्वरूप. ३३०
- ११ मदिरा पान करनेमें एकावन्न दोष दीखलाया है..... ३३९
- १२ मांस जक्षण करणमें अनेक प्रकारके छूषण दीखलाया है. ३४१
- १३ निर्विवेकी लोक, व्याघ्र काग प्रमुख हिंसक जीवोंको अपना धर्मोपदेशक गुरु मानते हैं तिनोके मतका खंनन. ३४२
- १४ मांसाहारी आपही आपको अधर्मी बनाते हैं तिनका स्वरूप. ३४४
- १५ मांस जक्षण करणवाले महामूढ हैं यह सिद्ध करा है. ३४४
- १६ मांस खानेमें अनुत्तर छूषण बताये हैं. ३४६
- १७ मांस खानां जिनोने कथन करा उन कुशाख बनाने वालोंका नाम. ३४६
- १८ जैसें और विचारे निरपराधी पशुओंका मांस खानां दुष्ट लोकोंने अपने बनाये कुशाखोंमें खिख दीया है तैसें मनुष्य का मांस खानां किसी शास्त्रमें नहीं खिखा है. तिसका हेतु. ३४६
- १९ माखन अरु मधुआदिक अजस्य वस्तुके जक्षणमें दोषोत्पत्ति. ३४७
- २० रात्रि भोजन करणसें इत लोकमें तो प्रत्यक्ष छूषण अरु परलोकमें अनेक दुःखका हेतु होता है इत्यादि रात्रिभोजनका निषेध. ३५०
- २१ बहुबीजादि अजस्य वस्तु खानेका निषेध. ३५४
- २२ वस्तीत अनंतकाय अजस्यवस्तु है तिनका नाम. ... ३५६
- २३ तच्चित्त परिनायादि वादद नियमका स्वरूप. ३५७
- २४ इंगाज कर्म आदिक पंद्रह कर्मादानका स्वरूप. ३६०

२५ सप्तम जोगोपजोग व्रतके पांच अतिचारका कथन.	३६३
२६ अष्टम अनर्थदंरु विरमण व्रतका स्वरूप.	३६४
२७ आर्त्तध्यानके अनिष्टार्थसंयोगादि चार जेदोंका स्वरूप.	३६४
२८ रौद्र ध्यानके हिंसानंद रौद्र आदिक चार जेद.	३६७
२९ दूसरा पापकर्मोपदेश अनर्थदंरु अरु तीसरा हिंसप्रदान अनर्थ दंरु तथा चौथा प्रमादाचरण अनर्थदंडका स्वरूप....	३६७
३० अनर्थदंड विरमण व्रतके पांच अतिचार....	३७०
३१ नवमें सामायिक व्रतके स्वरूपमें बत्तीस दोषादिके नाम.	३७१
३२ दशवा देशावकाशिक व्रतका स्वरूप.	३७४
३३ ईग्यारहवा पौषधोषवास व्रतका स्वरूप.	३७६
३४ धारहवा अतिथिसंविज्ञाग व्रतका स्वरूप.	३७९

॥नवम परिच्छेदमें श्रावकोंका दिन कृत्यविधि कहाहै, तिसकी अनुक्रमणिका॥

१ श्रावकों निजा स्वल्प लेनी एक ग्रहरादि रात्रिमें जागनां इ० ३७२	
२ सवेरकों निजा ठेदनेके बखत पृथ्वीआदिकतत्त्वके बहेनेसें सुख दुः खादिकका कथन अरु पृथ्वीआदिक पांच तत्त्वोंका स्वरूप.	३७३
३ किस किस कार्यमें कौनसा कौनसा तत्व शुभाशुभ है.	३७४
४ पंच परमेष्ठी आदिक जाप किसी रीतिसें करनां.	३७५
५ धर्म जागरणा किसी तरें करणी.	३७७
६ स्वप्न नव कारणोंसें आते हैं तिसका शुभाशुभ फलादि.	३७७
७ प्रजातमें मातापितादिकोंको नमस्कार करनां इत्यादि कृत्य....	३७७
८ श्रावकों सवेरे उठके चौदह नियमादि करणका उपदेश अरु ग्रहण करणकी विधि तथा सचित्त वस्तुका स्वरूप.	३७७
९ मिठाइकी मर्यादा, विदलका निषेध, तथा बेंगन टींबरु आदिक वस्तु न खानेका उपदेश.	३७८
१० श्रावकों निरवय आहार करणा तिसका तथा नवकारसी आ दिक नियमका स्वरूप, अरु चार प्रकारके आहारका विज्ञाग.	३७९
११ मलोत्सर्ग, दंतधावन, केशसमारन, स्नान करनां इत्यादि.	३७९
१२ जिनपूजादि करणमें प्रथम अंगपूजाका विधि.	४०१

- १३ प्रथम मूखनायककों पूजनां अरु पीठें दूसरे विंवीकी पूजा करणी
यह तो स्वामी सेवक जाव ठहरा असी आशंकाका समाधान. ४०३
- १४ दूसरी अग्रपूजाका स्वरूप. ४०७
- १५ तीसरी जावपूजाका स्वरूप. ४०९
- १६ पंचोपचारादि बहुत प्रकारके पूजाके जेद. ४११
- १७ पूजा करणेका विधि वत्तीत प्रकारका. ४११
- १८ पूजाके इत्तीत प्रकारके नाम. ४१३
- १९ विपनातनादि बैठके पूजा न करनां इत्यादि स्वरूप. ४१३
- २० स्नात्र करे पीठें जलधारा देनेका विधि. ४१४
- २१ आरति अरु नंगझडीपक करणेका विधि. ४१५
- २२ स्नात्रादिकमें सनाचारी विशेषतें विविध प्रकारका विधि देखने
तें व्यामोह न करनां इत्यादि स्वरूप. ४१६
- २३ जिन प्रतिमाकी अनेक प्रकारकी होती है इत्यादि ४१६
- २४ अविधितें जिन मंदिर अरु जिन प्रतिमा बनी होय उत्तकों न
पूजनेका विकल्प न करणां इत्यादि स्वरूप. ४१७
- २५ जिनमंदिरमें मकनीका जाया उतारनेका उपदेश. ४१७
- २६ सामायिक त्यागके ज्यपूजा करणी उचित नहीं एसी आशं
काका निराकरण. ४१७
- २७ विधि न होवे तो न करणांही श्रेष्ठ है यह कहनांजी अयुक्त है. ४१७
- २८ अंग अग्रादि तीनों पूजाके फल. ४१७
- २९ ज्यपूजामें यद्यपि पदकायकी किंचित् विराधना होती है तोभी
करणी योग्य है, तितका उदाहरण. ४१९
- ३० प्रतिदिन तीन संध्यामें पूजा करणेका विधि. ४२०
- ३१ हृदयमें बहुमान पूर्वक देवपूजादि करणां. इहां प्रीति नकि
आदिक चार प्रकारके अनुष्ठानके स्वरूप कहे हैं. ४२१
- ३२ श्री जिनमंदिरोंका प्रसाजन अरु सनारन प्रमुखका अधिकार. ४२२
- ३३ जिनमंदिरमें जघन्य दश अरु मध्यम चासीश तथा उच्छृष्टतें
चौरासी प्रकारकी आशातना वर्जन करनी तितका नाम. ४२३
- ३४ मुक्ती तैचीत आशातना वर्जन करनी तितका नाम. ४२५

- ३५ स्थापनाचार्यकी तीन प्रकारकी आशातना. ४२६
- ३६ देवद्रव्य, ज्ञानद्रव्य, साधारणद्रव्य अरु गुरुके द्रव्यका विनाश
करणे वालेकों साधु न हटावे तो अनंत संसारी होवे. ४२७
- ३७ जिनमंदिरकी आमदानीके जंग करणे वाला तथा जो मुखसें
कट कर देवद्रव्य न देवे वो संसार ज्रमण करे तिस्का स्वरूप. ४२७
- ३८ जो द्रव्य, देवके नामका बोझा होवे, सो तत्काळ देना. ४२९
- ३९ देवादिककी कोइजी वस्तु अपने काममें न लेनी. ४२९
- ४० देवादिकके घरादिकजी आवश्यककों जाड़े लेनां न चाहियें. ४३०
- ४१ घर घेरासरमें चढे हूए अक्षतादिककी व्यवस्थाका प्रकार तथा
देवादि द्रव्य लेने घरचनेका प्रकार इत्यादि. ४३०
- ४२ गुरुयोजनाका विधि तथा नियमादिकजी गुरु साक्षिकही करणां. ४३२
- ४३ धन उपार्जन करनेकी चिंताके स्वरूपमें व्यापारादिक सात प्र
कार करके आजीविका चलानेका स्वरूप. ४३४
- ४४ तीन अष्टाष्ट आदिक पर्यंतियिके दिनोंमें व्यापार न करणां. ४३९
- ४५ देनां होये सो करार ऊपर विना माग्यांही दे देनां. ४३९
- ४६ आवश्यककों मुख्यवृत्तिसें तो धर्मीजनोसेंही व्यापार करनां. ४३९
- ४७ सहोत धन जाता रहे तोनी धर्म करणेमें आसक्त न करनां. ४४०
- ४८ सहोत धनादय हो जावे तोनी अजिमान न करनां. ४४०
- ४९ ग्यामिजोह अरु मित्रजोहादि न करनां इत्यादि. ४४१
- ५० पुण्यानुबंधी पुण्य, पापानुबंधी पुण्य, पुण्यानुबंधी पाप, अरु पापानु
बंधी पाप यह चार प्रकारका किंचित् स्वरूप. ४४१
- ५१ यथायं कहनेसें मित्रका मनोहरण. ४४२
- ५२ साक्षीविना मित्रके घरमेंनी धनादिक न रखनां. ४४२
- ५३ मुख्यवृत्तिमें तो जिम गाममें रहेणां उहांही व्यापार करणां
परंतु जो परदेश जानां पडे तो किसरीतिसें जानां तीसका कथन. ४४२
- ५४ गडां ब्यादि पहिरनेका आठंवर न ओरनां. ४४४
- ५५ धन प्राप्त होवे तब धर्ममें सुगाकर मनोरथ सफल करणां. ४४४
- ५६ ग्यापोनाजिनादिक धन घरचनेका चार जंग. ४४५

५७ देशविरुद्ध, कालविरुद्ध, राज्यविरुद्ध, लोकविरुद्ध, अरु धर्म	
विरुद्ध कार्य न करना, तिसका स्वरूप ४४५
५८ पिताके साथ अरु माताके साथ उचिताचरणका स्वरूप. ४४८
५९ सहोदरके साथ अरु स्त्रीके साथ उचिताचरणका स्वरूप ४४९
६० पुत्रके साथ अरु सगोंके साथ उचिताचरणका स्वरूप. ४५१
६१ गुरुके साथ उचिताचरणका स्वरूप. ४५३
६२ नगरनिवासी जनोंके साथ उचिताचरणका स्वरूप. ४५४
६३ परतीर्थियोंके साथ उचिताचरणका स्वरूप. ४५४
६४ औरजी अवतरमें उचित बोलनां अरु कुशोजाकारी त्यागनां.	४५५
६५ सुपात्रकों दानादिक देनेकी युक्ति. ४५६
६६ माता पितादिक अरु गुरुप्रमुखकी चिंताका प्रकार. ४५८
६७ नोजन करनेका विधि. ४५९

दशम परिच्छेदमें रात्रिकृत्यआदिक पांच कृत्यकहे हैं, तिसकी अनुक्रमणिका	
१ पौषधशाखादिकमें यत्नपूर्वक प्रतिक्रमणादि करणकी रीति. ४६२
२ सकल परिवारकों धन खर्चनां आदिक धर्मोपदेश करणकी रीति	४६२
३ निद्रा लेनेका विधि अरु सूता पीठें रात्रिमें जब जाग जावे, तब	
कदाचित्काम पीना करे तो स्त्रीके शरीरका अशुचि पणा विचारे.	४६३
४ कपाय जीतनेका उपाय अरु जबस्थितिकों महादुःखरूपविचारे....	४६५
५ धर्ममनोरथ जावना अरु अष्टमी आदिक पर्वकृत्यका स्वरूप.	४६५
६ चातुर्मासिक कृत्यका स्वरूप. ४६८
७ वर्षकृत्यका वारह द्वारोंमें प्रथम संघपूजाका स्वरूप. ४७१
८ दुत्तरा साधर्मिक वाल्लभका स्वरूप. ४७१
९ तीसरा यात्राविधिका स्वरूप अरु चौथा स्नात्रविधिका स्वरूप.	४७२
१० पांचवा देवद्रव्यकी वृद्धिका, ठंडा सुंदर अंगीआदिकका, तातवा	
देवके आगें विविध प्रकारके गीत नृत्यादिक करणका विधि....	४७४
११ आठवा श्रुतज्ञानकी पूजा कर्पूरादिते करणका विधि. ४७४
१२ नववा पंचपरमेष्ठि नमस्कारका तथा तप करणका विधि. ४७४

- १३ दशवा तीर्थकी प्रज्ञावना करे तिनका विधि. ४३४
- १४ थगीथारहवा गुरुके योगमिले दूवैथालोचना करे तिनका विधि. ४३५
- १५ आवकका जन्मकृत्य अछारह छारों करकें कहा है तिसमें प्रथम वसनेका स्थान जो घर बनाना तिनका स्वरूप. ४३७
- १६ दूसरा विद्यान्यास करणेका अरु तीसरा विवाह करणेका स्वरूप. ४३८
- १७ चौथा मित्र करणेका अरु पांचवा जिनमंदिर बनानेका स्वरूप. ४३९
- १८ ठठा प्रतिमा बनानेका, सातवा प्रतिमाकी प्रतिष्ठाका, आठवा दूसरेको दीक्षा देनेका, नववा तत्पद स्थापनाका स्वरूप. ४४५
- १९ दशवा पुस्तक लिखानेका छार. ४४७
- २० इग्यारहवा पोषधशाखा बनानेका छार, बारहवा सम्यक्त्व दर्शनाका छार, तेरहवा व्रतादि पालनेका छार, चौदहवा दीक्षा ग्रहणका स्वरूप, इसमें जात्र आवकके सत्तरह गुण कहे हैं. ४४८
- २१ पंदरहवा थारंज त्यागका, सोलहवा ब्रह्मचर्य पालनेका, सत्तरहवा प्रतिमादि तप विशेषका अरु अछारहवा आराधनाका छार. ४५०
- ॥ एकादश परिच्छेदमें श्री रूपनादिसैं महावीर पर्यंत जैनमतादि शास्त्रों ॥
- ॥ के अनुसार इतिहास कहे हैं, तिसकी अनुक्रमणिका ॥
- १ जैनमत कहांसैं प्रचलित दृष्ट्या ऐसी आंतिका समाधान. ४५३
- २ जगतके स्वरूपमें उत्सर्पिणी व्यवसर्पिणी काल ओ सूलम सूलमादिक ठे थारेका तथा सात कुसकरोंका किंचित् स्वरूप. ४५४
- ३ रूपनदेव स्वामीका किंचित् वृत्तांत अरु तिनके सौ पुत्रोंके नाम तथा दायी घोडादिकके संग्रहका विधि. ४५७
- ४ आहारका विधि तथा शिष्ट्यका जेद. ४५८
- ५ कर्म छारमें खेती वाणिज्यादिकका स्वरूप तथा पुरुषकी बहोत्तर कसा थार श्रीकी चोराठ कसा तथा अछारह प्रकारकी लीपी. ४६०
- ६ माना पिनाकी दीनी कन्याका विवाह प्रवर्तनेका स्वरूप. ४६३
- ७ कोइ मृष्टिके कतां नही है तिनका स्वरूप. ४६३
- ८ ब्रह्मादि द्वादशोंमें ध्यान करणेकी प्रवृत्ति अरु निहा देनेकी रीति ४६४
- ९ धनंजयकीयें बिकनराजा तक चला, तिसका वृत्तांत. ४६४

- १० स्नेह, निर्दयी, अरु अनार्य लोक होनेका वृत्तांत. ५०५
- ११ श्री रूपजदेवकाही ब्रह्मा नाम प्रचलित होनेका वृत्तांत. ५०५
- १२ श्री शत्रुंजयका पुंडरिकगिरि नाम होनेका स्वरूप. ५०५
- १३ परिव्राजकोंका लिंग उत्पन्न होनेका स्वरूप. ५०६
- १४ मरीचीसें कापिलादि मत उत्पन्न होनेका स्वरूप. ५०६
- १५ ये जरत खंडका नाम जरतखंड रखनेका हेतु. ५०७
- १६ श्रावकोंका ब्राह्मण नाम कहाँसें प्रचलित हुआ तिसका स्वरूप. ५०७
- १७ कुरुवंशकी उत्पत्ति, यज्ञोपवीतकी उत्पत्ति, चारों वेदोंका नाम बदलनेका अरु मतलब फिरानेका हेतु, चारों वेदोंकी उत्पत्ति. ५१०
- १८ याज्ञवल्क्य, सुलसा, पीपलाद, अरु पर्वत प्रमुखोंसें फेर असल वेदोंको फिरायके हिंसायुक्त वेदोंकी रचना हुई, तिसका स्वरूप पूर्वोक्त पुरुषोंका कथानक सहित. ५११
- १९ इस वर्तमान कालमें जो चार वेद हैं तिनकी उत्पत्ति. ५१२
- २० तेचीस क्रोड देवताओंका मुख अग्नि है, यह कथन कहाँसें चला, ५१२
- २१ ब्राह्मणोंको आहिताग्नय कहेने लगेका कारण अरु राखकों मस्तक पर त्रिपुंजकारसें लगानेका तथा कैलास पर्वतकी उत्पत्ति. ५१३
- २२ श्री अजितनाथ और पहिले सगरचक्रवर्तीका अधिकार. ५१३
- २३ श्री संजवनाथसें ले कर नवमे तीर्थकर तक तो सर्व जैनधर्मी ब्राह्मणही श्रावक थे तिनका स्वरूप. ५१५
- २४ दशवे तीर्थकरके शासनमें हरिवंशकी उत्पत्ति हुई तिनका स्वरूप. ५१६
- २५ वेदोंमें प्रजापतिवें स्वां॥ यह श्रुति लिखी गई, तिनका हेतु तथा चक्रवर्ती आदिककी क्रमसें उत्पत्ति अरु परशुरामकी उत्पत्ति. ५१७
- २६ ब्राह्मणाने जो जो राजाओंको अपने शास्त्रोंमें दैत्य अरु राक्षसके नामसें लिख दीया है, तिसका हेतु. ५१५
- २७ विष्णुकुमारकी किंचित् कथा अरु ब्राह्मणोंने जो पुराणोंमें लिखा है कि विष्णु जगवान्ने वामनरूप करके यज्ञ करते दूये वलीराजाको ठग्रा है, यह बात कहाँसें उत्पन्न हुई है. ५२६
- २८ असली पार्श्वनाथकी मूर्तिका वड्डीनाथ नाम रखनेका हेतु ५२७
- २९ श्री कृष्णको जगवान् कहेनेका हेतु. ५२७

॥ बारह्वे परिष्ठेदमें श्री महावीर जगवानसें ले कर आजपर्यंत
॥ कितनेक वृत्तांत लिखे हैं, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

- १ सत्यकी श्रावकके संबंधमें मद्देश्वरकी उत्पत्ति. ५४२
- २ मृतकोंकों पिरुप्रदान आरूढ़ादि प्रवृत्त होनेका हेतु. ५४६
- ३ प्रयाग तीर्थकी मानता चखनेका हेतु. ५४७
- ४ श्री महावीरके गोतमादि गणधरोंका वृत्तांत कथा सहित ५४७
- ५ श्री महावीरकी गद्दी उपर श्री सुधर्मास्वामी बैठे तहांसें ले कर
आठवे श्रीयूषिजज्जी तक आठ पाठका संक्षेप वृत्तांत. ५५५
- ६ मुद्दस्तिसूरिके पखतमें संप्रति राजा हूथ्या तिनका वृत्तांत. ५५५
- ७ उज्जायनमें शिवका लिंग फट कर पार्श्वनाथकी मूर्ति प्रगट हूइ
तिनका कुमुदचंद्र आचार्यकी कथापूर्वक वृत्तांत. ५६०
- ८ तेरहवा श्री सिंहगिरिजीके पाठ उपर श्रीवज्रस्वामी हूये जिसने
जायग शाह शेरके कीये शत्रुंजयतीर्थका उद्धारकी प्रतिष्ठा करी. ५६०
- ९ श्री महावीरसें (५४०) मे बपे त्रैराशिक मत निकला. ५६५
- १० चौदह्वे श्री वज्रसेनसूरिके पखतमें नागेंद्रादि चार कुल हूये. ५६५
- ११ पंदरह्वे श्री चंद्रसूरिके पाठसें लेकर एकावन्नवे मुनिमुंदर
सूरि पर्यंत यहोत चमत्कारिक बातोंका किंचित् इतिहास. ५६५
- १२ षावनवे श्री रत्नशेखर सूरिके समयमें जिनप्रतिमाके उद्यापक
खुंका नामक लीलारानीने खुंका मत चखाया तिसकी कथा. ५७१
- १३ त्रेपनवे श्रीव्रद्धमीसागरसूरिसें ले कर सत्तावनवे श्रीविजयदानसू
रि तक आचार्योंकी कथाउ कतुक इतिहासो युक्त संक्षेप खिली हे. ५७३
- १४ अष्टावन्नवे पाठे श्री हीरविजय सूरि हूथ्या तिनकी कथा कतु
क थकद्वय यादशाहके वृत्तांत युक्त संक्षेपसें खिली हे. ५७५
- १५ द्वादशवे पाठे श्री विजयप्रन सूरिके समयमें मुद्दचंधे दूंदीयोंका
पंच निरुद्धा तिसकी उत्पत्तिके कारण थरु ये दिनसें ले कर आ
ज तक विद्यमान विचरनेवासे दूंदोंका नाम. ५८२
- १६ प्रेसठवे पाठमें लेकर वर्तमान रंगपोतेरमें पाठ तक होनेवासे आ
पाकोंका नाम तथा ये धंय बनानेवासेके गुर्वावलीका नाम थरु ये
धंय बनानेवासेके समयमें जितने नवीन पंच निकसे तिनके नाम. ५८४

॥ ॐ नमः स्याद्वादवादिने ॥

॥ अथ तपागणीये ॥

॥ मुनिश्री आनन्दविजय आत्मारामजी विरचित ॥

॥ जैनतत्त्वादृशं नामक ग्रंथ प्रारंभः ॥



॥ तत्र प्रथम परिच्छेद ॥

॥ अनुष्टुप् वृत्तम् ॥

॥ स्यात्कारमुद्रितानेक, सदसञ्ज्ञाववेदिनम् ॥

॥ प्रमाणरूपमव्यक्तं, जगवंतमुपास्महे ॥ १ ॥

॥ अथ प्रथम देव, गुरु ओं धर्म इन तीनो ॥

॥ तत्त्वोंका स्वरूप किंचित् लिख्यते ॥

विदित हो कि जो यह जैनमत है तिसका स्वरूप श्री तीर्थकर, गणधर और पूर्वाचार्यादिकोंने आगम निर्युक्ति जाप्य चूर्खि टीका औ प्रकरण तर्कादि अनेक ग्रंथद्वारा स्पष्ट निष्टकन कीया है. परंतु पूर्वाचार्यरचित सर्व ग्रंथ प्राकृत वा संस्कृत जायामैं हैं. सो अब जैन लोगोंके पढ़णमें उद्यमके नकर ऐसैं उन अति उत्तम अद्भुत ग्रंथोंका आशय लुप्तप्राय हो रहा है. सो कि तनेक जव्य जीवांकी प्रेरणासैं तथा स्वकर्म निर्झराकी आशयसैं जिन कूं प्राकृत वा संस्कृत पढ़णी कठिन है तिनोके उपकारार्थ देव, गुरु औ धर्मका स्वरूप किंचित् मात्र इस जापा ग्रंथमें लिखते हैं.

सर्व श्रीसंघसैं नमृता पूर्वक यह विनती है कि जो इस ग्रंथकूं पढ़े सो जहां मैंने जिनमार्गसैं विरुद्ध लिखा हो तहां यथार्थ लिख देवें यह मेरे ऊपर बना अनुग्रह होगा. इस ग्रंथके लिखनेका मेरा मुख्य प्रयोजन तो यह है जो इस कालमें बहुत नबिन मत लोकोने स्वकपोल कल्पित प्रगट करे हैं तथा श्रंगरेजोंकी ओ मुसलमानोंकी विद्यापढ़णसैं तथा अनेक प्रकार के मत मतांतरोंकी वातां सुणनेसैं अनेक जव्य जीवांकूं अनेक प्रकारके संशय उत्पन्न हो रहे हैं तिनके दूर करणके वास्ते इस ग्रंथका प्रारंभ कीया है अब पूर्वोक्त तीनो तत्वोंमें प्रथम देवतत्वका स्वरूप लिखते हैं.

देव नाम परमेश्वरका है. सो परमेश्वरके स्वरूपमें अनेक प्रकारके विकल्प मतांतरिये पुरुष करते हैं. सो जैनमतमें परमेश्वरका क्या स्वरूप मान्या है, सो तिस परमेश्वरका स्वरूप नाम रूप और विशेषण संयुक्त लिखते हैं. जैन मतमें जो परमेश्वर मान्या है सो चारां गुण संयुक्त ओ अष्टादश रूपण रहित अर्द्धत परमेश्वर है. ओ जो परमेश्वर उक्त चारां गुणरहित तथा अष्टादश रूपण सहित होगा तिसमे कदापि परमेश्वरता सिद्ध नहीं हो. गी यह कथन आगे चलकर लिखेंगे.

अथ प्रथम चारां गुण लिखते हैं. अशोकशृङ्गादि अष्ट महाप्रातिहार्य सर्व जैनलोगोंमें प्रसिद्ध हैं. तथा चार मूलातिशय एवं सर्व चारां गुण हैं. तिनमें चार मूलातिशयका नाम कहते हैं. (१) ज्ञानातिशय (२) वागतिशय (३) अयायापगमातिशय (४) पूजातिशय. तत्र प्रथम ज्ञानातिशयका स्वरूप कहें हैं केवलज्ञान केवलदर्शन करी जूत जगिष्य वर्तमान कालमें जो सामान्य विज्ञेयात्मक यस्तु है तिसकू तथा उत्पाद वय्य धोवयुक्तं सत् त्रिकाल संबंधि जा सत् यस्तुका जानना तिसका नाम ज्ञानातिशय है. पूजा वचनातिशय तिनमें जगदंतका वचन पैंतीस अतिशय करी संयुक्त होता है. तिन पैंतीस अतिशयका स्वरूप ऐसा है. (१) संस्कारयत्नं (संस्कृतादि लक्षणयुक्त) (२) उदात्तं (शब्दमें उच्चपणा उपचारपरीतता) (३) अग्राम्यत्वं (ग्रामके रहण हारे पुरुषके वचन समान जिनोका वचन नहीं) (४) मेघगंजीर घोषत्वं (मेघकी तरें गंजीर शब्द) (५) प्रतिनाद विधायिता (सर्व वाजिघ्रांके साथ मिस्रता शब्द) (६) दक्षिणत्वं (वचनकी सरलता संयुक्त) (७) उपनीतरागत्वं (मांसव कोशक्यादि ग्राम राग करी युक्तता) ए सात अतिशयतो शब्दकी अपेक्षासे जाननी थी. अन्य अतिशय जो है सो अर्थाश्रय जाननी. (८) महार्थता (यस्मात्कोटि जिसमे अतिशय कहने योग्य अर्थ है) (९) अन्यादृष्टत्वं (पूर्वापर विरोध रहित) (१०) शिष्टत्वं (अनिमन सिद्धांतोक्तार्थता) एतावता अनिमन सिद्धांत जो कहना सोड वक्ताके शिष्टपणेका सूचक है. (११) संशयानामसंग्रहः (जिनोके कट्टेमें श्रुताकूं संशय नहीं होता) (१२) निराकृतान्योत्तरत्वं (जिनोके कथनमें कोइसी रूपण नहीं नतो श्रुताकूं शंका उत्पन्न होवे न जगवान इमरीवार उत्तर दें) (१३) हृदयगमता (हृदय प्राकृतं) हृदयमे ग्रहणे योग्य (१४) मित्यः साकांक्षता (परस्पर आपसमें

पद वाक्योंका सापेक्षपणा) (१५) प्रस्तावोचित्यं (देशकाल करके रहित पणा नहीं) (१६) तत्त्वनिष्ठता (विवक्षित वस्तुके स्वरूपानुसारिपणा) (१७) अप्रकीर्णप्रसृतत्वं (सुसंबंध होकर प्रसरणा अथवा असंबंधाधिकारका अतिविस्तार नहीं) (१८) अस्वश्लाघाऽन्यनिंदता (आत्मोत्कर्ष पर निंदा करके वर्जित) (१९) अनिजात्यं (प्रतिपाद्य वस्तुकी भूमिकानुसारिपणा) (२०) अतिस्निग्धमधुरत्वं (घृत गुडादिवत् सुखकारि) (२१) प्रशस्यता (कहेजो हैं गुण तिनकी योग्यतासें प्राप्त हुई है श्लाघा) (२२) अमर्मवेधिता (परका मर्म जिसमे उगधारणा नहीं है) (२३) औदार्य (अनिधेय अर्थका तुष्टपणा नहीं) (२४) धर्मार्थप्रतिवर्तता (धर्म औ अर्थ करके संयुक्त) (२५) कारकाद्यविपर्यासो (कारक काल वचन औ लिंगादि जहां विपर्यय नहीं) (२६) विभ्रमादि वियुक्तता (विभ्रमवक्ताके मनकी प्रांति विक्षेपादि दोष रहित) (२७) चित्रकृत्त्व (उत्पन्न कथा है छिन्न कौतुहल पणा) (२८) अद्भुतत्वं (अद्भुतपणा) (२९) अनति विलम्बिता (अतिविलंब रहित) (३०) अनेकजाति वैचित्र्य (जातियां वर्णन करणे योग्य वस्तु स्वरूप उनका आश्रय) (३१) आरोपिता विशेषता (वचनांतरकी अपेक्षा करके स्थापन किया है विशेषपणा) (३२) सत्त्वप्रधानता (साहसकरी संयुक्त) (३३) वर्णपदवाक्य विविक्तता (वर्णादिकोंका विधिवन्नपणा) (३४) अव्युत्थितिः (विवक्षितार्थकी सम्यक् सिद्धि जहां लग न होवे तहां तांश्च अव्यवधिवन्न वचनका प्रमेयपणा.) (३५) अखेदित्वं (थकेंवा रहित) एह जगवंत की दुसरी वचनातिशयके पैंतीस जेद हैं. तीजी अपायापगमातिशय एतावता उपद्रव निवारक औ चोधी पूजातिशय सो जगवान तीनलोकके पूजनीक हैं इनदोनो अतिशयांकी विस्ताररूप चौतीश अतिशय होती हैं सो लिखते हैं.

(१) तीर्थंकर जगवानकी देहका रूप औ सुगंध सर्वोत्कृष्ट औ रोग रहित देह तथा पसीना औ मल करि वर्जित (२) स्वास निःस्वास पद्म कमलकी तरें सुगंधवाला (३) रुधिर औ मांस गो दुग्ध वत् उज्ज्वल (४) आहार निहारकी विधि चर्मचक्षुवालेकूं नहीं दीखे ए चार अतिशय जन्मसे साथ (१) एक योजन प्रमाणही समवसरणका क्षेत्र है, परंतु तिसमें देवता मनुष्य तिर्यचकी कोटाकोटीजि समायसकि है जीड नहीं होती. (२) वाणी जापा अर्चु मागधी देवता मनुष्य तिर्यचकूं अपणी अपणी

देव नाम परमेश्वरका है. सो परमेश्वरके स्वरूपमें अनेक प्रकारके रूप मतांतरिये पुरुष करते हैं. सो जैनमतमें परमेश्वरका क्या स्वरूप है, सो तिस परमेश्वरका स्वरूप नाम रूप और विशेषण संयुक्त है. जैन मतमें जो परमेश्वर मान्या है सो वारां गुण संयुक्त औ अष्टादश रूप रहित अर्द्धत परमेश्वर है. औ जो परमेश्वर उक्त वारां गुणरहित तथा अष्टादश रूप सहित होगा तिसमे कदापि परमेश्वरता सिद्ध नहीं हो गी यह कथन आगे चलकर लिखेंगे.

अथ प्रथम वारां गुण लिखते हैं. अशोकवृक्षादि अष्ट महाप्रातिहार्य सर्व जैनलोगोमें प्रसिद्ध हैं. तथा चार मूलातिशय एवं सर्व वारां गुण हैं. तिनमें चार मूलातिशयका नाम कहते हैं. (१) ज्ञानातिशय (२) वागतिशय (३) अयायापगमातिशय (४) पूजातिशय. तत्र प्रथम ज्ञानातिशयका स्वरूप कहें केवलज्ञान केवलदर्शन करी नूत जगत्प्य वर्तमान कालमें जो सामान्य वि शेषात्मक वस्तु है तिसकू तथा उत्पाद व्यय ध्रुवयुक्तं सत् त्रिकाल संबंधि जा सत् वस्तुका जानना तिसका नाम ज्ञानातिशय है. इसी वचनातिशय तिनमें जगद्यंतका वचन पैंतीस अतिशय करी संयुक्त होता है. तिन पैंतीस अतिशयका स्वरूप ऐसा है. (१) संस्कारवत्त्वं (संस्कृतादि लक्षणयुक्त) (२) उदात्तं (शब्दमें उच्चपणा उपचारपरीतता) (३) अग्राम्यत्वं (ग्रामके रहण हारे पुरुषके वचन समान जिनोका वचन नहीं) (४) मेघगंजीर घोषत्वं (मेघकी तरें गंजीर शब्द) (५) प्रतिनाद विधायिता (सर्ध वाजिघ्रोंके साथ मिस्रता शब्द) (६) दक्षिणत्वं (वचनकी सरलता संयुक्त) (७) उपनीतरागत्वं (माखव कोशक्यादि ग्राम राग करी युक्तता) ए सात अतिशय तो शब्दकी अपेक्षा ज्ञाननी औ अन्य अतिशय जो है सो अर्थाश्रय जाननी. (८) महार्थता (धनमोटा जिसमे अनिवेय कहने योग्य अर्थ है) (९) अव्यादृतत्वं (पूर्वापर विरोध रहित) (१०) शिष्टत्वं (अनिमत सिद्धांतोकार्यता) एतावता अ निमत सिद्धांत जो कहना सोइ वक्ताके शिष्टपणेका सूचक है. (११) संशयानामसंनयः (जिनोके कहणेमें श्रोताकूं संशय नहीं होता) (१२) निराकृतान्योत्तरत्वं (जिनोके कथनमें कोइवी रूपण नहीं नतो श्रोताकूं शंका उत्पन्न होवे न नगवान इसरीवार उत्तर दें) (१३) हृदयगमता (हृदय प्रासृत्य) हृदयमें ग्रहणे योग्य (१४) मिथःसाकांक्षता (परस्पर आपसमें

अर्थ (१) दान देणेमें अंतराय ए प्रथम दोष (२) लाजगत अंतराय (३) वीर्यगत अंतराय (४) जो एक वेरी जोगीये सो जोग पुष्पमाला दि तजतो अंतराय सो जोगांतराय (५) बार बार जोगणेमे आवे ख्यादि घरादि कंकण कुंडलादि तजतांतराय सो उपजोगांतराय (६) हास्य (हसना) (७) पदार्थोंके उपरि प्रीति (रति) (८) रतिते विपरीत सो अरति (९) जय सप्त प्रकारका (१०) जुगुप्सा (घृणा) मलीन व स्तुकूं देखकर नाक चढाणा (११) शोक (चित्तका वैधूर्यपणा) विकल पणा (१२) काम (मन्मथ) स्त्री पुरुष नपुंसक इन तीनोंका वेद विकार (१३) मिथ्यात्वं (दर्शनमोह) (१४) अज्ञानं (मूढपणा) (१५) निद्रा (सोनां) (१६) अविरति (प्रत्याख्यान रहित) (१७) राग (पूर्व सुख तिसके साधनेमे रुद्धिपणा) (१८) द्वेष (पूर्व दुःखांका स्मरण ओ पूर्व दुःखमे वा तिसके साधन विषय क्रोध) येह अछारह दूषण जिनमें नही सो अर्हत जगवंत परमेश्वरहै. इन अछारह दूषणमेंसे एकबी दूषण जि समे होगा सो कदेजी अर्हत जगवंत परमेश्वर नही हो सकता ॥ प्रथम पांच विघ्न जिसमे लग रहेहै सो परमेश्वर क्युं कर हो सकताहै ?

प्रश्न:—दानांतरायके नष्ट होनेसे क्या परमेश्वर दान देताहै ? अरु लाजांतरायके नष्ट होनेसे क्या लाज परमेश्वरका होताहै ? तथा वीर्यांतरायके नष्ट होनेसे क्या परमेश्वर सक्ति दिखलाता है ? तथा जोगांतरायके नष्ट होनेसे क्या परमेश्वर जोग करताहै ? उपजोगांतरायके नष्ट होनेसे एतावता क्य होनेसे क्या परमेश्वर उपजोग करतेहै ?

उत्तर.—पूर्वांत पांच विघ्नके क्रय होनेसे जगवतमें पूर्ण पांच शक्तियां प्रगट होतीयाहैं. जैसे निर्मल चक्रका पटलादिक बाधकोंके नष्ट होनेसे देखनेकी शक्ति प्रगट होतीहै. चाहे देखे चाहे नदेखे. परंतु शक्ति विद्यमानहै. तैसेही अर्हत जगवंतके पांच शक्तियां प्रगट होतीयाहैं. पीउे दा नादि चाहे करे चाहे नकरे. परंतु शक्ति विद्यमानहै. जो पांच शक्तियोंमें रहित होगा सो परमेश्वर कैसे होसकताहै ?

६ ठछा दूषण—“हमना” हास्य जो आताहै सो अपूर्व वस्तुके देखनेमें वा अपूर्व वस्तुके सुननेमें वा अपूर्व आश्चर्यके अनुभवके स्मरणमें इत्यादिक हास्यके निमित्तहै. ओ हास्यका मोहकमकी प्रकृतिरूप उपादान कारणहै

सो ए दोनोही कारण अहंत जगवंतमें नहींहैं. प्रथम निमित्तकारणका स जव कैसें होवे? अहंत जगवंत सर्वज्ञ सर्व दर्शीहै, उनके ज्ञानमें कोई अ पूर्व ऐसी वस्तु नहीं जिसके देखे सुने अनुजवे आश्चर्य होवे. इसते कोई जी हास्यका निमित्त कारण नहीं. ओ मोह कर्मतो अहंत जगवंतने स र्यथा दाय कत्याहै. सो उपादान कारण कयुंकर संजवे? इस हेतुसे अहंत में हास्यरूप छूषण नहीं. ओ जो हसनशीख होगा सो अवश्य असर्वज्ञ असर्वदर्शी ओ मोहकरी संयुक्त होगा सो परमेश्वर कैसें होवे ?

॥ सातमा छूषण—“रति”जिसकी प्रीति पदार्थों उपर होगी सो अवश्य सुंदर शब्द रूप गंध रस स्पर्श स्त्री आदिके उपर प्रीतिमान होगा. जो प्रीतिमान होगा सो अवश्य उस पदार्थकी लाखसावाला होगा. अरु जो लाखसावाला होगा सो अवश्य उस पदार्थकी अप्राप्तिसें दुःखी होगा सो अहंत परमेश्वर कैसें होसक्ताहै ?

७ आठमा छूषण—“अरति” जिसकी पदार्थों उपर अप्रीति होगी सोतो आपही अप्रीतिरूपीये दुःखकरी दुःखीयाहै, सो अहंत जगवंत कैसें होसके?

८ नवमा छूषण—“जय” सो जिसने आपणाही जय छूर नहीं कीया सो अहंत परमेश्वर कैसें होवे ?

१० दशमा छूषण—“जुगुप्साहै” सो मलीन वस्तुकूं देखके घृणा करणी (नाक चढाणी) सो परमेश्वरके ज्ञानमे सर्ववस्तुका जासन होताहै. जो परमेश्वरमें जुगुप्सा होवेतो बड़ा दुःख होवे इस कारणते जुगुप्सामान अहंत जगवंत कैसें होवे ?

११ इग्यारमा छूषण—“शोक” है. सो जो आपही शोकवाला है सो परमेश्वर नहीं ?

१२ बारवां छूषण—“कामहै” सो आपही जो विषयीहै स्त्रीयोके साथ जोग करतहै तिस विषयाजिखापीकूं कोन बुद्धिमान पुरुष परमेश्वर मानताहै ?

१३ तेरवां छूषण—“मिथ्यात्वहै” सो जो दर्शनमोह करी सितहै सो जगवंत नहीं.

१४ चौदवां छूषण—“अज्ञान है” सा जो आपही मूढहै सो अहंत जगवंत नहीं.

१५ पंदरवां छूषण—“निद्रा है” सो जो निद्रामे होता है सो निद्रामे कुछ नहीं जानता ओ अहंत जगवानतो सदा सर्वज्ञ है सो निद्रावान् कैसें होवे ?

१६ शेषवां दूषण—“अप्रत्याख्यान है” सो जो प्रत्याख्यान रहित है सो सर्वाजिघाषी है सो तृष्णावाला कैसे अर्हत जगवंत होसके?

१७-१८ सत्तरवां औ अष्टारवां ये दोनो दूषण—“राग अरु द्वेष” हैं सो राग द्वेषवान् मध्यस्थ नहीं होता. अरु जो रागी द्वेषी होता है तिसमें क्रोध मान मायाका संज्ञा है. जगवान् तो वीतराग, सम शत्रु मित्र, सर्वजीवो पर समबुद्धि, न किसीकूं दुःखी अरु न किसीकूं सुखी करे, जे कर दुःखी सुखी करेतो वीतराग करुणा समुद्र कदेश न होसका इस कारणें रागद्वेषवाला अर्हत जगवंत परमेश्वर नहीं. ए पूर्वोक्त अष्टारह दूषण रहित अर्हत जगवंत परमेश्वरहैं, अपर कोइ परमेश्वर नहीं.

अथ अर्हत्के नाम दो श्लोकों करि लिखतेहैं—अर्हन् जिनः पारगत त्रिकालवित्. क्षीणाष्टकर्मा परमेष्ठपथीश्वरः ॥ शंभुः स्वयंभूर्जगवान् जगत्प्रभु-स्तीर्थकरस्तीर्थकरो जिनेश्वरः ॥ १ ॥ त्याग्राद्यजयदसर्वाः, सर्वज्ञः सर्वदर्शिकेवलिनो । देवाधिदेवः बोधिदो, पुरुषोत्तमो वीतरागाऽस्यः ॥२॥ इन दोनो श्लोकोंका अर्थः—(१) चौंतीश अतीशय करी सबसैं अधिक होने सैं सुरेंद्र आदिकोंकी करी हुइ अष्ट महा प्रातिहार्या जन्म स्नात्रादि पूजा के जो योग्य हैं सो अर्हन् अथवा ज्ञानावरणीयादि आठ कर्मरूप बैरी हननेसैं अर्हन् अथवा वर्धमान कर्म रजके हननेसे अर्हन् अथवा नहीं हैं कोइ पदार्थ ठाना जिनोके ज्ञानमें सो अर्हन् तथा नामांतरमें अरुहन् न ही उत्पन्न होना जवरूपी अंकुर जिनोके सो अरुहन् ए प्रथम नाम. (२) जीते हैं राग द्वेष मोहादि अष्टादश दूषण जिसने सो जिन. ए द्वितीय नाम. (३) संसारके अथवा प्रयोजन जातके (प्रयोजन मात्रके) पारपर्यंत ठेहठेको गत (प्राप्त) हुया है एतावता संसारमें जिनका कोइ प्रयोजन नहीं सो पारगतः ए तृतीय नाम. (४) भूत, जन्मिष्य, वर्तमान, इन तीनों कालोंकूं जो जाणे सो त्रिकालवित्. ए चतुर्थ नाम. (५) क्षीणानि कृत हूये हैं आठ ज्ञानावरणीय आदि कर्म जिसके सो क्षीणाष्टकर्मा ए पंचम नाम. (६) परमेश्वरपदे तिष्ठतीति परमेष्ठी परम उत्कृष्ट पदमे जो रहे हैं सो परमेष्ठि ए षष्ठ नाम. (७) जगतका ईश्वर (स्वामी) सो अधीश्वर ए सप्तम नाम. (८) शं शास्त्रतं सुखं तिसमे जो होवे सो शंभु ए अष्टम नाम. (९) स्वयं आपही आपणी आत्मा करके तथा जव्यत्वादि सामग्रीके प

रिपक होणेसे परंतु परके उपदेशसे नहीं यह तिसही जवकी अपेक्षाका कयन् हे ऐसा जो होवे सो खयंजू ए नवम नाम. (१०) जग शब्दके खोद अर्थ हे तिनमेंसे अर्क औ योनि ए दो अर्थ वर्जके शेष बारां अर्थ ग्रहण करणा तिसका नाम कहते हे. (१) ज्ञानवंत, (२) माहात्म्यवंत, (३) शास्वत वेरीयांके वेर उपशमनेतें यशस्वि, (४) राज्य लक्ष्मीके त्यागणे से वेराग्यवंत, (५) मुक्तिवंत, (६) रूपवंत, (७) अनंतवल होणेसे वीर्यवंत, (८) तप करनेमें उत्साहवान होनेसे प्रयत्नवंत, (९) इष्टा घंत सो संसार सेती जीवांका उच्चार करणेंमें इष्टावंत, (१०) चौतीश अतिशयरूप लक्ष्मी करी गिराजमान होणेसे श्रीमंत, (११) धर्मवंत (१२) अनेक देव कोटि करी सेव्यमान होनेसे ऐश्वर्यवंत ए बारां अर्थ करी संयुक्त सो जगवान् ए दशम नाम. (११) जगत प्रजु ए एकादशम नाम. (१२) तरीये संसार समुद्र जिस करेके सो तीर्थ प्रवचनका आधार चार प्रकारका संघ अथवा प्रथम गणधर तिसके करणेका हे शील जिसका सो तीर्थंकर, ए द्वादशम नाम. (१३) रागादिकोंके जीतनेहारे जिन (किवली) तिनका जो ईश्वर सो जिनेश्वर ए त्रयोदशम नाम. (१४) स्यात् एहजो अव्यय हे सो अनेकांतका वाचक हे वस्तुकों अनेकांतपणे अनेक स्वरूपे कहणेका शील हे जिनका सो स्याद्वादि ए चतुर्दशम नाम. (१५) अजयद जय जो हे सो सात प्रकारका हे (१) मनुष्यादिकों मनुष्यादि स्वजातीयसे अर्थात् एक मनुष्यकूं अन्य मनुष्य सेति जो जय होवे सो इहलोक जय, (२) विजातीय तिर्यंच देवतादिक सेती जो जय होवे सो परलोक जय, (३) आदान जय सो आदान कहियें धन तिस धनके कारणे चोरादिक सेती जो जय होवे सो आदान जय, (४) बाहिरसे निमित्त बिना घरादिकों विपे वेठेकूं रात्रि आदिक विपे जो जय होवे सो अकस्मात् जय, (५) आजीविका जय सो में नि ऊनहुं कैसे दुर्निहादिकमें थपने थापकूं धारण करंगा ऐसा जो जय सो आजीविका जय, (६) मरणसे जो जय सो मरणनय एह प्रसिद्ध हे. (७) अन्धाचा जय अयशका जय जो में गेसे करंगा तो मेरा बडा थ पडा होगा अयशके जयमें प्रवर्त्ते नहीं सो अन्धाचा जय, ए सात प्रकार का जय इत्तका जो विपही सो अजय सो क्या वस्तु हे विशिष्ट आत्मा

का स्वास्थ्यपणा निश्चयेस धर्मनिबंधन जूमिकाजूत तिस गुणके प्रकर्षें
 अचिंत्य शक्ति युक्त होणेंसें सर्वथा परहितकारी होणेंसें ऐसा अजय
 देवे सो अजयद ए पंचदशम नाम. (१६) सार्वः सर्व प्राणीयांके
 तांइ जो हित सो सार्व ए पौनशम नाम. (१७) सर्वज्ञ सर्व जो जाणे सो
 सर्वज्ञ. ए सप्तदशम नाम. (१८) सर्व जो देखे सो सर्वदर्शि, ए अष्टादशम
 नाम. (१९) सर्वथा प्रकारें कर्मावरणके दूर होनेसें, जो चेतन स्वरूप प्रगट
 जया "केवल" केवलज्ञान है इसके सो केवली. ए एकोनविंसतिम नाम. (२०)
 देवताओंका जो अधिपति सो देवो देवाधिदेव ए विंसतिम नाम. (२१)
 बोधि: जिनप्रणीत धर्मकी प्राप्ति तिसकुं जो देवे सो बोधिद ए एकविंसति
 म नाम. (२२) पुरुषा मांहे उत्तम सहज तथा जव्यत्वादि जव करी
 श्रेष्ठ सो पुरुषोत्तम ए द्वाविंसतिम नाम. (२३) वीतो गतो रागो अस्मा
 त् इति वीतराग ए त्रयोविंसतिम नाम. (२४) आस हितोपदेशक होणेंसें
 आस कहीयें ए चतुर्विंसतिम नाम. इत्यादिक हजारो नाम परमेश्वरके है
 ए पूर्वोक्त सर्व परमेश्वरका स्वरूप श्रीहेमचंद्राचार्यकृत ग्रंथोंके अनुसार
 तथा समवायांग राजप्रश्रीय प्रमुख शास्त्रोंके अनुसार लिखे है. अन्यथा
 जिनसहस्रनाम ग्रंथमें तो एकहजार आठ नाम अन्वयार्थ सहित कहे है,
 सर्व नाम व्युत्पत्ति सहित अर्हत परमेश्वरके है, सो अर्हत पद तो एक
 अनादि अनंत है, परंतु इसपदके धारक जीव अनंत अतीत कालमें होग
 ये है. क्युंके एकैक उत्सर्पिणि अवसर्पिणि कालमें जारत वर्षमें चौबीश
 चौबीश जीव अर्हत पदकुं धारकर पीठे सिद्धपदकुं प्राप्त हो गये है.

इस वर्तमान अवसर्पिणिसें पिछलि उत्सर्पिणीमें जो जीव अर्हत
 पदके धारक हुये है. तिनके नाम (१) केवलज्ञानी (२) नीर्वाणी
 (३) सागर (४) महायश (५) विमलनाथ (६) सर्वानुजृति (७)
 श्रीधर (८) दत्त (९) दामोदर (१०) सुतेज (११) स्वामि (१२)
 मुनिसुव्रत (१३) सुमति (१४) शिवगति (१५) अस्तांग (१६) ने
 मीश्वर (१७) अनिल (१८) यशोधर (१९) कृतार्थ (२०) जिनेश्वर
 (२१) शुद्धमति (२२) शिवकर (२३) स्पंदन (२४) संप्रति ॥

अथ वर्तमान चोवीश अर्हंतका नाम. (१) श्रीरुषजनाथ (२) श्री अजितनाथ (३) श्री संजवनाथ (४) श्री अजिनंदननाथ (५) श्री सुमति नाथ (६) श्री पद्मप्रज्ञ (७) श्री सुपार्श्वनाथ (८) श्री चंद्रप्रज्ञ (९) श्री सु विधिनाथ अथपर नाम पुष्पदंत (१०) श्री शीतलनाथ (११) श्री श्रेयांसनाथ (१२) श्री वामुपूज्यस्वामि (१३) श्री विमलनाथ (१४) श्री अनंतनाथ (१५) श्री धर्मनाथ (१६) श्री शांतिनाथ (१७) श्री कुंथुनाथ (१८) श्री अरनाथ (१९) श्री मल्लिनाथ (२०) श्री मुनिसुव्रतस्वामि (२१) श्री नमिनाथ (२२) श्री अरिष्टनेमि (२३) श्री पार्श्वनाथ (२४) श्री महावीर.

अथ चोवीश तीर्थंकर जगवंतोके जो नामहैं, सो नाम किस किस का रणसैं हुये हैं, तिन नामोका एकतो सामान्यार्थहैं, जो सब तीर्थंकारोंमें पावें. थोर दूजा विशेषार्थहैं जो एकही तीर्थंकरके नामका निमित्त हैं सो लिखतेहैं.

“रूपति गवति परमपदमिति रूपजः” जावेजो परम पदकूं सो रूपज एह अर्थ सब तीर्थंकारोंमें व्यापक हैं. अथ विशेषार्थ “उर्वारूपजसांठनमजूर गवतो जनन्या चतुर्दशानां म्वप्नानामादौ गृपनो दृष्टः तेन रूपजः” जगवानकी दोनो सापसोमें बैसका सांठनथा, अथवा जगवंतकी माता मरुदेवीने चौबह स्वप्नकी थादिमें बैसका स्वप्नदेखाया, तिसकारणसैंति रूपज ऐसा नामदीया. ऐसैंही सब तीर्थंकारोका प्रथम सामान्यार्थ थोर दूसरा विशेषार्थ जानना.

२ “ परीसद्वादिनिर्नं जिन इत्यजितः” परीसहें चावीश आदि शब्दसे चार कषाय, आठकर्म, चार प्रकारका उपसर्ग, इनो करके जो न जीत्या गया सो अजित तथा “ यद्वा गर्तस्थे ऽस्मिन् शुते राज्ञा जननी न जिते त्यजितः” जब जगवान गर्तमें थे, तब जूथा खेसता राजा राणीकूं न जीत सका. इस हेतुसे अजित नाम दीया ॥ २ ॥

३ “ संसृज्यं गवत्यस्मिन् नुते संजवः ” सं नाम मुखका हैं, सुगहोवें जिसकी म्नुनिके कस्यां सो संजव “ यद्वा गर्तगत्यस्मिन् न्यधिकसस्य सं गवान् संजवोपि ” अथवा जगवान् जब गर्तमें थे तब पृथ्वीमें अधिक पान्पका संजव होनेमें संजव ॥ ३ ॥

४ “ अजिनंदने देवेन्द्रादितिरत्यजिनंदनः ” जिनकी म्नुनि करीये हैं देवेन्द्रा

दिकों करी, सो ऽजिनंदन “यद्यागर्जात्प्रजृत्वेवाजीक्षणं शक्रेणा ऽजिनंदनादजिनंदनः” अथवा जिसदिन जगवान गर्जमें आये उसदिनसे लैंके शक्रेडके बार बार स्तुति करनेसे अजिनंदन ॥ ४ ॥

५ “शोचनामतिरस्येति सुमतिः” जखिहैं बुद्धि इसके सो सुमति “यद्या गर्जस्थे जनन्याःसुनिश्चितामतिरजृदिति सुमतिः” अथवा जगवानके गर्जमें आये माताकी बहुत निर्मल निश्चित बुद्धि दुष्ट इस हेतुसे सुमति नाम ॥५॥

६ “निष्पंकतासंगीकृत्य पद्मस्येवप्रजाऽस्यपद्मप्रजः” विषय तृष्णा कर्म कलंक रूप कीचन करी रहित पद्मकी तरे प्रजाहैं इनकी, सो पद्मप्रज “यद्या पद्मशयनदोहदोमातुदेवतयापूरित इति पद्मवर्षश्चजगवानितिपद्मप्रजः” अथवा पद्मशयन दोहदो दोहला माताकूं उत्पन्नहुया सो देवताने पूरण कीया इस कारणसे पद्मप्रज अरु पद्म कमल सरीखा जगवानके शरीरका वर्णथा इस हेतुसेजी पद्मप्रज ॥ ६ ॥

७ “शोचनौपाश्ववित्युपाश्वः” शोचनिक हैं दोनो पासे इसके, सो सुपाश्व तथा “यद्या गर्जस्थेजगवतिजनन्यपिसुपाश्वजृदिति सुपाश्वः” गर्जमें स्थितहूयां जगवानके माताके दोनो पासे बहुत सुंदर होगये, इस कारणसे सुपाश्व ॥ ७ ॥

८ “चंद्रस्येव प्रजाज्योत्स्नासौम्यलेख्याविशेषाऽस्यचंद्रप्रजः” चंद्रमाकी तरें हैं सौम्य लेख्या इसकी सो चंद्रप्रज तथा “गर्जस्थे देव्याश्चंद्रपान दोहदोऽजृत् इति चंद्रप्रजः” गर्जमें जद जगवानथे तद माताकूं चंद्रमा पीनेका दोहद उत्पन्न हुआथा, इस कारणसे चंद्रप्रज ॥ ८ ॥

९ “शोचनो विधिविधानमस्यसुविधिः” जली हे विधि इसकी सो सुविधि तथा “यद्या गर्जस्थेजगवति जनन्यप्येवमिति सुविधिः” गर्जमें जगवानके रह एसे, माताजि शोचनिक विधि वाली होती जइ, इस कारणसे सुविधि ॥९॥

१० “सकलसत्त्वसंतापहरणात्शीतलः” सर्व जीवोंका संताप हरणसे, शीतल तथा “गर्जस्थे जगवति पितुःपूर्वात्पद्माचिकित्स्यपित्तदाहोजननीकरस्य शांतिपशांत इति शीतलः” जगवतके गर्जमें आनेसे, जगवतके पिताके शरीरमें पित्तदाह रोगथा, वैद्योसे शांति नहुइ जगवतकी माताके हाथका स्पर्श होताही राजेका शरीर शीतल हो गया इस कारणे शीतल ॥ १० ॥

११ “श्रेयान्समस्तजुवनस्यैवहितकरः प्राकृतशेव्याठांदसत्वाच्चश्रेयांसश्च
त्युच्यते” सर्व जगतको जो हित करे सो श्रेयांस तथा “यद्वा गर्जस्ये अस्मिन्
केनापिनाक्रांतं पूर्वादेवताधिष्ठितशय्याजनन्याथाक्रांततेतिश्रेयोजातमिति
श्रेयांसः” जगवान् जब गर्जमें थे तदा जगवतके पिताके घरमें देवताधिष्ठित
शय्याथी उस उपरि जो बैठताथा उसहीकू असमाधि उत्पन्न होतीथी, जग
वतकी माताकूं उसी शय्या उपरि सोनेका दोहद उत्पन्न हुआ, माताउसी
शय्या उपरि सूती देवता शांतिनया उपज्जव न कख्या इसहेतुसं श्रेयांस ११

१२ “नम्ररसूनांपूज्यः वसुपूज्यः वसवो देवा” वसूओंकर जो पूज्यनीक होवे
सो वसुपूज्यः वसु कहियें देवता “वसुपूज्यनृपतेरपत्यं वासुपूज्यः” वसुपूज्य
नामा राजका जो पुत्र सो वासुपूज्य “वासवो देवराया तस्स गप्पगयस्स अ
निरुक्कणं अनिरुक्कणं जणणीए पूयंकरेति तेणवासुपूयोति अहवा वसूणि
रपपाणि वासवो वेसमणो सो गप्पगए अनिरुक्कणं अनिरुक्कणं तं रायकुलं
रपणेहिं पूरेपनि वासुपूयोति ॥ अस्यार्थः—वासव नाम इंद्रका है सो जग
वान् जब गर्जमें थाये तदा बार बार इंद्रने जगवतकी माताकूं पूज्या, इस
कारणमें वासुपूज्य अथवा वसु कहिये रतन अरुवासव नाम हैं वैश्रमण
का सो वैश्रमण यदा जगवान् गर्जमें थे तदा बार बार तिस राजाके कु
सकूं रत्नाकरी पूरण करता गया इस हेतुमें वासुपूज्य ॥ १२ ॥

१३ “विगतोमलोऽग्न्यविमलः विमलज्ञानाद्विद्योगाद्वाविमलः” झुरहुआ
है अष्ट कर्मरूप मल जिमका सो विमल अथवा निर्मल ज्ञानादि योग
सं विमल “यद्वागर्तम्येमानुर्मनिन्ननुश्चविमलाजातेतिविमलः” तथा जग
वान् यदा गर्जमें थे, तदा मानाकी बुद्धि अरु शरीर ए दोनुं निर्मल हो
गये इस कारण “विमल” नाम जानना ॥ १३ ॥

१४ “नविद्यतेपुनानामनोऽग्न्यअननः अननकमांदाजयाह्वानंतः अनंतो
निवाह्वानादीनिदम्येत्यननः” नहीं जाणिये है गुणका अंन जिमका सो अ
नंत, अथवा अनंत कर्मांम जीनेमें अनंत, अथवा अनंत है ज्ञानादि
गुण जिमके सो अनंत “ग्यणविचिन्तं ग्यण, अविणं अण्णं अनिमदं प
मत्तं ॥ दानं सुत्तिं जयणीय, दिठं तउ अणंनोति” रख विचित्र रखजनि

त अति मोटी दाम माखा स्वप्नमें माताने देखी तिस कारणे अनंत ॥ १४ ॥

१५ “दुर्गतौ प्रततं सत्त्वं संघातं धारयतीति धर्मः” दुर्गतिमें पमतां जीवांके समूहकूं जो धारण करे सो धर्म तथा “गर्जस्थे जननीदानादि धर्मपराजातेति धर्मः” परमेश्वरके गर्जमे आवणैसे माता दानादिक धर्ममें तत्पर जयी इस कारणे धर्म नाम ॥ १५ ॥

१६ “शांतियोगात्तदात्मकत्वात्तत्कर्तृकत्वाच्चायं शांतिः” शांतिके योगसें वा शांति रूप होणैसें वा शांति करणैसें शांति तथा “गर्जस्थे पूर्वोत्पन्नाशि वंशांतरिभूदिति शांतिः” तथा गर्जमें जगवानके उत्पन्न होणैसें पूर्व जो अशिव उत्पन्नथा, सो शांति होगया इस कारणे शांति नाम ॥ १६ ॥

१७ “कुः पृथ्वी तस्यां स्थितवानिति कुंयुः पृषोदरादित्वात्” कु नाम पृथ्वी का है तिस पृथ्वीमें जो स्थित होता जया सो कुंयु तथा “गर्जस्थे जग वति जननी रत्नानां कुंयुराशिदृष्टवतीति कुंयुः” जगवतके गर्जमें स्थित हूया माता रत्नमयी कुंयुओंकी राशि देखती जइ इस हेतुसें कुंयु ॥ १७ ॥

१८ “सर्वोत्तममहासत्त्वः कुञ्जये उपजायते ॥ तस्याजि वृद्धाय वृद्धे, रत्नारवर उदाहृतः ॥ १ ॥ इति वचनादरः” सर्वसे उत्तम महासात्विक कुञ्जमें जो उत्पन्न होवे, और तिस कुञ्जकी वृद्धिके ताइ है तिसकुं वृद्ध पुरुष, प्रधान अर कहते हैं तथा “गर्जस्थे जगवति जनन्यास्वप्ने सर्वरत्नमयोऽरादृष्ट इत्यपरः” तथा जगवतके गर्जमें स्थित होया माताने स्वप्नमें सर्व रत्नमयी अर देखा इस कारणसे अर इति नाम ॥ १८ ॥

१९ “परीक्षादिमद्भजयनान्निरुक्तान्मद्भिः” परीक्षादि मद्भोके जीतनेसें मद्भिः तथा “गर्जस्थे जगवति मातुः सुरजि कुनुमनाद्यशयनीयदोद्दोदेवत यापूरित इति मद्भिः” तथा जगवतके गर्जमें स्थित हूया जगवतकी माताकुं सुगंधवासे फूलोंकी माझाकी सय्या उपरि सोनेका दोद्द उत्पन्न जया, सो देवताने पूरण कीया इस कारणसें मद्भि ॥ १९ ॥

२० “मन्यते जगन्त्रिकासावस्थानिति मुनिः शोचनान्निव्रतान्यन्ये निमुव्रतः मुनिश्चात्तो मुव्रतश्च मुनिमुव्रतः” मानेजो जगतकूं तीनोंही काजमें सो “मुनि” जसे है व्रत जिसके सो मुव्रत ए दोनो पद एकठे करणैसें मुनिमुव्रत तथा

“गर्जस्थेजननीमुनिवत्सुव्रताजातेतिमुनिसुव्रतः” तथा जगवतके गर्जमें स्थित हूयां माता मुनिकी तरे जले व्रत वाली होती जइ इस हेतुसें मुनिसुव्रत २०

२१ “परीसहोपसर्गादीनां नामनातुनमेस्तुवेतिविकल्पेनोपांत्यस्येकाराजा वपक्वेनमिः” परीसह उपसर्गाकूं नमावणेसें नमि तथा “यद्वा गर्जस्थे जगवति परचक्रनृपेरपिप्रणतिः कृतेतिनमिः” जगवतके गर्जमें स्थित हो या वैरी राजायोंनेजी नमस्कार करी इस कारणसें नमि ॥ २१ ॥

२२ “धर्मचक्रस्यनेमिवज्रेमिः” धर्मचक्रकी धारावत् सो नेमि तथा “ग प्रगपतस्तस्मायाए, रिष्ठरयणामजमहतिमहाजल नेमि ॥ उप्पयमाणो सु मिणे, दिष्ठोत्ति तेणसेरिष्ठनेमिति नामंकयंति” तथा जगवतके गर्जगत हूया माताने अरिष्ट रत्नमय बड़ा मोटा नेमी (चक्रधारा) आकाशमें उत्पन्न मान खप्तमें देख्या तिस कारणे अरिष्ट नेमि नाम कहा ॥ २२ ॥

२३ “स्पृशतिज्ञानेनसर्वज्ञावानितिपार्श्वः” स्पृशें जाणे सर्व पदार्थोंकूं ज्ञान करी सो पार्श्व तथा “गर्जस्थेजनन्यानिशिशयनीयस्थयाऽधकारेसर्प्यां दृष्टइतिगर्जानुजावोयमितिपश्यतीतिनिरुक्तात्पार्श्वः पार्श्वोअस्यवैयावृत्यक रोयक्षस्तस्यनाथः पार्श्वनाथः जीमोजीमसेनइतिन्यायाद्वापार्श्वः” तथा जगवतके गर्जमें स्थित होणेसे माता निशि रात्रिमें शय्या उपर बैठीने अंधेरेमे जाता हूया सर्प देख्या माता पिताने विचार्या जो ए गर्जका प्रजाव है देखे सो पार्श्वः अथवा पार्श्व नामा वैयावृत्त करणद्वारा देवता तिसका जो नाथ सो पार्श्वनाथ ॥ २३ ॥

२४ “विशेषेणैरयतिप्रेरयतिकर्माणीतिवीरः” विशेष करके प्रेरेजो कर्मों कूं सो वीर तथा बड़े उग्र परीसह उपसर्ग सहणेसें देवताने नाम कख्या श्रमण जगवान् महावीर तथा माता पिताका नाम दीया वर्द्धमान ॥२४॥

इस प्रकार यह अवसर्पिणीमें जो तीर्थंकर हो गये तिनोके नाम अरुकिस् हेतुसें यह नाम रखे गये सो समाप्त हूये.

यह चौबीश तीर्थंकर हैं इनमेंसुं चाबीश अर्हंततो इदवाकु कुलमें उत्पन्न हूये हैं एतावता रूपन देवकी संतानमें हैं, इदवाकु कुल रूपजदेवही से प्रसिद्ध हैं, यह स्वरूप आगे चलकर लिखेंगे. और एक तो बीशमे मुनि

सुव्रत स्वामी तथा दूसरा बावीशमें श्रीअरिष्टनेमि जगवान्, ए दोनो तीर्थ कर हरिवंशमें उत्पन्न हूये थे तथा इन चोवीसों तीर्थकरोंमें ठछा पद्मप्रज और वारहवा वासुपूज्य ए दोनो तीर्थकर रक्तवर्ण शरीरवाले हूये हैं. तथा आठवां चंद्रप्रज और नवमे सुविधिनाथ (पुष्पदंत) ए दोनो तीर्थ कर, स्वेत वर्ण स्फटिकवत् उज्ज्वल शरीरवाले हूये हैं, तथा उन्नीसवां म ह्विनाथ और तेइसवां पार्श्वनाथ ए दोनो तीर्थकर हरित वर्ण शरीर वा ले हूये हैं, तथा बीसवां मुनिसुव्रत स्वामी और बावीसवां अरिष्टनेमि ज गवान् ए दोनो तीर्थकर स्यामवर्ण अलसीके फूलवत् रंगवाले शरीरके धा रक हूये हैं, अरु शेष शोलां तीर्थकर सुवर्णवर्ण शरीरवाले हूये हैं.

अथ चोवीश तीर्थकरोंके चिह्न उनके दक्षिण पगोंमें रहे हूये वा उ नकी ध्वजामे ए चिन्ह होते हैं अवन्ती इनकी प्रतिमाके आसनमें ए चिन्ह होते हैं, सो कहैते हैं. (१) रूपनदेवजीके बैलका चिन्ह. (२) अजितनाथजीके हाथीका चिन्ह. (३) संजवनाथजीके घोड़ेका चिन्ह. (४) अजिनंदनजीके बंदरका चिन्ह. (५) सुमति नाथजीके क्रौंच पक्षीका चिन्ह. (६) पद्मप्रजजीके कमलका चिन्ह. (७) सुपार्श्वनाथजीके सा थीयेका चिन्ह. (८) चंद्रप्रजजीके चंद्रमाका चिन्ह. (९) सुविधिनाथ (पुष्पदंतजी) के मकरका चिन्ह. (१०) शीतलनाथजीके श्रीवत्सका चिन्ह. (११) श्रेयांसनाथजीके गेंडेका चिन्ह. (१२) श्रीवासुपूज्यजीके महिषेका चिन्ह. (१३) श्रीविमलनाथजीके सूअरका चिन्ह. (१४) अनंत नाथजीके बाजका चिन्ह. (१५) धर्मनाथजीके वज्रका चिन्ह. (१६) शांति नाथजीके हरिणका चिन्ह. (१७) कुंथुनाथजीके बकरेका चिन्ह. (१८) अरनाथजीके नंदावर्तका चिन्ह. (१९) श्रीमह्विनाथजीके कुंजका चिन्ह. (२०) मुनिसुव्रत स्वामीजीके कबुका चिन्ह. (२१) नमी नाथजीके नीले कमलका चिन्ह. (२२) अरिष्टनेमिजीके शंखका चिन्ह. (२३) श्रीपार्श्वनाथजीके सर्पका चिन्ह. (२४) श्रीमहावीरजीके सिंह का चिन्ह. यह चिन्ह चोवीश तीर्थकरोंके पगोंमें होते हैं.

अथ चोवीश तीर्थकरोंके पितायोंके नाम तथा मातायोंके नाम कहतैहैं.
(१) नाजिनह्यत्यन्यायिनोहकारादिजिर्नीतिजिरितिनाजिरंत्यकुलकरः. (२)

जिताःशत्रवोऽनेनजीतशत्रुः (जीतेहैं शत्रु जिसने सो जितशत्रु) (३)
जिताथरयोऽनेनजितारिः (जीतेहैं बेरी जिसने सो जितारि, (४) संवृणो
तांड्रियाणिसंवरः (वस करीया है इंड्रिया सो संवर, (५) सकलसत्त्वसंता
पहरणात् मेघश्चमेघः (सकल जीवांका संताप हरणसें मेघकी तरे मेघ,
(६) धरतिधात्रीमितिधरः (धारण करे जो पृथ्वीकुं सो धर, (७) प्रति
ति धर्मकार्यं प्रतिष्ठः (धर्मके कार्य कार्यमें जो रहे सो प्रतिष्ठ, (८) मह
तीपूज्यासेनाऽस्यमहासेनः (मोटी पूजने योग्य है सेना जिसकी सो महासे
न, सचासौनरेश्वरश्च महासेननरेश्वरः, (९) शोचनाप्रीयाऽस्यसुप्रीवः (जहाँ
है प्रीया जिसकी सो सुप्रीव, (१०) दृढोरयोस्य दृढरथः (दृढ बलवान है
रथ जिसका सो दृढरथ, (११) विवेष्टि वल्लेः पृथिवीविष्णुः (विवेष्टन कीया
है पृथ्वीकुं सेना करी जिसने सो विष्णु, (१२) अन्धेराजजिर्घमुजिर्घनः
पूज्यते इतिवसुपूज्यः सचासौराट्ट्य वसुपूज्यराट् (दूसरे राजाजने धन
करी पूज्या सो वसुपूज्य राजा, (१३) कृतवर्मानेन कृतवर्मा (कथो है
मनाह जिसने सो कृतवर्मा, (१४) सिंद्ध्यत्पराक्रमवतीसेनास्य सिंद्ध्यसे
नः (सिंद्ध्यतीतरे है पराक्रमवाली सेना जिसकी सो सिंद्ध्यसेन, (१५) जा
तिविषगणैजानुः) सोने है जो अर्थ काम अथ धर्म करके सो जानु, (१६)
विश्वव्यापिनीमेनाऽस्यविश्वसेनः (जगतमें व्यापनेवाली सेना है जिसके
सो विश्वसेन सचासौराट्ट्यविश्वसेनराट् (१७) तेजसासूरश्चसूरः (तेज
करके सूर्यवत् सो सूर, (१८) शोतनंदशनमस्यमुदर्शनः (जला है दर्शन
जिमका सो मुदर्शन, (१९) गुणपयसामाधारजूनत्वात् कुंजश्च कुंजः (गु
णरूप पापीका आधारजून होणसे कुंजकी तरे कुंज, (२०) शोतनानि
मित्राणिअस्यसुमित्रः (नखे है मित्र जिमके सो सुमित्र, (२१) विजयते
शत्रुनिनिविजयः (जीते है शत्रुओंकुं सो विजय, (२२) गांतीयेण समुद्रस्या
दिविजेताममुद्रविजयः (गांतीयेना करीममुद्रकुं जीतनेवाला समुद्रविजय,
(२३) अश्वप्रयानानेनास्यअश्वमेनः (घोनों करी प्रधान है सेना जिसकी
सो अश्वमेन, (२४) सिद्धार्थाःपुण्यायां अस्य सिद्धार्थः ॥ ए कृत्यत आ
दि चोदीम मीयंकोके कम करके चोदीम पिनायोंके नाम कहे.

अथ चोवीश तीर्थकरोकी माताओंके नाम लिखते हैं. (१) मरुद्भिर्दी
व्यतेस्तूयतेमरुदेवा पृषोदरादित्वात् तलोपःमरुदेव्यपि स्यात् (देवतां करी
जो स्तवीये सा मरुदेवा मरुदेवी एसाजी नाम है, (२) विजयतेविजया
(जयवंतविजया, (३) सहअनेनजितारिस्वामिनावर्त्ततेसेना (जितारिराजा
के साथ जो वर्त्त सा सेना, (४) सिद्धोऽर्थोऽस्याःसिद्धार्थाः (सिद्धहूया
हैं अर्थ जिसका सा सिद्धार्थाः (५) मंगलहेतुत्वात्मंगला (मंगलके हे
तुज्जत होनेसे मंगला, (६) शोचनासीमामर्यादाऽस्याः सुसीमा (जली है
मर्यादा जिसकी सा सुसीमा, (७) स्थेन्नापृथ्वीवपृथ्वी (स्थिर है पृथ्वी
की तरे पृथ्वी, (८) लक्ष्मीशोभाऽस्त्यस्याः लक्ष्मणा (लक्ष्मीकीतरें शो
भा है जिसकी सा लक्ष्मणा, (९) धर्मकृत्येपुरमतेरामा (धर्मकृत्यमें जो
रमे सा रामा, (१०) नन्दतिसुपात्रेणनंदा (वृद्धिवान् दोवे जो सुपात्र
दान देणसे सा नंदा, (११) विवेष्टिगुणैर्जगदिति विष्णुः (लपेटे जो गु
ण करी जगत् सा विष्णु, (१२) जयतिसतीत्वेनजया (उत्कृष्टपणेत्रत्ते है
सती पणे करी सा जया, (१३) श्यामवर्णत्वात्श्यामा (श्यामवर्ण
होनेसे श्यामा, (१४) शोचनंयशोऽस्याःसुयशा (जला है यश जिसका
सा सुयशा, (१५) शोचनंव्रतमस्याःसुव्रतापतिव्रतत्वात् (नखा है व्रत
जिसके सा सुव्रता, (पतिव्रता होनेसे सुव्रता, (१६) नचिरयतिधर्मका
वैष्णवचिराः (नहीं चिर करती धर्मकायों विपे सा अचिरा. (१७) श्रीरि
पथ्रीदेवीवदेवीप्रजाऽस्त्यस्याःश्री (लक्ष्मीकी तरें प्रजा है जिसकी सा श्री,
(१८) देवीकी तरे प्रजा है जिसकी सा देवी. (१९) प्रजावतीप्रजावती, (२०)
पद्मपद्मावती (पद्मकी तरे पद्मावती. (२१) धर्मवीजमितिब्रा. (२२)
शिपहेतुत्वात्शिवा (निरुपद्रव होनेके हेतुसे शिवा. (२३) मनोऽहत्वा
हाना पापकार्येषुप्रतिकृत्त्याहाना (मनोऽह होनेसे वाना) अथवा पापकार्यो
विपे प्रतिकूल होनेसे वाना. (२४) त्रिणिश्चानदर्शनचारित्रिणिश्चानि
प्रामोतीतिप्रिया (तीन ज्ञान दर्शन औ चारित्रिक प्राति होने ना प्रिया.
इत प्रान करके रूपनादि चोवीश तीर्थकरोके माताओंका नाम है ॥ अथ
वा सुगमताके कारण चोवीश तीर्थकरोके साथ पावन दोडका संबन्ध है
जिसका नवरूप पंच देव जियते है. प्रथम पावन दोडका नाम जियते है.

वाचन बोलका नाम कहते हैं.

- | | |
|--------------------------------------|----------------------------------|
| १ श्रीतीर्थंकरका नाम. | २७ गणधरोंकी संख्या. |
| २ चवणतिथि. | २८ साधुओंकी संख्या. |
| ३ किस विमानसे आये. | २९ साधवीयोंकी संख्या. |
| ४ किस नगरीमें जन्म हुआ. | ३० वेक्रिय लब्धिवर्तोंकी संख्या. |
| ५ जन्म तिथि. | ३१ अवधि ज्ञानीयोंकी संख्या. |
| ६ पिताओंका नाम. | ३२ केवल ज्ञानीयोंकी संख्या. |
| ७ माताओंका नाम. | ३३ मनःपर्यवज्ञानीयोंकी संख्या. |
| ८ किस नक्षत्रमें जन्मे. | ३४ चौदह पूर्वधारियोंकी संख्या. |
| ९ जन्मराशि. | ३५ वादिओंकी संख्या. |
| १० छाठनका नाम. | ३६ श्रावकोंकी संख्या. |
| ११ शरीरके उद्य पणोका मान. | ३७ श्राविकायोंकी संख्या. |
| १२ आयुके वर्षोंका प्रमाण. | ३८ शासनके यक्षोंका नाम. |
| १३ शरीरका वर्ष. | ३९ शासनके यक्षणीयोंका नाम. |
| १४ पदवी. | ४० प्रथम गणधरका नाम. |
| १५ बियाहे के कुमारे? | ४१ प्रथम आर्याका नाम. |
| १६ कितने जनोके साथ दीक्षा लीई. | ४२ मोक्ष होनेका स्थान. |
| १७ दीक्षा कोनसी नगरीमें लीई. | ४३ मोक्ष पोहोचनेकी तिथि. |
| १८ दीक्षा दिने कितना तप. | ४४ मोक्ष दिने तप. |
| १९ प्रथम पारण क्या आहार मिला | ४५ मोक्ष जानेके आसन. |
| २० प्रथम पारणोका घर. | ४६ परस्पर अंतरका मान. |
| २१ कितने दिनका पारणा. | ४७ गण नाम. |
| २२ दीक्षाकी तिथि. | ४८ योनि नाम. |
| २३ उद्गस्य पणोका काखमान. | ४९ मोक्ष परिवार. |
| २४ किस नगरीमें केवलज्ञान प्राप्त हुआ | ५० सम्यक्त्वपायां पीठे महोटे जय |
| २५ ज्ञानोत्पत्ति दिने क्या तप. | ५१ किस कुलसे उत्पन्न हुआ. |
| २६ किम गृहके द्वेव दीक्षा लीनी. | ५२ गर्भवासका काखमान. |
| २७ किस तिथिमें ज्ञान उत्पन्न हुआ. | |

यह वाचन बोल प्रत्येक तीर्थकरोमें कहते हैं.

१ श्रीतीर्थकरनाम.	१ श्रीरूपनदेव.	१ श्रीअजितनाथ	३ श्रीसंजवनाथ.
२ चवणतिथि.	आपाठवदि ४	वैशाखशुदि १३	फाट्गुनशुदि ८
३ विमाननाम.	सर्वार्थसिद्धि	विजयविमान	उपरलाग्रेवेयक
४ जन्मनगरी.	विनीताजूमि	अयोध्या	सावढी
५ जन्मतिथि.	चैत्रवदि ८	माहशुदि ८	माहशुदि १४
६ पिताका नाम.	नाजिकुलकर	जितशत्रु	जितारि
७ माताका नाम.	मरुदेवी	विजया	सेना
८ जन्मनक्षत्र.	उत्तरापाढा	रोहिणी	मृगशिर
९ जन्मराशि.	घन	वृष	मिथुन
१० लाठननाम.	वृषज	हस्ती	अश्व
११ शरीरमान.	५००) धनुष	४५०) धनुष	४००) धनुष
१२ आयुमान.	८४) लक्षपूर्व	७२) लक्षपूर्व	६०) लक्षपूर्व
१३ शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण
१४ पदवी राजकी.	राजपदवी	राजपदवी	राजपदवी
१५ पाणिग्रहण.	विवाह हूया	विवाह हूया	विवाह हूया
१६ कितनेसाथ दीक्षा.	४०००) साधु	१०००) साधु	१०००) साधु
१७ दीक्षानगरी.	विनीता	अयोध्या	सावढी
१८ दीक्षातप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९ प्रथमपारणैकाश्रा०	इक्षुरस	परमान्नक्षीर	परमान्नक्षीर
२० पारणैका स्थान.	श्रेयांसके घरें	ब्रह्मदत्तके घरें	सुरेंद्र दत्तके घरें
२१ कितनेदिनकापारणा	एकवर्षपीठे	दो दिन पीठे	दो दिन पीठे
२२ दीक्षातिथि.	चैत्रवदि ८	महावदि ९	मागसिरशुदि १५
२३ ठन्नस्यकाल.	१०००) वर्ष	१२) वर्ष	१४) वर्ष
२४ ज्ञाननगरी.	पुरिमताल	अयोध्या	सावढी
२५ ज्ञानतप.	तीनउपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६ दीक्षावृद्ध.	वटवृद्ध	सालवृद्ध	प्रियालवृद्ध
२७ ज्ञानतिथि.	फागुणवदि ११	पोषवदि ११	कार्तिकवदि ५

यह वाचन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोंमें कहते हैं

२० गणधरसंख्या.	८४)	९५)	१०२)
२१ साधुओंकी संख्या	८४०००)	१०००००)	२०००००)
३० साधवीयोंकी संख्या	३०००००)	३३००००)	३३६०००)
३१ वैक्रियलब्धिवंत.	२०६००)	२०४००)	१९८००)
३२ वादिओंकी संख्या.	१२६५०)	१२४००)	१२०००)
३३ अवधिज्ञानी संख्या.	९०००)	९४००)	९६००)
३४ केवलीसंख्या.	२००००)	२२०००)	२५०००)
३५ मनःपर्यवसंख्या.	१२७५०)	१२५५०)	१२१५०)
३६ चौदहपूर्विसंख्या.	४७५०)	३७२०)	२१५०)
३७ श्रावकसंख्या.	३५००००)	२९८०००)	२९३०००)
३८ श्राविकासंख्या.	५५४०००)	५४५०००)	६३६०००)
३९ शासनयक्षनाम.	गोमुखयक्ष	महायक्ष	त्रिमुखयक्ष
४० शासनयक्षणी.	चक्रेश्वरी	अजितवला	दुरितारि
४१ प्रथमगणधरनाम.	पुंनरीक	सिंहसेन	चारु
४२ प्रथमआर्यानाम.	ब्राह्मी	फाल्गु	श्यामा
४३ मोक्षस्थान.	अष्टापद	समेतशिखर	समेतशिखर
४४ मोक्षतिथि.	माघवदि १३	चैत्रशुदि ५	चैत्रशुदि ५
४५ मोक्षसंक्षेपणा.	ठ उपवास	एक मास	एक मास
४६ मोक्षआसन.	पद्मासन	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग
४७ अंतर मान.	५०लाखकोटीसा	३०लाखकोटीसा	१०लाखकोटीसा
४८ गणनाम.	मानवगण	मानवगण	देवगण
४९ योनि नाम.	नकुलयोनि	सर्पयोनि	सर्पयोनि
५० मोक्षपरिवार.	१००००)	१०००)	१०००)
५१ जवसंख्या.	तेर जव कखा	तीन जव कखा	तीन जव कखा
५२ कुलगोत्रनाम.	इक्ष्वाकुकुल	इक्ष्वाकुकुल	इक्ष्वाकुकुल
५३ गर्जकालमान.	नवमासचारदिन	८मास पच्चीशदि.	नवमास ठदिन

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थकरोमें कहते हैं

१ श्रीतीर्थकरनाम.	४ श्रीअजिनंदन	५ श्रीसुमतिनाथ	६ श्रीपद्मप्रज
२ चवणतिथि.	वैशाखशुदि ४	श्रावणशुदि २	माघवदि ६
३ विमाननाम.	जयंतविमान	जयंतविमान	उवरिमग्रैवेयक
४ जन्मनगरी.	अयोध्या	अयोध्या	कौसुंबी
५ जन्मतिथि.	माघशुदि २	वैशाखशुदि ७	कार्तिकवदि १२
६ पिताका नाम.	संवरराजा	मेघराजा	श्रीधरराजा
७ माताका नाम.	सिद्धार्था	मंगला	सुसीमा
८ जन्म नक्षत्र.	पुनर्वसु	मघा	चित्रा
९ जन्मराशि.	मिथुन	सिंह	कन्या
१० लांठनका नाम.	वंदरका	कौंचपद्मीका	पद्मकमलका
११ शरीरमान.	३५०)धनुष	३००)धनुष	३५०)धनुष
१२ आयुमान.	५०)लाखपूर्व	४०)लाखपूर्व	३०)लाखपूर्व
१३ शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	रक्तवर्ण
१४ पदवीराजकी.	राजा	राजा	राजा
१५ पाणिग्रहण.	परण्या	परण्या	परण्या
१६ कितनेसाधदीक्षा.	१०००)साधु	१०००)साधु	१०००)साधु
१७ दीक्षानगरी.	अयोध्या	अयोध्या	कौसुंबी
१८ दीक्षातप.	दो उपवास	नित्य जक्त	एक उपवास
१९ प्रथमपारणिकाआ०	क्षीर	क्षीर	क्षीर
२० पारणिका स्थान.	इंद्रदत्त घरें	पद्म घरें	सोमदेव घरें
२१ कितनेदिनकापारणा	दोदिन (१)	दोदिन (१)	दोदिन (१)
२२ दीक्षातिथि.	माघशुदि १२	वैशाखशुदि ९	कार्तिकवदि १३
२३ ठग्नस्थकाल.	अठारहवर्ष	वीशवर्ष	ठ मास
२४ ज्ञाननगरी.	अयोध्या	अयोध्या	कौसुंबी
२५ ज्ञानतप.	दो उपवास	दो उपवास	चोथ जक्त
२६ दीक्षावृद्ध.	प्रियंगु वृद्ध	साल वृद्ध	ठत्र वृद्ध
२७ ज्ञानतिथि.	पोषवदि १४	चैत्रशुदि ११	चैत्रशुदि १५

यह भावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोंमें कहते हैं

२० गणधरसंख्या.	११६)	१००)	१०७)
२१ सावुथोंकीसंख्या.	३०००००)	३२००००)	३३००००)
३० साधवीयोंकीसंख्या	६३००००)	५३००००)	४२००००)
३१ वेक्रियसन्धियंत.	१९०००)	१०४००)	१६१००)
३२ घादीयोंकीसंख्या.	११०००)	१०४००)	९६००)
३३ अयधिहानीसंख्या.	९०००)	११०००)	१००००)
३४ केवसीसंख्या.	१४०००)	१३०००)	१२०००)
३५ मनःपर्ययसंख्या.	११६५०)	१०४५०)	१०३००)
३६ चौदहपूर्वोंसंख्या.	१५००)	२४००)	२३००)
३७ धायकसंख्या.	२०००००)	२०१०००)	२७६०००)
३८ आशिकासंख्या.	५२७०००)	५१६०००)	५०५०००)
३९ शासन यद्द नाम.	नायक यद्द	तुंबरु यद्द	कुसमय यद्द
४० शासनयद्दणीनाम.	कासिका	महाकासी	श्यामा
४१ प्रथमगणधरनाम.	वज्रनाम	चरम	प्रद्योतन
४२ प्रथमआर्यानाम.	अजिता	काश्यपी	रति
४३ मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४ मोक्षनिय.	वेशावशुदि ॥	चेप्रशुदि ९	मागसिरवदि ११
४५ मोक्षसंश्लेषण.	एकमास	एकमास	एकमास
४६ मोक्षआसन	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग
४७ अंतरमान.	एआमकोमीसा.	एहजारकोडीस	एहजारकोमीसा
४८ गणनाम.	देवगण	राक्षसगण	राक्षसगण
४९ योनिनाम.	वागयोनि.	भूपकयोनि	महिषयोनि
५० मोक्षपरिवार.	१०००)	१०००)	३००)
५१ स्वर्गसंख्या.	तीननवकीया	तीननवकीया	तीननवकीया
५२ कृष्णगोत्रनाम.	इहागकृष्ण	इहागकृष्ण	इहागकृष्ण
५३ गणकाउमान.	उमास२०दिन	नवमास३दिन	नवमास३दिन

यह जावन बोस प्रत्येक तीर्थकरोमें कहते हैं

१ श्रीतीर्थकरनाम.	७ श्रीसुपार्श्वनाथ	८ श्रीचंडप्रत्न	९ श्रीसुविधिनाथ
२ चवणतिथि.	जाडववदि ८	चैत्रवदि ५	फागणवदि ९
३ विमाननाम.	मधिमग्नेयक	विजयंत	आननदेवलोक
४ जन्मनगरी.	वणारसी नगरी	चंडपुरीनगरी	काकंदीनगरी
५ जन्मतिथि.	ज्येष्ठशुदि १२	पौषवदि १२	मगसिरवदि ५
६ पिताका नाम.	प्रतिष्ठाराजा	महाजैनराजा	सुग्रीवराजा
७ माताका नाम.	पृथिवीमाता	लक्ष्मणमाता	रामाराणीमाता
८ जन्मनक्षत्र.	विशाखानक्षत्र	अनुराधानक्षत्र	मूलनक्षत्र
९ जन्मराशि.	तुलाराशि	वृश्चिकराशि	धनराशि
१० लांठननाम.	साधीयाकालंठन	चंडकालंठन	मगरमठकालंठन
११ शरीरमान.	२००)धनुष	१५०)धनुष	१००)धनुष
१२ आयुमान.	२०)लाखपूर्व	१०)लाखपूर्व	२)लाखपूर्व
१३ शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	श्वेतवर्ण	श्वेतवर्ण
१४ पदवीराजकी.	राजा	राजा	राजा
१५ पाणिग्रहण.	परण्या	परण्या	परण्या
१६ कितनेसाथदीक्षा.	१०००)साधु	१०००)साधु	१०००)साधु
१७ दीक्षानगरी.	वनारसीनगरी	चंडपुरीनगरी	काकंदीनगरी
१८ दीक्षातप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९ प्रथमपारणिकाथा०	क्षीरकाजोजन	क्षीरकाजोजन	क्षीरका जोजन
२० पारणिका स्थान.	माहेंड घरें	सोमदत्त घरें	पुष्प घरें
२१ कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२ दीक्षातिथि.	ज्येष्ठशुदि १३	पौषवदि १३	मगसिरवदि ६
२३ ठहरस्थकाल.	नव मास रखा	त्रण मास रखा	चार मास रखा
२४ ज्ञाननगरी.	वणारसी नगरी	चंडपुरी नगरी	काकंदी नगरी
२५ ज्ञानतप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६ दीक्षावृद्ध.	सरीसवृद्ध	नागवृद्ध	सालीवृद्ध
२७ ज्ञानतिथि.	फागणवदि ६	फागणवदि ५	कार्तिकशुदि ३

यह वाचन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोंमें कहते हैं

२८ गणधरसंख्या.	२९) गणधर	३०) गणधर	३१) गणधर
२९ साधुओंकीसंख्या.	३०००००)	२५००००)	२०००००)
३० साधवीयोंकीसंख्या	४३००००)	३८००००)	३२००००)
३१ वेक्रियलब्धिवंत.	१५३००)	१४०००)	१३०००)
३२ वादिश्योंकीसंख्या.	८४००)	७६००)	६०००)
३३ अधिज्ञानीसंख्या	९०००)	८०००)	८४००)
३४ केवलीसंख्या.	११०००)	१००००)	९५००)
३५ मनःपर्यवसंख्या.	९१५०)	८०००)	७५००)
३६ चौदहपूर्वसंख्या.	२०३०)	२०००)	१५००)
३७ श्रावकसंख्या.	२५७०००)	२५००००)	२२९०००)
३८ श्राविकासंख्या.	४९३०००)	४७९०००)	४७१०००)
३९ शासनयक्षनाम.	मातंगयक्ष	विजययक्ष	अजिता यक्ष
४० शासनयक्षणीनाम	शांता	जृकुटी	सुतारिका
४१ प्रथमगणधरनाम.	विदर्ज	दिन्न	वराहक
४२ प्रथमश्रार्यानाम.	सोमा	सुमना	वारुणी
४३ मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४ मोक्षतिथि.	फागणवदि ७	जाडवावदि ७	जाडवाशुदि ९
४५ मोक्षसंक्षेपणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६ मोक्षआसन.	काउस्तग	काउस्तग	काउस्तग
४७ अंतर मान.	एकोकोमीसागर	ए०कोमीसागर	ए कोमीसागर
४८ गणनाम.	राक्षसगण	देवगण	राक्षसगण
४९ योनिनाम.	मृगयोनि	मृगयोनि	वानरयोनि
५० मोक्षपरिवार.	५००)	१०००)	१०००)
५१ जवसंख्या.	तीन जव कीया	तीन जव कीया	तीन जव कीया
५२ कुलगोत्रनाम.	इक्ष्वाकुकुल	इक्ष्वाकुकुल	इक्ष्वाकुकुल
५३ गर्तकालमान.	मासनवदिन १९	मासनवदिनसान	मासनदिनठनीस

यह बावन बोख प्रत्येक तीर्थकरोमें कहते हैं.

१ श्रीतीर्थकरनाम.	१० शीतलनाथ	११ श्रेयांसनाथ	१२ श्रीवासुपूज्य
२ चवणतिथि.	वैशाखवदि ६	ज्येष्ठवदि ६	ज्येष्ठशुदि ए
३ विमाननाम.	अच्युतदेवलोक	अच्युतदेवलोक	प्राणतदेवलोक
४ जन्मनगरी.	नद्विलपुर	सिंहपुरी	चंपापुरी
५ जन्मतिथि.	महावदि १२	फागणवदि १२	फागणवदि १४
६ पिताका नाम.	द्वरधराजा	विष्णुराजा	वसुपूज्यराजा
७ माताका नाम.	नंदामाता	विष्णुमाता	जयामाता
८ जन्मनक्षत्र.	पूर्वाषाढा	श्रवणनक्षत्र	शतजिपानक्षत्र
९ जन्मराशि.	धनराशि	मकरराशि	कुंभराशि
१० वांठननाम.	श्रीवत्सकावांठन	गेंनाका वांठन	पानाका वांठन
११ शरीरमान.	नेवुं धनुष	अंशीधनुष	सीत्तेर धनुष
१२ आयुमान.	एकलाख पूर्व	(७४)लाख वर्ष	(७२)लाख वर्ष
१३ शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	लालवर्ण
१४ पदवी राजकी.	राजा	राजा	कुमार
१५ पाणिग्रहण.	परखा	परखा	परखा
१६ कितने साथदीक्षा.	(१०००) साथु	(१०००) साथु	(६००) साथु
१७ दीक्षानगरी.	नद्विलपुर	सिंहपुरी	चंपापुरी
१८ दीक्षातप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९ प्रथमपारणैकाश्वा०	दीरजोजन	दीरजोजन	दीरजोजन
२० पारणैका स्थान.	पुनर्वसुके घरें	नंदके घरें	सुनंदके घरें
२१ कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२ दीक्षातिथि.	महावदि १२	फागणवदि १३	फागणशुदि १५
२३ वस्त्रस्थकाळ.	तीन मात्तरह्या.	दो मात्तरह्या	एक मात्तरह्या
२४ ज्ञाननगरी.	नद्विलपुर	सिंहपुरी	चंपापुरी
२५ ज्ञानतप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६ दीक्षावृद्ध.	प्रियंगुवृद्ध	तंडुकवृद्ध	पानजवृद्ध
२७ ज्ञानतिथि.	पौषवदि १४	महावदि ३	महाशुदि ३

यह वाचन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोंमें कहते हैं

२० गणधरसंख्या.	८१) गणधर	९६) गणधर	६६) गणधर
२१ साधुओंकीसंख्या.	१०००००	८४०००	९२०००
३० साधवीयोंकीसंख्या	१००००६	१०३०००	१०००००
३१ वैक्रियलब्धिवंत.	१२०००	११०००	००००
३२ वादीयोंकीसंख्या.	५८००	५०००	४९००
३३ अवधिज्ञानीसंख्या.	९२००	६०००	५४००
३४ केवलीसंख्या.	९०००	६५००	६०००
३५ मनःपर्यवसंख्या.	९५००	६०००	६५००
३६ चौदहपूर्वसंख्या.	१४००	१३००	१२००
३७ श्रावकसंख्या	२८९०००	२९९०००	२१५०००
३८ श्राविकासंख्या.	४५८०००	४४८०००	४३६०००
३९ शासन यज्ञ नाम.	ब्रह्मायज्ञ	जकेटयज्ञ	कुमारयज्ञ
४० शासनयक्षिणीनाम	अशोका	मानवी	चंडा
४१ प्रथमगणधरनाम.	नंद	कञ्चप	सुजूम
४२ प्रथमआर्यानाम.	सुयशा	धारणी	धरणी
४३ मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	चंपापुरी
४४ मोक्षतिथि.	वेशाखवदि २	श्रावणवदि ३	श्याषाढशुदि १४
४५ मोक्षसंक्षेपणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६ मोक्षआसन.	काउस्तग	काउस्तग	काउस्तग
४७ अंतरमान.	एककोटीसागर	चोपनसागर	श्रीशसागर
४८ गणनाम.	मानवगण	देवगण	राक्षसगण
४९ योनिनाम.	नकुलयोनि	यानरयोनि	अश्वयोनि
५० मोक्षपरिवार.	१०००)परिवार	१०००)परिवार	६००)परिवार
५१ जवसंख्या.	तीन जव कत्या	तीन जव कत्या	तीन जव कत्या
५२ कुलगोत्रनाम.	इक्ष्वाकुकुल	इक्ष्वाकुकुल	इक्ष्वाकुकुल
५३ गर्जकासमान.	मासनव दिन ठ	मासनव दिन ठ	मास ८ दिन २०

यह वाचन बोल प्रत्येक तीर्थकरोमें कहते हैं

१ श्रीतीर्थकरनाम.	१३ विमलनाथ	१४ अनंतनाथ	१५ श्रीधर्मनाथ
२ चवणतिथि.	वैशाखशुदि १५	श्रावणवदि ७	वैशाखशुदि ७
३ विमाननाम.	सहस्रारदेवलोक	प्राणतदेवलोक	विजयविमान
४ जन्मनगरी.	कंपिलपुरी	अयोध्या	रत्नपुरीनगरी
५ जन्मतिथि.	महाशुदि ३	वैशाखवदि १३	महाशुदि ३
६ पिताका नाम.	कृतवर्मराजा	सिंहसेनराजा	जानुराजा
७ माताका नाम.	श्यामामाता	सुयशामाता	सुवृतामाता
८ जन्म नक्षत्र.	उत्तराजाद्रपद	रेवतीनक्षत्र	पुष्यनक्षत्र
९ जन्मराशि.	मीनराशि	मीनराशि	कर्कराशि
१० लांठनका नाम.	वराहका लांठन	सिचाणाका लां०	वज्र लांठन
११ शरीरमान.	शाठ धनुष	पचाशधनुष	पीस्तालीशधनुष
१२ आयुमान.	शाठलाखवर्ष	त्रीशलाखवर्ष	दशलाखवर्ष
१३ शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण
१४ पदवीराजकी.	राजा	राजा	राजा
१५ पाणिग्रहण.	परण्या	परण्या	परण्या
१६ कितने सायदीक्षा.	१००० साधु	१००० साधु	१००० साधु
१७ दीक्षानगरी.	कंपिलपुर	अयोध्या	रत्नपुरी
१८ दीक्षातप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९ प्रथमपारणेकाआ०	क्षीरजोजन	क्षीरजोजन	क्षीरजोजन
२० पारणेका स्थान.	जयराजाकेघरें	विजयराजाकेघरें	धनसिंहके घरें
२१ कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२ दीक्षातिथि.	महाशुदि ४	वैशाखवदि १४	महाशुदि १३
२३ ठग्नस्थकाल.	दो मास	तीन वर्ष	दो वर्ष
२४ ज्ञाननगरी.	कंपिलपुरी	अयोध्या	रत्नपुरी
२५ ज्ञानतप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६ दीक्षावृद्ध.	जंबूवृद्ध	अशोकवृद्ध	दधिपर्णवृद्ध
२७ ज्ञानतिथि.	पौषशुदि ६	वैशाखवदि १४	पौषशुदि १५

यह धावन बोख प्रत्येक तीर्थंकरोंमें कहते हैं

२८ गणधरसंख्या.	५७) गणधर	५८) गणधर	४३) गणधर
२९ साधुओंकी संख्या.	६००००)	६६०००)	६४०००)
३० साधवीयोंकी संख्या	१०००००)	६२०००)	६२४००)
३१ वैक्रियल विधवंत.	९०००)	८०००)	९०००)
३२ वादिश्योंकी संख्या.	३६००)	३२००)	२८००)
३३ अवधिज्ञानी संख्या.	४८००)	४३००)	३६००)
३४ केवली संख्या.	५५००)	५०००)	४५००)
३५ मनःपर्यवसंख्या.	५५००)	५०००)	४५००)
३६ चौदहपूर्वसंख्या.	११००)	१०००)	९००)
३७ श्रावक संख्या.	२०८०००)	२०६०००)	२०४०००)
३८ श्राविका संख्या.	४२४०००)	४२४०००)	४२३०००)
३९ शासनयक्षनाम.	पणमुखयक्ष	पातालयक्ष	किन्नरयक्ष
४० शासनयक्षिणी.	विदिता	अंकुशा	कंदर्पा
४१ प्रथमगणधरनाम.	मंदरगणधर	जस गणधर	अरिष्ट
४२ प्रथमआर्यानाम.	धरा	पद्मा	आर्यशिवा
४३ मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४ मोक्षतिथि.	व्यापाढवदि ७	चैत्रशुदि ५	ज्येष्ठशुदि ५
४५ मोक्षसंक्षेपणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६ मोक्षस्थासन.	काठस्तग्ग	काठस्तग्ग	काठस्तग्ग
४७ अंतर मान,	नवसागरोपम	चारसागरोपम	तीनसागरोपम
४८ गणनाम.	मानवगण	देवगण	देवगण
४९ योनि नाम.	ठागयोनि	हस्तियोनि	मंजारयोनि
५० मोक्षपरिवार.	६००)	३००)	१००)
५१ जवसंख्या.	तीनजवकख्या	तीनजवकख्या	तीनजवकख्या
५२ कुसगोत्रनाम.	इक्ष्वाकुकुस	इक्ष्वाकुकुस	इक्ष्वाकुकुस
५३ गर्तकाशमान.	मास ८ दिन २१	मासनवदिन ८	मास ८ दिन ८ वीं श

यह वाचन बोल प्रत्येक तीर्थकरोमें कहते हैं

१ श्रीतीर्थकरनाम.	१६ श्रीशांतिनाथ	१७ श्रीकुंथुनाथ	१८ श्रीअरनाथ
२ चवणतिथि.	चाद्रवावदि ७	आवणवदि ९	फागणशुदि २
३ विमाननाम.	सर्वार्थसिद्ध	सर्वार्थसिद्ध	सर्वार्थसिद्ध
४ जन्मनगरी.	गजपुर	गजपुर	गजपुर
५ जन्मतिथि.	ज्येष्ठवदि १३	वैशाखवदि १४	मागशिरशुदि १०
६ पिताका नाम.	विश्वसेन	सूरराजा	सुदर्शन
७ माताका नाम.	अचिराराणी	श्रीराणी	देवीराणी
८ जन्मनक्षत्र.	जरणीनक्षत्र	कृत्तिकानक्षत्र	रेवतीनक्षत्र
९ जन्मराशि.	मेघराशि	वृषराशि	मीनराशि
१० लांठननाम.	हरिणकालांठन	वकराका लांठन	नंदावर्तकालांठन
११ शरीरमान.	४० धनुष	३५ धनुष	३० धनुष
१२ आयुमान.	एकलाखवर्ष	(९५०००) वर्ष	(८४०००) वर्ष
१३ शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण
१४ पदवीराजकी.	चक्रवर्ती	चक्रवर्ती	चक्रवर्ती
१५ पाणिग्रहण.	(६४०००) स्त्री	(६४०००) स्त्री	(६४०००) स्त्री
१६ कितनेसाथदीक्षा.	(१०००) साथु	(१०००) साथु	(१०००) साथु
१७ दीक्षानगरी.	गजपुर	गजपुर	गजपुर
१८ दीक्षातप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९ प्रथमपारणिकाश्वा०	क्षीरजोजन	क्षीरजोजन	क्षीरजोजन
२० पारणिका स्थान.	सुमित्रघरें	व्याघ्रसिंहघरें	अपराजितघरें
२१ कितने दिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२ दीक्षातिथि.	ज्येष्ठवदि १४	चैत्रवदि ५	मागशिरशुदि ११
२३ ठग्नस्थकाल.	एकवर्ष	शोलवर्ष	तीनवर्ष
२४ ज्ञाननगरी.	गजपुर	गजपुर	गजपुर
२५ ज्ञानतप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६ दीक्षावृद्ध.	नंदीवृद्ध	नीलकण्ठ	आंवाकावृद्ध
२७ ज्ञानतिथि.	पौषशुदि ९	चैत्रशुदि ३	कार्तिकशुदि १२

यह वाक्यन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोंमें कहते हैं.

३० गणधरसंख्या.	३६ गणधर	३५ गणधर	३३ गणधर
३१ साधुओंकीसंख्या	६१०००	६००००	५००००
३० साधवीयोंकीसंख्या	६१६००	६०६००	६००००
३१ वैक्रियल विधवंत.	६०००	५१००	७३००
३२ वादिओंकीसंख्या.	१४००	१०००	१६००
३३ अवधिज्ञानीसंख्या.	३०००	१५००	१६००
३४ केवलीसंख्या.	४३००	३१००	१०००
३५ मनःपर्यवसंख्या.	४०००	३३४०	१५५१
३६ चौदपूथीसंख्या.	८००	६७०	६१०
३७ श्रावकसंख्या.	१९००००	१७९०००	१८४०००
३८ श्राविकासंख्या.	३९३०००	३८१०००	३७१०००
३९ शासनयक्षनाम.	गरुडयक्ष	गंधर्वयक्ष	यक्षेदयक्ष
४० शासनयक्षिणीनाम	निर्वाणी	बला	धणा
४१ प्रथमगणधरनाम.	चक्रयुध	सांव	कुंज
४२ प्रथमआर्यानाम.	सुचि	दामिनी	रक्षिता
४३ मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४ मोक्षतिथि.	ज्येष्ठवदि १३	वैशाखवदि १	मागशिरशुदि १०
४५ मोक्षसंक्षेपणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६ मोक्षआसन.	काउस्तग	काउस्तग	काउस्तग
४७ अंतरमान.	०॥ पट्यापम	०॥ पट्योपम	१००० क्रोन्वर्प
४८ गणनाम.	मानवगण	राक्षसगण	देवगण
४९ योनिनाम.	हस्तियोनि	ठागयोनि	हस्तियोनि
५० मोक्षपरिवार.	९००० परिवार	१०००० परिवार	१०००० परिवार
५१ जवसंख्या.	वारांजव कख्या	तीनजव कख्या	तीनजव कख्या
५२ कुलगोत्रनाम.	इक्ष्वाकुकुल	इक्ष्वाकुकुल	इक्ष्वाकुकुल
५३ गर्जकालमान.	मासनवदिन	मासनवदिनपांच	मासनवदिन ॥

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थकरोमें कहते हैं.

१. श्रीतीर्थकरनाम.	१९ श्रीमल्लीनाथ	२० श्रीमुनिसुवृत	२१ श्रीनमीनाथ
२. चणतिथि.	फागुणशुदि ४	श्रावणशुदि १५	आशोशुदि १५
३. विमाननाम.	जयंतविमान	अपराजितविमा	प्राणतदेवलोक
४. जन्मनगरी.	मथुरानगरी	राजशुहीनगरी	मथुरानगरी
५. जन्मतिथि.	मागशिरशुदि ११	ज्येष्ठवदि ८	श्रावणवदि ८
६. पिताका नाम.	कुंजरजा	सुमित्रराजा	विजयरजा
७. माताका नाम.	प्रजावती	पद्मावती	विप्राराणी
८. जन्मनक्षत्र.	अश्विनीनक्षत्र	श्रवणनक्षत्र	अश्विनीनक्षत्र
९. जन्मराशि.	मेपराशि	मकरराशि	मेपराशि
१०. लांठननाम.	कलशका लांठन	कछपका लांठन	कमलका लांठन
११. शरीरमान.	पचीशधनुष	वीशधनुष	पंदरधनुष
१२. आयुमान.	५५०००) वर्ष	३००००) वर्ष	१००००) वर्ष
१३. शरीरका वर्ण.	नीलावर्ण	श्यामवर्ण	पीलावर्ण
१४. पदवी राजकी.	कुमार	राजा	राजा
१५. पाणिग्रहण.	नहीं परण्या	परण्या	परण्या
१६. कितने साथ दीक्षा.	३००) साथु	१०००) साथु	१०००) साथु
१७. दीक्षानगरी.	मिथिलानगरी	राजशुहीनगरी	मथुरानगरी
१८. दीक्षातप.	तीन उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९. प्रथमपारणिकाध्या०	क्षीरजोजन	क्षीरजोजन	क्षीरजोजन
२०. पारणिका स्थान	विश्वसेन	ब्रह्मदत्त	दिन्नकुमार
२१. कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२. दीक्षातिथि.	मागशिरशुदि ११	फागणशुदि १२	आषाढवदि ९
२३. ठहरस्थकाल.	एक अहोरात्र	इग्यार मास	नव मास
२४. ज्ञाननगरी.	मथुरानगरी	राजशुहीनगरी	मथुरानगरी
२५. ज्ञानतप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६. दीक्षावृद्ध.	अशोकवृद्ध	चंपकवृद्ध	बकुल वृद्ध
२७. ज्ञानतिथि.	मागशिरशुदि ११	फागणवदि १२	मागशिरशुदि ११

यह वाचन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोंमें कहते हैं.

२७	गणधरसंख्या.	२८) गणधर	२९) गणधर	३०) गणधर
२८	साधुओंकीसंख्या.	४००००	३००००	२००००
३०	साध्वीयोंकीसंख्या	५५०००	५००००	४१०००
३१	यक्षियलब्धिवन.	२०००	२०००	५०००
३२	यादियोंकीसंख्या.	१४००	१२००	१०००
३३	अपविष्टानीसंख्या.	२२००	१८००	१६००
३४	केवरीसंख्या.	२२००	१८००	१६००
३५	मनःसंख्या.	१७५०	१५००	१२५०
३६	चौरदुर्गसंख्या.	६६८	५००	४५०
३७	आरसंख्या.	१८३०००	१७२०००	१७००००
३८	आश्रितसंख्या.	३७००००	३५००००	३४००००
३९	शासनयज्ञनाम.	कुंवरयज्ञ	वरुणयज्ञ	नृकुटीयज्ञ
४०	शासनयज्ञिणीनाम.	धरणप्रिया	नरदत्ता	गंधारी
४१	प्रथमगणपनाम.	अनीलकण्ठगणधर	मल्लीगणधर	शुभगणधर
४२	प्रथमआर्यानाम.	वधुमती	पुष्पमती	अनिला
४३	मोक्षदान.	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि.	काष्ठगुणशुदि १२	ज्येष्ठशुदि ९	वैशाखशुदि १०
४५	मोक्षसंज्ञपणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षआमन.	काष्ठम्मग	काष्ठम्मग	काष्ठम्मग
४७	अंशमान.	५४००००० वर्ष	६००००००वर्ष	५००००००)वर्ष
४८	संज्ञमान.	देवगण	देवगण	देवगण
४९	योनि नाम.	अश्वयोनि	धानरयोनि	अश्वयोनि
५०	मोक्षपरिवार.	५०० परिवार	१०००परिवार	१००० परिवार
५१	सर्वसंख्या.	नीलनवकस्या	नीलनवकस्या	नीलनवकस्या
५२	वृद्धयोगदान.	इन्द्रागवेंशकुल	इन्द्रागवेंशकुल	इन्द्रागवेंशकुल
५३	सर्वकारमान.	मासनवदिनमान	मासनवदिन	मासनवदिनयात्र

यह जावन बोख प्रत्येक तीर्थकरोमें कहते हैं.

१ श्रीतीर्थकरनाम.	११ श्रीनेमिनाथ	१२ श्रीपार्श्वनाथ	१४ श्रीमहावीर.
२ चवणतिथि.	कार्तिकवदि १२	चैत्रवदि ४	आषाढशुदि ६
३ विमाननाम.	अपराजित	प्राणतदेवलोक	प्राणतदेवलोक
४ जन्मनगरी.	सौरीपुर	वणारती	कृत्रीकुंड
५ जन्मतिथि.	आवणशुदि ५	पौषवदि १०	चैत्रवदि १३
६ पिताका नाम.	समुद्रविजय	अश्वत्तेन	सिद्धार्थराजा
७ माताका नाम.	शिवा देवी	वामादेवी	त्रिशलादेवी
८ जन्मनक्षत्र.	विमानक्षत्र	विशाखानक्षत्र	उत्तराफाल्गुनी
९ जन्मराशि.	कन्याराशि	तुलाराशि	कन्याराशि
१० लंठननाम.	शंखलंठन	तर्पलंठन	केशरीलंठन
११ शरीरनाम.	दश धनुष	नव हाथ	सात हाथ
१२ आयुनाम.	हजार वर्ष	शो वर्ष	बहोचैर वर्ष
१३ शरीरका वर्ण.	श्यामवर्ण	नीलावर्ण	पीलावर्ण
१४ पदवी राजकी.	कुमारपदवी	कुमारपदवी	कुमारपदवी
१५ पाणिग्रहण.	नहीं परण्या	परण्या	परण्या
१६ कितने साथ दीक्षा.	१००० साथ	३०० साथ	एकाकी दीक्षा
१७ दीक्षानगरी.	सौरीपुर	वणारती	कृत्रीकुंड
१८ दीक्षातप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९ प्रथमपारऐकाध्या०	हीरभोजन	हीरभोजन	हीरभोजन
२० पारऐका स्थान.	वरद्वि	भन्यनान	बहुलब्राह्मण
२१ कितने दिन कापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२ दीक्षातिथि.	आवणशुदि ६	पौषवदि ११	मागतिरवदि ११
२३ ठहरथकाळ.	चौपनदिन	चौराशीदिन	बारों वर्ष
२४ ज्ञाननगरी.	गिरनार	वणारती	कुंडवाडुकानदी
२५ ज्ञानतप.	तीन उपवास	तीन उपवास	दो उपवास
२६ दीक्षावृद्ध.	बेन्तवृद्ध	धानकीवृद्ध	सातवृद्ध
२७ ज्ञानतिथि.	आशोवदि ८	चैत्रवदि ४	विशालशुदि १०

यह बावन बोझ प्रत्येक तीर्थंकरोंमें कहते हैं.

२७ गणधरसंग्या.	११) गणधर	१०) गणधर	११) गणधर
२८ साधुओंकी संग्या.	१००००)	१६०००)	१४०००)
२९ साधवीयोंकी संग्या	४००००)	३००००)	३६०००)
३० गेकियसन्धिधर्म.	१५००)	११००)	७००)
३१ पादस्थोंकी संग्या.	८००)	६००)	४००)
३२ श्वरविज्ञानीसंग्या.	१५००)	१०००)	१३००)
३३ केयसीसंग्या.	१५००)	१०००)	७००)
३४ मनःपर्ययसंग्या.	१०००)	७५०)	५००)
३५ गौदहपूरिसंग्या.	४००)	३५०)	३००)
३६ धारकसंग्या.	१६००००)	१६४०००)	१५००००)
३७ आश्रितसंग्या.	३३६०००)	३३६०००)	३१००००)
३८ शासनपद्धतनाम.	गोमंथयद्द	पार्श्वयद्द	मातंगयद्द
४० शासनपद्धिनीनाम.	श्रयिका	पद्मावती	सिद्धायिका
४१ प्रथमगणधरनाम.	वरदत्त	आर्यविज्ञ	इन्द्रनूति
४२ प्रथमआचार्यनाम.	यद्ददिश्रा	पुण्यचूका	चंदनघाता
४३ मोक्षस्थान.	गिरनार	समेतशिखर	पायापुरी
४४ मोक्षनिधि.	आयादशुदि०	आवणशुदि ८	कार्तिकवदि०)
४५ मोक्षसंज्ञेयता.	एकमास	एकमास	दोउपमास कम्ब्या
४६ मोक्षआसन.	पद्मासन	काठम्मगा	पद्मासन
४७ अंशमान	८३७५०) वर्ष	७५०) वर्ष	चर्मजिनेश्वर
४८ गणनाम	राक्षसगण	राक्षसगण	मानवगण
४९ योनि नाम.	महिषयोनि	मृगयोनि	महिषयोनि
५० मोक्षपरिवार.	५३३) परिवार	३३) परिवार	एकाकी व्याप
५१ रत्नसंग्या.	नव नव कम्ब्या	दश नव कम्ब्या	सत्तावीश नव क०
५२ कुष्ठमोक्षनाम.	हरिवंश	इक्ष्वाकुकुष्ठ	इक्ष्वाकुकुष्ठ
५३ गणकाष्ठनाम.	मासनव दिन ८ मास नव दिन ८	मासनव दिन ८	मासनव दिन ३॥

इस यंत्रके अनुसार एकैक तीर्थकरके साथ बावन बावन बोलका संबंध जान लेनां. इनमेंसूं मातादिक कितनेक द्वार जो प्रथम न्यारे लिखे गये हैं, सो व्युत्पत्तिके कारणसें लिखे हैं.

इन चोबीस तीर्थकरोंमें नववां, दशवां, इग्यारवां, बारवां, तेरवां, चौदवां अरु पंदरवां, ए सात तीर्थकरोंके निर्वाण हुवा पीठें इन सातोंका शासन जो द्वादशांग बाणीरूप शास्त्र अरु साधु तथा साधवि, श्रावक, औ श्राविका. ए चतुर्विध श्रीसंवरूप तीर्थ सो कितनेक काल तांइ प्रवृत्त हो कर पीठेंसें व्यवछेद गया, तब तो जारत वर्षमें जैन मतका नामजी नर हा था, तबहीसें अनेक मत मतांतर और कुशाखोंकी प्रायें प्रवृत्ति जयी सो अवतांइ होतीही चली जाती है, बहुत लोकोने स्वकपोल कल्पित शास्त्र बना करके पूर्व मुनि, वा ऋषि, वा ईश्वरप्रणीत प्रसिद्ध करे हैं औसे तीनसो त्रेशछ मत प्रवृत्त कर दीये अरु आर्य चारों वेद व्यवछेद हो गये अरु नवीन वेद बना लीये उन नवीनोकोंची कइ बार लोकोने नवी नवी रचनासें बना कर उलट पुलट कर दीये जो कुछ बन बनावे शेष रहे उनकीजी अनेक तरेंके नाप्य, टीका, दीपिका रच कर अर्थोंकी गरु बरु कर दीनी सो अवतांइ करतेही चले जाते हैं; ए सर्व स्वरूप जहां वेदों की उत्पत्ति लिखेंगे तहां स्पष्ट करके लिखेंगे. वेद जो नाम है सोतो बहुत प्राचीन कालसें है, अरु जिन पुस्तकोंका नाम वेद अब प्रसिद्ध है सो पुस्तक प्राचीन नहीं है, इसका प्रमाण आगे चलके लिखेंगे ॥ इति श्री तपगुह्ये मुनि श्री बुद्धिविजय शिष्य मुनि आनंदविजय आत्मारामविरचिते जैनतत्त्वादशे प्रथमः परिच्छेदः सम्पूर्णः ॥ १ ॥

॥ अथ द्वितीयः परिच्छेद प्रारंभः ॥

अब दूसरे परिच्छेदमें कुदेवका स्वरूप लिखते हैं, कुदेव उत्तकं कहते हैं जो जगवान् तो नहीं परंतु लोकोंने अपनी बुद्धिसें परमेश्वरका आराधन कर लिया है सो कुदेवका स्वरूप तो उक्त देव स्वरूपसें विपर्यय सर्व बुद्धिमान् आपही जान लेंगे, परंतु विस्तारसें लिखाही जो समस्त सत्ते हैं तिनोके तांइ लिखते हैं.

॥श्लोका॥ ये श्रीशस्त्रादिसूत्रादि, रागायंककलंकिताः ॥ निग्रहानुग्रहपरा,

स्तेदेवास्थुर्न मुक्तये ॥ १ ॥ नाट्याट्टहाससंगीता, द्युपप्लविसंस्थुलाः ॥ छ
 जयेयुः पदं शांतं, प्रपन्नान्प्राणिनः कथं ॥१॥ इति योगशास्त्रे ॥ अस्यार्थः ॥
 जिस देवके पास स्त्री होवे तथा तिसकी प्रतिमाके पास स्त्री होवे क्युंकि
 जैसा पुरुष होता है उसकी मूर्तिजी प्रायें वैसीही होती है. आज काल
 सर्व चित्रोंमें वैसाही देखनेमें आता है, सो मूर्ति द्वारा देवकाजी स्वरूप
 प्रगट हो जाता है. इस कारणें मूर्तिद्वारा तथा मतावलंबी पुरुषोंके ग्रंथानु
 सार समझ लेनां. तथा शस्त्र, धनुष्य, चक्र, त्रिशूलादि जिसके पास होवे
 तथा अक्षसूत्र, जपमाला, आदि शब्दसें कमन्वल प्रमुख होवे, फेर कैसा
 वो देव होवे ? राग छेपादि छूपाणोंका जिनमें चिन्ह होवे अरु स्त्रीकूंजो
 पास रक्केगा वो जरूर कामी और स्त्रीसें जोग करनेवाला होगा, इस्से
 अधिक रागी होणेका दूसरा कौनसा चिन्ह है ? इसी काम रागके वश
 होकर कुदेवोंने परस्त्री, स्वस्त्री, बेटी, माता, बहिन, अरु पुत्रकी बधू प्र
 मुखसे अनेक कामक्रीका कुचेष्टा करी है.

अब जो पुरुष मात्र होकर परस्त्री गमन करता है उसकूं आज कालके
 मतावलंबीयोमेंसें कोइजी अछा नहीं कहता, तो फेर परमेश्वर हो कर जो
 परस्त्रीसें काम कुचेष्टा करे, तो उसके कुदेव होनेमें कोइजी बुद्धिमान् शं
 का नहीं कर सका; जो आपणी स्त्रीसें काम सेवन करता है ओ परस्त्री
 का त्यागी है उसकूंजी परस्त्रीका त्यागी, धर्मी गृहस्थ, लोक कह सके हैं,
 परंतु उसको मुनि वा ऋषि वा ईश्वर कजी नहीं कहेंगे क्युंकि जो आप
 ही कामाग्निके कुंठमें प्रज्ज्वलित हो रहा है तिसमें कजी ईश्वरता नहीं
 हो सकी, इस हेतुसें जो रागरूप चिन्ह करी संयुक्त है, सो कुदेव हैं
 पुनः जो छेपके चिन्ह करी संयुक्त है वोजी कुदेव है. छेपके चिन्ह शस्त्रा
 दि धारण करणां क्युं के जो शस्त्र, धनुष, चक्र, त्रिशूल प्रमुख रक्केगा उस
 ने अवश्य किसी बेरीकूं मारणा है, नहींतो शस्त्र रखणेसें क्या प्रयोजन है?
 तो जिसकूं बेर विरोध खगा हुवा हैं सो परमेश्वर नहीं हो. जो ढाल वा खड्ग
 रक्केगा यह जयकरी अवश्य संयुक्त होगा अरु जो आप ही जय संयु
 क्त है तो उसकी सेवा करनेसें हम निर्जय कैसें हो सके हैं ? इस हेतुसें
 छेप संयुक्तकों कौन बुद्धिमान्, परमेश्वर कह सका है ? परमेश्वर जो है
 सो तो वीतराग है अरु जो राग छेप करी संयुक्त है सो कुदेव है.

तथा जिसके हाथमें जपमाळा हैं, सो असर्वज्ञताका चिन्ह है जेकर सर्वज्ञ होता तो माळाके मणिकियों बिना भी जपकी संख्या कर सका, अरु जो जपकों करता है, सोभी अपनेसे उच्चका करता है, तो परमेश्वर से उच्च कौन है जिसका वो जप करता है ? इस हेतुसे जो माळासे जप करता है सो कुदेव है.

तथा जो शरीरकूं नस्म लगाता है, ओ धूणी तापता है, नंगा होकर कुचैष्टा करता है; चांग, अफीम, धतूरा, मदिरा प्रमुख पीता है तथा मांसादि अशुद्ध आहार करता है; वा हस्ती, जंट, बैल, गर्दज प्रमुखकी जो अत्तवारी करता है सोभी कुदेव है, क्युंकि जो शरीरको नस्म लगाता है, अरु जो धूणी तापता है सो किसी वस्तुकी श्ला वादा है, सो जिसका अजीतक मनोरथ पूरा नहीं हुआ सो परमेश्वर नहीं वो तो कुदेव है.

अरु जो नशे, अमलकी चीजे खाता पीता है, सो तो नशेके अमलमें आनंद और हर्ष हुंढता है, अरु परमेश्वर तो सदा आनंद औ सुखरूप है, परमेश्वरमें वो कौनसा आनंद नहीं था जो नशा पीनेसे उत्तहूं मिलता है ? इस हेतुसे नशा पीने वाला अरु मांसादि अशुद्ध आहार करनेवाला जो है सो कुदेव है.

और जो अत्तवारी है सो परजीवोंकूं पीनाका कारण है, अरु परमेश्वर तो दयालु है, सो पर जीवोंकूं पीडा कैसे देवे ? इस हेतुसे जो अत्तवारी करे, सो कुदेव है.

और जो कमंडल रखता है, सो शुचि होणेके कारण रखता है अरु परमेश्वर तो सदाही पवित्र है उनहूं कमंडलसे क्या काम है ?

यतः ॥श्लोका॥ स्त्रीसंगः काममाचष्टे, छेषं चायुधसंग्रहः ॥व्यामोहं चाक्षत्रादि, रशोचं च कमंडलुः ॥ १ ॥ अर्थ—स्त्रीका जो संग है सो कामहूं कहता है, शस्त्र जो है सो छेपहूं कहता है. जपमाळा जो है सो व्यामोहहूं कहती है, अरु कमंडलु जो है सो अशुचिपणेहूं कहता है तथा निग्रह जो (जितके उपर क्रोध करे) तितहूं बध, बंधन, भारण, रोगी, शोकी, अतीष्ट वियोगी, नरकपात, निर्धन, हीन, दीन, क्षीण करे, सोभी कुदेव है. और जो जितके उपरि अनुग्रह (तुष्टमान) होवे तितहूं इंद्र, चक्रवर्ती, वसुदेव, वासुदेव, महामंडलिक, मंडलिकादिकोंको राज्यादि पदवीका वर देवे तथा

सुंदर स्वर्गसदृश स्त्रीका संयोग, पुत्र परिवारादिकोंका संयोग जो करे, सो कु देव है, क्योंकि जो ऐसा रागी छेपी है वो मोक्षके तांड़ कजी नहीं हो सका, सो नो जून, प्रेत, पिशाचादिकोंकी तरे क्रीडाप्रिय देवता मात्र है. ऐसा देव अपने सेवकोंकें कैसे मोक्ष दे सका है? आपही यदि वो रागी, छेपी, कर्म परतंत्र है, तो सेवकोंका क्या कार्य सार सका है? इस हेतुसें वोजी कुदेव है.

पुनः कुदेवके सङ्गण सिग्वते हैं. जो नाद, नाटक, हास्य, संगीत, इनके रममें मग्न है वाद्यंत्र (बाजा) बजाता है अरु आप नृत्य करता है तथा ओ रोंको नचाता है, आप हसता अरु कूदता है, बिपयी रागोंको गाता है, अरु मंगीन घोसता है इत्यादिक मोक्षकर्मके बश संसारकी चेष्टा करता है, अनाथ जिसका अस्थिर हो रहा है, जो आपही ऐसा है तो फेर सेवकोंकें शान्तिपद कैसे प्राप्त कर सका है? जैसें परंरुद्ध कदपट्टकी तरें इष्टा नहीं पुर सका, किसी मूढ पुरुषने जो परंरुद्ध कदपट्ट मान लीया तो क्या वो कदपट्टका सारा काम दे सका है? ऐसेंही किसी मिथ्यादृष्टि पुरुषने जो कुदेवकें परमेश्वर मान लीया तो क्या वो परमेश्वर हो सका है? कर्त्ता नहीं सका. इमी बान्ते प्रथम परिच्छेदमें जो लक्षण परमेश्वर के सिंगे हैं तिनही लक्षणों बाजा परमेश्वर देव है शेष सब कुदेव हैं.

प्रश्नः—हमने तो ऐसा सुण सका है जो जैनी ईश्वरको नहीं मानते, उनका जो मन है, सो अनीश्वरीय है थार तुमने तो प्रथम परिच्छेदमें कह जगे अहंन जगवंत परमेश्वर सिग्या है अरु प्रथम परिच्छेद तो जग बान्हीके स्वरूपकथनमें समाप्त किया है, यह कैसें मंनत्र हो सका है?

उत्तरः—हे 'अप्य' ? केइ कहने हैं कि जैनमतावलंबी ईश्वरको नहीं मानने ऐसा कहना उनका मिथ्या है. उनोंने कर्त्ता जैनमनका शास्त्र पढ़ा वा सुना न हागा तथा किसी वृद्धिमान् जैनीका मंसर्गेनी न करा होगा, जेकर जैन मनका शास्त्र पढ़ा वा सुना होना तो कर्त्ता ऐसा न कहना, जो जैनी ईश्वरको नहीं मानने, जेकर जैनी ईश्वरको न मानने तो यह जो अठोरु सिंगे जने है वो किमही भुतिहै हैं ॥२३॥ स्वामय्ययं विभुमणिं यमगं गमायं, इह जगती श्वरमनंदननं गच्छेत्तुम् ॥२४॥ अरु विविनयां गमने कमे हैं, हानमय्ययं ममत्वं प्रवर्त्तति मंत्रः ॥२५॥ अन्वार्थः—हे जिन ! (मंत्रः) मय्ययं (रसां) मेरे प्रति (अन्तरः) अन्तर (प्रवर्त्तति) कहने है, अय्यय अन्तरयं जो न प्राप्ति होय

सो द्रव्यार्थ नयके मतसें अव्यय तीनो कालोंमें एक स्वरूप है. विजाति-शो जता है परमेश्वर पणा करी सो (विभु) अथवा विजवति-समर्थ होवे कमोन्मूलन करके सो (विभु) अथवा इंद्रादिक देवताओंका जो स्वामी सो विभु, सत्पुरुष इस वास्ते तुजकूं विभु कहते हैं. पुनः कैसें तुजकूं? (अचिं त्यं) अध्यात्म ज्ञानीजी तुजकूं चिंतवन करनेकूं समर्थ नहीं. फेर कैसें तुजकूं? (असंख्यं) गुणाकी संख्या (गिणती) नहीं कि इतने गुण है जगवान्में इस हेतुसें सत्पुरुष तुजकूं असंख्य कहते हैं. फेर कैसें तुजकूं? (आद्यं) आदिमें जो होवे सर्व लोक व्यवहारके प्रवर्त्तावणसें संत तेरेकूं आद्य क हते हैं, अथवा अपने तीर्थकी आदि करणसें आद्य. फेर कैसें तुजकूं? (ब्रह्माणं) अनंत आनंद करी जो सर्वसें अधिक वृद्धि वाला है सो ब्रह्म, सत्पुरुष तुजकूं ब्रह्म कहते हैं. फेर कैसें तुजकूं? (ईश्वरं) सर्व देवताओंमें गकुर कहते हैं. फेर कैसें तुजकूं? (अनंतं) अनंत ज्ञान दर्शनके योगतें अनंत अथवा नहीं है अंत जिसका सो अनंत कहते हैं अथवा अनंत चारों क री संयुक्त १ अनंतज्ञान, २ अनंतबल, ३ अनंतसुख, ४ अनंतजीवन, सो अनंत कहते हैं. फेर कैसें तुजकूं? (अनंगकेतुं) कामदेवकूं केतुके उदय समान नाशकारक सो अनंगकेतु कहते हैं अथवा नहीं है अंग औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण शरीर रूपी चिन्ह जिसके सो अनंग केतु. जविष्य नैगमके मत करी कहते हैं. फेर कैसें तुजकूं? (योगीश्वरं) योगी जो चार ज्ञानके धरनारे तिनोका ईश्वर कहते हैं. फिर कैसें तुजकूं? (विदितयोगं) जाण्या है सम्यक् ज्ञानादिरूप जिसने अथवा योगो(ध्यानादि जाण्या है जिसने) अथवा विशेष करके दितः खंडित कीया है कर्मका संयोग जीवके साथ जिसने सो विदितयोग कहते हैं, फेर कैसें तुजकूं? (अनेकं) ज्ञान करके सर्वगत होनेसें अथवा अनेक सिद्धांके एकत्र रहने सें अथवा गुण पर्यायकी अपेक्षा करके अथवा रूपजादि व्यक्ति जेदसें अनेक कहते हैं. फिर कैसें तुजकूं? (एकं) अद्वितीय उत्तमोत्तम अथवा जीव द्रव्यापेक्षया एक कहते हैं. फेर कैसें तुजकूं? (ज्ञानस्वरूपं) ज्ञान द्वायिक केवल है स्वरूप जिसका सो ज्ञानस्वरूप कहते हैं. फेर कैसें तुजकूं? (अमलं) नहीं है अष्टादश दोषरूप मल जिसके सो अमल क हते हैं, ए पूर्वोक्त पंदरा विशेषण ईश्वरके मतांतरोंमें प्रसिद्ध है.

तथा ॥श्लोका॥“बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिवोधात्, त्वं शंकरासि जगन्
त्रयशंकरत्वात् ॥ धातासि धीर शिवमार्गविधेर्विधानात्, व्यक्तं त्वमेव जगन्
पुरुषोत्तमोसि ॥ २ ॥ अर्थः—हे विबुधार्चित ! विबुध जो देवताओं की
पूजिता सातो सुगतामेसें कोइएक सुगत, तिसकूं बुद्ध कहीयें, सो बुद्ध तुंही
हैं, किस कारणसें? धर्मबुद्धि प्रगट करणसें फेर तूं शंकर है किस कारणसें?
तीन जगनमें शं जो सुख करे सो शंकर. हे धीर! त्वं धाता (ब्रह्मा है) किस
कारणसें? शिव मोक्ष तिसका मार्ग जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य रूप तिसकी
विधि करणसें तूं विधाता है. हे जगन् ! तूं व्यक्त प्रगट पुरुषोमें उत्तम है
॥२॥ इत्यादि लाखों श्लोक परमेश्वरकी स्तुतिके हैं, जे कर जैनी ईश्वरकों
न मानते तो इन श्लोकोसें उनोने किसकी स्तुति करी है? इस कारणसें
जो कहते हैं कि जैनी लोग ईश्वरकूं नहीं मानते, वे प्रत्यक्ष मृपावादी हैं.

प्रश्नः—यदुत अग्रा हूया जो मेरे मनका संशय दूर हूया. परंतु एक
घातका संशय मेरे मनमें है, जो तुमने ईश्वर तो मान्या परंतु जगत्का
कर्त्ता ईश्वर जैनमतमें तुमने मान्या है वा नहीं?

उत्तरः—हे जग्य ! जगत्का कर्त्ता जो ईश्वर सिद्ध हो जावे तो जैनी क्युं
नहीं माने? परंतु सर्ववस्तुका कर्त्ता ईश्वर किसी प्रमाणसें सिद्ध नहीं होता.

प्रश्नः—जे कर किसी प्रमाणसें ईश्वर सर्व वस्तुका कर्त्ता सिद्ध नहीं हो
ता तो (१) नवीन वेदांती (२) नैयायिक, (३) वैशेषिक, (४) पातांजल,
(५) नवीन सांख्य, (६) ईसाइ, (७) मुसलमान प्रमुख अनेक मतावलंबी
पुरुष ईश्वरको जगत्का कर्त्ता वा सर्ववस्तुका कर्त्ता मानते हैं क्या इनमेंसुं
कोइनी ईश्वरकूं जगत्का कर्त्तापणामें निषेध करनेवाला समज धार न जया?

उत्तरः—हे जग्य ! (१) जैन, (२) बौद्ध, (३) प्राचीन सांख्य,
(४) पूर्वमीमांसाकारक जैननीय मुनिके संप्रदायी जट प्रताकर इत्या
दिक अनेक मतावलंबीयोमेंसें कोइनी समजवार न जया जो ईश्वरकूं ज
गत्का कर्त्ता स्थापन करता.

प्रश्नः—जैन बौद्ध अरु प्राचीन सांख्यादि उक्त मतावलंबी सर्व अज्ञा
नी हूवे हैं इम हेतुमें ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता नहीं मानते ?

उत्तरः—नवीन वेदांती, नैयायिक अरु वैशेषिकादि यहनी सर्व अज्ञा
नी हूवे हैं, जो ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता मानते हैं.

प्रश्न:-ईश्वर जगत्का वा सर्व वस्तुका कर्ता है, ऐसे जो मानियें, तो क्या दूषण है?

उत्तर:-ईश्वरहूँ जगत्का कर्ता वा सर्व वस्तुका कर्ता माननेसें बहुत दूषण आते हैं.

प्रश्न:-तुम तो अपूर्व बात सुणाते हो, हमने तो कदेइ नहीं सुना जो ईश्वरहूँ जगत्कर्ता वा सर्व वस्तुका कर्ता माननेमें दूषण आता है? अब तो आप हूँ कहना चाहियें जो जगत्का कर्ता माननेसें ईश्वरहूँ क्या दूषण आता है?

उत्तर:-हे भव्य! प्रथम तुम यह बात कहो की तुम कोणसा ईश्वर जगत्का कर्ता मानता हो?

प्रश्न:-क्या ईश्वरजी कइक तर्रें हैं, जो आप हमसें ऐसा पूछते हो?

उत्तर:-क्या तुम नहीं जानते जो दो तर्रें ईश्वर मतावलंबीयोंने माने हैं? एक तो जगदुत्पत्तिते पहिलां केवल एकही ईश्वर या जगत्का उपादा नादिक कोइजी कारण वा दूसरी वस्तु नहीं थी, एकही शुद्ध बुद्ध सच्चिदानं दादि स्वरूप युक्त परमेश्वर या, एकैक जीवोंके तो ऐसा ईश्वर, जगत् वा सर्व वस्तुका रचने वाला अजिमत है, और दूसरोंने तो (१) जीव, (२) परमाणु, (३) आकाश, (४) काष्ठ, (५) दिशादि सामग्री वाला, एताव ता एक तो ईश्वर उक्त विशेषण संयुक्त, और दूसरी सामग्री जिससें ज गत् रचा जावे, ए दोनो वस्तु अनादि हैं, एतावता एक तो ईश्वर और दूसरी जगत् उत्पन्न करेकी सामग्री, ए दोनो कित्तीने बराबे नहीं अ ने माने हैं, तुमहूँ इन दोनो मतोंमें कौनसा मत सन्मत है?

पूर्वपक्ष:-हमहूँ तो प्रथम मत सन्मत है, क्युं के वेदादि शास्त्रोंमें ऐसा लिखा है, "एतन्मादात्मन आकाशः संवृतः आकाशा ऋतुः वायोरग्निः अग्ने रातः अन्नस्य पृथिवी पृथिव्या ओषधयः ओषधिविभ्योऽन्नं अन्नादेतः रेतसः पुनसः सत्वा एषु पुनोऽक्षरत्ननयः" यह तेजिरीय शास्त्राकी श्रुति है, तथा "न देव सौम्येदमग्रयासीदेकमेवाद्वितीयं तदेकान बहुधां प्रजायेयेति" यह श्रु ति तांदोग्य उपनिषद्की है, तथा "नामदानीतो सदासीनदानीतासीजमान व्योमररोपत् किमावरीकः बुद्धकल्प इतीत्ययः किमासीनद्वनं गतीरे" यह श्रु ति शङ्खवेदकी है, "आत्मा वा इदमग्रयासीताम्यत् किंविन्मिपत् न ईकत सो कानुवृजरेति" यह ऐतरेय ब्राह्मणकी श्रुति है, अथादि अनेक श्रुतियोंमें लिख

होता है, जो सृष्टिसे पहिलें एक केवल ईश्वरही था, न जगत् था और न जगत्का कारण था, एकही ईश्वर शुद्ध स्वरूप था, तथा ईसाइ वा मुसलमान मतवालेजी औसे ही मानते हैं. इस हेतुसे हम प्रथम पक्ष मानते हैं.

उत्तर:-हे पूर्वपक्षी ! तुमारा यह कहना ईश्वरकूं बड़ा कलंकित करता है ?

पूर्वपक्ष:-जगत्के रचनेसे ईश्वरकूं क्या कलंक प्राप्त होता है ?

उत्तरपक्ष:-प्रथम तो जगत्का उपादान कारण है नहीं, इस हेतुसे जगत् कदेजी उत्पन्न नहीं हो सका, जिसका उपादान कारण नहीं है, सो कार्य कदापि उत्पन्न नहीं हो सका; जैसे गड़के सांग.

पूर्वपक्ष:-ईश्वरनें अपनी शक्ति, नामांतर, कुदरतसें जगत्कूं रचा है ईश्वरकी जो शक्ति है, सोइ उपादान कारन है.

उत्तरपक्ष:-ईश्वरकी जो शक्ति है सो ईश्वरसें जिन है, वा अजिन है ? जे कर कहोगे जिन है, तो फेर जड है वा चेतन है ? जेकर कहोगे जन है, तो फेर नित्य है, वा अनित्य है ? जेकर कहोगे नित्य है, तो फेर यह जो तुमारा कहनां था जो सृष्टिसे पहिलें एक केवल ईश्वर था दूसरा कुठजी नहीं था; यह ऐसा हुवाकि जेसें उन्मत्तोंका वचन, अपने ही वचनकूं आप ही जूठ करा. जे कर कहोगे अनित्य है, तो फेर उसका उपादान कारण और ईश्वरकी शक्ति हुइ तिस शक्तिकी उत्पन्न करणे वाली और शक्ति हुइ, इसी तरें करतां अनवस्थादूषण आता है, जे कर कहोगे चेतन है, तो फिर नित्य है, वा अनित्य है ? दोनोही पक्षोंमें पूर्वांक अपरापरस्ववचनव्याहत अरु अनवस्था दूषण है, जेकर कहोगे ईश्वर शक्ति ईश्वरसें अजिन है, तो सब वस्तुकों ईश्वरही कहनां चाहिये, जब सब वस्तु ईश्वरही हो गइ तो फेर अग्नि और घृता, नरक और स्वर्ग, पुण्य और पाप, धर्म और अधर्म, ऊंच नीच, रंक राजा, सुशील और दुःशील, राजा और प्रजा, चोर और साधु, (संत) सुखी और दुःखी. इत्यादिक सब कुठ ईश्वरही आप बना, तब तो ईश्वरने जगत् क्या रचा, आपही आपणा सत्तानाश कर लीया, ए प्रथम कलंक ईश्वरकूं लगता है. (१) तथा जब ईश्वर आपही सब कुठ घन गया, तो फेर वेदादिक शास्त्र क्युं बनाये ? अरु उनके पढणेसें क्या फल हुआ ? ए दूसरा कलंक. (२) तथा जब वेदादिक बणाये तब आपणे आपकूं ज्ञानीहो ए वास्ते पहिलें तो अज्ञानी था ए तीसरा कलंक. (३) तथा शुद्धसें अ

शुरू बना, जो जगत् रूप होएँकी मेहनत करी, सो निष्फस हुई. ए चो बा कलंक. (५) कोइ वस्तु जगत् में अत्री वा बूरी नहीं ए पांचवा कलंक. (६) क्युं आपणे आपकूं संकटमें डाला ? ए ठछा कलंक. इत्यादि अनेक कलंक तुम ईश्वरकूं लगाते हो.

पूर्वपक्षः—ईश्वर सर्व शक्तिमान् हैं. इस हेतुसे ईश्वर, बिनाही उपादान कारणसे जगत् रच सका है.

उत्तरपक्षः—यह जो तुमारा कहनां है सो प्यारी जार्या, वा मित्र मा नेगा परंतु प्रेक्षावान् कोइजी नहीं मानेगा. क्युंकि इस तुमारे कहनेमें कोइजी प्रमाण नहीं, परंतु जित्ता उपादान कारण नहीं वो कार्य कदेजी न हो सका. जैसे गड्ढेका लौंग, ऐसा प्रमाण तुमारे कहनेकूं बाधने वाला तो है, परंतु साधने वाला कोइजी नहीं, जेकर हठ करके स्वकपोलकल्पितही हूं मानोगे तो परीक्षा बाखोकी पंक्तिमें कदेजी नहीं गिने जाउंगे. तथा इस तुमारे कहनेमें इतरेतराश्रय रूपका प्रहार पडता है, यथा सृष्टिसे पहिले उपादानादि सामग्री रहित केवल शुरु एक ईश्वर सिख हो जावे तो सर्वशक्तिमान् सिख होवे, जब सर्व शक्तिमान् सिख होवे तो सृष्टिसे पहिले उपादानादि सामग्री रहित केवल शुरु एक ईश्वर सिख होवे, इन दोनोंमेंसूं जब तक एक सिख न होवे तब तक दूसरा कजी सिख नहीं होता, तथा इस तुमारे कहनेमें चक्रक रूपण होता है, सृष्टि का कर्ता सिख होवे, तथा सर्व शक्तिमान् सिख होवे, जब सर्व शक्तिमान् सिख होवे तब सृष्टिसे पहिले सामग्री रहित केवल शुरु एक ईश्वर सिख होवे, तब सृष्टिकर्ता सिख होवे. ऐसे प्रगट चक्रक रूपण है.

पूर्वपक्षः—ईश्वरतो प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिख है, फेर तुम उत्तकूं सृष्टिकर्ता क्युं नहीं मानते ?

उत्तरपक्षः—जे कर ईश्वर सृष्टिका कर्ता प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिख होवे, तो किसीकूनी अतान्य न होवे, औ तुमारा हमारा ईश्वर विपक्षिक विवाद कजी नहीं होवे. क्युंकि प्रत्यक्षमें विवाद नहीं होता है, तथा ईश्वरका प्रत्यक्ष देखणांजी तुमारे वेद मंत्रसे विरुद्ध है. तथा च वेदमंत्रः ॥ अपाणिपादो जवनोग्रहीता, पश्यत्यबहुःशृणोत्यकर्णः ॥ स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता,

तमादुर्यं पुरुषं पुराणम् ॥ इस मंत्रसे कहता है ईश्वरकों जानने वाला कोइजी नहीं,

पूर्वपक्षः—बिना कर्त्ताके जगत् कैसे हो गया ? इस अनुमान प्रमाणसे ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता सिद्ध होता है, सो तुम क्यों नहीं मानते ?

उत्तरपक्षः—इस तुमारे अनुमानकूं दूसरे ईश्वरपक्षमें खंमन करेंगे, ऐसे उक्त प्रकारसे एक केवल उपादानादि सामग्री रहित, ऐसे सृष्टिसे पहिले परमेश्वर नहीं सिद्ध हुआ, तोजी हम आगे चलते हैं कि जब ईश्वरने इन जीवोंकूं रचे थे तब (१) निर्मल रचे थे ? (२) पुण्य वाले रचे थे ? (३) पाप वाले रचे थे ? (४) मिश्रित पुण्य पाप अर्द्धों अर्द्ध वाले रचे थे ? (५) पुण्य थोडा पापाधिक ऐसे रचे थे ? (६) किंवा पुण्याधिक पाप थोडे वाले रचे थे ? जेकर प्रथम पक्ष ग्रहण करो गे तो जगत्में सर्व जीव निर्मलही चाहिये, फेर वेदादि शास्त्रों द्वारा उनकूं उपदेश करना बृथा है, अरु वेदादि शास्त्रोंका कर्त्ताजी मूढ सिद्ध हो जावेगा, क्योंकि जब आगेही जीव निर्मल हैं तो उसके वास्ते शास्त्र काहेकूं रचने थे, जो बल निर्मल होता है तिसकूं कोइजी बुद्धिमान् धोता नहीं, जे कर धोवे तो महामूढ है, इस कारणसे जो निर्मल जीवोंके उपदेश निमित्त शास्त्र रचे सोजी मूढ है.

पूर्वपक्षः—ईश्वरनेतो जीवोंकूं शुद्ध निर्मल एतावता अछाही बनाया था, परंतु जीवोंने अपणी इछासे अछा वा बुरा (जूंम) काम कर लिया है, इसमें ईश्वरकूं कुछ दोष नहीं ?

उत्तरपक्षः—जब ईश्वरने जीवोंमें अछा वा बुरा काम करणेकी शक्ति नहीं रची, तो फेर जीवोंकूं पुण्य वा पाप करणेकी शक्ति कहांसें आई ?

पूर्वपक्षः—शक्तियां तो जीवमें सर्व ईश्वरनेही रचियां हैं. परंतु जीवों कूं बुरा काम करणेमें प्रवृत्त नहीं करता, बुरे कामोंमें जीव आपही प्रवृत्त हो जाता है, जेसे कोइ गृहस्थने अपणे प्रिय पुत्र बालककूं खेलणे वास्ते एक खिलोना दीया है, परंतु जो वो बालक, उस खिलोनेसे आपणी आंख निकाल लेवे तो माता पिताकां क्या दूषण है ? तैसेही जीवों कूं ईश्वरने जो हाथ, पग, प्रमुख वस्तु दइ है, सो नित्य केवल धर्म करणेके कारणे दइ हैं. पीठें जो जीव उनसे अपणी इछासे पाप कर लेवे तो इसमें ईश्वरकूं क्या दूषण है ?

उत्तरपक्षः—हे जग्य ! यह जो तुमने बासकका दृष्टांत दीया सो यथा
र्थ नहीं, क्युंकि बासकके माता पिताकूं यह ज्ञान नहीं है, जो हम इस
बासकके खेले वास्ते खिलोना देते हैं, सो हमारा बासक इस खिलो
नेसें अपणी आंत फोन लेगा, जेकर बासकके माता पिताकूं यह ज्ञान होता
जो हमारा बासक, इस खिलोनेसें अपणी आंत फोड लेगा तो माता पिता
कजी उत्तके हाथमें खिलोनां न देते, जे कर जान करके देवें तो वो माता
पिता नहीं किंतु ? उत्त बासकके परम शत्रु है, इतीतरे ईश्वर, माता पिता
तुछ है अरु तुम हम उत्तके बासक हैं, जे कर ईश्वर जानता था जो में
इसकूं रचा इसके ताड़ हाथ, पग, मन, इंद्रियादि सामग्री दीनी है, इस जी
वने इस सामग्रीसें बहुत पाप करके नरक जाना है तो फेर ईश्वरने उत्त जी
वकूं क्युं रचा ? जे कर कहोगे ईश्वर यह बात नहीं जानता था जो मेरी ध
र्मकरणेकी दीनी दुइ सामग्रीसें पाप करके यह जीव नरक जावेगा, तो फेर
ईश्वर तुनारे कहनेहीसें अज्ञानी अतर्बज्ञ सिद्ध होता है, जेकर कहोगे ई
श्वर जानता था जो यह जीव मेरी देइ दुइ सामग्रीसें पाप करके नरक
जायगा तो फेर हमारा रचने वाला ईश्वर, परम शत्रु दुआ के नहीं ?
बिना प्रयोजन रंक जीवोंकूं सामग्रीद्वारा पाप करायके क्युं उनकूं नरकमें
नाले ? जब सामग्रीद्वारा प्रथम पाप करानां और पीछे नरकपात करनेका
वंड देना इस तुनारे कहनेसें ईश्वरसें अधिक अन्यायी कोइ नहीं, क्युं के
उत्त जीवकूं प्रथम तो रचा, फेर नरकमें डाला, वस्तु येही तुमने ईश्वरकूं
अन्यायी, अतर्बज्ञ, निर्दयी, अज्ञानी, दुआ नेइनतीरूप कसक दीने,
इस वास्ते निर्मल जीव ईश्वरने नहीं रचा, ए प्रथम पक्षोत्तर.

अथ दूसरा पक्षोत्तरः—जेकर कहोगे ईश्वरने पुरख बाडेही जीव रचे
हैं तो यहजी कहनां तुमारा मिथ्या है, क्युंकि जब पुरखही बाडे सने जीव
ये तो गर्भमेंही अंधे, अंगडे, झुडे, बहिरे होनां, मृंनारूप, नीच वा निर्धन
के कुडमें उत्पन्न होनां, जाव जीव दुःखी रहनां, खाने पीनेको पुरा न
मिलनां, महा कष्ट कारक मेहनत करके पेट भरनां, यह पुरखके उदयसें नहीं
हो सके, अरु बिनाही करे पुरखके जीवोंकूं ईश्वरने पुरख क्युं लगा दीया ?
जेकर बिनाही कखां जीवोंकूं ईश्वरने पुरख लगा दीया तो अने बिनाही
धर्म कखां जीवोंकूं सगे तथा मोक्ष क्युं नहीं पहुंचाय देना ? शास्त्रान

देश करायकें, जूखें मारकें, तृष्णा बुडायकें, राग छेप मिटायकें, घर बार बुडायकें, साधु बनायकें, टुकड़े मंगायकें, दया, दम, दान, सत्यवचन, चोरी का त्याग, स्त्रीका त्याग, इत्यादिक अनेक साधन करायकें पीठे स्वर्ग मोक्ष में पहुंचानां, यह संकट ईश्वरने व्यर्थ खना करकें क्युं जीवोंकूं दुःख दीना इस बातसें तो ऐसे प्रतीत होता है, जो ईश्वरकूं कुठजी समझ नहीं. इति.

अथ तृतीय पक्षोत्तरः—जे कर कहोगे ईश्वरने पाप संयुक्त ही जीव रचे हैं, तो फेर बिनाही जीवोंके कस्यां पाप लगा दीयां तो फेर जब ईश्वरने ही हमारा सत्तानाश करा, तो हम किस आगे विनति करें जो बिना गुना ह हमकूं यह ईश्वर पाप लगाता है, तुम इसकूं मने करो, जो बिना ही करे पाप लगा देवे, ऐसे अन्यायी ईश्वरका तो कजी नाम ही न लेना चाहियें. तथा जेकर ईश्वरने पाप संयुक्त ही सर्व जीव रचे है, तो राजा, आमात्य (मंत्री) श्रेष्ठ, सेनापति, धनवानोंके घरमें उत्पन्न होनां, नीरोगकाय, सुंदर रूप, सुंदर संहनन, घरमें आदर, बाहिर यशोकीर्ति, पंचिंद्रियविषय जो ग, इत्यादिक सामग्री पापसें कदेइ संभव नहीं होती. इस वास्ते जीवों कूं केवल पापवान् ईश्वरने नहीं रचे ॥ इति तृतीय पक्षोत्तर ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ पक्षोत्तरः—जेकर कहोगे अस्मिन् पुण्य पाप वाले जीव ईश्वरने रचे हैं, यह पक्षजी अछा नहीं, क्युंकि आधे सुखी आधे दुःखी ऐसे जीव सर्व जीव देखनेमें नहीं आते ॥ इति चतुर्थ पक्षोत्तर

अथ पंचम पक्षोत्तरः—पांचवा पक्ष सोजी ठीक नहीं, सुख थोडा और दुःख बहुत ऐसे जीव देखनेमें नहीं आते, परंतु सुख बहुत अरु दुःख अल्प, ऐसे बहुत जीव देखनेमें आते हैं ॥ इति पंचम पक्षोत्तर ॥

अथ षष्ठ पक्षोत्तरः—छठा पक्षजी समीचीन नहीं, सुख बहुत अरु दुःख थोडा ऐसे जीव देखनेमें नहीं आते है, दुःख बहुत अरु सुख अल्प, ऐसे बहुत जीव देखनेमें आते हैं. इन हेतुओंसें ईश्वर जीवोंकूं किसी व्यवस्था वाला नहीं रच सका, तो फेर ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता क्युं कर सिद्ध हो सका है? कजी नहीं हो सका. तथा जब ईश्वरने सृष्टि नहीं रची थी तब तो ईश्वरकूं क्या दुःख था? अरु जब सृष्टि रची तब क्या सुख हुआ.

पूर्वपक्ष—ईश्वर तो सदाही परम सुखी है, क्या ईश्वरमें कुठ न्यूनता

है जो उस न्यूनताके पूर्ण करणें सृष्टि रचे ? वो तो जगत्में अपनी ईश्वरता प्रगट करणें सृष्टि रचता है.

उत्तरपक्षः—जब ईश्वरने सृष्टि नहीं रची थी तब तो ईश्वरकी ईश्वरता प्रगट नहीं थी अरु जब सृष्टि रची तब ईश्वरता प्रगट जइ, तो प्रथम जब ईश्वरकी ईश्वरता प्रगट नहीं जइ थी तब तो ईश्वर बड़ा उदास अरु असंपूर्ण मनोरथ ईश्वरताको प्रगट करणें विव्द्वल था. इस हेतु ईश्वर ईश्वरकी ईश्वरता प्रगट करणें विव्द्वल था. इस हेतु ईश्वर ईश्वरकी ईश्वरता प्रगट करणें विव्द्वल था. इस हेतु ईश्वर ईश्वरकी ईश्वरता प्रगट करणें विव्द्वल था. इस हेतु ईश्वर ईश्वरकी ईश्वरता प्रगट करणें विव्द्वल था.

पूर्वपक्षः—ईश्वरने जो सृष्टि रची हैं सो जीवोंमें धर्म करके उनको अनंत सुख देगा इस परोपकारके वास्ते ईश्वरने सृष्टि रची है.

उत्तरपक्षः—धर्म करके जीवोंमें सुख देना यह तो तुमारे कहनेसे परोपकार हुआ, परंतु जो पाप करके नरक गये उनके उपरि क्या उपकार करा ? उनको सुखी करणें क्या ईश्वर परोपकारी हो सका है ?

पूर्वपक्षः—उनको नरकसे निकालके फेर स्वर्गमें स्थापन करेगा.

उत्तरपक्षः—तो फेर प्रथमही नरकमें क्यों जाने दीये ?

पूर्वपक्षः—ईश्वरही सर्व कुछ पुण्य पापादि कराता है, जीवके अधीन कुछ नहीं. ईश्वर जो चाहता है सो कराता है, जैसे काठकी पुतलीको बाजीगर जैसे चाहता है तैसे नचाता है, पुतलीके कुछ अधीन नहीं.

उत्तरपक्षः—जब जीवके कुछ अधीन नहीं, तो जीवको अछे बुरेका फल नहीं चाहिये. क्यों के जो कोई सिरदार किसी नौकरको कहे जो तुम यह काम करो, फेर नौकर सिरदारके कहनेसे वो काम करे, अरु वो काम अच्छा वा बुरा है तो क्या फेर वो सिरदार उस नौकरको कुछ दंड दे सका ? कुछ नहीं दे सका. ऐसेही ईश्वरकी आज्ञासे जब जीवने पुण्य वा पाप करे, तो फेर पुण्य पापका फल जीवको नहीं चाहिये. जब पुण्य पाप जीवके करे न हुए तब स्वर्ग अरु नरक एकी जीवको न होंगे, तब जीवको नरक, स्वर्ग, तिर्यग् अरु मनुष्य, ये चार गति नहीं होंगी. जब चार गति न होंगी, तब संसार नहीं होगा, जब संसार न होगा तब तो वेद, पुराण, कुरान, तौरे, तजवूर, इंजील प्रमुख शास्त्र नहीं होंगे. जब शास्त्र न

होंगे तब शास्त्रका उपदेशकजी न होगा. जब शास्त्रका उपदेशकजी नहीं तो ईश्वरजी नहीं. जब ईश्वरही नहीं तो फेर सर्व शून्यता सिद्ध नई. ए कलंक क्युंकर मिटेगा ?

पूर्वपक्षः—यह जो जगत् हे सो वाजीगरकी वाजीवत् हे, अरु ईश्वर इसका वाजीगर हे, सो इस जगत्कूं रच कर ईश्वर इस खेलसैं खेलता, (क्रीडा करता) हे, नरक, स्वर्ग, पुण्य, औ पाप कुठ नहीं.

उत्तरपक्षः—जब ईश्वरने क्रीडाहीके वास्ते जगत् रचा, तो क्रीडाहीमात्र फल होना चाहियें, परंतु इस जगत्में तो कुष्टी, रोगी, शोकी, धनहीन, बलहीन, महादुःखी, महाप्रलाप कर रहे हैं, जिनकूं देखनेसैं दयाके बश होकर हमारे रोषटे (रोम) खडे होते हैं, तो क्या फेर ईश्वरकूं इन दुःखी यांकूं देख कर दया नहीं आती? जब ईश्वरकूं दया नहीं तो फेर निर्दयीजी कदेइ ईश्वरहो सका हे? अरु जो क्रीडा करने वाला हे, सो बालक की तरें रागी, छेपी, थड़ा होता हे, जब राग छेप हे, तो उसमें सर्व झूषण हैं. जब थापही थोपुणोंसैं जखा हे, तो वो ईश्वर काहेका? वोतो संसारी जीव हे. अरु जब राग, छेप वाला होवेगा तब सर्वइ कदापि न होवेगा, जब सर्वइ नहीं तो उसकूं ईश्वर कौन कह सका हे?

पूर्वपक्षः—जीवोंके करे हूये पुण्य पापके अनुसार ईश्वर दंड देता हे इस हे तुसैं ईश्वरकूं क्या दोष हे? जैसा जिसने कीया, वैसाही उसकूं फल दीया.

उत्तरपक्षः—इस तुमारे कहनेसैं यह संसार थनादि सिद्ध हो गया, अरु ईश्वर कर्ता नहीं, ऐसा सिद्ध हुआ. बाह रे मित्र! तेने थपणे हायसैं थपणां मुंह काखा किया, क्युं के जे जीव थय हैं, अरु जो कुठ इ नकूं इहां फल मिला हे, सो पूर्व जन्ममें करा हुआ उहारा अरु जो पूर्व जन्म था उसमें जो दुःख सुख जीवकूं मिला था, वो उससैं पूर्व जन्म में करा था, इसी तरें पूर्व पूर्व जन्ममें दुःख सुख करणां अरु उत्तरोत्तर जन्म में सुख दुःखका जोगणां इसी तरें संसार थनादि सिद्ध होता हे. थय शोचो कि जगत्का कर्ता ईश्वर केसैं सिद्ध हुआ?

पूर्वपक्षः—हम तो एकही परम ब्रह्म पारमार्थिक सद्रूप मानते हैं.

उत्तरपक्षः—जे कर एकही परम ब्रह्म सद्रूप हे, तो फेर यह जो सरख,

रसाल, प्रियाल, हंताल, ताल, तमाल, प्रवाल प्रमुख पदार्थ अग्रगामि पणे करके जो प्रतीत होते हैं, उं क्युं कर सत् स्वरूप नहीं है?

पूर्वपक्षः—ए पूर्वोक्त जो पदार्थ प्रतीत होते हैं, वे सर्व मिथ्या है तथा च अनुमान प्रपंच मिथ्या है, प्रतीत होऐसें जो अैसा है, सो अैसा है. यथा सीप, चांदीरूप, तैसाही यह प्रपंच है, इस अनुमानसें प्रपंच मिथ्या रूप है, अरु एक ब्रह्मही पारमार्थिक सद्रूप है.

उत्तरपक्षः—हे पूर्वपक्षी! इस अनुमानके कहनेसें तुं तीक्ष्ण बुद्धिमान् नहीं है, सोइ बात कहते हैं, यह जो प्रपंच तुमने मिथ्यारूप माना है सो मिथ्या तीन तरेंका होता है, एक तो अत्यंत अस्तत् रूप, अरु दूसरा है तो कुछ और, अरु प्रतीति होवे औरतरें. अरु तीसरा अनिर्वाच्य इन तीनोंमेंसूं कौनसा मिथ्यारूप प्रपंचकूं माना है?

पूर्वपक्षः—इन तीनों पक्षोंमेंसें प्रथम दो पक्ष तो मेरे स्वीकारही नहीं इस कारण में तो तीसरा अनिर्वाच्य पक्ष मानता हूं, सो यह प्रपंच अ निर्वाच्य मिथ्यारूप है.

उत्तरपक्षः—प्रथम तो तुम यह कहो कि अनिर्वाच्य क्या वस्तु है? ए तावता तुम अनिर्वाच्य किस वस्तुकूं कहते हो? (१) क्या वस्तुका कहने वाला शब्द नहीं है? (२) वा शब्दका निमित्त नहीं है? प्रथम विकल्प तो कल्पनाही करने योग्य नहीं है? यह सरल है, यह रसाल है, अैसा शब्द तो प्रत्यक्ष सिद्ध है. अथ दूसरा पक्ष है तो शब्दका निमित्त ज्ञान नहीं है? वा पदार्थ नहीं है? प्रथम पक्ष तो समीचीन नहीं. सरल, रसाल, ताल, तमाल प्रमुखका ज्ञान तो प्राणी प्राणी प्रत्ये प्रतीत है, सर्व जीव देखने वाले जानते है जो सरल रसाल, ताल, तमाल प्रमुखका ज्ञान हमकूं है. अथ दूसरा पक्ष तो पदार्थ जावरूप नहीं है? कि अज्ञावरूप नहीं है? जे कर कहोगे पदार्थ जावरूप नहीं अरु प्रतीत होता है. तो तुमकूं विपरीता ख्याति मानणी पनी अरु अज्ञेयवादीयोंके मतमें विपरीताख्याति मानणी महा दूषण है. अथ दूसरा पक्ष. जो पदार्थ अज्ञावरूप नहीं तो जावरूप सिद्ध जया, तब तो सत् ख्याति मानणी पनी. अरु जब अज्ञेयवान् मतां गीकार कीया, अरु सत्ख्याति मानणी पनी. तब तो सत्ख्यातिके माननेसें अज्ञेय मतकी जनकूं दृष्टाडैसें काटा. कदापि अज्ञेयमत नहीं सिद्ध होगा.

पूर्वपक्षः—जावरूप तथा अजावरूप ए दोनोही प्रकारें वस्तु नहीं.

उत्तरपक्षः—हम तुमकुं पूछते हैं जो जाव अरु अजाव इन दोनोका अर्थ जो लौकिकमें प्रसिद्ध है वही तुमने माना है? वा इससें विपरीत और तरे का अर्थ, जाव अरु अजावका तुमने माना है? जे कर प्रथम पक्ष मानोगे तो जहां जावका निषेध करो गे तब तो तहां अवश्यमेव अजाव कहना पड़ेगा, अरु जहां अजावका निषेध करोगे, तहां अवश्यमेव जाव कहना पड़ेगा, जो परस्पर विरोधी है, तिसमें एकका निषेध करोगे तो दूसरेकी विधि अय्य कहनी पड़ेगी. अनिर्वाच्यता तो जन्ममूलसें नष्ट हो गई. अथ इस रा पक्षः—तब तो हमारी कुछ हानी नहीं, क्युं के अलौकिक एतावता तुमारे मनःकल्पित शब्द अरु शब्दका निमित्त जो नष्ट हो जावेगा, तो लौकिक शब्द अरु लौकिक शब्दका निमित्त कदापि नष्ट नहीं होगा तो फेर अनिर्वाच्य प्रपंच किस तरे सिद्ध होगा? जब अनिर्वाच्य न सिद्ध हुआ, तो प्रपंच मिथ्या कैसे सिद्ध हुआ? तब एकही अद्वैत ब्रह्म कैसे सिद्ध हुआ?

पूर्वपक्षः—हम तो जो प्रतीति न होवे, उसकुं अनिर्वाच्य कहते हैं.

उत्तरपक्षः—हम तुमारे कहनेमें तो बहुत विरोध थावे है, जे कर प्रपंच प्रतीति नहीं होना तो तुमने अणु प्रथम अनुमानमें जो प्रपंचको प्रतीतिमान हेतु स्वरूप पणे क्युं कर ग्रहण कीया? अरु प्रपंचकुं अनुमान करती वेडां धर्मीपणे क्युं कर ग्रहण कीया? जे कर कहोंगे धर्मी पणे वा प्रतीतिमान हेतुपणे प्रपंचकुं ग्रहण करणमें क्या हृषण है? तो फेर तुमने यह जो उतर प्रतीति करी थी, कि हम ना जो प्रतीति नहीं होवे, उसकुं अनिर्वाच्य कहते हैं, तो फेर प्रपंच अनिर्वाच्य कैसे सिद्ध हुआ? जब प्रपंच अनिर्वाच्य नहीं तब या ना जावरूप प्रपंच सिद्ध होगा, या तो अजावरूप प्रपंच सिद्ध होगा. इन दोनोही पक्षोंमें एकरूप प्रपंचके माननेमें पूर्वोक्त विपरीताभ्यासि तथा मन्व्याति रूप दोनो हृषण फेर तुमारे गछेमें रम्मी डायते हैं, अथ जाग कर कहां जावोगे? हम फेर तुमको सुनते हैं कि यह जो तुम इस प्रपंचकुं अनिर्वाच्य मानते हो, सो प्रत्यक्ष प्रमाणमें मानते हो? वा अनुमान प्रमाणमें मानते हो? प्रत्यक्ष प्रमाण तो इस प्रपंचके सत्त्वरूपही सिद्ध करना है. जैसा जैसा पदार्थ है, वैसा वैसाही प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होना है. अरु प्रपंच जो है सो पर

स्वर (आपसमें) न्यारी न्यारी जो वस्तु है सो अपने अपने स्वरूपमें जाव रूप है. अरु दूसरे पदार्थके स्वरूपकी अपेक्षासे अजाव रूप है. इस इतरे तर विविक्त वस्तुओंमेंही प्रपंच रूप माना है. तो फेर प्रत्यक्ष प्रमाण प्रपंचक अनिर्वाच्य कैसे सिद्ध कर सका है ?

पूर्वपक्षः—पूर्वोक्त जो हमारा पक्ष है. तिसकूं प्रत्यक्ष प्रतिक्षेप नहीं कर सका. क्युं कि प्रत्यक्ष तो विधायकही है, जे कर प्रत्यक्ष इतर वस्तुमें इतर वस्तुके स्वरूपका निषेध करे, तो हमारे पक्षकूं बाधक ठहरे. परंतु प्रत्यक्ष प्रमाण तो ऐंसा है नहीं. प्रत्यक्ष प्रमाणसे इतर वस्तुमें इतर वस्तुके स्वरूप निषेध करणें कुंठ हैं.

उत्तरपक्षः—यहजी तुमारा कहनां असत्य है. अन्य वस्तुके स्वरूपके बिना निषेधकां वस्तुके यथार्थ स्वरूपका कदापि बोध न होगा, पीतादिक वणों करी रहित जब बोध होगा, तबही नील ऐंसे रूपका बोध होगा. तथा जब प्रत्यक्ष प्रमाण करी यथार्थ वस्तु स्वरूप ग्रहण कीया जायगा, तब तो अवश्य अपरवस्तुके स्वरूपका निषेधकी तिहां जाना जायगा. जे कर अन्य वस्तुके निषेधकूं अन्य वस्तुमें प्रत्यक्ष न जानेंगा तो तिस वस्तुके विधि स्वरूपकूंजी प्रत्यक्ष न जान सकेगा, केवल जो वस्तुके स्वरूपकूं ग्रहण करण है. सोइ अन्य वस्तुके स्वरूपका निषेध करनां है. जब प्रत्यक्ष प्रमाण विधि अरु निषेध दोनोंहीकूं ग्रहण करता है. तब तो प्रपंच निग्यारूप कदापि सिद्ध न होगा, जब प्रपंच निग्यारूप प्रत्यक्ष प्रमाणसे न सिद्ध जया, तब तो परम ब्रह्मरूप एकही अछैत तत्त्व कैसे सिद्ध जया? तथा जो तुम प्रत्यक्षकूं नियम करके विधायकही मानोगे, तब तो विद्यावत् अविद्याकीजी विधि तुमकूं मानणी पड़ेगी. सो यह ब्रह्म अविद्यारहित प्रत्यक्ष प्रमाणसे ग्रहण कीया, तब तो अविद्याकी प्रत्यक्ष से निषेध ग्रहण होगी. फेर जो तुमारा यह कहनां है की 'प्रत्यक्ष जो है, सो विधायकही है, परंतु निषेधक नहीं.' ऐंसे वचन कहने बाधेकूं क्युं न उन्मत्त कहनां चाहियें. अब जो आगे अनुमान कहेंगे, तिस करकेजी पूर्वोक्ततरे अनुमानका पक्ष बाधित है. सो अनुमान हमारा ऐंसे है. प्रपंच निग्या नहीं है, असत्तें विवक्षण होणेंते जो असत्तें विवक्षण है, सो ऐंसा है. यथा आत्मा तैसा ही यह प्रपंच है, तथा प्रतीयमान जो तुना

रा हेतु है, सो ब्रह्मात्माके साथ व्यञ्जिचारी है, जैसे ब्रह्मात्मा प्रतीयमान तो है, परंतु मिथ्यारूप नहीं है, जे कर कहोगे कि ब्रह्मात्मा अप्रतीयमान है तो वचनगोचर न होगा, जब वचनगोचर नहीं तब तो तुमकूं गुंगे बनना ठीक है, क्युं कि ब्रह्म बिना अपर तो कुठ है नहीं, अरु जो ब्रह्मात्मा है, सो प्रतीयमान नहीं, तो फेर तुमकूं हम गुंगेके बिना और क्या कहे ? प्रथम अनुमानमें जो तुमने सीपका दृष्टांत दीया था, सो साध्य विकल है, क्युं कि जो सीप है सोजी प्रपंचके अंतर्गत है, अरु तुम तो प्रपंचकूं मिथ्यारूप सिद्ध करा चाहते हो, यह कजी नहीं हो सका है, जो साध्य होवे सोइ दृष्टांतमें कहा जावे, जब सीपकाजी अजीतक सत् असत् पणा सिद्ध नहीं, तो उसकूं दृष्टांतमें काहेकूं खानां ? तथा हम तुमकूं पूछते हैं कि यह जो तुमने प्रथम अनुमान प्रपंचके मिथ्या साधनेकूं कीना था सो अनुमान इस प्रपंचसे जिन है वा अजिन है ? जे कर कहोगे जिन है, तो फेर सत्य है, वा असत्य है ? जे कर कहोगे सत्य है, तो तिस अनुमान सत्यकी तरें प्रपंचजी सत्यही स्वरूप है, जे कर कहोगे असत्य स्वरूप है, तो फेर क्या शून्य है ? वा अन्यथा ख्यात है ? वा अनिर्वचनीय है ? प्रथम दोनो पक्ष तो कदापि साध्यके साधक नहीं है. मनुष्यके शृंगकी तरें, तथा सीपके रूपेकी तरें. अरु तीसरा जो अनिर्वचनीय यक्ष है तिसका तो संभवही है नहीं; सो अपणे साध्यकूं कैसे साधेगा ?

पूर्वपक्षः—हमारा जो अनुमान है, सो व्यवहार सत्य है, इस कारणें असत्य नहीं, फेर आपणे साध्यकूं क्युं कर नहीं साध्य सक्ता ? अपितु साध्यही सक्ता है.

उत्तरपक्षः—हम तुमसे पूछते हैं कि जो यह व्यवहारसत्यका क्या स्वरूप है ? व्यवहृतीति (व्यवहारः) ऐसे जो व्युत्पत्ति करियें तब तो ज्ञानका ही नाम व्यवहार उहारा, ज्ञानसे जो सत्य है, सो परमार्थिकही है, इस पक्षमें सत् ग्यातिरूप प्रपंच सिद्ध हुवा. जब प्रपंच सत् सिद्ध हुवा, तब तो एकही परम ब्रह्म सद्गुण अद्वैततत्त्व किसी तरहजी सिद्ध नहीं हो सका, जे कर कहोगे व्यवहार नाम शब्दका सत्य है, तो फेर हम तुमकूं पूछते हैं जो व्यवहारनाम शब्दका है, तो फेर शब्द स्वरूपसे सत्य है ?

वा असत्य है ? जे कर कहोगे शब्द सत्स्वरूप है तो शब्दकी तरे प्रपंचजी सत् स्वरूप है, जे कर कहोगे असत्स्वरूप शब्द है, तो फेर ब्रह्मादि शब्दसें कहे हुये, कैसे सत् स्वरूप हो सकेंगे ? क्युं कि जो आपही असत् स्वरूप है, सो परकी व्यवस्था करणे वा कहनेका हेतु कजी न हो सकता.

पूर्वपक्षः—जैसे खोटा रूपक सत्य रूपकके क्रय विक्रयादिक व्यवहारका जनक होणेसें सत्य रूपक माना जाता है, तैसें ही अनुमान हमारा यद्यपि असत् स्वरूप है तोजी जगत्में सत् व्यवहार करके प्रवर्तक होणेसें व्यवहार सत् है, इस वास्ते आपणे साध्यका साधक है.

उत्तरपक्षः—हे जव्य ! इस तुमारे कहनेसें तुमारा अनुमान पारमार्थिक असत् स्वरूप है, फेर तो जो झूण असत् पक्षमें दीने हैं, सो सर्व इहां पकेंगे, जे कर कहोगे कि हम प्रपंचसें अज्ञेद अनुमानकूं मानते है, तव तो प्रपंचकी तरे अनुमानजी मिथ्यारूप उहरा, तव तो आपणे साध्यकूं कैसें साध सकेगा ? इस पूर्वोक्त विचारसें प्रपंच मिथ्यारूप नहीं, किंतु आत्माकी तरें सत्स्वरूप है, तो फेर एक ही ब्रह्म अद्वैततत्त्व है यह तुमारा कहनां क्युं कर सत्य हो सकता है ? कजी नहीं हो सकता.

पूर्वपक्षः—हमारी उपनिषदोंमें तथा शंकर स्वामीका शिष्य आनंदगिरि, शंकरदिग्विजयके तीसरे प्रकरणमें लिखता है कि “ परमात्मा जगदुपादानकारणमिति ” परमात्मा जो है, सोइ इस सर्व जगत्का कारण है, कारणजी कैसा उपादान रूप है. उपादान कारण उसकूं कहते है कि जो कारण होवे सोइ कार्यरूप हो जावे, इस कहनेसें यह सिद्ध हुआ जो कुठ जगत्में है, सो सर्व कुठ परमात्मा ही आप बन गया, तव तो जगत् परमात्मा रूप ही है. फेर तुम सृष्टि कर्त्ता ईश्वर क्युं नहीं मानते ?

उत्तरपक्षः—वाह रे नास्तिक शिरोमणि ! तुम अपने कहणेकूं कजी विचार शोच कर कहते हो, वा नहीं ? इस तुमारें कहनेसें तो पूर्ण नास्तिक पणा तुमारे मतमें सिद्ध होता है, यथा जब सर्व कुठ जगत् स्वरूप परमात्मरूपही है, तव तो न कोइ पापी हैं, न कोइ धर्मी है, न कोइ ज्ञानी है न कोइ अज्ञानी है, न तो नरक है, न तो स्वर्ग है, साधुजी नहीं, अरु चोर जी नहीं, सत्शास्त्र जी नहीं, अरु मिथ्या शास्त्रजी नहीं, तथा जैसा गोमांसजदी, तैसाही अन्नजदी है, जैसा स्वर्णार्थसिं कामजो

ग सेवन कीया तेसा ही माता, बहिन, बेटीसँ कीया, जैसा चंडाल ते सा ब्राह्मण, जैसा गऊ तेसा संन्यासी, क्युं के जब सर्व वस्तुका कारण ईश्वर परमात्माही उहारा, तब तो सर्व जगतू एकरस एक स्वरूप हे, इ सारा तो कोइ हे नहीं.

पूर्वपक्षः—इम एक ब्रह्म मानते हे, अरु एक माया मानते हे, सो तु मने जो उपर बहुतसँ आख जंजाल लिखे हे, सो सर्व मायाजन्य हे अरु ब्रह्म तो सच्चिदानंद एकही शुद्ध स्वरूप हे.

उत्तरपक्षः—हे अछतवादी ! यह जो तुमने पक्ष माना हे सो बहुत अ समीचीन हे. यथा माया जो हे सो ब्रह्मसँ जेद हे, वा अजेद हे ? जेकर जे द हे तो जग हे, वा चेतन हे ? जे कर जरु हे, तो फेर नित्य हे, वा अ नित्य हे ? जे कर कहोगे नित्य हे, तो अछत मतकें मूलहीकूं दाह कर ती हे, क्युंकि जब ब्रह्मसँ जेद रूप हुइ, अरु जरु रूप जइ, अरु नित्य हुइ, फेर तो तुमने छतपंथ थापही थापणे कहनेसँ सिद्ध कर लीया. अरु अछत पंथ जइ मूलमें कट गया, जेकर कहोगे कि अनित्य हे, तो छे तना छर कनी नहीं होगी, क्युंकि जो नाश होने वाला हे, सो कार्य रूप हे, अरु जो कार्य हे, सो कारण जन्य हे, तो फेर उस मायाका उपादान कारण कौन हे ? सो कहनां चाहियें. जे कर कहोगे थापर माया. तब तो अ नवम्या इषण हे, अरु अछत तीनों काखोंमें कदापि सिद्ध नहीं होगा, जे कर ब्रह्महीकूं उपादान कारण मानोगे, तब तो ब्रह्मही थाप सर्व कृ ठ बन गया, तब तो पूर्वोक्त इषण थाया. जे कर मायाकों चेतन्य मानां गे, नोनी यही पूर्वोक्त इषण होगी, जे कर कहोगे माया ब्रह्मसँ अजेद हे तब तो ब्रह्मही कहनां चाहियें, माया नहीं कहनां चाहियें.

पूर्वपक्षः—इम तो मायाकूं अनिर्वचनीय मानते हे.

उत्तरपक्षः—इम अनिर्वचनीय पदकूं उपर मंडन कर आयें हैं, तैसँ मंगन कम्पां. इहांनी कइ देनां तथा अनिर्वचनीय जो शब्द हे तिसमें निम् जो उभयार्थ हे, तिमका अर्थ नां निषेध रूप कीया हे. कदापक व्याकरणे दोन जो शब्द हे. सो या तो नावका याचक हे वा अनावका याच क हे ? जब नाइकूं निषेध करोगे. तब तो अनाव वा जावेगा, अरु जे कर अनावकूं निषेधोगे तब तो नाव वा जावेगा. ए. नावानावा दोनो धर्म

के तीसरा वस्तुका रूप कोई नहीं। इस वास्ते अनिर्वचनीय जो शब्द है, सो दंजी पुरुषोंने ठक्करूप रचा प्रतीत होता है, इस कहनेसे तो छैत ही सिद्ध होता है. अछैत नहीं.

पूर्वपक्षः—यह जो अछैत मत है, इसके मुख्य आचार्य शंकरस्वामी हैं, जिनोंने सर्वमतोंको खंन करके अछैत मत सिद्ध कीया है, तो फेर ऐसे शंकर स्वामी साक्षात् शिवका अवतार, सर्वज्ञ, ब्रह्मज्ञानी, शीलवान्, सर्वसामर्थ्ययुक्त. उनके अछैत मतको खंनने वाला कौन है ?

उत्तरपक्षः—हे बह्व्रज मित्र ! तुमारी समज मूजब तो जरूर जैसें तुम कहते हो, तैसेंही है, परंतु शंकरस्वामीके शिष्य आनंदगिरिने शंकरदिग्विजय के अष्टावनवे प्रकरणमें जो शंकरस्वामीका वृत्तांत लिखा है, उसके पढ़नेसे तो ऐसा प्रतीत होता है, जो शंकरस्वामी सर्वज्ञ नहीं, अरु कामी है, अरु अज्ञानी है, अरु असमर्थ है, तिस लिखनेसें ऐसाजी प्रतीत होता है कि वेदांतीयोंका अछैत ब्रह्मज्ञान जब ताइयह स्थूल देहरहेगी, तब ताइरहेगा, परंतु इस शरीरके बूझा पीठें किसी वेदांतीयोंका ब्रह्म ज्ञान नहीं रहेगा.

पूर्वपक्षः—वो कौनसा शंकरस्वामीका वृत्तांत है जिसें तुमारी पूर्वोक्त बातें सिद्ध होती है ?

उत्तरपक्षः—जो तुमको वृत्तांत सुनना है, तो हमारे क्या डील है, हम इसी जगें लिख देते हैं. जब शंकरस्वामीने भ्रमनमिथ्रकूं सवाचणी मंन नमिथ्रने यतिव्रत लीया, अरु मंडनमिथ्रकी चार्या जिसका देश्वरस, सवाणी था, सो सरसवाणी आपणे पतिकूं यतिव्रत लीया देख कर अरु सरसवाणी ब्रह्मलोककूं चली, सरसवाणीकूं जातीकूं देख कर शंकरस्वामी जीवन दुर्गामंत्र करके दिग्वंध करते हुये, तिसके पीठें हे सरसवाणी ! तूं ब्रह्म शक्ति है. ब्रह्मके अंशभूतमंननमिथ्रकी तूं चार्या है, उपाधि करके सर्वकूं फलित है. तिस कारणसें मेरे साथ प्रसंग करके फेर तुमको जाणां योग्य है. ऐसे शंकरस्वामीने कहा. पीठें सरसवाणी शंकरस्वामी प्रते कहती हुई किः—पतिके संन्यासते प्रथम ही वैधव्य होणेके जयसें मेनें पृथिवी त्यागी है. तिस कारणसें फेर में पृथिवीका स्पर्श न करुंगी. हे यति ! तूं तो पृथिवीमें स्थित हैं कैसें तेरे प्रसंगके ताइ एक विषय स्थिति होवे, ऐसे शंकरस्वामीकूं कहती प्रते फेर शंकरस्वामी कहते जये किः—हे माता !

तोत्री जूमिकाके उपरि ठ हाथ प्रमाण उंची आकाशमें रहो मेरे साथ सर्व वचनका प्रपंच संचार करके पीठसें जाना ऐसैं आदर पर होकर शंकरस्वामीके साथ सर्वशास्त्रों विषे वेद, इतिहास, पुराणों विषे समय प्रसंग करके पीठें शंकरकूं तिरस्कारके ताड़ें जिसमें छुःखें प्रवेश हे, असा जो कामशास्त्र, तिस विषे नायिका, अरु नायक इनके जेद विस्तारसें सर सवाणी शंकरकों पूठे. तब तो शंकरस्वामी इस विषयकूं जानते नहीं थे, तातें शंकरस्वामी उत्तर न दे सके, मौनी होते जये, तिस पीठें सर सवाणी शंकरस्वामीकूं सत्य करके कहती हुइ कि:-तुमारे जाननेमें यह शास्त्र नहीं आया, निश्चय करके तिस शास्त्रकूं मंही जानती हूं, कालका जानकार शंकरस्वामी सरसवाणी प्रति कहते हुये कि:-हे माता ! तुम इहांही ठ महीने रहो, पीठे में सर्व अर्थोंका निश्चय करके तेरे कहेका उत्तर कहूंगा. ऐसे कह कर शंकरस्वामी आयह पूर्वक सरसवाणीकूं तिहांही आकाश मंजलमें स्थापन करके सर्व शिष्योंकूं यथास्थान जेज करके चार शिष्यो सहित (१) हस्तामलक, (२) पद्मपाद, (३) विधिवत्, (४) आनंदगिरि, ए चार नामक प्रधान शिष्यों करी सेव्यमान तिस नगरसें पश्चिमदिशा नाम गढमें गये, सरसवाणीके प्रश्नोके उत्तर जानने के ताड़ उस नगरका राजा मर गया था, उसका शरीर तिस अवसरमें चितामें जलानेके छुपे होला प्रो, उस शरीरकूं देख कर शंकरस्वामीने अपणां शरीर ब्रह्महीरके प्रांत एक पर्वतकी गुफामें स्थापन करके, शिष्योंकूं कह दः तू क तुमने इस शरीरकी रक्षा करनी. अरु आप शंकरस्वामी परकाय प्रवेश विद्या करके, लिंगशरीर संयुक्त अजिमान सहित उस राजाके शरीर में ब्रह्मरंध्रमें प्रवेश कर गये, तब तो राजाजी उठा शीतोपचार करा, ओ उत्सवसें नगरमें ले आये, राजा मरा नहीं था यह बात प्रसिद्ध कर दी नी, तब तो शंकरस्वामीकूं लोकोनें राजसिंहासन उपर बिठलाया. पश्चात् राजसिंहासनसें उठ कर स्वामीजी वनी राणीके घरमें गये. तहां जाकर उस राणीसें काम कीडा करने लगे, तब तो शंकरस्वामीकी कुशलतासें तिसके आलिंगन करनेसें उत्पन्न हुआ जो सुख संजोग ताकरिके शंकरस्वामीने उस राणीके मुखके साथ तो अपणा मुख जोडा, ओ अपणी ठाती उस राणीके दोनो कुंचों (स्तनो) के उपर जोमी, तेसेही उस राणीकी

नाज़ीसँ अपनी नाज़ी जोमी, औ आपणे पगों करकें राणीके पग संकोचे. एतावता जंघोमें जंघा फसाइ अर्थात् एक शरीरवत् हो गये, दोनो जने व दूत गाढा आलिंगन करनेमें तत्पर हुये, तब तो शंकरस्वामी राणीके कहा स्थानो विपे हाथों करी स्पर्श करते हुये, बहुत सुखमें मग्न हुये, तब तो राणी उनकी आलाप, चतुराई देख कर चित्तमें विचार करने लगी कि देह मात्र करी तो मेरा जर्त्ता है, परंतु इसका जीव मेरा जर्त्ता नहीं, एतो कोइ सर्वज्ञ है. एसा विचार करकें राणीने आपणे नौकरोकूं चारों दिसामें जेजा. अरु कह दीया कि जो पर्वतोमें, वा गुफाउमें वारह योजनोके विचमें जितने शरीर जीव रहित होवे सो सर्व शरीर चित्तामें रख कर जला दिउं. शंकरस्वामी तो विषयमें मूर्छित हो गये, तब तो राणीके नौकरानें चार शिष्योंकूं रक्षक देख कर शंकरस्वामीके शरीरकूं चित्तामें रख कर उनके शरीरकूं अग्नि करकें दाह करने लगे, तब तो शंकरस्वामीके चारों शिष्य, उस नगरमें गये, जिहां शंकरस्वामी थे, उहां शंकरस्वामिकूं काम लोलुपी अति विषयमें वरुवुद्धि देख कर शंकर राजाकें आगें नाटक करने लगे, शंकरस्वामीकूं परोक्ति करकें प्रतिबोध करने लगे सो यह है, जो लिखते हैं:-

(१) “यत्सत्यमुख्यशब्दार्थानुकूलं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (२) नद्येतत्त्वं विदितं नृपु जावं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् (३) विश्वोत्पत्त्यादिविधिहेतुतत्त्वं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (४) सर्वचिदात्मकं सर्वमष्टैतं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (५) परतार्किकैरीश्वरसर्वहेतु, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (६) यद्वेदांतादिजिर्ब्रह्मसर्वस्थं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् (७) यज्जैमिनिनोक्तमखिलकर्म, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (८) यत्पाणिनिः प्राह शब्दस्वरूपं तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (९) यत्सांख्यानां मतहेतुभूतं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (१०) अष्टांगयोगेन अनंतरूपं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (११) सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (१२) नद्येतददृश्यप्रपंचं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (१३) यद्ब्रह्मणो ब्रह्मविषावीश्वराद्यजवन्, ? तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (१४) त्वष्टुपमेवमस्माज्जिर्विदितं राजन् तव पूर्वयत्याश्रमस्थम् ” ॥ इन परोक्तियां करकें राजा प्रतिबोध हुआ, सर्वके सन्मुख तिस राजाकी देहसँ निकल कर जव गये तब तो उस पर्वतकी कंदरामें

अपणे शरीरकूं न प्राप्ति हुवे तव तो अपणे शरीरकूं चितामें देखा, देख कर कपालमध्यमें हो कर प्रवेश करा; तव शरीरके चारो ओर अग्नि प्र ज्वलित हो रही थी, तव तो निकलनां डुप्कर हो गया, फेर शंकरस्वामीने खदमी नृसिंहकी स्तुति करी तव खदमीनृसिंहने शंकरस्वामीकूं जीता अग्नि मेंसे बाहिर निकाला ॥ इति कथा समाप्ता ॥ अब हे ज्ञव्य? तुं विचार कर देख जो में पूवें तुजकूं वार्त्ता कही थी सो सर्व सत्य है या नहीं? क्युंकि (१) जय सरस बाणीके कहनेके प्रश्नका उत्तर नहीं आया, तव तो शंकरस्वामीकूं सर्वज्ञ कौन बुद्धिमान् निष्पक्षी मान सकता है? कोइजी नहीं मानेगा (२) थरु जय राजाकी राणीसें विषय सेवन करा, तव तो कामी होणेंमें कोइ शंकाजी रहती है? (३) थरु जय शिष्यांने आकर प्रतिबोध करा, तव तो अज्ञानी अविषय हो चूके. (४) जय चितामेंसें न निकल सके, तव खदमीनृसिंहकी स्तुति करी तव नृसिंहने आय करकें ज्वलती अग्निमेंसें निकाले, तव शंकरस्वामी अत्यंत सिद्ध होगये, जब शंकरस्वामीने फेर आकर सरसबाणीके प्रश्नका उत्तर दीया, तव तो सरसबाणीने कहा; हे स्वामी ! तुं सर्वज्ञ है. क्या मृतकके शरीरमें प्रवेश करके उसकी राणी के साथ विषय सेवन करके राणी पासों कतुंक कामशास्त्रकी बातों शीख के सर्वज्ञ हो सकता है? सर्वज्ञ तो नहीं हो सकता, परंतु गळे खुरकणी तो हो गइ. सरसबाणीकूं उसने सर्वज्ञ कह दीया, थरु शंकरकूं सरसबाणीने सर्वज्ञ कह दीया. बाह् क्याही सर्वज्ञोंकी जोकी मिली है? सरसबाणी तो ब्रह्मकी शक्ति हो कर फेर स्त्री धन कर मंडनमिश्रसें विषय सेवन करती रही थरु सर्वज्ञती धन बेठी, थरु शंकरस्वामी परस्त्रीसें विषयसेवन करके थरु कतुक काम शास्त्र शीघ्र कर सर्वज्ञ धन बेठे, क्या यह गळे खुरकणी न होइ तो और क्या दुध्या? जब शंकरस्वामी अपणां म्यूख शरीर छोट कर राजाके शरीरमें गये, थरु ब्रह्मविद्यामर्च जूख गये, जे कर न जूखे होते तो उनके शिष्य काहेकूं तत्त्वमसिका उपदेश करते? जब शंकरस्वामी म्यूख शरीरके बदल जाने परब्रह्म विद्या जूख गये, तव तो ब्रह्मविद्या का संबंध. न तो शिष्य शरीरके साथ रहा, न आत्माके साथ संबंध रहा. किंतु म्यूख शरीरहीके साथ रहा, इसमें यह सिद्ध दुध्या कि:-जय वेदांती नर जाते हैं, तव उनका ज्ञानभी नष्ट हो जाता है, थरु म्यूख शरीरहीके

साथ ज्ञानका संबंध रहा परंतु आत्माके साथ नहीं. अरु जो तुमने कहा था कि:-शंकरस्वामीके प्रगट कथन कीये अछेत मतकूं कौन संमन कर सका है? सो हे जय्य! जब शंकरस्वामीका चरित्रही असमंजस है, तो फेर उनके कहे हुये मतकूं कौन सयौक्तिक समज सका है?

पूर्वपक्ष:-“पुरुषएवेदं” इत्यादि श्रुतियोंसे अछेतही सिद्ध होता है.

उत्तरपक्ष:-यहजी तुमारा कहनां असत् है, क्युंकि जो पुरुष मात्र रूप अछेततत्त्व होवे तब तो यह जो दिखलाइ देता है कोइ सुखी, कोइ दुःखी, ए सर्व परमार्थसे असत् हो जावेंगे. जब अैसे होगा तब तो यह जो कहनां है, “प्रमाणतोअधिगम्य संतारनैर्गुणं तद्धिमुखया प्रज्ञया तदुधे दाय प्रवृत्तिरित्यादि” अत्यार्थ:-संतारका निर्गुणपणा प्रमाणसे जान कर, तिस संतारसे विमुक्त बुद्धि हो करके तिस संतारके उधेदके तां इ प्रवृत्ति करे, यह जो कहनां है, सो आकाशके फूँवकी सुगंधिका बर्नन करने तरिखा है. क्युं कि जब अछेत रूपही तत्व है, तब तो नरकादि जवप्रमाण रूप संतार कहां रहा? जित संतारकूं निर्गुण जान कर तिस के उधेद करणेकी प्रवृत्ति होवे.

पूर्वपक्ष:-तत्त्वतः पुरुष अछेत मात्रही है, अरु यह जो संतार निर्गुण वर्णन करा है, सो सदा सर्व जीवोंकूं जो प्रतिनासन हो रहा है, सो सर्व चित्रामकी स्त्रीके अंगोपांग उंचे नीचे जैसे प्रतीत होते हैं, तैसे सर्व संतार प्रतीत होता है. परंतु सर्व चित्रामकी स्त्रीके अंगोपांग उच्च नीचकी तरे प्रांतिरूप है वा प्रांतिजन्य है.

उत्तरपक्ष:-यह जो तुमारा कहनां है सो असत् है. इत बातमें कोइ वास्तव्य प्रमाण है नहीं, तत् यथा जे कर अछेत सिद्ध करे वास्ते को इष्टयगृहृत प्रमाण मानोंगे. तब तो छेतापत्ति होगी. क्युंकि प्रमाणके बिना किलीकाली मत नहीं सिद्ध होता. जे कर प्रमाणके बिनाही सिद्ध मानोंगे तब तो सर्ववादी अपने अपने अजिमतकूं सिद्ध कर लेंगे. त या प्रांतिली प्रमाणहृत अछेतमें निद्राही नाननी चाहियें. अन्यथा प्रमाणहृत अछेत अप्रमाणही हो जावेंगा. प्रांति जब अछेतकाही रूप दुइ तब तो पुन्यका रूप दुइ. ताते प्रांतिनन्दनवाला पुन्यही है नहीं. तब तो तत्त्वव्यवस्था इठली सिद्ध न होइ. जे कर प्रांति निद्रा मानोंगे, तब

तो छेतापत्ति होवेगी, अछेत मतकी हानि हो जावेगी, जेकर स्थंजक कुंजादिकोंसे जेद माननां इसीकुं त्रांति कहोगे, तब तो निश्चय करके स तत्स्वरूप कुंजादिक किसी जगें तो जरूर होंगे. अत्रांतिके देखे बिना क दापि त्रांति देखनेमें नहीं आवेगी, पूर्वे जिसने सच्चा सर्प नहीं देखा, तिसकुं रङ्गमें सर्पकी त्रांति कदापि न होवेगी ॥ तदुक्तं ॥ श्लोक ॥ न दृष्टपूर्वसर्पस्य, रज्ज्वां सर्पमतिः कचित् ॥ ततः पूर्वानुसारित्वाद्, त्रांतिर त्रांतिपूर्विका ॥ १ ॥ इस कहनेसेंजी अछेत तत्त्व खंमन हो गया. तथा पु रुष अछेतत्त्व तत्त्व अयश्य करके दूसरेकुं निवेदन करनां, अपणे आपकुं नहीं. आपणमें तो व्यामोह है नहीं जे कर कहने वालेमें व्यामोह होवे तब तो अछेतकी प्रतिपत्ति कवीनी नहीं होवेगी.

पूर्वपक्षः—जय आत्माकुं व्यामोह है तब ही तो अछेत तत्त्वका उपदे श पीया जाता ?

उत्तरपक्षः—जय आत्माका व्यामोह दूर होगा तब तो आत्मा अयश्य अयस्यांतरकुं प्राप्ति होगी, जय अयस्या बवलेगी, तब तो अयश्य छेताप त्ति हो जावेगी, तथा जय अछेत तत्त्वका उपदेशक पुरुष परकुं उपदेश करेगा, तब तो परकुं अयश्य मानेगा, फेर अछेत तत्त्व परकुं निवेदन कर नां अरु अछेत तत्त्व माननां, यह तो ऐसें दृष्ट्या के, जैसें मेरा पिता कु मार ब्रह्मचारी है, इस बचनके कहनेसें जरूर वो पुरुष उन्मत्त है, जेकर अपणेकुं अरु परकुं इन दोनोकुं जय मानेगा, तब तो छेतापत्ति अयश्य होगी, इस कारणसें जो अछेत माननां है, सो युक्ति विकल है.

पूर्वपक्षः—परमब्रह्मरूप मिद्धही सकल जेद ज्ञान प्रत्ययोंके निराखंवन पदेही सिद्धि है.

उत्तरपक्षः—ए कयन जी तुमारा ठीक नहीं है, कयुंकि परम ब्रह्महीकी सिद्धि नहीं है. जे कर है तो म्वनः सिद्धि है, वा परनः सिद्धि है ? तहां म्वनः सिद्धि तो है नहीं, जे कर होवे तब तो किमीकाती विवाद न रहे, जे कर कहोगे परनः सिद्धि है, तो क्या अनुमानमें है, वा आगमसें है ? जे कर कहोगे अनुमानसें है तो वो अनुमान कौनमा है ? कहो.

पूर्वपक्षः—सो अनुमान यह है कि विवादरूप जो अयं है सो प्रतिज्ञा मानं प्रविष्ट ब्रह्मनामके अंतर है. प्रतिज्ञाममान होंगें जो जो प्रतिज्ञा

समान है सो सो प्रतिज्ञासांत प्रविष्टही देखा है, जैसे प्रतिज्ञास आत्मा प्रतिज्ञासमान है सकल अर्थ सचेतन अचेतन विवादरूप है तिस कारणसे प्रतिज्ञासांत प्रविष्ट है, घटपटादि यह अनुमान है.

उत्तरपक्षः—यह अनुमान तुमारा सम्यक् नहीं है, (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत, इन तीनोंके प्रतिज्ञासांत प्रविष्ट होणेंसे साध्यरूपही हुये.

पूर्वपक्षः—तब तो (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत, इन तीनोंके न होने से अनुमानही नहीं बन सका. जे कर कहोगे कि, (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत, ए तीनों प्रतिज्ञासांत प्रविष्ट नहीं है, तो इनोंहीके साथ हेतु, व्यञ्जिचारी होगा, जे कर कहोगे अनादि अविद्या वासनाके बलसे हेतु दृष्टांत जो है, सो प्रतिज्ञासके बाहिरकी तरें निश्चय करते हैं, जैसे प्रतिपाद्य, प्रतिपादक, सत्ता, सत्तापति जनकी तरें तिस कारणसे अनुमानही हो सका है, अरु जब सकल अनादि अविद्याका विद्यास डूर हो जावेगा, तब तो प्रतिज्ञासांत प्रविष्टही प्रतिज्ञास होगा. विवादही न रहेगा, प्रतिपाद्य प्रतिपादक, साध्य साधन जावही नहीं रहेगा. तब तो अनुमान करनेकाही कुछ फल नहीं, आपही अनुभवमान परम ब्रह्मके होते हुये देश काल अव्यवस्थित स्वरूपके होयां निर्व्यञ्जिचार, सकल अवस्था व्यापकपणे बाधेमें अनुमानका कुछ प्रयोगही नहीं चाहिये है.

उत्तरपक्षः—जो अनादि अविद्या प्रतिज्ञासांत प्रविष्ट है, तब तो विद्या ही हो गई. तब तो अस्तित्वरूप (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत आदिक जेद कैसें दिखा सके? जे कर कहोगे प्रतिज्ञासके बाहिरभूत है, तब तो (१) अविद्या प्रतिज्ञासमान है? वा (२) अप्रतिज्ञासमान है? तिस अविद्याके प्रतिज्ञासमान रूप होणेंसे अप्रतिज्ञासमान तो नहीं. जे कर कहोगे प्रतिज्ञासमान हैं, तो तिसहीके साथ हेतु व्यञ्जिचारी है तथा प्रतिज्ञासके बाहिरभूत होणेंसे तिसके प्रतिज्ञासमान होणेंसे जेकर तुमारे मनमें ऐसा होवेकी अविद्या जो है, सो नतो प्रतिज्ञासमान है, न अप्रतिज्ञासमान, न प्रतिज्ञासके बाहिर, न प्रतिज्ञासके अंदर प्रविष्ट है. न एक है, न अनेक है, न नित्य है, न अनित्य है, न व्यञ्जिचारिणी है, न अव्यञ्जिचारिणी है. सर्वथा विचारके योग नहीं सकल विचा

रांतर अतिक्रांत स्वरूप है. रूपांतरके अज्ञावसें अविद्या जो है, सो निरूपता लक्षण है, यहजी तुमारी बड़ी अज्ञानताका विस्तार है, तेसी निरूपता स्वज्ञावकूं यह अविद्या है, यह अप्रतिज्ञासमान है, ऐसे कौन कथन करनेकूं समर्थ है? जे कर कहोगे यह अविद्या प्रतिज्ञासमान है, तो फेर क्युंकर अविद्या नीरूपसिद्ध होगी, जो वस्तु, जिस स्वरूप कर के प्रतिज्ञासमान है, सो तिसही वस्तुका रूप है; तथा अविद्या जो है, सो विचार गोचर है, वा विचार गोचर रहित है? जे कर कहोगे विचार गोचर है तब तो नीरूप नहीं, जे कर विचार गोचर नहीं, तब तो तिसके मानने वाला महा मूर्ख है, जब विद्या अविद्या दोनोही सिद्ध है, तब तो एक परमब्रह्म अनुमानसें कैसें सिद्ध हुआ? इस कहने करके जो उपनिषद्में ऐक ब्रह्मके कहनेवाली श्रुति है सोजी खंन हो गइ, तथा "सर्व्वेखद्विवंद्रहोत्यादि" वचनकूं परमात्माके अर्थांतर होऐसें छेतापत्ति हो जावेगी, जे कर कहोगे अनादि अविद्यासें ऐसा प्रतीत होता है तब तो पूर्व्वोक्त छूषणोंका प्रसंग होगा, तिस वास्ते अद्वैतकी सिद्धि बंध्या के पुत्रकी शोभावत् है. इस कारणसें अद्वैतमत युक्तिविकल है. इस हेतुसें एकही ईश्वर जगत्सें प्रथम था, यह कहनां मिथ्या है. यह प्रथम ईश्वर के माननेवालोंके मतका खंन हुआ.

अथ दूसरा ईश्वर जगत्के उपादान कारणवाला एक ईश्वर अरु इसरी सामग्री, ए दो पदार्थ अनादि है, तिन दोनोमेंसें सामग्री जो है, सो ऐसे है, (१) पृथिवी, (२) जल, (३) अग्नि, (४) वायु इन चारों के परमाणु, (५) आकाश, (६) दिशा, (७) आत्मा, (८) मन, (९) काल, ए नव वस्तु नित्य हैं, अनादि है, किसीके बनाइ होइ नहीं सो ईश्वर इस पूर्व्वोक्त कारणोंसें इस सृष्टिकों रचता है. अथ मतावलंबीयोंनें जिस रीतिसें ईश्वरकों जगत्का कर्त्ता माना है, सो रीती इहां लिखते है.

उपजातिवंद ॥ कर्त्तास्ति कश्चिद्भूतः सत्त्वः, ससर्व्वगः सस्ववशः सनित्यः ॥ इमाः कुहेवाकविम्वनास्यु, स्तेषां न येपामनुशासकस्त्वम् ॥ १ ॥
 अर्थः—जगत् जो है, सो प्रत्यक्षादि प्रमाणों करके लक्ष्यमाण (दीसता) है, चराचर रूप तीनों जगत्का कोइक जिसका स्वरूप कह नहीं सके ऐसा पुरुष विशेष रचनेवाला है, ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता मानने वाले

वादी ऐसे अनुमान करते हैं कि:-पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिक सर्व बुद्धिवा
लें कर्त्तक करे हुये हैं, कार्य होणेंसे जो जो कार्य है, सो सो सर्व बुद्धि
वालेके करे हुये हैं, जैसे घट तैसेही यह जगत् है, तिस कारणसे जगत्
बुद्धि वालेका रचा हुआ है, जो बुद्धिवाला है, सोही जगवान् ईश्वर है,
ऐसाजी मत कहनां, जो यह तुमारा हेतु असिद्ध है, किस कारणसे अ
सिद्ध है? सो कहते हैं कि:-पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिक अपने अपने कार
णके समूह करके उत्पन्न होये हैं, इस वास्ते कार्य रूप है तथा अवय
वी है, इस करके कार्यरूप है; सर्व वादीयोक्तं निश्चित है. तथा ऐसेजी न
कहनां जो यह तुमारा हेतु अनेकांतिक है तथा विरुद्ध है क्युंकि हमारा
हेतु विपक्षसे अत्यंत हटा हुआ है, तथा ऐसेजी मत कहनां जो यह
तुमारा हेतु कालात्ययापदिष्ट है, क्युंकि प्रत्यक्ष अनुमान आगम करके
बाध्या नहीं है, धर्म धर्मी अनंतर कहनेसे. तथा यहजी मत कहनां जो
तुमारा हेतु प्रकरण सम है, क्युं कि अनुमानसे जो साध्य है, तिसका शत्रु
भूत दूसरे साध्यके साधने वाले अनुमानके अभावसे. तथा ऐसेजी मत
कहनां जो ईश्वर पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिकोंका कर्त्ता नहीं है, बिना शरीरके
होणेंसे मुक्त आत्माकी तरें, यह पीठले तुमारे अनुमानका वैरी अनुमान
है, सो ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता सिद्ध नहीं होणे देता; क्युं कि तुमने तो ईश्वरकूं
शरीर रहित सिद्ध करके जगत्का अकर्त्ता सिद्ध कीया, परंतु हमने तो ईश्वर
शरीरवाला माना है इस कारणे तुमारा अनुमान असत्य है, अरु हमारा
जो हेतु है, सो निरवय है. तथा ईश्वर जो है सो एक है, क्युं कि जो बहुत
ईश्वर मानीयें, तब तो एक कार्य करनेमें ईश्वरोंकी न्यारी न्यारी बुद्धि हो
जावे, तब तो इनके मने करने वाला तो और कोइ है नहीं, फेर कार्य कैसे
उत्पन्न होवे? कोइ ईश्वर तो अपनी इच्छासे चार पगवाला मनुष्य रच देवे,
अरु दूसरा ईश्वर ठ पग वाला रच देवे, तथा तीसरा दो पग वाला रच देवे
अरु चौथा आठ पग वाला रच देवे, इसी तरें सर्व वस्तुकूं विलक्षण वि
लक्षण रच देवे, तब तो सर्व जगत् असमंजस रूप हो जावे. परंतु सो
है नहीं. इस हेतुसे ईश्वर एकही होनां चाहियें, तथा ईश्वर सर्वगत सर्व
व्यापी है, जे कर ईश्वर सर्व व्यापक न होवे, तब तो तीन भुवनमें एक
साथ जो उत्पन्न होणे वाले कार्य हैं, सो सर्व एक कालमें कभी उत्पन्न.

न होंगे, जैसे कुंजारादिक जहां होंगे, तहांही कुंजादिक कर सकेंगे, परंतु देशांतरमें कच्ची कार्य न कर सकेंगे. तथा ईश्वर जो है, सो सर्वज्ञ है, जे कर सर्वज्ञ न होवेगा तब तो सर्व कार्योंका उपादान कारण कैसे जानेगा ? जब कार्योंके उपादान कारणकूं न जानेगा, तब तो जगत् बि बिन्न कैसे रच सकेगा ? तथा स्वयंशः ईश्वर जो है, सो स्वतंत्र हैं किसि दूसरेके अधीन नहीं. ईश्वर अधणी इहांसें सर्व जीवोंकूं सुख दुःखका फल देना है ॥ ठकं च ॥ ईश्वरप्रेरितो भवेत्, स्वर्गं वा स्वप्नमेव वा ॥ अग्नौ जंगुरनीशोप-मात्मनः सुखदुःखयोरिति ॥ १ ॥ अस्वार्थः-ईश्वर हींही प्रेरणाहीसें जगत् यामी जीव, स्वर्ग तथा नरकमें जाता है, क्युंकि ईश्वरके बिना और सर्व जीव आपणे आपकूं सुख दुःखका फल देनेकूं समर्थ नहीं है, जे कर ईश्वरकूं जी परतंत्र (पराधीन) मानीयें, तब तो मुख्य कर्ता ईश्वर न रहेगा, अपर अपरके अधीन माननेसें अनवस्था उपपत्ती लग जायेगा, इस हेतुमें ईश्वर आपणेही वश है, परंतु पराधीन नहीं. तथा "मनिरपः" (सो ईश्वर) नित्य है जेकर ईश्वर अनित्य होवे तब तो निमके उपद्रव करने वाला कोइ और चाहियें, सोतो है नहीं, इस हेतुमें ईश्वर निरपही है, ऐसें पु्योंक विंशेपणों करी संयुक्त ईश्वर (जगवान्) जगत्का कर्ता है, इति पूर्वपक्षः

उत्तरपक्षः-हे बादी ! जो तुमारा यह कहनां है. पृथिवी, पर्यंत, पृश्नादिक बुद्धिवासे कर्ताके रचे हुए है, सो अयुक्त है, क्युं के इस तुमारे अनुमानमें द्यामिका प्रदृश नहीं हों मक्ता है, अरु हेतु जो होना है, सो सर्वत्र द्यानिमें प्रमाण करके मित्र दृया होयाही आपणे साध्यका ग मक होना है, इस कहनेमें सर्व बादियोंकी सम्मति है.

अथ प्रथम तुम यह कहो जब ईश्वर जगत्कूं रचना है, तो ईश्वर गरीर बाधा है ? वा गरीर रहित है ? जेकर कहोगे ईश्वर गरीर बाधा है, तो हमारा मरिवा दृश्य गरीर अर्थात् दिनरात्रि देने वाला गरीर है अथवा निराव आदिकोकी नरे अदृश्य (न दिखलाइ देने वाला) गरीर करी संयुक्त है ? जेकर प्रथम पक्ष मानोगे तब तो प्रत्यक्ष बाधा है. निम ईश्वरके दिनही अरु जी उपद्रव होने हुए दृश्य, इन्द्र. इंद्रधनुष, बादल प्रमुख का

योंके देखनेसें. जैसे “अनित्यशब्दप्रमेयत्वात्” जैसे यह प्रमेयत्व हेतु साधारण अनेकांतिक है, तैसें ही यह कार्यत्व हेतुसाधारण अनेकांतिक है.

२ जेकर दूसरा पक्ष मानोगे, तब जो ईश्वरका शरीर नहीं दिखलाइ देता (१) सो ईश्वरके माहात्म्य करके नहीं दिखलाइ देता ? (२) वा हमारी बुरी अदृष्टका प्रजाब है ? एतावता हमारे खोटे कर्मके प्रजाबसें नहीं दिखलाइ देता है ? जे कर प्रथम पक्ष ग्रहण करोगे जो ईश्वरके माहात्म्यसें ईश्वरका शरीर नहीं दीखता, इस पक्षमें कोइ जी प्रमाण नहीं है, जिससें ईश्वरका माहात्म्य सिद्ध होवे, परंतु हे-वादी ! जे कर त्रुपु (जिस्त) तपा कर पीवें ऐसी सच्ची धीज करे तो कदाचित् मान जी लेवे, अन्यथा नहीं. अरु इस तुमारे कहनेमें इतरेतर आश्रय छूषण जी है, जब माहात्म्य विशेष सिद्ध हो जावे तब अदृश्यशरीर वाला सिद्ध होवे, जब अदृश्यशरीर वाला सिद्ध होवे, तब माहात्म्य विशेष सिद्ध होवे, इतीतरेतराश्रय छूषण. जेकर दूसरा पक्ष पिशाचादिकोंकी तरे अदृश्य शरीर ईश्वरका है ऐसे मानोगे तब तो संशय की निवृत्ति न होवेगी सो कैसें कि:-क्या ईश्वर है नहीं जिसकरके उसका शरीर नहीं दीख पड़ता ? तब तो बांजके पुत्रके शरीरकी तरें, किंवा हमारे पूर्व पापोंके प्रजाबसें ईश्वरका शरीर नहीं दीखता; यह संशय कभी दूर न होवेगा. जेकर कहोगे हमारा ईश्वर शरीररहित है, तब तो दृष्टांत अरु दार्ष्टान्तिक यह दोनो विषय हो जावेंगे और हेतु बिरुद्ध हो जावेगा, क्युंकि घटादिक कार्योंका कर्ता शरीरवालाही कुंजारादिक दीख पड़ता है, अरु ईश्वरकूं जब शरीररहित मानोगे तब तो ईश्वर कुंजरी कार्यकरणकूं समर्थ न होवेगा, आकाशकी तरें नित्यव्यापक अक्रिय जो है, सो अकर्ता है. इस हेतुसें शरीर सहित तथा शरीर रहित ईश्वरके साथ कार्यत्व हेतुकी व्याप्ति सिद्ध नहीं होती है, तथा तेरा हेतु कायाव्याप विष्टजी है, तेरे साध्यके धर्मीका एक देश, वृद्ध, बीजली, वादल, इंद्रधनुषादिकोंका अथवा कोइ बुद्धिमान् कर्ता नहीं दीख पड़ता है, इस वास्ते प्रत्यक्ष करके बाधित होयां पीछे तुमने अथवा हेतु कया. इस वास्ते तुमारा हेतु कालात्ययापविष्ट है. इस तुमारे कार्यत्वहेतुसें बुद्धिमान् (बुद्धिवाला) ईश्वर जगत्का कर्ता कभी सिद्ध नहीं होता है.

तथा दूसरी तरें जगत् कर्ताके खंनन करनेका स्वरूप लिखते हैं; जो

कोइ ईश्वरवादी यह कहते हैं. जगत् सर्व ईश्वरका रचा हुआ है, यह उनका कहनां समीचीन नहीं है. काहेतें कि जगत्का कर्ता ईश्वर कि सी प्रमाणसें सिद्ध नहीं होता है.

पूर्वपक्षः—ईश्वरकूं जगत्का कर्ता सिद्ध करनेवाला अनुमान प्रमाण है, तथाहि जो वहर वहर करके अजिमत फलके संपादन करनेके तांइ प्रवृत्त होवे, तिसका अधिष्ठाता कोइ बुद्धिमान् जरूर होनां चाहियें. जैसें बसोला थारी प्रमुख शस्त्र, काष्ठके दो टुकड़े करणमें प्रवर्ततें हैं, तैसेंही वहर वहर कर सर्व जगत्कूं सुख दुःखादिक जे फल देते हैं तिनका अधिष्ठाता कोइ बुद्धिमान् जरूर चाहियें है, तुमने ऐसें न कहनां जो बसोला थारी प्रमुख आपही काष्ठके दो टुकड़े करणमें प्रवृत्त होते हैं, क्युं कि वोतो अचेतन हैं आपही कैसें प्रवृत्त हो सकें? जे कर कहोगे बसोला थारि प्रमुख स्वभावसें प्रवृत्त होते हैं तब तो तिनकूं सदाही प्रवृत्त होना चाहियें, बीचमें कजी वहरनां न चाहियें, परंतु ऐसें है नहीं, इस पूर्वोक्त हेतुसें जो वहर वहर कर अपने अपने फलके साधनेवाले जीव हैं, तिनका अधिष्ठाता ईश्वर (जगवान्) ही सिद्ध हो सका है, तथा दूसरा अनुमान जो परिमंडलादिक, वृत्त, त्र्यंश, चतुरंश, संस्थान वाले गाम, नगरादिक हैं; वे सर्व ज्ञानवान्के करे हुये हैं, जैसें घटादिक पदार्थ, ते सेही पूर्वोक्त संस्थान संयुक्त पृथिवी, पर्वत प्रमुख हैं. इस अनुमानसेंजी जगत्का कर्ता ईश्वर सिद्ध होता है, इति पूर्वपक्षः ॥

उत्तरपक्षः—जिस अनुमानसें तुमने जगत्का कर्ता ईश्वर सिद्ध करा है, सो तुमारा अनुमान अयुक्त है, क्योंकि यह तुमारा पूर्वोक्त अनुमान ह मारे मतमें जैसें आगे सिद्ध है, तैसेंही सिद्ध करता है, इस वास्ते सिद्ध साधन छूण तुमारे अनुमानमें होता है, जैसें हमारे मतमें आगेही सिद्ध है तैसें लिखते हैंः—संपूर्ण यह जगत्की विचित्रता जो है सो सर्व कर्मके फलसें है, ऐसे हम मानते हैं, क्योंकि यह जो जारतवर्षमें अनेक देशोंमें, अनेक टापुठमें, अनेक हेमवंत आदिक पर्वतोंमें, अनेक प्रकारकें मनुष्यादि प्राणी जो वास करते हैं, अरु जो उनकूं सुख दुःखादिक अनेक तरेंकी अवस्था बण रही है, तिन सर्व अवस्थाओंका कारण कर्म ही जानने. दूसरा कोइ नहीं. अरु देखनेमेंजी कर्मही कारण हो सके हैं.

क्योंकि जब कोई पुण्यवान् राजा राज करता है, तब उसके राजमें सुखा ल, निरुपद्रव देशोंमें होता है, तो वो उस राजाके शुभ कर्मका प्रभाव है, इस कारणसे जो वृद्ध वृद्ध जीवोंके फल देते हैं सो कर्म हैं, कर्म जो हैं सो जीवोंके आश्रय हैं, अरु जीव जो हैं सो चेतन होणसे बुद्धि वाले हैं तब तो बुद्धिवालेके अधीन हो कर कर्म वृद्ध वृद्ध कर फल देते हैं. इस कारणसे सिद्ध साधन दूषण है, जे कर कहोगे हम तो विशिष्ट बुद्धिवाला ईश्वरही सिद्ध करते हैं, परंतु सामान्य बुद्धिवाले जीव नहीं सिद्ध करते? तब तो तुमारा दृष्टांत साध्यविकल है, वसोला आरि प्रमुख विषे ईश्वर अधिष्ठितका व्यापार नहीं उपलब्ध होता है, किंतु कुंनकारादिकोंका व्यापार तहां तहां अन्वय व्यतिरेक करके उपलब्ध होता है.

पूर्वपक्षः—वर्द्धक्यादिकनी ईश्वर प्रेरणाहीसे तित तित काममें प्रवृत्त होते हैं, इस वास्ते हमारा दृष्टांत साध्य विकल नहीं है.

उत्तरपक्षः—तब तो ईश्वरकी और ईश्वरकी प्रेरणाहीसे प्रवृत्त होवेगा परंतु आप नहीं प्रवृत्त होता, सोनी ईश्वरकी दूसरे ईश्वरकी प्रेरणासे प्रवृत्त होगा, तब तो अनवस्था दूषण होगा.

पूर्वपक्षः—बदइ प्रमुख जीव तो सर्व अज्ञानी हैं, इस वास्ते ईश्वरकी प्रेरणाहीसे अपने अपने काममें प्रवृत्त होते हैं, अरु ईश्वर (जगवान्) तो सर्व पदार्थोंका ज्ञाता है, इस वास्ते अनवस्था दूषण नहीं है.

उत्तरपक्षः—यहही तुमारा कहना असत् है, क्योंकि इस तुमारे कहनेमें इतरेतर दूषण होता है, प्रथम ईश्वर सर्व पदार्थका यथावस्थित स्वरूप ज्ञाता सिद्ध हो जावे, तब अन्यकी प्रेरणा बिना ईश्वर आपही प्रवृत्त होता है अतः सिद्ध होवे, जब अन्यकी प्रेरणा बिना ईश्वर आपही प्रवृत्त होता है अतः सिद्ध हो जावे तब तो ईश्वर सर्व पदार्थका यथावस्थित स्वरूप जाननेवाला सर्वज्ञ सिद्ध होवे, जब तांइ दोनोंमेंसे एक सिद्ध न होवे, तब तांइ दूसरेकी सिद्धि कनी न होगी, तथा हे ईश्वरवादी ! हम तुमहें पूछ ते हैं जे कर ईश्वर सर्वज्ञ अरु वीतराग है तो काहेहें और जीवोंहें असत् व्यवहारमें प्रवर्तवि है? क्यों कि जो विवेकी होते हैं वे मध्यस्थही होते हैं, फेर तो जीवोंहें सत्व्यवहारहीमें प्रवृत्त करना चाहिये, परंतु असत् व्यवहारमें नहीं प्रवृत्त करना

चाहियें अरु ईश्वर तो असत् व्यवहारोंमें जी जीवोंकूं प्रवृत्त करता है, तब तो ईश्वरकूं सर्वज्ञ औ वीतराग क्यों कर कहना चाहियें ?

पूर्वपक्षः—ईश्वर (जगवान्) तो सर्व जीवोंकूं शुभ कर्म करनेहीमें प्रवृत्त करता है, इस वास्ते जगवान् सर्वज्ञ और वीतरागही है. अरु जो जीव अधर्म करनेवाले है, उनकूं असत् व्यवहारमें प्रवृत्त करके पीठे न रकपात करके उनकूं फल देता है, जो फेर वो जीव इस इःखसे करता हुआ फेर पाप न करे, इस वास्ते उचित फल देणे करके ईश्वर (जगवान्) धिवेकवान् अरु वीतराग सर्वज्ञ है, उसमें कोइजी दूषण नहीं है.

उत्तरपक्षः—यह जी तुमारा कहना बिना विचारेका है. क्योंकि प्रथम पाप करनेमें जी तो ईश्वरही प्रवृत्त करता है, ईश्वर बिना दूसरा तो कोइ प्रेरक है नहीं. अरु जीव आप तो कुछ कर सका है नहीं, क्योंकि जीव तो अज्ञानी है पापमें वा धर्ममें आप नहीं प्रवृत्त हो सका, तो फेर प्रथम पाप करानेकूं जी वोंकूं प्रवृत्त करना, पीठे नरकमें डालके उस जीवकूं फल जुक्ताना, पीठे धर्म में प्रवृत्त करना, क्या यही ईश्वरकी ईश्वरता, अरु विचार पूर्वक करण है ?

पूर्वपक्षः—ईश्वर (जगवान्) जीवोंकूं कदेश नहीं प्रवृत्त कर्ता, किंतु जीव आपही प्रवृत्त होता है, तब तो जो जीव जैसा जैसा कर्म करता है, उस कर्मके बशसे ईश्वर (जगवान्) जी तैसा तैसा फल उन जीवोंकूं देता है, जैसे राजा राज करता है, परंतु राजा चोरकूं जैसे नहीं कहता जो तूं चोरी कर, किंतु चोरी करनेकी मनाइ तो करता है. फेर जे कर वो चोर जो आपही चोरी करेगा, तब दंड तो राजा देवेगा, तैसे ईश्वर (जगवान्) पाप तो नहीं कराता, परंतु पाप करने वालोंको दंड देता है.

उत्तरपक्षः—यह जी तुमारा कहना अयुक्त है, क्योंकि दूसरे जो राजा हैं, सो चोरोंकूं निषेध करनेमें समर्थ नहीं हैं; क्योंकि केसाही उग्र (कठिन) हुकम बाधा राजा होवें और मन वचन काया करके कितनाही चोरी आदिक पाप कर्म मने करा चाहे, परंतु लोक चोरी आदिक पापकर्म क दापि सूर्यया न ओडेगे. अरु ईश्वर (जगवान्) तो सर्व शक्तिमान् तुम मानते हो, तो फेर सर्व जीवोंकूं पाप करनेमें प्रवृत्त होतो कूं क्यों नहीं मने करता ? जब ईश्वर जीवोंकूं पाप करता मने नहीं करता, तब तो ईश्वर ही जीवोंपासों पाप कराता है, फेर उनकूं दंड देता है, तो फेर वोही

पूर्वोक्त दूषण है. जेकर कहोगे कि जीवोंकूं पापमें प्रवृत्त होतोंकूं ईश्वर मने करने समर्थ नहीं, तो फेर उंचे शब्दसें ऐसें न कहनां जो “सर्व कुठ ईश्वरनेही करा है, और ईश्वर सर्व शक्तिमान् है” तथा जेकर जीव पापजी आपही करता है, अरु धर्मजी आपही करता है, तो फलजी आपही जोग लेवेगा, तो फेर है पूर्वपक्षी ! ईश्वर कर्त्ताकी कल्पना व्यर्थ है.

पूर्वपक्षः—धर्म अधर्म तो जीव, आपही करते हैं, परंतु उनका फल प्रदान तो ईश्वरही कर्त्ता है, जीव जो हैं, सो आपणे करे हुवे धर्म अधर्म का फल आप जोगनेकूं समर्थ नहीं है, जैसें चोर चोरी करता है सो चोरी तो आपही करता है, परंतु उस चोरीका फल (बंदीखाना) जोग ना आप नहीं जोग सका, कोइ दूसरा बंदीखानेमें डालने वाला चाहिये.

उत्तरपक्षः—यहजी तुमारा कहनां असत् है, क्योंकि जब जीव, धर्म अधर्म करने समर्थ है, तो फेर फल जोगनेमें समर्थ क्यों नहीं ? इस संसारमें जैसा जैसा जो जीव पाप, धर्म करता है, तैसा तैसा पाप धर्मके फल जोगनेमें निमित्तजी बन जाता है, जैसें चोर चोरी करता है, तिस चोरीका फल राजा देता है, तथा कुष्ट हो जाता है, तथा शरीरमें कीड़े पन जाते हैं, तथा अग्निमें जल मरता है, तथा पाणीमें डूब मरता है, तथा खड्गसें कट जाता है, तथा तोप बंदूककी गोला गोलीसें मर जाता है, तथा हाट, हवेली, औ माटीके खानेके नीचे दब कर अनेक तर्रके संकट जोग कर मर जाता है, निर्धन हो जाता है, इत्यादि असंख्य निमित्तोंसें आपणे करे कर्मके फलकूं जोका है. इहां बिना निमित्तके दूसरा ईश्वर फलदाता कोइ नहीं दीखता, ऐसें ही नरक स्वर्गादि परलोकमें जी शुभा शुभ कर्म फल जोगनेके असंख्य निमित्त हैं. जे कर कहोगे जो परस्त्री गमन करनेसें इत्यादि पापफलमें क्या निमित्त मिलेगा, जिसके जोगसें फल जो गनां होगा ? यह बात तो मैं (ग्रंथकार) नहीं जानता, जो इस पुण्य पापका यह निमित्त तुमकूं मिल कर फल होगा, क्योंकि मेरेकूं इतना ज्ञान नहीं जो ठीक ठीक पूरा पूरा निमित्त बता सकूं ? परंतु इतना कह सका हूं कि जो जो जीव पुण्य पाप करते हैं, उनके फल जोगनेमें अवश्य कोइक निमित्त जरूर होगा. अरु इस तर्रसें फल जोगेगा, यह निमित्त मिलेगा, अमुक देशमें, अमुक कालमें, इत्यादि सर्व प्रत्यक्षपणे तो अर्हंत, जगवंत

(परमेश्वर) सर्वज्ञके ज्ञानमें जासन होता है. निमित्त कोइजी बिना फल न हीं जोग सक्ता, इस वास्ते ईश्वर फलदाता कल्पना व्यर्थ है, क्या यहजी बुद्धिमानोका कहना है कि जो रोटी पका तो सक्ता है, परंतु आप खा नहीं सक्ता, तथा ईश्वरकूं फलदाता कल्पना करनेसें एक औरजी कलंक तुम परमेश्वरकूं लगाते हो, जेसें किसी पुरुषकूं किसी दूसरेपुरुषने खजा दि शस्त्रसें मारे, तब तो मरने वालेने जो संकट पाया, सो किसके योग से? किसकी प्रेरणासें पाये? जे कर कहोगे ईश्वरने उस शस्त्र वालेकूं प्रेरा, तब तिसने उसकूं मारा, तो फेर उस मारने वालेकूं फांसी क्युं मिलती है? क्या ईश्वरका यही न्याय है, जो प्रथम पुरुषके हाथसें उसकूं मरवा मालनां, थरु पीठे फेर उस मारने वालेकूं फांसी देनां, इस तुमारी सम जने ईश्वरकूं बडा अन्ध्यापी सिद्ध करा है जे कर कहोगे ईश्वरकी प्रेरणा के बिना हीं उस पुरुषने दूसरे पुरुषकूं मारा, थरु दुःखदीया, तब तो निमित्तहीसें सुख दुःखका जोगनां सिद्ध हो गया, फेरजी ईश्वर फलदाता कल्पना करनां यह अल्प बुद्धिवालोंका काम है, तथा है ईश्वरवादी ! तुमकूं एक और बात पूछते हैं कि जो धर्मका फल है किं उन्मत्त देवांगनाठ के सुकुमार शरीरका स्पर्श करना सो तो जीवोंकूं सुखका कारण है, इस वास्ते ईश्वरने यह फल तो जीवोंकूं दीया. परंतु जो अधर्मका फल घोर नरक के कुंममें पडनां, नाना प्रकारके दुःख. (संकट) आस कुंजीपाक चर्मउत्कर्त्तन, अग्निमें ज्वलना, इत्यादि महा दुःख ईश्वर उस जीवकूं क्यों देता है?

पूर्वपक्षः—उस जीवने जो पाप करे थे, उनका फल उस जीवकूं जरूर होनां चाहिये इस वास्ते ईश्वर फल देता है.

उत्तरपक्षः—इस तुमारे कहनेसें तो ईश्वर व्यर्थ ही जीवोंकूं पीडा देता है, क्योंकि जब ईश्वर उस जीवकूं पापका फल न देगा, तब तो जीव कर्म का फल आप तो जोग सक्ता नहीं. फेर नतो शरीर धारेगा थरु नवीन पापजी न करेगा; फेर वेठे वेठाये ईश्वरकूं क्या गुदगुदी उठती है जो फेर उन जीवोंकूं नरकमें डाल देता है? जो मध्यस्थ जाव वाला थरु प रम दयालु होता है, वो किसी जीवकूं कजी निरर्थक पीडा नहीं देता.

पूर्वपक्षः—ईश्वर (जगवान्) अपणी क्रीडाके वास्ते किसीकूं नरकमें डाल ता है, किसीकूं तिर्यचयोनिमें उत्पन्न करता है, किसीकूं मनुष्य जन्ममें,

किसीकूँ स्वर्गमें उत्पन्न करता है, जब वो जीव नाचते, कूदते, रोते, पीटते, बिलाप करते हैं, तब ईश्वर आपणी रची हुई वाजीका तमासा देखता है, इस वास्ते जगत् रचता है.

उत्तरपक्षः—जब औसैं है, तब तो ईश्वर प्रेक्षावान् नहीं है, क्युं कि उसकी तो क्रीडा होती है, श्रु रंक जीव तडफ तमफके महा करुणा स्पद हो कर मर रहें हैं. तो फेर ईश्वरकूँ दयालु माननां यह कैसी तुमारी अज्ञानता है? क्योंकि जो महा पुरुष दयालु सर्वज्ञ होते हैं वे कदापि किसी जीवोंकूँ दुःख दे कर क्रीडा नहीं करते, तो फेर ईश्वर क्रीनार्थी कैसें हो सक्ता है? तथा क्रीना जो है, सो सरागीकूँ होती है श्रु ईश्वर (जगवान्) तो वीतराग है, तो फेर ईश्वर (जगवान्कूँ) क्रीनारत्नमें मग्न होणा कैसें संजवे ?

पूर्वपक्षः—हमारा जो ईश्वर है सो रागी छेपी है इस कारणसैं उसमें क्रीडा करणेका संजव हो सक्ता है.

उत्तरपक्षः—तब तो तुमने मुख चोपमनेके बदले आपणा मुख काला कर लीया, क्योंकि जब रागी छेपी होगा, तब तो ईश्वर शेष जीवोंकी तरें सरागी हुवा, वीतराग न हुवा, श्रु सर्वज्ञजी न हुवा, तब तो हमारे सरीखा हुवा फेर जगत्का रचने वाला क्यो कर हो सक्ता है ?

पूर्वपक्षः—हम तो ईश्वरकूँ राग छेप संयुक्त सर्वज्ञ मानते हैं, इस वास्ते सर्व जगत्का कर्त्ता है.

उत्तरपक्षः—इत तुमारे कहनेमें कोइजी प्रमाण नहीं है, जित प्रमाण सैं ईश्वर रागी, छेपी, सर्वज्ञ सिद्ध होवे ?

पूर्वपक्षः—ईश्वरका स्वभाव ही ऐसा जो रागी छेपीजी होनां, श्रु सर्वज्ञजी रहनां, स्वभावमें कोइ तर्क नहीं हो सक्ती जैसैं अग्नि तो दाढ़क है, परंतु आकाश दाढ़क क्यो नहीं ? इस प्रश्नमें उत्तर यह दीया जायगा जो अग्निमें दाढ़क स्वभाव है, आकाशमें नहीं. इसी तरें ईश्वरजी स्वभावसैं ही रागी, छेपी श्रु सर्वज्ञ है.

उत्तरपक्षः—ऐसैं तो कोइक वादी जी कह सक्ता है जो यह हमारे तन्मुख गझा खनाहै. सो सर्व जगत्का रचने वाला है, जे कर कोइ वादी पूछेकि कित हेतुसैं यह गर्वज जगत्का रचने वाला है ? तब तो तितकूँ

ऐसा उत्तर दीया जायगा जो इस गर्दजका स्वभाव ही ऐसा है, जो जगत्कूं रचके राग छेप बाझा सर्वज्ञ हो कर फेर गर्दज बन जाता ये, इसी तरे महिप आदिक सर्व जीव जगत्के कर्ता वादी सिद्ध कर देंगे, तब तो ईश्वर क्या हुआ जो कुछ अपने मनमें मान्या सो बना लीया, यह तो ईश्वरकूं वना कलंक लगाना है. इस हेतुसे ईश्वर (जगवान्) सर्वज्ञ थरु वीतराग है, फेर क्रीमाके अर्थे कर्त्री जगत्कूं न रचेगा, तथा है ईश्वरवादी ! तेरे कहनेसे जय ईश्वरनेही सर्व कुछ रचा है तब तो सर्व ती नसो ब्रेशठ पाखंड मतके सर्व शास्त्रजी ईश्वरहीने रचे हैं, थरु शास्त्र सर्व आपसमें विरुद्ध हैं, तब तो अवश्य कितनेक शास्त्र सत्य थरु कितनेक असत्य हैं, तब तो जुठ थरु सत्य दोनोंका उपदेशक ईश्वर ही वहरा, तब तो ईश्वर आपही सर्व मतांतरीयोंको आपसमें खनाता है, हजारों लाखों मनुष्य इन मतोंके जगडोंमें मर जाते हैं, तब तो ईश्वरने शास्त्र क्या रचे ? एक जगत्में बड़ा उपद्रव रचा, ऐसे जूठे सच्चे शास्त्र रचनेवालेकूं महा धूर्त कहना चाहिये, नतु ईश्वर. जे कर कहोगे ईश्वरने तो सच्चे शास्त्र ही रचे हैं, जूठे नहीं रचे. जूठे तो जीवोंने आपही बना लीये हैं, तब तो ईश्वरने जगत् जी नहीं रचा होगा, जगत् जी जीवोंने ही रचा होगा क्योंकि ईश्वर सर्व वस्तुका कर्ता सिद्ध हुआ नहीं.

तथा तुमने जो पूर्व दूसरा अनुमान करा था, कि जो जो आकार वाली वस्तु है, सो सो सर्व बुद्धिवालेकी रची हुई है, जैसे पुराना कूवा देखेंगे यद्यपि कारीगर तहां नहीं जी उपलब्ध होता, तो जी कारीगर ही कर्ता अनुमानसे सिद्ध होगा, जैसे नवे कूवेका कर्ता उपलब्ध होता है.

उत्तरपक्षः—यह तुमारा कहना समीचीन नहीं, क्यों कि आकार वाला हेतु, तुमारा संघ्या, वादल, सर्पकी बंवी प्रमुख संस्थान वालोंमें है, परंतु बुद्धिवाला कर्ता कोइ नहीं है. जे कर कहोगे वादल, इंद्रधनुष, सर्पकी बंवी प्रमुख संघाण वाले बुद्धिमानके करे हुये नहीं माने जाते हैं तैसे ही पृथिवी, पर्वत जी बुद्धिमानके करे हुये नहीं मानने चाहिये.

इन पूर्वोक्त प्रमाणोंसे किसी तरे जी ईश्वर जगत्का कर्ता सिद्ध नहीं होता, थव जे पुरुष, ईश्वरकूं जगत्का कर्ता मानते हैं, उनसे हम यह कहते हैं, कि जब तक इन हमारी युक्तियोंका उत्तर सर्वथा न दीया जावे,

तब तांई ईश्वरकुं जगत्का कर्त्ता न मानना चाहियें. जब कोइ ईश्वरवा दी इन युक्तियोंका उत्तर, पूरा दे देवेंगा, तब तो हमजी जगत्का कर्त्ता ईश्वर मान लेवेगें, अन्यथा कजी नहीं माना जायगा.

पूर्वपक्षः—ईश्वर तो जगत्का कर्त्ता सिद्ध नहीं होता, परंतु एक ईश्वर है ऐसा तो सिद्ध होता है कि नहीं?

उत्तरपक्षः—ईश्वर एकही है, यह बात सिद्ध करनेवाला कोई प्रमाण नहीं है, तब तो ईश्वर एक सिद्ध कैसें होवे?

पूर्वपक्षः—ईश्वरके एकत्व सिद्ध होणेमें यह प्रमाण है, कि जहां बहुते एकठे हो कर एक कामकुं करने लगते हैं, तब तो अन्य अन्य मति हो णेसैं एक कार्यजी नहीं बन सकता, ऐसेही जब ईश्वर अनंत होंगे, तब तो सृष्टि प्रमुख एकही कार्यके करनेमें न्यारी न्यारी मति होणेसैं अस संजस कार्य उत्पन्न होवेगा, इस वास्ते ईश्वर एकही होना चाहियें.

उत्तरपक्षः—इस तुमारे प्रमाणसैं तो ईश्वर, एक नहीं सिद्ध होता है, क्यों कि ईश्वर तो किसी वस्तुका कर्त्ता उक्त प्रमाणोंसैं सिद्ध नहीं होता है, तथा एक मधुवत्तेके बनानेमें सर्व मद्दीयोंका एक मता तो हो जाता है, अरु ईश्वर, परमात्मा, निर्विकार, निरुपाधिक, ज्योतिःस्वरूपोंका एक मता नहीं हो सकता, यह बडे आश्चर्यकी बात है? क्या तुमने ईश्वरोंकुं कीडों सेंजी बुद्धिहीन, अजिमानी, अरु अज्ञानी बना दीया. जो उन सर्वका एक मता नहीं हो सकता?

पूर्वपक्षः—मक्षिका जो बहुत एकठी हो कर एक मधुवत्ता आदिक कार्य बनाती हैं, तहांजी एक ईश्वरहीके व्यापारसैं एक मधुवत्ता बनता है.

उत्तरपक्षः—तब तो घडा बनानां, चोरी करनां, परस्त्रीगमन करनां, इत्यादिक सर्व काम, ईश्वरके व्यापारसैं बने सिद्ध होंगे, अरु जीव सर्व, अकर्त्ता सिद्ध हो जावेंगे; फेर पुण्य पापका फल किसकुं होगा? अरु नरक स्वर्गमें जीव, क्यों जेजे जायगे.

पूर्वपक्षः—जीव, कुंजारादिक चोरादिक सर्व स्वतंत्रतासैं अपना अपना कार्य करते हैं, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है.

उत्तरपक्षः—क्या मद्दीयोंहीने तुमारा कुठ अपराध करा है जो उनकुं स्वतंत्र नहीं कहते हो? इस तुमारे एक ईश्वरके माननेसैं तो ऐसाजी प्र

तीत होता है; जेकर अनंत ईश्वर माने जावे, तब जो कदाचित् एक सृष्टि रचनेमें विवाद हो जावे, तो फेर उस विवादकूं छूट कोन करे? शिर, पंच तो कोइ है नहीं; तथा एक ईश्वरकूं देख के दूसरा ईश्वर इर्ष्या करेगा, जो यह मेरे तुल्य क्युं है? इत्यादिक अनेक उपद्रव उत्पन्न हो जावेंगे; इस वास्ते ईश्वर एकही मानना चाहियें, यहजी तुमारी समज अज्ञानरूपी घुणकी खाइ छुइ है, क्युं कि जब ईश्वर (जगवान्) सर्वज्ञ है, तब तो सर्वज्ञ के ज्ञानमें एकही सरीखा ज्ञान होना चाहियें, तो फेर विवाद क्यों कर होगा? तथा ईश्वर तो राग, द्वेष, ईर्ष्या, अजिमानादि सर्व छूषणों से रहित है, तब दूसरे ईश्वरकूं देख कर ईर्ष्या अजिमान क्यों कर करेंगे? जे कर ईश्वर हो करजी आपसमें विवाद, जगडे, ईर्ष्या अजिमान करेंगे? तो तिन पामरोंकूं ईश्वरही कैसे माना जायगा? जब जगत्कर्ताही ईश्वर सिद्ध नहीं होता, तब तो विवाद जगडाही ईश्वरोंका आपसमें काहे कूं होगा? इस वास्ते ईश्वर अनंते माननेमें कुठजी छूषण नहीं. तथा "सर्वगतत्वं" ईश्वर सर्व व्यापक है, यहजी जो मानते हैं, सो जी प्रामाणिक नहीं है, क्योंकि जब ईश्वरकूं सर्व व्यापक, यादी मानते हैं, तब शरीर करके व्यापक मानते हैं? वा ज्ञान स्वरूप करके व्यापकमानते हैं? जे कर शरीर करके ईश्वरकूं व्यापक मानेगे, तब तो ईश्वरका शरीरही सर्व जगा समाजायगा, दूसरे पदार्थोंके रहने वास्ते कोइती अवकाश न मिलेगा? इसवास्ते ईश्वर देह करके तो सर्वत्र व्यापक नहीं है.

प्रश्न:—क्या ईश्वरकेजी शरीर है, जो तुम ऐसे विकल्प करते हो?

उत्तर:—है नव्य! ऐसेजी इस जगत्में मत है, जो ईश्वरकूं देहधारी मानते हैं.

प्रश्न:—वो कौनसे मत है, जिनोंने शरीरधारी ईश्वर माना है?

उत्तर:—नैरेतनामा ग्रंथ है, तिसमें ऐसे खिया है, जो ईश्वरने थयर हानके यहां रोटी खाइ इस खियनेमें, तथा याकूबके साथ कुस्ती करी, इस खियनेसे प्रतीत होता है जो ईश्वर देहधारी है तथा शंकरदिग्विजयके दूसरे प्रकरणमें शंकरस्वामीका शिष्य, आनंदगिरि जोकी इसी ग्रंथ की आदिमें खियता है, जो में सर्वज्ञ हूं सो खियता है कि जब नारदजी ने देव्या की इस शोकमें बहुत कपोलकल्पित मत उत्पन्न हो गये, अरु सनातन धर्म दुष्ट हो गया है, तब तो नारदजी शीघ्रही ब्रह्मा

जीके पास पहुंचे, अरु जा कर कहने लगे कि हे पिताजी ? तुमारा मत तो प्रायः नहीं रहा, अरु लोकोने अनेक मत बना लीये हैं. सो इस बातका कुछ उपाय करना चाहियें. तब तो ब्रह्माजी बहुत काल तांड़ चिंता करकें पुत्र, मित्र, जक्त जनोंकूं साथ ले कर अपने लोकसें चल कर शिवलोक में प्रवेश करते हुये. आगें क्या देखते हैं कि जैसे मध्यान्हमें कोटि सूर्यो का तेज तथा कोटि चंद्रमा समान शीतल, और पांच जिसके मुख हैं, चंद्रमा मुकुट है, विजलीवत् पिंगल जटाका धारक, औ पार्वती जिसके वामार्ध अंगमें है, सर्वका ईश्वर महादेव देखा. फेर ब्रह्माजीने नमस्कार करके स्तुति करी, और कहते हुये कि ओ महादेव, सर्वज्ञ, सर्वलोकेश, सर्व साक्षी सर्वमय, सर्वकारण, इत्यादि इस लिखनेसें प्रगट प्रतीत होता है जो ईश्वर देहधारी है, जे कर देहधारी ईश्वर न होवें, तो फेर पांच मुख कैसें होवे ? इस लिखनेसें ईश्वर शरीर रहित नहीं सिद्ध हो सकता है. अब जे कर शरीरधारी ईश्वर होवे तब तो इस लोकमें एकिला ईश्वरही व्यापक हो कर रहेगा, दूसरे पदार्थोंके वास्ते कोइ दूसरा लोक रहनेकूं चाहियें ? जे कर कहोगे ज्ञानात्मा करकें ईश्वर सर्व व्यापक है, तब तो सिद्ध साध्य नहीं है, हमजी तो ज्ञानस्वरूप करकें जगवानकूं सर्व व्यापी मानते हैं, परंतु जे कर तुमारे वेदसें न विरोध होवे ? क्युंकि वेदोंमें शरीर कर केही सर्व व्यापक कहा है ॥ तथाच ॥ “विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पादित्यादि श्रुतेः” इस श्रुतिसें सिद्ध है, जो ईश्वर शरीर करकें सर्व व्यापक है, फेर तो पूर्वोक्त दूषण है, इस वास्ते ईश्वर व्यापक नहीं. तथा तुम कहते हो जो ईश्वर सर्वज्ञ है, परंतु तुमारा ईश्वर सर्वज्ञ जी नहीं. क्यों के हम जो ईश्वर सृष्टिकर्ताके खंरने वाले हैं, सो उससें विपरीत चलते हैं, फेर हमकूं उसने क्यों रचा ? जे कर कहोगे जन्मांतरोंमें उपार्जित जो जो तुमारे शुभाशुभ कर्म, तिनोके अनुसारसें तुम कूं ईश्वर फल देता है, तो फेर तुमारे कहनेहीसें ईश्वरके स्वतंत्रपणेकूं जलांजलि दीनी गई, क्यों कि जब हमारे कर्मोंके बिना ईश्वर फल नहीं दे सकता, तब तो ईश्वरके कुछ अधीन नहीं, जैसें हमारे कर्म होंगे, तैसा हमकूं फल मिलेगा. जे कर कहोगे ईश्वर जो ईष्टे, सो करे, तब तो क्यों न जानता है जो ईश्वर क्या करेगा, धर्मीयोंकूं नरकमें, पापीयोंकूं स्वर्गमें जेजेगा ? जे कर

कहोगे परमेश्वर न्यायी है, जैसा जैसा जो करेगा, उसकूं वैसा वैसा फल देता है, तो फेरजी बोही परंतव्रतारूप दृषण ईश्वरमें लगता है, तथा ईश्वर नित्य है, यह जी कहनां उनका अण्णे घरहीमें सुंदर लगता है, क्यों कि नित्य तो उस वस्तुकूं कहते हैं, जो तीनों काखोंमें एक रूप रहे, जय ईश्वर नित्य है, तो क्या जगत्को बनानेवाला स्वभाव है वा नहीं? जे कर कहोगे ईश्वरमें जगत् रचनेका स्वभाव है, तब तो ईश्वर निरंतर जगत् रचाही करेगा, कदापि रचनेसें न बंध होगा, क्योंकि जगत्के रचनेका स्वभाव तो ईश्वरमें नित्य है. जेकर कहोगे ईश्वरमें जगत् रचनेका स्वभाव नहीं है, तब तो ईश्वर कदापि जगत्कूं न रचेगा, क्योंकि जगत् रचनेका स्वभाव ईश्वरमें हेही नहीं. तथा जे कर ईश्वरमें एकांत नित्य जगत् रचनेका स्वभाव है, तब तो प्रलय कदेइ न होगी, क्यों कि ईश्वरमें प्रलय करनेका स्वभाव नहीं है. जे कर कहोगे ईश्वरमें रचनेकी अरु प्रलय करने की दोनोही शक्तियां नित्य है, तब तो न कदापि जगत् रचा जायगा अरु न कदेइ प्रलय होगी, क्योंकि दो शक्तियां परस्पर विरुद्ध एक जगे एक काखमें कदापि नहीं रहेगी. जे कर रहेगी. तब तो जगत् न रचा जावेगा न प्रलय करा जायगा, क्योंकि जिस काखमें रचने वाली शक्ति रचेगी, तिसी काखमें प्रलय करनेवाली शक्ति प्रलय करेगी, अरु जिस काखमें प्रलयशक्ति प्रलय करेगी, तिसी काखमें रचनेवाली शक्ति रच देवेगी, ऐसं जय शक्तियोंका परस्पर विरोध हागा, तब तो न जगत् रचा जावेगा, न प्रलय कीया जावेगा, तब तो हमाराही मन सिद्ध हो गया, क्योंकि न किसीने जगत् रचा है, अरु न ईम जगत्की कदेइ प्रलय होती है, तातें यह जगत् अनादि. अनंत सिद्ध हो गया. जे कर कहोगे ईश्वरमें दोनोही शक्तियां नहीं हैं, फेरजी तो जगत् न रचा, न प्रलय किया जायगा, तब तो अनादि, अनंत सिद्ध हुवा. जेकर कहोगे ईश्वर जय चाहता है नय रचनेकी इगा कर सेना है, अरु जय प्रलय करना है, नय प्रलयकी इगा कर सेना है, ईसमें क्या दृषण है? तब तो ईश्वरकी शक्तियां अनित्य होवेनी, मो सुखेन अनित्य होवे ईसमें हमारी क्या हानी है? जे कर ईश्वरकी शक्तियां अनित्य है, तब तो ईश्वर नी अनित्य हो जावेगा. क्यों कि ईश्वर अचली शक्तियोंमें अनेक है. जे कर कहोगे शक्तियां ईश्वरमें

जेदरूप है, तबजी शक्तियोंके नित्य होणेंसें जगत् न रचा जायगा, न प्रयत्न कीया जायगा, अरु ईश्वर अकिंचित्कर सिद्ध हो जावेगा, क्यों कि जब ईश्वर सर्व शक्तियोंसें रहित है, तब तो ईश्वर कुठजी करने समर्थ नहीं है; फेर जगत् रचनेमें क्यों कर समर्थ होवेगा? अरु शक्तियोंका उपादान कारण कौन होवेगा? अरु ईश्वरका अज्ञाव हो जावेगा. क्योंकि जब ईश्वरमें शक्तिही कोइ नहीं, तब तो ईश्वर काहेका? वो तो आकाशके फूल समान असत् है, फेर जगत्का कर्त्ता किसकूं मानोगे ?

अथाग्रे खररु ज्ञानीयोंका ईश्वरवाद लिखते हैं. खरडज्ञानी कहता है, कि जगत्में जितने पदार्थ है, उनके विलक्षण विलक्षण संयोग, आकृति, तथा गुण, और स्वभाव, दीख पडते हैं, जे कर इनका तथा इनके नियमोंका कर्त्ता कोइ न होगा, तो ये नियम कजी न वनेंगे, क्योंकि जड पदार्थोंमें तो मिलने वा जुड़े होनेकी यथावत् समर्थता नहीं, इस हेतुसें ईश्वर कर्त्ता अवश्य होना चाहिये.

उत्तर:—प्रथमही हम जगत् कर्त्ता ईश्वरका खंनन कर चुके हैं, तो फेर आप जगत् कर्त्ता क्यों कर मानते हैं? अरु जो तुमने लिखा है कि जगत्के पदार्थोंमें न्यारे न्यारे स्वभाव दीख पडते हैं, इस्सें ईश्वर सिद्ध होता है, इस कहनेसें ईश्वर जगत्कर्त्ता नहीं सिद्ध होता, क्यों कि सर्व पदार्थोंमें अनंत शक्तियां हैं. सो अपणी अपणी शक्तियोंसें सर्व पदार्थ अपणें अपणें कार्यकूं करते हैं, इनके मिलनेमें निमित्त यह है, एक तो काल, दूसरा पदार्थका स्वभाव, तीसरी नियती, चउथा जीवोंका कर्म, पांचवा जीवोंका उद्यम, इन पूर्वोक्त पांचों निमित्त बीना कोइजी और निमित्त नहीं है, इन पांचोंका स्वरूप, आगे चल कर लिखेंगे ?

प्रत्यक्षमेंजी इन पांचोंके निमित्तसें ही सर्व कुछ उत्पन्न होता है, जैसे बीजांकुर जब बीज बोया जाता है, तब कालही यथानुकूलही होना चाहिये, अरु बीज तथा जल, पृथिवी, इत्यादिकोंका स्वभावजी अवश्य होना चाहिये. तथा नियतीजी जो जो पदार्थोंका स्वभाव है. तिन पदार्थोंका तथा जो परिणाम होता है. तिसका नाम नियती है, सोनी कारण है. तथा अष्टविध कर्मजी कारण है तथा पुन्याकार (जीवोंका उद्यमजी) कारण है. ए पांचों वस्तु अनादि हैं, कीनीनेनी प्रथम रची

नहीं है, क्योंकि जो जो वस्तुका स्वभाव है, सो सो सर्व अनादिसँ है. जे कर वस्तुमें अपणा अपणा स्वभाव न होवेगा, तब तो वस्तुही कोइ सत्त्वरूप न रहेगी. सर्व शशशृंगवत् असत् हो जायगी; अरु प्रत्यक्ष जो दृष्ट पृथिवी, आकाश, सूर्य, चंद्रमा, आदि पदार्थ दीख पनते हैं, सो इसी तरें अनादि रूपसँ सिद्ध हैं, अरु पृथ्वी उपर जो जो रचना दीखती है, सो सर्व प्रवाहसँ ऐसँही चली आती है; अरु जो जो जगत्के नियम हैं, वे सर्व इन पांचो निमित्तोंके बिना नहीं हो सके हैं. इस वास्ते सर्व पदार्थ अपणे अपणे नियममें हैं, जे कर तुम डब्यकी शक्तिकू ईश्वर मान लोगे, तब तो हमारी कुछ हानी नहीं; क्यों कि हम डब्यकी अनादि शक्तिका नाम ईश्वर रख लेवेंगे, अरु तुम अनादि डब्यकी शक्ति कू ईश्वर मान लेवेंगे, तब तो तुमारा हमारा विवाद छूर हो जावेगा. अरु तुमने लिखा जो जडमें घयावत् मिलनेकी शक्ति नहीं हैं, यहजी तुमारा फहनां मिथ्या है, क्यों कि जगत्में अनेक तरेंके जन पदार्थ आपसँ आप ही इन पूर्वोक्त पांच निमित्तोंसँ आपसमे मिल जाते हैं, जैसे सूर्यके किरणों घादलोंमें पडती है, तब इन्द्रधनुष बन जाता है, तथा संध्याका होनां, पांच वर्षाके घादलोंकी चिनी हुई घटा, चंद्रमा सूर्यके गिरद कुंडला, आकाशमें पक्षियोंके मिलनेसँ जल, और अग्निका उत्पन्न होनां, अरु वर्षाके होनेसँ उन पूर्वोक्त पांचों निमित्तोंसँ अनेक प्रकारके घास तृणादि अनेक प्रकारकी वनस्पती, तथा अनेक प्रकारके कीट पतंग प्रमुख जीव उत्पन्न हो जाते हैं, इन पांचो निमित्तोंके बिना किसी वस्तुको बनाता हुआ ईश्वर नहीं दिखलाइ देता; जरा पक्षपात ठोर कर विचार कर देखो के, ईश्वर कर्ता किस तरेंसे हो सका है? क्यों कि पृथिवी, आकाश, चंद्र, सूर्य, इत्यादि तो इन्द्रियार्थिक नयके मतमें अनादि हैं, फेर इनके वास्ते पूछना कि यह किमने बनाये हैं? तो फेर हम पूछते हैं, ईश्वर किसने बनाया? जे कर कहोगे ईश्वर नो, किनीनेही बनाया नहीं, वो तो अनादिसँ बना बनायाही है, तो फेर पृथिवी प्रमुख किननेक पदार्थनी बने बनाये अनादिसँही है, ऐसे माननेमें क्युं सज्जा करते हो?

गारुड ज्ञानी कहते हैं की म्मनावसँ जगत्की उत्पत्ति जो मानते हैं, उनके मनमें यह दोष आवेगा. यह पृथिवी स्वभावसँ होती, तो इसका कर्ता और

नियंता न होता. इस पृथिवीमें जिन दशमे कोश अंतरिक्षमें दूसरा आपसे आप पृथिवी बन जाती, सो आज तक नहीं बनी, इसमें जाना जाता है, जो ईश्वर कर्ता है.

उत्तरः—तुमकूं कुछ विचार है, वा नहीं? जे कर है, तो पूर्वोक्त तुमारा कहनां अयुक्त है, क्यों कि जब हम तो यह कहते हैं, जो पृथ्वी आदिक अनादि है, किसीने नहीं बनाये अरु तुम कहते हो आकाशमें उंची दश कोशके अंतरे दूसरी पृथिवी क्यों नहीं बन जाती? अब विचारो यह तुमारा प्रश्न नृक्षताइका है, वा नहीं? तथा इस प्रश्नके उत्तरमें जो कोइ तुमकूं पूछे, जो ईश्वर स्वभावसे बना होवे, तब तो ईश्वरसे अलग दूसरा ईश्वर क्यों नहीं उत्पन्न होता? जे कर कहोगे ईश्वर तो अनादि है, वो क्यों कर नवा दूसरा ईश्वर बन जावे? इस तरे हमजी कह सकें हैं जो पृथ्वी अनादि है, नवीन नहीं बनती. तो फेर दश कोश आकाशमें क्यों कर बन जावे?

पूर्वपक्षः—जे कर आपसे आपही वस्तु बनती होवे, तब सर्व परमाणु एकठे क्यों नहीं मिल जाते? अथवा एकैक हो कर बिखर क्यों नहीं जाते?

उत्तरपक्षः—हमारी कुछ आज्ञा जन नहीं मानते हैं, जो हमारे कहे से एकठे होकर एकरूप हो जावे, अथवा एक एक हो कर बिखर जावे, पूर्वोक्त पांच निमित्त मिलनेके जहां होंगे, तहां मिल जावेंगे, जहां निमित्त नहीं होंगे, तहां नहीं मिलेंगे.

पूर्वपक्षः—सर्व परमाणुओंके एकत्र मिलनेके पांच निमित्त क्यों नहीं मिलते?

उत्तरपक्षः—जो अनादि संसारकी नियतीरूप मर्यादा है, वो कदापि अन्यथा नहीं होती, जे कर हो जावे, तब तो संसारमें जो जीव जन्म लेते हैं, सो सर्व, स्त्रीयांहीके वा पुरुषोंकेही रूपसे क्यों नहीं उत्पन्न होते? जे कर कहोगे जैसे जैसे कर्म करे थे, वैसा वैसा ही उनहुं फल मिलता है, फेर एक स्त्री आदिक स्वरूपसे कैसे उत्पन्न होवे? तब हम यह पूछते हैं, जो सर्व जीवोंने स्त्री होनेके वा पुरुष होनेके न्यारे न्यारे कर्म क्यों करे? एकही तरीके कर्म क्यों न करे? जे कर कहोगे संसारमें यह सनातनसे रीति है, जो सर्व जीव. एक तरीके कर्म कदापि नहीं करते. तब तो परमाणुओंमेंही यही सनातन स्वभाव है, जो एकत्र कदेही न मिलनां, तथा एक एक हो कर बिखरजी नहीं जानां? हे पूर्वपक्षी! यह तुमारा ई

श्वर जगत् जो रचता है, सो तुमारे कहूनेसें आगें अनंत सृष्टियां रच चुका है, अरु एकेक जीवकूं अशुज कर्मोंका फल, अनंत वेर दे चुका है, तोजी वो जीव आज तांइ पाप करतेही चले जाते हैं, तो फेर दंड देने सें ईश्वरकूं क्या साज हुआ? जो अनंत कालसें इसी विभवनामें फस र ग्या है? तथा ईश्वरकूं सृष्टि रचनेसें क्या प्रयोजन था?

पूर्यपदाः—ईश्वरकूं सृष्टि नहीं रचनेका क्या प्रयोजन था?

उत्तरपदाः—वाह रे घठडेके धावा! यह तूने क्या उत्तर दीया, क्या यह उत्तर देखके विद्वान् तेरा उपहास्य न करेंगे? ईश्वर जे कर सृष्टि रचे, तो ईश्वरताही नष्ट हो जावे, यह वृत्तांत उपर अछी तरेंसे लिख आये है.

पूर्यपदाः—ईश्वरकी जो सर्व शक्तियां हैं, सो सर्व अपनां अपनां कार्य करती हैं, जैसें आंख देखनेका काम करती है, कान सुननेका काम कर ते है, तैसेही जो ईश्वरमें रचना शक्ति है, सो रचनेसेंही सफल होती है, इस वास्ते जगत् रचता है.

उत्तरपदाः—जय तुमनें ईश्वरकूं सर्व शक्तिमान् माना, तब तो ईश्वरकी सर्व शक्तियां सफल होनी चाहियें, तब तो ईश्वर एक सुंदर पुरुषका रूप रच कर १ सर्व जगत्की सुंदरसुंदर स्त्रीयांसें जोग करे, अरु २ चोर घन कर चोरी करे, ३ विश्वास घातीपना करे, ४ जीवहत्या करे, ५ जूठ धो ले, ६ थन्याप करे, ७ थवतार हो कर गोपीयांसें कल्लोल करे, ८ अरुकु जासें जोग करें, ९ दूसरेकी मांगकूं जगा कर ले जावे, १० तथा, शिरपर जटा रखे, ११ तीन आंख बनावे, १२ बेल उपर चढ़े, १३ तनमें विभूति लगावे, १४ एक स्त्रीकूं वामाङ्गमें रखे, १५ किसी मुनिके आगें नंगा हो कर नचे, १६ किसीकूं वर देवे, १७ किसीकूं शाप देवे, इसी तरें १८ चार मुख बनाके एक स्त्री रखे, अरु १९ अपनी पुत्रीसें जोग करे, तथा २० मंग्राम करे, २१ स्त्रीको चोर से जावे, तो पीठें उस स्त्रीके वास्ते रोना फिरे, २२ एक अपना जाइ बनावे, उसकूं जय मंग्राममें कोइ दस्य सगे, तब जाइके दुःखमें बहुत रोवे, २३ अपने आपको नो अहंता नी समझे, २४ जाइकी चिकित्सा वास्ते वेद्य बुझावे, २५ सर्व कृत ग्यावे, २६ दीवे, २७ नाचे, २८ कूदे, २९ रोवे, ३० पीटे, पीठेंसें ३१ निर्मम, ३२ ज्योतिःस्वरूप, ३३ निरहंकार, ३४ सर्वव्यापक, यन वेठे. इत्यादिक पुरांत शक्तियां दे

श्वरमें है, वा नहीं? जे कर है तो इतने पूर्वोक्त सर्व काम ईश्वरकूं करने पंगे जे कर न करेगा, तब तो ईश्वरकीयां सर्व शक्तियां सफल न होवेगी? तब तो ईश्वर महा दुःखी हो जावेगा? क्योंकि जिसने नेत्र तो पाये हैं अरु देखना उसकूं नमिले, तो वो कैसा दुःखी होता है? जे कर कहोगे पूर्वोक्त अयोग्य शक्तियां ईश्वरमें नहीं हैं, तब तो सर्व शक्तिमान् ईश्वर है ऐसे फिर कदापि न कहना चाहियें. जे कर कहोगे कि योग्य शक्तियांकी अपेक्षा हम सर्व शक्तिमान् मानते हैं, तब तो जगत् रचनेकीजी शक्ति अयोग्यही है, यहजी परमात्तामें नहीं. इस शक्तिकी अयोग्यता उपर लिख आये हैं. तथा हे पूर्वपक्षी! जब ईश्वरने प्रथमही सृष्टि रची थी, तब तो स्त्री पुरुषादिक थे नहीं, तब तो माता पिताके बिना मनुष्य क्यों कर उत्पन्न होये होंगे?

पूर्वपक्षः—जब ईश्वरने सृष्टि रची थी, तब ही बहुत पुरुष, अरु बहुत स्त्रियों माता पिताके बिनाही रच गये थे, उनके आगे फिर गर्भसे उत्पन्न होने लगे.

उत्तरपक्षः—यह अप्रामाणिक कहनां कोइजी विद्वान् नहीं मानेगा, क्यों कि माता पिताके बिना कजी पुत्र नहीं उत्पन्न हो सकता है? जेकर ईश्वरने प्रथम माता पिताके बिनाहि मनुष्य, स्त्री, उत्पन्न करे थे, तो अब जी घडे घनाये, बने बनाये, स्त्री पुरुष क्यों नहीं जेज देता? गर्भ धारण कराणां, स्त्री पुरुषका मैथुन कराणां, गर्भवासका दुःख जोगानां, योनियं ब्रह्मारा खेंचके निकालनां. इत्यादि संकट काहेकूं रचने थे? अनंत बार ईश्वरने सृष्टि रची, अरु प्रलय करी, तब तो ईश्वर थाका नहीं तो क्या मनुष्योंहीके बनानेसे थकैवा चम गया? जो घडे घनाये, बने बनाये, नहीं जेज सकता? यह कजी नहीं हो सकता, जो माता पिताके बिना पुत्र उत्पन्न हो जावे. इस हेतुसेजी जगत्का प्रवाह अनादिसें इसी तरे तारतम्य रूपसे चला आता सिद्ध होता है.

पूर्वपक्षः—जे कर ईश्वर सर्व वस्तुका कर्त्ता न होवे, अरु जीवही कर्त्ता होवे, तब तो जीव आपही शरीर धारण कर लेवेगा, अरु शरीरकूं कदइन ठो डेगा, अरु आपणे आपकूं अछा फल लगा लेवेंगे, फेर तो कजी मरेंगे नहीं.

उत्तरपक्षः—जो तुमने कहा है सो सर्व कर्मोंके वश है, परंतु जीवके अधीन नहीं, जे कर कहागे कर्मजी तो जीवनेही करे थे. तब क्यों जीवने अशुचि कर्म करे? क्योंकि कोइ जीव अणो घुरे करणमें नहीं है. इन

का उत्तर तो दीया गया है, परंतु तुमारी समझ थोड़ी है, जो नहीं समझे. क्यों कि जो जो अवस्था जीवोंकी शुच अशुच है, सो सर्व कर्मोंका फल है. तथा जीव जो है, सो कर्म करणमें तो प्रायः स्वतंत्रही है, परंतु फल जोगनेमें स्ववश नहीं. क्योंकि जैसे कोइ जीव धनुषसे तीर चलावे, थर फिर उस तीरकूं पकड़ने सामर्थ्य नहीं. तथा कोइ जीव विष खावे, सो तो स्ववश है, परंतु उस विषवेगके रोकणमें जीव समर्थ नहीं, ऐसेही जीव कर्म तो स्वतंत्रतासे प्रायः करता है, परंतु फल जोगनेमें जीव पर वश है, जैसे वर्तमानमें रेलगाड़ी सर्व जीवोंहीने इस तरकीब बनाइ है, परंतु उस चलती हुई रेलके तथा तारके वेगकूं जितना चिर, उस कलकी प्रेरणाशक्ति नहीं हटती, इतना चिर, कोइ जीव नहीं रोक कर सकत. ऐसेही कर्मफल वेगके रोकणकूं जीवजी समर्थ नहीं है, तथा जीव कूं जवांतरमें कौन ले जाता है ? तथा जीवके शरीरकी रचना आंखोंके पल्ले तथा नाना प्रकारके रंग वरंगके हाड, चाम, लोड्डु, वीर्य, इत्यादिक रचना कौन रचता है ? इसका पूर्ण स्वरूप जहां कर्म प्रकृति (१४७) का स्वरूप लिखेंगे, तहांसे जानना. इस हेतुसे ईश्वर जगत्कर्त्ता किसी तरेजी सिद्ध नहीं होता, विशेष करके जगत्कर्त्ता ईश्वरकाखंन देखनां होवे, तो श्री (१) सम्मतितर्क, (२) द्वादशसार नयचक्र (३) स्या द्वादरत्नाकर, (४) अनेकांतजयपताका, (५) शास्त्रसमुच्चय स्याद्वादक व्यपलता. (६) स्याद्वादमंजरी, (७) स्याद्वादरत्नाकरावतारिका, (८) सूत्रकृतांग, (९) नंदीसिद्धांत, (१०) शब्दांजोनिधिगंधस्तीमहाज्ञाप्य, (११) प्रमाणसमुच्चय, (१२) प्रमाणपरीक्षा, (१३) प्रमाणमीमांसा, (१४) आत्ममीमांसा, (१५) प्रमेयकमलमार्त्तक, (१६) प्रमेयघ्नमार्त्तक, (१७) न्यायावतार, (१८) धर्मसंग्रहणी, (१९) तत्त्वार्थ, (२०) पट्टदर्शनसमुच्चय. इत्यादि जैनमतके ग्रंथ देख लेने. इस वास्ते जो कामी, क्रोधी, ठली, धूर्त परस्त्री स्वस्त्री गमन करनेवाला, नाचने वाला, गाने बजाने वाला, रोने पीटने वाला, जस्म लगाने वाला, माला जपने वाला, संग्राम करने वाला, तथा डमरु आदिक बाजे बजाने वाला, वर वा शापके देने वाला, बिना प्रयोजन अनेक संक्लेशोंमें फसने वाला, इत्यादिक जो अगारहू पू पण करी सहित है, सो कुदेव है, उसकूं ईश्वर मानना सोइ मिथ्यात्व है.

इन कुदेवोंकूं मानने वाले पठरकीं नावो उपर बैठे हैं, इस वास्ते लिखनेका प्रयोजन इतना ही है, जो कुदेवकूं कदेइ अर्हत जगवंत परमेश्वर करी नमाननां ॥ इति श्री तपागच्छीचेमुनिश्रीबुद्धिविजयशिष्यमुनिआनंदविजयआत्मारामविरचिते, जैनतत्त्वादशोः कुदेवनिर्णयनामा द्वितीयः परिच्छेदः संपूर्णः ॥

॥ अथ तृतीयपरिच्छेदः प्रारंभः ॥

॥ यह तीसरे परिच्छेदमें गुरुतत्त्वका स्वरूप कहते हैं, जैनमतमें गुरुके लक्षण ऐसे लिखे हैं ॥ अनुष्टुप् वृत्तं ॥ महाव्रतधरा धीरा, जैक्षमात्रोपजीविनः ॥ सामायिकस्या धर्मोप-देशका गुरवो मताः ॥१॥ अस्यार्थः—अहिंसादि पांच महाव्रतका धारने पालने वाला होवे, अरु आपदा आ पड़े, तब धीर सा हसिकपणा करे, अपने जो व्रत हैं, तिनकूं छूपण लगा के कलंकित न करे, तथा बेंतालीश छूपण रहित, जिज्ञावृत्ति माधुकरीवृत्ति करी, अपने चारित्र धर्मके तथा शरीरके निर्वाह वास्ते जोजन करे, जोजनजी पूरा पेट भरकर न करे, जोजनके वास्ते अन्न, पाणी, रात्रिकूं न राखे, तथा धर्मसाधनके उपकरण वर्जके और कुठजी संग्रह न करे तथा धन, धान्य, सुवर्ण, रूपा, मणि, मोती, प्रवालादि परिग्रह न राखे. तथा राग, द्वेषके परिणाम रहित, मध्यस्थ वृत्ति हो कर, सदा वृत्तें, तथा “धर्मोपदेशक” जो धर्म, जीवोंके उद्धार वास्ते सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूप परमेश्वर, अर्हत, जगवंतें स्याद्वादअनेकांत स्वरूप निरूपण कीयाहै, उस धर्मकूं जो जग्य जीवोंके तांइ उपदेश करे, परंतु ज्योतिषशास्त्र, अष्ट प्रकारका निमित्त शास्त्र, तथा वैद्यशास्त्र, धन उत्पन्न करनेका शास्त्र, राजसेवा आदिक अनेक शास्त्र, जिनसे धर्मकूं बाधा पहुंचे, तिनका उपदेशक न होवे, क्यों कि लौकिक जो शास्त्र है, सो तो बुद्धिमान् पुरुष वर्तमानमेंजी बहुत सीखते हैं, तथा नवीन नवीन अनेक सांसारिक विद्याके पुस्तक बनाते हुये चले जाते हैं, तथा अंगरेजोकी बुद्धि देख कर इस देशके लोकाजी बहुत सांसारिक विद्यामें निपुण होते चले जाते हैं. इस वास्ते साधुकूं धर्मोपदेशही करना चाहियें, क्यों कि धर्मही जीवोंकूं पाना कठिन है; ऐसे गुरुके लक्षण जैन मतमें हैं.

तथा प्रथम जो पांच महाव्रत साधुकुं धारने कहे हैं, सो कोन कोन सें वे पांच महाव्रत हैं? सो कहते हैं:-श्लोक ॥ अहिंसा सूनृतास्तेय, ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः ॥ पंचजिः पंचजिर्युक्ता, जावनाजिर्विमुक्तये ॥ २ ॥
 अस्यायः-(१) अहिंसा, (जीवदया,) (२) सूनृत, (सत्य वचन बोलना,) (३) अस्तेय (साधुके उचित, वस्तुकुं बिना दीयां न ले नां) (४) ब्रह्मचर्यका पालनां, (५) सर्व परिग्रहका त्याग. इन पां पाँका नाम महाव्रत कहते हैं, तथा ए पांच महाव्रतोंमें एकेक महाव्रतकी पांच पांच जावना हैं, यह पांच महाव्रत, अरु पचीस जावना, ए सर्व मोहाके बान्धो पासे.

अथ इन पांचो महाव्रतोंमेंसू प्रथम महाव्रतका स्वरूप लिखीये हैं ॥
 ॥ श्लोक ॥ न यत् प्रमादयोगेन, जीवितव्यपरोपणं ॥ अस्मानां स्थावराणां च, तदहिंसाव्रतं मतं ॥ ३ ॥
 अस्यायः-व्रत, (छाँड़ियादिक जीव) अरु स्थावर, (१) पृथ्वीकाया, (२) अणुकाया, (३) अन्निकाया, (४) पय नकाया, (५) यनस्पतिकाया, ए पांचोकुं स्थावर जीव कहते हैं. इन स र्व पाँचोका जीवोंकुं प्रमाद बश हो कर मारे नहीं प्रमाद नाम है, राग, द्वेष, असावधानपणा, अज्ञान, मन बचन कायाका चंचल पणा, धर्मके विषे अनादर, इत्यादि प्रमादके बश हो कर जो प्राणातिपात करना इसका जो त्याग करणां, इसका नाम अहिंसा व्रत है.

अथ दूसरे महाव्रतका स्वरूप लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ प्रियं पथ्यं यच्च मृत्युं, मृत्युव्रतमुच्यते ॥ न तत्स्थमपि नां नश्य, मप्रियं चाहितं च यत् ॥
 ॥ ४ ॥
 अस्यायः-जिस वचनके सुननेमें दूसरा जीव हर्ष पाये, तिस वचनकुं प्रिय वचन कहिये, तथा जो वचन जीवोंकुं पथ्यकारी होवे, परिणामनुंदर होवे, एतावना जिस वचनमें जीवके आगे बहुत सुधारा होवे, तथा जो वचन सत्य होवे, अथवा जो वचन बोलें, सो मूनृतव्रत कहिये, इस व्रत विषे कतुक विशेष लिखते हैं, जो वचन व्यवहारमें चाहो सचही होवे, परंतु जो आगवे जीवकुं दुःखदायी होवे, अथवा वचन न बोले, जैसे कालेकुं काया कहनां, चोग्गुं चोर कहनां, कृटीकुं कृटी कहनां, इत्यादिक जो वचन दूसरेकुं दुःख दायी होवे, सो न बोले, तथा जो वचन जीवोंकुं आगे अनर्थका हेतु होवे, वसुसजावन सोनी न बोले. जे कर

यह दोनों वचन बोले, तब तो उस साधुके सूत्रत व्रतमें कलंक लग जावें, क्योंकि ए दोनो वचन जूठहीमें गिने हैं.

अब तीसरा महाव्रत लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ अनादानमदत्तस्या, स्ते यव्रतमुदीरितं ॥ बाह्याः प्राणानृणामर्थो, हरतात्तद्वताहिते ॥ ५ ॥ अस्या र्थः—अदत्त, मादिकके बिना दीया ले लेणां, तिसका जिसके नियम है, सो अस्तेय व्रत कहिये, अचोरीव्रत नामांतर है, अदत्तादान चार प्रकारका हैं. (१) जो वस्तु साधुके लेने योग्य है, अचित्त जीव रहित वस्तु तृण, काष्ठ, पाषाणादिक वस्तुओंके स्वामीकूं बिना पूछे ले लेनां. सो स्वामी अदत्त. (२) तथा जैसे कोइ जेठ, बकरी, गौ प्रमुख कोइ इनका स्वामी दूसरे हिंसक जीवकूं मोल लेकर दे देवे, अथवा बिना मोल दे देवे, अरु लेने वालेने देइ होइ वस्तु दीनी है, परंतु उस जीवने ती अपणा शरीर नहीं दीया है, इस हेतुसे जीवअदत्त. (३) तथा जो जो वस्तु आधाकर्मादिक आहार, अचित्त जीव रहितनी है, अरु दीनीनी उस वस्तुके स्वामीने है, परंतु तीर्थकर जगवंतें निषेध करी है, फेर जो साधु उस वस्तुकूं लें लेवे, सो तीर्थकर अदत्त. (४) तथा जो वस्तु निर्दोष है, बल्क आहारादिक अरु उस वस्तुके स्वामीने वो दीनी है, अरु तीर्थकर जगवंतें निषेध नहीं करी है, परंतु गुरुकी आज्ञा बिना वो वस्तुकूं साधु ले लेवे, सो गुरु अदत्त. इस महाव्रतमें ए चार प्रकारका अदत्त न लेणां. जितने व्रत नियम हैं, वे सर्व अहिंसाव्रतकी रक्षा वास्ते बानी समान हैं. यह पूर्वोक्त तिसरे व्रतका जो पालनां है. सो अहिंसा व्रतहीकी रक्षा होती है. अरु जो तीसरा महाव्रत न पावे तो अहिंसा व्रतकूं छूषण लगे है, यही बात कहते हैं ॥ “बाह्याः प्राणा नृणां” मनुष्योंका अर्थ, (लक्ष्मी) जो है. सो बाहिरला प्राण है. जब कोइ किसीकी चोरी करता है, सो निश्चय करके उसके प्राणो हीका नाश करता है. इसी हेतुसे चोरी करनां महा पाप है, सर्व चोरीका जो त्याग करना है, इसीका नाम तीसरा अदत्तादान त्यागरूप महा व्रत है.

अब चौथे महाव्रतका स्वरूप लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ दिव्योदारिककामानां, कृतानुमतिकारितः ॥ मनोवाक्यतत्त्यागो, ब्रह्माष्टदशधा मतम् ॥ ६ ॥ अस्या र्थः—दिव्य (देवताके) वैक्रिय शरीर संबंधि जो काम जोग, अरु औदारिक शरीर तिर्यच मनुष्यका, तिन संबंधी जो काम जोग, एताबना वैक्रिय

शरीर-अरु श्रौदारिक शरीर, ए दोनोंके साथ वीषय सेवन करनां, श्रौर-
हूसरायोंसें विषय सेवन करावणां, विषय सेवन जो करे उसकूं अठा जाननां,
ए ठ जेद मन करकें, ठ वचन करकें, अरु ठ काया करकें, एवं अछारह
प्रकारका जो मैथुन सेवनका त्याग करे, उसकूं ब्रह्मचर्य व्रत कहते हैं.

अथ पांचवा महाव्रत लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ सर्वजावेपु मूर्छाया, स्त्या
गस्यादपरिग्रहः ॥ यदि सत्स्वपि जीयेत, मूर्छया चित्तविप्लवः ॥ ७ ॥ अ
स्यार्थः—सर्व संपूर्ण जो अष्टाजाव पदार्थ, द्रव्य, क्षेत्र, कालजावरूप वस्तु
तिस विषे जो मूर्छा, ममत्वजाव मोह, तिसका जो त्याग करे, तिसका
नाम अपरिग्रह व्रत कहियें, परंतु जिसके पास अपने शरीरके बिना
हूसरी कोइ वस्तु नहीं, तोजी तिसकूं निष्परिग्रहपणा न कहियें. किंतु
जिसकी मूर्छा ममत्व, सर्व वस्तुसें हठ जावे, उसीको निष्परिग्रह व्रत क
हियें, क्योंकि जिसके पास कोइ वस्तु नहीं. अरु अण होइ वस्तुकी जिस
कूं चाहना लग रही है, वो त्यागी नहीं, जे कर ज्ञान द्वारा मूर्छा त्यागे
बिना, त्यागी हो जावे, तब तो कुत्ते अरु गधेजी त्यागी होना चाहियें अ
रु जो पुरुष ममत्व रहित है, सो निष्परिग्रह है, चाहो उसके पास धर्म
साधनके कितनेक उपकरणजी हैं, तोजी मूर्छाके न होनेसें वो परिग्रह नहीं.

अथ इन पूर्वोक्त एकेक महाव्रतकी पांच पांच जावना लिखते हैं ॥
श्लोक ॥ जावनाजिर्जावितानि, पंचजिः पंचजिः क्रमात् ॥ महाव्रतानि नो
कस्य, साधयंत्यव्ययं पदम् ॥ १ ॥ अस्यार्थः—यह जो पांच महाव्रतोंकी
पच्चीश जावना हैं, जो कोइ इन जावना करकें अपने अपने महाव्रतकूं रं
जित वासित करे, एतावता पांच पांच जावना पूर्वक अखंरु महाव्रत पा
ले तो ऐसा कोइ जीव नहीं है, जिसकूं ए महाव्रत मोक्षपदमें न पहुंचावे?

अथ प्रथम महाव्रतकी पांच जावना लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ मनोगु
ह्येपणादाने, यांजिः समितिजिः सदा ॥ दृष्टान्नपानग्रहणे, नार्हिसा जाव
येत्सुधिः ॥ १ ॥ अस्यार्थः—मनकूं पापके काममें न प्रवर्त्तावे, किंतु पापके का
मसें अपने मनकूं हटा लेवे, इसका नाम मनोगुति कहते हैं. जेकर पापके
काममें मनकूं प्रवर्त्तावे, अरु चाहो धाद्यवृत्ति करकें हिंसा नहींजी करता.
तोजी प्रसन्नचंद्र राजर्षिकी तरे सातमी नरकके जाने योग्य कर्म उत्पन्न
कर लेता है, इस वास्ते मुनिकूं अवश्य, मनोगुति करनी चाहियें, ए

प्रथम जावना. दूसरी जावना एषणासमिति. सो आहारादिक चार वस्तु आधाकर्मादिक वेतालीश दूषण रहित लेवे, वेतालीश दूषणका पूरा स्वरूप देखनां होवे, तो पिंरुनियुक्ति शास्त्र (१०००) श्लोक प्रमाण है, सो देख लेनी, ए दूसरी जावना. तीसरी जावना आदाननिक्षेप नामा है, जो कुछ पात्रक, दंरु, फलक प्रमुख लेना पड़े, तथा भूमिकाके उपरि रखना पड़े, तब प्रथम नेत्रोंसे देख लेनां, पीठें रजोहरण करके पूंज लेवे, पीठेंसे लेना अरु रखना करे क्योंकि विष्णु सप्पादिक अनेक जहेरी जीव, जे कर उस उपकरणके उपर बैठे होवें, तब तो काट खावें, अरु दूसरा जीव विचारा अनाथ कोइ बैठा होवे, तो हाथके स्पर्शसे मर जावे, तब तो जीवहत्याका पाप लग जावे. इस वास्ते जो काम करनां, सो यत्पूर्वक करनां ए तीसरी जावना. चौथी जावना जब चलनेका काम पड़े, तब अणी आखोंसे चार हाथ प्रमाण धरती देख कर चले, जो कोइ नीचा देख कर चलता है, उसकूं इस लोकमें कितनेक गुण प्राप्त हो जाते हैं, प्रथम तो पगकूं ठोकर नहीं लगती, दूसरा जिसके परिग्रहका त्याग न होवे, उसकूं गिरा पडा पैसा, रूपक, आदि मिल जावे, तीसरे लोकमें जलाम नुप्य किसीकी बहू बेटीकूं देखता नहीं, औसा प्रसिद्ध हो जाता है, चौथे जीवकी रक्षा करनेसे धर्मकी प्राप्ति होती है, ए चौथी जावना. पांचमी जावना जो अन्न, पाणी, साधु लेवे, सो प्रकाशवाली जगासे लेवे अंधकारवाली जगासे न लेवे, क्योंकि अंधकारवाली जगामें एक तो जीव नहीं दीख पड़ता, और दूसरा साप विष्णुके काटनेका कर रहेता है, तथा गृहस्थका कोइ आचूषण प्रमुख जाता रहे, तब उसके मनमें शंका उत्पन्न हो जावे, कि क्या जानें अंधेरेमेंसे साधुही ले गया होगा? तथा खंधेरेमें सुंदर सा धुकूं देख कर कदा चित् कोइ उत्कट विकार वाली स्त्री लिपट जावे, अरु उस वखत कोइ दूसरा देखता होवे, तो धर्मकी बनी निंदा होवे, तथा साधुहीका मन अंधेरेमें स्त्रीकूं देख कर विग्न जावे, साधु स्त्रीकूं पकड़ लेवे, स्त्री पुकार कर देवे, तब तो बनी धर्मकी हानी होवे, तथा साधुओंकी अप्रीति हो जावे, इस वास्ते अंधेरेकी जगासे साधु अन्नादिक न लेवे, ए पांचमी जावना. ए प्रथम महाव्रतकी पांच जावना हैं.

अब दूसरे महाव्रतकी पांच जावना लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ हास्यलोचन

ननुंयन, चौरासी कामासनसं विषयसेवन प्रमुख क्रीडा करी होवे, तीसको फेर मनमें कदेइ न स्मरण करणां, क्योंकि पूर्व क्रीडास्मरण रूप इंधनसं कामाग्नि फिर घुस्नने लग जाती है, ए तीसरी जावना. तथा अथिविवेकी जनोंकू देखने, अथ यांत्रने योग्य स्त्रीकें अंग जो मूख, नयन, स्तन, जघन, होठ प्र मुग तिनोंको सराग दृष्टिसं देखनां तथा अथपूर्व विस्मय रसके पूरमें मग्न हो कर आंग फार देगनां वजे, परंतु जो राग रहित दृष्टि करी कवाचित् देखने में आ जायें, तो दोष नहीं- तथा अथपणे शरीरकू संस्कार करणां, ज्ञान, विज्ञेय, भूष करणी, नग, दांत, केश, समा रचनां, कंगी सुरमासं विज्ञूपा क गमी, इत्यादि शरीरसंस्कार न करे, क्योंकि स्त्रीके रमणिक अंग देखनेसं जेमें दीप शिखामें पतंगीया जल जाता है, ऐसं कामी पुरुषकी कामाग्निसं जल जाता है, क्योंकि शरीर जो है, सो मये अशुचिका मूल है, इसका जो शृंगा र कण्ठां है, सो अज्ञानता है, जेसे मस्तिन वस्तुकी कोयलीके उपर जे कर चंदन घम कर लगा दिया, सो क्या वह कोयली सुगंधित हो जाती है? यह शरीर अंगों मगानकी एक मुठी राखकी बन जायेगी, फिर फिर वास्ते इ म शरीरकी जोता करणेंमें व्यर्थ काठ खोवे है? ए चौथी जावना. तथा प्रतीन, सिग्ध, मधुगदि रस, इनका अधिक आहार करणां, तथा रुग्ण भोजनकी कंठ उदर पुर कर म्यानां, ए दोनोंही प्रकारके आहारका त्याग करे, क्योंकि जो पुरुष, निरंतर म्निग्ध, मधुर रसका आहार करेगा उसके जगर धातुपुष्ट होवेगी, नव तो वेदादय करी अवश्य कुशील मवेगा. अथ रुग्ण विज्ञावृत्तिका भोजनकी प्रमाणमें अधिक नहीं करणां, क्योंकि रुग्ण भोजन अधिक करणेंमें काम उत्पन्न हो जाना है, अथ अधिक न्यानें शरीरकू पीडा उत्पन्न हो जानी है, विज्ञुचिका प्रमुख रोग हो जाते हैं, इ म वास्ते प्रमाणमें अधिक भोजनकी न करे, पूरे पुरुषांने न्यानेकी अंगें मयांदा सिर्वा है कि ॥ यनः ॥ अरुममगम्म मर्व, जगम्म कुज्जा दवम्म दो जाते ॥ वा०९ विआगणठा. वज्जाय उणमं कुज्जा ॥ १ ॥ अम्य नागयां पं:- बुद्धि करिके अण्णे उदरंके उ राग कण्णे. तिनांमे नीन नाग नां अन्न मे राने, अथ दो रागने पानी. एक नाग म्यात्री म्मणां, जिम्मं मुणें मुणें उदरम निःश्राम आता ग्ते. ए पांचमी जावना. ए चौथे वनकी पांच जावना. अथ पांचमे महावनकी पांच जावना सिगने है ॥ श्लोक ॥ म्मं म्मं

गंधे च, रूपे शब्दे च हारिणि ॥ पंचसुहृद्भिर्यायेषु, गाढं गाढ्यस्य वर्जनं ॥ १ ॥ एतेष्वेवामनोद्वेषु, सर्वथा द्वेषवर्जनं ॥ अकिंचन्यव्रतस्यैवं, जावना पंच कीर्तिताः ॥ २ ॥ युग्मं ॥ अस्यार्थः—स्पर्शादिक मनोहर पांच विषयों में जो अत्यंत गृह्णिषणा सो वर्जनां, अरु स्पर्शादिक अमनोद्वेष पांच विषयोंमें द्वेष न करणां. ए पांचमे महाव्रतकी पांच जावना. एवं पूर्वोक्त पांच महाव्रत, अरु पञ्चीश जावना जिसमें होवे, सो गुरु. तथा चरणसित्तरी अरु करणसित्तरी करके संयुक्त होवे, सो जैनमतमें गुरु है.

अथ चरण सित्तरीके सित्तर जेद लिखते हैं ॥ गाथा ॥ वय समण धम्मसंजम, वेयावच्चं च वंज गुत्तीउं ॥ नाणाइ तियं तव को, ह निग्गहाइं इ चरणमेयं ॥ १ ॥ अर्थः—व्रत पांच प्रकारका, श्रमणधर्म दश प्रकारका, संयम सित्तर प्रकारका, वेयावृत्त्य दश प्रकारका, ब्रह्मचर्य गुप्ति नव प्रकार की, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, ए तीन प्रकारका, तप वार प्रकारका, निग्रह क्रोधादिक चार प्रकारका, ए सर्व सित्तर हुये, तीनमेंसू पांच व्रतका स्वरूप तो उपर जावना संयुक्त लिख आये हैं, सो जाननां.

तथा श्रमणधर्म दश प्रकारका लिखीये हैं ॥ गाथा ॥ खंतिय मइव अज्जाव मुत्ती तव संजमे य वोधवा ॥ तच्चं सोयं आकिं, चणं च वंजं च जइधम्मो ॥ १ ॥ अस्यार्थः—(१) क्वांतिः (क्षमा) करणी, चाहो सामर्थ्य होवे, चाहो असामर्थ्य होवे, परंतु इसरेके दुर्वचन सहनेके जो परिणाम मनोवृत्ति है, तिसका नाम क्षमा कहते हैं, सर्वथा क्रोधका त्याग क्षमा, (२) कोमल कहिये अहंकार र हित, तिसका जो जाव, वा कर्म सो कहिये माईव, नीचा हो कर अजिमान रहित होणां, (३) रुजु कहिये मन, वचन, काया करी सरल, तिसका जो जाव, वा कर्म, सो आर्ज्जव, मन वचन कायाकी कुटिलताइसे रहित, (४) मोचनं मुक्तिः बाहिर, अंदर, तृष्णाका त्याग लोभका त्याग, (५) रसादिक धातु अथवा अष्ट प्रकार कर्म, जिस करके तपे सो तप अनशनादि वारा प्रकारका, (६) संयम, आश्रवकी त्यागवृत्ति, (७) सत्यं, मृपावाद विरति जूठका त्याग, (८) शौच, अपणी संयमवृत्तिमें कोइ कलंक न लगावनां, (९) नहीं है किंचित् मात्र इव्य जिसके पास सो आकिंचन, (१०) नव ब्रह्मचर्यकी गुप्ति, ए दश प्रकारका यतिधर्म. तथा मतांतरमें दश प्रकारका

यतिधर्म श्रेसेजी कहते हैं ॥ गाथा ॥ खंची मुत्ती अज्जव, महव तद् खाववे
 तवे चेव ॥ संजम वियोव किंचण, बोधवे बंजचेरेय ॥ १ ॥ अस्यार्थः सुगमः ॥
 अथ सत्तर जेद संयमके लिखते हैं ॥ गाथा ॥ पंचासवाविरमणं, पं
 चिंदिय निग्गहो कसाय जज्ज ॥ दंडत्तयस्स विरइं, सत्तरसद्दा संजमो होइ
 ॥ १ ॥ अथवा ॥ पुढवि दग अगणि मारुय, वणसइ वि ति चउ पणिवि
 अजीवा ॥ पढु प्पेहपमद्यण, परिठवण मणो वई काण ॥ १ ॥ इनोका अर्थः—
 उत्पन्न करीयें कर्म इनो करके सो आश्रवाः सो आश्रव पांच प्रकारका
 है, जो पांच महाव्रतोंमें त्यागने लिखे हैं. (१) हिंसा, (२) जूठ, (३)
 चोरी, (४) अवह्म, (५) परिग्रह, ए पांच आश्रवका त्याग करे, तथा
 स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु अरु श्रोत्र, ए पांचों इंद्रियका स्पर्शादिक पांचों
 विषयोंविषे लंपटपणा त्यागे, तथा क्रोध, मान, माया अरु लोभ, इन
 चारों कपायका जीतनां. इन चारोंके उदय होयाकूं निःफल करणां, अरु
 जो नहीं उदय आये उनकूं उत्पन्न न करणां तथा दंभीयें चारित्र धर्मरूप ल
 द्दमी जीव पासों इनो करके सो खोटा मन, खोटावचन, खोटी काया. इन
 तीनों दंडकी विरती करणी. एवं सत्तर जेद करिकें संयम है, अथवा प्रकारां
 तर करके सत्तर जेदसें संयम कहते हैं, (१) पृथिवी, (२) उदक, (३) अग्नि
 (४) पवन, (५) वनस्पति, (६) र्द्दीन्द्रियजीव, (७) त्रीन्द्रियजीव, (८) चतु
 र्दिन्द्रिय जीव, (९) पंचेन्द्रिय जीव, इन पूर्वोक्त नवविध जीवोंकूं मन, वच
 न, अरु काया करी करणां, करावणां, अरु करणे वालेकूं जला जाननां, सरंज
 समारंजाऽरंज, इन नव विकल्पोंसें पूर्वोक्त नवविध जीवोंकी हिंसा त्यागनी
 ए नव प्रकारका संयम. जो प्राणीके प्राणकूं बिनाशनेका संकल्प करणां,
 इसका नाम सरंज है, जीवके प्राणकूं जो परिताप करना, (पीडा देनी) इ
 सका नाम समारंज है, तथा जीवोंका प्राणका जो बिध्वंस करनां, इसका
 नाम आरंज है; तथा (१०) अजीव संयम जिस अजीव वस्तुके राख
 णेसें संयम कलंकित हो जावे, जैसे मांस, मदिरा, सुवर्ण प्रमुख सर्व
 धातु, मोति आदिक सर्व रत्न, अंकुशदिक सर्व शस्त्र, इत्यादिक अजीवके
 रखनेसें संयममें कलंक होवे, सो अजीव वस्तु न रखणी; तथा अजीव
 रूप जो पुस्तक, अरु शरीरोपकरणादि, सो दुःखमादि दोषसें तैसी
 बुद्धि नहीं, आयु लंबी नहीं, श्रद्धा, संवेग, उद्यम, बल, ए सर्व हीन हो

गये हैं, बिद्या कंठ रहती नहीं, इस वास्ते इस कालमें जो पुस्तक रक्खणां, सो प्रतिसेखणा, प्रमार्जनापूर्वक यतनोसैं राखणां, ए इसवा अजीव संयम, (११) प्रेक्षासंयम. सो नेत्रोंसैं देख करके बीज. हरि प्रमुख जीवों करी रहित स्थानमें सोनां, वैठणां. चलनां, इत्यादिकके करणेंसैं प्रेक्षासंयम. तथा (१२) उपेक्षासंयम सो एहस्यकूं पापका व्यापार करतेकूं उपेक्षां सो (उपदेश देणां) कि यह काम तुम ऐसैं करो, ऐसैं जो एहस्यकूं कहनां. सो उपेक्षा संयम, अथवा केइ साधु संयमसैं चलायमान हो गया होवे, उत्तकूं हित करके जो उपदेश करनां, सो प्रेक्षासंयम. तथा पार्श्वस्थादिक जो साधुकी समाचारीसैं भ्रष्ट हो गये हैं, अरु वो जष्ट साधु कोइ अनुचित काम कर रहा है. अरु साधुजी अपणें मनमें जान जावे जो इतकूं उपदेश करुंगा, तो इतने माननां नहीं है. इस वास्ते जो औदासीन्य रहणां, उत्तका नाम उपेक्षासंयम, (१३) प्रमार्जन संयम. सो देखे दुये स्थानमें बख पात्रादिक जो लेने, वा रखने पड़े. तब प्रथम रजोहरणादिकसैं प्रमार्जन करके पीठेंसैं लेनां, रखनां, सोनां, वैठनां करे. तब प्रमार्जना संयम, तथा (१४) जात, पाणी, बख, पात्रादिक जितमें जीव पड़ गये होवे, तब तिनकूं जीवों रहित शुद्ध जूमिकामें शास्त्रोक्त विधि कर जो परिष्ठापना करे, सो परिष्ठापनासंयम, तथा (१५) मनमें झोह, ईर्ष्या, अजिमान, तोन करणां, अरु धर्मध्यानादिकमें मन प्रवृत्त करणां, सो मनःसंयम तथा (१६) हिंसाकारी कठोर वचनकों त्यागनां, अरु शुभ वचनमें प्रवृत्त होनां सो वचनसंयम, तथा (१७) गमनागमन करणेंमें अरु अवश्यकरणे योग्य कामोंमें उपयोग पूर्वक जो कायाकूं प्रवृत्तावे, सो कायासंयम, ए सत्तरज्जेद संयमके जाननां.

अथ वैद्यावृत्तके दश जेद कह हैते ॥ गाथा ॥ आयरिय उवचाए, तवस्सि तेहे गिलाण साहुसु ॥ समणोन्न संघ कुल गण, वेयावच्चं हवइ दसहा ॥१॥ अर्थः—(१) ज्ञानादिक पांच आचारकूं जो पावे, सो आचार्य, तथा तेवीयें जो. सो आचार्य तथा (२) जिनके समीप आ कर पढीयें, सो उपाध्याय, तथा (३) तप जो करे, सो तपस्वी, तथा (४) जिसने न बाही साधुपणा लीया है, सो शिष्य, तथा (५) ज्वरादि रोग वाला जो साधु सो ग्ञान, तथा (६) जो धर्मसैं डिगतेकूं स्थिर करे, सो स्थविर साधु.

तथा (७) जिस साधुकी अपने समान एक समाचारी होवे, सो सम नोढ़, तथा (८) साधु, साधवी, श्रावक अरु श्राविका इन चारोंको जो समुदाय सो संघ, तथा (९) बहुते एक सरिखे गञ्जोंका सजातियोंका जो समूह, सो कुस चंडादिक जाननां, तथा (१०) एक आचार्यकी वाचनावासे साधुओंको समूह, गण गष्ठ कोटिकादिक. इन पूर्वोक्त आचार्यादिक दसोंका श्रम, पाणी, वस्त्र, पात्र, भकान, पीठ, फलक, संस्तारक प्रमुख धर्म साधनों करके जो साहाय्य करणां, शुश्रूषा करणी, जेपज करणी, उजाग (जंगल) में रोग उत्पन्न होनेसें. तथा नाना प्रकारके उपसर्गोंमें पासना करणी, इसका नाम वेय्यावृत्त है.

अथ जो शीशयान् साधु होवे, सो नव धाम सहित शीश पासे, उनकुं नवविध ब्रह्मचर्यकी गुति कहते है, सो लिखते है ॥ गाथा ॥ यसहि कह नि निचिंदिय, कुरुंनर पुत्रकीसिय पणीप ॥ अश्मायाहार विज्र, सणाइ नवधन गुचीठ ॥ १॥ अर्थ:—१ (यसहि के०) बस्ती सो जो ब्रह्मचारी साधु होवे सो श्री, पशु, पंडक इनो करी संयुक्त जो बस्ती होवे, तहां ब्रह्मचारी न रहे, तिनमें शुं प्रथम तो श्री जो है, मो दो तरोंकी है, एक तो देवी, दूसरी मनुष्यणी, इन दोनोंके दो दो जेद है, एक तो अमल, और दूसरी इनकी मूर्ति, या चित्रामकी मूर्ति, यह दोनो प्रकारकी श्री जहां न होवे, तिस बस्तिमें रहे, तथा पशु जो तिर्यचिणी, गौ, महिषी, घोड़ी, बकरी जेन प्रमुख जिस बस्ति में नहीं रहे, तहां तथा पंडक सो नपुंसक, तीसरे वेद वाखा, महा मोह वाखा काम करनेद्वारा, श्री अरु पुरुष, इन दोनोंके साथ विषय सेवन या छा, जिस बस्तिमें रहना होवे, तहां ब्रह्मचारी न रहे, क्योंकि इन तीनों करी संयुक्त बस्तिमें रहते थेके उनोंकी कामविकारकी चेष्टा देखनेसें, ब्रह्मचारीके मनमें विकार उत्पन्न होनेसें ब्रह्मचर्यकुं बाधा होती है, जैसे मूया अरु विप्री दोनु एक जगे रहे, तो मूयकुं सुख नहीं; नेमेही इन तीनों संयुक्त बस्तिमें रहनेमें शीशकुं उपद्रव होवे, ए प्रथम ब्रह्मचर्य गुति.

२ तथा (कह के०) कथा मो केवस श्रीयोहीकुं तथा एकसी श्रीकुं धर्मदेश ना बचनका प्रवेधक्य कथा न करे, तथा श्रीकी कथा न करे ॥ यथा ॥ कथांटी सुरतोन्वारचतुरा, छाटी विदग्धा प्रिया ॥ इत्यादिक कथा न करे, क्योंकि यह कथा जो है. मो गग टप्पन करनेकी हेतु है. जो श्रीके देश. जाति.

कुस, वेष, जाषा, गति, (चलनां) विभ्रम, इंगित, हास्य, लीला, कटाक्ष, स्नेह, रति, कसह, शृंगार, इत्यादिक जो विषयरसकी पोखने वाली कामिनीकी कथा है, सो कदेइ न करे. जे कर करे, तो अवश्य मुनिकाजी मन विकारकूं प्राप्त हो जावे. ए दूसरी ब्रह्मचर्यकी गुप्ति है.

३ तथा (निसिद्ध के०) आसन सो स्त्रीयोंके साथ एक आसन उपर न बैठे, तथा जिस जगहसे स्त्री उठी होवे, उस आसन वा स्थानमें दो घन्टी तक साधु न बैठे, क्यों कि उस जगह तत्काल बैठनेसे स्त्रीकी स्मृति होती है, ओ स्त्रीके बैठनेसे शय्या वा आसन, मैलसें मलिन होता, स्त्रीके स्पर्शवाले आसनादि स्पर्शसें विकार उत्पन्न हो जाता है, ए तीसरी ब्रह्मचर्यगुप्ति.

४ तथा (इंद्रिय के०) इंद्रिय सो अश्रविकी लोकोकूं देखने योग्य, स्त्रीयोंके अंगोपांग जो नाक, स्तन जघन प्रमुख हैं, उसकूं ब्रह्मचारी साधु अपूर्व रसमें मग्न हो कर, नेत्र फाड़ कर, न देखे, कदाचित् दृष्टि पड़ जाय, तो पीठसें ऐंसी चिंतवनाजी न करे, जैसे कि बने सुंदर लोचन हैं! नासिका बहुत सीधी है! बांठने योग्य दोनो कुच हैं! जे कर स्त्रीके पूर्वोक्त अंगोपांग एकाग्र रस मग्न हो कर चिंतवना करे, तो अवश्य मन मोहे, तथा विकारकूं प्राप्त होवे.

५ तथा (कुन्तल के०) कुन्तलांतर सो जिन जीतके तट्टीके, कनातके, अंतर बीचमें होनेसें स्त्री पुरुष, मैथुन करते होवें, अरु उनका शब्द सुणाइ देवे, तहां साधु ब्रह्मचारी न रहे. ए पांचमी गुप्ति.

६ तथा (पुर्वकीलिय के०) पुर्वकीला सो पुर्वरहस्य अवस्थामें स्त्रीके साथ जो विषय जोग क्रीला करी होवे, तीसकूं स्मरण न करे; जे कर करे, तो कामाग्नि प्रज्ज्वलित हो जाता है ए छठी गुप्ति.

७ तथा (पणीय के०) प्रणीत सो अति चीकणा, मीठा, छूध, दधि प्र मुख अति धातुपुष्ट करनेवाला आहार निरंतर न करे; जे कर करे, तो वीर्यकी वृद्धि होनेसें अवश्य वेदोदय होगा, फेर जरूर विषय सेवेगा, क्योंकि जो बोदी कोथलीमें बहुत रूपिये जरहेगा, तो जरूर फाट जायगी.

८ तथा (अश्मायाहार के०) अतिमात्राहार. सो रूखी जिह्वाजी प्रमा एसें अधिक न खावे, क्यों कि अधिक खानेसें विकार हो जाता है, अरु शरीरकूं पीडा विज्ञूचिकादिक होनेका कारण है, ए आठमी गुप्ति.

९ तथा (विज्ञूषणा के०) विज्ञूषणादि शरीरकी विज्ञूषा सो ज्ञान, विज्ञ

पन, धूप, नख, दांत, केश. इनकी सुंदरताइके वास्ते समारणां, तथा तिलक, सुरमा, कज्जल, विज्जूपाके वास्ते नेत्रोंमें गेरनां, तथा जायेंसें पग मांजने, साबु, तेल प्रमुख मसल कर गरम पाणीसैं सुकोमलताइके वास्ते धोनां, इत्यादिक शरीरकी विज्जूपा न करे, ए नवमी ब्रह्मचर्यगुप्ति. ए नव प्रकारकी गुप्ति सो ब्रह्मव्रतकी रक्षा रूप नव वाड हे.

अथ ज्ञानादि तीन कहेते हैं. उसमें यथार्थ वस्तुका जो बोधक सो ज्ञान, सो ज्ञानवरणीय कर्मके कय तथा कयोपशमके होनेसैं जो उत्पन्न हुआ हे बोध, तिसका हेतु जो छादशांग ओ छादशोपांग, तथा प्रकीर्णक उत्तराध्ययनादिक, सो सर्व ज्ञान कहियें. तथा दूसरा दर्शन सो १ जीव, २ अजीव, ३ पुण्य, ४ पाप, ५ आश्रव, ६ संवर, ७ निर्झारा, ८ बंध, ९ मोक्ष, इन जीवादिक नव तत्त्वका जो स्वरूप, तिनमें श्रद्धा (रुचि) करनी, जे सैंकी ए नव तत्त्व तथ्य हैं, मिथ्या नहीं, ऐसी तत्त्वरुचि तिसका नाम दर्शन हे, तथा तिसरा सर्व पापके व्यापारोंसैं ज्ञान, श्रद्धान पूर्वक जो निवृत्त होनां इसका नाम चारित्र्यहे, इस चारित्र्यकेजी दोजेद हैं, एक देशविरतिचारित्र्य, दूसरा सर्व विरतिचारित्र्य; उसमें देशविरति चारित्र्य तो जहां गृहाश्रम धर्मका स्वरूप लिखेंगे, तहांसैं जान लेनां, अरु जो सर्वविरति चारित्र्य हे, तिसका ही स्वरूप, इसी गुरुतत्त्वमें लिखने लग रहे हैं, ए ज्ञानादिक तीन जाननां.

अथ धारा प्रकारका तप लिखते हैं ॥ गाथा ॥ अणसण मूणोयरिया, वित्तीसंखेवणरसद्याउ ॥ कायकलेसो संखी, णया य वज्जो तवो होइ ॥ १ ॥ पायमिन्नं विण्णं, वेयावच्चं तद्देव सद्याउ ॥ ज्ञाणं उस्तग्गोविय, अप्रिंत रउं तवो होइ ॥ २ ॥ इनका अर्थ—१ व्रत करणां, २ थोना खाणां, ३ नाना प्रकारके अजिग्रह करणे, ४ रस जो दूध, दही, घृत, तेल, मीठा पकान्न, इनोका त्याग करनां, ५ कायक्लेश, वीरासन, दंडासन आदिक करी अनेक तरेंका कायक्लेश करनां, ६ पांचो इंद्रियोंकूं अपने अपने विषयोंसैं रोक नां, ए उ प्रकारका चाहिर तप हे, १ जो कुठ अयोग्य काम करा अरु पीठेसैं गुरुके आगे आपणा पाप जेसैं करा था, वेसेही प्रगट पणे कहना, आगेकूं फेरवो पाप न करना, अरु पूर्व जो करा हे, उसकी निवृत्तिके वास्ते गुरु पासों यथा योग्यदंड लेनां, इसका नाम प्रायश्चित्त तप हे. तथा २ अपनेस गुणाधिककी विनय करनी, तथा ३ वेय्यावृत्त जक्ति करनी,

तथा ४ एक आप दूसरायोंको पढ़ाना, दूसरा संशय उत्पन्न हुआ गुरुकुं
पूठना, तीसरा अपने सीखे हुयेकुं बारंवार उच्चारन करना, चौथा जो कुछ
पढ़ा है, उसके तात्पर्यकुं एकाग्रचित्त करके चिंतना, इसका नाम अनु-
प्रेक्षा है. पांचमी धर्मकथा करनी, ए पांच प्रकारका स्वाध्याय तप है. तथा
५ एक आर्तध्यान, दूसरा रौद्रध्यान, तीसरा धर्मध्यान, चौथा शुक्लध्या-
न. इन चारोंमेंसे आर्तध्यान श्रु रौद्रध्यान, ए तो दोनों त्यागने, औ ध-
र्मध्यान श्रु शुक्लध्यान, ए दोनों अंगीकार करने, ए ध्यानतप तथा ६
सर्व उपाधियोंको त्याग देनां सो व्युत्सर्ग तप है, ए ठ प्रकारका अर्च्यं
तप है, ए सर्व मिल कर चार प्रकारका तप हैं.

क्रोध, मान, माया, श्रु लोभ, इन चारोंका निग्रह करना. यह पांच
व्रत, दश श्रमणधर्म, सत्तर प्रकारका संयम, दश प्रकारका वैद्यावृत्त, नव
प्रकारकी ब्रह्मचर्यश्रुति, तीन ज्ञान, दर्शन, चारित्र, चारों प्रकारका तप,
श्रु क्रोधादिक चारका निग्रह, ए सर्व मिल कर सत्तर जेद चारित्रकेहै
इत वास्ते इनकुं चरणसित्तरी कहते हैं.

अथ करणसित्तरीके जेद लिखते हैं ॥ गाथा ॥ पिंडवितोही समिद्धे,
जावण पडिमाय इंदिय निरोहो ॥ पनिखेहण गुत्तीउं, अजिगह चैव कर
णंतु ॥ १ ॥ इतका अर्थ—पिंडविशुद्धि तो एक आहार, दूसरा उपाश्रय,
तीसरा वस्त्र, चौथा पात्र, ए चार वस्तुकुं साधु वेंतालीश पूषण करके र-
हित लेवे, तितका नाम पिंडविशुद्धि है. वेंतालीश पूषणका जो पूरा स्वरूप
देखनां होवे. तब तो पिंडनिर्युक्ति ग्रंथ जडबाहुस्वामिकृत उसकी
मलयगिरिसूरि कृत टीका सात हजार श्लोक प्रमाण है, सो देखनी.
तथा पिंडविशुद्धि ग्रंथ जिनवल्लभसूरिकृत औ उसकी जिनपतिसूरिकृत
टीकासे जान लेनां, तथा प्रवचनसारोद्धार श्रीनेमिचंद्रसूरिकृतसूत्र, तथा
उसकी सिद्धतेनसूरिकृतटीकासे जान लेनां, तथा श्रीहेमचंद्र सूरिकृत
योग शास्त्रसे जान लेनां.

अथ समिद्धे तो पांच समिति, उसका स्वरूप लिखते हैं. प्रथम ईयां
समिति, सो चक्षुनेका नाम ईयां कहते हैं, श्रु समिति कहियें सन्यस्
आगमके अनुसार जो प्रवृत्ति चेष्टा करणी, सो समिति कहियें. व्रत स्या
वर जीवोंकुं अन्नदान दाता जो मुनि है, तिस मुनिकुं अवश्य प्रयोज

नके वास्ते चखनां पने, तव किस रीतिसें चखनां ? प्रथम तो प्रासेऊ र स्तेसैं चखनां, जो रस्ना सूर्यकी किरणोंसैं प्रतप्त होवे, प्राशुक जीव रहित होवे, जिसमें स्त्री पुरुषका संघट न होवे, जीवोंकी रक्षा निमित्त अथवा अपने शरीरकी रक्षा निमित्त पगके अंगूठेसैं ले कर चार हाथ प्रमाण जूमिका आगेसैं देख कर चखनां इसका नाम ईयांसमिति हे. इस रीतिसैं जो साधु चखे, तथा दूसरा कोइ काम करे, तिस काममें कदाचित् कोइ जीव मरनी जाये, तोही साधुक पाप नहीं खगता, क्योंकि उसका उपयोग बहुत शुद्ध है, यह प्रथम ईयांसमिति. तथा पाप सहित जापा, तथा कठोर जापा, जेमें केतू भूत है, कामी है, राक्षस है, चार्वाक प्रमुखके कहे शब्दों कां न कहे, जो शब्द, जगतमें निंदनिक होवे, सो न बोझे, परकूं सुखदा इ योजनेमें भोगा बहुत प्रयोजनोंका साधनेवाला संदेह रहित थेसा व धन बोझे, सो दूसरी जापासमिति. तथा घंताखीश छूषण रहित आहा रादिक घट्टण करे, सो तीसरी छूषणासमिति, तथा आसन, संस्तारक, पीठ, फलंग, वस्त्र, पात्र, दंष्ट्रादिककां नेत्रांसैं देख कर उपयोग पूर्वक खेनां, अरु खानां करनां, सो चोथी आदाननिक्षेप समिति, तथा पुरीष, प्रध्वज गृह, नाकका श्लेष्म, शरीरमज्ज, वस्त्र, अन्न, पानी, जो शरीरका अनुपकारी होवे, इन सबकूं जीव रहित जूमिकामें स्थापन करनां, सो पांचमी परि स्थापना समिति, यह पांच समिति कही.

अथ चार जावना सिग्वते हैं. प्रथम अनित्यजावना, दूसरी अशरण जावना, तीसरी संगारजावना, चौथी एकत्वजावना, पांचमी अनित्यजावना. उठी अशुचित्वावना, मानमी आश्रवजावना, आगमी संवरजावना, नवमी निर्झराजावना, दशमी लोकमजावना, अग्यारमी बोधिपुत्र रत्न जावना. बारमी धर्मका कथन करने वाखा, अर्हन् है, यह चार जावना जिन तरेमें जावने योग्य रात दिनमें है, नेमें अन्याग करनां, इन चार जावनाओंका किंचित् स्वरूप सिग्वते हैं.

१ अनित्यजावना. सो जिनका वज्रकी नरें सार अरु कजिन शरीर या, बोधी अनित्य रूप गच्छनेने ब्रह्मण कर सीये, तो फेर केंसेके गतकी तो निःकार हो जीवोंका शरीर है, सो यह अनित्य रूप राक्षसमें कैसे बचेने ? तथा शोक, विवर्द्धी नरें आनंदिन हो कर, विषय सुखका

इधकी तरें स्वाद लेते हैं, परंतु दाढीकी मारकूं नहीं देखते हैं, जावार्थः—
 विषयसुख जोग कर आनंद तो मानते हैं, परंतु जन्मांतरमें नरकपतन
 रूप संकटसें नहीं मरते हैं, तथा जीवोंका शरीर तो पाणीके बुल बुलेकी
 तरें है, अरु जीवोंका जो जीवित है, सो ध्वजाकी तरें चंचल है, तथा
 लावण्य, स्त्री, परिवार, आंखकी पापण, (जांफण) की तरें चंचल है, अरु
 यौवन जो है, सो हाथीके कानकी तरें चंचल है, तथा स्वामीपणा जो
 है, सो स्वप्नश्रेणीकी तरें है, अरु लक्ष्मी जो है सो चपला (बीजली) की
 तरें चपल है, इसी तरें सर्व पदार्थोंकूं अनित्य पणा विचारता प्यारा पुत्रा
 दिकजी मर जाये, तोजी अपने मनमें शोच न करे, तथा जो मूर्ख जीव
 सर्व जावकूं नित्य माने हैं, वो जीर्ण पत्रोकी जोंपनीके जंग होनेसें रात
 दिन रुदन करता है; तिस वास्ते तृष्णाका नाश करके ममत्व रहित
 शुद्ध बुद्धि वाला जीव अनित्य जावना जावे ॥ इति प्रथम जावना ॥ १ ॥
 २ दूसरी अशरण जावनाका स्वरूप कहते हैं. पिता, माता, पुत्र, चार्या,
 प्रमुखके आगे बहुत आधि व्याधिके समूह रूप शृंखलामें बंधा हुये रुदन
 करते हुयेकूं कर्मरूप योद्धोनें यमके (कालके) मुखमें प्रक्षेप करता थाकां
 बना दुःख है, जो लोक शरण रहित अनाथ है, वे क्या करेंगे ? तथा
 नाना प्रकारके शास्त्र विषयोंकूं जो जानते हैं, तथा नाना प्रकारके मंत्र
 यंत्रोंकी क्रिया जो जानते हैं. तथा जो ज्योतिषविद्याकूं जानते हैं, तथा
 जो नाना प्रकारकी औषधि, रसायन प्रमुख वैद्यक क्रियाओंमें कुशल हैं.
 ए सर्व विद्यावानोंकी क्रिया कालके आगे कुठली करनेकूं समर्थ नहीं
 हैं, तथा नाना प्रकारके शस्त्रों वाले उद्भटजोद्धोंकी सेना करके परिवे
 षितजी है, नाना प्रकारके मदजरहाथियोंकी वाडजी है. ऐसे इंद्र, वासु,
 देव, चक्रवर्ती सरीखे बलवान्जी कालके घरमें खेंचे हुये चले जाते हैं,
 बड़ा दुःख है कि जो प्राणियोंकूं कोइजी त्राण नहीं. तथा जो मेरुका दंड
 अरु पृथ्वीका उत्र करनेकूं समर्थ थे, अरु चोमाजी जिनकूं क्लेश नहीं था,
 ऐसे अनंतवली तीर्थकरजी लोकोकूं कालसें वचानेकूं समर्थ नहीं, तो फेर
 दूसरा कौनसा समर्थ है ? स्त्री, मित्र पुत्रादिकोके स्नेहरूप भूतके डूर करणे
 वास्ते शुद्धमति जीव अशरण जावना जावे. ए दूसरी अशरण जावना.

३ तीसरी संसार जावना कहते हैं बुद्धिमान् तथा बुद्धि रहित, सुखी,

दुःखी, रूपवान् तथा कुरूपवान् स्वामी तथा दास, प्यारा तथा वैरी, राजा तथा प्रजा, देवता, मनुष्य, तिर्यग्, नारक इत्यादिक अनेक प्रकारके कर्मोंके वशसे सांग धार कर, इस संसार रूप अखाड़ेमें यह जीव नाटक करता है, तथा अनेक पाप बांध करके महारंज, मांस जहण, मदिरापानादिक कारणों करके, महा अंधकार जहां कुठ नहीं दीखता, ऐसी नरकचूमिकामें जा करके परता है, तिहां अंग छेदन, अग्निमें बलनादि क्लेश रूप महा दुःख जो जीवकूं होते हैं, उन दुःखोंकूं केबलीजी कथन नहीं कर सकता। यह प्रथम नरकगति कही। तथा ठल, जूठादिक कारणोंसे प्राणी तिर्यच गतिमें सिंह, बाघ, हाथी, मृग, बैल, बकरे प्रमुखके शरीर धारण करता है, अरु तिस तिर्यच गतिमें कुधा, तृषा, वध, बंधन, ताडन, रोग, हृल प्रमुखमें बहनां, इत्यादिक दुःख सदा जो जीव सहता है, वो दुःख कोन कहनेकूं समर्थ है ? यह दूसरी तिर्यगगति कही।

तथा खाद्य, अखाद्य, विवेकशून्य, मनमें लज्जा नहीं, माता, बेटी, गमन करनेमें एक समान निःशुक्ता बह्वच है, तहां जो अनार्य मनुष्य हैं, वोतो निरंतर जीवघात, मांस जहण, चोरी, परस्त्रीगमन प्रमुख कारणों करके बड़ा जारी पापकर्म महा दुःखोंका देने वाला उत्पन्न करते है, तथा आर्यदेशमेंजी कृत्रिय, ब्राह्मण प्रमुख जो हैं, बेजी अज्ञान, दरिद्र, कष्ट, दोर्जाग्य, रोगादिक करके पीरत हैं, दूसरोंका काम करणां, मानजंग, अपमान प्रमुख अनेक दुःख निरंतर जोग रहे हैं, तथा अग्निवत् रक्त रंग है जिनका पेंसीयों सूइयों एक एक रोममें एकेक सूइ किसी जुवान पुरुषके एक काखमें चोभेसें जैसा उसकूं दुःख होवे तिस दुःखसें आव गुणा दुःख जीव स्त्रीके गर्ज जब रहता है तब पाता है, इस दुःखसें अनंत गुणां दुःख जन्म समय होते हैं, तथा बाल अवस्थामें मूत्र, पुरीष, धूलिमें खोटनां, अज्ञानी पणा, जगत्की निदा, योचनमें धन अर्जन करनां, इष्ट वस्तुका वियोग, अनिष्ट वस्तुका संयोग, अरु बृद्ध अवस्थामें शरीरका कंपनां, नेत्रोंका बलहीन हो जानां, आस, खांसी प्रमुख करके महा दुःखी होनां तो वो कोनमी दशा है कि जिसमें प्राणी सुख पावे ? कोइजी नहीं यह मनुष्यगति कही। तथा सम्यग् दर्शनादिकके पालनेसें जो जीव देवता होता है, सोजी शोक, विषाद, मत्सर, नय, थोमी रुद्धि करके ईर्ष्या, काम, मद,

दुःखी, रूपवान् तथा कुरूपवान् स्वामी तथा दास, प्यारा तथा बेरी, राजा तथा प्रजा, देवता, मनुष्य, तिर्यग्, नारक इत्यादिक अनेक प्रकारके कर्मोंके वशसे सांग धार कर, इस संसार रूप अखाड़ेमें यह जीव नाटक करता है, तथा अनेक पाप बांध करके महारंज, मांस जक्षण, मदिरापानादिक कारणों करके, महा अंधकार जहां कुछ नहीं दीखता, ऐसी नरकज्मिकामें जा करके पकता है, तिहां अंग छेदन, अग्निमें बलनादि क्लेश रूप महा दुःख जो जीवकूं होते हैं, उन दुःखोंकूं केबलीजी कथन नहीं कर सका. यह प्रथम नरकगति कही. तथा ठल, जूठादिक कारणोंसे प्राणी तिर्यंच गतिमें सिंह, बाघ, हाथी, मृग, बैल, बकरे प्रमुखके शरीर धारण करता है. अरु तिस तिर्यंच गतिमें दुधा, तृपा, बध, बंधन, ताड़न, रोग, हल प्रमुखमें बहनां. इत्यादिक दुःख सदा जो जीव सहता है, वो दुःख कौन कहनेकूं समर्थ है ? यह दूसरी तिर्यंगति कही.

तथा खाद्य, अखाद्य, विवेकशून्य, मनमें लज्जा नहीं, माता, बेटी, गमन करनेमें एक समान निःशुक्ता बहज है, तहां जो अनार्य मनुष्य हैं, वोतो निरंतर जीवघात, मांस जक्षण, चोरी, परस्त्रीगमन प्रमुख कारणों करके बड़ा जारी पापकर्म महा दुःखोंका देने वाला उत्पन्न करते है, तथा आर्यदेशमेंजी क्षत्रिय, ब्राह्मण प्रमुख जो हैं, वेजी अज्ञान, दरिद्र, कष्ट, दोर्जाग्य, रोगादिक करके पीरत हैं. दूसरोंका काम करणां, मानजंग, अपमान प्रमुख अनेक दुःख निरंतर जोग रहे हैं, तथा अग्निवत् रक्त रंग है जिनका ऐसीयों सूइयों एक एक रोममें एकेक सूइ किसी जुवान पुरुषके एक कालमें चोत्तेसें जैसा उसकूं दुःख होवे तिस दुःखसें आठ गुणा दुःख जीव स्त्रीके गर्ज जब रहता है तब पाता है, इस दुःखसें अनंत गुणां दुःख जन्म समय होते है, तथा बाल अवस्थामें मूत्र, पुरीष, धूसिमें छोटनां, अज्ञानी पणा, जगत्की निदा, योवनमें धन अर्जन करनां, इष्ट वस्तुका वियोग, अनिष्ट वस्तुका संयोग, अरु बृद्ध अवस्थामें शरीरका कंपनां, नेत्रोंका बलहीन हो जानां, आस, खांसी प्रमुख करके महा दुःखी होनां तो वो कौनसी दशा है कि जिसमें प्राणी सुख पावे ? कोइजी नहीं यह मनुष्यगति कही. तथा सम्यग् दर्शनादिकके पालनेसें जो जीव देवता होता है, सोजी शोक, विपाद, मत्सर, जय, थोनी रुद्धि करके ईर्ष्या, काम, मद,

कुषा प्रमुख करके पीकित हो कर, आपणां आयु दीनमन होकर पूर्ण करते हैं. यह देवगति कही. इस तरेसे मोक्षाजिखापी पुरुष तीसरी संसार जावना जावे.

४ चौथी एकत्व जावना कहते हैं. एकसाही जीव उत्पन्न होता है, अरु एकसाही मृत होता है, एकसाही कर्म करता है, अरु एकसाही तिनका फल भोगता है, तथा जो जीवने बहुत कष्ट करके धन उपाज्या है, सो धन, स्त्री, मित्र पुत्र, जाइ प्रमुख खा जावेंगे अरु जो पाप कर्म उपाज्या है, उसका फल तो करने वाला जीव एकसाही नरक, तिर्यच गतिमें जाकर भोगता है, देखो यह कैसा आश्चर्य है ! तथा यह जो जीव इस देहके वास्ते रात दिन फिरता है, अरु दीनपणा अवलंबन करता है, धर्मसें ब्रष्ट होता है, अपने हितकूं भगाता है, न्यायसें दूर होता है, सो देह इस आत्माके साथ एक पग तकभी परभवमें न चलेगी, तो फेर यह देह क्या करेगी ? क्या साहाय्य देगी ? अरु स्वजन जो हैं, सो अपने स्वार्थमें तत्पर हैं, तेरा वास्तवमें कोईभी नहीं. इस वास्ते हे बुद्धिमान् ! तूं अपने हितके वास्ते धर्म करनेमें प्रयत्न कर. इस तरेसे चौथी एकत्व जावना जावे.

५ पांचमी अन्यत्व जावना कहते हैं. जीव इस देहकूं ठोड कर परलो कहां जाता है, इस वास्ते इस शरीरसें जीव जिन है, तो फिर नाना प्रकारका सुगंधि लेपन करनां व्यर्थ है, इस वास्ते इस शरीरकूं कोई दंनदिक करके मारे तो समता रक्त पीना चाहिये, क्रोध न करनां, जो पुरुष अन्यत्व जावना जावे. तिसकूं शरीर धन, पुत्रादिकके वियोग होनेसेंभी शोक नहीं होता है. यह पांचमी अन्यत्व जावना कही.

६ छठी अशुचि जावना बिलते हैं. जैसें लूणकी खानमें जो पदार्थ पन ता है वो सब लूण हो जाता है, तैसेही इस कायामें जो कुछ आहार प डता है सो सब मसरूप हो जाता है, ऐसी यह काया अशुचि है, तथा यह काया लोहि. अरु शुक्र इन दोनोंके मिलनेसें गर्भ उत्पन्न होता है, जरा करके वेष्टित होता है, जो कुछ माता खाती है, उसीके रक्तसें वो गर्भ, बृद्धि कूं प्राप्त होता है. अरु स्थिर धातुयां करी पूर्ण हैं. ऐसी देह कौन बुद्धिमान् शुचिमानता है ? तथा जो सुखाइ, शुक्र गंध बाडे मोदक, दही, दूध, इक्षुरस, शालि, लंदन, जाक, पापड, अनृता, घेठर, आंव प्रमुख खाता है, सो तत्काज मसरूप हो जाता है, ऐसी अशुचि कायाकूं

महा मोहांध पुरुष, शुचि माने हैं. तथा पानीके सो (१००) घनोंसे स्नान करके सुगंधि, पुष्प, कस्तूरि प्रमुख ड्रव्यों करके बाहिरली त्वचा तो कितनेक कालतांइ मुग्धजीव शुचि सुगंधित करते हैं, परंतु विष्टेका कोठा मध्य जागमें कैसें शुचि होवें ? तथा बड़े हर्ष वृद्धिवाले ड्रव्य कर के वासित है, दिशा, तथा चंदन, कस्तूरी, कर्पूर, अगुरु, कुंकुम प्रमुख वस्तुका शरीरके साथ जब संबंध होता है, तब ए पूर्वोक्त सर्व वस्तु ड्रु गंध रूप रूप मात्रमें हो जाती है, फेर इस कायाकूं कौन बुद्धिमान शुचि मानता है ? ऐसे शरीरकी अशुचिरूपता विचार करके बुद्धिमान पुरुष, इस शरीरकी ममत्व नकरे. यह ठही अशुचि जावना कही.

७ सातमी आश्रवजावना कहते हैं. मन, वचन, ओ कायाके योग करके शुचाशुच कर्म जो जीव ग्रहण करते हैं, तिसका नाम आश्रव, जिनेश्वर देव कहते हैं. सर्व जीवों विषे मेत्र जावना, गुणाधिक जीवमें प्रमोद जावना, अविनीत शिष्यादिकमें मध्यस्थ जावना, दुःखी जीवोंमें कारुण्यजावना, इन चारो जावनाओं करके जिस पुरुषका अंतःकरण निरंतर वासित होवे, वो पुण्यवान् जीव, वेतालीश प्रकारका पुण्य उपार्जन करता है. तथा रौद्रध्यान, आर्त्तध्यान, पांच प्रकारका मिथ्यात्व, शोख प्रकारकी कपाय, पांच प्रकारका विषय, इनो करके जिनोका मन वासित है, वे जीव, व्याशी प्रकारका अशुच कर्म उपार्जन करते हैं, तथा सर्वज्ञ अर्हत जगद्यंत, गुरु, सिद्धांत द्वादशांग, चार प्रकारका संघ, इन सर्वका जो गुणानुवाद कीर्तन करता है, अरु सत्य वचन हितकारी बोलता है, वे जीव, शुचकर्म उपार्जन करते हैं. तथा श्रीसंघ, गुरु, सर्वज्ञ धर्म, अरु धर्मी इन सबके जो अवर्ण वाद बोले, जूठे मतका, वा कपोल कल्पित मतका जो उपदेश करे, वो जीव अशुच कर्म उपार्जन करता है. तथा जो पुरुष वीतराग देवकी पुष्पादिकें करी पूजा करे तथा साधुकी जक्ति, विश्रामण प्रमुख करे, तथा पापसें काया गुप्त करे, वो जीव, शुच कर्म उपार्जन करता है. तथा जो, जीव, मांसजक्षण, मुरापान, जीवघात, चोरी, जूथ्या, परस्त्रीगमनादिक करे, वो अशुच कर्म उपार्जन करता है. ए अनुक्रमसें मन, वचन, काया कर के शुचाशुच आश्रव उपार्जन करता है, इस प्रकारसें यह आश्रव जावना जो जीव जावे है, सो अनर्थ परंपराकूं त्याग देता है, अरु महानंदस्व

रूप, दुःख दावानलकूं मेघसमान ऐसी शर्मावलि मोक्षकी देने हारी अंगीकार करता है. इस तरेसें सातमी आश्रवजावना जावे.

॥ आठमी संवरजावना कहते हैं, सो आश्रवोंका जो निरोध करनां, तिसकूं संवर कहते हैं, सो संवर दो प्रकारका होता है, एक देशसंवर, दूसरा सर्व संवर. उसमें सर्व करिकें संवर तो अयोगी केवलीमें होता है, अरु जो देशसें संवर है, सो एक दो प्रमुख आश्रवके निरोध करने बाखेमें होता है. तथा बली संवर दो प्रकारका है, एक अव्यसंवर, दूसरा जावसंवर, उसमें जो कर्मपुञ्ज आश्रव करके जीव ग्रहण करता है, तिनका जो देशसें वा सर्वसें वेदन करनां, सो अव्यसंवर अरु जो जब हेतु क्रियाका त्याग, सो जावसंवर. मिथ्यात्व कपाय प्रमुख आश्रवोंको जो बुद्धिमान् उपाय करके निरोध करे, अरु आर्त, रोड ध्यान जो बुद्धिमान् बज्जें, धर्मध्यान शुद्धध्यान ध्यावे, क्रोधकूं दूना करके जीते, मानकूं मृदुभाव करके जीते, मायाकूं सरलता करके जीते, लोभकूं संतोष करके जीते, ईद्रियोंके विषय इष्टानिष्टकूं राग द्वेषके त्यागनेसें जीते, इत प्रकारसें जो बुद्धिमान् संवरजावना जावे, तो स्वर्ग मोक्षरूप लक्ष्मी अवश्य उसके वशीभूत हो जाती है.

एनवनी निर्जारा जावना लिखते हैं. संसारकी हेतुभूत जो कर्मकी संतति है, तिसकी अतिशय करके जो हानी करे, तिसका नाम निर्जारा है. सो निर्जारा दो प्रकारकी है. एक सकाम निर्जारा, दूसरी अकाम निर्जारा, इन दोनोंमेंसूं जो सकाम निर्जारा है, सो उपशांति चित्तवाले साधुकूं होती है, अरु अकामनिर्जारा, शेष जीवोंकूं होती है. शेष जीवोंकूं जो अकाम निर्जारा होती है, सो कर्मका पाक स्वयमेव होता है, अरु उपायसें नही कर्मका पाक होता है, जैसें आंवका फल स्वयमेवही बृक्षकी डालीमें लगा हुआही पक जाता है, अरु कोइबादिक पखाल गच्छाद्वेष करनेसें नही पक होता है, ऐसेही निर्जाराजी दो प्रकारकी है. हमारे कमोंकी निर्जारा होवे ऐसे आशय बाखे पुरुष जो तप प्रमुख करते हैं, उनोंके सकाम निर्जारा होती है, अरु एकेंद्रिय जो जीव है, तिनकूं विशेष ज्ञान तो नहीं परंतु शीतोष्ण, वर्षा, दहन, ठेदन, जेदनादिक करके सदा जो वो कष्ट जो गनेसें कर्म निर्जारा होती है, उसका नाम अकाम निर्जारा है, ऐसें तप प्रमुख करके जो निर्जाराकी इच्छा करे, सो नवमी निर्जारा जावना जाननी.

१० दशमी लोकस्वजाव जावना कहते हैं. यह पृथिवी, चंद्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारे अरु लोकाकाश, नरक, स्वर्ग प्रमुख सर्वकुं मिलाके एक लोक कहनेमें आता है, तिस संपूर्ण लोकका आकार जैनमतके सिद्धांतमें ऐसे लिखा है. जैसे कोइ पुरुष जामा पहिरके कमरमें दोनो हाथ लगा कर खड़ा होवे, जैसा उसका आकार है, ऐसाही लोकका आकार है, पट्टव्य करके पूर्ण है, उत्पत्ति स्थिति, अरु व्यय, इन तीनों स्वरूपों करी संयुक्त है. अनादि अनंत है, किसीका रचा हुआ नहीं है, ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्थांशलोक, इन तीन स्वरूपोंमें बड़ा हुआ है जो जीवपुंज, सब इसीके अंदर है, बाहिर नहीं. लोकसे बाहिर तो केवल एक आकाशही है, वो आकाशजी अनंत है, इसी आकाशका नाम जैन शास्त्रोंमें अलोक नाम करके लिखा है; अधोलोकमें न्यारी न्यारी देव उपरि सात पृथिवी हैं, उनमें नरकवासी जीव रहते हैं, अरु किसी जगे जवनपति व्यंतरजी रहते हैं, तिरछे लोकमें मनुष्य अरु तिर्यच और व्यंतर रहते हैं, ऊर्ध्व लोकमें देवता रहते हैं, विशेष करके जो लोकस्वरूप देखना होवे, तो लोकनामी द्वात्रिंशतिकासे तथा लोकप्रकाशग्रंथसे जान लेना. इसतरें लोकके स्वरूपका जो चिंतन करना है, सो दशमी लोकस्वजावजावना है.

११ अग्नीपारमी बोधिपुंजत्व जावना कहते हैं, पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वायु, पनस्पति, इनमें अणु करेहूये क्लिष्ट कर्मों करके जीव भ्रमण करता है, इस जयानक संसारमें अनंतानंत पुंजपरावर्तेन करता हुआ यह जीव अकाम निर्जारा करके, अरु पुण्य उपार्जन करके, वैज्रिय, त्रींज्रिय, चउरिंज्रिय पंचेंज्रिय रूप व्रत पणा पावे है, फेर आर्यक्षेत्र, सुजाति, जला कुल, रोग रहित शरीर, संपदा, बड़ा राज्यसुख, हलके कर्म, तत्त्वातत्त्वके विवेचन करने वाली बोधवीजके बोने वाली, कर्मक्षय करके मोक्ष सुखोंकी जननी, ऐसी श्री सर्वज्ञ अर्हंतकी देशना मिलनी बहुत दुर्लभ है, जे कर जीव एक बारजी सम्यक्स्वरूप बोधि पामता, तो इतने काख तांइ कदापि संसारमें पर्यटन न करता, जो अतीत काखमें सिद्ध हूये, जो वर्तमानमें सिद्ध होते हैं, अरु जो अनागत काखमें सिद्ध होवेंगें, वे सर्व बोधिहीके माहात्म्य हैं, इस वास्ते नव्य जीवकूं बोधिकी प्राप्तिमें यत्नकरना चाहियें; क्योंकि कि

तनेक जीवोंने अनंत बार ड्रव्य चारित्र पाया है, परंतु बोधिके बिना सर्व निष्फल हुआ. यह अगीश्वरमी जावना कही.

१२ वारमी धर्म कथाके कथन करनेवाला अर्हन् है यह जावना लिखते हैं. जो पुरुष परहित करनेमें उद्यत है, अरु वीतराग है, वो किसी ज गामेंजी जूठ न बोलेगा. इस वास्ते उसके कहे दूये धर्ममें सत्यता है, अैसा तो लोकालोककूं केवलज्ञान करकें प्रकाश करनहार अर्हतही हो सका है, दूसरा नहीं, हांत्यादि दश प्रकारका धर्मकूं जिनेश्वर कहते दूये उस धर्म करकें जीव, संसार समुद्रमें डुबता नहीं, जो अर्हतकी वाणी है, सो पूर्वापर अविरुद्ध है, अरु तिन वचनोंमें हिंसाका उपदेश नहीं. वचन जो कहते हैं, सो निर्जारा वास्ते. दूसरेका उपदेश बिना विचित्र तरेंसे कह जाते हैं, तथा कुतीर्थीयोंके जो वचन हे सो सर्व सज्जतिके बैरी हैं, क्यों के यज्ञादिकोंमें पशुवध रूप हिंसा करकें कलंकित हैं, पूर्वापरविरोधी है, निरर्थक वचनजी बहुत है, इस वास्ते जो कुतीर्थी धर्म कहते हैं, वोजी धर्माज्ञास हैं, धर्म नहीं. इस हेतुसे तिनका वचन किस तरें प्रमाण हो सका है? अरु जो जो कुतीर्थीयोंके शास्त्रोंमें कहीं कहीं दिया सत्यादिकोंका कथन है, सोजी कहनेही मात्र है, परंतु तत्वमें वोजी कुछ नहीं है, क्यों के यथार्थ इनका स्वरूप वे जानते नहीं हैं, अरु यथार्थ पालते नहीं हैं, प्रथम तो उन शास्त्रोंके जो उपदेशक हैं, वेही सर्व का माशिमें प्रज्वलित थे, यह बात सर्व सुझ जनोंको विज्ञात है, इस वास्ते अर्हत जगवंतही सत्यार्थके उपदेशक हैं, तथा बडे मदजर हाथीयोंकी घटा संयुक्त जो राज्यका पावनां, ओ सर्व जनोंको आनंद देने वाली संपदाका पावनां, तथा जो चंद्रमांकी तरें निर्मल गुणका समूह पावनां, अरु जो उत्कृष्ट सौजाग्यका विस्तार पावनां, यह सर्व धर्महीका प्रजावहे, तथा समुद्र जो पृथिवीकूं अपणी कल्लोलां करी बहाता नहीं है, तथा मेघ जो पृथिवीकूं रेल पेल नहीं करता, अरु चंद्रमा, सूर्य, जो उदय होते हैं, सर्व अंधकारका विच्छेद करते हैं, सो सर्व जयवंत धर्महीका प्रजाव हे. जिसका जाई नहीं, जिसका मित्र नहीं जिस रोगीका कोई वैद्य नहीं, जिसके पास धन नहीं जिसका कोई नाथ नहीं, जिसमें गुण नहीं, इन सर्वका जाई, मित्र, वैद्य, धन, नाथ, गुणोंका निधान, धर्म है. तथा यह जो अर्हतका कथन

कीया हुआ धर्म है. सो महापथ्य है, जैसे जो जन्म जीव मनमें ध्यावे, सो धर्ममें दृढतर होवे. एकही निर्मल धर्म जावनाकूं निरंतर जो जीव जावे, सो जन्म, अशेष पापकर्म नाश करके अनेक जीवोंकूं उपदेश द्वारा मुक्ती करके, परम पदकूं प्राप्त होता है, तो फेर जो धारांही जानना जावे, तिसके परमपद प्राप्ति होनेमें क्या आश्चर्य है ? यह धारां जावना समाप्ति होगइ है ॥ १२ ॥

अथ धारां प्रतिमा सिखते हैं. एक माससें ले कर सात मास पर्यंत एक एक मासकी वृत्ति जान लेनी, ए सात प्रतिमा होती हैं. जैसे प्रथम एक मासकी, दूसरी दो मासकी, ऐसेही एक एक मास वृत्ति कर सात मास पर्यंत सात प्रतिमा होती हैं, ओ आठमी सात दिन रातकी, नवमी सात दिन रातकी, दशमी सात दिन रातकी, अग्यारमी एक दिन रातकी अरु बारमी प्रतिमा एक रात्रि प्रमाण जाननी एवं धारा प्रतिमा, अत्रि पद, अरु प्रतिज्ञा, ए एकही नाम है.

अथ जो साधु, इन धारां प्रतिमाकूं थंगीकार कर सक्ता है, तिसका स्वरूप सिखते हैं. "संहनधृतिपुक्तः" तहां जिसका संहनन यज्जपजना राग होवे, सो परीहइ सहनेमें अत्यंत समर्थ होता है, "धृति" सो चित्तका स्वस्थपणां होवे, तो रति, अरति करके पीडित नहीं होता है, "महासत्त्वः" महामात्त्विक जो होवे, सो अनुकूल, प्रतिकूल उपसंगे सहनेमें विषादकों नहीं धरता है, "तावित्तात्मा" सद्भावना करके वा स्तिन अंतःकरण होवे, निमकी जावना पांव है, तिनका विस्तार व्यवहार आच्यटीकामें जानना. ए जावना कैसे जावे ? जैसे आगममें हैं, तथा जैसे गुरु आचार्य आज्ञा देवे. जे कर गृह्णी प्रतिमा थंगीकार करे, तदा नयीन आचार्य स्थापन करके ठमकी आज्ञामें, तथा गन्धकी आज्ञा से कर करे, तथा प्रथम आरणे गन्धमेंही रह कर प्रतिमा थंगीकार करणेका प्रतिकर्म करे. सो प्रतिकर्म यह है:-

मातादिक सात जो प्रतिमा हैं, तिनका प्रतिकर्मनी नितनाही है, यथा काष्ठमें ए प्रतिमा नदी थंगीकार करी जानी है, अरु परिकर्मनी यथाका छत्ते नदी कम्पां तथा आदिकी दो प्रतिमा एक बरमे होनी है, तीसरी दह बरमे, चौथी एक बरमे, दोष पांचमी, उठी, सातमी, इन तीनों प्र

तिमाओंका एक वर्षमें परिकर्म एक वर्षमें प्रतिमा, ऐसें नव वर्षमें आदिकी सात प्रतिमा समाप्त करिये हैं.

अथ जो यह प्रतिमा अंगीकार करता है, उसकूं कितना ज्ञान होता है? यावत् किंचित् न्यून दश पूर्व होता है, क्युंकि जिसकूं पूर्ण दश पूर्वकी विद्या होती है, उसका वचन अमोघ होता है, इस वास्ते उसकूं धर्मोपदेश देना चाहियें. उसके उपदेशसें बहुत जव्योंकूं उपकार अरु तीर्थकी वृद्धि होनेसें प्रतिमादि कल्प करना चाहियें; अरु प्रतिमा अंगीकार करने वालोंको जघन्य ज्ञान नवमे पूर्वकी तीसरी वस्तु, आचार वस्तु जिसका नाम हैं, तहां तांश होवे. इतना ज्ञान सूत्र तथा अर्थ, दोनोही पूरे होवें, क्योकि निरतिशय ज्ञानी होनेसें कालादिकों नहीं जान सकेगा, तथा "व्युत्सृष्ट" शरीरकी सार संज्ञाल त्यागी है, देवतादिकका उपसर्ग सहै, जिनकल्पीकी तरें उपसर्ग सहै, तथा एषणापिंरुग्रहण प्रकार, जिह्माग्रहण विधि, गच्छसें बाहिर रहे. इत्यादि शेष वर्णन देखना होवे तो प्रवचनसारोद्धारकी बृहदृत्ति देख लेनी. ए वारां प्रतिमा कही ॥ ११ ॥

अयेंडियनिरोध कहते है. "स्पर्शनं रसनाघ्राणं चक्षुः श्रोत्रं चेति." यह पांच इंद्रिय. अरु स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द, ए पांच, पूर्वोक्त पांच इंद्रियोंके यथाक्रम विषय हैं, इन पांचों विषयोंका निरोध करना, क्यों के जो इंद्रिय वशमें न होगी. तो बड़ी अनर्थकारी होगी, अरु क्लेश सागरमें गेरेंगी ॥ यदज्यधायि ॥ आर्या वृत्तं ॥ सक्तः शब्दे हरिणः, स्पर्शे नागो रस्ते च वारिचरः ॥ कृष्णपतंगो रूपे, जुजंगो गंधेन च विनष्टः ॥१॥ पंचसु सक्ताः पंच, विनष्टा यत्र गृहीतपरमार्थाः ॥ एकः पंचसु सक्तः, प्रयाति जस्मां ततां मूढः ॥ २ ॥ तुरंगैरिव तरतरलै, दुर्दतरिंद्रियैः समाकृष्य ॥ उन्मागे नीयंते, तमोघने दुःखदे जीवः ॥ ३ ॥ अनुष्टुप्वृत्तं ॥ इंद्रियाणां जये तस्मा, यत्नः कार्यः सुबुद्धिजिः ॥ तज्जायो येन जविनां, परत्रेह च शर्मणे ॥४॥

अथ प्रतिदेखना जैन साधुओंमें प्रसिद्ध हैं, उस वास्ते नहीं लिखी.

अथ तीन गुति लिखते हैं. मनोगुति, वचनगुति, कायागुति. ए तीन गुति हैं. इनका स्वरूप ऐसें है कि अशुच मन, वचन, कयाका निरोध करणां, अरु अढी मन, वचन, कायाकी प्रवृत्ति करणी. अजिप्राय यह है कि, मनोगुति तीन प्रकारकी हैं, आर्त्त, रौद्र ध्यानानुबंधी कल्पनाका वियोग, ए प्रथम म

कीया हुआ धर्म है, सो महापण्य है, जैसे जो जन्म जीव मनमें ध्यावे, सो धर्ममें दृढतर होवे. एकही निर्मल धर्म जावनाकूं निरंतर जो जीव जावे, सो जन्म, अशेष पापकर्म नाश करके अनेक जीवोंकूं उपदेश द्वारा सुखी करके, परम पदकूं प्राप्त होता है, तो फेर जो बारांही जावना जावे, तिसके परमपद प्राप्ति होनेमें क्या आश्चर्य है ? यह बारां जावना समाप्ति होगइ है ॥ १५ ॥

अथ बारां प्रतिमा लिखते हैं. एक माससें ले कर सात मास पर्यंत एक एक मासकी वृद्धि जान लेनी, ए सात प्रतिमा होती हैं. जैसे प्रथम एक मासकी, दूसरी दो मासकी, ऐसेही एक एक मास वृद्धि कर सात मास पर्यंत सात प्रतिमा होती हैं, ओ आठमी सात दिन रातकी, नवमी सात दिन रातकी, दशमी सात दिन रातकी, अग्यारमी एक दिन रातकी अरु बारमी प्रतिमा एक रात्रि प्रमाण जाननी एवं बारा प्रतिमा. अग्नि ग्रह, अरु प्रतिज्ञा, ए एकही नाम है.

अथ जो साधु, इन बारां प्रतिमाकूं अंगीकार कर सक्ता है, तिसका स्वरूप लिखते हैं. "संहनधृतियुक्तः" तहां जिसका संहनन वज्ररूपजना राव होवे, सो परीपह सहनेमें अत्यंत समर्थ होता है, "धृति" सो चित्तका स्वस्थपणा होवे, तो रति, अरति करके पीकित नहीं होता है, "महासत्त्वः" महासात्त्विक जो होवे, सो अनुकूल, प्रतिकूल उपसर्ग सहनेमें विपादकों नहीं धरता है, "जावितात्मा" सज्जावना करके वा सित अंतःकरण होवे, तिसकी जावना पांच हैं, तिनका विस्तार व्यवहार जाप्यटीकासें जानना. ए जावना कैसें जावे ? जैसे आगममें हैं, तथा जैसे गुरु आचार्य आज्ञा देवे, जे कर गुरुही प्रतिमा अंगीकार करे, तदा नवीन आचार्य स्थापन करके उसकी आज्ञासें, तथा गद्यकी आज्ञा ले कर करे, तथा प्रथम आपणे गद्यमेंही रह कर प्रतिमा अंगीकार करणेका प्रतिकर्म करे, सो प्रतिकर्म यह है:-

मासादिक सात जो प्रतिमा हैं, तिनका प्रतिकर्मजी तितनाही है, वर्षा कालमें ए प्रतिमा नहीं अंगीकार करी जाती है, अरु परिकर्मजी वर्षाका समें नहीं करणां तथा आदिकी दो प्रतिमा एक वर्षमें होती है, तीसरी एक वर्षमें, चौथी एक वर्षमें, शेष पांचमी, ठाही, सातमी, इन तीनों प्र

तिमाश्रोंका एक वर्षमें परिकर्म एक वर्षमें प्रतिमा, ऐसे नव वर्षमें
द्वितीया सात प्रतिमा समाप्त करिये हैं.

अथ जो यह प्रतिमा अंगीकार करता है, उसकूं कितना ज्ञान होता है? यावत् किंचित् न्यून दश पूर्व होता है, क्युंकि जिसकूं पूर्ण दश पूर्वकी विद्या होती है, उसका वचन अमोघ होता है, इस वास्ते उसकूं प्रमोद देश देना चाहियें. उसके उपदेशसें बहुत जग्योंकूं उपकार अरु तीर्थ वृद्धि होनेसें प्रतिमादि कल्प करना चाहियें; अरु प्रतिमा अंगीकार करने वालोंकूं जघन्य ज्ञान नवमे पूर्वकी तीसरी वस्तु, आचार वस्तु जिसका नाम हैं, तहां तांइ होवे. इतना ज्ञान सूत्र तथा अर्थ, दोनोही से हैं क्योकि निरतिशय ज्ञानी होनेसें कालादिकों नहीं जान सकेंगे. अरु "व्युत्पद्य" शरीरकी सार संज्ञाव त्यागी है, देवतादिकका उपसर्ग अर्थ जिनकल्पकी तरें उपसर्ग सहै, तथा एषणापिम्प्रहण प्रकार, संशय हण विधि, गद्यसें बाहिर रहे. इत्यादि शेष वर्णन देखना होंगे. प्रका चनसारोद्धारकी बृहदृत्ति देख लेनी. ए वारां प्रतिमा कल्पना प्रका

अथ प्रतिलेखना जैन साधुश्रोमं

अथ तीन गुप्ति लिखते हैं. मनोवृत्ति

सि हैं. इनका स्वरूप ऐसे है कि

अरु अष्टी मन, वचन, कायाकी शक्ति

तीन प्रकारकी हैं,

यवहारसूत्र

अथ त

॥ सच्च

後

मनोयुति शास्त्रनुसारी, परलोकके साधनेवाली धर्मध्यानानुबन्धवाली, माध परिणति करणी, ए दूसरी मनोयुति. संपूर्णशुजाशुज मनोवृत्तिका नि अयोगी गुणस्थान अवस्थामें स्वात्मारामरूपता, ए तीसरी मनो गु

वचनयुति दो प्रकारकी है. उसमें मुख, नेत्र ब्रूविकार, अंगुलीके उंचा होना, खांसी करणी, हुंकारा करणा, पत्र फेंकणा, इन पूर्वोक्त वोंसे अथवा सूचन कराणा बर्झनां, ए प्रथम वचनयुति. क्यों के चेष्टा द्वारा सर्व कुठ सूचन करा दीया, तब मौन रहनां व्यर्थ है. वो दूसरेके प्रश्नका उत्तर देनां, सो लोकसें अरु आगमसें अविरोध होवे, ब्रह्मादिकसें मुखका यत्न करकें बोलनां, ए दूसरी वचनयुति, इन दो जेदों करकें वचनका निरोध अरु सम्यक् जापण रूप वचनयुति जान

कायायुति दो प्रकारसें है. एक चेष्टाका निरोध, दूसरी आगमानु चेष्टाका नियम करणां. तहां देवता मनुष्यादि उपसर्गमें द्रुधा तया रीसहोंके संजव होयां, जो कायोत्सर्ग करणादि करकें कायाकूं निश्चर रणां, तथा अयोगी अवस्थामें जो सर्वथा कायाकी चेष्टाका निरोध कर ए प्रथम काययुति. तथा गुरु प्रवृत्त शरीर संस्तारक, चूम्यादि प्रतिषेध प्रमार्जनादि, जेसें शास्त्रमें है, तिसी तरें क्रियाकलाप पूर्वक शयनादिक धुकूं करणी, शयनासन लेनां, रखनां, इन सर्व कृत्योंमें स्वच्छंद चेष्टाका ग देनां, मर्यादा सहित कायाकी चेष्टा करणी. ए दूसरी काययुति.

अथ अजिग्रह प्रतिज्ञा लिखते हैं. सो अजिग्रह डव्य, क्षेत्र, काल जाव करि चार प्रकारके हैं, इसका विस्तार प्रवचनसारोद्धार वृत्तिमें है करणसित्तरीकी गणती कहते हैं. यद्यपि आहारादिकके वेंतालीस दूषण तथापि पिरु, शय्या, वस्त्र, पात्र, ए चारही वस्तु सदोष नहीं प्र करणी. इस वास्ते संख्यामें ए चारही दूषण लिये हैं. तथा पांच समि धारा जावना, वारा प्रतिमा, पांच इंद्रियनिरोध, पच्चीश प्रतिषेधना, त युति, चार अजिग्रह, ए सर्व एकछे करेसें सित्तरे, करण सित्तरीके जेद

प्रश्न:-चरण सित्तरी ओ करण सित्तरी, ए दोनोमें क्या विशेष है

उत्तर:-जो नितिकीरनां सो चरण, अरु जो प्रयोजन हुया तो क नां, ओ प्रयोजन नहो होवे तथा न करणां, सो करण यह इनका है. ए चरण सित्तरी ओ करण सित्तरीके जेद समाप्ति हुये हैं.

इत्यादि जैनमतके गुरु तत्त्वके स्वरूप लिखनेमें सखों श्लोक लिखे जायगे, तोजी संपूर्ण जैनमतके गुरुका स्वरूप नहीं जाना जायगा, इस वा स्ते थोडाहीसा स्वरूप लिखा है. जेकर विशेष जाननेकी इच्छा होवे, तदा श्रीउग्रनिर्गुक्ति, श्रीआचारांग, दशवैकाखिक, बृहत्कल्पजाप्य वृत्ति, पंच कल्प चूर्णी, जितकल्पवृत्ति, महाकल्पसूत्र, कल्पसूत्र, निशीथजाप्यचूर्णी, महानिशीथसूत्र, इत्यादि पदविज्ञाग समाचारीके शास्त्र देख लेने.

प्रश्न:—जेता जैनमतके शास्त्रोंमें गुरुका स्वरूप लिखा है, वैसी वृत्तिवा ना कोइजी जैनका साधु देखनेमें नहीं आता है, तो फेर जैनमतके साधुओंको इस कालमें गुरु क्युं कर माननां चाहियें ?

उत्तर:—तुमने किसी गीतार्थकी संगत नहीं करी होगी, क्योंकि जे कर जैनमतके चरण करणानुयोगके शास्त्र पढे होते, अथवा किति गीतार्थ गुरुके मुखारविंदसे वचन रूप अमृत पान करा होता, तो पूर्वोक्त संशय रूप रोगकी कतमसी कदापि न उत्पन्न होती ? क्योंकि जैनमतमें ठ प्रका रके निर्ग्रंथ कहे. इस कालमें जो जैनके साधु हैं, वे सर्व पूर्वोक्त ठ प्रका रमेंसे दो प्रकारके हैं, क्योंकि श्रीजगवती सूत्रके पच्चीशमें शतकके ठठे उद्देशमें लिखा है, कि पंचम कालमें दो तर्रके निर्ग्रंथ होंगे, उनोंसे तीर्थ चलेगा. कपाय कुशील निर्ग्रंथ तो कितिमें परिणामापेक्षा होगा, मुख्य तो दोही रहेंगे. अरु जो जैन शास्त्रोंमें गुरुकी वृत्ति लिखी है, सो प्रायः उत्तर्ग मार्गकी अपेक्षा है, और इस कालमें तो प्रायः अपवाद मार्गकी प्रवृत्ति है, तो उत्तर्गवृत्तिवाये मुनि इस कालमें क्योंकर हो जावे ? कदा चित् होइ नहीं सके हैं. क्योंकि न तो वो संहननवज्ररूपजनाराच हैं, न मनोबल बैसा है, न जीवोंके वैसी श्रद्धा है, न बैसा देश काल है, न धैर्य है, तो फेर इस कालके जीव वैसी उत्तर्ग वृत्ति कैसे कर सके ?

प्रश्न:—जे कर वैसी वृत्ति इस कालमें नहीं तो उनकुं साधुजी काहेकुं कहनां चाहिये ?

उत्तर:—यह तुमारा कहनां बहुत बेसमझका है, क्यों के व्यवहारसूत्र जाप्यमें ऐसे लिखा है ॥ गाथा ॥ पोत्तरिणी आयारे, आणयण ते गाथ गीयठे ॥ आयरिय उएए, आहरण हुंति नायवा ॥ १ ॥ सत्र परिखा ठकाय, अहिगमो पिंन उचरिवाए ॥ रुत्ते वसहे जूहे, जोहे सोहीय पु

स्करिणी ॥१॥ “दार गाहा दो” इन दोनो द्वार गाथाका व्याख्यान ज्ञाप्य कारने पंदरा ज्ञाप्यगाथा करके कीया है, जे कर ज्ञाप्यगाथा देखनेकी इष्टा होवे, तो व्यवहारज्ञाप्य देख लेनी, इहां तो उन पंदरा गाथाओंका अर्थ ज्ञापामें लिख देता हूं, अर्थः—जैसीयों पूर्वकालमें सुगंधित फूलों वा लियों पुस्करिणीयों वावनीयों थी, वेसे फूलो वालीयों अब हे नहीं, तोत्री पुस्करिणीयों वावनीयों तो हैं, लोक इन सामान्य वावनीयोंसे अपना कार्य करते हैं ॥ १ ॥ तथा संपूर्ण आचारप्रकल्प, नवमे पूर्वमें था, उस नवमे पूर्वसे उद्धार करके पूज्यपाद वैशाख गणिनें निशीथ रचा, तो क्या उस निशीथकृं आचारप्रकल्प न कहना चाहियें ? ॥२॥ पूर्वकालमें ताजो द्वाटिनी, अबस्वापिनी आदिक विद्याके धारक चोर थे, औ इस कालमें वो विद्या तो नहीं है, तो फिर क्या चोरी करने वालोंकूं चोर न कहना चाहियें ? ॥ ३ ॥ पूर्वकालमें तो चौदह पूर्वके पाठीकूं गीतार्थ कहते थे, तो इस कालमें जघन्य आचार प्रकल्प, निशीथ औ मध्यम आचार प्रकल्प बृहत्कल्पके पढे हूयेकूं इस कालमें क्या गीतार्थ न कहना चाहियें ? ॥४॥ पूर्वकालमें श्रीआचारांगका शस्त्रप्रज्ञा अध्ययनके पढनेसे, ठेदोपस्थापनीय चारित्रमें स्थापन करते थे, तो क्या अब दशवैकालिकके ठ जीवनीय अध्ययनके पढनेसे न स्थापन करना चाहियें ? ॥ ५ ॥ इसरे ब्रह्मचर्यके पांचमे उद्देशमें जो आमगंधी सूत्र है, उस सूत्रानुसार पूर्वे मुनि आहार ग्रहण करते थे, तो क्या अब पिंडेपणा अध्ययन अनुसारें न करना चाहियें ? ॥६॥ पूर्वे आचारांगके पीठे उत्तराध्ययन पढते थे, तो क्या अब दश वैकालिकके पीठे न पढना चाहियें ? ॥ ७ ॥ पूर्वे मत्तांगादिक दश प्रकास्के वृक्ष थे, तो क्या अब अंवादिक वृक्ष न कहने चाहियें ? ॥ ८ ॥ पूर्वे बहुत गोवोंके समूहवाले नव गोपकूं ग्वाले कहते थे, तो क्या अब थोड़ी गोवों वालेकूं ग्वाले न कहना चाहियें ? ॥ ९ ॥ पूर्वे सदृल मल्ल योद्धे थे, तो अब क्या किसीकूं योद्धे न कहना चाहियें ? ॥ १० ॥ पूर्वे ठ मास्ती तपका प्रायश्चित्त था, तो क्या उसके बदले निधी प्रमुख प्रायश्चित्त न लेना चाहिये ? ॥ ११ ॥ इसी तरे जो पूर्वकाल मुनियोंकी वृत्ति नहीं, तो क्या आचार्य वा साधु न कहना चाहियें ? किंतु जरूरही साधु मानना चाहियें. तथा जीवानुशासन सूत्रकी वृत्तिमेंजी लिखा है कि पांच

मे कालमें साधु औसाजी होवे, तोजी संयमी कहना चाहिये, तथा नि शीथमेंजी लिखा है ॥ जाण्य गाथा ॥ जा संजमया जीवे, सु ताव मूखे गु णुत्तर गुणाय ॥ उत्तरियछेय संजम, नियंठवउं सा पफिसेवी ॥ १ ॥ इस गाथाकी चूर्णीकी जापा लिखते हैं, ठकायोंके जीवों विषे जब तांइ दयाके परिणाम है, तब तांइ वकुश निर्ग्रथ औ प्रतिसेवना निर्ग्रथ रहेंगे, इसवास्ते प्रवचन शून्य औ चारित्र रहित पंचमकाल कदापि न होवे गा, तथामूलोत्तरगुणोंमें झूषण लगनेसें तत्काल चारित्र नष्टजी नहीं होता, मूलगुणजंगमें दो दृष्टांत है, उत्तरगुण जंगमें मंडपका दृष्टांत है, निश्चयनयमें एक व्रत जंग हुआ सर्व व्रत जंग हो जाता है, परंतु व्यवहारनयके मतसें जो व्रत जंग होवे, सोइ जंग होवे. इसरे नहीं. इस वास्ते बहुत अतिचारके लगनेसें संयम नहीं जाता, परंतु जो कुशील सेवे, अरु धन रखे, औ कच्चा सचित्त पानी पीवे, प्रवचन अनपेक्ष, वो साधु नहीं. जहां तांइ ठेद प्रायश्चित्त लगे, तहां तांइ संयम सर्वथा नहीं जाता. तथा जो इस कालमें साधु न माने, सो मिथ्यादृष्टि है, क्यों कि स्थानां गसूत्रमें लिखा हैं, जो अतिचार बहुत लगते देखके औ आलोचना प्रा यश्चित्त यथार्थ कोइ लेता देता नहीं है, इस वास्ते साधु कोइ नहीं जो ऐसे कहे के वो चारित्र जेदिनी विकथाका करनेवाला है, तथा श्रीजगव ती सूत्रके पच्चीशमे शतकके ठेठे उद्देशेकी संग्रहणीकार श्रीमदज्ञयदेवसू रि, इन दोनो निर्ग्रथोका जो स्वरूप है सो लिखते हैं, सो इहां जापामें प्रगट लिखा जाता है ॥ गाथा ॥ वउसं सवलं कवर, मेगंठंतमिह जस्त चारित्तं ॥ अइयार पंकजावा, सो वउसो होइ निगंथो ॥ १ ॥ व्याख्या:- वकुश, शवल, कर्बुर, ए तीनो एकार्थ हैं एकही वस्तुको कहते हैं, औसा है चारित्र जिसका, अतिचार रूपपंक होनेसें सो वकुशनामा निर्ग्रथ है, इस चारत वर्षमें इसकालमें वकुश औ कुशील ए दोनो निर्ग्रथ हैं, शेष तीनो तो व्यवच्छेद हो गये हैं ॥ तथा चोक्तं परम मुनिजि: ॥ “वकुश कुशीला दो पुण, जातिठं तावहो हंति इति ॥” इसका अर्थ वकुश कु शील ए दोनो निर्ग्रथ जहां लग तीर्थ रहेगा तहां तक रहेंगे.

अब जो वकुश निर्ग्रथ है, तिसके दो जेद हैं, सो कहते हैं. तहां जो वख पात्रादि उपकरणकी विज्रूपा करे सो उपकरण वकुश, ए प्रथम जेद

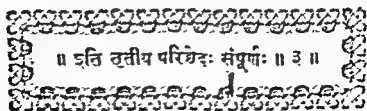
थो जो हाथ, पग, नख, मुखादिक देहके अवयवोंकी विचूषा करे, सो शरीरवकुश, ए दूसरा जेद जाननां. ए दोनों जेदोंके पांच जेह हैं ॥ गाथा ॥ उवगरणसरीरेसु, सो डुहा डुविहोवि होइ पंचविहो ॥ अजोग अणा जोग. असंबुन संबुडे मुनूमे ॥ १ ॥ अर्थः—इसमें दो पदोंका अर्थ तो ऊपर लिखा है, अगसे दो पदोंका अर्थ लिखते हैं. साधुकूं यह करने योग्य नहीं, ऐसे जानतानी है, तोनी उस कामकों जो करे, सो प्रथम आनो ग वकुश, और जो अजाण पणोंसे करे सो दूसरा अनाजोग वकुश, मूख गुण, उत्तर गुणोंमें जो त्रिप कर गाना दोष लगावे, सो तीसरा संबुत व कुश, जो मूखगुण उत्तरगुणोंमें प्रगट इपण लगावे, सो चौथा असंबुत व कुश. नेत्र, नासिका, मुखादिककी जो मल छूर करे, सो पांचमा सूक्ष्म वकुश जाननां.

अथ जो उपकरण वकुश है, तिसका स्वरूप लिखते हैं ॥ गाथा ॥ जो उपकरणे बठसो, सो धुवइय पाठसे विवउइ ॥ इउइय लपहयाइ, किंवि विनूमाइ जुंजइय ॥ १ ॥ व्याख्याः—जो उपकरण वकुश है, सो प्रावट (पावस) इनु विनानी जस हारसें वस्त्र धोता है, पावस इनुमें तो सर्व गठवासी. साधुवोकूं आइता है. जो एकवार वर्षासें पहिले आपणे सर्व उपकरण जस हारसें धो खेवे, नहीं तो वर्षाइनुमें मलके संसर्गसें निगो वादिक जीवोंकी उत्पत्ति हो जावेगी, थो यह जो वकुशनिर्मय है, सो पावस इनु विना अन्य इनुवांमेंनी जस हारसें वस्त्रादिक धो खेता है, थो वकुश निर्मय, सुंदर, मुकुमात्र, वस्त्रनी. बांठता है, और उपकरण विचूषा शोनाके वास्तेनी कनुक पहिरना है ॥ गाथा ॥ तह पत्त दंडयाइ, पठमठं सिणेइ कयतेय ॥ धारेइ विनूमाण, बट्टं च वनेइ उवगरणं ॥ २ ॥ व्याख्याः—तया पात्र, इंड प्रमुख घोटमें घोटके मुकुमार करे, तथा पी, सेड प्रमुख करी चोपदके तेजवंत चमकदार करके रखे, अरु विनूमाके वास्ते बहुत टनकरण रखने चाहे पनावना रखे.

अथ शरीर वकुशका स्वरूप लिखते हैं ॥ गाथा ॥ देह बठमो अकलं, करचरण नइइयं विनूमेइ ॥ डुविहोवि ओमो इदि, इउउ परवार पतिइय ॥ ३ ॥ व्याख्याः—देहवकुश जो है, सो विना कारण हाथ, पग, नखादिककी विचूषा करे, जप्तादिसें धोवे, ऐसे टनकरण थो शरीर ए दोनों प्रकारका व

नाजोगवकुश कहियें, ए दूसरा जेद. मूलोत्तर गुणों करी संयुक्त हे, लोक ऐसें जानते हैं, परंतु ठाना (गुप्त) दोष लगावे हे, तिसकूं संवृत वकुश कहियें. ए तीसरा जेद. अरु जो प्रगट मूलोत्तर गुणमें दोष लगावे, तिसकूं असंवृत वकुश कहियें, ए चोथा जेद ॥ २ ॥ तथा जो आंख मुखादि मांजे, मलादि छूरे करे सो यथा सूक्ष्मवकुश कहियें. ए पांचमा जेद.

अथ कुशील निर्णयका स्वरूप लिखते हैं, शील कहियें चारित्र सो चारित्र जिसका कुरितत हे, सो कुशील निर्णय, इसके दो जेद हैं ॥ ३ ॥ एक प्रति सेवना कुशील, दूसरा कपायों करी कुशील, सो संजवलनकी कपायों करकें जो कुशील सो कपाय कुशील, ए दोनोही जेद पांच प्रकारसें हैं, सो कहते हैं, जो १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र, ४ तप, ५ यथा सूक्ष्मतः ॥ ४ ॥ इहां ज्ञानादि कुशील तो जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अरु तप, यह चारो आजीविकाके वास्ते करे, सो इन चारोंका प्रतिसेवना कुशील तथा यह तपस्वी है, इत्यादि प्रशंसा सुणके बहुत खुशी होवे, सो पांचमा यथासूक्ष्मप्रतिसेवना कुशील जाननां. तथा जो १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ तपांसि तप, संजवलन, कपायके उदय करकें इनका व्यापार करे, सो ज्ञान, दर्शन, चारित्रका कपाय कुशील जाननां. जो कपाय कुशील है, सो कपायके वश हो कर कें शाप दे देता है, मन करकें जो क्रोधादिकोंको सेवे, सो यथासूक्ष्मकपायकुशील, अथवा कपायों करकें जो ज्ञानादिकोंको विराधे, सो ज्ञानादिके कुशील जाननां. कोइक आचार्य, तप कुशीलके स्थानमें शिगकुशील कहते हैं, यह दो प्रकारके निर्णय पांचमे आरेके पर्यंत तक रहेंगे. जो कोइ इस तरेके साधुकूं साधु वा गुरु न माने, वो जीव मिथ्यादृष्टि बहुत संसारी जिनमतका उन्नापक है, ऐसे मिथ्यादृष्टिकी संगतनी करनी योग्य नहीं ॥ इति श्री तत्त्वज्ञाने मुनिश्री वृद्धिविजयशिष्य मुनिथानंदविजय आत्माराम विरचिते, जेनतत्त्वादशें गुरुतत्त्वचरूपनिर्णयनामा तृतीयः परिच्छेदः संपूर्णः ॥ ३ ॥



॥ इति तृतीय परिच्छेदः संपूर्णः ॥ ३ ॥

नहीं होते हैं, तथा पद्म ऋतुओंका विनाग, तथा बाल, कुमार, यौवन, और पलित्तादिक अवस्था विशेष काल बिना नहीं हो सकती हैं, जो जो प्रति नियत काल विनागादिक हैं, तिन सबका कालही नियंता है, जे कर कालकों नियंता न मानीयें, तो किसी वस्तुकीजी व्यवस्था नहीं होवेगी, क्यों कि जैसे कोइ पुरुष, मूंग रांधता है, सो जी काल बिना नहीं रांधे जाते हैं, नहीं तो हांकी इंधनादि सामग्रीके संयोगसे प्रथम समयेहीमें मूंग रांध जाते ? तिस वास्ते जो करता है, सो कालही करता है, तथा-चोक्त ॥ न कालव्यतिरेकेण, गर्ज्जवाल शुजादिकं ॥ यत्किंचिज्जायते लोके. तदसौ कारणं किल ॥ १ ॥ किंचित्कालादृते नैव, मुञ्जपंक्तिरपीक्ष्यते ॥ स्याद्व्यादिसन्निधानेऽपि, ततः कालादसौ मतः ॥ २ ॥ कालजावे च गर्जादि, सर्व स्याद व्यवस्थया ॥ परेष्टहेतुसंज्ञाव, मात्रादेव तदुज्जवात् ॥ ३ ॥ इन श्लोकोंका ज्ञावार्थ उपर लिख आये हैं तथा ॥ कालः पचति जूतानि, कालः संहरते प्रजाः ॥ कालः सुषेपु जागर्ति, कालोहि दुरतिक्रमः ॥ ४ ॥ इहां परेष्ट हेतुके संज्ञाव मात्रादिकसे दूसरायोंने जो मान्या है, कि स्त्री पुरुषके संयोग मात्र हेतुसे गर्जकी उत्पत्ति, सो एक वर्षके स्त्री पुरुषके संयोगसे क्यों नहीं हो जाते हैं ? इस वास्ते कालही गर्जकी उत्पत्तिका हेतु है, तथा जब स्त्रीकूं गर्ज होनेमें ऋतुकाल है तिसके बिना स्त्री पुरुषके संयोगसे क्यों नहीं गर्ज होता है ? तथा कालही पकाता है, और कालही पृथिवी आदिक जूतोंको परिणामांतरको पहुंचता है, तथा “कालः संहरने प्रजाः” कालही पूर्व पर्यायसे पर्यायांतरमें लोकोंको स्थापन करता है तथा “कालः सुषेपु जागर्ति” कालही सूते दूये जनोंकी रक्षा करता है. तिस वास्ते प्रगट है कि काल दुरतिक्रम है, कालको दूर करनेमें कोइजी समर्थ नहीं है, यह कालवादीका विकल्प है ॥ १ ॥

इसी तरे दूसरा विकल्पजी कह देनां, परंतु कालकी जगे ईश्वर कह देनां “यथा अस्ति जीवः स्वतो नित्यः ईश्वरतः” जीव अपने स्वरूप करके नित्य है परंतु ईश्वर उत्पन्न करता है, क्योंकि ईश्वरवादी सर्व जगत् ईश्वरहीका करा दूया मानते हैं, ईश्वर उसकूं कहते हैं, कि जिसके १ ज्ञान, २ वैराग्य, ३ धर्म, ४ ऐश्वर्य, ए चारो स्वतः सिद्ध होवें, अरु जीवोंको स्वर्ग, मोक्ष, नरकादिकें जानेमें जो प्रेरक होवे ॥ तदुक्तं ॥

तीनमें जो क्रियावादी हैं सो ऐसे कहते हैं कि कर्त्तकि विना पुण्यबन्धादिलक्षण क्रिया नहीं होती है, तिस वास्ते क्रिया जो है, सो आत्माके साथ समवाय संबन्धवाली है, ऐसे कहनेका शील स्वभाव है जिनका सो क्रियावादी हैं. यह जो क्रियावादी हैं, सो आत्मादिक नव पदार्थोंको पञ्चांत अस्तिस्वरूप पण्ये माने हैं, तिस क्रियावादीके एक सौ अस्ती मत इस उपाय करके जान लेने, १ जीव, २ अजीव, ३ आश्रव, ४ बंध, ५ संघर, ६ निर्जरा, ७ पुण्य, ८ अपुण्य, ९ मोक्ष, यह नव पदार्थ अनुक्रम करके पट्टी पत्रादिकमें लिखने. फेर जीव पदार्थके हेतु स्वतःश्रु परतः यह दो जेद स्थापन करने, फेर इन स्वतः परतःके हेतु न्यारे न्यारे नित्य श्रु अनित्य यह दो जेद स्थापन करने, फेर नित्य अनित्यके इन दोनोंके हेतु न्यारे न्यारे १ कास, २ ईश्वर, ३ आत्मा, ४ नियति, ५ स्वभाव, यह पांच स्थापन करने, पीछेसे विकल्प कर लेने, सो आगे लिखते हैं. यंत्रस्थापना ॥

जीव.

म्यनः		परतः	
नित्य.	अनित्य.	नित्य.	अनित्य.
१ कास.	१ कास.	१ कास.	१ कास.
२ ईश्वर.	२ ईश्वर.	२ ईश्वर.	२ ईश्वर.
३ आत्मा.	३ आत्मा.	३ आत्मा.	३ आत्मा.
४ नियति.	४ नियति.	४ नियति.	४ नियति.
५ स्वभाव.	५ स्वभाव.	५ स्वभाव.	५ स्वभाव.

विकल्प करणेकी रीति कहते हैं. अस्ति जीवः स्वतोनित्यः कासतदत्येकोविकल्पः ॥ १ ॥ इस विकल्पका यह अर्थ है कि यह आत्मा निश्चय अपने रूप करके कासमें उत्पन्न हुई है, कासवादीके मतमें यह विकल्प है, कासवादी उसमें कहते हैं कि जो कासहीसे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति श्रु प्रलय मानते हैं, तमेंही कासवादी कहते हैं कि चंपक, अशोक, सद्काश, नीच, जंबू, कदवादि जो वनस्पति हैं, सो कासके बिना फलोंका खगनां. फलका बंधादिक नहीं हो सका है. तथा त्रिमरुण संयुक्त नीत का पत्तों, तथा नक्षत्र गनका धारण, वर्षाका होना, यह कास बिना

नहीं होते हैं, तथा पद् श्रुतोंका विजाग, तथा बाध, कुमार, यौवन, औ पक्षितादिक अवस्था विशेष काल बिना नहीं हो सकती हैं, जो जो प्रति नियत काल विजागादिक हैं, तिन सबका कालही नियंता है, जे कर का लकों नियंता न मानीयें, तो किसी वस्तुकीजी व्यवस्था नहीं होवेगी, क्यों कि जैसे कोइ पुरुष, मृग रांधता है, सो जी काल बिना नहीं रांधे जाते हैं, नहीं तो हांकी इंधनादि सामग्रीके संयोगसें प्रथम समयेहीमें मृग रंध जाते ? तिस वास्ते जो करता है, सो कालही करता है, तथा-चोक्त ॥ न कालव्यतिरेकेण, गर्जवाल शुजादिकं ॥ यत्किंचिज्जायते लोके, तदसौ कारणं किल ॥ १ ॥ किंचित्कालादृते नैव, मुञ्जपंक्तिरपीक्ष्यते ॥ स्याद्व्यादि सन्निधानेऽपि, ततः कालादसौ मतः ॥ २ ॥ कालजावे च गर्जादि, सर्व स्याद् व्यवस्थया ॥ परेष्टहेतुसञ्जाव, मात्रादेव तदुज्जवात् ॥ ३ ॥ इन श्लोकोंका जावार्थ उपर लिख आये हैं तथा ॥ कालः पचति जूतानि, कालः संहर्ते प्रजाः ॥ कालः सुतेषु जागर्ति, कालोहि दुरतिक्रमः ॥ ४ ॥ इहां परेष्ट हेतुके सञ्जाव मात्रादिकसें दूसरायोंने जो मान्या हैं, कि स्त्री पुरुषके संयोग मात्र हेतुसें गर्जकी उत्पत्ति, सो एक वर्षके स्त्री पुरुषके संयोगसें क्यों नहीं हो जाते हैं ? इत वास्ते कालही गर्जकी उत्पत्तिका हेतु है, तथा जब स्त्रीकूं गर्ज होनेमें श्रुतकाल है तिसके बिना स्त्री पुरुषके संयोगसें क्यों नहीं गर्ज होता है ? तथा कालही पकाता है, औ कालही पृथिवी आदिक जूतोंको परिणामांतरको पहुंचता है, तथा "कालः संहर्ते प्रजाः" कालही पूर्व पर्यायसें पर्यायांतरमें लोकोंको स्थापन करता है तथा "कालः सुतेषु जागर्ति" कालही सूते दूये जनोंकी रक्षा करता है, तिस वास्ते प्रगट है कि काल दुरतिक्रम है, कालको छूट करणमें कोइजी समर्थ नहीं है, यह कालवादीका विकल्प है ॥ १ ॥

इती तरे दूसरा विकल्पजी कह देनां, परंतु कालकी जगे ईश्वर कह देनां "यथा अस्ति जीवः स्वतो नित्यः ईश्वरतः" जीव अपने स्वरूप करके नित्य है परंतु ईश्वर उत्पन्न करता है, क्योंकि ईश्वरवादी सर्व जगत् ईश्वरहीका करा दूया मानते हैं, ईश्वर उसकूं कहते हैं, कि जिसके १ ज्ञान, २ वैराग्य, ३ धर्म, ४ ऐश्वर्य, ए चारो स्वतः सिद्ध होवें, अत जीवोंको स्वर्ग, मोक्ष, नरकादिकके जानेमें जो प्रेरक होवे ॥ तदुक्तं ॥

तीनमें जो क्रियावादी हैं सो ऐसे कहते हैं कि कर्त्ताके बिना पुण्यबन्धादिलक्षण क्रिया नहीं होती है, तिस वास्ते क्रिया जो है, सो आत्माके साथ समवाय संबंधवाली है, ऐसे कहनेका शील स्वज्ञाव है जिनका सो क्रियावादी हैं. यह जो क्रियावादी हैं, सो आत्मादिक नव पदार्थोंको एकांत अस्तिस्वरूप पणे माने हैं, तिसं क्रियावादीके एक सौ अस्सी मत इस उपाय करके जान लेने, १ जीव, २ अजीव, ३ आश्रव, ४ वंघ, ५ संघर, ६ निर्जारा, ७ पुण्य, ८ अपुण्य, ९ मोक्ष, यह नव पदार्थ अनुक्रम करके पट्टी पत्रादिकमें लिखने, फेर जीव पदार्थके हेतु स्वतःअत परतः यह दो जेद स्थापन करने, फेर इन स्वतः परतःके हेतु न्यारे न्यारे नित्य अरु अनित्य यह दो जेद स्थापन करने, फेर नित्य अनित्यके इन दोनोंके हेतु न्यारे न्यारे १ काल, २ ईश्वर, ३ आत्मा, ४ नियति, ५ स्वज्ञाव, यह पांच स्थापन करने, पीठेसे विकल्प कर लेनें, सो आगे लिखते हैं. यंत्रस्थापना ॥

जीव.

स्वतः

परतः

नित्य.	अनित्य.	नित्य.	अनित्य.
१ काल.	१ काल.	१ काल.	१ काल.
२ ईश्वर.	२ ईश्वर.	२ ईश्वर.	२ ईश्वर.
३ आत्मा.	३ आत्मा.	३ आत्मा.	३ आत्मा.
४ नियति.	४ नियति.	४ नियति.	४ नियति.
५ स्वज्ञाव.	५ स्वज्ञाव.	५ स्वज्ञाव.	५ स्वज्ञाव.

विकल्प करणेकी रीति कहते हैं. अस्ति जीवः स्वतो नित्यः कालतश्च त्येको विकल्पः ॥ १ ॥ इस विकल्पका यह अर्थ है कि यह आत्मा निश्चय अपणे रूप करके कालसे उत्पन्न हुई है, कालवादीके मतमें यह विकल्प है, कालवादी उसकुं कहते हैं कि जो कालहीसे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति अरु प्रलय मानते हैं, तैसेही कालवादी कहते हैं कि चंपक, अशोक, सहकार, नींव, जंघू, कंदवादि जो वनस्पति हैं, सो कालके बिना फूलोंका लगनां, फलका बंधादिक नहीं हो सका है, तथा हिमकण संयुक्त शीत का पनूणां, तथा नक्षत्र गर्जका धारण, वर्षाका होणां, यह काल बिना

नहीं होते हैं, तथा पट् ऋतुओंका विभाग, तथा बाल, कुमार, यौवन, औ पक्षितादिक अवस्था विशेष काल बिना नहीं हो सकती हैं, जो जो प्रति नियत काल विभागादिक हैं, तिन सबका कालही नियंता है, जे कर कालकों नियंता न मानीयें, तो किसी वस्तुकीजी व्यवस्था नहीं होवेगी, क्यों कि जैसे कोइ पुरुष, मूंग रांधता है, सो जी काल बिना नहीं रांधे जाते हैं, नहीं तो हान्नी इंधनादि सामग्रीके संयोगसे प्रथम समयेहीमें मूंग रंध जाते ? तिस वास्ते जो करता है, सो कालही करता है, तथा-चोक्त ॥ न कालव्यतिरेकेण, गर्जवाल शुजादिकं ॥ यत्किंचिज्जायते लोके. तदसौ कारणं किल ॥ १ ॥ किंचित्कालादृते नैव, मुद्गपंक्तिरपीक्ष्यते ॥ स्थाव्यादि सन्निधानेऽपि, ततः कालादसौ मतः ॥ २ ॥ कालजावे च गर्जादि, सर्वं स्याद् व्यवस्थया ॥ परेष्टहेतुसंज्ञाव, मात्रादेव तदुद्भवात् ॥ ३ ॥ इन श्लोकोंका जावार्थ उपर लिख आये हैं तथा ॥ कालः पचति जूतानि, कालः संहरते प्रजाः ॥ कालः सुषेपु जागर्ति, कालोहि दुरतिक्रमः ॥ ४ ॥ इहां परेष्ट हेतुके संज्ञाव मात्रादिकसे दूसरायोंने जो मान्या है, कि स्त्री पुरुषके संयोग मात्र हेतुसे गर्जकी उत्पत्ति, सो एक वर्षके स्त्री पुरुषके संयोगसे क्यों नहीं हो जाते है ? इस वास्ते कालही गर्जकी उत्पत्तिका हेतु है, तथा जब स्त्रीकूं गर्ज होनेमें ऋतुकाल है तिसके बिना स्त्री पुरुषके संयोगसे क्यों नहीं गर्ज होता है ? तथा कालही पकाता है, औ कालही पृथिवी आदिक जूतोंको परिणामांतरको पहुंचता है, तथा “कालः संहरने प्रजाः” कालही पूर्व पर्यायसे पर्यायांतरमें लोकोंको स्थापन करता है तथा “कालः सुषेपु जागर्ति” कालही सूते दूये जनोंकी रक्षा करता है. तिस वास्ते प्रगट है कि काल दुरतिक्रम है, कालको हर करणमें कोइजी समर्थ नहीं है, यह कालवादीका विकल्प है ॥ १ ॥

इसी तरें दूसरा विकल्पजी कह देनां, परंतु कालकी जगे ईश्वर कह देनां “यथा अस्ति जीवः स्वतो नित्यः ईश्वरतः” जीव अपने स्वरूप करके नित्य है परंतु ईश्वर उत्पन्न करता है, क्योंकि ईश्वरवादी सर्व जगत् ईश्वरहीका करा दूया मानते हैं, ईश्वर उत्तकूं कहते हैं. कि जिसके ? ज्ञान, १ वैराग्य, २ धर्म, ४ ऐश्वर्य, ए चारो स्वतः सिद्ध होवें, अन्य जीवोंको स्वर्ग, मोक्ष, नरकादिकके जाननें जो प्रेरक होवे ॥ तदुक्तं ॥

ज्ञानमप्रतिघं यस्य, वैराग्यं च जगत्पतेः ॥ ऐश्वर्यं चैव धर्मैश्च, सहस्रिदं
चतुष्टयम् ॥ १ ॥ अहो जंतुरनीशोय, मात्मनः सुखदुःखयोः ॥ ईश्वर-
प्रेरितो गच्छे, त्वर्गं वा श्वन्नमेव च ॥ इत्यादि ॥ २ ॥

तीसरा विकल्प आत्म वादीयोंका है. आत्मावादी उनको कहते हैं कि जो "पुरुष एवेदं सर्वं मित्यादि" (जो कुछ दीखता) है, सो सर्व पुरुषही हैं ऐसे मानते हैं ॥ ३ ॥

चौथा विकल्प नियतवादीयोंका है, वो नियतवादी ऐसे कहते हैं कि पदार्थोंमें एक ऐसी सामर्थ्य है कि जिसकी सामर्थ्यसे सर्व पदार्थ अपने अपने स्वरूप नियमों करके वैसे वैसेही होते हैं, परंतु अन्यथा पणे नहीं होते हैं, सोइ कहते हैं, जो पदार्थ जिसकालने जिस करिके होता है, सो पदार्थ तिस कालने तिस करिके नियत रूप करकेही होता दीखता है, अन्यथा नहीं, तो कार्य कारण जावकी व्यवस्था नियामकके अजावसे कदापि न होवेगी, तिस वास्ते ऐसे कार्य नियततासे प्रतीत होती है जो नियति, तिसको कौन पुरुष प्रमाणपंथका कुशल है जो बाध सका है ? जे कर नियति बाधित हो जावेगी तो और जगेजी प्रमाण मिथ्या हो जायेंगे, तथा चोक्तं ॥ नियते नैव रूपेण, सर्वे जावा जवंति यत् ॥ ततो नियतिजा ह्येते, तत्स्वरूपानुवेधतः ॥ १ ॥ यद्यदेव यतो यावत्, तत्तदेव ततस्तथा ॥ नियतं जायते न्यायात्, क एनां बाधितुं क्षमः ॥ २ ॥ इन दोनो श्लोकोंका अर्थ उपर लिख दीया है ॥ ४ ॥

पांचमा विकल्प, स्वजाववादीयोंका है, वो स्वजाववादी ऐसे कहते हैं कि इस संसारमें सर्व पदार्थ स्वजावहीसे उत्पन्न होते हैं, सो कहते हैं कि माटीसे घट होता है, परंतु वस्त्र नहीं होता है, अरु तंतुओंसे वस्त्र होता है, परंतु घटादिक नहीं होता है, यह जो मर्यादा संयुक्त होना है सो स्वजाव बिना कदापि नहीं हो सका है, तिस वास्ते यह जो कुछ होता है, सो सर्व स्वजावसेही होता है, तथा अन्यकार्य तो दूर रहो, परंतु यह जो मृंगोका रंध जाणा है, सोजी स्वजाव बिना नहीं रंधते हैं, तथाहि हांसी, इंधन, कालादि सामग्रीका संनवजी है तोजी कोकडु (कविनमृग) नहीं रंधते हैं, तिस वास्ते जो जिसके होयां होवे, जिसके न होयां जो

न होवे. सो सो अन्वय व्यतिरेक करके तिसका कर्ता है, स्वभावहीसे मूंग रंधते है इस वास्ते स्वभावही सर्व वस्तुका हेतु है, ए पांचमा विकल्प॥५॥

यह पांच विकल्प स्वतः ईशपद करके होते हैं ऐसेही पांच परतः ईश पद करके उपलब्ध होते हैं. परतः शब्दका अर्थ तो ऐसा है, की पर पदा योंसे व्यावर्त्त रूप करके यह आत्मा निश्चय करके है, ऐसे नित्य शब्द करके दश विकल्प हूये हैं, ऐसेही अनित्य पद करकेभी दश विकल्प होते हैं, सर्व विकल्प एकठे करते वीश होते हैं, यह वीश विकल्प जीव पदार्थ करके होते हैं, ऐसेही अजीवाहिक पदार्थोंके साथ, न्यारे न्यारे वीश विकल्प जान लेने. तब वीशकों नवसूं गुणाकार कत्यां सब मिलिके एक शो अस्ती मत क्रियावादीके होते हैं ॥ इति क्रियावादी ॥

अथ अक्रियावादीके चौरासी मत लिखते हैं अक्रियावादी कहते हैं कि क्रिया, पुण्य पाप रूपादि नहीं है, क्योंकि क्रिया, पुण्य पाप रूपादि स्थिर पदार्थकों लगती है, अरु स्थिर पदार्थ तो जगत्में कोई जी नहीं है, क्यों के उत्पत्त्यनंतरही पदार्थका विनाश हो जाता है. ऐसे जो कहते हैं, सो क्रियावादी ॥ तथा चाहुरेके ॥ श्लोक ॥ द्रष्टाः सर्वसंस्कारा, अस्थिराणां कुतः क्रिया ॥ नूतियेषां क्रिया सैव, कारकं सैव चोच्यते ॥ १ ॥ अस्यार्थः— सर्व संस्कार पदार्थ द्रष्टिक है, इस वास्ते अस्थिर पदार्थोंकूं पुण्य पापादि क्रिया कहाँसे होवे? पदार्थोंका जो होणा है, सोइ क्रिया है, सोइ कारक है, इस वास्ते पुण्यापुण्यादि क्रिया नहीं, यह जो अक्रियावादी हैं, सो आत्माकूं नहीं मानते हैं. तिनके चौरासी मत जाननेका यह उपाय है कि १ जीव, २ अजीव, ३ आश्रय, ४ संवर, ५ निर्जरा, ६ बंध, ७ मोक्ष, यह सात पदार्थ लिखने. पीछे यह जीवादि सातो पदार्थोंके हेतु न्यारे न्यारे स्व अरु पर यह दो विकल्प लिखने. फेर इन दोनोंके हेतु न्यारे न्यारे १ काल, २ ईश्वर, ३ आत्मा, ४ नियति, ५ स्वभाव, ६ यदृष्टा. यह ठे लिखने. इहां नित्यानित्य यह दो विकल्प इसे वास्ते नहीं लिखे हैं कि जब आत्मादि पदार्थही नहीं हैं, तो फेर नित्य अनित्यका संभव कैसे होवे? तथा जो यह यदृष्टावादी हैं. सो सर्व नास्तिक अक्रियावादी हैं, इस वास्ते क्रिया वादी यदृष्टावादी नहीं हैं, इस वास्ते क्रियावादीके मतमें यदृष्टापद नहीं ग्रहण किया है. इस मतके चौरासी जेद इसी रीतिसे जानने सो कहते हैं.

“नास्ति जीवः स्वतः कालतश्चैकोविकल्पः” नहीं है जीव अपने स्वरूप करके कालसे उत्पन्न हुआ, यह एक विकल्प, ऐसेही ईश्वरादिसं लेकर यहथा पर्यंत सर्व ठे विकल्प होये इनका अर्थ पीठली तरें जाननां, परंतु इतना विशेष है जो यहां यहथावादी अधिक हैं.

प्रश्नः—यहथावादीयांका क्या मत है ? उत्तरः—जो पदार्थोंकूं संतानकी अपेक्षा नियत कार्य कारण जाव नहीं मानते, किंतु “यहथा” जो कुछ होता है, सो सर्व यहथासे होता है, एतावता कार्य कारण जाव नहीं यहथाहीसे होता है, यहथावादी ऐसे कहते हैं, कि नहीं है नियम करके पदार्थोंको आपसमें कार्य कारण जाव, क्यों कि कार्य कारण जाव प्रमाणसे ग्रहण नहीं कखा जाता है, तथाही मृतक मेंमकसेंजी मेंमक उत्पन्न होता है अरु गोधरसेंजी मेंमक उत्पन्न होता है अग्निसंजी अग्नि उत्पन्न होती है. अरणीके काष्ठसेंजी अग्नि उत्पन्न होती है, धूमसेंजी धूम उत्पन्न होता है, अरु अग्निसंजी धूम उत्पन्न होता है, कदलीके कंदसेंजी केला उत्पन्न होता है, अरु केलेके बीजसेंजी केला उत्पन्न होता है, बीजसेंजी बटवृक्ष उत्पन्न होता है, अरु बटवृक्षकी शाखासेंजी बट वृक्ष उत्पन्न होता है, इस वास्ते प्रति नियत कार्य कारण जाव किसी जगेंजी नहीं देखणेमें आता है, इस वास्ते यहथा करीके किसी जगें कुछ होता है, ऐसे माननां चाहियें, क्योंकि जब जान लीया कि जो कुछ होता है, सो यहथासे होता है, तो फेर काहेको बुझिमान् कार्य कारण जावको माने, औ आत्माको क्लेश देवे यह जेसें स्वतःके साथ ठे विकल्प करे है, एसेही नास्ति परतःके साथजी ठे विकल्प होते हैं, यह जब सर्व विकल्प मिलाइयें तब घारा विकल्प होते हैं. इन घारांकूं जीवादिक सात पदार्थों करके सात गुणा कखा चौरासी जेद अक्रियावादीके हो ते हैं ॥ इति अक्रियावादी ॥ २ ॥

अथ तीसरा अज्ञानवादीका जेद कहतेहै, कि जूंन ज्ञान है, जिनका सो अज्ञानवादी जाननां, अथवा अज्ञान करके जो प्रवर्त्ते, सो अज्ञानिकाः अज्ञानवादी ऐसे कहतेहैं कि ज्ञान अछी वस्तु नहीं है, क्योंकि ज्ञान जब होवे गा, तब परस्पर विवाद होगा, जब विवाद होगा तब चित्त मखिन होगा, जब चित्त मखिन हूवा. तब संसारकी वृद्धि होवेगी, जेसें किसी पुरुषने को

इ वस्तु उसटी कही, तब जो ज्ञानीने सुण करकें ज्ञानके अजिमानसैं उस पुरुषके उपर बहुत मखिन चित्त करकें उसके साथ विवाद करणे लगा, विवाद करते थके अत्यंत तीव्रचित्त मखिन अरु अहंकार बढा, उस अहंकार ओ चित्तकी मखिनतासैं महा पाप कर्म उत्पन्न हूवा, तिस पापसैं दीर्घतर संसारकी वृद्धि हुई. इस वास्ते ज्ञान अछी वस्तु नहीं. अरु जब अज्ञानी अपनेको मानीयें, तब तो अहंकारका संभव नहीं होता है, अरु दूसरोंके उपर चित्तका मखिन पणाजी नहीं होता है, तिस वास्ते कर्मका बंधजी नहीं होता है, तथा जो कार्य विचार करीयें हैं, तिसमें महा कर्मका बंध होता है, उसका फलजी महा जयानक होता है, अरु जो काम, मनोव्यापार बिना करीयें हैं, तथा मनोव्यापार बिना किसी जीवका बध करीये हैं, तिसका फल अवश्यमेव जोगनेमें नहीं आता है, अरु जो उस काममें किंचित् कर्मबंध होता है, सोजी चूने गजजी तके उपरि बाहु (रेतिकी) मुष्टिकें संबधवत् स्पर्शमात्र है, परंतु बंध नहीं होता है. इस वास्ते अज्ञानही मोक्षगामीयों पुरुषोंको अंगीकार करणां श्रेय है, परंतु ज्ञान अंगीकार करणां श्रेय नहीं है. यह अज्ञान वादी कहते हैं की ज्ञान हम मानजी सेवें, जे कर ज्ञानका निश्चय करणें सामर्थ्य होवें ? क्योंकि प्रथम तो ज्ञान सिद्धही नहीं हो सका है, तथाहि जितने मतावलंबी पुरुष हैं, सो सर्व परस्पर निजही ज्ञान अंगीकार करते हैं, इस वास्ते क्यों कर निश्चय करणेंमें समर्थ होवें ? जो इस मतका ज्ञान सन्यग् है, अरु इस मतका ज्ञान सन्यग् नहीं है, जे कर कहोंगे किजो सकल वस्तुके समूहको साक्षात्कारी ऐसे ज्ञानवाला जो जगवान् है, तिसके उपदेशसैं जो ज्ञान होवें सो सन्यग् ज्ञान है, अरुजो इसके बिना दूसरे मत है, उनका ज्ञान सन्यग् नहीं. क्योंकि उनके मत में जो ज्ञान है, सो सर्वज्ञका कथन कीया हुआ नहीं है.

अज्ञानवादी कहते हैं कि यह तुमारा कहनां है. सो तो सत्य है. कि तु सकल वस्तु समूहका साक्षात् करणेवाला ज्ञानी सुगत, ईश्वर, विष्णु, ब्रह्मादिकों हम माने ? किंवा जगवान् बड़मान महावीर स्वामीको सकल वस्तु समूहके साक्षात् करणे वाला माने ? फेरजी बोही संशय रहा. निश्चय न हुआ. जो कौन सर्वज्ञ है ? जे कर कहोंगे कि जिस जगवान्के पादार

विंद युगल सर्व देवता, इंद्र, परस्पर अहं पूर्वक विशिष्टं विशिष्टतर विभूति युति करके संयुक्त, सैकड़ों विमानोंमें बैठ करके सकल आकाश मंरुलकों आछादित करते हुये पृथिवीमें उत्तर करके पूजते जये हैं, सो जगवान् वर्द्धमान स्वामी सर्वज्ञ है. परंतु सुगत, शंकर, विष्णु, ब्रह्मादिक नहीं; क्योंकि सुगतादिक सर्व, अल्प बुद्धिवाले मनुष्य हुये हैं, इस वास्ते वो देव नहीं हुये हैं; जे कर सुगतादिकजी सर्वज्ञ होते, तो तिनकीजी देवता, इंद्र, पूजा करते, परंतु किसीजी देवता, इंद्रने पूजा नहीं करी. इस वास्ते सुगतादिक सर्वज्ञ नहीं हुये हैं. हे जैन ! यह जो तुमने घात कही है, सो अपने मतके राग करके कही है, परंतु इस घातसे इष्टसिद्धि नहीं है, क्यों कि वर्द्धमान स्वामीकी देवता, इंद्र, देवलोकसे आ करके पूजा करते थे, यह तुमारा कहनां हम क्योंकर सच्चा मान लेवे ? जगवान् श्री महावीरकों तो बहुत काल दूयाकों हो गया है, उनके सर्वज्ञ होणेमें को इजी साधक प्रमाण नहीं है ? जे कर कहोगे कि संप्रदायसे एतावता महावीरके शासनसे महावीर सर्वज्ञ सिद्ध होता है, तो इसमें यह तर्क होगी कि यह जो तुमारी संप्रदाय है, सो कोन जाने किसी धूर्तकी चलाइ हुई है ? वा किसी सत्पुरुषकी चलाइ हुई है, हम क्यों कर जान सके ? इस घातके सिद्ध करने वाला कोइजी प्रमाण नहीं है, अरु बिना प्रमाणके हम मान लेवे, तो हम प्रेक्षावान् काहे के ? तथा मायावान् पुरुष आप सर्वज्ञ नहींजी होते तोजी अपने आपकूं जगत्में सर्वज्ञ होनां प्रगट कर देते हैं. इंद्रजालके (२७) पीठ है, तिनमेंसूं कितनेक पीठोंके पाठक अपने आपको तीर्थंकरका रूप थरु इंद्र, देवता, पूजा करते हुये घना सके हैं, तो फेर देवताओंका आगमन पूजा देखनेसे सर्वज्ञ पणा क्यों कर सिद्ध होवे, जो हम श्रीमहावीरजीकूं सर्वज्ञ मान लेवें ? तुमारे मतका आचार्य समंतजद्र स्तुति कारजी कहता है ॥ श्लोक ॥ देवागमनजोयान, चामरादिविभूतयः ॥ माया विष्वपि दृश्यते, हतस्त्वमसि नो महान् ॥२॥ इस श्लोकका जावार्थः—देवताओंका आगमन आकाशमें चलनां, उत्र चामरादिककी विभूति, यह सर्व आनंवर, इंद्रजालीयमेंजी हो सका है, इस हेतुसे तो हे जगधन ! तुं हम रा महान् स्तुति करणे योग्य नहीं हो सका है. तथा हे जैन ! तेरे कहने से महावीरही सर्वज्ञ होवे, तोजी यह जो आचारांगादिक शास्त्र हैं, सो म

हावीर सर्वज्ञहीके कथन करे हुये हैं, यह क्यों कर जाना जाये ? क्या जाने किसी धूर्त्तने रच करके महावीरका नाम रख दीया होवेगा ? क्योंकि यह बात इंद्रिय ज्ञानका विषय नहीं है, अरु अतींद्रिय ज्ञानकी सिद्धिमें कोइनी प्रमाण नहीं है.

जला कदी यहजी होवे कि जो आचारांगादिक शास्त्र हैं सो महावीर सर्वज्ञहीके कहे हुये हैं, तोजी श्रीमहावीरजीके कहे हुये शास्त्रका यही अ निप्राय, यही अर्थ है, और अर्थ नहीं, यह क्योंकर जान्या जाय ? क्योंकि शब्दोंके अनेक अर्थ हैं. सो इत्त जगत्में प्रगट सुननेमें आते हैं, क्या जाने इनही अक्षरों करके श्रीमहावीर स्वामीजीने कोइ अन्यही अर्थ कहा होवे, अरु तुमारी समजमें उनही अक्षरों करके कतु और अर्थ जासन होता होवे, फेर निश्चय क्यों कर होवे जो इन अक्षरोंका यही अर्थ जगवानने कहा है, जे कर तुमने यह मान ररका होवे कि जगवा गनके समयमें गौतमादिक मुनि थे, उनोने जगवानके मुत्तारविंदसें साक्षात् जो अर्थ सुना था, सोइ अर्थ आज तांइ परंपरासें चला आता है, इत्त वास्ते आचारांगादिक शास्त्रोंका यही अर्थ है, अन्य नहीं. यहजी तुमारा कहनां अयुक्त है, क्योंकि गौतमादिकजी ठगस्थ थे. अरु ठगस्थकों दूसरेकी चित्तवृत्तिका ज्ञान नहीं होता है. दूसरेकी चित्तवृत्ति तो अतींद्रिय ज्ञानका विषय है, ठगस्थ तो इंद्रिय द्वारा जान सक्ता है, इंद्रियज्ञानी सर्वज्ञके अ निप्रायकों क्यों कर जान सके, जो सर्वज्ञका यही अ निप्राय है ? इत्त अ निप्रायसें सर्वज्ञने यह शब्द कहा है ? इत्त वास्ते जग वान्का अ निप्राय तो गौतमादिक नहीं जान सक्ते हैं, केवल जो वरणा वली जगवान् कहते जये सोइ वरणावली जगवानके पीठें लगे हुये गौत मादिक उच्चारण कहते आये, परंतु जगवान्का अ निप्राय किस्तीने नहीं जाना, जैसें शार्य देशोत्पन्न पुरुषके शब्द उच्चारणसें म्हेछनी बैसा शब्द उच्चार सक्ता है, परंतु तात्पर्य कुछ नहीं जानता. ऐसेही महावीरके शब्द के अनुवादक गौतमादिक हैं, परंतु महावीरका अ निप्राय नहीं जानते, इत्त वास्ते सम्यग् ज्ञान किस्ती मतमेंजी सिद्ध नहीं होता है. एक तो ज्ञान होऐसें पुरुष अ निमानसें बहुत कर्म बांध कर दीर्घ संतारी हो जाता है, दूसरा सम्यग् ज्ञान किस्ती मतमें है नहीं, इत्त वास्ते अज्ञानही श्रेय है,

॥ इत्यज्ञानवादीका श्रद्धा ॥ सो अज्ञानी सदसत् प्रकारके हैं, तिनके जाननेका यह उपाय है कि जीवादिक नव पदार्थ किसी पट्टादिकमें लिखने, अरु दशमे स्थानमें उत्पत्ति लिखनी, तिन जीवादि नव पदार्थोंके हेतु न्यारे न्यारे सत्त्वादिक सात पद स्थापन करणे, सो यह हैं कि:- १ सत्त्वं, २ असत्त्वं, ३ सदसत्त्वं, ४ अवाच्यत्वं, ५ सदवाच्यत्वं, ६ असदवाच्यत्वं, ७ सदसदवाच्यत्वं, तहां १ सत्त्वं, सो स्वरूप करके विद्यमान पणां, २ असत्त्वं, सो पररूप करके अविद्यमानपणां ३ सदसत्त्वं, सो स्वरूप पररूप करके विद्यमान पणां. तहां यद्यपि सर्व वस्तु स्वरूपरूपों करके सर्वदाही स्वजावसे सदसत् स्वजाव है, तोजी किसी जगे कदाचित् उद्भूत रूप करके विवक्ष करियें हैं, तिस हेतुसे यह तीन विकल्प होते हैं, तथा ४ सोइ सत्त्व असत्त्व, जब युगपत् एक शब्द करके सहनेकी इच्छा करियें, तदा तिसका वाचक कोइजी शब्द नहीं है, इस वास्ते अवाच्यत्वं. यह चारों विकल्प सकलादेशा ऐसा नाम कहीयें, क्यों के यह चारों सकल वस्तु विषयकों ग्रहण करते हैं, ५ अरु यदा एक जागमें सत्, दूसरे जागमें अवाच्य, युगपत् विवक्षा करियें, तदा सदवाच्यत्वं, ६ यदा एक जागमें असत्, दूसरे जागमें अवाच्य, तदा असत् अवाच्यत्वं, ७ यदा एक जागमें सत्, दूसरे जागमें असत्, तीसरे जागमें अवाच्य युगपत् कल्पना करियें, तदा सदसदवाच्यत्वं. इन सातों विकल्पोंसे अन्य (दूसरा) विकल्प कोइजी नहीं है, जे कर कोइ करजी लेवे, तो इन सातोहीके अंतरजाव हो जायगे, परंतु सातोंसे अधिक विकल्प कदापि न होयेंगे, यह जो सात विकल्प कहे हैं इन सातोंको नव गुणा करे, तब त्रेशठ होते हैं, अरु उत्पत्तिके चार विकल्प आदिकेही होते हैं. १ सत्त्वं, २ असत्त्वं, ३ सदसत्त्वं, ४ अवाच्यत्वं, यह चार विकल्प त्रेशठमें प्रक्षेप करीयें, तब सदसत् मत अज्ञानवादीके होते हैं. अब इन सातों विकल्पोंका अर्थ लिखते हैं, कि कौन जानता है जो जीव सत्य है, यह एक विकल्प हुआ. कोइजी नहीं जानता है सत् जीव है इसका ग्रहण करनेवाला प्रमाण कोइजी नहीं है जेकर कोइ जाणजी लेवेगा जो जीव सत् है तो कौनसे पुरुषार्थकी सिद्धि हो गई क्यों कि जब ज्ञान हो जावेगा तब अज्ञानिवेश, अजिमान, चित्त मलिन लोकोंसे विवाद, जगना,

बढ़ जावेगा, तब तो ज्ञानवान् बहुत कर्म बंध करके दीर्घतर संसारी हो जावेगा, ऐसैही असत् आदिक शेष विकल्पोंकाजी अर्थ जान लेना ॥ इति ॥

विनय करके जो प्रवर्त्ते, सो वेनयिकाः इन विनयवादीयोंके लिंग अरु शास्त्र नहीं होता है, केवल विनयहीसे मोक्ष मानते हैं, तिन विनय वादीयोंके वत्तीस मत हैं, सो इस तरसे हैं, कि १ सुर, २ राजा, ३ जाति, ४ जाति, ५ स्थविर, ६ अधम, ७ माता, ८ पिता, इन आठोंकी मन करके, वचन करके, काया करके, अरु देशकाल उचित्त दान देने करके विनय करे, इन चारोंसे आठकों गुण्या वत्तीस हूये ॥ इति विनयवादी ॥ ४ ॥

ए सब मिल कर तीनसौ त्रेशठ मत हुये. ए सर्वमतधारी तथा इन मतोंके प्ररूपणे वाले सर्व कुगुरु हैं, क्योंकि यह सर्व मत मिथ्यादृष्टियोंके है, यह सब एकांतवादी हैं, परंतु स्याद्वादरूप अमृत स्वादसे रहित हैं, इनका जो अजिमत तत्त्व है, सो प्रमाण करके बाधित है, इनके मतोंको पूर्वाचार्योंने अनेक युक्तियोंसे खंनन करा है, सो जव्य जीवोंके जानने वास्ते मैं जी पूर्वाचार्योंकी युक्तियां इन ज्ञापग्रंथमें किंचित् मात्र नीचे लिखता हूं.

प्रथम जो कालवादी कहते हैं कि सर्व वस्तुकां कालही कर्त्ता है, तिसका खंनन लिखता हूं. हे कालवादी ! यह जो काल है सो क्या १ एक स्वभाव नित्य व्यापी है ? २ किंवा समयादिक रूप करके परिणामी है ? जे कर आदि पक्ष मानोगे सो तो अयुक्त है, क्योंकि ऐसे कालकों सिद्ध करने वाला कोइजी प्रमाण नहीं है, जैसा आद्य पक्षमें तूने काल मान्या है, तैसा काल, प्रत्यक्ष प्रमाणसे उपलब्ध नहीं होता है, अरु ऐसे कालका कोइ लिंगजी अविनाभावरूप नहीं दीखता, इस वास्ते अनुमानसेंजी सिद्ध नहीं होता है.

पूर्वपक्षः—क्योंकर अविनाभावलिंगका अभाव कहते हो ? क्योंकि दिखता है कि जरत रामचंद्रादिकों विषे पूर्वापर व्यवहार सो पूर्वापर व्यवहार वस्तुरूप मात्र निमित्त नहीं है ? जे कर वस्तुरूप मात्र निमित्त होवे, तदा वर्त्तमानकालमें वस्तु रूपके विद्यमान होणे करके तैसे व्यवहार होना चाहियें, तिस वास्ते जिस करके यह जरत रामादिकोविषे पूर्वापर व्यवहार है, सो काल है. तथाहि पूर्वकालयोगी, पूर्व जरतचक्र वर्त्ती, अपरकालयोगी अपर रामादि.

नहीं, क्योंकि तिस तिस प्रकरणके अनुसारें तिस तिस अर्थका निश्चय हो जाता है, अरु गौतमादिकोंने जिस जिस जगे जिस जिस शब्दका जैसा जैसा अर्थ करा है, सो जगवानने निषेध नहीं करा, इस वास्तेजी जाना जाता है, जो गौतमादिकने यथार्थही जाना है, अरु यथार्थही शब्दोंका अर्थ करा है, अरु जो कुछ गौतमादिकोंने कहा था, सोई आचार्योंकी अविधिन्न परंपरा करके अब तांइ तेसेही अर्थका अयवगम होता है, ऐसंजी न कहनां कि आचार्योंकी परंपरा हमकुं प्रमाण नहीं ? क्यों कि अविपरी तार्थ कहने करके आचार्योंकी परंपराकों कोइजी जूठी करने समर्थ नहीं.

एक औरजी बात है, कि तुमारा जो मत है, सो आगम मूल है ? वा अनागम मूल है ? जे कर कहोगे कि आगम मूल है, तब तो आचार्योंकी परंपरा क्योंकर अप्रमाणिक हो सक्ति है ? आचार्योंकी परंपरा बिना, आगमका अर्थही क्योंकर जाना जाये ? जे कर कहोगे कि अनागममूल है तब तो उन्मत्तके विरचित वचनवत् प्रामाणिक न होवेगा.

पूर्वपक्षः—यद्यपि हमारा मत अनागम मूल है, तोजी युक्ति संयुक्त है, इस वास्ते हम मानते हैं.

उत्तरपक्षः—अहो “दुरंतः स्वदर्शनानुरागः” कैसा जारी अपने मतका राग है, क्योंकि यह पूर्वापर विरुद्ध जापण तो अज्ञान मतका चूषण है ?

पूर्वपक्षः—किसी तरें हमारा पूर्वापर विरुद्ध बोलनाही हमारे मतका चूषण है ?

उत्तरपक्षः—युक्तियां जो होतीयां हैं, सो ज्ञानमूलही होतीयां हैं; अरु तुम तो अज्ञानहीकुं श्रेय मानते हो, तो फेर तुमारे मतमें सत् युक्तियों का कैसे संजव होवे ? इस वास्ते तुम पूर्वापर विरुद्धार्थके जापक हो, इस हेतुसें तुमारा मत किसीजी कामका नहीं है ॥ इति अज्ञानवादि मत खंरुन ॥

अथ विनयवादीके मतका खंरुन लिखते हैं. अब जो विनयहीसें मोक्ष मानते हैं सोजी एकांत वादके मोहसें हैं, क्योंकि विनय मुक्तिका अंग है, जो मुक्ति मार्गमें चलते हैं, तिनकी विनय करे अरु मुक्तिमार्ग तो “सम्यक् दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः इति वचनात्” सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, अरु सम्यक् चारित्र रूप है, ऐसा तत्त्वार्थ सूत्रका प्रमाण है, इस वास्ते ज्ञानादिकोंकी तथा ज्ञानादिकोंके आधार चूत जो बहुश्रुतादिक

पुरुष है, तिनकी जो विनय करे, बहुमान देवे, ज्ञानादिककी वृद्धि करे, सो परंपरा करके मुक्तिका अंग हो सका है; परंतु जो सुर, नरपति आदि ककी विनय है, सो संसारका हेतु है, क्योंकि जो जिसकी विनय करता है, वो उसके गुणोंको बहुत मान देता है; अरु सुर, नरपति, प्रमुखोंमें तो विषय जोगनेका प्रधान गुण है, जब उनकी विनय करी, तब तो उनके जोगोंकूं बहुत मान दीया, जब जोगोंकूं बहुत मान दीया, तब दीर्घ संसार पथकी प्रवृत्ति कर लीनी, इस वास्ते एकांत विनयसे जो मोक्ष मानते हैं, सोजी असत् वादी हैं, क्योंकि ज्ञानादिकोंसे रहित विनय साक्षात् मुक्तिका अंग नहीं है. ज्ञान, दर्शन, चारित्रसे रहित पुरुष, केवल पादपत नादिक विनयसे मुक्ति नहीं पा सका है, किंतु ज्ञानादिक सहितही पा सका है, तब तो ज्ञानादिकही साक्षात् मुक्तिके अंग हूये विनय नहीं.

पूर्वपक्षः—कैसे हम जानियें जो ज्ञानादिकही मुक्तिके अंग है ?

उत्तरपक्षः—इस संसारमें मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति, इन तीनोंही कर के कर्म वर्गणका संबंध आत्माको होता है, अरु कर्मकालका जो क्षय होना है, सोइ मोक्ष है. “मुक्तिः कर्मक्षयादिष्टेति वचनप्रामाण्यात्” अरु कर्मका क्षय तो तब होगा, जब कर्मबंधका कारण उच्छेद होगा, अरु कर्मका कारण तो मिथ्यात्वादि तीन है, इस वास्ते मिथ्यात्वका प्रतिपक्ष सम्यक् दर्शन है, अरु अज्ञानका प्रतिपक्ष सम्यक् ज्ञान है, अरु अविरति का प्रतिपक्ष सम्यक् चारित्र है, जब इन तीनोंको सेवता हुआ, यह तीनों प्रकर्ष जावकों प्राप्त होंगे, तब सर्वथा कर्मोंका कारण दूर होवेगा. जब कारण उच्छेद होवेगा, तब निर्मूल्य कर्मोंछेदके होनेसे मोक्ष होवेगी, इस वास्ते ज्ञानादिकही मोक्षका अंग है, परंतु विनय मात्र नहीं. अरु जो ज्ञानादिकों विषे विनय करता हुआ परंपरा करके मुक्ति अंग है, अरु साक्षात् मोक्षका हेतु तो ज्ञानादिक है, अरु जो जैनशास्त्रोंमें केइ जगें लिखा है कि “सर्वकल्याणभाजनं विनयः” सो ज्ञानादिकोंकी प्रवृत्ति वास्ते है, अरु जेकर विनयवादीजी इसी तरे मानता है, तब तो विनयवादीजी हमारे मतमेंही वृत्त है, तब तो विवादकाही अभाव है ॥ इति विनयवादी मत खंडनं ॥ यह समुच्चय (३६३) मतका किंचित् मात्र स्वरूप लिखा है,

अथ जल्यजीवोंके शीघ्र बोध होने वास्ते पट् दर्शनोंका किंचित् स्वरूप

नहीं, क्योंकि तिस तिस प्रकरणके अनुसारें तिस तिस अर्थका निश्चय हो जाता है, अरु गौतमादिकोंने जिस जिस जगे जिस जिस शब्दका जैसा जैसा अर्थ करा है, सो जगवानने निषेध नहीं करा, इस वास्तेजी जाना जाता है, जो गौतमादिकने यथार्थही जाना है, अरु यथार्थही शब्दोंका अर्थ करा है, अरु जो कुछ गौतमादिकोंने कहा था, सोई आचार्योंकी अविशिष्ट परंपरा करके अब तांइ तेसेही अर्थका अवगम होता है, ऐसंजी न कहनां कि आचार्योंकी परंपरा हमकूं प्रमाण नहीं ? क्यों कि अविपरीतार्थ कहने करके आचार्योंकी परंपराकां कोइजी जूठी करने समर्थ नहीं.

एक थोरजी बात है, कि तुमारा जो मत है, सो आगम मूल है ? वा अनागम मूल है ? जे कर कहोगे कि आगम मूल है, तब तो आचार्योंकी परंपरा क्योंकर अप्रामाणिक हो सक्ति है ? आचार्योंकी परंपरा बिना, आगमका अर्थही क्योंकर जाना जाये ? जे कर कहोगे कि अनागममूल है तब तो उन्मत्तके विरचित वचनवत् प्रामाणिक न होयेगा.

पूर्वपक्षः—यद्यपि हमारा मत अनागम मूल है, तोजी युक्ति संयुक्त है. इस वास्ते हम मानते हैं.

उत्तरपक्षः—अहो “दुरंतः स्वदर्शनातुरागः” केसा जारी अपणे मतका राग है, क्योंकि यह पूर्वापर विरुद्ध ज्ञापण तो अज्ञान मतका ज्ञापण है ?

पूर्वपक्षः—किसी तरें हमारा पूर्वापर विरुद्ध धोखनाही हमारे मतका ज्ञापण है ?

उत्तरपक्षः—युक्तियां जो होतीयां हैं, सो ज्ञानमूलही होतीयां हैं; अरु तुम तो अज्ञानहीकूं श्रेय मानते हो, तो फेर तुमारे मतमें सत् युक्तियों का कैसे संभव होवे ? इस वास्ते तुम पूर्वापर विरुद्धार्थके ज्ञापक हो, इस हेतुसे तुमारा मत किसीजी कामका नहीं है ॥ इति अज्ञानवादि मत खंरुन.

अथ विनयवादीके मतका खंरुन लिखते हैं. अब जो विनयहीसे मोह मानते हैं सोजी एकांत वादके मोहसे हैं, क्योंकि विनय मुक्तिका अंग है, जो मुक्ति मार्गमें चखते हैं, तिनकी विनय करे अरु मुक्तिमार्ग तो “सम्यक् दर्शनं ज्ञानं, अरु सम्यक् चरित्र रूप है, ऐसा तत्त्वार्थ सूत्रका प्रमाण है, इस वास्ते ज्ञानादिकोंकी तथा ज्ञानादिकोंके आधार भूत जो बहुश्रुतादिक

पुरुष है, तिनकी जो विनय करे, बहुमान देवे, ज्ञानादिककी वृद्धि करे, सो परंपरा करके मुक्तिका अंग हो सका है; परंतु जो सुर, नरपति आदिककी विनय है, सो संसारका हेतु है, क्योंकि जो जिसकी विनय करता है, वो उसके गुणोंको बहु मान देता है; अरु सुर, नरपति, प्रमुखोंमें तो विषय जोगनेका प्रधान गुण है, जब उनकी विनय करी, तब तो उनके जोगोंकूं बहु मान दीया, जब जोगोंकूं बहु मान दीया, तब दीर्घ संसार पथकी प्रवृत्ति कर दीनी, इस वास्ते एकांत विनयसें जो मोक्ष मानते हैं, सोजी असत् वादी हैं, क्योंकि ज्ञानादिकोंसें रहित विनय साक्षात् मुक्तिका अंग नहीं है. ज्ञान, दर्शन, चारित्रसें रहित पुरुष, केवल पादपत नादिक विनयसें मुक्ति नहीं पा सका है, किंतु ज्ञानादिक सहितही पा सका है, तब तो ज्ञानादिकही साक्षात् मुक्तिके अंग हूये विनय नहीं.

पूर्वपक्षः—कैसे हम जानीयें जो ज्ञानादिकही मुक्तिके अंग है ?

उत्तरपक्षः—इस संसारमें मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति, इन तीनोंही कर के कर्म वर्गणाका संबंध आत्माकों होता है, अरु कर्मकालका जो क्षय होना है, सोइ मोक्ष है. “मुक्तिः कर्मक्षयादिष्टेति वचनप्रामाण्यात्” अरु कर्मका क्षय तो तब होगा, जब कर्मबंधका कारण उच्छेद होगा, अरु कर्मका कारण तो मिथ्यात्वादि तीन है, इस वास्ते मिथ्यात्वका प्रतिपक्ष सम्यक् दर्शन है, अरु अज्ञानका प्रतिपक्ष सम्यक् ज्ञान है, अरु अविरति का प्रतिपक्ष सम्यक् चारित्र है, जब इन तीनोंको सेवता हुआ, यह तीनों प्रकर्ष जावकों प्राप्त होंगे, तब सर्वथा कर्मोंका कारण दूर होवेगा. जब कारण उच्छेद होवेगा, तब निर्मूल कर्मोच्छेदके होनेसें मोक्ष होवेगी, इस वास्ते ज्ञानादिकही मोक्षका अंग है, परंतु विनय मात्र नहीं. अरु जो ज्ञानादिकों विषे विनय करता हुआ परंपरा करके मुक्ति अंग है, अरु साक्षात् मोक्षका हेतु तो ज्ञानादिक है, अरु जो जैनशास्त्रोंमें केइ जगें लिखा है कि “सर्वकल्याणजाजनं विनयः” सो ज्ञानादिकोंकी प्रवृत्ति वास्ते है, अरु जेकर विनयवादीजी इसी तरें मानता है, तब तो विनयवादीजी हमारे मतमेंही वृत्त हैं, तब तो विवादकाही अज्ञाव है ॥ इति विनयवादी मत खंडनं ॥ यह समुच्चय (३६३) मतका किंचित् मात्र स्वरूप लिखा है, अथ जन्मजीवोंके शीघ्र बोध होने वास्ते पद दर्शनोंका किंचित् स्वरूप

१ विप्रमं है, जगमें प्रथम बौद्ध दर्शनका मुख्य है सो कहते हैं, बौद्ध
मार्गमें भूत जो होते हैं, तिनका प्रिय पेसा होता है. १ मस्तक मूंढा
हुआ, २ आसका टुकड़ा, ३ कर्मस्तु, ४ धानुरक्त वस्त्र, यह तो उनका वेष
है, अरु शोभनिया पहन है, फोमल शय्यामें सोनां, सवेरे उठकर पेया
पीनां, शय्यामें काष्ठमें जाग ग्यानां, अपरान्दमें पानी पीनां, झाका,
मंष्ट, पिपरी, अर्द्धगत्रिमं गगनांतमें मोक्ष, यह बौद्धोंका चलन है, तथा
गमगमता शोभन करनां, गमगमती शय्या, आसन, अरु मनगमता रहने
का आसन, पैसी अर्द्धी सागर्भीतं मुनि अर्द्धा ध्यान करता है, अरु जिहा
पाथमें जो कुछ पड़ जाये, सो सर्व शुक, मेरो मान करके मांसजी खा
होते हैं, अरु गदागर्भाणि अर्णवी क्रियामें बहुत दृढ होते हैं, यह उनका
आहार है, १ भर्मा, २ मुक्त, ३ रंघ यह तीनोंकों रत्नत्रय कहते हैं, अरु
आरातके विप्रोंके पाश करने पाही तारा देखी मानते हैं, अरु विपश्य
विक सात बौद्धावतार जिनोकी मूर्तियोंके कंठमें तीन तीन रेखाक
चिह्न होता है, तिसां जगमान् मानते हैं, तिसां सयंज्ञ मानते हैं.
अरु पुत्र जगमान्की जितने नामों कर कहते हैं, सो लिखते हैं
१ मुक्त, २ सागत, ३ भर्माभानु, ४ त्रिकासवित्, ५ जिन, ६ बौद्ध-
रात्र, ७ महाभोधी, ८ ध्याय, ९ शास्ता, १० तयागत, ११ पंचज्ञान, १२
भक्तजिह, १३ वशाद, १४ वराजुमिग, १५ चतुर्विंशजातकज्ञा, १६ दशन
हमिताभर, १७ द्वादशाक्ष, १८ दशपञ्च, १९ त्रिकाय, २० श्रीपन, २१
आध्य, २२ सागतजन्त, २३ संगत, २४ दयाहृन्, २५ विनायक, २६ ना
रतिव, २७ शोकजित्, २८ मुत्तजित्, २९ धर्मराज, ३० विज्ञानमात्रक
३१ महाभोच, ३२ मुनीन्द्र, यह बसीत नाम, बुद्ध जगमान्के कहते हैं.
अरु सात बुद्ध मानते हैं, १ विन्दती, २ सिद्धी, ३ विम्बदू, ४ ककुद्ध-
५ कौवज, ६ काश्यप, ७ सारस्वतिदू, पीउडा जो सारस्वतिदू बुद्ध है, ८
सके ताप, ९ शकभिर, १० अकरोध, ११ महाभन्त, १२ त्रयोदशतिद्ध, १
सोवज, १३ सारस्वत, १४ सुद्धोवज, १५ देवदत्त, १६ विद्ध, १७
सोवज, १८ सारस्वत, १९ सुद्धोवज, २० सुद्ध, २१ सारस्वत, यह सुद्धोवज
बौद्धोंके वेश है, २२ सारस्वत, २३ सारस्वत, २४ सारस्वत, २५ सारस्वत, २६ सारस्वत, २७ सारस्वत, २८ सारस्वत, २९ सारस्वत, ३० सारस्वत, ३१ सारस्वत, ३२ सारस्वत, ३३ सारस्वत, ३४ सारस्वत, ३५ सारस्वत, ३६ सारस्वत, ३७ सारस्वत, ३८ सारस्वत, ३९ सारस्वत, ४० सारस्वत, ४१ सारस्वत, ४२ सारस्वत, ४३ सारस्वत, ४४ सारस्वत, ४५ सारस्वत, ४६ सारस्वत, ४७ सारस्वत, ४८ सारस्वत, ४९ सारस्वत, ५० सारस्वत, ५१ सारस्वत, ५२ सारस्वत, ५३ सारस्वत, ५४ सारस्वत, ५५ सारस्वत, ५६ सारस्वत, ५७ सारस्वत, ५८ सारस्वत, ५९ सारस्वत, ६० सारस्वत, ६१ सारस्वत, ६२ सारस्वत, ६३ सारस्वत, ६४ सारस्वत, ६५ सारस्वत, ६६ सारस्वत, ६७ सारस्वत, ६८ सारस्वत, ६९ सारस्वत, ७० सारस्वत, ७१ सारस्वत, ७२ सारस्वत, ७३ सारस्वत, ७४ सारस्वत, ७५ सारस्वत, ७६ सारस्वत, ७७ सारस्वत, ७८ सारस्वत, ७९ सारस्वत, ८० सारस्वत, ८१ सारस्वत, ८२ सारस्वत, ८३ सारस्वत, ८४ सारस्वत, ८५ सारस्वत, ८६ सारस्वत, ८७ सारस्वत, ८८ सारस्वत, ८९ सारस्वत, ९० सारस्वत, ९१ सारस्वत, ९२ सारस्वत, ९३ सारस्वत, ९४ सारस्वत, ९५ सारस्वत, ९६ सारस्वत, ९७ सारस्वत, ९८ सारस्वत, ९९ सारस्वत, १०० सारस्वत.

१ तर्कज्ञाषा, २ न्यायविंदु, ३ हेतुविंद, ४ अर्बट, ५ तर्ककर्मलशैत ६ न्याय प्रवेश, ७ ज्ञानपारं, इत्यादि नाम उनके तर्कशास्त्रोंके हैं. तथा बौद्धोंकी शाखा चार है, सो कहते हैं, १ वैज्ञापिक, २ सौतांत्रिक, ३ योगाचार, ४ माध्यमिक.

अथ बौद्धमतं. बौद्ध चार वस्तु मानते हैं, सो लिखते हैं, १ दुःख, २ समुदाय, ३ मार्ग, ४ निरोध. तहां जो दुःख है, सो पांच स्कंधरूप है, उसका नाम लिखते हैं. १ ज्ञानस्कंध, २ वेदनास्कंध, ३ संज्ञास्कंध, ४ संस्कारस्कंध, ५ रूपस्कंध. इन पांचो बिना अपर कोइजी आत्मादिक पदार्थ नहीं है, यह पांच स्कंधका अर्थ लिखते हैं. १ रूपविज्ञानं, रस विज्ञानं, इत्यादिक निर्विकल्पक जो विज्ञान हैं, सो विज्ञान स्कंध. २ सुखा दुःखा, अदुःख सुखा, यह वेदनास्कंध है, यह वेदना पूर्वकृत कर्मोंसे होती है. ३ सविकल्पक ज्ञान जो है, सो संज्ञास्कंध. ४ पुण्य अपुण्यादिक धर्म समुदाय जो हैं, सो संस्कारस्कंध है, इसही संस्कारके प्रबोधसे पूर्व अनुजवका स्मरणादिक होता है, ५ पृथिवी, धातु आदिक अरु रूपादिक, यह रूपस्कंध है, इन पांचोसे अतिरिक्त आत्मादिक कोइ पदार्थ नहीं. अरु यह जो पांचों स्कंध हैं, वे सर्व एक क्षणमात्र रहते हैं, नित्यजी नहीं है, अरु कितनेक काल तांइ रहनेवालेजी नहीं है, यह दुःख तत्त्वके पांच जेद कहे.

अथ दुःख तत्त्वका कारणभूत समुदाय तत्त्वका स्वरूप लिखते हैं, जो इस जगत्में राग द्वेषोंका समूह उत्पन्न होता है, वो राग द्वेषका समूह कैसा है ? कि “आत्माआत्मीयज्ञावाख्यः” मैं ह, यह मेरा है, ऐसा जो संबंध, तथा यह दूसरा है, यह दूसरेकी वस्तु है, ऐसा जो संबंध, सोइ है नाम जिसका इस करके जो राग द्वेषादिक उत्पन्न होते हैं, तिसका नाम समुदायतत्त्व है. अथ दुःख, अरु समुदाय, यह जो दोनों हैं, सो संसारकी प्रवृत्तिके हेतु है.

अब इन दोनोंके जो विपक्षीभूत १ मार्ग २ निरोध तत्त्व है, सो लिखते हैं. कि “परमनिःकृष्टं कालःक्षणं” तिसमें जो होवे सो क्षणिक है, सर्व पदार्थ क्षणमात्र रह कर नाश हो जाते हैं, आत्मा कोइ सर्वकाल स्थायी नहीं, पूर्व क्षणके नाश होनेसे तत्सदृश उत्तर क्षण उत्पन्न होता है, पूर्वज्ञान जनिता वासना सो उत्तर ज्ञानमें शक्ति है. अरु क्षणोंकी परंपरा करके जो मान

प लिखते हैं. उसमें प्रथम बौद्ध दर्शनका स्वरूप है सो कहते हैं, बौद्ध मतमें गुरु जो होते हैं, तिनका लिंग ऐसा होता है. १ मस्तक मूँझा हुआ, २ घामका टूकना, ३ कर्मरुद्ध, ४ धातुरक्त वस्त्र, यह तो उनका वेष है, अरु शौचक्रिया बहुत है, कोमल शय्यामें सोनां, सवेरे उठकर पेया पीनां, मध्याह्न काष्ठमें जात खानां, अपरान्हमें पानी पीनां, जाड़ा, खंड, मिसरी. अर्द्धरात्रिमें मरणांतमें मोक्ष, यह बौद्धोंका चलन है, तथा मनगमता नोजन करनां, मनगमती शय्या, आसन, अरु मनगमता रहने का स्थान, ऐसी यही सामग्रीसैं मुनि अष्टा ध्यान करता है, अरु जिहा पात्रमें जो कुछ पड जाये, सो सर्व शुद्ध, ऐसे मान करके मांसनी ला भेते हैं, अरु ब्रह्मचर्यादि अपणी क्रियामें बहुत दृढ होते हैं, यह उनका आचार है, १ धर्म, २ बुद्ध, ३ संघ यह तीनोंको रत्नत्रय कहते हैं, अरु शासनके शिरोके नाश करने वाली तारा देवी मानते हैं, अरु विपश्यादिक सात बोद्धावतार जिनोंकी मूर्तियोंके कंठमें तीन तीन रेखाका चिन्ह होता है, तिसकूं जगवान् मानते हैं, तिसकूं सर्वज्ञ मानते हैं.

अरु बुद्ध जगवान्को जितने नामों कर कहते हैं, सो लिखते हैं. १ बुद्ध, २ सुगत, ३ धर्मधानु, ४ त्रिकालवित्, ५ जिन, ६ बोधि सत्त्व, ७ महायोधी, ८ आर्य, ९ शास्ता, १० तथागत, ११ पंचज्ञान, १२ परनिष्ठ, १३ दशार्ह, १४ दशजूमिग, १५ चतुर्विंशज्ञातकज्ञ, १६ दशार मिताथर, १७ द्वादशार्ह, १८ दशवज्र, १९ त्रिकाय, २० श्रीधन, २१ अक्षय, २२ समंततज्ञ, २३ संग्रह, २४ दयाकृत्, २५ त्रिनायक, २६ मारजित्, २७ लोकजित्, २८ मुखजित्, २९ धर्मराज, ३० विज्ञानमात्रक, ३१ महामैत्र, ३२ मुनीन्द्र. यह बत्तीस नाम, बुद्ध जगवान्के कहते हैं. अरु सात बुद्ध मानते हैं, १ विपशी, २ शिखी, ३ विश्वचू, ४ प्रकृष्टं, ५ कांचन, ६ काश्यप, ७ शाक्यसिंह. पीठसा जो शाक्यसिंह बुद्ध है, व सके नाम, १ शाक्यसिंह, २ अर्कबोधव, ३ राहुलसू, ४ सवार्थसिद्ध, ५ गौतम, ६ मायानुत, ७ शुद्धोदनमुत, ८ देवदत्ताग्रज, तथा १ जिष्ठ, २ सौगत, ३ शाक्य, ४ शौद्धोदनी, ५ सुगत, ६ तथागत, यह शून्यवारी बौद्धोंके नाम हैं. तथा १ शौद्धोदनी, २ धर्मांतर, ३ अर्यट, ४ धर्मेकीर्ति, ५ प्रज्ञाकर, ६ दिग्गज, ७ रामट. इत्यादि ग्रंथोंके करने वाले गुरु हैं. तथा

१ तर्कज्ञापा, २ न्यायविंदु, ३ हेतुविंद, ४ श्रवट, ५ तर्ककर्मलशेत ६ न्याय प्रवेश, ७ ज्ञानपारं, इत्यादि नाम उनके तर्कशास्त्रोंके हैं. तथा बौद्धोंकी शाखा चार है, सो कहते है, १ वैजापिक, २ सौतांत्रिक, ३ योगाचार, ४ माध्यमिक.

अथ बौद्धमतं. बौद्ध चार वस्तु मानते हैं, सो लिखते हैं, १ दुःख, २ समुदाय, ३ मार्ग, ४ निरोध. तहां जो दुःख है, सो पांच स्कंधरूप है, उसका नाम लिखते हैं. १ ज्ञानस्कंध, २ वेदनास्कंध, ३ संज्ञास्कंध, ४ संस्कारस्कंध, ५ रूपस्कंध. इन पांचो बिना अपर कोइजी आत्मादिक पदार्थ नहीं है, यह पांच स्कंधका अर्थ लिखते हैं. १ रूपविज्ञानं, रस विज्ञानं, इत्यादिक निर्विकल्पक जो विज्ञान हैं, सो विज्ञान स्कंध. २ सुखा दुःखा, अदुःख सुखा, यह वेदनास्कंध है, यह वेदना पूर्वकृत कर्मोंसे होती है. ३ सविकल्पक ज्ञान जो है, सो संज्ञास्कंध. ४ पुण्य अपुण्यादिक धर्म समुदाय जो हैं, सो संस्कारस्कंध है, इसही संस्कारके प्रबोधसे पूर्व अनुजवका स्मरणादिक होता है, ५ पृथिवी, धातु आदिक अरु रूपादिक, यह रूपस्कंध है, इन पांचोसे अतिरिक्त आत्मादिक कोइ पदार्थ नहीं. अरु यह जो पांचों स्कंध हैं, वे सर्व एक क्षणमात्र रहते हैं, नित्यजी नहीं है, अरु कितनेक काल तांश रहनेवालेजी नहीं है, यह दुःख तत्त्वके पांच जेद कहे.

अथ दुःख तत्त्वका कारणभूत समुदाय तत्त्वका स्वरूप लिखते हैं, जो इस जगत्में राग द्वेषोंका समूह उत्पन्न होता है, वो राग द्वेषका समूह कैसा है ? कि "आत्माआत्मीयजावाख्यः" मैं हूँ, यह मेरा है, ऐसा जो संबंध, तथा यह दूसरा है, यह दूसरेकी वस्तु है, ऐसा जो संबंध, सोइ है नाम जिसका इस करके जो राग द्वेषादिक उत्पन्न होते हैं, तिसका नाम समुदायतत्त्व है. अथ दुःख, अरु समुदाय, यह जो दोनों हैं, सो संसारकी प्रवृत्तिके हेतु है.

अब इन दोनोंके जो विपक्षीभूत १ मार्ग २ निरोध तत्त्व है, सो लिखते हैं. कि "परमनिःकृष्टं कालःक्षणं" तिसमें जो होवे सो क्षणिक है, सर्व पदार्थ क्षणमात्र रह कर नाश हो जाते हैं, आत्मा कोइ सर्वकाल स्थायी नहीं, पूर्व क्षणके नाश होनेसे तत्सदृश उत्तर क्षण उत्पन्न होता है, पूर्वज्ञान जनिता वासना सो उत्तर ज्ञानमें शक्ति है. अरु क्षणोंकी परंपरा करके जो मान

प लिखते हैं, उसमें प्रथम बौद्ध दर्शनका स्वरूप है सो कहते हैं, बौद्ध मतमें गुरु जो होते हैं, तिनका लिंग ऐसा होता है, १ मस्तक मूंझा हुआ, २ चामका टुकड़ा, ३ कर्मरुद्ध, ४ धातुरक्त वस्त्र, यह तो उनका वेष है, अरु शौचक्रिया बहुत है, कोमल शय्यामें सोनां, सवेरे उठकर पेया पीनां, मध्यान्ह कालमें चात खानां, अपरान्हमें पानी पीनां, झाड़ा, खंड, मिसरी, अर्द्धरात्रिमें मरणांतमें मोक्ष, यह बौद्धोंका चलन है, तथा मनगमता नोजन करनां, मनगमती शय्या, आसन, अरु मनगमता रहने का स्थान, ऐसी अठ्ठी सामग्रीसें मुनि अठ्ठा ध्यान करता है, अरु जिह्वा पात्रमें जो कुठ पड़ जावे, सो सर्व बुद्ध, ऐसे मान करके मांसजी खा लेते हैं, अरु ब्रह्मचर्यादि अपणी क्रियामें बहुत दृढ होते हैं, यह उनका आचार है, १ धर्म, २ बुद्ध, ३ संघ यह तीनोंको रत्नत्रय कहते हैं, अरु शासनके विघ्नोके नाश करने वाली तारा देवी मानते हैं, अरु विषयादिक सात बौद्धावतार जिनोकी मूर्तियोंके कंठमें तीन तीन रेखाका चिन्ह होता है, तिसकूं जगवान् मानते हैं, तिसकूं सर्वज्ञ मानते हैं, अरु बुद्ध जगवान्को जितने नामों कर कहते हैं, सो लिखते हैं, १ बुद्ध, २ सुगत, ३ धर्मधातु, ४ त्रिकावित्, ५ जिन, ६ बोधि सत्त्व, ७ महाबोधी, ८ आर्य, ९ शास्ता, १० तथागत, ११ पंचज्ञान, १२ परमजिज्ञा, १३ दशार्ह, १४ दशजूमिग, १५ चतुर्विंशज्ज्ञातकज्ञ, १६ दशपारमिताधर, १७ द्वादशाक्ष, १८ दशवल, १९ त्रिकाय, २० श्रीधन, २१ अक्षय, २२ समंतजड, २३ संगुप्त, २४ दयाकूर्च, २५ विनायक, २६ मारजित्, २७ लोकजित्, २८ मुखजित्, २९ धर्मराज, ३० विज्ञानमात्रक, ३१ महामैत्र, ३२ मुनीन्द्र, यह वत्तीस नाम, बुद्ध जगवान्के कहते हैं, अरु सात बुद्ध मानते हैं, १ विपशी, २ शिखी, ३ विश्वजू, ४ ऋकुण्ड, ५ कांचन, ६ काश्यप, ७ शाक्यसिंह, पीठला जो शाक्यसिंह बुद्ध है, उसके नाम, १ शाक्यसिंह, २ अर्कवांधव, ३ राहुलसू, ४ सर्वार्यसिद्ध, ५ गोतम, ६ मायासुत, ७ शुद्धोदनसुत, ८ देवदत्ताप्रज, तथा १ जिह्वा, २ सौगत, ३ शाक्य, ४ शौद्धोदनी, ५ सुगत, ६ तथागत, यह शून्यवादी बौद्धोंके नाम हैं, तथा १ शौद्धोदनी, २ धर्मोत्तर, ३ अर्बट, ४ धर्मकीर्ति, ५ प्रज्ञाकर, ६ दिग्माग, ७ रामट, इत्यादि ग्रंथोंके करने वाले गुरु हैं, तथा

१ तर्कज्ञापा, २ न्यायविंदु, ३ हेतुविंद, ४ अर्बट, ५ तर्ककर्मलशैत ६ न्याय प्रवेश, ७ ज्ञानपारं, इत्यादि नाम उनके तर्कशास्त्रोंके हैं. तथा बौद्धोंकी शाखा चार है, सो कहते हैं, १ वैज्ञापिक, २ सौतांत्रिक, ३ योगाचार, ४ माध्यमिक.

अथ बौद्धमतं. बौद्ध चार वस्तु मानते हैं, सो लिखते हैं, १ दुःख, २ समुदाय, ३ मार्ग, ४ निरोध. तहां जो दुःख है, सो पांच स्कंधरूप है, उसका नाम लिखते हैं. १ ज्ञानस्कंध, २ वेदनास्कंध, ३ संज्ञास्कंध, ४ संस्कारस्कंध, ५ रूपस्कंध. इन पांचो बिना अपर कोइजी आत्मादिक पदार्थ नहीं है, यह पांच स्कंधका अर्थ लिखते हैं. १ रूपविज्ञानं, रस विज्ञानं, इत्यादिक निर्विकल्पक जो विज्ञान हैं, सो विज्ञान स्कंध. २ सुखा दुःखा, अदुःख सुखा, यह वेदनास्कंध है, यह वेदना पूर्वकृत कर्मोंसे होती है. ३ सविकल्पक ज्ञान जो है, सो संज्ञास्कंध. ४ पुण्य अपु ण्यादिक धर्म समुदाय जो हैं, सो संस्कारस्कंध है, इसही संस्कारके प्रबोधसे पूर्व अनुजवका स्मरणादिक होता है, ५ पृथिवी, धातु आ दिक अरु रूपादिक, यह रूपस्कंध है, इन पांचोंसे अतिरिक्त आत्मादि क कोइ पदार्थ नहीं. अरु यह जो पांचों स्कंध हैं, वे सर्व एक क्षणमात्र रहते हैं, नित्यजी नहीं है, अरु कितनेक काल तांश रहनेवालेजी नहीं है, यह दुःख तत्त्वके पांच जेद कहे.

अथ दुःख तत्त्वका कारणभूत समुदाय तत्त्वका स्वरूप लिखते हैं, जो इस जगत्में राग द्वेषोंका समूह उत्पन्न होता है, वो राग द्वेषका समूह कैसा है ? कि "आत्माआत्मीयतावाक्यः" में ह, यह मेरा है, ऐसा जो संबंध, तथा यह दूसरा है, यह दूसरेकी वस्तु है, ऐसा जो संबंध, सोइ है नाम जिसका इस करके जो राग द्वेषादिक उत्पन्न होते हैं, तिसका नाम समुदायतत्त्व है. अथ दुःख, अरु समुदाय, यह जो दोनों हैं, सो संसारकी प्रवृत्तिके हेतु है.

अब इन दोनोंके जो विपक्षीभूत १ मार्ग २ निरोध तत्त्व है, सो लिखते हैं. कि "परमनिःकृष्टं कायःक्षणं" तिसमें जो दोबे सो क्षणिक है, सर्व पदार्थ क्षणमात्र रह कर नाश हो जाते हैं. आत्मा कोइ सर्वकाल स्थायी नहीं, पूर्व क्षणके नाश होनेसे तत्सदृश उत्तर क्षण उत्पन्न होता है, पूर्वज्ञान जनिता वात्सना सो उत्तर ज्ञानमें शक्ति है. अरु क्षणोंकी परंपरा करके जो मान

प लिखते हैं. उसमें प्रथम बौद्ध दर्शनका स्वरूप है सो कहते हैं, बौद्ध मतमें गुरु जो होते हैं, तिनका लिंग ऐसा होता है. १ मस्तक मूँछ हुवा, २ चामका टूकना, ३ कर्मरुद्ध, ४ धातुरक्त वस्त्र, यह तो उनका वेष है, अरु शोचक्रिया बहुत है, कोमल शय्यामें सोनां, सवेरे उठकर पंच पीनां, मध्यान्ह कालमें जात खानां, अपरान्हमें पानी पीनां, डाक्य खंड, मिसरी. अर्द्धरात्रिमें मरणांतमें मोक्ष, यह बौद्धोंका चलन है, तथा मनगमता जोजन करनां, मनगमती शय्या, आसन, अरु मनगमता रहने का स्थान, ऐसी अष्टौ सामग्रीसें मुनि अष्टौ ध्यान करता है, अरु त्रिक पात्रमें जो कुछ पड जावे, सो सर्वे शुरू, ऐसे मान करके मांसजी खा लेते हैं, अरु ब्रह्मचर्यादि अपणी क्रियामें बहुत दृढ होते हैं, यह उनका आचार है, १ धर्म, २ बुद्ध, ३ संघ यह तीनोंको रत्नत्रय कहते हैं, अरु शासनके विघ्नोके नाश करने वाली तारा देवी मानते हैं, अरु विपश्यादिक सात बौद्धावतार जिनोंकी मूर्तियोंके कंठमें तीन तीन रेखाका चिन्ह होता है, तिसकूं जगवान् मानते हैं, तिसकूं सर्वज्ञ मानते हैं. अरु बुद्ध जगवान्को जितने नामों कर कहते हैं, सो लिखते हैं. १ बुद्ध, २ सुगत, ३ धर्मधातु, ४ त्रिकालवित्, ५ जिन, ६ वांछित्त्व, ७ महायोधी, ८ आर्य, ९ शास्ता, १० तयागत, ११ पंचज्ञान, १२ परनिज्ञा, १३ दशार्ह, १४ दशजूमिग, १५ चतुर्विंशज्ञातकज्ञ, १६ दशरमित्तावर, १७ छादशाक, १८ दशवज, १९ त्रिकाय, २० श्रीघन, २१ अक्षय, २२ समंतजज्ञ, २३ संगुप्त, २४ दयाकूर्च, २५ विनायक, २६ मारजित्, २७ लोकजित्, २८ मुखजित्, २९ धर्मराज, ३० विज्ञानमात्रक ३१ महामैत्र, ३२ मुनीन्द्र. यह वत्तीस नाम, बुद्ध जगवान्के कहते हैं अरु सात बुद्ध मानते हैं, १ विपशी, २ शिखी, ३ विश्वज्ञ, ४ क्रकुत्त, ५ कांचन, ६ काश्यप, ७ शाक्यसिंह. पीठया जो शाक्यसिंह बुद्ध है, १ सके नाम, १ शाक्यसिंह, २ अर्कवांधव, ३ राहुलसू, ४ सर्वार्थसिद्ध, ५ गौतम, ६ मायासुत, ७ शुद्धोदनसुत, ८ देवदत्ताग्रज. तथा १ त्रिहु, २ सौगत, ३ शाक्य, ४ शुद्धोदनी, ५ सुगत, ६ तयागत, यह शून्यवाद बौद्धोंके नाम हैं. तथा १ शुद्धोदनी, २ धर्मोत्तर, ३ अर्षट, ४ धर्मकीर्ति, ५ प्रज्ञाकर, ६ दिग्भाग, ७ रामट. इत्यादि ग्रंथोंके करने वाले गुरु हैं. तथा

१ तर्कज्ञापा, २ न्यायविदु, ३ हेतुविदः, ४ अर्बट, ५ तर्ककर्मलशैत ६ न्याय प्रवेश, ७ ज्ञानपारं, इत्यादि नाम उनके तर्कशास्त्रोंके हैं. तथा बौद्धोंकी शाखा चार है, सो कहते हैं, १ वैज्ञापिक, २ सौतांत्रिक, ३ योगाचार, ४ माध्यमिक.

अथ बौद्धमतं. बौद्ध चार वस्तु मानते हैं, सो लिखते हैं, १ दुःख, २ समुदाय, ३ मार्ग, ४ निरोध. तहां जो दुःख है, सो पांच स्कंधरूप है. उसका नाम लिखते हैं. १ ज्ञानस्कंध, २ वेदनास्कंध, ३ संज्ञास्कंध, ४ संस्कारस्कंध, ५ रूपस्कंध. इन पांचो बिना अपर कोइजी आत्माइक पदार्थ नहीं है, यह पांच स्कंधका अर्थ लिखते हैं. १ रूपविज्ञानं, २ विज्ञानं, इत्यादिक निर्विकल्पक जो विज्ञान हैं, सो विज्ञान स्कंध. ३ दुःखा, अदुःख सुखा, यह वेदनास्कंध है, यह वेदना पूर्वकृत होती है. ४ सविकल्पक ज्ञान जो है, सो संज्ञास्कंध. ५ अणु आद्यादिक धर्म समुदाय जो हैं, सो संस्कारस्कंध है, इसकी प्रबोधसे पूर्व अनुभवका स्मरणादिक होता है, ५ पृथिवी, अदिक अरु रूपादिक, यह रूपस्कंध है, इन पांचोसे अविनिर्मुक्त क कोइ पदार्थ नहीं. अरु यह जो पांचों स्कंध हैं, वे नित्य रहते हैं, नित्यजी नहीं है, अरु कितनेक काल तां रहते हैं, यह दुःख तत्त्वके पांच जेद कहे.

अथ दुःख तत्त्वका कारणभूत समुदाय तत्त्वका नाम है जो इस जगत्में राग द्वेषोंका समूह उत्पन्न होता है. इसका समूह कैसा है ? कि "आत्माआत्मीयजादिक" ऐसा है. ऐसा जो संबंध, तथा यह दूसरा है, यह दूसरा जो संबंध, सोइ है नाम जिसका इस करके जो नाम है, सोइ है, तिसका नाम समुदायतत्त्व है. अथ इसका कारण, जो ज्ञान, दोनों हैं, सो संसारकी प्रवृत्तिके हेतु हैं.

अब इन दोनोंके जो विपक्षीयता नाम है, सो कहते कि "परमनिःकृष्टं कालःक्षणं" तिसका नाम है. गत्स्यायन क्षणमात्र रह कर नाश हो जाते हैं. अणु, वाच, क्षणके नाश होनेसे तत्त्वका नाश होता है. अकार इत्ति, वासना सो उत्तर ज्ञानमें अविनिर्मुक्त है. तिसविषे

मी प्रतीति होवे. तिसका नाम मार्ग है, सो निरोधका कारण जानना. अथ चौथा निरोध नामा तत्त्व लिखते हैं, निरोध नामा तत्त्व मोक्षकों कहते हैं. चित्तकी जो निःस्पृह अवस्था तिसका नाम निरोध तत्त्व है, नामांतर करिकें मोक्ष कहते हैं, यह दुःखादि चारकों आर्यसंत्त्व कहते हैं, अरु यह जो चारों तत्त्व अनंतर कहे हैं, सो सोतांत्रिक बौद्ध मतकी अपेक्षा है.

अरु जेकर जेद रहित समुच्चय बौद्धमतकी विवक्षा करियें, तब तो बौद्धमतमें धारा पदार्थ होते हैं, उसमें १ श्रोत्र, २ चक्षु, ३ घ्राण, ४ रसन, ५ स्पर्शन, यह पांच तो इंद्रिय, अरु इन पांचों इंद्रियोंके पांच विषय, तथा १ चित्त, २ शब्दायतन धर्म जो है. सुख दुःखादि तिनका जो आयातन (पर) सो क्या है? कि शरीर है यह सर्व छादश तारोंका नाम आयातन कहते हैं, अरु यह धारा आयातन क्षणिक हैं, क्षण प्रकारमें. चार तत्त्व तो सोतांत्रिकके मतके, अरु सामान्य प्रकारसे बौद्धमतके धारा आयातन कह करिकें अथ बौद्धमतके प्रमाण लिखते हैं, बौद्धमतमें एक प्रत्यक्ष, दूसरा अनुमान, यह दो प्रमाण मानते हैं ॥ इति संक्षेप मात्र बौद्धदर्शन ॥ १ ॥

अथ नैयायिक दर्शन लिखते हैं. नैयायिक मतका अपर नाम वैश्वामित्र तर्क कहते हैं; इन नैयायिकोंके गुरु १ दंड रचते हैं, २ बड़ी कोपीन, पहरे रखते हैं, ३ कांस्यी उड़ते हैं, ४ जटा राखते हैं, ५ शरीरकों जस्म खेनाते हैं, ६ नीरम आहार करते हैं, ७ पांडके मूलमें तूथी राखते हैं, ८ श्राव्य करके बनोमें रहते हैं, ९ आनिष्य कर्ममें तपर होते हैं, १० कंद, मूत्र, फस खाने हैं, ११ किननेक स्त्री रचते हैं, आ किननेक नहीं रचते हैं, १२ जो स्त्री नहीं रचते हैं, सो तिनमें उन्नम गणे जाते हैं, १३ पंच त्रि नाचते हैं, १४ जटामें प्राणविग धरते हैं, १५ उन्नम संपम अवस्थामें जब प्राण होते हैं, तब नम्र हो कर प्रमण करने हैं, १६ मचरे दंत पा दा दि गौरव करके शिवका ध्यान करते हैं, १७ जम्म करके तीन तीन पांच अंगहू स्पर्श करने हैं, १८ जो उनका नक्त बंदना करना है, सो "उन्नमः शिवाय" कहता है, अरु १९ गुरु ब्रह्मके नांड "शिवाय नमः ऐमे" कहता है. उनका कहना ऐमाही है, कि जो पुरुष जेरी दिहा धारां धरगाउ करके उन्न देवे, जे कर पीते वो दाम दासीनी होवे, तोही निर्वाण

पद पाता है, अरु शंकर इनका देव है, सो शंकर कैसा हैकि:-सर्व सृष्टिका संहारका कर्ता है.

तिस शंकरके अठारह अवतार मानते हैं, तिसका नाम लिखते हैं, १ नकुलीश, २ कौशिक, ३ गार्ग्य, ४ मैत्र, ५ कौरुप, ६ ईशान, ७ अपर गार्ग्य, ८ कपिलांग, ९ मनुष्यक, १० अपर कुशिक, ११ अत्रि, १२ पिंग लाह, १३ पुष्पक, १४ बृहदाचार्य, १५ अगस्ति, १६ संतान, १७ राशिकर, (१८) विद्यागुरु, यह अठारह उनके तीर्थेश हैं, इनकी बहुत सेवा करते हैं, इनका पूजन, अरु प्रणिधान तिनके शास्त्रोंसे जान लेनां.

अरु इनका अक्षपाद मुनि अर्थात् गौतम मुनि गुरु है, तिनके मतमें जरट पूजनिक है, सो कहते हैं, देवतावोंके सन्मुख हो कर नमस्कार न करणी, जैसा नैयायिक मतमें लिंग, वेप, देवादि स्वरूप है तैसाही वैशेषिक मतमेंजी जान लेनां, क्योंकि नैयायिक वैशेषिकोंके प्रमाण अरु तत्त्वोंमें थोडासा भेद है, इस वास्ते यह दोनो मत तुल्य ही है, इन दोनों हीकों तपस्वी कहते हैं, अरु तिनके शैवादिक चार भेद हैं, एक शैव, दूसरा पाशुपत, तीसरा महाव्रतधर, चौथा कालमुख. इनके अवांतर भेद जरट, जक्तलैंगिक, तापसादिक है, जरटादिकोंको व्रत ग्रहणमें ब्राह्मणादि वर्णोंका नियम नहीं, किंतु जिसकी शिव विषे जक्ति होवे, सो व्रती जरटादिक होता है, परंतु नैयायिक जो है, सो सर्व सदाशिवजक्त होनेसे उनका नाम शैव कहते हैं, अरु वैशेषिकोंको पाशुपत कहते हैं.

इन नैयायिकोंके मतमें १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ उपमान, ४ शाब्द, यह चार प्रमाण मानते हैं, अरु १ प्रमाण, २ प्रमेय, ३ संशय, ४ प्रयोजन, ५ दृष्टांत, ६ सिद्धांत, ७ अवयव, ८ तर्क, ९ निर्णय, १० वाद, ११ जल्प, १२ वितंका, १३ हेत्वाज्ञास, १४ ठल, १५ जातय, १६ निग्रहस्थान. यह सोला पदार्थ मानते हैं, इनका विस्तार बहुत है, इस वास्ते नहीं लिखा, अरु आत्यंतिक दुःखोंका जो वियोग तिसकुं मोक्ष कहते हैं. इनके १ न्यायसूत्र, अक्षपाद मुनि कर्ता, २ जाण्य, वात्स्यायन मुनि कर्ता, ३ न्याय वार्त्तिक, उद्योतकर कर्ता, ४ तात्पर्य टीका, वाचस्पति कर्ता, ५ तात्पर्य परिशुद्धि, उदयन कर्ता, ६ न्यायालंकार वृत्ति, श्रीकंठाजयतिलकोपाध्याय कर्ता, ७ नासर्वज्ञप्रणीत, न्यायसार. तिसविषे

अठारह टीका है, तिनमेंसुं न्यायचूषण नामक टीका प्रसिद्ध है, न्याय कलिका जयंत रचित, न्याय कुसुमांजलि यह सब इन नैयायिकोंके तर्क ग्रंथ हैं, यह नैयायिकदर्शन, संक्षेपसें लिखा.

अथ वैशेषिकजी यही लिख देते हैं. कि वैशेषिकोंका मत नैयायिकों के तुल्यही है, परंतु यह विशेष है कि, यह मतवाले प्रत्यक्ष अरु अनुमान यह दो प्रमाण मानते हैं, अरु १ ड्रव्य, २ गुण, ३ कर्म, ४ सामान्य, ५ विशेष, ६ समवाय, यह सावरूप ७ तत्त्वों मानते हैं, इन सर्वका विस्तार देखनां होवे, तदा वैशेषिक मतके ग्रंथोंमें देख लेनां, तथा तपा गद्याचार्य श्रीगुणरत्नसूरिविरचित पददर्शन समुच्चय ग्रंथकी टीका देख लेनी, अरु यह वैशेषिकमतके जो तर्कग्रंथ हैं, सो कहते हैं, एक तो ६००० श्लोक प्रमाण, कंदली श्रीधर आचार्य कर्ता, वैशेषिक सूत्र, ३००० श्लोक प्रमाण, प्रशस्तकर जाप्य, ९०० श्लोक मान, व्योमशिवाचार्यकृत व्योममतीटीका, १००० श्लोक मान, उदयनकी करी हुई किरणावली ६००० श्लोकमान, श्रीधर आचार्यकृत लीलावती टीका ६००० श्लोकमान, अरु एक आत्रेय तंत्र था, सो व्यवच्छेद हो गया है. यह वैशेषिक मतवाले कहते हैं की शिवजीने उलूकका रूप करके कणाद मुनिके आगे यह वैशेषिक मत प्रकाश करा था, इस वास्ते इस मतका नाम औलूक्य मतजी कहते हैं ॥ इति वैशेषिक मतं ॥

अथ सांख्यमत लिखते हैं. प्रथम तो सांख्यमतके साधुओंके जानने वास्ते उनका लिंगादिक लिखते हैं. सो त्रिदंतीजी होते हैं, कौपीन पहरेते हैं, धातुरक्त वस्त्र रखते हैं, कोइ शिर उपर शिखा रखते हैं, अरु कोइ जटा रखते हैं, कोइ मस्तक कुरमुंड कराते हैं, मृगचर्मका आसन रखते हैं, छिजके घरका शयन खाते हैं, केइ पांचही ग्रास खाते हैं, अरु बारा अक्षरका जाप करते हैं, तिनके भक्त, जब गुरुकूं वंदना करता है, तब "ॐ नमो नारायणाय" ऐसे कहते हैं, तब गुरु उनकूं "नमो नारायणाय" ऐसे कहते हैं, अरु महाभारतमें जिसका नाम "वीर्य" ऐसा लिखा है, यह काष्ठकी मुखवस्त्रिका मुखके निःश्वास निरोधके वास्ते रखते हैं, जिससें मुखश्वास सें जीवहिंसा न होवे. यदाहुः ॥ श्लोक ॥ ते प्राणादनुयातेन, श्वासेनेकेन जंतवः ॥ हन्यंते शतशो ब्रह्म, ब्रह्ममात्राक्षरवादिनः ॥१॥ ते सांख्य गुरु, ज

छके जीवोंकी दया वास्ते अपने पास पाणीके ठानने वास्ते गखनां राखते हैं, अरु अपने जक्तोकूं पाणीके ठानने वास्ते तीस अंगुल प्रमाण खां वा और बीस अंगुल प्रमाण चौड़ा, दृढ़ ठखना, राखनेका उपदेश करते हैं, अरु जो जीव पानीके ठाननेसे निकले; वो उसी पाणीमें पीठे प्रक्षेप करने, क्योंकि मीठे पाणी करके खारे पाणीके पूरे मर जाते हैं, अरु खारे पाणीके मिननेसे मीठे पाणीके पूरे मर जाते हैं, इस वास्ते परस्पर पानी योंका नेत्र न करनां; बहुत सूझ पाणीके एक विंदुमें इतने जीव हैं कि जे कर प्रमर समान उस जीवोंकी काया बनाइ जावे, तो तीन लोकमें वे जीव न समावे ॥ इति गलनक विचारो मीमांसायां ॥

यह सांख्यजी एक प्राचीन, अरु एक नवीन, ऐसे दो तरके हैं, नवीनोका इत्तरा नाम पांतांजलजी कहते हैं, इनमेंसूं प्राचीन सांख्य ईश्वरकों नहीं मानते हैं, अरु नवीन सांख्य ईश्वरकों मानते हैं, जो निरीश्वर हैं वो ना रायण पर हैं, अरु उनके जो आचार्य हैं, सो विष्णु प्रतिष्ठा कारका चेतन्य प्रमुख शब्दों करके कहे जाते हैं, अरु सांख्य मत कहने वासे यह आचार्य हैं सो खिलते हैं. कपिल, आसुरी, पंचशिव, जार्गव, उलूक, ईश्वर, कृष्ण, यह शास्त्रोंके कर्ता हैं. सांख्यमत वाजोंकों कापिलाजी कहते हैं, तथा कपिलाका परमर्षि ऐसा इत्तराजी नाम है, इस वास्ते तिनकों पारमर्षाजी कहते हैं, बापारसीमें सो बहुत होते हैं, मात्तोपवास्तजी करते हैं, अरु ब्राह्मण जो हैं, सो अर्विमार्गसे विरुद्ध धूममार्गानुगामी हैं, अरु सांख्य जो हैं, सो अर्विमार्गानुयायी हैं, तिस वास्ते ब्राह्मणोंको तो वेद प्यारे हैं, अरु यज्ञमार्गानुयायी हैं, अरु सांख्य जो हैं सो हिंसा करके पूर्ण ऐसे जो वेद. तिनोंसे निवर्त्ते दूये हैं, अध्यात्मवादी हैं सो सांख्य अपने मतकी महिमा ऐसी मानते हैं. नागर शास्त्रके प्रांतमें लिखा है ॥श्लोक॥ दृष्टं पितृ चत्वारं मोदं. नित्यं सुंदरं च योगान् यथाऽनिकामं ॥ यदि विदितं कपिलमतं. तत्प्राप्स्यति मोक्षमौख्यमचिरेण ॥१॥ अस्त्यर्थः—जे कर तुमने कपिल मत जाना है तो दृष्टो. पीयो. खेडो. खाई. सदा खुशी रहो. जेसे रुचि होवे. तेसे योगोंको सदा योगो. तो तुमकों योडेने काजमें मुक्ति सुख प्राप्त होवेगा, शास्त्रान्तर्मेही कहा है ॥ श्लोक ॥ पंचविंशति वत्सङ्गो, यत्र तत्राश्रमे रतः ॥ शिखी मुंजी जटी बाधि. मुच्यते नात्र संशयः ॥ १ ॥

अस्यार्थः—पच्चीश तत्त्वोंका जो जानकार होवे, सो चाहो किसी आश्रममें रहे, शिखावाला होवे, वा मुंफित होवे, अथवा जटावाला होवे, वे सर्व उपाधिसं जुट जाते हैं, इसमें संशय नहीं.

अथ सांख्यमतमें सर्वसांख्य पच्चीश तत्त्व मानते हैं, जब पुरुष तीन दुःखोंसे अजिह्व होता है, तब तीन दुःखोंके दूर करणें वास्ते जिज्ञासा उत्पन्न होती है, सो तीन दुःख यह हैं १ आध्यात्मिक, २ आधिदेविक, ३ आधिजैतिक, यह तीन दुःख हैं, आध्यात्मिक जो आधि है, सो दो प्रकारकी है, एक शारीरी, दूसरी मानसी, तहां जो वायु, पित्त, श्लेष्म, इन तीनोंकी विषमतासे देहमें जो अतिसारादिक होते हैं, सो शारीरिक है. अरु काम, क्रोध, खाज, मोह, ईर्ष्या, विषयोंके देखनेसे जो होवे, सो मानसी. यह दोनोही आंतर उपायसे दूर हो सक्ति हैं इस वास्ते इसकूं आध्यात्मिक दुःख कहते हैं, २ अरु जो बाह्य उपाय करके साध्या जावे सो दुःख दो प्रकारके हैं, एक आधिजैतिक, दूसरा आधिदेविक, तहां जो दुःख मनुष्य, पशु, पक्षी, मृग, सर्प, स्थावर आदिके, निमित्त करिके होता है ताकूं आधिजैतिक कहते हैं, ३ अरु यद्वा, राक्षस, जूतादिकका प्रवेश हो जाना, तथा महामारी अनाष्टि अतिवृष्टिका होना तिसका नाम आधिजैतिक है. इन तीनों दुःखों करके रज परिणामके जेद करके प्राणीयोंका दुःखोंके दूर करणें वास्ते तत्त्वोंके जाननेकी इच्छा होती है, सो तत्त्व पच्चीश प्रकारके हैं.

अथ प्रथम पच्चीश तत्त्वोंका स्वरूप लिखते हैं. तिनमें प्रथम सत्त्वादि गुणोंका स्वरूप कहते हैं. १ प्रथम सत्त्वगुण सुखलक्षण, २ दूसरा रजोगुण दुःख लक्षण, ३ तीसरा तमोगुण मोहलक्षण, इन तीनों गुणोंके यह लिंग हैं, १ सत्त्वगुणका चिन्ह प्रसन्नता, २ रजोगुणका चिन्ह संताप, ३ तमोगुणका चिन्ह दीनपणा, अथ १ प्रसाद, २ बुद्धिपाटव, ३ लाघव, ४ प्रश्रय ५ अयनजिप्संग, ६ अछेप, ७ प्रीत्यादय, यह सत्त्वगुणके कार्यलिंग हैं. १ ताप, २ शोष, ३ जेद, ४ चखचित्त, ५ स्तंज, ६ उद्वेग, यह रजोगुणके कार्य लिंग हैं, १ देन्य, २ मोह, ३ मरण, ४ असादन, ५ चीजत्ता, ६ ज्ञानगौरवादि, यह तमोगुणके कार्यलिंग हैं, इन कार्यों करके सत्त्वादि गुण जाने जाते हैं ॥ तथाहि ॥ लोकमें जो कुठ सुख उपलब्ध होता है,

सो १ आर्जव, २ मार्दव, ३ सत्य, ४ शौच, ५ लज्जा, ६ बुद्धि, ७ दमा, ८ अनुकंपा, प्रसादादि, यह सर्व सत्त्व गुणके कार्य हैं। अरु जो कुठ दुःख उपलब्ध होता है, सो १ छेष, २ ओह, ३ मत्सर, ४ निंदावचन, ५ वंधन, तापादि स्थान हैं। सो रजोगुणके कार्य हैं। अरु जो कुठ मोह उपलब्ध होता है, सो १ अज्ञान, २ मद, ३ आलस्य, ४ जय, ५ दैन्य, ६ कृपणता, ७ नास्तिकता, ८ विषाद, ९ उन्माद स्वप्नादि, यह तमोगुणके कार्य हैं। यह सत्त्वादिक परस्परोपकारी तीन गुणों करके सर्व जगत् व्याप्त है, परंतु ऊर्ध्व लोकमें देवतायों विषे बाहुल्य करके सत्त्वगुण हैं, औ अधोलोक तिर्यच नरकों विषे बाहुल्य करके तमोगुण है, औ मनुष्योंमें बहुलता करके रजो गुण है, इन तीनों गुणों की जो सम अवस्था है, तिसका नाम प्रकृति है, तिस प्रकृतिकों प्रधान अव्यक्त शब्दों करके भी कहते हैं, सो प्रकृति नित्य स्वरूप है, “अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावं कूटस्थं नित्यं” यह नित्यका लक्षण है। अरु यह जो प्रकृति है सो अन्वय, वा असाधारणी, अशब्दा, अस्पर्शा, अरसा, अरूपा, अगंधा, अव्यया, कहते हैं। अरु जो मूल सांख्यमती है, वे एकैक आत्माके साथ न्यारा न्यारा प्रधान मानते हैं, अरु जो नवीन सांख्य है, वे सर्वात्माओंमें एक, नित्य, प्रधान मानते हैं, प्रकृति अरु आत्माके संयोगसे सृष्टि होती है, इस वास्ते सृष्टि होनेका क्रम लिखते हैं,

तिस प्रकृतिसंती बुद्धि उत्पन्न होती है, गौ आदिकोंके आगें दीखनें से यह गौही है घोना नहीं, यह स्थाणुही है, परंतु पुरुष नहीं, ऐसा जो निश्चयरूप अध्यवत्ताय होता है, तिसका नाम बुद्धि कहते हैं, इसरा तिसका नाम महत्तनी कहते हैं। तिस बुद्धिके आठ रूप हैं, १ धर्म, २ ज्ञान, ३ वैराग्य, ४ ऐश्वर्य, यह चार तो सात्विक बुद्धिके रूप हैं, १ अधर्म, २ अज्ञान, ३ अवैराग्य, ४ अऐश्वर्य, यह चारो तामसी बुद्धिके रूप हैं। तिस बुद्धितें अहंकार उत्पन्न होता है, तिस अहंकारसेंति सोळा गुणका समूह उत्पन्न होता है, सो गुण यह है, १ स्पर्शनं त्वक् २ रसनं जिह्वा, ३ घ्राणं नासिका, ४ चक्षु लोचनं, ५ श्रोत्र श्रवणं इन पांचोंको बुद्धिजिय कहते हैं, क्योंकि यह पांचों अपने अपने विषयको जानती हैं, अरु पांच कर्मेजिय हैं, १ पायु गुदा, २ उपस्थ स्त्री पुरुषका चिन्ह, ३

कंठादि आठस्थानोंसे जो शब्द उच्चरिये हैं, सो वच, ४ हाथ, ५ पग, इन पांचोंसे पांच काम होते हैं. १ मलोत्सर्ग, २ संजोग, ३ वचन, ४ पक कनां, ५ चलनां, इस वास्ते इन पांचोंको कर्मेन्द्रिय कहते हैं. अरु अग्नी आरवा मन, यह मन जो है, सो बुद्धीन्द्रियोंसे मिलता है, तब बुद्धीन्द्रियरूप हो जाता है, अरु जब कर्मेन्द्रियोंसे मिलता है, तब कर्मेन्द्रिय रूप हो जाता है, अरु यह मन जो है, सो संकल्पवृत्ति है, तथा अहंकारसेंती पांच तन्मात्रा जिनकी सूक्ष्म संज्ञा है, सो उत्पन्न होते हैं, तहां १ रूप तन्मात्रा सो शुक्ल कृष्णादिरूप विशेष, २ रस तन्मात्रा सो तिक्तादि रस विशेष, ३ गंध तन्मात्रा सो सुरज्यादि गंध विशेष, ४ शब्द तन्मात्रा सो म धुरादि शब्द विशेष, ५ स्पर्श तन्मात्रा, सो मृदु काठिन्यादि स्पर्श विशेष, यह षोडशका गण है. अथ पांच तन्मात्राओंसे पांच जूत उत्पन्न होते हैं, सो कहते हैं. १ रूप तन्मात्रा सूक्ष्म संज्ञासें अग्नि उत्पन्न होता है, २ रस तन्मात्रासें जल उत्पन्न होता है, ३ गंध तन्मात्रासें पृथिवी उत्पन्न होती है, ४ शब्द तन्मात्रासें आकाश उत्पन्न होता है, तथा ५ स्पर्श तन्मात्रासें वायु उत्पन्न होता है. ऐसे पांच तन्मात्राओंसे पांच जूत उत्पन्न होते हैं, ऐसे यह सब मिल कर चोवीश तत्त्व रूप सांख्य मतमें प्रधान निवेदन कीया, “श्री अकर्ता विष्णु उक्ता” ऐसा पुरुष तत्त्व नित्य चिद्रूप मानते हैं, चोवीश तत्त्वरूप प्रधान ऐसे हैं कि १ प्रकृति, २ महान्, ३ अहंकार, ४ पांच ज्ञानेंद्रिय, १३ पांच कर्मेन्द्रिय, १४ मन, १९ पांच तन्मात्रा, २४ पांच जूत, यह चोविश तत्त्व हैं. तिनमेंसुं प्रथम एक प्रकृति है, ऐसे अनुत्पन्न होनेसे बुद्धि आदिक सात अगलोंके तो कारण हैं, अरु पीठलोंके कार्य हैं, इस वास्ते इन सातोंको प्रकृति विकृति कहते हैं, अरु षोडशका गण सो कार्यरूप होनेसें विकृति रूप है, अरु पुरुष जो है, सो न प्रकृति है, न विकृति है, न किसीसें उत्पन्न हुआ है, न किसीको उत्पन्न करता है, इस हेतुसें ॥ तथाचे श्वरः कृष्णः सांख्यसप्ततो ॥

“मूलप्रकृतिरविकृति-महदायाः प्रकृतिविकृतयः सप्त ॥ पुरुषश्च विकारो, विकृतयः न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुष इति ॥ अर्थः—तथा ईश्वर कृष्ण सांख्यमतका आचार्य सांख्यसप्तनि ग्रंथमें लिखता है, कि मूल प्रकृति अविकृति है, महत् आदिक सात प्रकृति विकृति हैं, षोडशक विकार

विकृति हैं. न प्रकृति है, न विकृति है, सो पुरुष है. तथा महदादिक, प्रकृतिका विकार है. सो व्यक्त हो कर फेर अव्यक्तनी हो जाते हैं, सो अनित्य होनेसे अपने स्वरूपसे ग्रंथ हो जाते हैं, अरु प्रकृति जो है, सो अविकृतिरूप है, सो कदापि अपने स्वरूपसे ग्रंथ नहीं होती है. तथा महत् आदिकोंका अरु प्रकृतिका स्वरूप सांख्यमतवाले ऐसे मानते हैं. १ हेतुमत्, २ अनित्य, ३ अव्यापक, ४ सक्रिय, ५ अनेक, ६ आश्रित, ७ लिंग, ८ सावयव, ९ परतंत्र, १० व्यक्त, इनसे विपरीत प्रकृति है. तहां १ हेतुमत् कारण वाले हैं, महत् आदिक २ अनित्य, उत्पत्ति धर्मवाले हैं, ३ बुद्ध्यादिक अव्यापी हैं, सर्वगत नहीं, ४ अध्यवसाय करके संयुक्त वत्ते हैं, इस हेतुसे सक्रिय सव्यापार चलने वाले हैं, ५ अनेक, तेवीस प्रकारके हैं इस वास्ते, ६ आश्रित, आत्माके उपकार वास्ते प्रधानकों अवलंब करके रहे हैं, ७ लिंग, जो जिससेते उत्पन्न होते हैं, सो तिसहीमें “लयं क्यं गच्छतीति लिंगं,” तहां पांच भूत, पांच तन्मात्राओंमें लय होते हैं, औ पांच तन्मात्रा, अरु दश इंद्रिय, अरु मन, यह अहंकारमें लय होते हैं, अरु अहंकार बुद्धिमें लय होता है, अरु बुद्धि प्रकृतिमें लय होती है, औ प्रकृति किसीमेंभी लय नहीं होती हैं, ८ सावयव, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधादिकों करके संयुक्त है, ९ परतंत्र, कारणके अधीन होनेसे, १० ऐसेही महत् आदिक व्यक्त हैं, प्रकृति इनसे विपरीत है, सो सुगम है, आपही समझ लेनी. यह योगात्मा स्वरूप लिखा है, जे कर विस्तार देखना होवे तदा सांख्य सतति आदिक. तिनोके शास्त्रोंसे जान लेना.

अथ पञ्चीशवा पुरुष तत्त्वका स्वरूप कहते हैं, पुरुष जो है सो “अकर्ता विगुणो ज्ञोक्ता नित्यचिदज्युपेतश्च” पुरुष तत्त्व आत्माकों कहते हैं, १ आत्मा जो है, सो विषय सुखादिक तिनका कारण पुण्यादिक नहीं करता है, इस वास्ते “अकर्ता” है, क्योंकि आत्मा तृण मात्राजी तोमने समर्थ नहीं है, औ कर्ता जो है, सो प्रकृति है, क्योंकि प्रकृतिमें प्रवृत्ति स्वभाव है, तथा २ “विगुणः” सत्त्वादि गुणरहित है, क्योंकि सत्त्वादिक जो हैं सो प्रकृतिके धर्म हैं, तथा ३ “ज्ञोक्ता” आत्मा ज्ञोक्ता जोगने वाला है, ज्ञोक्ताजी साक्षात् नहीं किंतु प्रकृतिका विकार भूत उजय मुख दर्पणाकार जो बुद्धि है, तिसमें संक्रमण होय दुवे सुख दुःखोंको पुरुष स्वात्म निर्मलविषे प्रतिबिंबोदय मात्र

करकें “जोक्ता” कहियें है, “बुद्ध्यावसितमर्थं पुरुषश्चेतत्” इति वचनात् ॥ जैसे जाइके कूखोंके सन्निधानके वशसें स्फटिकमें रक्ततादि कहनेमें आता है, तैसें प्रकृतिके निकट होनेसें पुरुषजी मुख दुःखोंका जोक्ता कहा जाता है, सांख्यमतका बाद महार्णवजी कहता है, उक्तंच “ बुद्धिदर्पणसंक्रांतं समर्थप्रतिबिम्बकं ॥ द्वितीयदर्पणं कल्पे, पुंसिश्चक्षुष्यारोहति ॥ तदेव जोक्तृत्वं मस्य नत्वात्मनो विकारापत्तिरिति” ॥ इसका तात्पर्यार्थ उपर लिखा जानना.

तथा च कपिशका शिष्य आसुरिजी कहता है ॥ श्लोक ॥ विवक्ते द्रूपरिणो, बुद्धो जोगोऽस्य कथ्यते ॥ प्रतिबिंबोदयः स्वप्ने, यथा चंद्रमसो जसि ॥ १ ॥ तथा विप्यवासी सांख्याचार्य आत्माको ऐसें जोक्ता कहता है, कि पुरुष जो है, सो अचिह्नुतात्माही है, सनिनांस अचेतनमन करता है, तिस म नकी निष्कृतासें उपाधि स्फटिकवत् दिखलाइ देती है, तथा “ नित्या या विद्येतना तथाऽन्युपेतः ” इस कहने करकें पुरुषही चेतन्य स्वरूप है, “ ननु ज्ञानस्य ” (परंतु ज्ञान को नहीं) क्योंकि ज्ञानको बुद्धिधर्म हो नेमें, तथा पनंजलीजी ऐसेही कहता है. तथा “ पुमान् ” यह जो एक वगन है, सो जानिकी अपेक्षा है, परंतु आत्मा अनंत है, क्योंकि जन्म मरण कारणोंके नियम देखनेमें, तथा धर्मादिक प्रवृत्ति नाना देग नेमें. सो तब अनंत आत्मा सर्वगन अरु नित्य है ॥ उक्तंच ॥ अमूर्त्तिश्चेतनो जोगी, नित्यः सर्वगनोऽक्रियः ॥ अकर्त्ता निर्गुणः मूढ, आत्माका पित्तदर्शनइति

सांख्यमतमें प्रमाण तीन मानते हैं १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ शाब्द, इस मतका नाम सांख्य वा शांख्य किम वास्ते कहते हैं ? तिरका हेतु कहियें हैं. संख्या प्रकृति नत्व पञ्चीश रूप तिनको जो जाने, या पढ़े, इति सांख्य. तथा जे कर नासत्री शकारमें बोखियें तब शांख्य, तिनके मत में शंख त्वनि है ऐसी वृद्धोंकी आम्नायमें यह नाम है, तथा शंख नामक कोई आद्य पुरुष कृत्वा है, “नस्यापत्यं पोत्रादिरिति गर्गादित्वादयस्त्रीप्रत्यये शांख्यान्तेषानिदं दर्शनं सांख्यं शांख्यं वा ॥ इति सांख्यमतं संक्षेपतः संपूर्णं ॥

अथ मीमांसक मत लिखते हैं. इसका दुसरा नाम जैमिनीयाजी कहते हैं, इस मत बाड़े सांख्यमतकी तरे एकदंती, त्रिदंती दाते हैं, या तु रक्त वध पहिरते हैं, मृगचर्चके आसन उपर बैठते हैं, कमंडल रख ते हैं. शिर मुञ्जित रखते हैं, संख्यामी प्रमुख द्विज इस मतमें हांत हैं. नि

नका वेदही गुरु हैं, परंतु और वक्ता गुरु कोइ नहीं. सो आपणे आपकों सन्नस्तं सन्नस्तं कहते हैं, यज्ञोपवीतको प्रक्षाल करके तीन बार जल पीते हैं, सो मीमांसक दो प्रकारके हैं. एक याज्ञिकादि हैं, ते पूर्व मीमांसक हैं, दूसरे उत्तर मीमांसावादी हैं, कुर्मके वर्जक यजनादिक पद कर्मके करणहार, ब्रह्मसूत्रके धारक, गृहस्थाश्रममें स्थित, शूद्रका अन्नादिक वर्जते हैं, तिनकेजी दो जेद हैं, एक जट्ट, दूसरे प्रज्ञाकर, उसमें जट्ट ठे प्रमाण मानते हैं, अरु प्रज्ञाकर पांच प्रमाण मानते हैं, अरु जो उत्तरमीमांसक है, सो वैदांतिक है, ब्रह्माछैतही मानते हैं, “सर्वमेवेदं ब्रह्मेति जायते” तिस पर प्रमाण देते हैं, कि एकही आत्मा सर्व शरीरोमें उपलब्ध होता है ॥ श्लोक ॥ एकएव हि जूतात्मा, जूते जूते व्यवस्थितः ॥ एकधा बहुधा चैव, दृश्यते जलचंद्रवत् ॥ १ ॥ इतिवचनात् ॥ “पुरुष एवेदं सर्वं यज्ज्ञतं यच्च ज्ञाव्यमिति वचनात्” ॥ आत्माहीमें लय होना मुक्ति मानते हैं, और कोइ मुक्ति नहीं मानते, सो मीमांसक छिजही जगवत् जिनका नाम है, सो चार प्रकारके हैं, १ कुटीचर, २ बहूदक, ३ हंस, ४ परमहंस. तिनमेंसुं १ त्रिदंडी, सशिखा, ब्रह्मसूत्री, गृहत्यागी, यजमान, परिग्रही, एकवार पुत्रके घरमें जोजन करता हैं, कुटीमें बसता है, तिनको कुटीचर कहते हैं. २ तुल्य वेप, पूर्वोक्त विप्रके घरमें नीरस जिज्ञाजो जी, विष्णुजाप पर नदीके तीरमें रहता है, तिसको बहूदक कहते हैं, ३ ब्रह्मसूत्र शिखा करके रहित, कपाय बस्त्र, दंडधारी, ग्राममें एक रात्रि अरु नगरमें तीन रात्रि रहता है, धूम रहित जब अग्नि हो जावे, तब ब्राह्मणके घरमें जोजन करता है, अरु तप करके शोपित शरीर, देशोमें फिरता रहता है, तिसको हंस कहते हैं, हंसकुंही जब ज्ञान हो जाता है, तब चारों वणोंके घरमें जोजन कर लेता है, अपनी इच्छामें दंड रखता है, ईशानदिशाके सन्मुख जाता है, जे कर शक्ति दीन हो जावे, तब अनशन ग्रहण करता है, ४ वेदांतिकध्यायी तिसको परमहंस कहते हैं, इन चारोंमेंसुं परःपरोऽधिक यह चारोंह. केवल ब्रह्माछैतवाद साधनेमें व्यस्तनी हैं, इत्यादिक इस मतका स्वरूप हैं.

अथ पूर्वमीमांसा वादीयोंका मत विशेष करके लिखते हैं. जैमिनी मत वाले कहते हैं, कि सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतराग, नृश्यादिकका कर्त्ता, इन

पूर्वोक्त विशेषणों करी संयुक्त कोइजी देव नहीं है, जिस देवका वचन प्रामाणिक होवे, प्रथम तो देवही वक्ता कोइ नहीं, जिसका कहा हुआ वचन प्रमाण होवे, अनुमानं पुरुष सर्वज्ञ नहीं, मनुष्य होनेसे, रथ्या पुरुषवत्.

पूर्वपक्षः—किंकर हो कर जिसकी अक्षुर, सुर, सेवा करते हैं, ओ तीन लोकके ऐश्वर्यके सूचक, उन्न चामरादि जिसकी विभूति है, सो सर्वज्ञ विना क्यों कर हो सकती है ?

उत्तरपक्षः—यह विभूति तो इंद्रजालीयाजी बना सका है, क्योंकि इस घातका साक्षी जैनमतका समंतजज्ञ आचार्यजी है॥श्लोक॥देवागमनजोयान, चामरादिविभूतयः॥ मायाविष्वपि दृश्यंते हातस्त्वमसि नो महान् ॥१॥

पूर्वपक्षः—जैसे अनादि सुवर्णका मल, द्वार मृत्युटपाकादिकोंकी क्रिया विशेषसें शोध्यमान सुवर्णकों सर्वथा निर्मलता हो जाती है, ऐसे आत्माजी निरंतर ज्ञानादिकोंके अज्ञाससें निर्मल होनेसें सर्वज्ञ पणेका संभव क्यों कर न होवे ? किंतु होही जावेगा.

उत्तरपक्षः—यह कहनांजी तुमारा ठीक नहीं है, क्योंकि अज्ञास कर नेसेंजी शुद्धिकी तारतम्यताही होती है, परंतु परम प्रकर्ष अवस्था नहीं होती है, क्योंकि जो पुरुष चलनेका अज्ञास करे, एतावता कूदनेका, ठांका मारनेका, ठाल मारनेका अज्ञास करेगा, वो दश हाथ कूद जावेगा, बीस हाथ कूद जावेगा, परंतु शत योजन कूदनेका अज्ञास कदापि न होवेगा, सर्व लोककूं कूदके जानेका अज्ञास कदापि न होवेगा, ऐसे आत्माजी अज्ञास द्वारा सर्वज्ञ नहीं हो सकती है.

पूर्वपक्षः—मनुष्यों सर्वज्ञता मत होवो, परंतु ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरादिकोंको तो सर्वज्ञता होवे, क्योंकि तिनको तो जगत् ईश्वर मानता है, इस बातको कुमारिलजी कहता है. अथापि दिव्य देह होनेसें ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, इनको सर्वज्ञता होवे, मनुष्यों सर्वज्ञता क्यों कर होवे ?

उत्तरपक्षः—जो राग द्वेषमें मग्न हैं, ओ निग्रह अनुग्रहमें अस्त है, काम सेवनमें तत्पर है, ऐसे लक्षण वाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, क्यों कर सर्वज्ञ हो सके हैं ? क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाणजी सर्वज्ञका साधक नहीं है, कारणके इंद्रियों वर्तमान वस्तुहीको ग्रहण करती हैं. अरु अनुमानसेंजी सर्वज्ञ सिद्ध नहीं होता है, क्योंकि अनुमान प्रत्यक्ष पूर्व

कही प्रवृत्त हो सका है. अरु आगमजी सर्वज्ञको सिद्धि करणेवाला कोइ नहीं. क्योंकि आगम सर्व विवादान्पद हैं. उपमानजी नहीं. क्योंकि दूसरा सर्वज्ञ कोइ होवे. तब उपमान बने. नैसेही अर्थापत्तिसंज्ञी सर्वज्ञ सिद्ध नहीं होता है. क्योंकि अन्यथा अनुपपद्यमान ऐसा कोइ पदार्थ नहीं है. जिसके होनेसे सर्वज्ञ सिद्ध होवे. जब जावग्राहक पांच प्रमाणों से सिद्ध न हुआ. तब सर्वज्ञ अज्ञाव प्रमाणका विषय हुआ. यह अनुमानजी सर्वज्ञकी नास्ति सिद्धकर्ता प्रयोग नहीं है. सर्वज्ञ प्रत्यक्षादि गोचरके अतिक्रान्त होनेसे शशशृंगवत् जब कोइ सर्वज्ञ देव नहीं. अरु उस सर्वज्ञ देवका कया हुआ कोइ शान्न नहीं. तब अतीन्द्रिय अर्थका ज्ञान कैसे होवे? ऐसी मनमें आशंका करके जैमिनी कहता है कि “तस्मात्” तिस कारणसे. “अतीन्द्रिय” इंद्रियोंकी विषय रहित जो आत्मा, धर्माधर्म, काल, स्वर्ग, नरक, परमाणु प्रमुख जो पदार्थ है, तिनका साक्षात् करत खामखकवत् देखने वाला कोइ नहीं. इस हेतुसे नित्य जो वेद वाक्य हैं, तिन्हेंहीते यथार्थ तत्त्वका निश्चय होता है. क्योंकि वेद जो हैं, सो अपौरुषेय हैं, एतावता किसीकेजी रचे दूये नहीं. अनादि नित्य हैं, तिन वेद वचनोसेही अतीन्द्रिय पदार्थोंका ज्ञान होता है. परंतु किसी सर्वज्ञके कहे दूये आगमसे नहीं होता है. क्योंकि सर्वज्ञ कोइजी न हुआ है, न वर्तमान है. न आगे कोइ होवेगा ॥ यथाहुस्ते ॥ अतीन्द्रियाणामर्थानां, साक्षाद्ग्राह्या न विद्यते ॥ वचनेनहि नित्येन, यः पश्यति स पश्यति ॥ १ ॥

प्रश्न:—अपौरुषेय वेदांतका अर्थ कैसे जाना जाये ?

उत्तर:—अव्यवच्छिन्न जो हमारी परंपरा तिससे जाना जाता है, इसी वास्ते सर्वज्ञादिकोंके अज्ञाव होनेसे प्रथम वेदोंहीका पाठ प्रयत्नसे करना चाहिये. वेद चार हैं. १ ऋग् २ यजुष, ३ साम, ४ आथर्व. इन चारोंका पाठ करके तिसके पीछे धर्मकी जिज्ञासा करनी चाहिये. धर्म जो है, सो अतीन्द्रिय है. अरु जो धर्म है, सो कैसा है? अरु किस प्रमाणसे हम जानेंगे? ऐसी जो जाननेकी इच्छा है, तिसका नाम जिज्ञासा है. सो करणी कैसी है? वो जिज्ञासा धर्मसाधनी (धर्मसाधनेका) उपाय है. तब तिस नोदनाके निमित्त दोह, एक जनक, दूसरा ग्राहक, इहां ग्राहक निमित्त जाननां. इसहीका विशेष स्वरूप कहते हैं.

प्रेरीयें श्रेय साधक इत्यादिकों विषे जीवोंको, इस करके सो नोदना वेदवचनकी करी दृष्ट प्रेरणा है ॥ इत्यर्थः ॥ धर्मजो है, सो नोदना करके जानीयें है. इस वास्ते नोदना लक्षणधर्म है, धर्मको अतीन्द्रिय होने करके नोदनाहीसे जानीयें है, और किसी प्रत्यक्षादिक प्रमाणोंसे नहीं जाना जाना है, क्योंकि प्रत्यक्षादिक विद्यमानके उपलब्धक है, अरु धर्म जो है, सो कर्तव्यतारूप है, अरु कर्तव्य जो है, सो त्रिकाल स्वभाव वाली है, तिस कर्तव्यताका ज्ञान नोदनाही उत्पन्न कर सकी है, यह मीमांसकोंका अन्वयुपगम है.

अथ नोदनाका व्याख्यान करिये हैं. अग्निहोत्र, सर्व जीवोंकी अहिंसा दानादिक क्रिया, इनोके करने वास्ते जो प्रवर्तक प्रेरक वेदोंके वचन हैं, सोउ नोदना है, जैसे “अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामः” ऐसा जो प्रवर्तक वेदवचन है, सो नोदना जाननी. “यथा ॥ न हिंस्यात् सर्वभूतानि, तथा न वे हिंसा नयेत्” इन वचनोंकरके प्रेत्याहृत्या इव्य, गुण कर्मोंकर के जो हवनादिक विषे प्रवर्त होता है, सो धर्म है, अरु इन वेद वचनों करके प्रेत्याहृत्याती जो न प्रवर्तें, या विपरीत प्रवर्तें, तिसकों नरकादि अनिष्ट फल होता है. शायर ज्ञाप्यमेंती ऐसेही कहता है.

यह जैननी यह प्रमाण मानना है. १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ शब्द, ४ उपमान, ५ अर्थापत्ति, ६ अन्वय, इनका विस्तार पट्टदर्शन समुच्चय की टीकासे जानना ॥ इति मन्त्रेपतो मीमांसमतं ॥ ५ ॥

यह पांच दर्शन आम्निक कहे जाते हैं, अरु उठा जैन दर्शन है, तिसका स्वरूप अग्रे परिच्छेदमें लिखा जायगा, तथा नास्निक जो है, सो दर्शनमें नहीं. “नाम्निकं तु न दर्शनमिति राजशेखर मूर्खान् पट्टदर्शनं समुच्चयवचनात्” तोनी नव्य जीवोंके जानने वाम्ने कनुक स्वरूप लिखते हैं.

कपासी, जम्म खगाने बाखे, योगी, आध्यात्मादि, अन्त्य जातिके लोक जिनको लोक वाममार्गी कहते हैं, नया कौशिक, इत्यादिक नाम्निक हैं, तिनके मतका नाम नाम्निक चार्वाक कहते हैं, वो जीव पुण्य पापादिक कृत नहीं मानते हैं, चार जैनिक देह मानते हैं, नया गय जगन्ही चार जैनिक मानते हैं.

अरु कोइ चार्वाकिकदेशीया आकाशकों पांचमा नून मानते हैं, पांच

ज्ञातात्मक जगत् है, ऐसे कहते हैं, तिनोके मतमें जूतोंसेंतीही मद्यशक्ति बत् चेतन्य उत्पन्न होता है, पाणीके बुलबुलेंकी तरें जो शरीर है सोही जीव है. इस मत वाले मद्य मांस खाते हैं, माता, बहिन, बेटी, आदिक जो अगम्य है. तिनकोंजी गमन कर लेते हैं, तेनास्तिक वामी, वर्ष वर्षे विषे एक दिनमें सर्व एक जगा एकठे होते हैं, स्त्रीकों नंगी करके उस की योनिकी पूजा करते हैं, अरु विषय सेवनजी करते हैं, इत्यादि ऐसा बुरा काम करते हैं, जो इस पुस्तकमें लिखते मुझकों लज्जा आती है, इस वास्ते नहीं लिखा है, सो नास्तिक, कामसें अपर (दूसरा) कोइ धर्म नहीं मानते हैं, किंतु कामहीकूं धर्म मानते हैं.

इस मतकी उत्पत्ति जैनमतके शीलतरंगिणी नामक शास्त्रमें ऐसे लिखी है, सो कहते हैं. एक बृहस्पतिनामा ब्राह्मण था, दूसरा उत्तका नाम दे वव्यासजी था, उत्तकी एक बहिन थी, वो उत्तकी बहिन वाल विधवा हो गई थी, उसके सासरोमें ऐसा कोइ न था, जिनके आश्रयसें वो अपना जीवितव्य संपूर्ण करती, ताते निराधार हो कर, अपने जाइके घर में आ रही, वो अत्यंतरूप अरु यौवनवंत थी, अरु जो उत्तका जाइ था तिसकी चार्या मृत्युकों प्राप्त हो गई थी, तब तो बृहस्पतिकों कामनें अत्यंत पीना दीनी, तब उनकूं आपनी बहिनके साथ विषय सेवनकी इछा जइ, अपनी बहिनसें प्रार्थना करी कि हे जगिनी! मेरे साथ तुं संजोग कर, तब तिसकी बहिनने कहा कि हे जाई! यह बात उजय लोक विरुद्ध है, सो में क्योंकर करूं? क्यों कि प्रथम तो में तेरी बहिन हूं, जे कर जाइके साथ विषय जोग करूं तो अवश्यमेव नरकमें जाऊंगी, अरु यह बात जो जगत्में प्रसिद्ध हो जावेगी, तब तो लोक मुझकों धिक्कार देंगे. ऐसी बात सुन कर बृहस्पतिने अपने मनमें शोचा कि जब तक इसके मनसें पाप अरु नरकादिकोंका जय दूर न होवेगा, तब तक यह मेरे साथ कजी संजोग न करेगी? ऐसा विचार करके, बृहस्पति सूत्र रचे, तिन सूत्रोंसें पुण्य, पाप, स्वर्ग, नरकका अज्ञाव, सिद्ध करके अपनी बहिनकों शास्त्र सुना करके प्रतिबोध करा. तब तो तिसकी बहिनने अपने मनमें विचार करा कि यह जो शरीर है, सातो पांच जौतिक है, अरु इस शरीरसें अतिरिक्त आत्मा नामक कोइ पदार्थ नहीं है, तब तो पुण्य, पाप, नरक, स्वर्ग, कु

ठजी सिद्ध नहीं होता है, तो फेर में इन मूर्ख लोकोंकी लज्जा करके अपना यौवन वृथा काहेको खोजें? ऐसे विचार करके अपने जाइके साथ विषयजोग करनेमें लुब्ध हो गई, जब लोकोंको यह बात जान पड़ी, तब लोक निंदा करने लगे, तब तो बृहस्पति निर्लज्ज हो कर लोकोंको नास्तिक मतका उपदेश करने लगा, तब तो जो अत्यंत विषयी श्रु श्रद्धा नी जन थे, वे उसके शिष्य होते जये, कितनेक काल पीछे उनके शिष्योंने अपने मतको ब्रह्मा करनेके वास्ते कहते जये कि यह जो हमारा मत है, सो देवताओंका गुरु जो बृहस्पति नामक आकाशमें ग्रह है, तिसने प्रवृत्त करा है, श्रु बृहस्पतिसंति अन्य कोई दूसरा बुद्धिमान् नहीं है, इस वास्ते हमारा मत सच्चा है, इस बृहस्पतिका होना हमारे चोबीशमे तीर्थंकर श्रीमहावीरसें पहिले सिद्ध है, क्योंकि श्रीमहावीरके कथन करे हुये शास्त्रोंमें चार्वाकमतका निरूपण है. ऐसे चार्वाक मतकी उत्पत्ति है, इस मतका नाम चार्वाक, लोकायितादि है, “चर्व अदने चर्वति जहयंति तत्त्वतो न मन्यंते पुण्यपापादिकं परोक्षवस्तुजातमिति चार्वाकाः ॥ मयाक श्यामाकेत्यादि सिद्ध है, मोणादि दंरुकेनशब्दनिपातनं. लोका निर्विचाराः सामान्या लोकास्त छदाचरंति म्मेति लोकायिताः लोकायितकाइत्यपि ॥ बृहस्पतिप्रणीतमतत्वेन बार्हस्पत्याश्चेति” चर्व जो धातु है. सो जहण अर्थ में है, चर्वण (जहण) जो करे, तात्पर्यार्थसें जो पुण्य पापादिक परोक्ष वस्तु समूहको न माने, सो चार्वाक, मयाक श्यामाक इत्यादि सिद्ध है, हेमव्याकारणके ऊणादिदंरुक करके निपातसें सिद्ध है, तथा लोक निर्विचार है, सामान्य लोकोंकी तरें जो आचरण करते जये हैं, तें लोकायिता लोकायितका ऐसेंजी है. तथा बृहस्पतिके प्ररूपणसें इस मतका नाम बार्हस्पत्यजी कहते हैं.

अथ चार्वाकका मन लिखते है. नास्तिक ऐसें कहते है कि, जीव के तना सक्षण परलोकमें जानेवासा नहीं, पांच महाभूतसें जो चेतन उत्पन्न होता है, सोजी इहांही भूतोंके नाश होनेसें नाश हो जाता है, जे कर जीव परलोकसें आया होवे, तब परलोकका स्मरण होना चाहिये, परंतु सो तो होता नहीं, इस वास्ते जीव न परलोकसें आया है, श्रु न पर लोकमें जाने वासा है. तथा जीव स्यानमें जो देव ऐसेा पाठ मानीयें, त

॥ सर्वज्ञादि विशेषण विशिष्ट कोइ देव नहीं, तथा मोक्षजी नहीं, धर्माधर्म नहीं, पुण्य पाप नहीं, पुण्यपापका जो फल नरक, स्वर्ग, सोजी नहीं, "तथाच तन्मतं ॥ श्लोक ॥ एतावानेव लोकोयं, यावर्निद्रियगोचरः ॥ जडे वृक्षपदं पदय, यच्छब्दत्वबहुश्रुताः ॥१॥ अस्यार्थः—इतनाही मनुष्य लोक है, जितना प्रत्यक्ष देखनेमें आता है, क्योंकि जो पदार्थ इंद्रियोंमें ग्रहण जाता है सोइ पदार्थ है और दूसरा कोइजी पदार्थ नहीं है, यदा लोक शब्द की जगें लोकमें जो रहे हूयें पदार्थ हैं, तो ग्रहण करणें, अरु तो इत लोकमें परे हैं, जीव, पुण्य, पाप, अरु तिनका फल जो स्वर्ग नरकादिक सो अप्रत्यक्ष होनेसें नहीं है, जे कर अप्रत्यक्षजी माने जावे तब तो शशमृग बंध्यापुत्रादिजी होने चाहियें, पंचविध प्रत्यक्ष करके यथाक्रम १ मृदु कवोरादि वस्तु २ तिक्त, कटु, कपायादि अन्न, ३ सुरजि दुरजिरूप गंध, ४ मू, मूथर, मूवन, मूरुह, स्तंज, कुंज, अंजोरुहादि, नर, पशु, श्वा पदादि, न्यावर, जंगम प्रमुख पदार्थोंका समूह, ५ विविध, वेणु वीणादि ककी ध्वनि, इन पांचोंके बिना और कुछजी नहीं प्रतीत होता है, पांच जूतोंसें व्यतिरिक्त नरक स्वर्गके जाने वाला जीव जब प्रत्यक्ष प्रमाणसें नसिख जया, तब तो जीवोंके सुखदुःखोंका कारण धर्माधर्म है, अरु तिन धर्मधर्मके उत्कृष्ट फल जोगनेकी जूनि स्वर्ग नरक है, अरु सर्वथा पुण्य पापके फल होनेसें मोक्ष सुख जो वर्णन करते हैं, यह सर्व पूर्वोक्त वर्णन ऐसा है, कि जैसा आकाशमें चित्राम करणं है, क्योंकि जीव नतो किसी ने स्पर्श है, न किसीने स्पर्श कर स्वाद चक्का है, न किसीने सूंघा है, न किसीने देखा है, न किसीने शब्दवत् सुना है, फेर मूढमति किसतरें जीव को मान करके स्वर्गादि सुखोंकी इठा करके शिर, दाढी, मांठ मुंनवा करके नाना प्रकारका दुःख करके शीत, आतप सह करके बुधाही इत शरीरकी विनवना करके इत मनुष्य जन्मको खराब कर रहे हैं? यह उनकी समझकी बिडबना है ॥ तदुक्तं ॥ श्लोक ॥ तपांसि यातनाश्चित्राः संयमो जोग वंचना ॥ अग्निहोत्रादिकं कर्म, वासक्रीडेव व्ययते ॥१॥ यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्, तावच्छेषयिकं सुखं ॥ जल्लीझूतस्य देहस्य, पुनरागमनं कुतः ॥२॥ इत्यादि, तिस वास्ते यह सिख हूआकि जो इंद्रियगोचर है, सोइ तात्त्विक है, अथ जो परोक्ष प्रमाण, अनुमानागमादिकों करके जीव, अरु पुण्य

पापादिकोंकें व्यवस्थापन करते हैं, अरु कदाचित् स्थापन करनेसें हटते नहीं हैं, तिनकें प्रतिबोधने वास्ते दृष्टांत कहते हैं “जडे वृक्षपदं पश्येत्यत्रायं संप्रदायः” कोइक पुरुष नास्तिक मन करकें वा सत्प्रांतःकरण अपणी जार्याकों आस्तिक मत विषे दृढ प्रतिज्ञा वाली जान करकें अपणे शास्त्रोक्त युक्तियों करकें “प्रत्यहं” प्रतिबोध करता है, जब वो प्रतिबोध नहीं होती, तब उसने विचारा जो यह इस उपाय करकें प्रतिबोध होवेगी, ऐसैं स्वचित्तमें चिंतन करकें रात्रिके पीठसे प्रहरमें तिस स्त्रीके साथ नगरसें निकल करकें तिस आपणी जार्याकों कहता हुआ, हे बल्लभे ! यह जो इस नगरके बसने वाले लोक परोक्ष पदार्थोंकों अनुमानादि प्रमाणों करकें सिद्ध करते हैं, अरु लोकमें बहुत शास्त्रोंके पढ़े हूये कहलाते हैं, अथ तूं तिनको चातुर्य देख, ऐसैं कह कर नगरके दरवाजेसें ले कर चौक तक सूदम धूलीमें अपणे हाथों करकें जेडीयेंकें पंजोंका आकार कर दीया, तस पीठें प्रातःकालमें ते जेडीयेंके पंजे देख कर बहुत लोक राज मार्गमें मिलाते जये, तब तो बहुश्रुतजी तहां आ गये, सो बहुश्रुत लोकों कहने लगे कि जो लोको ! जेडीयेंके पंजोंकी अन्यथा अनुपपत्ति करकें निश्चयही कोइक जेडीया रात्रिमें बनसेंती इहां आया था, तब तो वो नास्तिक मती तिनकों तैसें कहते हूयाकों देख करकें निज जार्याकों कह ता हुआ कि हे जडे ? “वृक्षपदं” (जेडीयेंका पंजा) तूं देख, जिस पंजेकूं जेडीयेंका पंजा अथबहुश्रुत कहते हैं, लोक रुढीमें यह बहुश्रुत कहलाते हैं, परंतु परमार्थमें महा गेठ हैं, क्योंकि ये परमार्थ तो कुठ जानते नहीं हैं, केवल देखा देखी रोजा करने लग रहे हैं, परमार्थमें इनका बचन मानने योग्य नहीं है, ऐसैंही बहुत मनांवाले धार्मिक, उग्र (धूर्त) इस्रोंके उगनेमें तरार सो कनुक अनुमान आगमादि करकें दृढपणेसें जीवादिकी अग्नि सिद्ध करकें ब्याही नोले लोकोंकों मर्गादि मुल्लोंका खोज दिव्या कर नहानक, गम्यागम्य, हेयोपादेयादि, संकटोंमें गेरते हैं, बहुत मूर्खोंकों धार्मिक पणेंका व्यामोह उत्पन्न करते हैं, इस वास्ते बुद्धि मानोंकों उनका बचन मानना न चाहिये. तब तो तिसकी जार्या अपने पतिके सवे बचन मानती जई, तिसके पीठें तिसका पति जो अपनी जार्याकूं उपदेश देता जया सो इहां मिलाते हैं.

॥ श्लोक ॥ पिव खाद च चारुलोचने, यदतीतं वरगात्रि तन्न ते ॥ नहि
जीरु गतं निवर्त्तते, समुदायमात्र मिदं कलेवरं ॥ १ ॥ व्याख्या:—हे चारुलो
चने ! शोजन (सुंदर) आंखवाली “ पीव ” पी, तू पेयापेयकी वयवस्था
ठोड कर मदिरापान कर. न केवल मदिराही पी, “खाद च” जज्ञाजज्ञकी
निरपेक्षा करके मांसादिक खा, तथा गम्यागम्यका विज्ञाग त्याग कर जोगों
को जोग कर अपना यौवन सफल कर, जो कुछ यौवनादि अतिक्रान्त, (व्य
तीत) हो गया है ! हे वरगात्रि ! हे प्रधानांगि ! फेर वो तुझको न मिलेगा,
अति काम राग जनावनेके वास्ते बहुत संबोधन पद कहे हैं, इस वास्ते
पुनरुक्ति दोष नहीं है. किसीकी आशंका मनमें ला कर बृहस्पति मत वा
ला कहता हैं, कि अपनी इष्टा करके जो खान, पान, जोग, विलास
करेगा, उसकूं परलोकमें कष्ट परंपरा पावणी बहुत सुलज है, औ जो
सुकृत करेंगे, उनको जवांतरमें सुख यौवनादिक पावनां सुलज है, ऐसी
परकी आशंका दूर करने वास्ते बृहस्पति कहता है. नहीं हे जीरु ! प
रके कहने मात्र करके नरकादि दुःखोंकी प्राप्ति, इस लोकके यौवनादिकों
सें निवर्त्त होनां, एतावता इस लोकमें विषयजोग करके यौवनका सुख
तो नहीं लेना, अरु परलोकमें हमको यौवनादिक फेर मिलेगा, ऐसे पर
लोकके सुखोंकी इष्टा करके तपश्चरणादि कष्ट क्रिया करके जो इस लोक
के सुखोंकी उपेक्षा करनी है. सो महा मूढताका चिन्ह है.

अथ शुजाशुज कर्मके वश करके इस जीवने अवश्य परलोकमें जी स्व
कर्म हेतुक सुख दुःखादि वेदनाहोवेगी, ऐसी आशंका मनमें ला करके बृह
स्पति कहता है कि “समुदायमात्रं” समुदायभूत चारोंका संयोग मात्रही
यह “कलेवरं” (शरीर है.) परंतु चारों भूतोंके संयोग मात्रसें अपर दूसरा
जवांतरमें जानेवाला, शुजाशुज कर्मविपाकका जोगने वाला, ऐसा जीव ना
मक कोइजी पदार्थ नहीं. अरु चारों भूतका जो संयोग है. सो विजलीके
उद्योतकी तरें क्षणमात्रमें नष्ट हो जाता है, इस वास्ते परलोकका जय
मत कर. हे हरिणाक्षि ! जैसे मन माने, ऐसा खा, पी, जोग विलास कर.

अथ प्रमेय प्रमाण दोनो कहता है ॥ श्लोक ॥ पृथ्वी जलं तथा ते
जो. वायुर्भूतचतुष्टयं ॥ आधारा भूमिरैतेषां. नानं त्वद्भजमेव हि ॥ १ ॥
अर्थ:—१ पृथिवी, २ जल, ३ अग्नि, ४ वायु. यह चारभूत हैं, अरु इन

चारोंकी आधार पृथ्वी है, अरु किसी जगें ऐसा पाठ है कि “चैतन्यञ्च मिरेतेपां” इन चारोंको चैतन्यञ्चूमि कहते हैं, यह चारों एकठे हो कर सैं चैतन्य उत्पन्न करते हैं. तथा इन चारोंकोके मतमें यह चारों जूत प्रमाणकी जूमिका प्रमाणका विषय तात्त्विक है, अरु इन चारोंकोके मतमें, प्रमाण तो एक प्रत्यक्षही है.

अथ जूतचतुष्टयसैं देहकों चेतनता क्यों कर हो जाती है? ऐसी आशंका करकें कहता है ॥ श्लोक ॥ पृथ्व्यादिजुतसंहत्या, तथा देह परीणते: ॥ मदशक्तिः सुरांगेज्यो, यद्वत्तद्वच्चिदात्मनि ॥ ३ ॥ अर्थ:—“पृथिव्यादीनि” पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, तिनकी जो “संहतिः” संयोग तिस करकें जो देहकी परिणाम, तिसतैं जैसैं मदिराके अंगोंसैं (गुरु धातकी आदिकोंसैं) उन्माद शक्ति उत्पन्न होती है, ऐसैंही इस देहमें चैतन्य शक्ति उत्पन्न होती है, परंतु देहसैं अन्यजीव पदार्थ नहीं होते, और आदि शब्दसैं पर्वतादि सर्व पदार्थ चार जूतोंसैंही उत्पन्न हैं, इस वास्ते दृष्ट सुखोंका त्याग करना. अरु अदृष्ट सुखोंमें प्रवृत्त होना, यह तो लोकोंकी घनी मूर्खता है, अरु जो शांतिरसमें मग्न हो कर मोक्ष सुखका वर्णन करते हैं, वेनी महा मूढ़ हैं. क्योंकि काम (मैथुन) सेव नसैं अधिक न कोइ धर्म है, अरु न कोइ मोक्ष है, न कोइ सुख है ॥ इति चार्वाकमतं संक्षेपतः संपूर्ण ॥

यह जो उपर मत लिखे हैं, इनके जो उपदेशक हैं, वे सर्व कुगुरु हैं, क्योंकि जो इनोंके मत हैं, वे युक्तिप्रमाणसैं खंडित हो जाते हैं, अरु पूर्वापर व्याहत है, पूर्वापर विरोधी है.

पूर्वपक्षः—अहो जैन ! अरिहंतके कहे दूये तत्त्वका तुजकों घना राग है, इस करकें तुम अपने मतको तो निर्दोष उहराते हो, अरु हमारे मतोंको पूर्वापर विरोधी कहते हो, परंतु हमारे मतोंमें कुठनी पूर्वापर व्याहतपणा नहीं है, क्योंकि हमारे जो मत हैं, सो निर्दोष हैं उनको जो पूर्वापर व्याहत (कलंक) देना है, सो ऐसा है कि जैसा अमृतके पुंजमें मक्कीका बिंडु गेर देना.

उत्तरपक्षः—हे वादीयो ! तुम अपने अपने मतका पक्षपात ठोड कर मध्यस्थपणेको अवलंबन करकें अरु निरजिमान हो करकें सुंदर बुद्धिकों

धार करके सुनो. मैं नुमारे मतमें पूर्वापर व्यावृत्त पणा दिखलाता हूं. प्रथम बौद्धमें पूर्वापर विरोध उद्भावन करते हैं.

प्रथम तो बौद्ध मतमें सर्व पदार्थ क्षणजंगुर कह करके पीठेंसे ऐसे कहा है. "नाननुकृतान्वयव्यतिरेकं कारणं नाकारणं विषय इति" अस्याय मयः—ज्ञान अर्थके होते दृयांही उत्पन्न होता है, परंतु अर्थके विनानहि होता है. ऐसे अनुकृत अन्वयव्यतिरेक अर्थज्ञानका है अरु कारण जिस थकी अर्थज्ञान उत्पन्न होता है, तिस कारणहीकों विषय करता है. इस कहनेसे अर्थकों दो क्षण स्थिति वाला कहा ॥ तद्यथा ॥ अर्थरूप कारणसे ज्ञान कार्य उत्पन्न होता है. अरु एकही समयमें कारण, कार्य, उपन्न नहीं होते हैं. तब तो ज्ञान अपने जनक अर्थहीकों ग्रहण करता है. "नापरं नाकारणं विषय इति वचनात्" ॥ जब ऐसे हुआ तब तो अर्थकों दो समयकी स्थिति जोरा जोरी हो गई. अरु बौद्ध मतमें द्वय समय स्थिति वाला कोई पदार्थ नहीं. एक तो यह पूर्वापर विरोध है.

तथा "नाकारणं विषय इत्युक्तं" जो पदार्थ ज्ञानकी उत्पत्तिमें कारण नहीं है, उस पदार्थकों ज्ञान विषयजी नहीं करता है, ऐसे कह कर फेर योगी प्रत्यक्ष ज्ञानकों अतीत अनागत पदार्थोंका जानने वाला कहा है, अरु अतीत पदार्थ तो नष्ट हो गये हैं, तथा अनागत पदार्थ उत्पन्न नहीं हुये हैं, इस वास्ते अतीत अनागत पदार्थ ज्ञानके कारण नहीं हो सके हैं, तब अकारणकों योगी प्रत्यक्षका विषय कहना, यह दूसरा पूर्वापर विरोध है.

ऐसेही साध्य साधनोंकी व्याप्ति और ग्राहक व्याप्ति ग्रहण कराने वालेहुं कारण पणके अज्ञावसे त्रिकालगत अर्थकों विषय कहने वालेकों क्यों नहीं पूर्वापर व्याघात होवेगा? क्योंकि कारणहीकों प्रमाणका विषय मान्या है. इस वास्ते तीसरा पूर्वापर विरोध है.

तथा क्षण क्षय अंगीकार करणमें जिनका काल जिन्न जिन्न है, ऐसे जो अन्वयव्यतिरेक तिनकी प्रतिपत्ति नहीं संभव होती है, तब तो साध्य साधनोंके त्रिकाल विषय व्याप्ति ग्रहण मानने वालेकों पूर्वापर व्यावृत्ति क्यों नहीं? यह चौथा पूर्वापर विरोध है.

तथा सर्व पदार्थोंको क्षणक्षयी मान करके पीठेंसे बुद्धने ऐसे कहा

हे ॥ श्लोक ॥ इतएकन्वते कल्पे, शक्त्या मे पुरुषोदृतः ॥ तेन कर्मविपा
केन, पादे विस्तोमि निद्वयः ॥ १ ॥ इस श्लोकमें जन्मांतरविषेमें शब्द
का प्रयोग दण दाय विरुद्ध बोधता दूआ बुद्ध क्यों कर पूर्वापर विरोध
न कहना चाहिये ? यह पांचमा पूर्वापर विरोध है.

तथा "निरंश सर्व वस्तु है" ऐसे प्रथम कह कर फेर "हिंसा विरति
दान चित्तसंवेदनं अरु स्वगतं सद्रव्यचेतनस्य स्वर्गप्रापण शक्त्यादिकं
एतदपि स्वर्गप्रापण शक्त्यादेरंशस्येति सांशतां पश्चाच्छ्रुतः सौगतस्य कथं
पूर्वापरविरुद्धं वचो न स्यात् ॥ " यह ठछा विरोध है.

ऐसेही निर्विकल्पक प्रत्यक्ष प्रमाण नीलादिक वस्तुओंको सर्व प्रकार
परकें ग्रहण करता दूआनी नीलादिक अंश विषे निर्णय उत्पन्न करता
है, परंतु नीलादि अर्थगत दणदाय अंशविषय निर्णय नहीं उत्पन्न कर
ता है, ऐसे सांशताको कहता दूआ सौगतको पूर्वापर वचन विरोध
सुयोधही है. यह सातमा विरोध है.

तथा हेतुको तीन रूप वाला मानता हैं, अरुसंशयको दो उल्लेख वाला
मानता है, अरु कहता है फेर सांश वस्तुको नहीं मानता है, यहजी
आठमा पूर्वापर विरोध है.

तथा परस्पर अन्तर्निष्ठे दुये परमाणु निकटता संबंध बाधे एकठे हो
कर घटादि रूपपणे प्रतिगाम होते हैं, परंतु आपसमें अंगांगीजाय रूप
परकें कोझनी कार्य नहीं आरंभ करते, यह बाँझोंका मत है, तिसमें यह
हृषण है कि आपसमें परमाणुओंके अन्तर्निष्ठनेसे घटका एक देश जय
हम हाथमें पकड़ेंगे तब संपूर्ण घटको नहीं रहना चाहिये, तथा घटके
उठानेमेंनी एक देशही घटका उठना चाहिये, परंतु संपूर्ण घट नहीं
उठना चाहिये, तथा जय घटको कांठा पकड़के हम खेंचेंगे तबनी घटका
एक देशही हमारे पास थाना चाहिये, परंतु संपूर्ण घट नहीं, अरु
जवादि धारण रूप घटका अर्थ क्रियाग्रहण सत्य अंगीकार करण करके
सौगंतोने परमाणुओंका मिश्रना मान्या है, अरु तिनके मतमें परमाणु
ओंका मिश्रना है नहीं, तिस वास्ते यह नवमा पूर्वापर विरोध है.
इत्यादि बाँझ मतमें अनेक पूर्वापर विरोध है.

अथ बाँझमतका खंडननी योगासा सिध्यते हैं. इन बाँझोंका यह

मत है कि सर्व पदार्थ नैरात्म्य है, एतावता आत्मस्वरूप आपणे स्वरूप करके सदा स्थिर रहनेवाले नहीं है, ऐसी जो जावना, तिसका नाम नैरात्म्य जावना है, यह जो नैरात्म्य जावना है, सो रागादि क्लेशोंके नाश करने वाली है, तथाहि जब नैरात्म्य जावना होवेगी, तब आपणे आप विपे तथा पुत्र, जाइ, चार्या, आदिकोंविपेजी आत्मीय अजिनिवेश नहीं होवेगा, एतावता 'यह मेरे हैं' ऐसा मोह न होवेगा, क्योंकि जो आप उपकारी है, सो आत्मीय है, अरु जो आपणा प्रतिघातक है, सो द्वेष है, जब आत्माही नहीं है, किंतु पूर्वापर क्षण दृढे हूयांका अनुसंधान है, पूर्व पूर्व हेतु करके जो प्रतिबद्ध है ज्ञानक्षण, सोइही तैसें तैसें उत्पन्न होते हैं, तब कौन किसीका उपकर्ता अरु उपघातक है? क्योंकि क्षणोंको क्षण मात्र रहने करके परमार्थसे उपकार अनुपकार नहीं कर सकते हैं, इस वास्ते तत्त्ववेदीयोंको अपने पुत्रादिकोंमें आत्मीय अजिनिवेश नहीं है, अरु बेरीयां विपे द्वेष नहीं है, अरु जो लोकोंको अनात्मीय पदार्थोंमें आत्मीय अजिनिवेश है, सो अतत्त्व मूल होनेसे अनादि वासनाके परिपाकने करा है, ऐसे जाननां.

प्रश्न:—यदि परमार्थसे उपकार्युपकारक जाव नहीं, तब तो ऐसे तुम कैसे कहते हो कि जगवान् सुगत, करुणां करके सकल जीवोंके उपकार वास्ते देशना करता हुआ? अरु क्षणिक पणाजी जे कर एकांतही है, तब तो तत्त्ववेदी एक क्षण पीठें नष्ट हो गया, अरु तत्त्ववेदी जानता था जो मैं पीठें नहीं था अरु आगेको मैंने होना नहीं, तो फेर काहे को मोक्ष वास्ते यत्न करे?

उत्तर:—जो तुमने कहा, सो हमारा अजिप्राय न जाननेसें अयुक्त है. जगवान् जो है, सो प्राचीन अवस्था विपे अवस्थित है, अरु सकल जगत्को राग द्वेषादि दुखों करके संकुल जानता था कैसें यह सकल जगत्का दुःख मेरेको दूर करणां योग्य है? ऐसी दया उत्पन्न होनेसें नैरात्म्य क्षणिकत्वादिक जानता हुआजी तीन उपकार्य जीवोंके निःक्लेश क्षण उत्पन्न करनेके वास्ते स्वप्रजा हित राजेकी तरें अपणी संतति बुद्धि विपे सकल जगत् साक्षात् करण समर्थ अपणी संततिगत विशिष्ट क्षणकी उत्पत्तिके वास्ते यत्न आरंभ करता है. क्योंकि सकल जगत् साक्षात्कार

करे विना सर्वकां अक्षय विधान उपकार करणेंकों अशक्य होनेसं तिस वास्ते समुत्पन्न केवल ज्ञान पूर्वस्थापन कृपाके विशेष संस्कार वशतं जग वान् कृतार्थजी है, तोजी देशना देवेमें प्रवृत्त होता है, तब तो देशना न करकें निर्मल बुद्धि नेरात्म्य तत्त्व विचारता हुआ जीवकों जावना प्रकप विशेषसं वैराग्य उत्पन्न होता है, तिससेंती मुक्तिवाज होता है. अरु जो आत्माकों मानता है, तिसकों मुक्तिका संजव नहीं, क्योंकि परमार्थ सें ती आत्माके होते हूयां तिस आत्मामें स्नेह वत्तंगा, तिस स्नेहके वश सें तिस आत्माके सुखी होनेकी तृष्णा वासा होता है, अरु तृष्णाके वशसें सुखोंके साधना विषे प्रवृत्त होता है, जब गुण उत्पन्न हूये. तब गुणोंमें राग करता है, तिस रागसें यावत्काल आत्माजिनिवेश रहेगा, तावत् काल संसार है ॥ आह च ॥ श्लोक ॥ ये पश्यन्त्यात्मानं, तत्रास्याह मिति शाश्वतः स्नेहः ॥ स्नेहात्सुखेषु तृप्यति, तृष्णा दोषास्तिरस्कुरुते ॥ १ ॥ गुणदर्शिपरितृप्यन्, ममेति तत्साधनान्युपादत्ते ॥ तेनात्माजिनिवेशो, या वत्तावत्संसारः ॥ २ ॥ इति बौद्धमत पूर्वपक्षः ॥

अथ जेनमतकी तरफसें उत्तरपक्षः—यह सर्व कहनां तुमारा अंतःकरणमें वास करणेवाले महा मोहका मोटा बिसास है, क्योंकि आत्माके अ जाव हूये बंधमोहादिकोंका एकाधिकरणत्व नहीं होवेगा, सोइ दिखाते हैं. हे बौद्धों! तुम आत्मा नहीं मानते हो, किंतु पूर्वापर क्षण टूटाका अनुसंधान ज्ञान क्षणाहीको मानते हो, जब ऐसे माना, तब अन्यकों बंध हूआ, अरु अन्यकों मुक्ति हुई, ओ कृपा औरकों लगी, अरु तृप्ति औरकों हो गई, तेसेही अनुजवता और हुआ, अरु स्मर्त्ता और हो गया, जुसाव और रने लीया, अरु राजीरोग रहित तो और हो गया, तपः क्लेश तो औरने करे, अरु स्वर्गादिकका फल औरने जोगा, ओ पढनेका अध्ययस और करने लगा, अरु और कोई पढ गया, यह बात अतिप्रसंग होनेसें कोइ युक्तिसंग त नहीं है, जे कर कहोगे कि संतानकी अपेक्षा करकें बंध मोहादिकोंका एक अधिकरण हो सका है, सोजी ठीक नहीं, क्योंकि संतानजी तुमारे मत में नहीं हो सका है, संतान जो है सो संतानीसें जिन्न है? वा अजिन्न है? जे कर कहोगेकि जिन्न है, तब तो फेर दो विकल्प तुमारी जेट करते हैं, सो संतान नित्य है? वा अनित्य है? जे कर कहोगेकि नित्य है, तब तो तिसकों

बंधमोक्षादिकका संज्ञा नहीं है. क्योंकि सर्वकाल एक सञ्जाव होने कर के तिसके अवस्था विचित्र नहीं हो सकती है. और तुम तो नित्य मानते नहीं हो, "सर्व कणिकमिति वचनात्" अथ जे कर कहोगे कि कणिक है, तब तो वोही प्राचीन बंध मोक्षादि वेद्यधिकरण दूषण प्राप्त हुआ, जे कर कहोगे कि अचिन्न है, तब तो तिससे अचिन्न होनेसे तिसके स्वरूपकी तरें संतानीही हुआ, संतान नहीं जई. जब ऐसे हुआ, तब तो तदवस्थही पूर्वला दूषण है, जेकर कहोगे कि कणासेति अन्य संतान कोइ नहीं. किंतु जो कार्य कारण जाव प्रबंध करके कण जाव है, सोइ संतान है, तिस वास्ते दोष कोइ नहीं है, यहजी तुमारा कहनां अयुक्त है, क्योंकि तुमारे मतमें कार्य कारण जावजी नहीं घटका है, सोइ दिखाते हैं कि प्रतीत्य समुत्पादमात्र कार्य कारण जाव है, तिससे यथाविवक्षित घट कणानंतर घट कण है, तैसे पटादि कणजी है, और जैसे घट कणसे पहिला अनंतर विवक्षित घटकण है, तैसे पटादि कणजी है, तब तो कैसे प्रतिनियत कार्य कारण जावका अवगम होवे ?

एक औरजी दूषण है, सो यह है कि:-कारणसेंती उत्पन्न होता हुआ जो कार्य, सो सत् उत्पन्न होता है ? वा असत् उत्पन्न होता है ? जे कर कहोगे कि सत् उत्पन्न होता है, तब तो कार्योत्पत्ति कालमें जी कारण सत् हुआ, और तब कार्य कारणको समकालताका प्रसंग हुआ, और एक कालमें दो पदार्थोंका कार्य कारण जाव मान्या नहीं है, अन्यथा माता पुत्रका व्यवहार न होवेगा, घट पटादिकोकाजी परस्पर कार्य कारण जावका प्रसंग होजा वेगा, जे कर असत् पक्ष मानोगे, तो सोजी अयुक्त है, क्योंकि जो असत् है, सो कार्य नहीं हो सका है, अन्यथा खरशूंगसेंतीजी कार्य उत्पन्न होना चाहिये, और अत्यन्ता जाव, प्रध्वंसा जाव. दोनोंही जगे वस्तुसत्ताका संभव होनेसे इन दोनोंका कोइजी विशेष न हुआ, जे कर कहोगे कि प्रध्वंसा जावमें वस्तु थी, इस करके हेतु है, तब तो जब थी तब हेतु नहीं, अन्य वा हेतु हुआ; ऐसे तो बहुत अजी तत्त्वव्यवस्था जई.

एक औरजी बात है, कि तज्जावे जाव ऐसे अवगममें कार्य कारण जावका अवगम है, सो जो तज्जावे जाव है. सा क्या प्रत्यक्ष करके प्रतीत होता है ? वा अनुमान करके प्रतीत होता है ? प्रत्यक्ष करके तो

व तो पूर्वापर विरोध सहजहीमें हो गया, ऐसंही योगीयांकांजी सर्वार्थ प्रादक ज्ञानका दुर्धर विरोध जान लेना.

११ कार्य अव्ययके प्रथम उत्पन्न होनेसे तिसका जो रूप है, सो पीठेंसे उत्पन्न होता है, बिना आश्रयके गुण क्योंकर उत्पन्न होवे ? यह कह करके पीठेंसे यह कहते हैंकि कार्य अव्ययके बिनाश हुये पीठें तिसका रूप नष्ट होता है, यह पूर्वापर विरोध है, क्योंकि जब कार्यअव्यय नाश हो गया, तब रूप आश्रय बिना पीठें क्यों कर रह सकेगा ?

१२ नैयायिक औ वेशेषिक जगत्का कर्त्ता ईश्वरको मानते हैं, यह बातजी एक महामूढताका चिन्ह है, क्योंकि जगत्का कर्त्ता ईश्वर किसी प्रमाणसे सिद्ध नहीं हो सकता है, यह जगत् कर्त्ताका खंनन दूसरे परिच्छेदमें थ्यष्टी तरें विस्तार पूर्वक लिख आये हैं, तोजी जव्य जीवोंके ज्ञान वास्ते योनासा इहंजी लिख देते हैं.

योइक कहते हैंकि साधुवोंके उपकार वास्ते अरु दुष्टोंके संहार वास्ते ईश्वर युग युगमें अवतार लेता है, अरु सुगतादिक कितनेक यह बात कह तेहें कि मोक्षकों प्राप्त हो करके अपने तीर्थकों क्लेशमें देख कर फेर जग धान् अवतार लेता है, "यदाहु रन्ये ॥ ज्ञानिनो धर्मतीर्थस्य, कर्त्तारः परमं पदं ॥ गत्वा गच्छन्ति भूयोपि, जयंतीर्थनिकारत इति ॥ १ ॥" जो फिर संसारमें अवतार लेता है, वो परमार्थसे मोक्षरूप नहीं हूया है, क्योंकि उसके सर्व कर्म क्षय नहीं हुये है, जेकर मोहादिक कर्मक्षय हो जाते, तो वो का हेकों अपने मतका तिरस्कार देखके पीना पाता, अरु अवतार लेता, जे कर साधुवोंके उपकारार्थ अरु दुष्टोंके संहार वास्ते अवतार लेता है, तब तो असमर्थ हूया, क्योंकि बिनाही अवतारके लीयां वो यह काम नहीं कर सकता था, जे कर कर सकता था, तो फेर काहेकों गर्तावासमें पडा ? इस वास्ते सर्व कर्म क्षय नहीं हुये, जे कर क्षय हो जाते तो कर्त्ताजी अवतार न लेता ॥ यदुक्तं ॥ दग्धे र्वाजियथात्यंतं, प्रादुर्भवति नांकुरः ॥ कर्मवी जे तथा दग्धे, न रोहति जवांकुरः ॥ १ ॥ उक्तंच श्रीसिद्धसेन दिवाकर पादरपि ॥ जवाजिगामुकानां, प्रवसमोहविजृंभितं ॥ श्लोक ॥ दग्धंधनः पुनरुपैति जयं प्रमथ्य, निर्वाणमप्यनवधारितनीरनिष्टं ॥ मुक्तः स्वयं कृतननुध परार्थशूर, स्वरासनप्रतिदत्तेष्विह मोहराज्यं ॥ १ ॥ इत्यसंविस्तरण ॥

प्रश्नपक्षः—सुगतादिक ईश्वर मत होवो. परंतु सृष्टिका कर्ता तो महादेव ईश्वर है, सो क्यों नहीं मानते ?

उत्तरपक्षः—जगत् कर्त्ता ईश्वरकी सिद्धिमें प्रमाणका अभाव है, इस वास्ते नहीं मानते.

प्रश्नपक्षः—जगत् कर्त्ताकी सिद्धिमें प्रमाण है. पृथिव्यादिक किसी बुद्धिमानके करे हुये हैं घटादिवत् कार्यरूप होनेसे यह हेतु असिद्ध नहीं है, पृथिव्यादिकोंको सावयव होने करके कार्यत्वकी प्रसिद्धि होनेसे. तथाहि पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिक सर्व सावयव होनेसे घटवत् कार्यरूप है, अरु यह हेतु विरुद्धनी नहीं है. निश्चिन कर्त्तृक घटादिकों विषे कार्यत्व हेतुके देखनेसे अरु जिनोका कर्त्ता नहीं है. उनसे व्यावृत्त होनेसे अनेकांतिकनी नहीं है. अरु प्रत्यक्ष आगम करके अशोधित विषय होनेसे कासात्यया पदिष्टनी नहीं है. इस निदोष हेतुसे जगत्कर्त्ता ईश्वर सिद्ध होता है.

उत्तरपक्षः—तहां प्रथम पृथिविआदिक बुद्धिमानके बनाये हुये हैं, इस सिद्धिके वास्ते जो तुमने कार्यत्व हेतु कहा था, सो हेतु क्या सावयवत्व है ? वा प्राग्वत् स्वकारण सत्ता समवाय है ? वा 'कृतं' ऐसे प्रत्ययका विषयत्व है ? वा विकारित्व है ? इन चारों विकल्पोमेंसे कार्यत्व हेतुका कौनसा स्वरूप है ? जे कर कहोगेकि सावयवत्व स्वरूप है, तो यह सावयवपणा अवयवों विषे वर्त्तमानत्व है ? वा अवयवों करके आरन्ध्रमाणत्व है ? वा प्रदेशत्व है ? वा सावयव ऐसी बुद्धिविषयत्व है ?

तहां आद्य पक्षविषे अवयव सामान्य करके यह हेतु अनेकांतिक है, तथा अवयवों विषे वर्त्तमाननी निरवयव अरु अकार्य कहते हैं, तथा दूसरे पक्षमें हेतु साध्यके समान है, जैसा पृथिव्यादिकोंको कार्यत्व साध्य है, ऐसेही परमाणु आदिकोंको अवयव आरन्ध्रत्व पणा है, तथा तीसरे पक्षमें आकाशके साथ हेतु अनेकांतिक है, क्योंकि आकाश प्रदेश वाला तो है, परंतु कार्य नहीं है. तथा चउथे पक्षमेंनी आकाशके साथ हेतु व्यभिचारी है, क्योंकि जो व्यापक होता है, सो निरवयव नहीं होता है, अरु जो निरवयव होता है, सो परमाणुवत् व्यापक नहीं होता है,

तथा प्रागस्ततः स्वकारण सत्तासमवाय कार्यत्वनी नहीं, क्योंकि तिसकों नित्य होने करके तिसके लक्षणके न होनेसे. जे कर तिसका लक्षण

होवेगा, तब तो पृथिव्यादिकोंके कार्यत्वकोंजी नित्यताका प्रसंग होवेगा, तब बुद्धिमत्का बनाया हुआ क्या सिद्ध करोगे ? एक औरजी झूषण है कि योगीयोंके अशेष कर्मके दाय हुआं थका पक्षांतपातिविषे अप्रवृत्त होने करके यह हेतुजांगा असिद्ध है, क्योंकि योगी प्रत्यक्षकों प्रध्वंसा जाव रूप होने करके सत्ता स्वकारण समवाय इन दोनोंके अजावसें.

तथा “कृतं” ऐसे प्रत्ययका जो विषयत्व है सोजी कार्यत्व नहीं हो सक्ता है, खनन उत्सेचनादिक करके कृतं आकासं ऐसैं अकार्य आकाशमेंजी वर्तमान होने करके अनेकांतिक है.

तथा विकारत्वकोंजी कार्यत्वका अनुपंग है, सत् वस्तुकों जो अन्यजाव है, सो विकारित्व है. तब तो ईश्वरकोंजी विकारित्व पणा है, अपर बुद्धि मत् हेतुकत्व प्रसंग होनेसें अनवस्था हो जावेगी, जे कर कहोगेकि ईश्वर विकारी नहीं तब तो कार्यका कारित्व पणा दुर्घट है, ऐसैं कार्य स्वरूपकों विचारता थका उपपद्यमान न होनेसें “कार्यत्वात्” यह हेतु असिद्ध है, एक औरजी झूषण है कि कदे होनां कदे न होनां, लोकमें उसकों कार्यत्वकी प्रसिद्धि है. अरु यह जो जगत् है, सो तुमारे महेश्वरकी तरें सदा सत्त्व होनेसें कैसें कार्यत्व होवे ?

पूर्यपक्षः—तिस जगत्के अंतर्गत तृणादिकोंकों कार्यत्व होनेसें जगत् कोंजी कार्यत्व है.

उत्तरपक्षः—महेश्वर अंतर्गत बुद्धिआदिकोंकों तथा परमाणु आदिकोंके अंतर्गत पाकज रूपादिकोंकों कार्यत्व रूप होनेसें महेश्वरकों तथा परमाणु आदिकोंकों कार्यत्वका अनुपंग होवेगा, तब तो इस ईश्वरकों अपर बुद्धिमत् हेतुकत्व प्रसंगसें अनवस्था झूषण आता है, अरु अपसिद्धांतका अनुपंग है, तथा है ईश्वरवादि ! जैसे तैसें करके जगत्कों कार्यत्वपणा होवो, तोजी कार्यमात्र इहां हेतु तुमने माना है ? वा कार्य विशेष हेतु माना है ?

जे कर आद्य पक्ष मानोगे, तब तो तिससेंती बुद्धिमत्कर्तृ विशेष सिद्धि नहीं. क्योंकि तिसके साथ व्याप्तिकी सिद्धि नहीं, किंतु कर्तृ सामान्यकी सिद्धि होती है, जे कर ऐसेही मानोगे, तब तो हेतु अकिंचित्कर है, साध्यसें विरुद्ध साधनेसें हेतु विरुद्ध है, तिस वास्ते कार्यत्वकृत बुद्धि उत्पादक बुद्धिमत्कर्ताका गमक नहीं, अरु जे कर सर्व सारूप्य मात्र करके गमकत्व

होवे, तब तो वाण्यादिकोंकोञी अग्नि प्रतिगमकत्वका प्रसंग होवेगा, अरु महेश्वर आत्मत्व करके सर्व जीवोंके सदृश होनेसे १ संसारिपणा, २ किंचित् इत्वरणा, ३ संपूर्ण जगत्का अकर्तृत्वपणेके अनुमापकका अनुषंग है, क्योंकि तुल्य अक्षेप समाधान होनेसे. तिस वास्ते वाण्य अरु धूम इन दोनोको किसी अंश करके साम्यञी है, तोञी कोइक ऐसा विशेष है, जिस करके धूम अग्निका गमक है, परंतु वाण्यादिक नहीं तैसेही पृथिव्यादिकोंको इतर कार्योंसेञी कतुक विशेष अंगीकार करो.

जे कर दूसरा पक्ष मानोगे, तब हेतु असिद्ध है, कार्य विशेषके अज्ञा वसे. जावे वा जीर्ण रूप प्राप्तादादिकोंकी तरें अक्रिया देखने वालेकोञी कृतबुद्धि उत्पादकका प्रसंग है, जे कर कहोगेकि समारोपसे प्रसंग नहीं होता है, सोञी दोनो जगें एक सरीखा होनेसे क्यों नहीं होता है ? दोनो जगें कर्त्ताको अतींद्रियत्वके अविशेषसे पूर्वपक्ष प्रमाणिकको है, यहां कृतबुद्धि उत्तरपक्ष कैसे तहां तिसको कृतत्वका अवगम होवे ? इस अनुमान करके अथवा अनुमानांतर करके आद्य पक्षमें परस्पर आश्रय रूप है, तथाहि सिद्ध विशेषण हेतुसे इस अनुमानका उद्धान है, तिसके उद्धानके होयां हेतुके विशेषणकी सिद्धि है. अरु दूसरे पक्षमें अनुमानांतरकोञी सविशेषण हेतुसे उद्धान होवेगा, तहांञी अनुमानांतरसे तिसकी सिद्धि. इसी तरें अनवस्था रूप होता है, इस वास्ते कृत बुद्धि उत्पादकत्व रूप विशेषण सिद्धि नहीं, तब तो विशेषण असिद्ध हेतु है.

अरु जो कहते हैं कि खात प्रतिपूरित पृथिवीके दृष्टांत करके कृत कांको आत्मविषे कृतबुद्धि उत्पादकत्वका अज्ञाव है, सोञी असत् है, तहां आकृति सूजागादि सारूप्यको तिसके उत्पादकके अज्ञावसे, तिसके अनुत्पादककी उत्पत्तिसे.

अरु ऐसेञी न कहनांकि पृथिव्यादिकोंमेंञी अकृत्रिम संस्थान सारूप्य हैं, जिस करके आकृतिमत्त्व बुद्धि उत्पन्न होती है, तिसहीके न माननेसे अपसिद्धांतकी प्रसक्ति होवेगी. ऐसे कृतबुद्धि उत्पादकत्व रूप विशेषण असिद्ध होनेसे हेतु विशेषण असिद्ध है, सो सिद्ध होवो. तोञी यह हेतु घटादिकोंकी तरें शरीरादि विशिष्टकोही बुद्धिमत् कर्त्ताका इहां प्रसाधनसे हेतुविरुद्ध है.

प्रश्न:-ऐसे दृष्टांत दार्ष्टान्तिक साम्य अन्वेषणमें सर्व जगें हेतुवोंकी अनुपपत्ति होवेगी.

उत्तर:-ऐसें नहीं है धूमादि अनुमानमें महानस इतर साधारण अग्निकी प्रतिपत्तिसं, यहांकी ऐसेही बुद्धिमत् सामान्य प्रसिद्धिसं हेतु विरोध नहीं, ऐसेंजी कहनां अयुक्त है, क्योंकि दृश्य विशेष आधारकोंही तिस सामान्यकों कार्यत्व हेतुकी प्रसिद्धि है, परंतु अदृश्य विशेषाधारकों नहीं, तिसकी स्वप्नेमेंजी प्रतिपत्ति नहीं है, तिस सामान्य बाखेका खरशृंग आधार है, तिस वास्ते जैसे कारणसें जैसा कार्य उपपन्न होता है, ते साही अनुमान करने योग्य है, यथावत् धर्मात्मक अग्निसं यावत् धर्मात्मकस्य धूमकी उत्पत्ति है सुदृढ प्रमाणसें प्रतिपन्न हैं, तेसेही धूमसें ते सेंही अग्निका अनुमान है, ऐसें कहने करके साध्य साधन दोनोंका विशेषण करके व्याप्तिविषे ग्रहण करतां हुआ, सर्वानुमानकी उभेद प्रसक्ति है, इत्यादि जो कहनां है, सोजी खंडन हो गया.

तथा बिना बीजके बोयां जो तृणादिक उत्पन्न होते हैं तिनके साथ यह कार्यत्व हेतु व्यभिचारी है, यद्गतसं कार्य देखनेमें आते हैं, उनमेंसूं कितनेक तो बुद्धिमानके करे हुये दीखते हैं, जैसें घटादिक.

अरु कितनेक उक्तसें विपरीत दिखाइ देते हैं, जैसें बिना बोयां तृणादिक. जे कर कहोगेकि हम सर्वकों पहमें कर लेवेंगे तय तो "स श्यामस्तत्पुत्रत्वादितरतत्पुत्रवत्" इत्यादिनी गमरु होने चाहियें, तय तो कोइनी हेतु व्यभिचारी न होवेगा. जहां जहां व्यभिचार होवेगा, तहां तहां तिसकों पहमें कर लेनेसें तथा यह हेतु ईश्वर बुद्धि आदिकों करकेनी व्यभिचारी है, ईश्वर बुद्ध्यादिकोंकों कार्यत्वके बोयां हुयांनी समयापि कारणसें ईश्वरादिकोंसें निश्चयबुद्धिमत्पूर्वकत्वके अभावसें, जे कर यहांनी इसी तरें मानोगे तय अनावस्याहृपण होवेगा. तथा यह कार्यत्व हेतु काशात्पया पदिइनी है, बिना बोयां उत्पन्न हुये तृणादिको विषे बुद्धि मत् कर्ताका अभाव प्रत्यक्ष प्रमाणसें अग्निके अनुष्णत्व साध्यविषे प्रप्यत्व हेतुवन् दोष पगना है.

प्रश्न:-अंकुर तृणादिकोंकानी अदृश्य ईश्वर कर्ता है.

उत्तर:-यहनी ठीक नहीं, तहां अदृश्य ईश्वरका होनां इसी प्रमाणसें

है ? अथवा और किसी प्रमाणसे है ? प्रथम पक्षमें चक्रक दूषण है, इस प्रमाणसे तिसका सञ्जाव सिद्ध होवे, तब अदृश्य होने ईश्वरके अनुपपन्नकी सिद्धि होवे, तिसकी सिद्धिके होयां कावात्तयापदिष्टका अज्ञाव सिद्ध होवे, तिसके पीछे इस प्रमाणकी सिद्धि होवे. दूसरा पक्षजी अयुक्त है. ईश्वरके जावावेदिक प्रमाणके अज्ञावसे होवे, तहां प्रमाणका सञ्जाव तोनी ? ईश्वरके अदृश्य होनेमें क्या शरीरका न होनां कारण है ? १ वा विद्यादि प्रज्ञाव है ? २ वा जाति विशेष है ? प्रथम पक्षमें अशरीरी होनेसे मुक्त आत्मावत् कर्त्तापणेकी अनुपपत्ति है.

प्रश्न:-शरीरके अज्ञाव करकेनी ज्ञानेछा प्रयत्नाश्रयत्व करके शरीर उत्पन्न करके ईश्वर कर्त्ता हो सका है.

उत्तर:-यहनी बिना विचारहीका तुमारा कहनां है, क्योंकि शरीर संबंध करकेही तिसकी प्रेरणा होनेसे शरीरके अज्ञाव हूयां मुक्त आत्मवत् तिसका असंज्ञव होनेसे अरु शरीरके अज्ञावसे ज्ञानादि आश्रयित्वकाजी असंज्ञव है, तिसकी उत्पत्तिमें इसको निमित्त होनेसे अन्यथा मुक्तात्माकोनी तिसकी उत्पत्ति होवेगी. अरु विद्यादि प्रज्ञावको अदृश्य पणेमें हेतु हूयां कदाचित् यह दीखना चाहिये, परंतु सर्वदा नहीं. क्योंकि विद्यावान् सदा अदृश्य नहीं रहते हैं, पिशाचादिकोंकी तरें जाति विशेषनी अदृश्यमें हेतु नहीं, क्योंकि ईश्वर एक है, एकमें जाति नहीं होती है, जाति जो होती है, सो अनेक व्यक्ति निष्ट होती है. जखेही ईश्वर दृश्य अथवा अदृश्य होवे, तोनी ? क्या सत्ता मात्र करके ? १ वा ज्ञानवत्त्व होने करके ? २ वा ज्ञानेछा प्रयत्नवत्त्व करके ? ४ वा तत्पूर्वक व्यापार करके ? वा ऐश्वर्य करके पृथिव्यादिकोंका कारण है ?

तहा आद्य पक्षमें कुआलादिकोंकोनी सत्त्वके अविशेष होनेसे जगत्क तृका अनुपंग होवेगा. दूसरे पक्षमें योगीयोंकोनी जगत् कर्त्ताकी आपत्ति होवेगी, तीसरा पक्षजी ठीक नहीं, क्योंकि अशरीरको प्रथमही ज्ञानादि आश्रयत्वका प्रतिषेध करनेसे. चउथेकाजी संज्ञव नहीं, क्योंकि अशरीरको काय वचनके व्यापारवत्त्वका असंज्ञव होनेसे. अरु ऐश्वर्यनी ज्ञातपणा है ? अथवा कर्त्तापणा है ? अथवा अरुकुत्र है ? जेकर कहोगे कि ज्ञातपणा है, तब क्या ज्ञातृत्वमात्र है ? अथवा सर्वज्ञातृ पणा है ? आद्यपक्षमें ज्ञाताही

होवेगा, परंतु ईश्वर न होवेगा. अस्मदाद्यन्यज्ञातृयोंकी तरें. दूसरे पक्षमें सर्वज्ञ पणा इसकों होवेगा परंतु सुगतादिवत् ईश्वरपणां न होवेगा.

अथ जे कर कहोगे कि कर्तृत्वपणा हे तब तो कुंजकारादिकोंकोजनी अनेक कार्य करने वालोंकों ऐश्वर्यकी प्रसक्ति होवेगी, अरु इष्टा प्रयत्नके बिना थोर कोइनी वस्तु ईश्वरके ऐश्वर्यकी निबंधन नहीं हे.

एक थोरजी बात हे, कि ईश्वरके जगत् बनानेमें यथारुचि प्रवृत्ति हे ? वा कर्मके बरा हो करके हे ? वा दया करके हे ? वा क्रीडा करके हे ? वा निग्रहानुग्रह करने वास्ते हे ? वा स्वभावसें हे ? आद्य विकल्पमें कदाचित् थोर तरेंकी सृष्टि हो जावेगी, दूसरे पक्षमें ईश्वरकी स्वतंत्रताकी इानी होवेगी. तीसरे पक्षमें सर्व जगत् सुखीही करना था.

पूर्णपक्षः—ईश्वर क्या करे ? जैसे जैसे जीवोंने कर्म करे हैं, तिन कर्मोंके बरासें ईश्वर तैसा तैसा दुःख सुख देता हे.

उत्तरपक्षः—तब तो निसका क्या पुरुषाकार हे ? जब कर्महीकी अपेक्षा करके कर्ता हे, तब तो ईश्वरकी कल्पना करके क्या करना हे ? कर्महीके बनसें सब कुछ हो जावेगा, तथा चतुर्थे पांशमें विकल्पमें ईश्वर, रागी छेपी हो जावेगा, तब तो ईश्वर क्यों कर सिद्ध होवेगा ? तथाहि क्रीडा करनेमें यात्रवत् रागवान् ईश्वर हे ? तथा ईश्वर अनुग्रह निग्रह करनेमें राजाकी तरें राग छेप बाझा हे ?

जे कर कहोगे कि ईश्वरका स्वभावही जगत् करने (रचनेका) हे, तब तो जगत् स्वभावमेंही दृष्टा हे ऐसे मान खेवो फेर ईश्वरकी कल्पना काहेको करते हो ? इस वास्ते कार्यत्व हेतु बुद्धिमत् कर्ता ईश्वरकों नहीं सिद्ध कर्ता हे, इस वास्ते नैयायिक, वैशेषिक जो जगत्का कर्ता ईश्वरको मानते हैं, सो भूर्वनाका सूचक हे, विशेष करके जगत् कर्ताका मंगल देवनां होवे, तदा सम्मनितके ग्रंथ देवनां.

अरु जो नैयायिकोंने सोझा पदार्थ माने हैं, सोनी यात्राओंकी रोष हे, क्योंकि सोझा पदार्थ घटते नहीं हे, सोझा पदार्थ यह हे ठमका नाम कहते हैं. १ प्रमाण, २ प्रमेय, ३ संशय, ४ प्रयोजन, ५ दर्शन, ६ सिद्धान्त. ७ व्यवप, ८ तर्क, ९ निरूप, १० वाद, ११ जडप, १२

वितंभा १३ हेतुज्ञान, १४ ठस, १५ जाति, १६ निग्रहस्थान, यह सोळा पदार्थ कहे हैं.

तहां हेय उपादेय प्रवृत्तिरूप करके जिस करके पदार्थोंकी परिस्थिति करिये हैं “तत्त्वमीयतेऽनेनेति प्रमाणं” सो प्रमाण, सो प्रमाण १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ उपमान, ४ शब्द जेदसैं चार प्रकारका है, “तत्रेन्द्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यञ्जिचारिव्यवसायात्मकं प्रत्यक्षं इति गौतम सूत्रं ॥” इसका यह तात्पर्य है कि इंद्रिय अरु अर्थका जो संबंध तिससैंती जो उत्पन्न हुआ व्यपदेश रहित व्यञ्जिचार रहित निश्चयात्मक तिसको प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं, परंतु प्रत्यक्ष प्रमाणका यह लक्षण नहीं है, तथाहि जहां आत्मा अर्थ ग्रहण प्रति साक्षात् व्यापारिये, सोइ प्रत्यक्ष प्रमाण है. सो अवधि, मनःपर्यव, अरु केवल है, अरु यह जो प्रत्यक्ष नैयायिकोने कहा है, सो उपाधि द्वारा प्रवृत्ति होनेसैं अनुमान की तरें परोक्ष है, जो उपचार प्रत्यक्ष माने, तब तो है, परंतु तत्त्वचिं तामें उपचारका व्यापार नहीं होता है.

अरु अनुमान प्रमाण तीन जेद करिकें मानते हैं, १ पूर्ववत्, २ शेषवत्, ३ सामान्यतोदृष्ट. तहां कारणसैं कार्यका जो अनुमान, सो पूर्ववत्, तथा कार्यसैं कारणका जो अनुमान, सो शेषवत् तथा एक आंवका बृक्ष फूला देख कर आंव, जगत्में फुले है, अैसे जाननां; अथवा देवदत्तादिकोंमें गति पूर्वक स्थानसैं स्थानांतरकी प्राप्ति देख कर सूर्यमेंजी गतिका अनुमान करनां इसका नाम सामान्यतो दृष्ट है, तहांजी अन्यथानुपपत्तिही गमक है, न तु कारणादिक. क्योंकि अन्यथानुपपत्तिकें बिना कारणको कार्य प्रति व्यञ्जिचार होनेसैं. अरु जहां अन्यथानुपपत्ति है, तहां कार्य कारणादिकों के बिनाजी गमकभाव देखीये है, सोइ दिखाते हैं. कृत्तिकाके देखनेसैं रोहिणीका उदय होवेगा ॥ तदुक्तं ॥ श्लोक ॥ अन्यथानुपपन्नत्वं, यत्र तत्र त्रयेण किं ॥ नान्यथानुपपन्नत्वं, यत्र तत्र त्रयेण किं ॥ १ ॥ तथा एक औरजी बात है कि जब प्रत्यक्ष प्रमाणही नैयायिकका कया प्रमाण न हुआ तब प्रत्यक्ष पूर्वक अनुमान जो है सो क्योंकर प्रमाण होवे? तथा “प्रसिद्ध साधर्म्यात्” अर्थात् प्रसिद्ध साधर्म्यसैं जो साध्यका साधन है, सो उपमान है, जैसा गो है तैसा रोज है, यहांजी संज्ञा संज्ञी

संबंधकी प्रतिपत्ति उपमानका अर्थ हैं, इहांजी अन्यथानुपपत्तिके सिद्ध होनेसे उपमानजी अनुमानके अंतरजावही है, परंतु पृथग् प्रमाण नहीं, जे कर कहोगे कि इहां अन्यथानुपपत्ति नहीं है, तब तो व्यञ्जिचारी होनेसे उपमान प्रमाणही नहीं है, शब्दजी सर्व प्रमाण नहीं है, किंतु जो आस प्रणीत आगम है, सोइ प्रमाण है, अरु अर्हत बिना इसरा कोइ आस नहीं. इस बातका निर्णय देखनां होवे, तदा सम्मतितर्क, नंदीसिद्धांत, आसमीमांसादि शास्त्र देख लेने. तथा एक औरजी बात है, कि यह चारों प्रमाण आत्माका ज्ञान है, अरु ज्ञान वस्तुके गुणोंको पृथग् पदार्थ मानीयें, तब तो रूपरसादिकोंजी पृथग् पदार्थ माननां चाहि यें. जे कर कहोगे कि प्रमेयके ग्रहण करकें, ओ इन्द्रियार्थ होने करकें तेजी ग्रहण कीये जाते हैं, यहजी तुमारां कहनां युक्त नहीं है, क्योंकि अव्यसे पृथग् गुणोंका अज्ञाव है, अव्यके ग्रहण करनेसे गुणोंकाजी ग्रहण सिद्ध है, इस वास्ते पृथग् पदार्थ माननां ठीक नहीं,

१ तथा प्रमेयका जेद, १ आत्मा, २ शरीर, ३ इन्द्रिय, ४ अर्थ, ५ बुद्धि ६ मन, ७ प्रवृत्ति, ८ दोष ए प्रेत्यजाव, ९ फल, १० दुःख, ११ अपवर्ग. तहां १ आत्मा सर्वका देखने वाला अरु जोक्ता है, अरु इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञान, इन करकें अनुमेय है, सो तो हमने जीवतत्वमें ग्रहण कीया है, अरु २ शरीर जो है, सो आत्माका जोगायतन है, इन्द्रिय जो गोंके साधन हैं, अरु ३-४ इन्द्रियार्थ जोग्य हैं, बेजी शरीरादिक जीवाजीव के ग्रहण करकें हमने ग्रहण करे हैं, अरु ५ बुद्धि जो है, सो उपयोग रूप ज्ञान विशेष है, सो बुद्धि जीवके ग्रहणहीमें आ गइ, एतावता जीव तत्व मेंही ग्रहण हो गइ, अरु ६ सर्व विषय अंतःकरण है, युगपत् ज्ञानका न होनां यह मनका लिंग है, तहां अव्य मन तो पौनल्लिक है, सो अजीव तत्वमें ग्रहण कीया है, अरु जावमन जो है सो ज्ञानरूप आत्माका गुण हैं, सो जीव तत्वमें ग्रहण कीया है, अरु ७ आत्माकी इच्छाका नाम प्रवृत्ति है, सो सुख दुःखोंके होनेमें कारण है, सो ज्ञानरूप होनेसे जीवतत्वमें ग्रहण करी है, ८ आत्माके जो अध्यवसाय राग, द्वेष, मोहादि दोष हैं, यह दोषजी जीवके अजिप्राय रूप होनेसे जीवतत्व मेंही ग्रहण कीया है, इस वास्ते पृथग् पदार्थ नहीं. ए प्रेत्यजाव, पर

छोकका सञ्जाव होनां सोजी जीवाजीवके बिना और कुछ नहीं है, तथा १० फल, जो सुख दुःखका जोगनां है, सोजी जीव गुणोंके अंतर्जाव है, इस वास्ते पृथक् पदार्थ कहनां ठीक नहीं, तथा ११ दुःख यहजी फलसें न्यारा नहीं, अरु १२ जन्म मरण प्रबंध उल्लेखरूप करके सर्व दुःखोंको दूर करणां औसा मोक्षका लक्षण है, सो हमने नवतत्त्वमें मान्याही है.

३ तथा यह क्या है? औसा अनिश्चयरूप प्रत्ययको संशय कहते हैं, सोजी निर्णय ज्ञानवत् आत्माहीका गुण है.

४ तथा जिस करके प्रयुक्त हुआ होयां प्रवर्त्तें है, तिसका नाम प्रयो जन है, सोजी इच्छा विशेष होनेसें आत्माका गुण है.

५ तथा अविप्रतिपत्ति विषयमें प्राप्त है, अर्थ सो दृष्टांत है, सोजी जीवाजीवपदार्थोंसें न्यारा नहीं है, इस वास्ते पृथक् पदार्थ नहीं है. क्यों कि अवयवग्रहणेमेंनी आगे इसका ग्रहण हो जावेगा.

६ तथा सिद्धांत चार प्रकारका है, १ सर्वतंत्राविरुद्धः सर्व शास्त्रो में अविरुद्ध जैसे स्पर्शनादि इंद्रिय है, अरु स्पर्शादि इंद्रियार्थ है, तथा प्रमाणों करके प्रमेयका ग्रहण होता है, २ समानतंत्रसिद्धः, परतंत्रा सिद्धः, प्रतितंत्रासिद्धांतः, जैसे सांख्य मत वालोके असत् आत्म लाज को प्राप्त नहीं होता है, अरु सत्का सर्वथा विनाश नहीं है, तथा ३ जिसकी सिद्धिके हूयां औरजी अर्थ अनुपग करके सिद्ध हो जावे, सो अधिकरणसिद्धांत है. तथा ४ “अपरीक्षितार्थान्युपगमत्वान्तद्विशेषपरीक्षणमन्युपगमसिद्धांतः” जैसे किसीने कहा शब्द क्या वस्तु है? कोशक कहता है शब्द द्रव्य है, सो शब्द नित्य है? वा अनित्य है? इत्यादि विचार यह चार प्रकारका सिद्धांत ज्ञान विशेषसें अतिरिक्त नहीं है, अरु ज्ञानविशेष आत्माका गुण है गुणीके ग्रहणेसें ग्रहण किया है. इस वास्ते पृथक् पदार्थ नहीं,

७ अथावयवाः प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन, यह पांचो अवयवको जे कर शब्दमात्र मानीयें, तब तो पुञ्जल रूप होनेसें अजीव तत्त्वमें ग्रहण कीये हैं. जे कर ज्ञानरूप मानीयें, तब तो जीव तत्त्वमें ग्रहण कीये हैं, इस वास्ते पृथक् पदार्थ कहनां ठीक नहीं, जे

कर ज्ञान विशेषकों पृथक् पदार्थ मानीयें, तब तो पदार्थ बहुत हो जावेंगे, क्योंकि ज्ञानविशेष अनेक प्रकारके हैं.

७ संशयसें उपरि चवितव्यता प्रत्ययरूप सदर्थपर्यालोचनात्मक तिसकों तर्क कहते हैं, जैसे कि यह स्याणु अथवा पुरुष जरूर होवेगा, यहजी ज्ञान विशेषही है, ज्ञानविशेष जो है, सो ज्ञातासें अचिन्न है, इस वास्ते पृथक् पदार्थ कल्पना ठीक नहीं.

८ संशय अरु तर्कसेंती उत्तर काल जावी निश्चयारमक ऐसेा जो ज्ञान, तिसका नाम निर्णय है, यहजी ज्ञानविशेष है, अरु निश्चयरूप होनेसें प्रत्यक्षादि प्रमाणोंके अंतर्भाव होनेसें पृथक् पदार्थ कल्पना ठीक नहीं.

१०-११-१२ तथा याद, जडप, वितंका, तहां प्रमाण तर्क साधन उपालंज सिद्धांत अधिकरू पंचायय करके संयुक्त पद प्रतिपदका जो ग्रहण करणां, तिसका नाम याद है. सो वादतत्त्व ज्ञानके वास्ते शिष्य अरु आचार्यका होना है, अरु सोइ याद जिसकों जीतना होवे, तिसके साथ ठल, जाति, निग्रह स्थान करके साधनोपलंज, सो जडप है, तथा सो वादही प्रतिपद स्थापना करकेही वितंका है, यह याद, जडप, वितंका, इन तीनोंका जेद ही नहीं हो सका है, क्योंकि तत्त्वचिंताविषे तत्त्वके निर्णयार्थ वाद करना चाहिये, परंतु उन्न जाति आदिक करके तत्त्वका निश्चय नहीं होता है, क्योंकि उन्नादिक जो हैं, सो परके बंधने वास्ते करिये हैं, तिनसें तत्त्व निर्णयकी प्राप्ति नहीं होती है, जे कर इनका जेदनी मानोगे, तोनी ये पदार्थ नहीं हो सके हैं, क्योंकि जो परमार्थसें वस्तु है, सोइ पदार्थ है. अरु वाद जो है, सो पुरुषकी इच्छाके अधीन है, नियतरूप नहीं है. इस वास्ते पदार्थ नहीं, तथा एक आरनी बात है, कि कुकर, साख, मीठे, इनके वादमेंनी पद प्रतिपद ग्रहण करते हैं, निनोंकोंनी नत्वज्ञानकी प्राप्ति होनी चाहिये, परंतु यह तुम नहीं मानते हो, इस वास्ते याद पदार्थ नहीं है.

१३ तथा १ अमिरू, २ अनेकानिक, ३ विरू, यह तीनों हेत्वानास हैं. हेतु तो नहीं, परंतु हेतुकी नरे जासन होते हैं, इस वास्ते हेत्वानास कहते हैं. जय सम्यक् हेतुवांकीही नत्वव्यवस्थिति नहीं, नो हेत्वानासों का तो क्याही कहना है? क्योंकि जो नियन स्वरूप करके रहे, सो वस्तु

है, अरु हेतु तो किसी साध्यवस्तुमें हेतु है, दूसरे साध्यमें अहेतु है, इस वास्ते नियतस्वरूप वाला नहीं.

१४-१५-१६ तथा ठल, जाति, निग्रहस्थान, यह तीनो पदार्थ नहीं. क्योंकि यह तीनोही वास्तवमें कपटरूप हैं, जिनोंने इनकों तत्त्व करके कथन करे हैं, उनके ज्ञान, वैराग्यका क्या कहना है? इस संसारमें जो चोरी, ठगी, हथफेरी प्रमुख सिखावे, तिसकोंजी तत्त्वज्ञानका उपदेशक मानना चाहिये? यह नैयायिकमतके सोला पदार्थोंका खंमन किया, जे कर विशेष करके देखनां होवे, तो न्यायकुमुदचंद्र देख लेनां, यह खंडन सूत्रकृतांग सिद्धांतसें लिखा है, जे कर विशेष देखनां होवे, तब बारहवा अध्ययन देख लेनां ॥ इति नैयायिक दर्शन खंडनं संपूर्णम् ॥

अथ वैशेषिक मत खंडन लिखते हैं. वैशेषिकोंके कहे हूये तत्त्वजी तत्त्व नहीं है, सोइ दीखाते हैं. १ ड्रव्य, २ गुण, ३ कर्म, ४ सामान्य, ५ विशेष, ६ समवाय, इनोंने यह ठ तत्त्व माना है. तहां १ पृथिवी, २ अप, ३ तेज, ४ वायु, ५ आकाश, ६ काल, ७ दिक्, ८ आत्मा, ९ मन, यह नव ड्रव्य हैं. तिनमें पृथिवी, अप, तेज, अरु वायु, इन चारोंकों जिन जिन ड्रव्य माननेसें ठीक नहीं. क्योंकि परमाणु जो हैं, सो प्रयोग विश्रुता करके पृथिवी आदिकोंके रूपण परिणमतेजी हैं, तोजी अपण ड्रव्य पणोंकों नहीं त्यागते हैं, अरु अति प्रसंग होनेसें अवस्था जेद करके ड्रव्यका जेद माननां युक्त नहीं हैं. अरु आकाश, तथा कालकों तो हमनेजी ड्रव्य माना है, अरु दिशा जो है, सो आकाशका अवयवभूत है, इस वास्ते पृथग् ड्रव्य नहीं. अरु आत्मा शरीर मात्र व्यापी उपयोग लक्षण तिसकों हमजी ड्रव्य मानते हैं, अरु ड्रव्य मन जो है, सो पुञ्जलड्रव्यके अंतर्भाव है, तथा जावमन जो है, सो जीवका गुण होनेसें आत्माके अंतर्भाव है, यद्यपि वैशेषिक कहते हैं कि जैसे पृथिवीत्वके योगसें पृथिवी है, यहजी उनका कहनां स्वप्रक्रिया मात्र है, क्योंकि पृथिवीसें अन्य दूसरा कोइ पृथिवीपणा नहीं है, जिसके योगसें पृथिवी होवे, अपि तु सर्वही जो कुंठ है, सो सामान्य विशेषात्मक है, नरसिंहाकारवत् उन्नयस्वभाव है.

तथा चोक्तं ॥ श्लोक ॥ नान्वयः सहि जेदत्वा त्रजेदोन्वयवृत्तिः ॥ मृ

ज्ञेयसंसर्ग, प्रवृत्तिजात्यन्तरं घटः ॥ १ ॥ इसका जावार्थः—घट जो है तिसमें मृत्तिकाका अन्वय नहीं है, पृथु बुध उदराकारादिकों करके इस हेतुसे ज्ञेय है, अरु अन्वयवर्ति होनेसे घटका मृत्तिकासं एकांत ज्ञेयही नहीं है, एतावता घट मृत्तिका रूपही है, अन्वय व्यतिरेक दोनोंके मिलने से घना जो है, सो जात्यन्तर रूप है, एतावता मृत्तिकासं कथंचित् ज्ञेय ज्ञेय रूप है ॥ तथा ॥ श्लोक ॥ न नरः सिंहरूपत्वा, न्नसिंहो नररूपतः ॥ शब्दविद्वानकार्याणां, ज्ञेयो जात्यन्तरं हि सः ॥१॥ जावार्थः—सिंहरूप होनेसे नर नहीं है, अरु नररूप होनेसे सिंहजी नहीं है, तो क्या है, १ शब्द, २ विज्ञान, ३ कार्य, इनके ज्ञेय होनेसे नरसिंह जो है सो तीसरी जाति है.

२ अथ रूप, रस, गंध, स्पर्श, रूपी अव्ययमें इनकी प्रवृत्ति है. अरु विशेष गुण है, तथा १ संख्या, २ परिमाण, ३ पृथक्त्व, ४ संयोग, ५ विजाग, ६ परत्व, ७ अपरत्व, ये सामान्य गुण हैं, इनकी सर्व अव्ययमें वृत्ति है. तथा १ बुद्धि, २ सुख, ३ दुःख, ४ इष्टा, ५ द्वेष, ६ प्रयत्न, ७ धर्म, ८ अधर्म, ९ संस्कार, ये आत्माके गुण हैं. तथा गुरुत्व, पृथिवी पाणीमें है, अव्ययत्व पृथिवी, जल, अरु अग्निमें है, स्नेह जलमेंही है, वेग नाम संस्कार ये मूर्त अव्ययोंमें हैं, अरु शब्द आकाशका गुण है, तिनमें संख्या विक सामान्य गुण रूपादिवत् अव्ययस्वभाव होने करके, अरु परोपाधिते गुणही नहीं है, क्योंकि जघ गुण, अव्ययसे पृथक् हो जावेंगे, तब अव्ययके स्वरूपकी हानी हो जावेगी, “गुणपर्यायवद्बन्ध” इस कहने करके गुण जो है, सो अव्ययसे न्यारे नहीं हैं, अव्ययके ग्रहणहीसे गुणका ग्रहण न्याय है, परंतु पृथक् पदार्थ माननां अयुक्त है, अरु शब्द जो है, सो आकाशका गुण नहीं है, क्योंकि यह तो पौञ्छलिक है, अरु आकाश तो अमूर्त है, अरु शेष जो वेशेपिकने कहा है सो प्रक्रियामात्र है, साधन इ पणोंका अंग नहीं हैं.

३ अरु कर्मजी गुणवत् पृथक् पदार्थ माननां अयुक्त है.

४ अथ सामान्य दो प्रकारके हैं, एक पर, दूसरा अपर. तिनमें पर सा मान्य महासत्ता नाम हैं, अव्ययदि तीन पदार्थोंमें व्यापी हैं, अरु जो अपर है, सो अव्ययत्व गुणत्व कर्मत्वादिक है, तिनमें महासत्ताकों पृथक् पदार्थ माननां अयुक्त है. क्योंकि सत्तामें जो सत् यह प्रत्यय है, सो और

किसी सत्ताके योगसें हैं ? वा स्वरूप करके हैं ? जे कर कहोगे कि और सत्ताके योगसें हैं, तब तो तिस सत्तामें सत् प्रत्यय, और सत्ताके योगसें होना चाहियें ? ऐसे करतां अनवस्था दूषण आता है, अरु जे कर कहोगे कि स्वरूप करके सत् है, तब तो द्रव्यादिकजी स्वरूप करके सत् हैं, तब तो अजाके गलेके स्तनोकी तरे निःफल सत्ताके कल्पनेसें क्या प्रयोजन है, एक औरजी बात है कि द्रव्यादिक जो हैं, सो सत्ताके योग होनेसें सत् कहे जाते हैं ? अथवा सत्ताके संबंध विनाही सत् स्वरूप हैं ? जे कर कहोगे कि स्वतः ही सत् स्वरूप हैं, तब तो सत्ताकी कल्पना करनी व्यर्थ है, जे कर कहोगे कि सत्ताके योगसें सत् है, तब तो शशविषाणजी सत्ताके योगसें सत् होना चाहियें ॥ तथा चोक्तं ॥ श्लोक ॥ स्वतोऽर्थाः संतु सत्ताव, त्सत्तया किं सदात्मनां ॥ असदात्मसु नैपात्या, त्सर्वथा ति प्रसंगतः ॥ १ ॥ इत्यादि येही दूषण तुल्य योग हेम होनेसें अपर सामान्यमेंजी जोर लेनें. तथा हमजी सामान्य विशेष रूप होनेसें वस्तुकों कथंचित् सामान्यरूप मानतेही हैं, इस वास्ते द्रव्यके ग्रहण करणसें सामान्यकाजी ग्रहण हो गया, इस हेतुसें सामान्य जो है, सो कुछ द्रव्यसें पृथक् पदार्थ नहीं.

५ अथ विशेष जो है, सो अत्यंत व्यावृत्ति बुद्धिके हेतु होने करके वैशेषिकोंने माने हैं. तहां यह विचार करते हैं कि तिन विशेषोंने जो विशेष बुद्धि है, सो अपर विशेषों करके है ? वा स्वतः ही स्वरूप करके है ? अपर विशेष हेतुक तो नहीं है, अनवस्था अरु विशेषमें विशेषका अंगीकार नहीं है, जे कर कहोगे कि स्वतः ही विशेष बुद्धिके हेतु हैं, तब तो द्रव्यादिकजी स्वतः ही विशेष बुद्धिके हेतु है, तो फेर विशेषोंको द्रव्यसें अतिरिक्त पदार्थ कल्पने व्यर्थ हैं. अरु द्रव्योंसें अव्यतिरिक्त विशेषोंको सर्व वस्तुओंको सामान्य विशेषात्मक होनेसें हमजी मानते हैं.

६ अरु समवाय जो है, सो अयुत सिद्ध आधार आधेय चूतोंका जो इह प्रत्ययका हेतु है. सो समवाय कहते हैं, अरु समवाय जो है, सो नित्य अरु एक है, ऐसे वैशेषिक मानते हैं. तिस समवायके नित्य होनेसें समवायीजी नित्य होने चाहियें. जे कर समवायी अनित्य हैं, तो समवायी अनित्य होना चाहियें ? क्योंकि समवायका आधार समवायी है, इस

वास्ते. तथा समवायके एक होनेसे समवायीजी एकही होने चाहियें, अथवा समवायीयोंके अनेक होनेसे समवायजी अनेक रूप होना चाहियें, तथा यह जो समवाय पदार्थोंका समवायी संबंध करता है, सो समवाय उन पदार्थोंके साथ अपणा संबंध अथवा समवायके योगसे करता है ? किंवा आपही अपणा संबंध करता है ? जे कर कहोगे कि अथवा समवायसे करता है, तब तो अनवस्थायूपण है. अरु समवायजी दूसरा है नहीं, जे कर कहोगे कि आपही आपणा संबंध करता है, तब तो गुण क्रियादिकजी ड्रव्यसे स्वरूप करके तथा अविष्यंगत्वाव संबंध करके संबंधी है, तब तो समवायजी कल्पना व्यर्थही है.

ऐसे वैशेषिक मतमेंजी सम्यक् पदार्थोंका कथन आतोक्त नहीं, तथा नैयायिक वैशेषिक मतमें जो मोक्ष मानी है, सोजी प्रेक्षावानोंको मानने योग्य नहीं है, क्योंकि जब आत्मा ज्ञानसे रहित होवे, एतावता जरूरूप हो जावे, तब आत्माको मोक्ष मानते हैं, ऐसी मोक्षको कौन बुद्धिमान् उपादेय मानता है ? क्योंकि ऐसा कौन बुद्धिमान् है, जो सर्व सुख और ज्ञानसे रहित पापाण तुल्य आपणी आत्माको करना चाहे ? इसी वास्तेकि सीने वैशेषिकोंका उपहासजी करा है, सो कहते हैं ॥ श्लोक ॥ वरं वृंदावने रम्ये, कोमलमज्जिवांठति ॥ ननु वैशेषिकीं मुक्तिं, गीतमोगंतुमिच्छति ॥ १ ॥ अन्वयार्थः—स्वर्गके जो सुख हैं, सो सोपाधिक, सावधिक, परिमितआनंद रूप हैं, अरु मोक्ष जो है, सो नेरुपाधिक, नेरवधिक, अपरमितानंद ज्ञानसुख स्वरूप, विचक्षण पुरुष कहते हैं, जब मोक्ष होना पापाणके तुल्य है, तब तो ऐसी मोक्षसे कुछ प्रयोजन नहीं. इससेतो संसारही अथा है कि जिस संसारमें दुःख करके कल्पित सुख जोगनेमें आता है, जरा विचार तो करो, कि थोड़े सुखका जोगना अथा है ? वा सर्व सुखों का उद्देश अथा है ? इत्यादि विशेष चर्चा स्याद्वादमंजरीकी टीकासे जाननी. इस वास्ते नैयायिक मत, अरु वैशेषिक मत उपादेय नहीं है ॥ इति ॥

अथ सांख्य मतका खंडन सिखते हैं. सांख्य मतका स्वरूप तो उपरसिखा है, सो जान लेना, सांख्यका मत ठीक नहीं है, क्योंकि परस्पर विरोधी सत्य, रजो, तम, गुणोंका प्रकृति रूपोंका गुणीके बिना एकत्र अवस्थान अर्थात् रक्षा युक्त नहीं है, जैसे कृष्ण श्वेतादि गुण गुणी बिना एकत्र नहीं रह

सके हैं, तथा महदादि विकारके होनेमें प्रकृतिमें विषमता उत्पन्न करनेमें कोई भी कारण नहीं है, क्योंकि प्रकृतिके बिना और वस्तु, सांख्य कोइ मानते नहीं हैं, और आत्माको अकर्ता अकिंचित् कर मानते हैं, जे कर स्वभावसे वैषम्य मानेंगे तब निहेतुकताकि आपत्ति होवेगी, क्योंकि जो कार्य कभी होवे, और कभी न होवे, वो हेतुके बिना नहीं हो सका है, और जो खरभृंगादि नित्य असत् हैं, तथा आकाशादिनित्य सत् हैं, सो हेतुसे नहीं होते हैं ॥ उक्तं च ॥ श्लोक ॥ नित्यसत्त्वमसत्त्वं वा, हेतो रन्यानपेक्षात् ॥ अपेक्षातो हि जावानां, कदाचित्तत्त्वसंभवः ॥ १ ॥

तथा स्वभाव प्रकृतिते जिन्न है? वा अजिन्न है? जिन्नतो नहीं. क्योंकि प्रकृति बिना सांख्योंने अपर कोइ वस्तु मानी नहीं है, जे कर कहेंगे कि अजिन्न है, तब तो प्रकृति है "नतुस्वभाव" (स्वभाव नहीं है.)

तथा एक और भी बात है कि महत् और अहंकार ज्ञानसे जिन्न हम नहीं देखते हैं, सोइ दिखावते हैं, कि बुद्धि जो है सो अध्यवसाय मात्र है, और अहंकार जो है सो अहं सुखी, अहं दुःखी, ऐसे स्वरूप वाला है, इन दोनोंको चिह्न होनेसे आत्माका गुणत्व पण है, परंतु जरूप प्रकृतिका विकार नहीं.

तथा यह जो तन्मात्रोंसे जूतोंकी उत्पत्ति मानते हैं, कि जैसे १ गंध तन्मात्रात् पृथिवी, २ रस तन्मात्रासे जल, ३ रूप तन्मात्रासे अग्नि, ४ स्पर्श तन्मात्रासे वायु, ५ शब्दतन्मात्रासे आकाश, यह भी माननां युक्ति नहीं है. जे कर पाण्डितकी अपेक्षा करके कहते हो सो अयुक्त है. इन पाण्ड पांच जूतोंके सदाही होनेसे उत्पत्ति नहीं "न कदाचिदनीदृशं जगत् इति वचनात्" अर्थात् यह जगत् प्रवाद करके अनादि कायसे ऐसाही ब्रह्मा आता है.

जे कर कहेंगे कि प्रति शरीरकी अपेक्षा हम कहते हैं, तिनमें नृत्वा. दान. कठिन सहाय पृथिवी है. श्लेष्म रक्षि उव सहाय आर (जल) है. पंक्ति सहाय अग्नि है. पानाशन सहाय वायु है. शुद्धि अर्थात् पोषाण सहाय आकाश है. यह भी कहनां ठीक नहीं है. क्योंकि तिनमें भी तिनने शरीरोंकी उत्पत्ति बिनाका शुभ. और मानाके रक्षित होती है. तहां तन्मात्राओंकी गंध भी नहीं है. इन अजड वस्तुओं का

कल्पनेमें अति प्रसंग दूषण है, अरु अंज, उज्जि, अंकुरादिकोंकीजी उत्पत्ति अपरही वस्तुसँ होती दीख पडती है, इस वास्ते महदहंकारादिकोंकी उत्पत्ति जो सांख्योंनें अपनी प्रक्रिया करके मानी है, सो युक्ति रहित मानी है, केवल अपने मतके रागसँही यह माननां है. अरु आत्माको अकर्ता माने हैं, तब तो कृतनाश अकृतान्यागम दूषण है, अरु बंध मोक्षका अज्ञाव है, अरु निर्गुण होनेसँ आत्मा ज्ञानशून्य हो जावेगी, इस वास्ते यह सर्व पूर्वोक्त बालप्रलापमात्र है.

अथ सांख्यमतकी मोक्ष विचारियें हैं, “प्रकृतिपुरुषांतरपरिज्ञानात् मुक्तिः” अर्थात् प्रकृति पुरुषसँ अन्य है, ऐसा जब ज्ञान होता है, तब मुक्ति होती है. सोइ दिखाते हैं ॥ श्लोक ॥ शुद्धचेतन्यरूपोयं, पुरुषः पुरुषार्थतः ॥ प्रकृत्यंतरमज्ञात्वा, मोहात्संसारमाश्रितः ॥ १ ॥ जावार्थः—पुरुष जो है, सो परमार्थसँ शुद्ध चेतन्यरूप है, अपणें आपको प्रकृतिसँ एकमेक समजता है, इस मोहसँ संसारको आश्रित हो रहा है, तिस हेतुसँ प्रकृतिसुखादि स्वभावसँ जहां लगी विवेक करके न ग्रहण करेगा तहां लगी मुक्ति नहीं. अरु केवल ज्ञानके उदय होनेसँ मुक्ति है, यहजी असत् है, क्योंकि आत्मा एकांत नित्य है, अरु सुखादिक जो हैं, सो उत्पाद व्यय स्वभाव वाले हैं, तब तो विरुद्ध धर्म संसर्गसँ आत्मासँती प्रकृतिका जेद प्रतीतही है, तो फेर मुक्ति क्यों नहीं ?

अथ यही तो संसारी विचार नहीं करता है, इस वास्ते मुक्ति नहीं. जे कर ऐसँ कहोगे तब तो तुमारे कहनेसँ कदापि मुक्ति नहीं होवेगी, ऐसा विवेकाध्यवसाय संसारीको कदापि नहीं हो सका है, सोइ दिखाते हैं, जहां लग संसारी है, तहां लग विवेक परिज्ञावना करके संसारी पणा छूट नहीं होता है, इस वास्ते विवेकाध्यवसायके अज्ञावसँ कदापि संसारसँ छूटनां नहीं है.

एक औरजी बात है, कि इस सृष्टिके पहिला केवल आत्मा है, ऐसे तुम मानते हो, तब फेर आत्माको संसार कहाँसँ लिपट गया ? जे कर कहोगे कि निर्मल आत्माको संसार लिपट जाता है, तब तो मोक्ष दूआ पीठें फेरजी संसार लिपट जायगा, तब तो मोक्षजी क्या दूइ, एक विनयना खमी हो गई.

पूर्वपक्षः—सृष्टिसं पहिलां आत्माकों दिदृक्षा जइ, तव तिस दिदृक्षाके व शसैं प्रधानके साथ आपणा एकरूप देखने लगा, तव संसारी हो गया, अरु जब प्रकृतिका दुष्टपणा विचारमें आया, तव प्रकृतिसैं वैराग्य हुआ, फेर प्रकृतिविषे दिदृक्षा नहीं, तव संसारजी नहीं.

उत्तरपक्षः—यहजी तुमारा कहनां स्वकृतांत विरोध होनेसैं अयुक्त है, तोई दिखाते हैं. दिदृक्षा सो देखनेकी अजिलापाका नाम है, सो अजिलापा पूर्व देखे हूये पदार्थोंमें तथा स्मरणसैं होता है अरु प्रकृति तो पूर्व कदापि देखी नहीं है, तव कैसे तिस विषे स्मरण अजिलापा होवे ? जे कर कहो गेकि अनादि वासनाके वशसैं प्रकृतिमेंही स्मरण अजिलापा है, सोजी असत् है, क्योंकि वासनाजी प्रकृतिका विकार होने करके प्रकृतिके पहिलां नहीं थी, जे कर कहोगेकि वासना जो है, सो आत्माका स्वभावरूप है, तव तो आत्मस्वरूपवत् वसनाका कदापि अज्ञाव नहीं होवेगा, अरु मोक्षजी कदापि नहिं होवेगी, तव तो सांख्यका मतजी बालकोंका खेल जैसा हो गया ॥ इति सांख्यमत खंनन समाप्तम् ॥

अथ मीमांसक मतका खंनन लिखते ॥ इस मतका स्वरूप उपर लिख आये हैं, अरु वेदांतियोंके ब्रह्म (अद्वैत)का खंनन ईश्वर वादमें अछी तरेसैं कर चुके हैं. इस वास्ते यहां नहीं लिखा. इति मीमांसक मत ॥

अथ जैमिनीयमतका खंनन लिखते हैं. जैमिनीया असैं कहते हैं, कि जो “हिंसागाध्यात्” अर्थात् इंद्रियोंके रस वास्ते अथवा कुव्यसन करके करियें सोइ हिंसा अधर्मका हेतु है, प्रमादके उदय करनेसैं शौनिक बु धकादिकोंकी तरें अरु वेदोंमें जो हिंसा कही है. सो हिंसा नहिं है. किंतु धर्मका हेतु है. देवता, अतिथि. पितरोंके प्रीतिसंपादक हो नेसैं तथाविध पूजा उपचारवत् अरु यह प्रीति संपादकत्व असिद्ध नहीं है, क्योंकि कारीरी प्रभृति यज्ञोंके स्वलाध्य विषे वृष्ट्यादि फलोंका जो अ व्यजिचारी पणा है, सो यज्ञ करनेसैं जो देवता तृप्त होते हैं, वो वृष्ट्या दिकोंके हेतु हैं. अनेही “त्रिपुर्णवर्णिन उगल” अर्थात् बकरेके मां सका होम करनेसैं परराष्ट्रका जो वश होनां है. सोजी उन मांसकी आहु तीयोसैं तृप्त हूये होय देवताओंकाही अनुभाव है. अन अतिथि प्रीतिनी “मधुसंपर्कसंस्कारादिसमान्वादजा” प्रत्यक्षही दीग्व पडना है. अन पित

रोके तांइ जो श्राद्ध करते हैं, उस करकें पितर तृप्त हुवे होयें, स्वसंता नकी वृद्धि प्रत्यक्षही करते दीखते हैं, अरु इस बातमें आगमजी प्रमाण देताहैं, आगममें देव प्रीत्यर्थ अश्वमेध, नरमेध, गोमेधादिक करणे कहे हैं, अरु अतिथि विषय "महोक्षं वा महाजं वा, श्रोत्रियाय प्रकल्पयेदिति" ऐसा कहा है, अरु पितरोंकी प्रीति वास्ते यह श्लोक है ॥ श्लोक ॥ द्वा मासौ मत्स्यमांसेन, त्रीन् मासान् हारिणेन तु ॥ और त्रेणाय चतुरः, शा कुनेनेह पंच तु ॥ १ ॥ षण्मासं छागमांसेन, पार्षतेनेह सप्त वै ॥ अष्टाये णस्य मांसेन, रोरवेण नवैव तु ॥ २ ॥ दशमासांस्तु तृप्यन्ति, वराहमहि पामिपेः ॥ शशकूर्मयोर्मासेन, मासानेकादशैव तु ॥ ३ ॥ संवत्सरं तु गव्येन, पयसा पायसेन तु ॥ बाघीणेशस्य मांसेन, तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥ ४ ॥ यह श्लोक स्मृतिके हैं, इनका अर्थ कहते हैं.

जे कर पितरोंको मत्स्यका मांस देवे तो पितर दो मास लग तृप्त रहते हैं. जे कर हरिणका मांस पितरोंको देवे, तो पितर तीन मास लग तृप्त रहते हैं, जे कर मीढेका मांस पितरोंको देवे, तब चार मास लग पितर तृप्त रहते हैं, जे कर जंगली कूकडका मांस पितरोंको देवे, तो पितर पांच मास तृप्त रहते हैं ॥ १ ॥ जे कर बकरेंका मांस देवे, तो पितर षण्मास लग तृप्त रहते हैं, जे कर पृषतविंदु करकें युक्त जो हरिण होवे, उसको पार्षत कहते हैं, तिसका मांस जो पितरोंको देवे, तो पितर सात मास लग तृप्त रहते हैं, जे कर एण मृगका मांस देवे, तो आठ मास लग पितर तृप्त रहते हैं, जे कर बडे काले मृगका मांस देवे, तो नव मास लग पितर तृप्त रहते हैं, जे कर सूवर अरु महिषका मांस देवे, तो दश मास लग पितर तृप्त रहते हैं, जे कर शश अरु कछु, इन दोनोंके मांस देवे, तो अग्यारह मास लग पितर तृप्त रहते हैं, जे कर गोकु झूष अथवा खीर देवे, तो बारह मास लग पितर तृप्त रहते हैं, तथा बाघीण कहते हैं जो अति बूढा बकरा होवे तिसका मांस देवे, तो बार वर्ष लग पितर तृप्त रहते हैं, यह मीमांसक मानते हैं.

अब इसका खंन लिखते हैं. कि हे मीमांसक? वेदोंमें जो हिंसा कही है, सो धर्मका हेतु कदापि नहीं हो सकी है: इस तुमारे कहनेमें प्रकट स्ववचनविरोध है, तथाहि. जे कर धर्मका हेतु है, तब तो हिंसा क्यों कर

सा निंदनीय कर्त्ता नहीं है, क्योंकि तिस हिंसाके करने वाले याज्ञिक ब्राह्मणोंको जगतमें पूजनिक देखते हैं;

उत्तरपक्षः—यहर्त्ता तुमारा कहनां अस्तत् है, क्याकि जितने दृष्टांत तुम ने कहे हैं, सो सर्व वैपम्य है, इस वास्ते सिद्धि कुवर्त्ता नहीं कर सके हैं. लोहेका जो पिंरु, पत्रादि रूप होनेसें जलके उपरि तरता है, सो परिणामांतर होनेसें तरता है, परंतु वेद मंत्रोंसें संस्कार करके जव पशुको मारते हैं, तब उसमें क्या परिणामांतर होता है ? क्या उस परिणामांतर सें उन पशुओंको मारते दुःख नहीं होता है ? दुःख करके तो वे प्रगट अर राट शब्द करते हैं, तो फेर लोह पत्रका दृष्टांत कैसें समीचीन हो सका है ?

पूर्वपक्षः—जो पशु यज्ञमें मारे जाते हैं, वो सर्व देवता हो जोते हैं, यह यज्ञ करनेमें परोपकार है.

उत्तरपक्षः—इस बातमें कौनसा प्रमाण है ? तिसमें प्रत्यक्ष प्रमाण तो नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्ष तो इन्द्रिय संबंध वर्त्तमान वस्तुकाही प्राहक है, “संबंधोवर्त्तमानं च, गृह्यते चक्षुरादिनेति वचनात्” अरु अनुमानर्त्ता नहीं है, क्योंकि तत्प्रतिबद्धलिंग कोइर्त्ता नहीं दीखता है, अरु आगम प्रमाणर्त्ता नहीं. क्योंकि आगम तो ऊगढेका घर है, इस वास्ते सिद्धि हूआ नहीं है. तथा अर्थापत्ति अरु अनुमान यह दोनो अनुमानकेही अंत गत है, तो अनुमानके खंरुनेसें यहर्त्ता दोनुं खंरुन हो गये.

पूर्वपक्षः—जैसें तुम जिनमंदिर बनाते हूये पृथिवीकायादि जीवोंकी हिंसाको परिणाम विशेष करके पुण्यके तांइ कटपते हो, ऐसें हमर्त्ता यज्ञमें जो हिंसा करते हैं, सो पुण्यके वास्ते है, क्योंकि वेदोक्त विधि विधान रूप परिणाम विशेष इहांर्त्ता निःसंदेह होनेसें पुण्य क्यों कर नहीं होता ?

उत्तरपक्षः—परिणाम विशेषर्त्ता वेही पुण्यका कारण होते हैं, जहां ओर कोइ उपाय न होवे, अरु यत्नसें प्रवृत्त होवे, ऐसी प्रवृत्ति जिनमंदिरमें हो सकी है, क्योंकि जिनमंदिरके बिना श्रीजगवान्की प्रतिमा रहती नहीं जहां प्रतिमा रहेगी उसीका नाम जिनमंदिर है, जे कर कहोगेकि जिनप्रतिमा पूजनेसें क्या लाभ है ? तो हम तुमकुं प्रवृत्ते हैं कि जो पुस्तकमें ककारादि अक्षर लिखते हो, इनके लिखनेसें क्या लाभ है ? जे कर कहोगे कि ककारादि अक्षरोंकी स्थापना देखनेसें वस्तुका ज्ञान होता है, तो तें

सैही जिनप्रतिमा देखनेसेंजी श्रीजिनेश्वर देवके स्वरूपका ज्ञान होता है, जे कर कहोगेकि प्रतिमा तो कारीगरने पापाणकी बनाइ है, इससें क्या ज्ञान होता है? तो हम पूछते हैं कि वेद, कुरान, इंजील, प्रमुख पुस्तक लिखा रीयोंने स्याही. और कागजोंके बनाये हैं, इनसें क्या ज्ञान होता है? जे कर कहोगेकि ज्ञान तो हमारी समजसें होता है, अर्द्धांकी स्थापना तो हमारे ज्ञानका निमित्त है, तैसेही जिनेश्वरदेवका ज्ञान तो हमारी समजसें होता है परंतु उस स्वरूपका निमित्त प्रतिमा है. क्योंकि जो बुद्धिमान् पुरुष, किसी वस्तुका नकशा नहीं देखेगा, अर्थात् चित्र नहीं देखेगा, वो कजी उस वस्तुका स्वरूप नहीं जान सकेगा? इस वास्ते जो बुद्धिमान् है. वो अवश्य स्थापना मानता है.

जे कर कहोगेकि परमेश्वर तो निराकार, ज्योतिःस्वरूप, सर्व व्यापक है, तिसकी मूर्ति क्योंकर बन सकी है?

उत्तर:—यह तुमारा कहनां बड़े उपहासका कारण है, क्योंकि जब तुमने परमेश्वरका रूप आकार (मूर्ति) नहीं मानी, तब तो वेद, वा इंजील, वा कुरान, इनकों परमेश्वरका वचन माननां क्यों कर सत्य हो सकेगा? बिना मुखके साक्षर शब्द कदापि नहीं हो सका है.

जेकर कहोगेकि ईश्वर, बिनाही मुखके शब्द कर सका है, तो इस बात कहेनेमें कोई प्रमाण नहीं, इस वास्ते जो साक्षर शब्द है, सो बिना मुखके नहीं, अरु शरीरके बिना मुख नहीं हो सका है, इस वास्ते जो कोई वादी किसी पुस्तकों ईश्वरका वचन मानेगा, वो जरूर ईश्वरका मुख और शरीरजी मानेगा, अरु जब शरीर माना, तब जगवान्की प्रतिमाजी जरूर माननी पड़ेगी, जब प्रतिमा सिद्ध हो गई. तब मंदिरजी जरूर बना नां पड़ेगा, इस वास्ते जिनमंदिरका बनानां जो है. सो आवश्यक है. अरु जो बनाने वाला है, सो यल पूर्वक बनाता है. अरु पृथिवी कायादिक के जो जीव हैं, सो अस्पष्ट चेतन्य हैं. उनकी हिंसामें अल्प पाप अरु बहुत निर्झरा हैं. अरु तुमारे पदमें तो श्रुति. स्मृति, पुराण. इतिहास प्रमुखोंमें यम नियमादिकों करकेजी स्वर्गकों होना कहा है. तो फेर कृपण, दीन. अनाथ, ऐसे पंचेद्रिय जीवोंका बध काहेकों बडमें करते हा? इससें यही सिद्ध होता है कि जो तुन निरपराध. कृपण, दीन, अनाथ,

उत्तरपक्षः—यहजी कहनां व्यञ्जिचारी हे. क्योंकि इह लोकमें विवाह, गर्जाधान, जातकर्मादिकोंके विषे तिन मंत्रोंका व्यञ्जिचार देखनेमें आता हे, तो अदृष्ट स्वर्गादिकोंमेंजी तिनोके व्यञ्जिचारका अनुमान करते हैं, क्योंकि वेदोक्त मंत्रो करिकें संस्कार करे दूये विवाहसँजी अनंतरही स्त्री, विधवा, अल्पायुष्या, दारिद्र्यादि उपद्रव करकें विधुर होते दूये देखनेमें आते हैं, अरु वेद मंत्रोंके संस्कार विनाजी कितनेक विवाह करने वाले सुखी, धनी, आदिक दीखते हैं.

पूर्यपक्षः—जिस विवाहादिकोंमें विधवादि हो जाती हैं तहां क्रियाकी वैगुण्यतासँ विसंवाद होता है.

उत्तरपक्षः—इस तुमारे कहनेमें यह संशय कर्जी दूर नहीं होवेगा, क्या तहां क्रियाकी वैगुण्यता विसंवादका हेतु है ? किंवा वेदमंत्रोंकी असमर्थता विसंवादका हेतु है ?

पूर्यपक्षः—जैसे तुमारे मतमें “आरोग्य बोहिखाजं समाहिवरमुत्तमं विंशु” इत्यादिक वचनोंका काळांतरमेंही फल चाहते (चाँठते) हैं, अैसे हमारे अ निमत वेद वचनोंकाजी इस लोकमें फल नहीं कढपना करते हैं, किंतु लोकांतरमें फल होता है. इस वास्ते विवाहादिकका उपाखंतायकाश नहीं.

उत्तरपक्षः—अहो वचन वेचित्री ! जैसे वर्त्तमान जन्मविषे विवाहादिकोंमें प्रयुक्त मंत्र, संस्कारों करकें आगम जन्ममें तिसका फल है अैसेही द्वितीयादि जन्ममेंजी विवाहादिकोंके पुण्य हेतु माननेसँ अनंत नवोंका अनुसंधान होवेगा, अैसे नो कदापि संसारकी समाप्ति नहीं होवेगी, नय नो किसीकोनी मोक्षप्राप्ति नहीं, इस्से यही सिद्ध दृष्टा जो वेदही अपर्यवसित संसार बल्लरीका मूख (कंद) है, अरु आरोग्यादि प्रायेना जो है, सो अमत्य अमृषा नाषा है, परिणाम विशुद्धिका कारण होनेमें दोषके वास्ते नहीं, क्योंकि नहां नाय आरोग्यादिककीही विवक्षा है, अरु वो जो आरोग्यपणा है, सो चानुर्गनिक संसार स्रक्षण नायगोग परिहाय रूप होनेमें उत्तम फल है. तिस विषयक जो प्रायेना है, वो कैसे विवेकवानोंको आदरणीय नहीं ? अैसेनी मन कहनां जो परिणाम शुद्धिसँ तिस फलकी प्राप्ति नहीं. क्योंकि भय वादीयोंके नायशुद्धिसँ फल पानेमें विवाद नहीं. अैसेनी मन कहनां जो वेदविद्विन हिंसा चुरी नहीं, क्यों

किं सम्यक् दर्शनं ज्ञानं संपन्नं अविमर्शप्रतिपन्नं वेदांतवादीयोनंजी निं दी है. “तथा च तत्त्वदर्शिनः पठन्ति ॥ श्लोक ॥ देवोपहारव्याजेन, य इव्याजेन वाद्यवा ॥ घ्नन्ति जंतून् गतघृणाः, घोरां ते यांति दुर्गतिं ॥ १ ॥ वेदांतिका अप्याहुः ॥ अंधे तमसि मज्जामः, पशुजिये यजामहे ॥ हिंसा ना म जवेद्ध्मों, न जूतो न जविष्यति ॥ १ ॥ “तथा अग्निर्मांसे तस्मात् हिंसाकृ तादेन सोमं चतुर्वांसं त्वान्मोचयतु इत्यर्थः” व्यासेनाप्युक्तं ॥ ज्ञानपालिप रिक्षिते, ब्रह्मचर्यदयां जसि ॥ स्नात्वातिविमले तीर्थे, पापपंकापहारिणि ॥ १ ॥ ध्यानाग्नौ जीवकुंरुस्ये, दममारुतदीपिते ॥ अस्तकर्मसमिक्षेपे, रग्निहोत्रं कुरुत्तम ॥ २ ॥ कपायपशुनिर्दुष्टै, धर्मकामार्थनाशकैः ॥ शममंत्रहुतैर्यज्ञं, वि धेहि विहितं बुधैः ॥ ३ ॥ प्राणिघाताजु यो धर्म, मीहते मूढमानसः ॥ स वांठति सुधावृष्टिं, कृष्णाहिमुखकोटरात् ॥ ४ ॥ इत्यादि.

अरु जो यज्ञ करने वालों को पूजनिक पणा तुम कहते हो, सोजी असा र है, क्योंकि अबुद्ध जनही उनको पूजते हैं, नतु विविक्त बुद्धिमान्, अरु मूर्खोंका जो पूजना है, सो प्रामाणिक नहीं, क्योंकि मूर्ख तो कुत्ते औ गधेकोजी पूजते हैं.

अरु जो तुमने कहा था कि देवता, अतिथी, पितृ प्रीति संपादक होने से वेद विहिता हिंसा, दोषके तांश नहीं, यहजी जूठ है, क्योंकि देवता ओंके संकल्प मात्रसेही अजिमत आहारके रसका स्वाद प्राप्त हो जाता है, अरु देवताओंका शरीर वैक्रियरूप है, सो तुमारी जुगुप्सित पशुमांसा दि आहुतिके लेनेको उनकी इच्छाही नहीं हो सकती है, क्योंकि औदारिक शरीर वालेही तिन मांसादिकोंके ग्राहक है, जे कर देवताओंकोजी कवल आहारी मानोगे, तब तो देवताओंका शरीर तुमने मंत्रमय माना है, तिस के साथ विरोध होवेगा, अरु अच्युपगमकी बाधा है, देवताओंका शरीर मंत्रमय तुमारे मतमें असिद्ध नहीं है, “चतुर्थ्यंतं पदमेव देवता इति जैमि नीय वचनप्रामाण्यात् ॥ तथा च ॥ मृगैः शब्देतरत्वे युगपद्भिन्नदेशेषु यष्टु नसा प्रयाति सांनिध्यं मूर्त्तत्वादस्मादिवदिति”

तथा जिस वस्तुकी आहुति देवताओंको देते हैं, वोतो जस्सीजावमा त्र हो जाती है, तो फेर देवता क्या उस जस अर्थात् राखको खाते हैं? इस वास्ते तुमारा कहना प्रलापमात्र है.

तथा एक औरजी बात है, यो यह त्रेताग्नि है, सो तेतीस कोटि देवताओं का मुख है, “अग्निमुखा वै देवा इति श्रुतेः” तब तो उत्तम, मध्यम, अधम, सर्व देवता एकही मुख करके खाने वाले सिद्ध हूये. अरु सर्व आपसमें जुड़ खाने वाले बन गये, तब तुरकोंसेंजी अधिक हो गये- क्यों कि तुरकजी एक पात्रमें एकछे खाते हैं, परंतु एक मुख करके सर्व नहीं खाते हैं.

एक औरजी दूषण है, एक शरीरमें मुख बहुत हैं: यह बात तो हम आगेज्जी सुनते थे, परंतु अनेक शरीरोंका एक मुख, यह तो बड़ा आश्चर्य है. जब सर्व देवताओंका एक मुख माना, तब तो किसी पुरुषने जब एक देवताकी पूजादि करके आराध्या, अरु अन्य देवताओंकी निंदादि करके विराध्या, तब तो एक मुख करके युगपत् अनुग्रह, निग्रह, वाक्यके उच्चारणमें संकरका प्रसंग होवेगा.

तथा एक औरजी बात है कि, मुख जो है सो देहका नवमा भाग है, तो जब उन देवताओंका मुखही दाहात्मक है, तब एक एक देवताका शरीर दाहात्मक होनेसें तीनो जवनही जस्मीभूत हो जाने चाहियें? इत्यलमतिचर्चया ॥

अरु जो कारीरी यज्ञादिकोंमें वृष्ट्यादि फलका अव्यभिचार है, तिस फलमें आहुति करके प्रीणीत देवताका अनुग्रह जो तुम कहते हो सोजी अनेकांतिक है. किसी जगे व्यभिचारजी देखनेमें आता है, अरु जहां व्यभिचार नहीं, तहांजी आहुतिके जोजन करनेसें अनुग्रह नहीं. किंतु वो देवता विशेष अतिशय ज्ञानी हैं, स्वउद्देश्य पूजोपचारकों देख करके, अपने स्थानमेंही स्थित हूये उनके पूजा करने वाले प्रति प्रसन्न हो कर उसका कार्य, अपनी इच्छासें कर देता है: अनुपयोय करके अनजानता अथवा जानता थकाजी पूजकके अज्ञान्य करके कार्य नहींजी करता? क्योंकि अव्य, दोष, काल, जावादि सहकारियों करके कार्यका होनां दिख पडा है, अरु वो जो पूजा उपचार है, सो निःकेवल पशुओंहीके मारनेसें नहीं हो सकी, दूसरी तरेसेंजी हो सकी है, तो फेर पाप एक फल रूप शौनिकवृत्ति करनेसें क्या है?

अरु जो ठगल अर्थात् धकरके मांस होमनेसें परराष्ट्र वश करने वाली सिद्धयादेवीके परितोष होनेका जो अनुमान है, तो इसमें क्या आश्चर्य है?

क्योंकि कितनेक झुड़ देवताओं तैसँही प्रीति है, तहाँजी वे दुष्ट देव सो अपनी पूजा देखके राजी होते हैं, परंतु मखिन (बीजत्स) मांसके खाने सँ नाहीं राजी होते, जे कर होम करी हूइ वस्तुकों खाते हैं, तब तो निं वपन्न, कसुवा तेल, आरनाल, धूमांशादिनी दूयमान डव्यजी तिनका भोजन हो जावेगा, बाहू क्याही तुमारे देवता सुंदर भोजन करते हैं !

अरु अतिथिकी जो प्रीति है, सो संस्कार संपन्न पकानादिक करकेंजी हो सकी है, तो फेर तिनके अर्थ महोक्त महाजादिकोंका कल्पनां सो निःकेवल तुमारी निर्विवेकताकों कहता है.

अरु श्राद्धादिकोंके करनेसँ पितरोंकी जो प्रीति है, सोजी अनेकां तिक है, क्योंकि कितनेक श्राद्ध नहींजी करते हैं, तोजी तिनकी संता नवृद्धि देखते हैं, गर्त्तशूकरादिके जेसँ वृद्धि है. तिस वास्ते श्राद्धादिकोंका जो करणां है, सो मुग्ध जनकों विप्रतारणमात्रही फल है. जो पितर लोकांतरमें प्राप्त हूये हैं, सो अपने सुकृत दुःकृत कर्मोंके अनुसार सुर नारकादि गतियोंमें सुख दुःख भोग रहे हैं, तो फेर पुत्रादिकोंके दीये हूये पिंनोंकों क्योंकर भोगनेकी इच्छा कर सके हैं ? “ तथा च युष्मद्युधि नः पवंति ॥ श्लोक ॥ मृतानामपि जंतूनां, श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणं ॥ तं निर्वाणप्रदीपस्य, लेहः संवर्द्धयेच्छिखामिति ॥

तथा श्राद्ध करनेसँ पुण्य क्यों कर उस पितरोंके पास चला जाता हैं ? क्योंकि वो पुण्य तो औरने करा है, अरु पुण्य जो है, सो आप जडरूप है, औ पगोंसँ रहित है. जे कर कहोगेकि उद्देशतो पितरोंहीका है, परंतु पुण्य, श्राद्ध करनेवाले पुत्रादिकोंकों होता है, यहजी कहनां ठीक नहीं पुत्रादिकोंकों पुण्य नहीं होता है, पुत्रादिकोंके मनमें यह वासना नहीं जो हम पुण्य करते हैं, इसका फल हमकों मिलेगा, तो बिना पुण्यकी जावनासँ पुण्य फल नहीं होता है, इस हेतुसँ नतो पितरोंकों, अरु न पुत्रादिकोंकों श्राद्ध करनेका फल है, किंतु विचमेंही त्रिशंकुके दृष्टांत करिकें बिलीन हो गया.

अरु पापानुबंधी जो पुण्य है, वो तत्त्वसँ पाप रूपही है, जे कर कहो ने कि ब्राह्मण जो कुठ खाते हैं, वो उनकों मिलता है, तो इस कहनेकी तुमकोंही सत्यता प्रतीत होती होवेगी, ब्राह्मणोंहीका मोटा उदर दिखला

इ देता है, परंतु उनके पेटमें प्रवेश करके पितर खाते हुये कदापि नहीं दिखते हैं, जोजनावसरमें ब्राह्मणोंके उदरमें प्रवेश करते हुये पितरोंका कोइनी सिंग हम नहीं देखते हैं, केवल ब्रह्मणोहीकों तस होते देखते हैं.

अरु जो तुमने कहाथाकि हमारे पास आगम प्रमाण है, सो तुमारा आगम पोरुपेय है ? वा अपोरुपेय है ? जे कर कहोगेकि पोरुपेय है, तो क्या सर्वज्ञका करा हुआ है ? वा असर्वज्ञका करा हुआ है ? जे कर आर पक्ष मानोगे, तब तो तुमारे मतकी व्यावृत्ति होवेगी, क्योंकि तुमारा यह सिद्धान्त है, “अतीन्द्रियाणामर्थानां, साक्षादष्टा न विद्यते ॥ नित्येन्यो वेदपास्येन्यो, यथार्थत्वविनिश्चयः ॥ १ ॥ इसरे पक्षमें इषण वाले करता के करे हुये शास्त्रका विश्वास नहीं होता है; जे कर कहोगेकि अपोरुपेय है, तब तो संग्रहही नहीं हो सका है, स्वरूप निराकरणसें तुरंगशृंगवत् पुरुषक्रियानुगत रूप इसका है. पुरुष क्रियाके बिना यह क्योंकर हो सका है ? इस धाम्ने जो सादर वचन है, सो पोरुपेयही है, कुमारसंग्रहादि वचनवत्. वचनात्मकही वेद है, “तथा चाहुः ॥ तादवादिजन्मा नतु वर्ष यगों, वर्षात्मको वेद इति स्फुटं च ॥ पुंसश्च तादवादिरतः कथं स्या, वर्षोप पेपोपमिति प्रतीतिः ॥ १ ॥ इति श्रुतिकों अपोरपेयत्व ” अंगीकार करकेती तुमने तदर्थं व्याख्यान पोरुपेयही अंगीकार करी है, अन्यथा “अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः” इसका अर्थ “श्वमांसं नक्षयेत् इति” नियामकके अभावसें अग्नि कयों न हो जाय ? तिस वास्ते यही अत्रा है जो शास्त्रकों पोरुपेय माननां होय. तुमारे हठसें अपोरुपेय वेद माने, तोनी तिसकों प्रतापना नहीं, क्योंकि प्रमाणना जो है, सो आस पुरुषाधीन है, जब वेद प्रमाण न हुये, तब तिन वेदोंका क्या हुआ तथा वेदानुसारी स्मृतिनी प्रमाण भूत नहीं, हिंसात्मक याग आछादिविधि प्रामाण्य विधुरही है.

पूर्वपक्षः—जो यह कहा है कि “न हिंस्यात् सर्वज्जन्तानीत्यादि” करके जो हिंसाका निषेध कर है, सो आत्मसर्गिक मार्ग है, अर्थात् सामान्य विधि है, अरु वेदविहिना जो हिंसा है, सो अपवाद विधि अर्थात् विशेष विधि है, तब तो अपवाद करके उन्मर्गकी वाधा होनेमें वैदिकी हिंसा दोष का कारण नहीं “उन्मर्गादवाद्योरपवादविधिविधीयानिति न्यायान्” तुमारे जेनोंके मतमेंनी पक्षान्त हिंसाका निषेध नहीं है, किन्तुनक कारणोंके

होनेसें पृश्निव्यादिक जीवोंकी हिंसा करनेकी आज्ञा है, अरु जब साधु रोग पीडित होता है, “असंस्तरे” अर्थात् असामर्थ्य होता है, तब आ धाकर्मादि आहारके ग्रहणेकीजी आज्ञा है, ऐसेही हमारे मतमें यज्ञकी हिंसा जो है, सो देवता अतिधिकी प्रीतिके वास्ते पुष्टालंबनरूप होनेसें अपवाद रूप है, इस वास्ते दोष नहीं.

उत्तरपक्ष,—अन्यकार्यके वास्ते उत्सर्ग वाक्य, अरु अन्य कार्यके वास्ते अपवाद पद कहनां, यह उत्सर्ग, अपवाद, कदा जी नहीं हो सका है, किंतु जिस अर्थके वास्ते शास्त्रमें उत्सर्ग कहा है, तिसी अर्थके वास्ते अपवाद होवे, तबही उत्सर्ग अपवाद हो सका है, तिन दोनोंहीको उन्नत नि आदि व्यवहारवत् परस्पर सापेक्ष होनेसेंही एकार्थके साधक हो सके हैं, जैसें जैनोंके संयम पालनेके अर्थ नवकोटि विशुद्ध आहारकों ग्रहण, सो उत्सर्ग है, तैसेंही अव्य, क्षेत्र, काल, जाव, आपत्तमें पननेसें गत्यंतर के अज्ञावसें पंचकादि चला करके अनेपणीयादि आहारकों जो ग्रहण करनां सो अपवाद है, सोजी संयमहीके पालने वास्ते है, ऐसेंजी मत कहनां कि जिस साधुको मरणाही एक शरणा है, तिसको गत्यंतर अज्ञाव की अतिछि है ॥ उक्तं चर्पिजिः ॥ सबब संजमं सं, जमाउं अप्पाणमेवर खिज्जा ॥ मुच्चइ अइवावाउं, पुणो वित्तोही नयाविरइ ॥ १ ॥ इत्यागमा ॥ इत्तका नावार्थः—सर्वत्र संयम करणां, जे कर संयमके दूषित होनेसें प्राण रहित होवे, तो संयममें दूषणजी लगा कर प्राणोंकी रक्षा करणी, प्राणों के रहणेसें प्रायश्चित्त द्वारा उत्त पापसें दूट करके शुद्ध हो जावेगा, अरु अविरतिजी नहीं रहेगी, तथा आयुर्वेदमें जी जो वस्तु किसी रोगमें कि सी अवस्थामें अपथ्य है, सोइ वस्तु उत्ती रोगमें उत्ती अवस्थामें अव स्या, देश, काल, देख कर देवे, तो पथ्य हैं. देशादि अपेक्षा करके ज्वर वा लेकों दहीं खानेकों देते हैं ॥ तथाच वैद्याः ॥ काळाविरोधिनिर्दिष्टं, ज्वरादौ लघनं हितं ॥ इतेऽनिलधमक्रोध, शोककामकृतज्वरात् ॥ १ ॥ जैसें ग्रथ म अपथ्यका परिहार करनां, अरु जो तहांही अवस्थांतरमें तिसीको नो ग नां, सो दोनोही जगे रोगके दूर करनेका प्रयोजन है. इत्सें यह सिद्ध हुआ जो एकही वस्तुविषयक उत्सर्ग अपवाद है.

अरु तुमारे तो उत्सर्ग, और अर्थ वास्ते है, तथा अपवाद, और अर्थ

वास्ते है, क्योंकि तुमारे तो “न हिंस्यात् सर्वजूतानि” यह जो उत्सर्ग है सो दुर्गतिके निषेध वास्ते है, अरु जो तुमारी अपवाद हिंसा है, सो वे ता, अतिथि, पितरोंकी प्रीति संपादनेके अर्थ है, इस वास्ते परस्पर निषेध होनेसे उत्सर्ग अपवाद विधि नहीं हो सकी है. तब कैसे तुमारा अपवाद, उत्सर्ग विधिकों बाधा कर सका है ?

असंज्ञी मत कहना कि वेदिक हिंसाकी जो विधि है, सो स्वर्गहेतु हो नेसे दुर्गति निषेधार्थही है, वेदिकहिंसा स्वर्गका हेतु नहीं है, यह उपाय अष्टी तरेसें लिख आये हैं, वेदिक हिंसाके बिनाही स्वर्गकी प्राप्ति हो सकी है, गत्यंतरके अज्ञावमेंही अपवाद हो सका है, कुछ हमही नहीं पड़ा करनेसें स्वर्गका निषेध करते हैं, किंतु तुमारा व्यासजीजी कहता है. यदाह व्यास महर्षिः ॥ पूजया विपुलं राज्य, मन्त्रिकार्येण संपदः ॥ तपः पाप विशुद्ध्यर्थं, ज्ञानं ध्यानं च मुक्तिदं ॥२॥ यहां अत्रिकार्य शब्दवाच्यस्य यागादिविधि उपायांतर करके जो साध्य है संपदा, तिसहीका हेतु कहता हुआ आचार्य तिस यागकों सुगतिका हेतु अर्थात् ही कदर्थन करता हुआ है, तथा सोइ व्यासजी जागमिहोत्र “ज्ञानपाली” इत्यादि श्लोकों करके स्थापन कर गया है ॥ इति मीमांसकमतखंनम् ॥ ५ ॥

अथ चार्वाकमत खंन लिखते हैं ॥ चार्वाक कहता है की आत्माही नहीं है, तब किस वास्ते मतावलंबी पुरुष, बचनकहा करते हैं ? जब आत्माही नास्ति है. तब जैन, बौद्ध, सांख्य, नेयायिक, वैशेषिक, अरु जैमिनीय, यह जो पट्ट दर्शन है, सो निःकेवल लोकोंकों त्रममें डाल करके भोग विद्यास तुमा देते हैं; वास्तवमें आत्मानामा कोइ वस्तु नहीं. इस वास्ते हमारा मत अत्रा है, जे कर आत्मा है, तो कैसे तिसकी सिद्धि है ?

उत्तरपक्षः—प्रतिप्राणी स्वसंवेदन प्रमाण चेतन्यकी अन्ययानुपपत्तिसें सिद्ध है, तथाहि यह जो चेतन्य है, सो जूतोंका धर्म नहीं है, जे कर जूतोंका धर्म होवे, तब तो पृथिवीकी कठीनताकी तरें सर्वत्र सर्वदा उपलब्ध होना चाहिये, सो सर्वत्र सर्वदा उपलब्ध होता है नहीं, क्योंकि लोष्टादिकों में अरु मृत् अवस्थामें चेतन्य उपलब्ध नहीं होता.

पूर्वपक्षः—लोष्टादिकोंमें अरु मृत् अवस्थामेंही चेतन्य है, केवल शक्ति रूप करिके है, तिस वास्ते नहीं उपलब्ध होता है.

उत्तरपक्षः—दो विकल्पके न उल्लंघनेसें यह तुमारा कहनां अयुक्त है, तथाहि वो शक्ति, चैतन्यसें विलक्षण है ? अथवा चैतन्यही है ? जे कर कहोगेकि विलक्षण है, तब तो शक्तिरूप करके चैतन्य है ऐसा मत कहो, क्योंकि नहीं पटके विद्यमान हुआ पटरूप करके घट रहता है, “आह च ॥ प्रज्ञाकरगुप्तोपि ॥ श्लोक ॥ रूपांतरेण यदित, तदेवास्तीति मारटीः ॥ चैतन्यादन्यरूपस्य, जावे तद्विद्यते कथम् ॥१॥ जे कर दुसरा पक्ष मानोगे, तब तो चैतन्यही वो शक्ति है: तो फेर क्युं नहीं उपलंज होती ? जे कर कहोगेकि आवृत्त होनेसें उपलंज नहीं होती, तो यहजी ठीक नहीं, क्योंकि आवृत्ति नाम आवरणका है, सो आवरण क्या विवक्षित परिणामका अज्ञाव है ? अथवा परिणामांतर है ? अथवा जूतोंसें अतिरिक्त और वस्तु है ? उसमें विवक्षित परिणामोंका अज्ञाव तो नहीं हैं, क्योंकि एकांत कुछ होने कर के तिस विवक्षित परिणाम अज्ञावको आवरण शक्ति नहीं है, अन्यथा तिसको अतुल्य रूप होनेसें सोजी जावरूप हो जावेगा, अरु जब जावरूप हुआ, तब तो पृथिवी आदिकोंमेंसूं अन्यतम हुआ, क्योंकि “पृथिव्यादि न्येव जूतानि तत्त्वमिति वचनात् ” अरु पृथिवी आदिकजो जूत है, सो चैतन्यके व्यंजक हैं, परंतु आवरणक नहीं. तब कैसें आवरणकत्व सिद्ध होवे ?

अथ जे कर कहोगेकि परिणामांतर है, सोजी अयुक्त है, क्योंकि परिणामांतरको जूत स्वज्ञाव होने करके जूतोंकी तरें चैतन्यका व्यंजकही हो सका है, आवरणक नहीं.

अथ जे कर कहोगेकि जूतोंसें अतिरिक्त वस्तु है, यह कहनां बहुत ही असंगत है, क्योंकि जूतोंसें अतिरिक्त वस्तु माननेसें “चत्वार्येव पृथिव्यादि जूतानि तत्त्वमिति” इस कहनेसें तत्त्वसंख्याका व्याघात हो जावेगा.

एक औरजी बात हैकि यह जो चैतन्य है, सो एक एक जूतका धर्म है, वा सर्व जूत समुदायका धर्म है ? एक एक जूतका धर्म तो नहीं, क्योंकि एक एक जूतमें दीखतां नहीं औ एक एक परमाणुमें संवेदन उपलंज नहीं होता है. जे कर प्रति परमाणुमें होवे, तब तो पुरुष, सहस्र चैतन्य बृंदकी तरें परस्पर जिन स्वज्ञाव होवेगा, परंतु एक रूप चैतन्य नहीं होवेगा, अरु देखनेमें एक रूप आता है, “अहं पश्यामि” अर्थात् मैं देखता हूं, मैं करता हूं, ऐसें सकल शरीरका अधिष्ठाता एक उपलंज होता है.

जे कर समुदायका धर्म मानोगे सोची प्रत्येकमें अज्ञाव होनेसें असत् है, क्योंकि जो प्रत्येक अवस्थामें असत् है, वो समुदायमेंजी नहीं होत का है, जैसें रेणुकायोंमें तैल.

जे कर कहोगेकि मद्यांगोंमें मद शक्ति नहीं है समुदायमें हो जाती है, ऐसें चैतन्यजी हो जावे, तो क्या दोष है ? यहजी अयुक्त है, क्योंकि प्रत्येक मद अंगोंमें मद शक्त्यनुयायि माधुर्यादि गुण दीखते हैं, तथाहि ॥ दीखता है माधुर्यादि इष्टुरसमें धातकी फूलोंसें थोमीसी विकलता उत्पन्न दक शक्ति, ऐसें चैतन्य, सामान्य प्रकारसें जूतोंमें नहीं उपलब्ध होता है, तब कैसें जूत समुदायमें चैतन्य हो सका है ? जे कर प्रत्येक अवस्थामें असत् समुदायमें हो जावे, तब तो सर्व समुदायसें सर्व कुठ हो जाना चाहिये. यह अति प्रसंग होवेगा.

एक औरजी बात है, कि जेकर तुमने चैतन्य धर्म माना है, तब तो अवश्य धर्मके अनुरूप धर्मीजी मानना चाहिये, जे कर अनुरूप न मानोगे, तब तो जख अरु कठीनता इन दोनोंको धर्म धर्मी मानना चाहिये, ऐसेंजी मत कहना जो जूतही धर्मी हैं, क्योंकि जूत, चैतन्यसें विस्तरण हैं, तथाहि चैतन्य बोध स्वरूप, अरु अमूर्त है, अरु जूत इससें विस्तरण हैं, तब कैसें परस्पर धर्म धर्मी जाव हो सका है ? अरु यह चैतन्य प्रताका कार्यजी नहीं है, अत्यंत वैलक्षण्य होनेसें कार्य कारण जाव कहा पि नहीं होता है ॥ उक्तंच ॥ काठिन्याबोधरूपाणि, जूतान्यव्यवहसिद्धितः ॥ चेतना च न तद्रूपा, सा कथं तत्फलं जवेत् ॥ १ ॥

एक औरजी बात है कि जे कर जूतकार्य चेतना होवे, तब तो सकल जगत् प्राणिमय होवे, जे कर कहोगेकि परिणति विशेष सज्ञावके अज्ञाव सें सकल जगत् प्राणिमय नहीं होता है, तो वो परिणति विशेष सज्ञाव सर्वत्र किसी वास्ते नहीं होती है ? सोची परिणति जूतमात्र निमित्तकही है, तब कैसें तिसका किस जगें होनां न होनां सिद्ध होवे ? तथा वो परिणति विशेष किस स्वरूपवाली है, जे कर कहोगेकि कठीनादि रूप है, सो इ दिखाते हैं, कि घुणादि जंतु उत्पन्न होते दूचे काष्ठादिकोंमें दीखते हैं तिस वास्ते जहां कठिनत्वापि विशेष है, सो प्राणिमय हैं, शेष नहीं. यह जी व्यभिचार देखनेसें असत् है तथाहि अविशिष्टजी कठिनत्वादि विशेषके

हूया कहीं होता है, और कहीं नहीं होता, अरु किसी जगे कवित्वादि विशेषके बिनाजी संस्वेदज घने आकाशमें समूर्धिम उत्पन्न होते हैं.

एक औरजी बात है कि कितनेक जीव समानयोनिकजी विचित्रवर्ण संस्थान वाले दीखते हैं, तथाहि गोवर आदि एक योनिवालेजी कितने क नीखे शरीर वाले हैं, अपर पीत शरीर वाले हैं, अन्य विचित्र वर्ण वाले हैं, अरु संस्थानजी इनका परस्पर भिन्न है, जे कर भूतमात्र निमित्त चैतन्य होवे, तब तो एक योनिक सर्व एक वर्ण संस्थान वाले होने चाहियें, परंतु सोतो होते हैं नहीं, तिस वास्ते आत्माही तिसतिस कर्मके वश तैसैं उत्पन्न होती है, यही सिद्ध माननां चाहियें.

जे कर कहोगेकि आत्मा होवे, तब जाता आता क्यों नहीं उपलब्ध होता ? केवल देहके हुवांही संवेदन उपलब्ध होता है, अरु देहके अज्ञा व होयां जस अवस्थामें नहीं दीखता है, तिस वास्ते आत्मा नहीं. किं तु संवेदन मात्रही एक है, सो संवेदन देहका कार्य है, देहहीमें आश्रित है, जीतके चित्रवत्. चित्र, जीतके बिना नहीं रह सका है, अरु दूसरी जीत उपर संक्रमणजी नहीं होता है, किंतु जीत उपर उत्पन्न हुआ है, अरु जीतके साथही विनाश हो जाता है, संवेदनजी ऐसेही जान लेनां. यहजी असत् है, क्योंकि आत्मा स्वरूप करके अमूर्त है, अरु आंतर शरीर अति सूक्ष्म है, इस वास्ते दृष्टिगोचर नहीं ॥ तदुक्तं ॥ श्लोक ॥ अंतराज्ञावदेहोपि, सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यते ॥ निःकामन् प्राविशन् वात्मानाज्ञावोऽनीक्षणदपि ॥ १ ॥ तिस वास्ते आंतःशरीर युक्तजी आत्मा आता जाता हुआ नहीं दीखता है, परंतु लिंगसैं उपलब्ध होता है, तथाहि तत्काल उत्पन्न हुआजी कृमी जीवकों अपने शरीर विषे ममत्व है, घातकों जान करके दौड जाता है, जिसका जिस विषे ममत्व है, सो पूर्वले ममत्वके अन्यात् पूर्वक है, तैसैं देखनेसैं, अरु जितना चिर किसी वस्तुके गुण दोष नहीं जानता उतना चिर, उस वस्तुमें किसीकोंजी आग्रह नहीं होता है, तब तो जन्मकी आदिमें जो शरीर आग्रह है, सो शरीर परिशीलन अन्या सपूर्वक संस्कार निबंधन है, इस वास्ते आत्माका जन्मांतरसैं आवनां सिद्ध हुआ ॥ उक्तं च ॥ शरीरग्रहरूपस्य, चेतसः संज्ञवो यदा ॥ जन्मादौ देहिनां दृष्टः, किन्न जन्मांतरा गतिः ॥ १ ॥

जे कर समुदायका धर्म मानोगे सोची प्रत्येकमें अज्ञाव होनेसें अस्त है, क्योंकि जो प्रत्येक अवस्थामें अस्त है, वो समुदायमेंजी नहीं हो सक्ता है, जेसें रेणुकार्योंमें तैल.

जे कर कहोगेकि मद्यांगोंमें मद शक्ति नहीं है समुदायमें हो जाती है, ऐसें चेतन्यजी हो जावे, तो क्या दोष है ? यहजी अयुक्त है, क्योंकि प्रत्येक मद अंगोंमें मद शक्त्यनुयायि माधुर्यादि गुण दीखते हैं, तथाहि ॥ दीखता है माधुर्यादि इक्षुरसमें धातकी फूलोंसें थोमीसी विकलता उत्पन्न दक शक्ति, ऐसें चेतन्य, सामान्य प्रकारसें जूतोंमें नहीं उपलब्ध होता है, तब कैसें जूत समुदायमें चेतन्य हो सक्ता है ? जे कर प्रत्येक अवस्थामें अस्त समुदायमें हो जावे, तब तो सर्व समुदायसें सर्व कुछ हो जाना चाहिये. यह अति प्रसंग होवेगा.

एक औरती बात है, कि जेकर तुमने चेतन्य धर्म माना है, तब तो अयस्य धर्मके अनुरूप धर्मीजी मानना चाहिये, जे कर अनुरूप न मानों, तब तो जस्य अरु कनीनता इन दोनोंको धर्म धर्मी मानना चाहिये, ऐसें मत्त कहनां जो जूतही धर्मी हैं, क्योंकि जूत, चेतन्यसें विसदृश हैं, तथाहि चेतन्य बोध स्वरूप, अरु अमूर्त है, अरु जूत इससें विसदृश हैं, तब कैसें परस्पर धर्म धर्मी जाव हो सक्ता है ? अरु यह चेतन्य एतोंका कार्यजी नहीं है, अत्यंत बलदायक होनेसें कार्य कारण जाव कापि नहीं होता है ॥ उक्तं च ॥ काष्ठिन्यायोधरूपाणि, जूतान्यध्यक्षसिद्धितः । चेतना च न तदूपा, सा कथं तत्फलं जवेत् ॥ १ ॥

एक औरती बात है कि जे कर जूतकार्य चेतना होवे, तब तो सर्व जगत् प्राणीमय होवे, जे कर कहोगेकि परिणति विशेष सज्जावके अज्ञानसें सकल जगत् प्राणिमय नहीं होता है, तो वो परिणति विशेष सज्जा सर्वत्र किसी वास्ते नहीं होती है ? सोनी परिणति जूतमात्र निमित्तकई है, तब कैसें निस्का किस जगें होनां न होनां सिद्ध होवे ? तथा वो परिणति विशेष किस स्वरूपवासी है, जे कर कहोगेकि कनीनादि रूप है, सो इ दिग्वाने है, कि घुणादि जंतु उत्पन्न होते दूये काष्ठादिकोंमें दीमते हैं निम्न वास्ते जहां कठिनत्वापि विशेष है, सो प्राणिमय हैं, शेष नहीं. परनी व्यभिचार देखनेसें अस्त है तथाहि अविशिष्टजी कठिनत्वादि विशेष

या कहीं होता है, और कहीं नहीं होता, अरु किसी जगे कठिनत्वादि दोषोंके बिनाजी संस्वेदज घने आकाशमें समूर्धिम उत्पन्न होते हैं.

एक औरजी बात है कि कितनेक जीव समानयोनिकजी विचित्रवर्ण स्थान वाले दीखते हैं, तथाहि गोबर आदि एक योनिवालेजी कितने नीचे शरीर वाले हैं, अपर पीत शरीर वाले हैं, अन्य विचित्र वर्ण वाले हैं, अरु संस्थानजी इनका परस्पर भिन्न है, जे कर भूतमात्र निमित्त भेदन्य होवे, तब तो एक योनिक सर्व एक वर्ण संस्थान वाले होने चाहियें, परंतु सोतो होते हैं नहीं, तिस वास्ते आत्माही तिसतिस कर्मके श तैसैं उत्पन्न होती है, यही सिद्ध माननां चाहियें.

जे कर कहोगे कि आत्मा होवे, तब जाता आता क्यों नहीं उपलब्ध होता ? केवल देहके हुवांही संवेदन उपलब्ध होता है, अरु देहके अज्ञात होयां जस अवस्थामें नहीं दीखता है, तिस वास्ते आत्मा नहीं. किंतु संवेदन मात्रही एक है, सो संवेदन देहका कार्य है, देहहीमें आश्रित है, जीतके चित्रवत्. चित्र, जीतके बिना नहीं रह सका है, अरु दूसरी जीत उपर संक्रमणजी नहीं होता है, किंतु जीत उपर उत्पन्न हुआ है, अरु जीतके साथही विनाश हो जाता है, संवेदनजी ऐसेही जान लेनां. यहजी अस्तव है, क्योंकि आत्मा स्वरूप करके अमूर्त है, अरु आंतर शरीर अति सूक्ष्म है, इस वास्ते दृष्टिगोचर नहीं ॥ तदुक्तं ॥ श्लोक ॥ अंतराजावदेहोपि, सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यते ॥ निःकामन् प्राविशन् वात्मा, नाजावोऽनीक्षणदपि ॥ १ ॥ तिस वास्ते आंतःशरीर युक्तजी आत्मा आता जाता हुआ नहीं दीखता है, परंतु सिंगसैं उपलब्ध होता है. तथाहि तत्कास उत्पन्न हुआजी कृमी जीवकों अपने शरीर विषे ममत्व है. घातकों जान करके दौड़ जाता है, जिसका जिस विषे ममत्व है, सो पूर्वसे ममत्वके अच्युत पूर्णक है, तैसैं देखनेसैं. अरु जितना चिर किसी वस्तुके गुण दोष नहीं जानता उतना चिर. उस वस्तुमें किसीकोंजी आप्रद नहीं होता है, नय तो जन्मकी आदिमें जो शरीर आप्रद है. सो शरीर परिशीलन अन्या तत्पूर्वक संस्कार निबंध्यन है, इस वास्ते आत्माका जन्मान्तरसैं आवनां सिद्ध हुआ ॥ उक्तं च ॥ शरीरमहुरूपस्य, चेतसः संजयो यदा ॥ जन्मादौ देहिनां दृष्टः, किञ्च जन्मान्तरा गतिः ॥ १ ॥

अथ आगति प्रत्यक्षसें नहीं दीखती है, तब कैसें तिसका अनुमानसें बोध होवे ? यह तुमारा कहनां कुछ दूषण नहीं, क्योंकि अनुमेय अर्थ विषे प्रत्यक्षकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती है, परस्पर विषयकों परिहार करके प्रत्यक्ष अनुमानका प्रवर्तनां बुद्धिमान् मानते हैं, तब कैसें यह तुमारा दूषण है ? आह च ॥ अनुमेयेस्ति नाध्यक्ष, मिति केवात्र दुष्टता ॥ अध्यक्ष म्यानुमानस्य, विषयो विषयो नहीं ॥ १ ॥

अरु जो चित्रका दृष्टांत तुमने कहा था, सोजी विषम होनेसें अयुक्त है, तथाहि चित्र जो है सो अचेतन है अरु गमन स्वभाव रहित है, औ आत्मा जो है सो चैतन्य है सो कर्मोंके वशसें गति आगति करता है, तब कैसें दृष्टांत अरु दार्ष्टिकी साम्यता होवे ? जैसें देवदत्त किसी विवक्षित ग्राममें कितनेक दिन रह करके फेर ग्रामांतरमें जाता रहता है, तैसेंही आत्माजी विवक्षित जवमें देहकों त्याग कर जवांतरमें देहांतर रच कर रहता है,

अरु जो तुमने कहा था कि संवेदन देहका कार्य है, सोजी ठीक नहीं, क्योंकि चक्षुपादि इंद्रिय द्वारे उत्पन्न होनेसें चाक्षुपादि संवेदन कथंचित् देहसेंजी उत्पन्न होता है, परंतु जो मानस ज्ञान है, वो कैसें देहका कार्य हो सका है ? तथाहि सो मानस ज्ञान देहसें उत्पद्यमान होता हुआ इंद्रियरूपसें उत्पन्न होता है ? वा अर्निंद्रिय रूपसें उत्पन्न होता है ? वा केश नखादि लक्षणसें उत्पन्न होता है ? प्रथम पक्ष तो ठीक नहीं, जे कर इंद्रियरूपसें उत्पन्न होवे, तब तो इंद्रिय बुद्धिवत् वर्त्तमानार्थकाही ग्राहक होनां चाहिये, इंद्रियज्ञान जो है, सो वर्त्तमान अर्थही ग्रहण कर सका है, इस सामर्थ्यसें उपजायमान मानस ज्ञानजी इंद्रियज्ञानवत् वर्त्तमान अर्थकाही ग्रहण कर सकेगा.

अथ जब चक्षुरूप विषय व्यापार करता है, तब रूप विज्ञान उत्पन्न होता है, शेष काल नहीं. तब वो रूपविज्ञान वर्त्तमानार्थ विषय है, क्यों कि वर्त्तमानार्थ विषयही चक्षुका व्यापार होनेसें अरु रूप विषय व्यापार के अज्ञावमें मनोज्ञान है, तिस वास्ते नियत काल विषयक नहीं है, औसेंही शेष इंद्रियमेंजी जान लेनां, तब कैसें मनोज्ञानकों वर्त्तमानार्थ ग्रहण प्रसक्ति होवे ? उक्तं च ॥ अक्षव्यापारमाश्रित्य, जवदक्षजमिष्यते ॥ तद्व्यापारो न तत्रेति, कथमक्षजं जचेत् ॥ २ ॥

अथ अनिन्द्रिय रूपसें है, सोजी तिसको अचेतन होनेसें अयुक्त है, अरु केश नखादिक तो मनोज्ञान करके स्फुरत चिद्रूप नहीं उपलब्ध होते हैं, तब कैसें तिनसेंती मनोज्ञान होवे ? आह च ॥ चेतयंतो न दृश्यन्ते, केशश्मश्रुनखादयः ॥ ततस्तेज्यो मनोज्ञानं, जवतीत्यतिसाहसं ॥ १ ॥

जे कर केश, नखादिकों करके प्रतिबद्ध मनोज्ञान होवे, तब तो तिनोके उठेद हुआ मूलसेंही मनोज्ञान नहीं होवेगा ? अरु केश नखादिकोंको उपघात हुआ ज्ञानजी उपहत होना चाहिये, परंतु सोतो हो ता है नहीं, इस वास्ते यह तीसरा पक्षजी ठीक नहीं,

एक औरजी बात है, कि मनोज्ञानके सूक्ष्म अर्थ जेतृत्व अरु स्मृतिपाटवादि विशेष जो है, सो अन्वयव्यतिरेक करके अन्यासपूर्वक देखे हैं, तथाहि वोही शास्त्र, इहा अपोहादि प्रकार करके जे कर बार बार विचारिये, तब सूक्ष्म सूक्ष्मतर अर्थावबोध उल्लास होता है, अरु स्मृति पाटव अपूर्व वृद्धि होती है, ऐसें एक शास्त्रविषे अन्याससेंती सूक्ष्मार्थ जेतृत्व शक्तिके होयां, अरु स्मृतिपाटवके हूयां अन्य शास्त्रोमेंजी सहजसेंही सूक्ष्मार्थावबोध, अरु स्मृतिपाटव उल्लास होती है, ऐसें अन्यास हेतुक सूक्ष्मार्थ जेतृत्वादिक मनोज्ञानके विशेष देखे हैं, अरु किसी को अन्यासके बिनाजी देखिये है, तिस वास्ते अवश्य परलोकका अन्यास हेतु है, सो काहेतें ? कि कारणके साथ कार्यका अन्यथानुपपन्न पणा है, तिस प्रतिबंधसें अदृष्ट तिसके कारणकीजी सिद्धि है, तिस वास्ते जीवका परलोकमें जानां सिद्ध हुआ.

अरु देह, कयोपशमका हेतु है, इस वास्ते देहजी कयंचित् ज्ञानको उपकारी हम मानते हैं. नहीं देहके दूर होनेसें सर्वथा ज्ञानकी निवृत्ति होती. जैसें अग्नि करके घटको कुछ विशेषता है, परंतु अग्निकी निवृत्ति हुआ घट मूलसेंही उठेद नहीं हो जाता है, केवल कटुक विशेष दूर हो जाता है, जैसें सुवर्णकी द्रवता. ऐसें इहांजी देहकी निवृत्ति हुआ कोइक ज्ञानविशेष तत्प्रतिबद्धही निवृत्त होता है, परंतु समूल ज्ञानका उठेद नहीं होता है, जे कर देहही ज्ञानका निमित्त मानेंगे, अरु देहकी निवृत्तिसें ज्ञान निवृत्तिवाला मानोगे, तब तो स्मशानमें देहके जस्म हूयां तो ज्ञान न होवे, परंतु देहके विद्यमान हुआ मृत अवस्थामें किस वास्ते नहीं होता ?

जे कर कहोगे कि प्राण, अपानजी ज्ञानके हेतु हैं, तिनके अज्ञानसे ज्ञान नहीं होता है, यहजी कहना ठीक नहीं, क्योंकि प्राणापान ज्ञानके हेतु नहीं हो सके हैं, किंतु ज्ञानहीसे तिनकी प्रवृत्ति होनेसे. तथाहि जब प्राणापानका करने वाला मंद इष्टा करता है, तब मंद होता है, अरु जब दीर्घकी इष्टा करता है, तब दीर्घ होता है: जे कर देहमात्र नेमित्तिक प्राणापान होवे, अरु प्राणापान नेमित्तिक विज्ञान होवे, तब तो इष्टाके वशसे प्राणापानकी प्रवृत्ति न होवेगी; क्योंकि जिनका निमित्त देह है, ऐसी जो गौरता थो श्यामता, वो इष्टाके वशसे प्रवृत्त नहीं होती है, जे कर प्राणापान ज्ञानका निमित्त होवे, तब तो प्राणापानके थोड़े वा बहुतके होनेसे ज्ञानजी थोड़ा वा बहुत ज्ञानां चाहिये, क्योंकि जिसका कारण हीन अथवा अधिक होवेगा, तब उसका कार्यजी हीन अधिक होवेगा. जैसे माटीका पिरु घड़ा किंवा ठोटा होवेगा, तब घटजी बड़ा अरु ठोटा होवेगा, अन्यथा वो कारणजी नहीं. तुमारेजी तो प्राणापानके न्यून अधिक होनेसे ज्ञान, न्यून अधिक नहीं होता है, किंतु विपर्यय होता तो दिखता है क्योंकि मरणावस्थामें प्राणापान अधिकजी होते हैं, तोनी विज्ञान घट जाते हैं.

जे कर कहोगे कि मरणावस्थामें वात पित्तादि दोषो करके देहके विगुणी हो जानेसे प्राणापानकी वृद्धिसेनी ज्ञानकी वृद्धि नहीं होती है ऐं सेंही मृतावस्थामेंनी देहके विगुणीनूत होनेसे चेतनता नहीं है, यहजी असमीचीन है, जे कर ऐसे होवे, तब तो मरा हूथानो जिंदा होनां चाहिये ॥ तथाहि ॥ “मृतम्य दोषाः समीनयन्ति” अर्थात् मरण पीठें वात पित्तादि दोष नहीं रहते हैं, थो ज्वरादि विकारके न देखनेसे दोषोका न रहनां प्रतीत होना है, अरु जो दोषोका समपणा है, सोऽ आरोग्यता है, “तेषां समत्वमारोग्यं क्षयवृद्धिविपर्ययः ॥ इति वचनात्” ॥ आरोग्य स्तानमें देहको फेर जिंदा होनां चाहिये, अन्यथा देह कारणही नहीं, चित्तके साथ देहका अन्वय व्यतिरेक नहीं. जे कर मारा दुवा जी उठे, तो हम देहको कारणजी मान खेवे.

पूर्वपक्षः—यह फेर जी उठनेका प्रसंग तुमारा अयुक्त है क्योंकि पथवि दोष देहको वेगुण्य करके निवृत्त हो गये हैं, तोनी तिनका वेगुण्यपणा

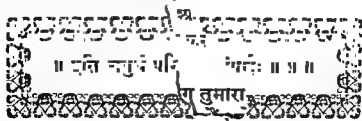
करा हुआ नहीं निवृत्त होता है, जैसे अम्रिका करा हुआ काष्ठमें विकार अम्रिके निवृत्त होनेसें जी नहीं निवृत्त होता है.

उत्तरपक्षः—यह तुमारा कहनां अयुक्त है, क्योंकि विकारजी दो प्रकारका है, एक निवृत्त होता है, एक नहीं निवृत्त होता है, अनिवृत्त विकार जैसे काष्ठमें अम्रिका करा हुआ श्यामता मात्र अरु निवृत्त विकार जैसे अम्रि कृत सुवर्णमें उचता. वायु आदिक जो दोष हैं, सो निवृत्त विकार है, चि कित्ता प्रयोग देखनेसें. जे कर वायु आदि दोषजी अनिवृत्त विकार होवे, तब तो चिकित्सा वैफल्य हो जावेगी, ऐसें जी मत कहनां मरणसें पहिछां दोषनिवृत्त विकारारंजक है, अरु मरण कालमें अनिवृत्त विकारारंजक है, क्योंकि एकको एक जगें निवृत्त अनिवृत्त विकार दो रूप नहीं हो सके हैं,

पूर्वपक्षः—व्याधि दो प्रकारकी लोकमें प्रसिद्ध है, एक साध्य, दूसरी अ साध्य, उसमें साध्य जो है, सो चिकित्सासें दूर हो सकी है, अरु दूस री दूर नहीं होती है, तब दो प्रकारकी व्याधि क्यों नहीं सिद्ध हो सकी है?

उत्तरपक्षः—यह जी असत् है, क्योंकि तुमारे मतमें असाध्य व्याधिही नहीं हो सकी है. तथाहि व्याधिका जो असाध्यपणा है, सो आयुके दाय होनेसें होता है, क्योंकि तिली व्याधिमें समान औषध वैद्यके योगसें जी कोइ मर जाता है, कोइ नहीं मरता है, अरु जो प्रतिकूल कर्मोंके उ दय करके चित्रादि व्याधि है, वो हजार औषधसें जी साधी नहीं जा ती है, यह दोनों प्रकारकी व्याधि परमेश्वरके वचनोंके जानने वालोंके म तमेंही सिद्ध होती हैं. परंतु तुमारे चूतमात्र तत्त्ववादीयोंके मतमें नहीं हो सकी है. कहीक असाध्य व्याधि इस वास्ते हो जाती है, दोषकृत विकारके दूर करनेमें समर्थ औषधि, अरु वैद्यके अज्ञावसें जब औषधि अरु वैद्यके अज्ञावसें व्याधि वृद्धिमान हो कर सकस आयुको उपक्रम क रती है, अर्थात् दाय कर देती है. तथा कोइक दोषोंके उपशम होनेसें अकस्मात् मर जाता है. अरु कोइक अति दुष्ट दोषोंके होनेसें जी नहीं मरता है. यह पान तुमारे मतमें नहीं हो सकी है ॥ आह च ॥ श्लोक ॥ दोषतोषशनेऽप्यस्ति. मरणं कल्पचिंतुनः ॥ जीवनं दोषदुष्टत्वे, प्यंतन्न न्या ज्ञवन्मते ॥ १ ॥ हमारे मतमें तो जहां छगि आयु है, तहां छगि दोषों करके पीडितजी जीता रहता है, अरु जब आयु दाय हो जाता है, नव

दोषोंके विकार बिनाजी मर जाता है, इस वास्ते देह ज्ञानका निमित्त नहीं है, एक औरजी बात है कि देह जो तुम ज्ञानका कारण मानते हो, सो सहकारी कारण मानते हो ? वा उपादान कारण मानते हो ? जे कर सहकारी कारण मानते हो, तब तो हमजी देहकों दयोपशमका हेतु मानते है, कथंचित् विज्ञानका हेतु मानते है, जे कर उपादान कारण मानो गें तब तो श्रुत है, उपादान वो होता है, कि जिसके विकारी होनेसँ कार्यजी विकारी होवे, जेसँ मृत्तिका और घट. देहके विकार करके संवेदन विकारी नहीं होता है, अरु देह विकारके बिनाजी जयशोकादिकों करके संवेदनकों विकारी देखते है, इस वास्ते देह संवेदनका उपादान कारण नहीं ॥ उक्तं च ॥ अधिकृत्य हि यद्यस्तु, यः पदार्थो विकार्यते ॥ उपादानं न तत्तस्य, युक्तं गोगवयादिवत् ॥ १ ॥ इस कहने करके जो कहते हैं, कि माता पिताका चैतन्य, पुत्रके चैतन्यका उपादान कारण है, सोजी खंरन हो गया. तदा माता पिताके विकारी होनेसँ पुत्र विकारी नहीं होता है, अरु जो जिसका उपादान होता है, सो अपने कार्यसँ अजेद होता है, जेसँ माटी, और घट. जब माता पिताका चैतन्य, पुत्रके चैतन्यके साथ अजेद रूप हुआ, तब तो पुत्रका चैतन्य, माता पिताके चैतन्यसँ अजेद होना चाहिये. इसी वास्ते तुमारा कहनां किसी कामका नहीं है, इस हेतुसँ जूतोंका धर्म वा जूतोंका कार्य चैतन्य नहीं है, इस वास्ते आत्मा सिद्ध है. विशेष करके चार्वाकमतका खंरन देखनां होवे तदा सम्मतितर्क, स्याद्वाद रत्नाकरादि शास्त्र देख लेनां ॥ इति चार्वाक मत खंरन ॥ इस परिछेदमें जो कुयुरुके लक्षण कहे हैं, वे लक्षण चाहो जैनके साधुमें होवें चाहो अन्यमतके साधुमें होवे, उन सर्वकों कुयुरु कहनां चाहिये ॥ इति श्री तपगछीये मुनि श्रीबुद्धिबिजयशिष्य मुनि आनंदविजयआत्मारामविरचिते जैनतत्त्वादशे कुयुरुस्वरूपनिर्णयनामा चतुर्थः परिछेदः संपूर्णः ॥ ४ ॥



॥ अथ पंचम परिच्छेद प्रारंभः ॥

यह पंचम परिच्छेदमें धर्मतत्त्वका स्वरूप लिखते हैं। धर्म उसको कहते हैं, जो दुर्गति जाते हुवे आत्माको धरी राखे, एतावता दुर्गतिमें न जाने देवे, उसकुं धर्म कहते हैं। तिस धर्मके तीन जेद हैं। १ सम्यक् ज्ञान, २ सम्यक् दर्शन, ३ सम्यक् चारित्र, इन तिनोमेंसूं प्रथम ज्ञानका स्वरूप संक्षेपसें लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ यथावस्थिततत्त्वानां, संक्षेपाद्विस्तरेण वा ॥ योवबोधस्तमत्राहुः, सम्यग्ज्ञानं मनीषिणः ॥ १ ॥ अस्वार्थः— यथावस्थित नय प्रमाणों करके प्रतिष्ठित है स्वरूप जिनका, जैसें जो जीव, अजीव, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष रूप सप्त तत्त्व, तथा प्रकारांतरें पुण्य पापके अधिक होनेसें नव तत्त्व होते हैं, इनका जो अवबोध अर्थात् ज्ञान सो सम्यक् ज्ञान जाननां। अरु वह जो ज्ञान है, सो द्योपशमके विशेषसें किसी जीवको संक्षेप करके अरु किसी जीवको विस्तार करके होता है। इन नव तत्वोंमें प्रथम जो जीवतत्त्व है तिसका स्वरूप ऐसा है कि जीव कहो अथवा आत्मा कहो यह दोनो एकही वस्तुके नाम है।

प्रश्नः— जैनमतमें आत्माका क्या लक्षण है ?

उत्तरः— चैतन्य लक्षण है,

प्रश्नः— जैनमतमें जीव प्राणी आत्मा किसको कहते हैं ?

उत्तरः— ॥ श्लोक ॥ यः कर्ता कर्मज्जेदानां, ज्ञोक्ता कर्मफलस्य च ॥ संसर्त्ता परिनिर्वाता, स ह्यात्मा नान्यलक्षणः ॥ १ ॥ इस श्लोकसें जान लेनां, इसका जावार्थ कहते हैं, कि जो मिथ्यात्वादिकों करके कबुजित अर्थात् मैला हो करके वेदनीयादिक कर्मोंका कर्त्ता, (करनेवाला) अरु तिन अपने करे दूये कर्मोंका जो फल सुख दुःखादिक तिनोका जोगनेवाला, अरु नारकादि जावों विषे कर्म विपाकके उदय करके जो भ्रमण करनेवाला अरु सम्यक् दर्शनादि तीन रत्नोंके उत्कृष्ट अज्यास करके संपूर्ण कर्मशको दूर करके जो निर्वाण रूप होनेवाला, सोइ प्राणी है, सोइ जीव है, सोइ आत्मा है, यह नंदीसूत्रमें लिखा है। आत्माकी सिद्धि चार्वाकमतखंननमें लिख आये हैं। जेकर आत्माकी सिद्धि विशेष करके देखनी होवे, तदा शुद्धां ज्ञोनिधि, गंधहस्ती महाजाप्य देख लेनी। यह आत्मा सर्व व्यापीजी नहीं है, औ एकांत नित्य, कूटस्थजी नहीं है, एकांत अनित्यक्षणिकजी नहीं है, किंतु

शरीरमात्रव्यापी कथंचित् नित्यानित्य रूप है. इनका खंजन मंजन सा छादरत्नाकर, स्या छादरत्नाकरावतारिका, अनेकांतजयपताका प्रमुख शास्त्रोंसे देख लेना. इस वास्ते मेनें नहीं लिखा है. जो ग्रंथ बड़ा जारी हो जावेगा: अरु पढ़नेवाले आसस कर जायेंगे.

तहां जे जीव हैं सो दो प्रकारके हैं. एक मुक्त रूप, दूसरा संसारी, यह दोनोही प्रकारके जीव अनादि अनंत है. अरु ज्ञान दर्शन इनका लक्षण है, अरु जो मुक्त स्वरूप आत्मा है वो सर्व एक स्वभाव है. जन्मादि क्लेशों करके वर्जित है अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंतवीर्य, ओ अनंत आनंद वमय स्वस्वरूपमें स्थित है, निर्विकार निरंजन ज्योतिःस्वरूप है.

अरु जो संसारी जीव हैं, सो दो प्रकारके हैं. एक स्थावर, दूसरा ग्रस, उसमें स्थावरके पांच जेद हैं, १ पृथिवीकाय, २ अणु काय, ३ तेजस्काय ४ वायुकाय, ५ वनस्पतिकाय. तथा ग्रस जीवके चार जेद हैं. १ दोइंद्रिय, २ तीनइंद्रिय, ३ चारइंद्रिय: ४ पांचइंद्रिय. स्थावर जो हैं सो सर्व एक ही स्पर्शेन्द्रिय वासे है. कृमी, गंमोला, जलोक्त, सुंभी, इत्यादि जीव एक स्पर्शन अर्थात् शरीर इंद्रिय, दूसरा रसनेंद्रिय अर्थात् मुख, इन दो इंद्रिय वासे हैं. फीड़ी, जू, मुरसली, दोरा, इत्यारि जीव, दो पूर्वोक्त अरु एक स्पर्शिका, यह तीन इंद्रियवासे हैं. माखी, ब्रमर, सहेतकी माखी, गेंचू, धमंडी, बीमू, इत्यादि जीव, तीन पूर्वोक्त अरु चउथा नेत्र, इन चार इंद्रिय वासे हैं. नारक, तीर्थंच, मनुष्य, अरु देवता, ये पंचेन्द्रिय जीव हैं. यह सर्व स्पर्शन, रसना, घ्राण, नेत्र, कान, इन पांच इंद्रिय वासे हैं. स्थावर जीवके दो तरेंके हैं, एक सूक्ष्म नामकर्मके उदयवासे सूक्ष्म, दूसरा घादर नामकर्मके उदय वासे घादर, यह जो स्थावर अरु ग्रस जीव है, सो समुद्यय पर्याप्ति वासे हैं. इन ठे पर्याप्तिका नाम सिखते हैं. १ आहारपर्याप्ति, २ शरीर पर्याप्ति, ३ इंद्रियपर्याप्ति, ४ आसोन्नासपर्याप्ति, ५ जापापर्याप्ति, ६ मनःपर्याप्ति

अथ पर्याप्तिका स्वरूप सिखते हैं. आहार (जोजन) तिसके ग्रहणवा जो शक्ती, तिसका नाम आहारपर्याप्ति कहते हैं. २ शरीर रचनेकी जो शक्ती, तिसका नाम शरीरपर्याप्ति कहते हैं. ३ इंद्रिय रचनेकी शक्ती, सो इंद्रियपर्याप्ति है. ऐसेही सर्वत्र जान लेना. जिस जीवके पूर्वोक्त ठे शक्ती आती है, उसकें अर्थात्ति कहते हैं. स्थावर जीवोंमें आदिकी चार पर्याप्ति

सि है अरु दोइंद्रिय, तीनइंद्रिय चौरिंद्रिय, इन जीवोंमें एक मन विन पांच पर्याप्ति हैं. पंचेंद्रिय जीवोंमें ठही पर्याप्ति है. १ पृथिवीकाय, २ जलकाय, ३ तेजस्काय, ४ वायुकाय, (पवन) इन चारोंमें असंख्य जीव हैं. तथा वनस्पतिकायमें जो प्रत्येक वनस्पति है, उसमें तो असंख्यजीव हैं. परु साधारण वनस्पतिमें अनंत जीव हैं. इन स्थावर अरु त्रसोंके जघन्य तो चौदह जेद हैं. मध्यम (५६३) जेद हैं. अरु उच्छृष्ट अनंत जेद हैं. तिनमें मध्यम चौदह जेद नरक वासीयोंके हैं. अरुतालीश जेद तिर्यच गतिवालोंके हैं, ओ तीनसो तीन जेद मनुष्यगति वालोंके हैं. (१९८) जेद देवगति वालोंके हैं. यह सर्व मध्यम जेद (५६३) हैं. इनका विचार पूरा देखनां होवे, तदा प्रज्ञापन्न सिद्धांत, तथा जीव समाप्त प्रकरणादि शास्त्रोंसे देख लेनां.

प्रश्न:- हे जैन ! दो इन्द्रियादिक जीव तो जीव लक्षण संयुक्त होनेसे जिन व सिद्ध हो जाते हैं. परंतु पृथिवीआदि पांच स्थावरोमें जीव कैसे हम मान लेवे ? क्योंकि पृथिवी आदिकोंमें जीवका कोइजी चिन्ह उपलब्ध नहीं होता है.

उत्तर:-यद्यपि पृथिवी आदिकमें प्रगट जीवके होनेका चिन्ह नहीं दीखता. तोजी अव्यक्तपणेमें जीवके चिन्हसे जीव सिद्ध होते हैं. जैसे धत्तूरेके तथा मदिरापानादिकके नशे करके मूर्छित हुये जीवोंके व्यक्त लिंगके होनेसेजी जीवपणा है: तैसेही पृथिवी आदिककांजी सजीव माननां चाहियें.

प्रश्न:-मदिराकी मूर्छामें उद्धासादिकोंके देखनेसे अव्यक्तमेंजी चेतना लिंग है. परंतु पृथिवी आदिकोंमें तैसा चेतनताका लिंग कोइजी नहीं. तिनको कैसे चेतन्य माना जावे ?

उत्तरपक्ष:-जैसे तुमने कहा है. सो असें है नहीं. क्योंकि पृथिवीकायमें प्रथम स्व स्व आकारमें रहे हुये लवण. विद्रुम. पाषाणादिकोंका अंश मांस अंकुरकी तरें समान जातीय अंकुरउत्पत्ति पणा है. वनस्पतिकी तरें चेतन्यपणेका चिन्ह है. इत वास्ते अव्यक्त उपयोगादि लक्षणके होनेसे पृथिवी सचेतन है यह सिद्ध हुआ.

प्रश्न:-विद्रुम पाषाणादि पृथिवी कठिन रूप है. तो फेर कठिन रूप हो तें कैसे पृथिवी सचेतन हो सकी है ?

उत्तरः—जैसे शरीरमें अस्थि अर्थात् हारु अनुगत है, सो कम्बिनीही तोनी सचेतन है, ऐसेही जीवानुगत पृथिवीका शरीरजी सचेतन है. अथ वा पृथिवी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति, इनके शरीर जीव सहित हैं. वेद्य, उल्हेष्य, जोग्य, प्रेय, रसनीय, स्पृश्य, डव्य होनेसे सास्ना विषाणादि संघातवत् पृथिवी आदिकोंको उद्यत्वादि जो दिखते हैं, तिनकों को इजी गोप नहीं सका है. अरु यहजी मत कहना कि पृथिवी आदिकोंको जीव शरीरत्व जो साधना है, सो अनिष्ट है, क्योंकि सर्व पुद्गल डव्यको हम डव्य शरीर मानते हैं, अरु जीव सहित तथा जीव रहित जो विशेष है सो ऐसे है शस्त्र करके अनुपहत जो पृथिवी आदिक हैं सो हाथ पगके संघातवत्. संघात न होनेसे कदाचित् सचेतन है, ऐसेही कदाचित् शस्त्रोपहत होनेसे हाथादिकोंकी तरें अचेतनजी है, सो अचेतनही है.

प्रश्नः—प्रश्रवणवत् अर्थात् मूत्रकी तरें जीवके लक्षण न होनेसे जव जीव नहीं है.

उत्तरः—हेतु अस्तिरु होणेसे यहजी कहना ठीक नहीं है, तथाहि हाथीका शरीर कलल अवस्थामें (अधुना उत्पन्न होयेको) डवपणा अरु सचेतन पणा देखते हैं, ऐसेही जलमेंजी जानना. तथा थंडेमें रस मात्र है परंतु थवयव कोइ उत्पन्न दूया नहीं. ओ व्यक्त (हाथ पगादिक) जी नहीं, तोनी सचेतन है, इस उपमासे जलजी सचेतन है. यह इसमें प्रयोग है. शस्त्र करके अनुपहत दूया डवरूप होनेसे हस्तिशरीरके उपादानजुत कललवत् जल सचेतन है. इस हेतुमें विशेषणके उपादानसे अर्थात् भट्टेसे प्रश्रवण इधादिकोंमें व्यजिचार नहीं. तथा अनुपहत डव होनेसे थंडेमें रहे कललवत् सात्मक जल है. तथा हिमादि किसीक अवस्थामें थपूकाय होनेसे इतर उदकवत् सचेतन है. तथा किसी जगं भूमि खननेसे स्वाभाविक संभव होनेसे मेरुकवत् सचेतन जल है, अथवा आकाशमें उत्पन्न दूया जल बादलादि विकारके दूया स्वतःही अर्थात् आ पही उत्पन्न हो करके पडनेसे मत्स्यवत् सचेतन है, तथा शीतकालमें बहुत शीतके पडते दूये नदी आदीकोंमें थल्पके दूयां थल्प अरु बहुतके दूयां बहुत उप्मा देखते हैं, सो उप्मा सजीव हेतुकही है. थल्पबहुत मिश्रित मनुष्योंके शरीरोंसे जैसे थल्प बहुत उप्म होता है. जलमें शीत स

शीही हैं, ऐसे वैशेषिक कहते हैं, तथा शीतकालमें शीतके बहुत पकनेसे प्रातःकालमें तलावादिकोंके पश्चिम दिशामें खड़े हो कर जब तलावादि देखियें, तदा तिस जलसेंती निकलता हुआ वाष्पका समूह दिखता है, सो जी जीवहेतुकही है, तिसका प्रयोग ऐसे हैं कि शीतकालमें जो वाष्प है, सो उष्ण स्पर्शवाली वस्तुसें होता है. वाष्प होनेसें शीत कालें शीत जल करके सोंचे हुए मनुष्य शरीर वाष्पवत् अरु जो उकुम्भिका कूड़े कचवरमें से धूँआ वाष्प निकलता है, तहांजी हम पृथिवीकायके जीव मानते हैं. इन हेतुओंसें जल सजीव सिद्ध होता है.

प्रश्न:—तेजस्कायमें जीव किस तरें सिद्ध होता है ?

उत्तर:—जैसे रात्रिमें खद्योतका शरीर जीव शक्तिसें बना हुआ, प्रकाश वाला है, ऐसे अंगारादिकजी प्रकाशमान होनेसें सचेतन हैं. तथा जैसे ज्वरकी उष्मा जीवके प्रयोग बिना नहीं होती, ऐसेही अग्निमेंजी गरमी जीवोंके बीना नहीं है. क्योंकि मृतकके शरीरमें ज्वर कदापि नहीं होता है. ऐसे अन्वय व्यतिरेक करके अग्नि सचित्त जाननी. यहां यह प्रयोग है कि आत्माके संयोगसें प्रगट जया है अंगारादिकोंको प्रकाश परिणाम शरीर स्थ होनेसें खद्योत देह परिणामवत्. तथा आत्मा संयोग पूर्वक शरीर स्थ होनेसें ज्वरोष्मवत् अंगारादिकोंमें उष्णता है. ऐसेंजी मत कहना कि सूर्यके उष्मके साथ अनेकांतिक हेतु है, तो सूर्यादिकोंमें जो उष्मा है, सो जी आत्मसंयोग पूर्वकही हम मानते हैं, तथा अग्नि सचेतन है, क्योंकि यथायोग्य आहारके करनेसें, वृद्धिआदि विकारके उपलब्ध होनेसें पुरुषके शरीरवत् इत्यादि लक्षणों करके अग्निको सचेतनता है.

प्रश्न:—वायुकायमें (पवनमें) सचेतनताकी सिद्धि कैसें करोगे ?

उत्तर:—जैसे देवताका शरीर शक्तिके प्रभाव करके, अरु मनुष्योंका शरीर अंजनादि वियामंत्रके प्रभाव करके अदृश्य हो जानेसें नेत्रोंसें नहीं दिखता. तोजी वियमान चेतना वाला है, ऐसे सूक्ष्म परिणाम होनेसें परमाणुकी तरें वायुकाय जो नेत्रोंसें नहीं दीखता तोजी वियमान चेतना वाला है. तथा अग्नि करके दग्ध पाषाण खंगन अग्निवत् प्रयोग यह है कि चेतनावान् वायु है, बिना हस्तस्पर्शके प्रेरणसें, नियन करके तिर्यग्व

ति होनेसे, गवांश्चादिवत् तिर्यग्गतिके नियम करनेसे, परमाणुके साथ अजिचार नहीं. ऐसे वायु शस्त्र करके अनुपहत सचेतन है.

५ अरु वनस्पतिमें तो प्रत्यह प्रमाणसे जीव सिद्धही है. इस वास्ते यह विस्तारसे नहीं लिखा. आगमजी सर्वज्ञके कथन करा हुआ पृथिवी जल, अग्नि, पवन अरु वनस्पतिमें जीवका होना कहता है. अरु जो कोई छींड़िय, चींड़िय, चतुरींड़िय अरु पंचेंड़ियमें जीव नहीं मानते हैं, तो तिन मूढ़ोंके न माननेसे कुछ हानी नहीं, यह संक्षेपसे जीवोंका स्वरूप लिखा है. जय विस्तारसे देखना होवे, तब जैनमतके सिद्धांत देखे ने ॥ इति प्रथम जीवतत्त्वं संपूर्ण ॥

अथ दूसरा अजीव तत्त्व लिखते हैं, अजीव उसको कहते हैं, कि जो जीवके लक्षणोंसे विपरीत होवे, जो ज्ञानसे रहित होवे, और जो रूप, रस, गंध, अरु स्पर्शवाला होवे, नर अमरादि जयमें न जावे, अरु ज्ञानावरणीय दिक् कर्मका कर्त्ता न होवे, अरु तिनोके फलका जोगने वाला न होवे, ज डस्वरूप होवे, तिसको अजीव कहते हैं, सो अजीव द्रव्य पांच प्रकारके हैं उसका नाम कहते हैं, १ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ पुद्गलास्तिकाय, ५ काश.

१ तिनमें जो धर्मास्तिकाय है, सो लोकव्यापी है, ओ नित्य है, अवस्थित है, अरूपी है, असंख्य प्रदेशी है, जीव अरु पुद्गलकी गतिमें उपजक है, यद्यपि जीव अरु पुद्गल स्वशक्तिसे चलते हैं, तो जी चलनेमें धर्मास्तिकाय अपेक्षा कारण है. जैसे मछी जलमें तरती तो अपनी शक्तिसे है, परंतु अपेक्षा कारण जल है. ऐसेही जीव पुद्गलको गति साहायक धर्मास्तिकाय है. जहां खगि यह धर्मास्तिकाय है, तहां खगि लोककी मर्यादा है. जे कर धर्मास्तिकाय न मानीये, तो लोकालोककी मर्यादा न रहेगी. अरु जहां खगि धर्मास्तिकाय है, तहां खगि जीव पुद्गल गति करते हैं. इसका पूरा स्वरूप जैनमतके ग्रंथ पढ़े बिना नहीं जान सका है ॥ इति ॥ १ ॥

२ दूसरा अधर्मास्तिकाय द्रव्य है. इसका सर्व स्वरूप धर्मास्तिकायकी तौ जानना. परंतु इतना विशेष है, कि यह द्रव्य, जीव पुद्गलको स्थिति साहायक है. जैसे पथिक जन जय चसता चसता थक जाता है, तब किसी द्वाड़िककी ठायामें बैठता है, सो बैठना तो वो थापही है, परंतु थापयनि

नहीं बैठ सका है, ऐसेही जीव पुज्य स्थित तो आपही होते हैं, परंतु अपेक्षा कारण अधर्मास्तिकाय है ॥ इति अधर्मास्तिकाय ॥

३ तीसरा आकाशास्तिकाय अव्य है, इसका स्वरूपजी धर्मास्तिकायवत् जाननां, परंतु इतना विशेष है कि यह अव्य लोकालोक सर्वव्यापी है, अरु अवगाह दान लक्षण है. जीवपुज्यके रहनेमें अवकाश दाता है, यह तीनों अव्य आपसमें मिले दूचे हैं. जहां लंगि आकाशमें धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय है, तहां लंगि लोक है, अरु जहां केवल एकला आकाशही है, और कोइ वस्तु नहीं, तिसका नाम अलोक है. इति आकाश अव्यं.

४ चउथा पुज्यलास्तिकाय अव्य है, पुज्य नाम परमाणुओंकाजी है, अरु जो परमाणुओंका घट पटादि कार्य है. उसकोंजी पुज्यही कहते हैं, एक परमाणुमें एक वर्ण है, एक रस है, एक गंध है, दो स्पर्श है, ओ का र्यही जिनका लिंग है, वर्णसे वर्णांतर, रससे रसांतर, गंधसे गंधांतर, स्पर्शसे स्पर्शांतर हो जाते हैं, यह परमाणु अव्यरूप करके अनादि अनंत है, पर्यायस्वरूप करके सादि सांत है, इन परमाणुओंका जो कार्य है, सो कोइक प्रवाहसे तो अनादि अनंत है, अरु कोइ सादि सांतजी है, जो यह जड दीखता है, सो सर्व इन परमाणुओंका कार्य है. सूकी हुइ व नस्पति सर्व अरु अग्नि आदिक शस्त्रों करके परिणामांतरकों प्राप्त दूचे पृथिव्यादिक सर्व पुज्य हैं, समुच्चय पुज्य अव्यमें पांच वर्ण, पांच रस, दो गंध, आठ स्पर्श, पांच संस्थान, उसमें काला, नीला, रक्त, पीत, शुक्ल, यह पांच तो वर्ण है. तीक्ष्ण, कसुआ, कपाय, खाटा, मीठा, यह पांच रस हैं. सुगंध, दुर्गंध, यह दो प्रकारकी गंध हैं. खरखरा अर्थात् कठोर, सु कोमल, हलका, भारी, शीत, उष्ण, चीकणा, रूखा, यह आठ स्पर्श हैं. इनसे अधिक जो वर्णादि है, सो सर्व इनहीके मिलनेसे हो जाते हैं. इन पुज्यलोमें अनंत शक्तियां अनंत स्वभाव हैं. १ अव्य, २ क्षेत्र, ३ काल, ४ जाव, इत्यादि तीस तिस निमित्तोंके मिलनेसे विचित्र परिणाम हो जाते हैं, इति पुज्यअव्यं ॥ ४ ॥

५ पांचमा कालअव्य है, सो प्रसिद्ध है. यह पांच अव्य अजीव है, सो निमित्त जैन श्वेतांवराचार्य श्रीसिद्धसेनदिवाकरकृत सम्मतितर्क ग्रंथमें पांच लिखे हैं. सो कहते हैं, १ काल, २ स्वभाव, ३ नियति, ४ पूर्वकृत

कर्म, ५ पुरुषाकार. इन पांचोंमेंसूँ एककों माने, तो वो मिथ्याज्ञान है, मिथ्यादृष्ट है, अरु इन पांचोंके समवायकों माने, तो सम्यक्ज्ञान है, सम्यक्दृष्ट है, इन पांच निमित्तोंमेंसूँ १ काल, २ स्वभाव, ३ नियति, इन ति नो निमित्तोंका स्वरूप क्रियावादिके मतमें लिख आये हैं. अरु चउथा पूर्ण कृत कर्म, उनका स्वरूप आगें कर्मोंके स्वरूपमें लिखेगें. अरु पांचमा पुरुषाकार, सो जीवके उदयमका नाम है. इन पांचों निमित्तोंसँ जगत्की प्रवृत्ति निवृत्ति हो रही है, इन निमित्तोंहीसँ नरकादि गतियोंमें जीव जाते हैं, अरु सुख दुःखका फल जोगते हैं, इन निमित्तोंके बिना फलका दाता ईश्वरादिक कोइजी नहीं, जे कर कोइ वादी इन पांचो निमित्तोंके समवायकों ईश्वर माने, तब तो हमजी ईश्वर कर्त्ता मान लेवेंगें, क्योंकि जैनमतकी तत्त्वगीतामें लिखा है, कि अनादि जो अव्ययमें अव्ययत्व शक्ति है, सोइ सर्व वायोंको उत्पन्न करती है, ओ लयजी करती है, सो शक्ति चेतन्याचेतन्यादि अनंत स्वभाव वाली है, तिसकों कर्त्ता ईश्वर माननेसँ जैनमतकी झुगहानी नहीं है ॥ इति अजीवतत्त्वं संपूर्ण ॥ २ ॥

३ अथ पुण्यतत्त्वं लिखते हैं. प्रथम तो पुण्य उपार्जन करनेका नव कारण हैं, “उक्तं च स्थानांगसूत्रे ॥ अन्नपुण्ये पाणपुण्ये वधपुण्ये क्षेणपुण्ये सयणपुण्ये मणपुण्ये वयपुण्ये कायपुण्ये नमोकारपुण्ये इति सूत्रं ॥” व्याख्या:—१ पात्रकें तांइ अन्नका दान करनेसँ जो तीर्थंकर नामादि पुण्य प्रकृतिका बंध होवे, तिसका नाम अन्न पुण्य है. ओसँही २ पीनेकों जल देवे: ३ वस्त्र देवे, ४ रहनेकों स्थान देवे: ५ सोने बैठनेकों आसन देवे, ६ गुणिजनकों देख कर मनमें तोष धरे, ७ वचन करकें गुणिजनोंकी प्रशंसा करे, ८ काया करकें पर्युपासन अर्थात् सेवा करे, ९ गुणिजनकों नमस्का करे. यह घात पुण्यकी जो कही, सो कुछ जेनीयोंकेही देनेसँ नहीं, किंतु कीसी मत वाला कोइ क्यों न हो, कोइजी अनुकंपा करकें जिसकों दान देवेगा, वो पुण्य उपाजैगा, परंतु इतना विशेष है, कि पात्रकों जो दान देना है, सो पुण्य अरु मोक्ष इन दोनोकाही हेतु है, अरु जो अनुकंपा करकें सर्वजनकों देवेगा, सो केवल पुण्यही उपाजैगा. जैनमतके किसी शास्त्रमें पुण्य करना निषेध नहीं. क्योंकि जैनमतके ऋषजदेवादि चोवीश तीर्थंकर जये हैं, उनोंनंजी दीक्षा लेनेसँ पहिलां एक क्रौर, आठ लाख, सोनइये दिन दिन

प्रति एक वर्ष तांड़ दीये है. इसी कारणसे जैनमतमें प्रथम दानधर्म है. तथा जैनमतके शास्त्रमें औरभी कई तरोंसे पुण्यका उपार्जन सिखा है.

अथ पुण्यका फल बैतालीस प्रकार करके जोगनेमें आता है. सो बैतालीस प्रकार लिखते हैं. १ जिसके उदयसे जीव शाता जोगता है, सो शातावेदनीय, २ जिसके उदयसे जीव कृत्रियादि उच्च कुलमें उत्पन्न होता है, सो उच्चगोत्र, ३ जिसके उदयसे जीव मनुष्य गतिमें उत्पन्न होता है, सो मनुष्यगति, ४ जिसके उदयसे जीव देवगतिमें उत्पन्न होता है, सो देवगति, ५ जिसके उदयसे जीव अपांतरास गतिमें नियतदेश अनुश्रेणी गमन करता है, अरु नियत मर्यादापूर्वक अंगोका विन्यास, अर्थात् स्थापन करनेवाली नामकर्मकी प्रकृतिको अनुपूर्वी कहते हैं, उसमें जो मनुष्य गतिमें आने वाली जीवके उदयमें है, सो मनुष्यानुपूर्वी, ऐसेही ६ देवानुपूर्वी, ७ जिसके उदयसे जीव पंचेंद्रिय पणा पाता है, सो पंचेंद्रिय जाति. अथ पांच शरीर कहते हैं. ८ जिसके उदयसे जीव औदारिक वर्णणके पुज्योंको ग्रहण करके औदारिक शरीरकी रचना करता है, अर्थात् औदारिक शरीर पणे परिणाम करता है, सो औदारिक शरीर नाम कर्मकी प्रकृति है. ऐसेही ९ वैक्रियक, १० आहारिक, ११ तेजस, १२ कर्मण, इन पांचो शरीरोंकी प्रकृतियोंका अर्थ कर लेना. तथा अंगोपांग तीन हैं. उसमें अंग सो शिर प्रमुख, उपांग सो अंगुली प्रमुख हैं, शेष अंगोपांग हैं, यथा १ शिर, २ ठाती, ३ पेट, ४ पीठ, ५ दो बाहु, ६ दो साखलां, यह आठ अंग हैं, तथा अंगुल्यादि उपांग हैं, शेष नखादि अंगोपांग हैं. जिसके उदयसे जीवको आदिके तीन शरीरोंमें अंगोपांगकी उत्पत्ति होवे, तिसका नाम तिन शरीरके अंगोपांग है सो यह है, १३ औदारिक अंगोपांग, १४ वैक्रिय अंगोपांग, १५ आहारक अंगोपांग. १६ जिसके उदयसे जीव आदिका संदहनन जिसका नाम वज्ररूपनाराच है. तहां वज्र नाम कीडीका है. अरु रूपन नाम परिवेष्टन पट्ट अर्थात् ठपर लपेटनेका दाड. तथा नाराच सो न केटबंध इन तीनों रूपों करके जो रूपलक्षित है, तिसको वज्ररूपनाराच संदहनन कहते हैं. दाडके संचय सानर्थ्यका नाम संदहनन है. यह संदहनन औदारिक शरीरवाओमेंही होता है, १७ जिसके उदयसे जी

वकों आदिके समचतुरस्र संस्थानकी प्राप्ति होवे, तहां सम हैं चारों आत्म
जिसके तुल्य शरीर लक्षण युक्त प्रमाण सहित, ऐसा आद्य संस्थान सुंद
राकार मनोहर होवे, सो समचतुरस्र संस्थान नाम कर्मकी प्रकृति जान
नी. अब वर्ण, रस, गंध स्पर्श, यह चारों कहते हैं. तिनमें जिसके उदय
सैं १८ वर्ण कृष्णादिक, १९ रस तिक्तादिक, २० गंध सुरज्यादिक, २१
स्पर्श मृदुआदिक, यह चारों शुच होवे, सो वर्णादि चार प्रकृति जाननी.
२२ जिस कर्मप्रकृतिके उदयसैं जीवका शरीर न तो जारी होवे, जिसको
जीव उठा न सके, अरु नतो हलका होवे, जो पवन करके उठ
जावे, तिसका नाम अगुरु लघु है, तिसकी प्राप्ति होवे, सो अगुरुलघु
नामकर्म, २३ जिसके उदयसैं प्राणी परकों हणे, अरु शरीरकी आकृति
ऐसी होवे जिसके देखनेसैं दूसरोंको अजिजब होवे, सो पराघात नाम
कर्म, २४ जिसके उदयसैं उद्धासन लब्धि अर्थात् उद्धास लेनेकी शक्ति,
आत्माको होती है, सो उद्धास नामकर्म, २५ जिसके उदयसैं जीव प्रका
श अरु आतप शरीर पावे है, तिसका नाम आतप नामकर्म, २६
जिसके उदयसैं जीव, उष्ण प्रकाशरूप उद्योत वाला शरीर पाता है, सो
उद्योत नामकर्म, २७ जिस कर्मके उदयसैं जीव विहायनाम आकाशका
है, तिसमें जो गति सो विहायोगति, सो राजहंस सरस्वी गति होवे, सो
सुविहायोगति नामकर्म, २८ जिसके उदयसैं जीवके शरीरके अंगोपांगा
दिकोंको नियतस्थानमें स्थापने वाला सूत्रधार (कारीगर) समान अर्था
त् नसा, जाल, भायेकी खोपकीके हाक, आंख, कानके परदे, केश, नखा
दि सर्व शरीरके अवयवोंको रचनेवाला निर्माण नामकर्मकी प्राप्ति हो
वे सो निर्माण नामकर्म, २९ जिसके उदयसैं जीवकों व्रत पणेकी प्रा
प्ति होवे, उष्णादि करके तप्त दृष्ट्या विवक्षित स्थानसैं ठायादिकमें जा
नां, ओ दो इंद्रियादिक पर्यायको जो फल जोगनां पावे, सो व्रत ना
मकर्म, ३० जिसके उदयसैं जीव वादर अर्थात् स्थूल शरीर वाला होता
है, सो वादर नामकर्म, ३१ जिस कर्मके उदयसैं जीव उ पर्याप्ति पीठें कही
है वो पूर्ण करता है, सो पर्याप्तनामकर्म, ३२ जिसके उदयसैं प्रत्येक
एक एक जीवके एक एक शरीर होता है. सो प्रत्येक नामकर्म, ३३
जिसके उदयसैं जीवकों दानादि अवयव स्थिर निश्चल होते हैं, सो स्थि

र नामकर्म, ३४ जिसके उदयसे जीवके शीर प्रमुख अवयव शुज होते हैं, सो शुजनामकर्म, ३५ जिसके उदयसे जीव सौजाग्यवान् होता है, सो सुजगनामकर्म, ३६ जिसके उदयसे जीवकां स्वर कोकिलावत् रमणिक होवे, सो सुस्वर नामकर्म, ३७ जिसके उदयसे जीवका उपादेय वचन होवे, जो कुछ कहे सो हो जावे, सो आदेय नामकर्म, ३८ जिसके उदयसे जीवकी विशिष्ट कीर्ति (यश) जगत्में विस्तरे, सो यशोनामकर्म, ३९ जिसके उदयसे जीवकां चोशठ इंद्र पूजा करते हैं, अरु उपदेश द्वारा धर्म तीर्थका कर्त्ता होवे, सो तीर्थकर नामकर्म, ४० तिर्यचोंका आयु, ४१ मनुष्यायु, ४२ देवायु, आयु उसकों कहते हैं कि जिसके उदयसे तिर्यचादि जन्ममें जीव जाता है, जिसे यह पूर्वोक्त तीन आयुकी जीवकों प्राप्ति होती है, सो तीन आयुकी प्रकृति जाननी, यह वैतालीस प्रकार करके पुण्य फल जोगनेमें आता है ॥ इति पुण्यतत्त्वं संपूर्ण ॥ ३ ॥

४ अथ चौथा पापतत्त्व लिखते हैं. पाप उसकों कहते हैं, कि जो आत्माका आनंद रस पीवे, यह पाप जो है, सो पुण्यसे विपरीत नरकादि फलका प्रवर्तक होनेसे अशुभ है, आत्माके साथ संबंध है, कर्मपुञ्ज स्वरूप है, यद्यपि बंधतत्त्वके अंतर्भूतही पुण्य पाप है, तोजी न्यारे जो कहे हैं, सो पुण्य पाप विषे नानाविध परमतज्ज्ञेद निरासार्थ है, सो परमत यह है, सो कहते हैं. कोश्क मत वालोंका यह कहनां हैं, कि एक पुण्यही है, परंतु पाप नहीं. तथा कोश्क मतवाले कहते हैं, कि एक पाप ही है, परंतु पुण्य नहीं. तथा कोश्क कहते हैं कि पापपुण्य दोनों आपसमें अनुविद्ध स्वरूप हैं, मेचक मणि सरीखे, सो मिश्र सुख दुःख फलके हेतु हैं, इस वास्ते साधारण पुण्य पाप एक वस्तु है. कोश्क औसें कहते हैं कि मूलसेंती कर्मही नहीं है, सर्व जगत्में स्वभावसेंही विचित्रता सिद्ध है. यह सर्व पूर्वोक्त मत मिथ्या हैं, क्यों कि सुख दुःख दोनों न्यारे न्यारे अशुभजन्ममें आते हैं, तिस वास्ते तिनके कारणभूत पुण्य पापजी स्वतंत्रही अंगीकार करणे योग्य हैं, परंतु एकिला पाप वा एकिला पुण्य वा मिश्रित मानने ठीक नहीं.

अथ कर्माभाववादी नास्तिक अरु वैदांतिक कहते हैं, कि पुण्य पाप जो

हैं, सो आकाशके फल सदृश असत् जानने; परंतु सत् नहीं, तो पापके फल जोगनेके स्थान नरक स्वर्ग क्यों कर माने जावे ?

उत्तर:-पुण्य पापके अज्ञावसें सुख दुःख निहेंतुक होनेसें उत्पन्न चाहियें, सो प्रत्यक्ष विरोध है, सोइ दिखाते हैं, मनुष्यपणा सदृश है, जीकोइ स्वामी है, कोइ दास है, कोइ अपणाही उदर जर सके हैं, अपणाजी उदर नहीं जर सके हैं, कोइ देवताकी तरें निरंतर सुख विश्वास करते हैं, कितनेक नारकीकी तरें दुःख जोग रहे हैं, इस अनुभूतमान सुख दुःखांके निबंधनचूत पुण्य पाप जरूर मानने चाहियें. प पुण्य पाप माने, तब तिनोके उत्कृष्ट फल जोगनेके स्थान जो नरक गे है, सो नी माने गये, जे कर न मानोगे, तब अर्थ जरतीय न्यायका संग होयेगा, आधा शरीर बुढ़ा, आधा जुवान. इसमें यह प्रयोग अर्थात् अनुमाननी है, सुख दुःख कारण पूर्वकहें, अंकुरवत् कार्य होनेसें इसीगत् जे सुख दुःखके कारण हैं, सो मानने चाहियें. जेसें अंकुरका बीज.

पूर्वपक्ष:- नीलादिक जे मूर्त्त पदार्थ हैं, जेसें वे नीलादिक स्वप्रतिनाति अमूर्त्त ज्ञानके कारण हैं, जेसेंही अन्न, फल माला, चंदन, स्त्रीपति मूर्त्त दृश्यमानही सुख अमूर्त्तोंके कारण होवेंगे. सर्प विष, कंदेआदि सुखोंके कारण हैं, तो फेर काहेकों अदृष्ट पुण्यपापोंकी कल्पना करते हैं।

उत्तरपक्ष:-यह तुमार कहनां अयुक्त है, क्योंकि इस कहनेमें व्यतिचार है, तथाहि ॥ दो पुष्पोंके पास तुल्य साधननी है, तोजी फलमें बरा जेद दिव्यता है, तुल्य अन्नादिकें जोगनेमेंनी किसीकों आस्थाद अर्थात् हर्ष दिव्यता है अथ इसरेकों रोगोत्पत्ति देखते हैं, यह फलजेद अवश्य कारण है, नहीं तो नित्य सत् नित्य असत् होनां चाहियें, क्योंकि जो सत् स्तु कार्य कंदे होवे, कंदे न होवे, सो कारणके बिना नहीं होता है, अथ वा कारणानुमानसें कार्य पुण्य पाप जाने जाते हैं, तहां कारणानुमान यह है, कि दानादि शुभक्रियाका अथ हिंसादि अशुभक्रियाका फलनून कार्य कारण होनेसें है. कृप्यादि क्रियावत् जो इन क्रियाओंका फलनून कार्य है, सो पुण्य पाप जानने. जेसें रेतनी करनेवासेकी क्रियाका फल शांति, स्व, गेहूं, आदिक है.

पूर्वपक्ष:-जेसें कृप्यादि क्रियाका दृष्ट फल शास्त्रादिक है, तेसें दाना

दिक पशु हिंसादिक क्रियाकाजी श्लाघा मांसजही नीर्दय आदि दृष्ट फलही हैं, तो फेर काहेको अदृष्ट धर्माधर्मका फल कल्पना करना? क्योंकि लोक जो हैं सो बाहुल्यता करके दृष्ट फलमेंही प्रवृत्त होते हैं, खेती वणिज्यादि हिंसादिक क्रियामें बहुत लोक प्रवृत्त होते हैं, अरु अदृष्ट दान फलादि क्रियामें थोड़े लोक प्रवृत्त होते हैं. इस वास्ते कृपि हिंसादि अशुच क्रियायोंका अदृष्टफल पापरूप हम नहीं मानते.

उत्तरपक्षः—जे कर तुमारा कहनां ठीक होवे, तब तों परजवमें फलके अज्ञावसें मरणके अनंतरही सर्व जीव विना यलके मोक्ष हो जावेंगे, तब तो प्रायः संसार शून्य हो जावेगा, तब संसारमें दुःखी कोइनी न होवेगा, दानादि शुचक्रियाके करने वाले तथा तिसका शुच फल जोगने वाले ही रहने चाहियें, परंतु संसारमें दुःखी बहुत दीखते हैं, अरु सुखी थोड़े दीखते हैं, तिस करके जाना जाता है कि जे कृपी, वाणिज्य, हिंसादिक्रिया निबंधन अदृष्टपाप रूप फल, यह दुःखित जीवोंको है, अरु सुखी जीवोंको दानादि अदृष्ट धर्मका फल है.

वादी कहता है कि जो सुखी है, वो हिंसादि क्रियासें है, अरु जो दुःखी है, वो धर्म दानादिकके फलसें है. अैसे क्यों न हो जावे ?

उत्तरः—अैसे नहीं होता है, क्योंकि अशुचक्रिया हिंसादिकके करने वालेही बहुत हैं, अरु शुचक्रिया दानादिकके करने वाले थोड़े हैं, यह कारणानुमान है. अथ कार्यानुमान कहते हैं कि जीवोंको आत्मत्वके अविशेषनी हूआ नर पश्यादिकोंकी देहोंमें कार्य होनेसें विचित्रताका कारण है, जैसे घटका दंरु, चक्र, चीवरादि सामग्री संयुक्त कुंजकार. तथा अैसे नी मत कहनां कि दीखते जो है माता, पिता, सोइ इस देहके कारण है. नतु पुण्य पाप, अैसेनी मत कहनां क्योंकि माता, पिता, एक सरोखेनी है, तोनी पुत्रोंके देहमें विचित्रता देखते हैं, सो विचित्रता अदृष्ट (शुचा शुच कर्मके) विना नहीं हो सकी है, इस वास्ते जो शुच देह है, सो पुण्यका कार्य है, अरु जो अशुच देह है, सो पापका कार्य है, यह कार्यानुमान है. सर्वज्ञके वचन प्रमाणसें पुण्य पापकी सत्ता सिद्धही है, विशेष पार्थ पुरुषने विशेषावश्यककी टीका देख लेनी.

पाप अठारह प्रकारसें बंधाता हैं, सो व्याप्ती प्रकारसें जोगनेमें आता

है, सो जेद यह है कि पांच ज्ञानावरण, पांच अंतराय, नव दर्शनावरण, मोहनीकी उबीश प्रकृति, नामकर्मकी चउत्तीस प्रकृति, एक अशातावे दनी, एक नरकायु, एक नीचगोत्र, यह सब मिल कर व्यासी जेद हूये. इ नका विवरा लिखते हैं.

अथ ज्ञानावरण कर्मकी पांच प्रकृति. प्रथम ज्ञान पांच प्रकारका है, उसमें मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, ए दो अजिखाप प्रावितार्थ ग्रहणरूप ज्ञान हैं, तथा तीसरा इंद्रियोंकी अपेक्षा बिना आत्माकों साक्षात् अर्थके ग्रहणे वाला ज्ञान, सो अवधिज्ञान, चउथा मनमें चिंतित अर्थका साक्षात् करनेवाला ज्ञान, सो मनःपर्यवज्ञान, पांचमा केवल संपूर्ण निःकलंक जो ज्ञान, सो केवल ज्ञान. इन पांचों ज्ञानोंका जो आवरण सो ज्ञानावरण है, १ मतिज्ञानावरण, २ श्रुतज्ञानावरण, ३ अवधिज्ञानावरण, ४ मनःपर्यव ज्ञानावरण, ५ केवलज्ञानावरण. उसमें १ जिसके उदयसे जीव निर्ममति निःप्रतिजा होता है, सो मतिज्ञानावरण, २ जिसके उदयसे पठन करते जीवकों कुठजी न आवे, सो श्रुतज्ञानावरण, ३ जिसके उदयसे अवधि ज्ञान न होवे, सो अवधिज्ञानावरण, ४ जिसके उदयसे मनःपर्यवज्ञान न होवे, सो मनःपर्यवज्ञानावरण, ५ जिसके उदयसे केवलज्ञान न होवे, सो केवल ज्ञानावरण यह पांच प्रकृति पापरूप है.

अथ अंतराय कर्मकी पांच प्रकृति कहते हैं. १ जिसके उदयसे देनेवा ली वस्तुजी है, गुणवान् पात्रजी है, दानका फलजी जाना है, परंतु दान नहीं दे सका है, सो दानांतराय, २ जिसके उदयसे देने योग्य वस्तुजी है, श्रु दाताजी बहुत प्रसिद्ध है, तथा मागने वालाजी मांगनेमें धरु कुशल है, तोजी मांगने वालेकों कुठजी न मिले, सो खाजांतराय, ३ जिसके उदयसे एक बार जोगने योग्य वस्तु जो आहारादिक, सो विद्यमानजी है, तोजी जोग नहीं सका सो जोगांतराय, ४ जिसके उदयसे बारंबार जोगने योग्य वस्तु जो शयन अंगनादि, सो विद्यमानजी है, तोजी जोग नहीं सका, सो उपजोगांतराय, ५ जिसके उदयसे अनुपहत पुष्टांगवालाजी शक्ति विकल हो जाता है, सो वीर्यांतराय यह पांच प्रकृति पापरूप है.

अथ दर्शनावरण कर्मकी नव प्रकृति लिखते हैं. इहां जो सामान्य बोध है, तिसका नाम दर्शन है, अरु जो विशेष बोध है, सो ज्ञान है, तहां ज्ञानका

जो आवरण, सो ज्ञानावरण, सो तो पूर्वे स्तिष्ठ आये हैं, अरु जो दर्शन का आवरण है, सो दर्शनावरण इनके नव जेद हैं, तिनमें जो आदिकें चार जेद हैं, सो मूलसँही दर्शन लब्धियोंके आवरण होनेसँ आवरण शब्द करके कहे जाते हैं, जैसे १ चक्षुदर्शनावरण, २ अचक्षुदर्शनावरण, ३ अवधिदर्शनावरण, ४ केवलदर्शनावरण, अरु निद्रादि जे पांच हैं, सो दर्शनावरण द्वायोपशम करके लब्ध आत्मलाभका दर्शन लब्धियोंका आवरण है, इसका जावार्थ यह है कि चक्षु करके सामान्यग्राही जो बोध, सो चक्षुदर्शन, सो जिसके उदय करके तिसकी लब्धिका विधात करे, सो चक्षुदर्शनावरण, ऐसेही अचक्षु करके चक्षु वर्जके शेष चार इंद्रिय तथा पांचमा मन, इन करके जो दर्शन, सो अचक्षुदर्शन, तिसका जो आवरण, सो अचक्षुदर्शनावरण, तथा रूपी पदार्थोंका जो पर्यादापूर्वक देखना, सामान्यार्थका ग्रहण करना, सो अवधिदर्शन, तिसका जो आवरण, सो अवधिदर्शनावरण, तथा वर, प्रधान, दायक होनेसँ केवल अनंत ज्ञेयके होनेसँ जो अनंत दर्शन, सो केवलदर्शन, तिनका जो आवरण, सो केवलदर्शनावरण, अरु जो चैतन्यको सर्व ठरसँ अतिकृत्तित पणा करे, सो निद्रा, दर्शन उपयोग सामान्य ग्रहण रूप, तिसका विघ्न करने वाली, सो निद्रा जाननी, तिस निद्राके पांच जेद हैं, १ निद्रा, २ निद्रा निद्रा, ३ प्रचला, ४ प्रचलाप्रचला, ५ स्त्यानर्द्धि, तहां १ निद्रा उसको कहते हैं, कि जो चपटी वजानेसँ जाग उठे, सो सुखप्रतिबोधनिद्रा, जिसके उदयसँ ऐसी निद्रा आवे तिसका नाम निद्रा है, तथा २ अतिशय करके जो निद्रा होवे, उसका नाम निद्रानिद्रा है, जैसेकि बहुत ह्वानेसँ दुःख जागे, कपडे खंचनेसँ जागे, जिसका उदयसँ ऐसी निद्रा आवे, तिस कर्मप्रकृतिका नाम निद्रानिद्रा है, तथा ३ जो घेठकों खडकों जो निद्रा आवे, तिसका नाम प्रचला है, जिस कर्मके उदयसँ ऐसी निद्रा आवे, तिस कर्मका नाम प्रचला है, तथा ४ जो चलतेको निद्रा आवे, तिसका नाम प्रचलाप्रचला है, जिस कर्मके उदयसँ ऐसी निद्रा आवे, तिस कर्मकी प्रकृतिका नामनी प्रचलाप्रचला है, तथा ५ स्त्याना नाम है पिनीनृतका सो पिंडीनृत है इष्टि आत्माकी शक्ति जिस निद्रामें सो स्त्यानर्द्धि, तिस निद्रामें बाहुदेवके वसने आधा वस होता है, जिस कर्म

के उदयसें ऐसी निंद थावे, तिसका नाम स्त्यानर्जिकर्म है, इस निजा में कितनेक कार्यजी कर लेता है, परंतु उसको कुठ खबर नहीं रहती है.

अथ मोहकर्मकी प्रकृति खिखते हैं. मोहे तत्त्वार्थ श्रद्धानको विपरीत करे, सो मोहनीय है. उसमें १ मिथ्यात्वही जो मोह, सो मिथ्यात्व मोहनीय कहिये, मोह कर्मकी उत्तरप्रकृति मिथ्यात्व हैं, यद्यपि यह मिथ्यात्व १ अजिग्रहिक, २ अनजिग्रहिक, ३ सांशयिक, ४ अजिनिवेशिक, ५ अनाजोगादि अनेक प्रकारसें है, तोजी यथावस्थित वस्तुतत्त्वके अश्रद्धानसें सर्वज्ञेदोंका एकही मिथ्यात्वरूप गिना जाता है. यह प्रथम मिथ्यात्व मोह कर्मकी प्रकृति है, अरु सोला जेद कषाय मोहनीयके हैं. क्योंकि यह क्रोधादिकनी तत्त्वश्रद्धानसें ब्रष्ट कर देते हैं, सो सोला जेद असें हैं, १ अनंतानुबंधी क्रोध, २ अनंतानुबंधी मान, ३ अनंतानुबंधी माया, ४ अनंतानुबंधी खोज. असेंही अग्रत्याग्यानी क्रोध, मान, माया, खोज. असेंही प्रत्याग्यानी क्रोध, मान, माया, खोज. असेंही संज्वलन, क्रोध, मान, माया, खोज, यह सर्व सोलह जेद कषायमोहनीयके हैं.

जे क्रोधादिक अनंत संसारके मूल कारण हैं, अरु अनंततनवानुबंधि जिनका शीघ्र है, उसमें जिसका स्वभाव असा है, कि जैसी पत्थरकी रेखा; जिसके साथ ह्वेश हो जावे, फेर जहां खगि जीवे, तहां खगि रोप न ओडे, सो अनंतानुबंधि क्रोध है, तथा मान, पथरके स्थंज सरिखा कदापि नमै नहीं, तथा माया, गांसकी जड समान, कदापि सरस न होये, तथा खोज, कृमीके रंग समान, कदापि छूर न होये, असें क्रोध, मान, माया, अरु खोज करके संयुक्त जो परिणाम है, तिसका नाम अनंतानुबंधि क्रोधादिक कर्म प्रकृति है. तथा अग्रत्याग्यान यहां नञ् अरुपार्थ वास्ते है, सो थोडाती प्रत्याग्यान जिमके उदय होनेसें नहीं होता है, उसको अग्रत्याग्यान कहते हैं. इसका स्वरूप कहते हैं, क्रोध पृथिवीकी रेखा समान. मान हारके स्थंज समान, माया मेपके सींग समान, खोज कंदमके दाग समान, एक वर्ष तांड़ रहता है. तथा जिसके उदयसें सर्ववि रतिपणा जीवकों न थावे, सो प्रत्याग्यानावरण कषाय है. उसमें क्रोध, रेणुकी रेखा समान. मान, काष्ठके स्थंज समान, माया, गोके मूतने स मान, खोज मंजनके रंग समान. चार मास जिमकी रहनेकी स्थिति है. त

सो जुगुप्सानाम मोहकर्मकी प्रकृति है. यह नव नोकपाय मोह कर्मकी प्रकृति हैं, यह सर्व पेंतालीस जेद हुये.

अथ नामकर्मकी चउतिस प्रकृति पापरूप हैं, उसका नाम कहते हैं. १ नरक गति, २ तिर्यंचगति, ३ नरकानुपूर्वी, ४ तिर्यंचानुपूर्वी, ५ एकेंद्रिय जाति, ६ द्वीन्द्रियजाति, ७ त्रीन्द्रियजाति, ८ चतुरिन्द्रियजाति, १३ पांच संहनन, १८ पांच संस्थान, १९ अप्रशस्त वर्ण, २० अप्रशस्तगंध, २१ अप्रशस्त रस, २२ अप्रशस्त स्पर्श, २३ उपघात, २४ कुविद्यायोगति, २५ स्यावर, २६ सूदम, २७ अपर्याप्त, २८ साधारण, २९ अधिर, ३० अशुभ, ३१ अशुभग, ३२ दुःस्वर, ३३ अनादेय, ३४ अघशःकीर्ति.

इनका स्वरूप ऐसे हैं. १ नरकगति उसकों कहते हैं कि जिसके उदय से नारकी नाम पड़े, अरु नरकगतिमें से जावे, २ ऐसेही तिर्यंचगतिजी जान सेनी, तथा ३ जिसके उदयसे नरकगतिमें जाते हुये जीवकों दो मयादि विप्रद्वगति करके अनुश्रेणीमें नियत गमन परिणति होवे, सो नरकगतिके सहचारी होनेसे नरकानुपूर्वी कहियें. ४ ऐसेही तिर्यंचानुपूर्वी जी जान सेनी. तथा ५ जिसके उदयसे एकेंद्रिय जो पृथिवी, जल, अग्नि, पवन, धनम्पति इनमें जीव उत्पन्न होता है, सो एकेंद्रिय जाति, ६ ऐसेही द्वीन्द्रिय जाति, ७ त्रीन्द्रियजाति, ८ चतुरिन्द्रिय जाति.

तथा आद्यसंहननवर्जके शेष रूपनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच, कीलिका सेवान, यह पांचो, संहननोंके नाम हैं. इनका स्वरूप ऐसा है कि "रूपन परिवेष्टनपट्टः नाराच उन्नयनोर्मकटबंधः" दोनो हाटोंकों दोनों पासे मकटबंध धन बांधके पट्टेकी आकृति समान हाडकी पट्टी उपर घेष्टन जिनके हैं, सो दूसरा रूपननाराच संहनन है. तथा वज्र रूपन करके हीन दोनों पासे मकटबंध युक्त. तीसरा नाराच नामक संहनन है, तथा एक पासे मकटबंध अरु दूसरे पासे कीलि करके बाँध्या दृष्ट्या हाड, यह चउथा अर्धनाराच नामा संहनन है, तथा रूपन अरु नाराच, इन करके वर्जित मात्र कीली करके बाँधे हुये दोनों हाड, येमा जो हाडका संचय, सो पांचमा किलीका नामा संहनन है, तथा दोनों हाडका स्पर्श पर्यंत सखण है जिनमें, अरु मूर्ती बाँधी कगनेसे आन (पीटीन) सो मेवान नामा संहनन हैं.

तथा १८ आद्य संस्थान वर्जके १ न्यग्रोध परिमंजु, २ साद्रि, ३ यामन

४ कुब्ज. ५ हुंडक, यह पांच संस्थान. इनका स्वरूप लिखते हैं. तहां १ न्यग्रोधवत् बडबुद्धकी तरें परिमंजल, न्यग्रोधपरिमंजल. जैसे बडबुद्ध ऊपरि संपूर्ण अवयववाला होता है, अरु हेठें तैसैं नहीं होता है, तैसैंही यह संस्थान नाजिके उपरि तो विस्तार बाहुव्य संपूर्ण लक्षणवाला है; अरु नाजिके हेठे संपूर्ण लक्षण नहीं, सो न्यग्रोधपरिमंजल संस्थान दूसरा है. २ तथा सादि आदि इहां उंचपणा नाजिसैं हेठला देहका विभाग; सो लक्षणों करकें पूर्ण, अरु नाजिसैं उपरि लक्षण विसंवादी होवे, तिसका नाम सादिसंस्थान है. तथा ३ हाथ, पग, शिर, ग्रीवा, यद्योक्त लक्षणादि युक्त, अरु शेष उदरादिरूप कोष्ठ शरीरमध्य लक्षणादि रहित, सो वामननामा संस्थान है. ४ तथा उर उदरादि लक्षण युक्त होवे, अरु हाथ पंगादि लक्षणों रहित होवे, सो कुब्जसंस्थान हैं, ५ तथा जिसके शरीरका एक अवयव नी सुंदर न होवे, सो हुंडसंस्थान जान लेनां, यह पांच संस्थान.

२१ जिसके उदयसैं वर्णादि चार अप्रशस्त होवे, सो कहते हैं. कि जो अति विजस्त दर्शन, कृष्णादि वर्ण वाला प्राणी होता है, सो अप्रशस्त वर्णनाम. सो वर्ण कृष्णादि जेदों करकें पांच प्रकारका है, तिनों करकें जो जीव युक्त होवे, सो अप्रशस्त वर्णनाम. ऐसेही जिसके उदयसैं कुक्षित मृतमूशकादिवत् दुर्गंधता प्राणीयोके शरीरमें होवे, सो अप्रशस्तगंधनाम. तथा जिसके उदयसैं प्राणीयोंकी देहमें रसनेंद्रियकों दुःखदायी स्वभाववाला कौडीतोरीकी तरें तिक्त कमुवादि ऐसा असार रस होवे, सो अप्रशस्तरस नाम. तथा जिसके वशसैं स्पर्शेंद्रियको उपतापका हेतु ऐसा कर्कशादि स्पर्शविशेष, जीवोंके देहमें होवे, सो अप्रशस्तस्पर्शनाम. यह वर्णादिचार.

२२ तथा जिसके उदयसैं अपणेही शरीरके अवयवों करकें प्रतीजिह्वा, गल, वृंद, लंबक, चोर दांतादिक शरीरके अंदर वर्जमान हो करकें शरीर हीकों पीमा देते हैं, तिसका नाम उपघातनाम. तथा २४ जिसके उदयसैं जीवोंको खर उंटादिककी तरें चलनां, अप्रशस्त होवे, सो कुबिहायोगति नाम. तथा २५ जिसके उदयसैं पृथिवी आदिक एकेंद्रिय स्थावरकायमें प्राणी उत्पन्न होता है, अरु स्थावरनामसैं कहे जाते हैं, सो स्थावरनाम. २६ जिसके प्रभावसैं लोकव्यापि सूक्ष्म, पृथिवी आदि जीवोंमें जीव उत्पन्न होता है, सो सूक्ष्मनाम. २७ जिसके उदयसैं आहार पर्याप्ति आ

दिक पूर्वोक्त पर्याप्ति पूरी न होवे, सो अपर्याप्तनाम. २७ जिसके उदर से अनंत जीवोंका साधारण एक शरीर होवे, सो साधारण नाम. २८ जिसके उदरसे जिह्वादि अवयव, शरीरमें अस्थिर होवे, सो अस्थिर नाम. ३० जिसके उदरसे नाजिके हेठले अवयव अशुच होवे, सो अशुच नाम. क्योंकि किसीको हाथ लग जावे, तो रोप नहीं करता, परंतु पग खंगनेसे क्रोध करता है, इस वास्ते अशुचनाम है. ३१ जिसके उदरसे जीवों जो जो देखे, तिस तिसको वो जीव अनिष्ट लगे, उछेगकारी होवे, सो असुचगनाम. ३२ जिसके उदरसे कठोर, जिह्न, हीन, दीन, स्वर्गाला जीव होवे, सो दुःस्वरनाम. ३३ जिसके उदरसे चांद्ो युक्तियुक्तजी घोले, तोजी तिसका कहनां कोइ न माने, सो अनादेय नाम. ३४ जिसके उदरसे जीव, ज्ञान विज्ञान दानादिकं गुण युक्तजी है, तोजी जगत्में उसकी यश (कीर्ति) नहीं होती बलके उलटी निंदा जगत्में होती है, सो अयशःकीर्तिनाम ॥ इति नामकर्मकी चउत्तीस पापप्रकृति कही.

जिसके उदरसे जाल्यादि करके विकल जीव होता है, सो नीचगोत्र जाननां. नीचगोत्र उसको कहते हैं, कि जो अधम केवर्त्त, चांन्ालादि, “कुलं गूयते संशब्ध्यतेऽनेन हीनायमजातिरित्यादि शब्दैरिति गोत्रं कुलं नीचमिति विशेषणान्यथानुपपत्त्या नीचगोत्रमित्यर्थः”

प्रश्नः— यह जो तुम नीच गोत्रके उदरसे नीच कुल कहते हो, तिनों के साथ खान, पान, नहीं करते हो, तिनोंकी बूत मानते हो, अरु निंदा जुगुप्साजी करते हो, य तुमारी बड़ी अज्ञानता है, क्योंकि मनुष्य धर्म करके सर्व सरीखे हैं, एक सरीखे हाथ पगादि अवयव हैं, तो फेर एकको उंच माननां, तथा एकको नीच माननां, यह केवल ब्राह्मण, और जैनीयोंने बुरी रसम, चारतवर्षमें जारी कर रखी है, इस घातमें क्या मुक्तिका अंग है, ? क्योंकि चारत वर्षियोंको वर्जके और सर्व छीप छीपांतरमें तथा चारतवर्षमेंजी सर्व विस्वायतादिकमें कोइजी उंच नीच नहीं गिनते हैं, सर्व निवाले प्यालेमें एक है, यह निःकेवल तुमारी मूढता अर्थात् अंध प रंपरा है, वास्तवमें उंच नीच कोइजी नहीं.

उत्तरः—यह तुमारा कहनां बहुत बे समझका है, क्योंकि तुम हमारे कहेका अजिप्राय नहीं जानते, हमारा अजिप्राय तो इह है, कि जो इस

जगत्में होता है, सो निमित्तके बिना नहीं होता है, यह जो जिह्म, कोल, धांगड, धाणक, गधीले, चंमाल, थोरी, वाघरी, सांसी, कंजर प्रमुख असंख्य जातिके लोक हैं, सो जंगलोंमें गामोंके बाहिर रहते हैं, अनेक प्रकारके क्लेश सहते हैं, काखे, दुर्गंधवाले, रूपमें बुरे शरीर पाते हैं, सुंदर स्त्रानेकों नहीं मिलता है, यह सब इनके निमित्त है, ? अथवा निमित्त नहीं ? जेकर कहोगेकी बिनाही निमित्तके होते हैं, तब तो तुम नास्तिक मती हो, इस नास्तिकमतीका खंरून हम पूर्व लिख आये हैं, जेकर कहोगेकि सनिमित्तक हैं, तब तो ऐसे असंख्य जातिके कुलमें उत्पन्न होनेका कारणजी जरूर चाहिये. जिसके उदयमें ऐसे कुलमें उत्पन्न होता है, तिसकाही नाम नीचगोत्र है, इस नीचगोत्रके प्रभावसे औरजी बहुत पाप प्रकृतियोंका उदय है, जिसे वे दुःखादि क्लेश पाते हैं. बुद्धिहीन, जालमस्वभाव, निर्दयता, कुत्सित आहार, पशुओंकी तरें जंगलोंमें वास, धर्मकर्मसे पराङ्मुख, सत्संग रहीत, गम्यागम्यके विवेक रहीत, जदयाजदय पेयापेय विचार शून्य, इन सबका मुख्य कारण नीचगोत्र है, जैसेही धनवान और निर्द्धन ए दोनों एक सरीखे सर्वथा नहीं हो सके हैं, तैसे नीचगोत्र वाले उंचगोत्र वालोंके सदृश नहीं हो सके हैं.

जेकर कहोगे कि विलायतमें सर्व एक सरीखे हैं, तो इस बातमें क्यों आश्चर्य है, ? जहां उंच नीच पणा नहीं, तहां सर्व जीवोंने एक सरीखा गोत्रकर्मका बंध करा है, इस वास्तेही सर्व सरीखे हुये हैं, परंतु जहां उंच नीचपणां माना जायगा, तहां अवश्यमेव उंच नीच गोत्रका व्यवहार जरूर होवेगा, अरु जो हीन जातियोंकां बुरे जानते हैं, सो बुद्धिमान नहीं, क्योंकि बुराई तो खोटे कर्मोंके करनेसे होती है, जेकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, होकर खोटे कर्म, जीवहिंसा, जूठ, चोरी, परस्त्रीगमन, परनिंदा, विश्वासघात, कृतघ्न, मांसभक्षण, मदिरापान, इत्यादिक जो कुकर्म करेगा, हम उनको जरूर बुरा मानेंगे, अरु नीच जातिवाला है, सोभी जेकर सुकर्म करेगा. दया, सत्य, चोरीका त्याग, परस्त्रीत्याग, इत्यादि करेगा, तो हम अवश्य उसको अच्छा कहेंगे, तो फेर हमारी समझ किसी रीतिसे बुरी है, अरु जो उसके साथ खाते नहीं है, यह कुत्तरूदी है, अरु जो नीच जातिवालोंकी निंदा (जुगुप्सा) करते हैं, अज्ञानी हैं, निंदा जु

गुप्ता तो किसीकीजी करनी न चाहियें. अरु जो तिनकी दूत मानते हैं, वोची कुलारूढी है, अरु जो मनुष्यत्व धर्म करके सरीखे हैं, तोची जैसं माता, बहिन, बेटा, चार्या, यह सब स्त्रीत्व स्वरूप करके समान हैं, तोची जैसं अगम्य गम्यका विजाग है, तैसैंही उंच नीचकाजी विजाग है, यह व्यवहार ब्राह्मण, अरु जैनोने नहीं बनाया है, किंतु अछे बुरे कर्मोंके उदय सैं है, यह परस्पर जातिका आहार न खानेका व्यवहार मिश्रदेशमेंजी था, इस वास्ते उंच नीच गोत्रके प्रजावसैंही उंच नीच जाति होती है.

तथा आयुः कर्ममेंसूं नरकायुकी प्रकृति पापमें गिनी जाती है, नरक शब्दकी व्युत्पत्ति ऐसें है, “नरान् प्रकृष्टपापफलजोगाय गुरुपापकारिणः प्रणिनोनरानित्युपलक्षणत्वात् कायंति शब्दयंतीति नरकास्तेष्वायुस्तद्वत् प्रायोग्यसकलकर्मप्रकृतिविपाकानुजवकारणं प्राणधारणं यत्तन्नरकायुष्कं तद्विपाकवेद्यकर्मप्रकृतिरपि नरकायुष्कमिति ॥”

तथा वेदनीकर्मकी अशातावेदनी पाप प्रकृतिमें गनी जाती है, सो अशाता नाम दुःखता है, जिसके उदयसैं जीव दुःख जोगता है, तिसका नाम अशातावेदनी है.

यह ज्ञानावरणी पांच, अंतराय पांच, दर्शनावरणी नव, मोहनी ठीस, नामकर्मकी चौत्तीस, नीचगोत्र एक, नरकायु एक, तथा अशातावेदनी एक, सब मिल कर व्यासी जेदें पाप फल जोगनेमें आता है ॥ इति पाप तत्त्वं संपूर्ण ॥

अथ आश्रवतत्त्व सिखते हैं. मिथ्यात्वादि आश्रवके हेतु हैं. १ असत् देव, २ असत् गुरु, ३ असत् धर्म, इनों विषे सत् देव, सत् गुरु, अरु सत् धर्म, ऐसी जो रुचि, तिसका नाम मिथ्यात्व है. तथा हिंसादिकसैं जो न निवृत्तनां, तिसका नाम अविरति है, तथा प्रमाद मयादि, तथा कपाय क्रोधादय, अरु योग मन वचन कायाका व्यापार, ये मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कपाय, अरु योग, यह पांच पुनर्वंधक जीवके ज्ञानावरणीयादिक कर्मोंके बंधके हेतु हैं, इसकों जैन मतमें आश्रव कहते हैं. आश्रवें कर्म जिनोसैंती सो आश्रव. तब तो मिथ्यात्वादि विषयादिक मन, वचन, कायाका व्यापारही शुभाशुभ कर्मबंधका हेतु होनेसैं आश्रव होय. यह तात्पर्य है.

प्रश्नः—बंधके अज्ञाव होये कैसें आश्रवकी उत्पत्ति है ? जे कर कहोगे कि आश्रवसैं पहिछां बंध है: तबतो वो बंधजी आश्रवहेतु बिना नहीं

हो सका है, क्योंकि जो जिसका हेतु है, सो तिसके अज्ञात हुआ नहीं हो सका है, जे कर होवेगा, तब अतिप्रसंग छूपा होवेगा.

उत्तर:—यह कहना असत् है, क्योंकि आश्रवकों पूर्वबंध अपेक्षया कार्य पणा है, अरु उत्तरबंधापेक्षया कारणत्व है, ऐसेही बंधकोंजी पूर्वोत्तर आश्रवकी अपेक्षा करके कार्यत्व कारणत्व जाननां, बीजांकुरकी तरें, बंधाश्रव दोनोंका परस्पर, कार्य कारण जावका नियम है, यहां इतरेतर छूपा नहीं है, प्रवाहापेक्षा करके अनादि होनेसे.

यह आश्रव पुण्य पापका बंधहेतु होने करके दो प्रकारें हैं. यह दो नां जेदोंके मिथ्यात्वादि उत्तर जेदोंके उत्कर्षापकर्ष, अर्थात् अधिक न्युन होनेसे अनेक प्रकार हैं. इस शुभाशुभ मन वचन कायके व्यापार रूप आश्रवकी सिद्धि अषणी आत्मामें स्वसंबेदनादि प्रत्यक्षसे है, अरु इस रीमें वचन काय व्यापारकी प्रत्यक्षसे सिद्धि है, आ शेषकी तिसके कार्य प्रभव अनुमानसे जाननी, तथा आस्तप्रणीत आगमसे जाननी.

अथ आश्रवके उत्तर जेद वेतासीत हैं. सो सिंगते हैं. पांच इंद्रिय, चार कषाय, पांच अमृत, पच्चीश क्रिया, तीन योग, यह वेतासीत जेद हैं.

जीवरूप तत्तावमें कर्मरूप पाणी जिस करके आवे, सो आश्रव है, यहां इंद्रिय पांच हैं तिनका स्वरूप कहते हैं, १ स्पर्शीयें स्वविषय स्पर्श लक्षण जिस करके सो स्पर्शनेंद्रिय, २ “रस्त्यते आस्वाद्यते ग्मोजयेति” आस्वादियें रस लीजीयें जिस करके सो रस्तना (जिह्वा) इंद्रिय, ३ मूर्चीयें गंध जिस करके सो घ्राणेन्द्रिय, (नासिकेन्द्रिय,) ४ चक्षु (दृष्टि), ५ श्रुति (श्रवण) जिस करके सो श्रोत्रेन्द्रिय, यह पांच इंद्रिय मूलजेदकी अपेक्षा से पांच कारण आश्रवके हैं.

“कृप्यति कुप्यति” सचेतन अचेतन वस्तुमें क्रोध जो करे, ननिमित्त, नि निमित्त येन जिस करके प्राणी, सो क्रोधवेदनीय कर्म है, तिनका उदय ली उपचारसे क्रोध है, ऐसेही मान, माया, अरु मोहनेही कह देनां, इसमें मान आठ प्रकारका है, तिनका नाम कहते हैं. १ जानिमद, २ कुलमद, ३ पक्षमद, ४ रूपमद, ५ हानमद, ६ साधनमद, ७ तनोमद, ८ अश्वरामद, १ जानिमद उनको कहते हैं जो अस्ती नातारे पक्षका अस्तिमान करेकि नेरी नाता ऐसे पक्ष परती देती है, इस को आसरीं दंडा माने

गुप्ता तो किसीकीजी करनी न चाहियें. अरु जो तिनकी दूत मानते हैं, वोजी कुलारूढी है, अरु जो मनुष्यत्व धर्म करके सरीखे हैं, तोजी जैसे माता, बहिन, बेटी, जार्या, यह सब स्त्रीत्व स्वरूप करके समान हैं, तोजी जैसे अगम्य गम्यका विजाग है, तैसेही उंच नीचकाजी विजाग है, यह व्यवहार ब्राह्मण, अरु जैनोने नहीं बनाया है, किंतु अछे बुरे कर्मोंके उदय से है, यह परस्पर जातिका आहार न खानेका व्यवहार मिश्रदेशमेंजी था, इस वास्ते उंच नीच गोत्रके प्रजावसेही उंच नीच जाति होती है.

तथा आयुः कर्ममेंसूं नरकायुकी प्रकृति पापमें गिनी जाती है, नरक शब्दकी व्युत्पत्ति ऐसें है, “नरान् प्रकृष्टपापफलजोगाय गुरुपापकारिणः प्रणिनोनरानित्युपलक्षणत्वात् कायंति शब्दयंतीति नरकास्तेष्वायुस्तद्वत् प्रायोग्यसकलकर्मप्रकृतिविपाकानुजवकारणं प्राणधारणं यत्तन्नरकायुष्कं तद्विपाकवेद्यकर्मप्रकृतिरपि नरकायुष्कमिति ॥”

तथा वेदनीकर्मकी अशातावेदनी पाप प्रकृतिमें गनी जाती है, सो अशाता नाम दुःखता है, जिसके उदयसें जीव दुःख जोगता है, तिसका नाम अशातावेदनी है.

यह ज्ञानावरणी पांच, अंतराय पांच, दर्शनावरणी नव, मोहनी उबीस, नामकर्मकी चौत्तीस, नीचगोत्र एक, नरकायु एक, तथा अशातावेदनी एक, सब मिल कर व्यासी जेदें पाप फल जोगनेमें आता है ॥ इति पाप तत्त्वंसंपूर्ण॥

अथ आश्रवतत्त्व लिखते हैं. मिथ्यात्वादि आश्रवके हेतु हैं. १ असत् देव, २ असत् गुरु, ३ असत् धर्म, इनो विषे सत् देव, सत् गुरु, अरु सत् धर्म, ऐसी जो रुचि, तिसका नाम मिथ्यात्व है. तथा हिंसादिकसें जो न निवृत्तनां, तिसका नाम अविरति है, तथा प्रमाद मयादि, तथा कपाय क्रोधादय, अरु योग मन वचन कायाका व्यापार, ये मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कपाय, अरु योग, यह पांच पुनर्वंधक जीवके ज्ञानावरणीयादिक कर्मोंके बंधके हेतु हैं, इसको जैन मतमें आश्रव कहते हैं. आश्रवें कर्म जिनोसेंती सो आश्रव. तब तो मिथ्यात्वादि विषयादिक मन, वचन, कायाका व्यापारही शुजाशुज कर्मबंधका हेतु होनेसें आश्रव होय. यह तात्पर्य है.

प्रश्नः—बंधके अज्ञाव होये कैसें आश्रवकी उत्पत्ति है ? जे कर कहोगे कि आश्रवसें पहिलां बंध है: तबतो वो बंधजी आश्रवहेतु बिना नहीं

ग्लानि रोगीकी लघुशंकाको मेघ वर्षतामें गेरनेसें, गुरुके शरीरमें वायु तथा थकेवा दूर करके मूठी चांपी करनेसें, जो हिंसा होती है, सो सर्व अव्यहिंसा है, तथा श्रावकको जिनमंदिर बनानेसें, जिनपूजा करनेसें, सधर्मिवत्सल करनेसें, तीर्थयात्रा जानेसें, रथोत्सव, अष्टाई उत्सव, प्र तिष्ठा अरु अंजनशलाका करनेसें, तथा जगवान्के सन्मुख जानेसें, गुरुके सन्मुख जानेसें, इत्यादि कर्त्तव्यसें जो हिंसा होवे, सो सर्व अव्यहिंसा है, परंतु जावहिंसा नहीं। इसका फल अल्प पाप, अरु बहुत निर्झरा है, यह जगवती सूत्रमें लिखा है, यह हिंसा साधु आदि करते हैं परंतु उन का परिणाम उस अवसरमें खोटे नहीं है, इस वास्ते अव्यहिंसा है।

प्रश्नः—यज्ञादिमें जो गोमेध प्रमुख जीव मारे जाते हैं, यहजी अव्यहिंसा क्यों नहीं ? इसका उत्तर, मीमांसक मत खंननमें लिख आये हैं, सो देख लेनां यह प्रथम जंग।

दूसरे जंगमें अव्यहिंसा नहीं परंतु जाव हिंसा है, तिसका स्वरूप कह ते हैं, कि जो पुरुष उपरसें तो शांतिरूप बना दूखा है, परंतु परिणाम अं तःकरण जिसका खोटा है, वो ऐसा चाहता है, कि मेरे शत्रुके घरमें आ ग लग जावे, मरी पड जावे, नदीमें डूब जावे, चोरी हो जावे, बंदीखाने में पड़े, तथा वेप बदलके जला मानस बनके उग बाजी करे, तथा अग लेका बुरा करनेके वास्ते अनेक प्रकारसें उसको विश्वास करावे, तथा फ कीरीका वेप करके लोकोसें धन एकठा करे, इत्यादि। तथा साधुके गुण तो उसमें नहीं हैं। परंतु लोकोमें अपने आपको गुण प्रकट करे, इत्यादिक का ममें अव्य हिंसा तो नहीं करता, परंतु जावसें तो वो पुरुष हिंसक है, इसका फल संसरमें त्रमण करने सीवाय और कोइ फल नहीं। यह दूसरा जंग।

तीसरे जंगमें प्रकट इंद्रियोंकी विषयमें श्रु हो कर जीवहिंसा कसाइ, (खटिक) बागुरी-थहेकी, (शिकार मारनां) विश्वासघात, इत्यादि करके जीवहिंसा करनी। अरु मनमें आनंद माननां। इसका फल पुगेतिह, यह अव्येजी हिंसा है। अरु जावेजी हिंसा है, यह तीसरा जंग।

चौथा जंगमें अव्येजी हिंसा नहीं, अरु जावेजी हिंसा नहीं। उनको हिंसा कहनां। यह जंग शून्य है, इस जंग बासा कोइनी जीव नहीं। इति

ऐसेंही जूठकेजी चार जेद हैं. तिसका स्वरूप कहते हैं. ? साधु, रस्तेमें चला जाता है, तिसके आगे हो कर एक जंगली गोआंका तथा मृगादि जानवरोंका टोला निकल जावे, तिसके पीछें शिकारी बंदूक प्रमुख शस्त्र लीयां चला आता है, उनके मारने वास्ते वो शिकारी साधुकों पूछें कि तुमने अमुक जीव जाते देखे हैं ? तब साधु मौन कर जावे,, जे कर मौन करजी पीठा न ठोडे, साधुकों मारे, तब साधु कह देवे, में नहीं देखे, यद्यपि यह झूठ है, परंतु जावें जूठ नहीं, क्योंकि जो कोइ इंडियोंकी विषय वास्ते तथा अपने खोज वास्ते जूठ बोले, तब जावतः जूठ होवे, परंतु यह तों जीवोंकी दया वास्ते जूठ बोले है. वास्तवमें यह जूठ नहीं. इसी तरें और जगेंजी समझ लेनां, यह प्रथम जंग.

तथा दूसरा जंगमें कोइ पुरुष मुखसें तो कुछ नहीं बोलता, परंतु दूसरों के उगने वास्ते मनमें अनेक विकल्प धरता है, यह दूसरा जंग. तथा तीसरे जंगमें तो झूठेंजी जूठ बोलता है, अरु जावेंजी जूठ बोलता है, तिसका अजिप्रायजी महा ठल कपट करनेका है, क्योंकि मुखसेंजी जूठ बोलता है, अरु चित्तमेंजी दुष्टता संयुक्त है, यह तीसरा जंग. तथा चौथा जंग तो पूर्ववत् शून्य है. इति जूठ स्वरूप.

अथ चोरीका यही चार जंग कहते हैं. तहां प्रथम जंगसें जैसें कोइ स्त्री शीलवान् है औ कोइ दुष्ट राजा उसका शीलजंग करा चाहता है, तब कोइ धर्मज्ञादि पुरुष रात्रिमें अथवा दिनमें उस स्त्रीके शीलकी रक्षा वास्ते उस राजसें बाहिर ले जावे, तो व्यवहारमें उस राजाकी उसने जंगरूप चोरी करी है, परंतु वास्तवमें वो चोर नहीं इसी तरें और जगा मेंजी जान लेनां. यह प्रथम जंग. दूसरे जंगमें चोरी तो नहीं करता, परंतु चोरी करनेका मन उसका है, तथा जो जगवान् वीतराग सर्वज्ञकी आज्ञा जंग करनेवाला है. सोजी जाव चोर है. यह दूसरा जंग. तथा तीसरे जंगमें चोरीजी करता है, अरु मनमेंजी चोरी करनेका जाव है, यह तीसरा जंग है. अरु चउथा जंग तो पूर्ववत् शून्य है. इति अदत्तादान जंग.

ऐसेंही मैथुनके चार जंग कहते हैं. जो साधु, जलमें नूवती साधवीकों देख कर काढनेके वास्ते पकड़े, तथा धर्मी गृहस्थ उससें गिरती अपनी वहिन बेटीकों पकड़े, तथा वावरी होइ दौकतीकों पकड़े, यह ऊ

व्यं मैथुन है, परंतु जावें नहीं, यह प्रथम जंग. तथा डव्यें तो मैथुन नहीं सेवता है, परंतु मैथुन सेवनेकी वनी अजिज्ञापा करता है, सो जावें मैथुन है. यह दूसरा जंग. तथा तीसरे जंगमें तो डव्यें अरु जावें मैथुन सेवता है. अरु चौथा जंग पूर्ववत् शून्य है ॥ इति मैथुन स्वरूपं ॥

अैसेही परिग्रहका चार जंग कहते हैं, १ जैसे कोइ मुनि कायोत्सर्ग कर रहा है, उसके गलेमें कोइ हारादिक आजूपण गेर देवे, वो डव्यें तो परिग्रह दीखता है, परंतु जावें परिग्रह नहीं है, यह प्रथम जंग. तथा दूसरा डव्यें तो उसके पास कौनी एकजी नहीं है, परंतु मनमें धनकी वनी अजिज्ञापा रखता है, सो जावपरिग्रह है. तथा तीसरेमें धनजी पास है, अरु अजिज्ञापाजी है, सो डव्यजाव करकें परिग्रह है, तथा चौथा जंग पूर्ववत् शून्य है. इन सब जंगोंमें दूसरा अरु तीसरा जंग निश्चय करकें अविरतिरूप है. यह पांच प्रकारकी अविरति.

अथ पच्चीस क्रियाका नाम अरु स्वरूप कहते हैं. १ काया (देह) करकें जो होवे. सो कायिकीक्रिया, २ आत्माकों नरकादिमें जाने वास्ते जाव अधिकारी करे, इस करकें सो अधिकरण परोपघात करनेसें वायुरादि गल कूटपाशा करकें जो उत्पन्न होवे, सो अधिकरणकी क्रिया, ३ अधिक जो होवे दोष सो प्रदोष कहियें क्रोधादिक, तिनमें जो उत्पन्न होवे, सो प्रदोषक्रिया, ४ जीवकों परिताप देनेसें जो उत्पन्न होवे, सो पारितापनिकी क्रिया, ५ प्राणीयोंके विनाश करनेकी जो क्रिया, सां प्राणातिपातकी क्रिया, ६ पृथिवीआदिक कायाका उपघात करनां यह जिसका लक्षण है, अैसे जो शुष्क तृणादि वेद, लेखनादि, तिनमें जो क्रिया होवे, सो आरंजकी क्रिया, ७ जो विविध उपायों करकें धन उपार्जन तथा धनरक्षण करणमें मृद्वाके परिणाम, उसका नाम परिग्रह है, तीन में जो उत्पन्न होवे क्रिया, सो परिग्रहकी क्रिया, ८ मायाही है हेतु प्रत्यय जिसका मोक्षके साधनोंमें माया प्रधान प्रवृत्ति. सो माया प्रत्ययकी क्रिया, ९ मिथ्यात्वही है प्रत्यय कारण जिसका सो मिथ्या दर्शन प्रत्ययकी क्रिया, १० संयमके विघातकारक कपायोंके उदयसें प्रत्याख्यानका न करनां, सो अ प्रत्याख्यानकी क्रिया, ११ रागापि कषुपितका जो जीव अजीवको देखनां

सो दृष्टिकी क्रिया, १२ राग, द्वेष, मोह संयुक्त चिन्तसें जो स्त्री आदिकोंके शरीरका स्पर्श करना, सो स्पृष्टिकाक्रिया, १३ पूर्वे अंगीकार करे हुये पां पोषादान कारण अधिकरणकी अपेक्षा जो क्रिया उत्पन्न होवे, सो प्रातीत्यकी प्रत्ययक्रिया, यह तात्पर्यार्थ, १४ “समंतात्” सर्व ओरसें “उपनिपात” आगमन आवणां, स्त्री आदिक जीवोंका जिस स्थानमें जोजना दिकमें, सो समंतोपनिपात, तहां जो क्रिया उत्पन्न होवे, सो सामंतोपनिपातिका क्रिया, १५ जो परोपदेशित पापमें चिर काल प्रवृत्ते, उस पापकी जो जावसें अनुमोदना करे, सो नेष्टृष्टिकी क्रिया, १६ अपने हाथ करके जो करे, जैसें कोई पुरुष बने अजिमान करके क्रोधित चित्त हुआ थका जो काम उस के नौकर कर सके हैं, उस कामको अपने हाथसें करे, सो स्वाहस्तिकी क्रिया, १७ जगवत् अर्हत्की आज्ञा उल्लंघन करके अपनी बुद्धिसें जीवाजीवादि पदार्थोंके प्ररूपण द्वारा जो क्रिया, सो आज्ञापनिका क्रिया, १८ दूसरायों के अण हुये खोटे आचरणका प्रकास करणां, उनकी पूजाका नाश करना, तिस करनेसें जो उत्पन्न होवे, सो वेदारणिका क्रिया, १९ आजोग नाम है उपयोगका, तिससें जो विपरित होवे, सो अनाजोग है, तिस करके उपलक्षित जो क्रिया सो अनाजोग क्रिया. बिना देखे, बिना पूजे देश अर्थात् जीत नृन्पादिकमें शरीरादिकका निक्षेप करणां, सो अनाजोग क्रिया, २० अपनी अरु परकी जो अपेक्षा करणी, तिसका नाम अन्वकांक्षा है, इससें जो विपरित तिसका नाम अन्वकांक्षा है, सोइ है कारण जिसका सो अन्वकांक्षा प्रत्यय क्रिया. तात्पर्य यह है कि जिनोक्त कर्तव्य विधियोंमें किसी विधियों में जो अपनेको अरु और जीवोंको हितकारी है, तिन विधियोंमें प्रमादके बश हो कर आदर न करणां, सो अन्वकांक्षा प्रत्ययकी क्रिया, २१ “प्रयोग” दौरना चखनादि कायाका व्यापार, अरु हिंसाकारी कठोर च उषोसनादि वचनव्यापार, परानिद्रोह, ईर्ष्या अजिमानादि मनोव्यापार, इन तीनोंका जो करणां, सो प्रयोगक्रिया, २२ जिस करके विषय ग्रहण करिये, सो समादान इन्द्रिय हैं, तिसकी जो क्रिया देश सर्वे उपघातरूप व्यापार, सो समुदान क्रिया, २३ प्रेम नाम है माया अरु खोजका, तिन करके जो होवे, सो प्रेमप्रत्यय क्रिया, २४ द्वेष नाम है शोक अरु मा

नका, तिन करके जो होवे, सो छेपप्रत्ययिकी क्रिया, २५ चलनेसें जो क्रिया होवे, सो ईर्याप्यक्रिया. यह क्रिया वीतरागकों होती है.

अथ इन पञ्चीश क्रियाका व्याख्यान करते हैं. १ प्रथम कायिकी क्रिया दो प्रकारकी है, एक अनुपरता कायिकी क्रिया, दूसरी अनुपयुक्त कायिकी क्रिया, उसमें प्रद्युष्ट मिथ्यादृष्टि जीवके मन वचनकी अपेक्षा रहित पर जीवोंके पीनाकारी औसा जो कायाका उद्यम, सो प्रथम जेद है, तथा प्रमत्त संयतके बिना उपयोग अनेक कर्त्तव्यरूप कायाका व्यापार, सो दूसरा जेद, यह कायिकी क्रियाका स्वरूप कहा. २ दूसरी अधिकरणकी क्रिया दो प्रकारें है. एक संयोजना, दूसरी निवर्त्तना, उसमें विष, गरल, फांसी, धनु, यंत्र, तलवार, आदि शस्त्रोंको जीवोंके मारणे वास्ते जो इनका "संयोजन" अर्थात् मिलाप करणां, जैसे धनुष अरु तीरका मिलाप करनां, इसी तरें सर्व जाननां. यह प्रथम जेद. तथा तरवार, तोमर, शक्ति, तोप, बंदुक, इनका जो नवे सिरसें बनानां, यह दूसरा जेद यह दूसरी क्रिया का स्वरूप कहा. ३ जीन निमित्तोंसें क्रोध उत्पन्न होवे, सो निमित्त जीव अजीव हैं, उसमें जीव तो प्राणी, अरु अजीव खूंट, कांटा, पत्थर कंकरादि, इनके उपर छेप करे, यह तीसरी प्रदोषक्रिया, ४ तथा अपने हाथों करके अरु परके हाथों करके, जीवको ताननां (पीना देनी) सो परितापनां, इस परितापनाके दो जेद हैं, एक तो "स्व" (अपणे आपको) पीना देनी, जैसे पुत्र कलत्रादिके वियोगसें दुःखी हो कर अपने हाथों करी जाती शिरका कूटनां, यह प्रथम जेद. तथा पुत्र शिष्यादिकोंको ताडन, (पीटनां) यह दूसरा जेद, यह चौथी परितापनिकी क्रिया. तथा ५ पांचमी प्राणातिपातकी क्रियाके दो जेद हैं, एक तो अपने आपकी घात करणी जैसेकि जान बूझ कर पर्वतसें गिरके मर जानां, जर्त्ताके साथ सती होनेके वास्ते अग्निमें जल मरनां, पाणीमें डूबके मरना, विष खा के मरनां, शस्त्र सें मरनां, इत्यादि स्वप्राणातिपात यह महापाप रूप क्रिया, यह प्रथम जेद तथा दूसरी मोह, लोभ, क्रोधके वश हो कर पर जीवकों स्व अथ वा परहाथ करके मारणां. यह पांचमी क्रिया, ६ जीव, अजीवका आरंभ करणां, सो आरंभकी क्रिया, ७ जीव अजीवका परिग्रह करणां, सो परिग्रहकी क्रिया, ८ माया करणी, सो माया प्रत्ययकी क्रिया, ९ वि

परित वस्तुका अज्ञान सोइ है निमित्त जिसका सो मिथ्यात्व दर्शन प्रत्ययकी क्रिया, १० जीवके हननेका तथा अजीव मद्य मांसादि पीने ला नेका जिसके त्याग नहीं, ऐसा जो असंयती जीव, तिसकों अग्रत्याख्या नकी क्रिया, ११ घोसा, रथ, प्रमुख जीव तथा अजीवोंके देखने वास्ते जानां, सो दृष्टिकी क्रिया, १२ जीव, अजीव, स्त्री, पुतली, आदिकका राग करके स्पर्श करनां. सो स्पृष्टिकी क्रिया, १३ जीव, अजीवकी अपेक्षा जो कर्मका गंध होवे, सो प्रातीत्यकी क्रिया, १४ जीव सो पुत्र, जाइ, शिष्यादिक, अरु अजीव सो जूपण, घर, हाटादि. इनकों लोक सर्व दिशोंसे देखने आवे, देखके प्रशंसा करे, तब तिन वस्तुओंका स्वामी हर्षित होवे, सो सामंतो पनिपातिका क्रिया, १५ जीव मनुष्यादि अरु अजीव इंटका टुकना, इनकों फेंके सो नेस्पृष्टिकी क्रिया, १६ अपने हाथों करी जीवकों तथा अजीवकों (प्रतिमादिकों) ताडे, बाँधे, सो स्वहस्तकी क्रिया, १७ जीव अजीवकी मिथ्या प्ररूपणा करणी, तथा जीव अजीवकों मंत्रसे मंगावा लेनां, सो आज्ञापनीका क्रिया, १८ जीव अजीवकों विदारणां, सो वेदारणिका क्रिया १९ बिना उपयोगकुं जो वस्तु लेवे, तथा भूमिकादि उपर ठोडे, सो अनाजोगक्रिया, २० इस लोकमें श्री परलोकमें जो विरुद्ध ऐसा जो चोरी, परदारागमनादिक है, उनकों सेवे, मनमें, करे नहीं, सो अनवकांक्षा प्रत्यय क्रिया, २१ मन, वचन, कायाका जो सावध (सपाप) व्यापार, सो प्रयोग क्रिया, २२ अष्टविध कर्म परमाणुओंका जो ग्रहणां, सो समुदान क्रिया, २३ राग जनक धीणादिककां जो शब्दादि सो प्रेम प्रत्यय क्रिया २४ अपने उपर तथा पर उपर छेप करनां, सो छेपप्रत्ययिकी क्रिया, २५ केवल योगोंसे जो क्रिया, सो केवलीकों ईर्ष्यापथ क्रिया. यह पश्चिम क्रिया का स्वरूप संक्षेप मात्र लिखा है. यद्यपि इन क्रियाओंमें किननीक क्रिया आपसमें एक सरस्वी दीवती हैं, तोनी एक सरस्वी नहीं है, इनका अत्री तरे स्वरूप देखनां होवे, तो गंधहस्तीजाप्य देख लेनां.

अथ योग तीन है, सो लिखते हैं. १ मनका व्यापार, सो मनोयोग, २ वचनका व्यापार, सो वचनयोग, ३ कायाका व्यापार, सो काययोग. यह सर्व मिस कर बेंतालीस जेद आश्रय तत्त्वके दूये हैं. इन बेंतालीस जेदों से जीवकां शुभाशुन कर्मकी आसदनी होती है. इति आश्रयतत्त्वं संपूर्ण ॥

अथ मंत्रगतत्व लिखते हैं. पूर्वोक्त आश्रयका जो रोकने वाला सो संवर है. तिस मंत्रके सनावन जेद है. सो कहते हैं. पांच ममिति. नीन गृति, दश प्रकारका यतिधर्म. बारह जावना. बावीश परिसद. पां च चारित्र. यह सब मिल कर सनावन जेद हूये. इनमेंसे पांच ममिति. नीन गृति, दशविध यतिधर्म. बारह जावना. इनका न्वरूप गुन तत्वमें लिख आये हैं. नहोंमें जान लेनां. इहां नहीं लिखते.

अथ बावीश परीपद्का न्वरूप लिखते हैं. १ कुधापरीपद्. सो कुधा नाम जूयका है, शेष वेदनासे अधिक जूयकी वेदना है. सो जब कुधा लगे. तब अपनी प्रतिज्ञासे न चले. अरु आर्चध्यानजी न करे. सम्यक् परिणामोंसे कुधा सहे. सो कुत्परीपद्. २ अनेही पिपासा जो तृषा नित का परीपद्जी जान लेनां. ३ शीतपरीपद् सो यज्ञ जारी जब शीत पडे तबजी अकल्पनिक वस्त्रकी पांठा न करे. जैसे जीर्ण वस्त्र होवे, उनोहीसे शीत सहे, अरु अग्निसंजी न तापे. इसी रीतीसे सम्यक् शीत परीपद् सहे. ४ ऐसेही उष्णपरीपद्जी सहे. ५ दंशमशकपरिपद्, सो दंश मशक जब काटे, तब उस स्थानसे चले जानेकी इया न करे. तथा दंश मशकके छू र करने वास्ते धूमादि चढजी न करे, तथा तिनके छूर निवारण वास्ते पं खाजी न करे. ऐसा पुरुष, दंश मशक परीपद् सहे, ६ अचेलपरीपद्, जो सर्वथा वस्त्रोंका अभाव, तिसका नाम अचेल परीपद् नहीं, किंतु आगम में जो वस्त्रादिक रखनेका प्रमाण कहा है, तिस प्रमाण रखनां सो परीपद् नहीं है, परिग्रह तो उसकों कहते हैं कि जो मूर्धा करके रखे ॥ उक्तं च ॥ जंपि वठं च पायं च, कंबलं पायपुच्छं ॥ सोपि संजम लज्जछा. धारिति परिहरति य ॥ १ ॥ न सो परिग्रहो बुत्तो, नाइपुत्तेण ताइणा ॥ मुत्तापरिग्रहो बुत्तो. इइ बुत्तं महेसणत्ति ॥ २ ॥ चेल नाम वस्त्रका है. सो शीर्ण अर्थात् फटे हूये अरु जीर्णजी होवे, तोजी अकल्पनिक न लेवे. सो अचेलपरीपद्, ७ अरतिपरीपद्, संयम पालनेकों जो अरति संयममें उत्पन्न होवे, तिसकों सहे. इसके सहनेका उपाय दशैकालिककी प्रथम चूनामें अठारह वस्तुके चितनरूप करनेसे अरति छूर हो जाती है. ८ स्त्रीपरीपद्, सो स्त्रीयांके अंग प्रत्यंग संस्थान सूरति. हसनां. मनोहरपणां, विसमादि चेष्टायोंके मनमें चितवना न करे, सोई मार्गमें अंगलसमान स्त्रीयोंकों जान करके

तिनोंमें कामकी बुद्धि करके, नेत्रोंसे देखे नहीं. ९ चर्या नाम है चखने का चखना घर रहित ग्राम नगरादिमें अनियतवास ममत्व रहित मास कष्टपादि करणां, सो चर्यापरीपह है, १० निपद्यापरीपह, सो निपद्या यह रहनेके स्थानका नाम है, सो स्थान, स्त्री, पंरुक विवर्जित होवे, तिस स्थानमें रहतेंकों इष्टानिष्ट जो उपसर्ग होवे, तोजी अपणे चित्तमें चलायमान न होवे, सो निपद्यापरीपह, ११ 'शेरते' शयन करियें इस विषे सा शय्या, संस्तारक, वसति, तहां संस्तारक सो सोनेंका आसन, को मल, कठीन, ऊंचा, नीचा, धूल, कूड़ा, कंकर वाली जगामें होवे, तथा वो स्थान, शीत गर्मी वाला होवे, तोजी मनमें उद्वेग न करे, दुःख सहन करे, सो शय्यापरीपहः १२ आक्रोश परीपह, सो अनिष्ट धचन कोइ कहे तब ऐसैं विचारे, जे कर यह पुरुष सच्ची बातके वास्ते अनिष्ट धचन कहता है, तो मुज्जकों कोप करना ठीक नहीं, क्योंकि यह पुरुष मुजे शिक्षा देता है, फेर ऐसा काम न करुंगा, जे कर इस पुरुषका मेरे पर फूटा कोप है, तोजी मुज्जकों कोप करना शुक्त नहीं, ऐसैं चिंतन करके आक्रोशपरीपह सहे, १३ वध नाम है हाथाद करके ताडनां, (मारनां,) तिसका सहनां सो इसी रीतीसैं कि यह जो मेरा शरीर है, सो अवश्य विध्वंस होवेगा, इस शरीरके संबंधसैं जो मेरेकों दुःख होता है, सो मेरे करे हूये कर्म का फल है. इस बुद्धिसैं वधपरीपह सहे, १४ याचना नाम मांगनेका है सर्वही वस्त्र अन्नादिक साधुकों मागनेसैंही मिलता है, इस बुद्धिसैं याचना परीपह सहे, १५ साधुकों किसी वस्तुकी इष्टा है, अरु वो वस्तु गृहस्थ के घरमेंजी बहुत है, साधु मांगनेकों गया, परंतु गृहस्थ देता नहीं, तब साधु मनमें विपाद न करे, अरु देने वालेका बुराजी नहीं चिंतवे, दुर्धचनजी न बोले, समता करे, आज नहीं मिला, तो कलकों मिल जाय गा, इस तरें अलाजपरीपह सहे, १६ रोग (ज्वर अतिसारादि) जब हो जावे, तब गठके बहिर जो साधु होवे, सो तो कोइजी औषधि न खावे, अरु जो गघवासी साधु होवे, सो गुरु लाघवता विचार करके रोग परीपह सहे, अरु जो रीति शास्त्रमें औषध करनेकी कही है, तिस रीतिसैं करे, सो रोगपरीपह सहे, १७ तृणस्पर्श परीपह, सो दर्जादिक कठोर तृणका स्पर्श सहे, १८ मलपरीपह, सो साधुके शरीरमें पसीना आनेसैं रजका पुं

ज शरीरमें लगनेसें कठीन मैल लग जाता है, अरु उष्ण कालकी तप्तसें प्रगट हुआ है दुर्गंध तिस करके उत्पन्न हुआ है उद्भेग, तोजी स्नानादि शरीरकी विचूषा साधु न करे, यह मलपरीपह है, १ए सत्कारपरीपह, सो जक्त लोकोने ब्रह्मान्न पानादिक करके साधुको बहुत सत्कारजी किया, तोजी मनमें अजिमान न करणां, तथा और और साधुओंकी जक्त लोक पूजा जक्ती करते हैं, अरु जैनमतके साधुकी कोइ बातजी नहीं पूठता, तोजी मनमें विपाद न करे, यह सत्कारपरीपह है, २० प्रज्ञापरीपह, सो बहुत बुद्धि पा कर अजिमान न करे, तथा अद्वयबुद्धि होवे तदा "मैं महा मूर्ख हूं, सर्वके पराजयका स्थान हूं," ऐसी ताप दीनता मनमें नहीं लावे, सो प्रज्ञापरीपह, २१ अज्ञानपरीपह, सो ज्ञान चौदहपूर्व पाठी, एकादशांगपाठी, तथा उपांग, वेद, प्रकर्ण, शास्त्रोंका पाठी, ज्ञानका समुद्र में हूं ऐसी गर्व न करे. अथवा मैं आगम ज्ञान रहित हूं, धिक् है, मुझे निरक्षर कुक्षिजरको? ऐसी दीनताजी न करे, ऐसे विचारे कि निःकेवल ज्ञानावरणका क्षयोपशमके उदयसें मेरा यह स्वरूप है, स्वकृतकर्म का फल है, जांतो जोगमेसें दूर होवेगा, वा तपोनुष्ठानसें दूर होवेगा ऐसे विचारि अज्ञान परीपह सहे, २२ शास्त्रोंमें देवता अरु इंद्र सुनते हैं, परंतु सांनिध्य कोइजी नहीं करता, इस वास्ते क्या जाने देवता इंद्र है वा नहीं? तथा मतांतरकी रुद्धि वृद्धि देख कर जिनोक्त तत्त्वमें संमोह करनां, ऐसी विकलता जो मनमें न लावे, सो दर्शनपरीपह. यह बावीस परीपह जो साधु जीते, सो संवरी कहा जाता है, इन परीपहोंका विस्तार देखनां होवे, तो श्रीशांतिस्मृतकृत उत्तराध्ययन सूत्रकी बृहद्वृत्ति, तथा तत्त्वार्थ सूत्रकी वृत्ति देख लेनी.

अथ पांच प्रकारका चारित्र लिखते हैं. १ सामायिक चरित्र, २ वेदोपस्थापनिका चरित्र, ३ परिहारविशुद्धि चरित्र, ४ सूक्ष्मसंपराय चरित्र, ५ यथाख्यात चरित्र, यह पांच प्रकारका चारित्र है. इन पांचोंके धारक साधु जी जैनमतमें पांच प्रकारके हैं, इस कालमें प्रथम दो चारित्रके धारक साधु हैं, अरु तीन चारित्र व्यवच्छेद गये हैं, इन पांचोंका विस्तार पूर्वक देखनां होवे तदा देवाचार्यकृत नवतत्त्व प्रकरणकी टीका, तथा ज

गवती अरु पञ्चवणासूत्रकी वृत्ति देख लेनी. यह सवे मिल कर सत्तावन जेद आश्रवके रोकने वाले हैं. इति संवरतत्त्वं संपूर्ण ॥

अथ निर्जारातत्त्व लिखते हैं. निर्जारा उसकों कहते हैं, जो बांधे हुए कर्मोंको खेरु करे, जिस करके निर्जारा होती है, तिसका नाम तप है. सो तप चारह प्रकारका हैं, उसका स्वरूप गुरुतत्त्वमें संक्षेप करके लिख आये हैं, तहांसे जान लेना. अरु जे कर विस्तार देखना होवे, तदा नव तत्त्वप्रकरणवृत्ति तथा श्रीवर्द्धमानसूरिकृत आचारदिनकर शास्त्र, तथा श्रीरत्नशेखरसूरिकृत आचारप्रदीप, तथा जगवतीसूत्र, अरु उववाइ-शास्त्र देख लेना ॥ इति निर्जारातत्त्वं संपूर्ण ॥

अथ बंधतत्त्व लिखते हैं, बंध चार प्रकारका होता है, १ प्रकृतिबंध २ स्थितिबंध, ३ अनुज्ञाबंध, ४ प्रदेशबंध बंध कहते हैं. जीवके प्रदेश, अरु कर्मपुरुष, ये दोनों इंध अरु पाणीकी तरें परस्पर मिल जावे, उसकों बंध कहते हैं. अथवा बंध नाम बंदीवानका है जैसे बंधुआ कैदमें स्वतंत्र नहीं रहता, ऐसे आत्माजी ज्ञानावरणीयादि कर्मोंके बश हो जाता है, स्वतंत्र नहीं रहता है, इस कर्मके बंधमें ठ बिकल्प है, सो कहते हैं.

१ कोइक वादी कहता हैं, कि निर्मलजीव पुण्य पापके बंध रहित था, पीछेंसे पुण्य पापका बंध हुआ है, यह प्रथम विकल्प. यह विकल्प मिथ्या है, क्योंकि निर्मल जीव कर्मका बंध नहीं कर सका है, अरु कर्मके बिना संसारमें उत्पन्नजी नहीं हो सका है, जे कर निर्मल जीव कर्मका बंध करे, तब तो मोक्षस्थ जीवजी कर्मका बंध कर लेवेगा, जब मोक्षस्थ जीवकों कर्मबंध हुआ, तब मोक्षका अभाव हो जावेगा, जब मोक्ष नहीं, तब तो मोक्षोपायके शास्त्र अरु शास्त्रोंके बनाने वाले मिथ्यावादी हों जावेंगे, तब तो नास्तिकमती बन जायेंगे, अरु निर्मल आत्मा संसारमें शरीरके अभावसे कर्मजी काहेसे करेगा ? इस वास्ते यह प्रथमविकल्प मिथ्या है.

२ दूसरा विकल्प कर्म पड़ेले थे, अरु जीव पीछेंसे बना है, यहजी मिथ्या है, क्योंकि जीवोंके बिना वो कर्म किसने करे थे, कारणकि कर्ताके बिना कर्म हो नहीं सके हैं, अरु प्रथम कर्मोंका फल इस जीवकों नहीं होवेगा, क्योंकि वो कर्म जीवके करे हुए नहीं हैं, जे कर कर्मके करे बिनाजी कर्मका फल होवे, तब तो अतिप्रसंग छूण होवेगा, अरु बिना कर्मके क

रे ईश्वरजी कर्मफल जोगने वास्ते नरककुंभमें जा गिरेगा. अरु जीव पी तेंसे काहेसे बनेगा ? जीवका उपादान कारण कोइ नहीं. जे कर कहेगे कि ईश्वर जीवका उपादान कारण है. तब तो कारणके समान कार्यकी दोनों चाहियें. जैसा ईश्वर निर्मल, निःपाप. सर्वज्ञ, सर्वदर्शी है, तैसाही जीव होवे. परंतु तैसा नहीं. अरु जो ईश्वर जीवोंका उपादान कारण होवे. तब तो ईश्वरही जीव बन कर नाना क्लेश जन्म मरण गर्जावासादि दुःखोंका जोगने वाला हुआ, तब ईश्वरने यह अपने पगमें आप कुहाडा क्यों मारा ? जो पूर्णानंद पद ठोन कर संसारकी विटंबनामें फसा ? फेर अपने आपको निःपाप करने वास्ते वेदादि शास्त्र द्वारा केइ तरेंका तप जपादिक क्लेश करना बताया ? इस वास्ते यह सब कहनां नहा मूल्योंका है, इस वास्ते यह छूत्तरा विकल्पजी मिथ्या है.

३ तीसरा विकल्प, जीव और कर्म यह दोनों एक साथ उत्पन्न हुये, यहजी मिथ्या है, क्योंकि जो वस्तु समकालमें उत्पन्न होती है. तो आपसमें कारण कार्य रूप नहीं होती है. जब कर्म, जीवके करे सिद्ध न हुये, तब कर्मफलजी जीव नहीं जोगेगा. यह प्रत्यक्ष विरोध है, क्योंकि जीव तो कर्म जोके दीखते हैं, अरु कर्म तथा जीवका उपादान कारण कोइ नहीं इस वास्ते यह तिसरा विकल्पजी मिथ्या है.

४ चौथा विकल्प, जीव तो है परंतु जीवके कर्म नहीं यहजी मिथ्या है, क्योंकि जब जीवके कर्म नहीं, तो जीव दुःख सुख क्यों जोका है ? कर्म के बिना संसारकी विचित्रता कदापि न होवेगी ? इस वास्ते यह चौथा विकल्प मिथ्या है.

५ पांचवा विकल्प, जीव और कर्म, यह दोनोंही नहीं, यहजी मिथ्या है, क्योंकि जब जीवही नहीं, तब यह कौन कहता है, जो जीव और कर्म नहीं है, अस्ता कहने वाला जीव है ? कि छूत्तरा कोइ है ? इस वास्ते यह खलबचनविरोध है. तो यह पांचवा विकल्पजी मिथ्या है. यह पांच विकल्प मिथ्यास्वरूप हैं, अरु सत्य विकल्प ठछा है, तो यह है.

ठछा विकल्प, जीव और कर्म, यह दोनों अनादि अपश्चानुपूर्वी हैं.

प्रश्न:-जब जीव और कर्म यह दोनों अनादि हैं, तब तो जीवकी तरे कर्मका नाश कदापि न होना चाहिये ?

उत्तरः—कर्म जो अनादि कहे हैं, सो प्रवाह अनादि हैं इस वास्ते उ सका दय हो जाता है.

प्रश्नः—यह जो तुम बंध कहते हो, सो निहेतुक है ? अथवा सहेतुक है ? जे कर कहोगे कि निहेतुक है, तब तो “नित्य सत्त्वं” होवेगा, वा “नित्य असत्त्वं” होवे गा, क्योंकि जिस वस्तुका हेतु नहीं, वो आका शवत् नित्य सत्त्व होती है, अथवा खरशृंगवत् नित्य असत्त्व होती है, निहेतुक होनेसे मोक्षका अभाव हो जावेगा, जे कर कहोगे कि सहेतुक है, तो हमको कहो कि इस बंधके क्या हेतु है ?

उत्तरपक्षः—इस बंधके मूल हेतु चार हैं, अरु उत्तर हेतु सत्तावन हैं, यहां प्रथम चार प्रकारका बंध कहते हैं, तिसमें प्रथम तो प्रकृतिबंध है, सो प्रकृति कौनसी है ? अरु उसका बंध क्या है ? तहां मूल प्रकृति आठ है, उसमें १ मत्पादि ज्ञानका जो आवरण आच्छादन, सो ज्ञानावरण, २ सामान्य बोध चक्षु आदिका जो आवरण सो दर्शनावरण, ३ सुख दुःख वेदियें (जोगीयें) सो वेदनीय, ४ मोहे जीवकों विचित्रताको प्राप्ति करे, सो मोह, ५ सपेया जो कर्म चला जावे “एति याति चेत्यायुः” जिसके उदयसे जीव जीता है सो आयु, ६ नमावे जो शुभाशुन गत्यादि रूप करके आत्माको, सो नामकर्म, ७ गोत्र शब्दकी व्युत्पत्ति ऐसे हैं “गां वा चां प्रापतइति गोत्रं” जिसके उदयसे जीव उंच नीच कुलका कहाना है. सो गोत्र, ८ अंतर कहियें विद्यासे खानादिके जो हो जावे, एतायता दा न खानादिक जीवमें होतांको न होने देवे, सो अंतराय, यह आठ स्वभावरूप कर्म जो जीवके साथ हीर नीरकी तरें मिथ्यात्वादि हेतुओंसे बंध जावे, तिसका नाम प्रकृतिबंध है. २ इनहीं आठ प्रकृतियोंकी स्थिति अथात् काख मर्पादा, जैसी कि यह प्रकृति इतना काख तक आत्माके साथ रहेगी, पीठसे न रहेगी, जिस करके अमी स्थिति होवे, सो स्थिति बंध. ३ इनही आठ प्रकृतियोंमें तीव्र, मंद, रसका जो करनां, सो अनुजागबंध, ४ कर्मप्रदेशका जो प्रमाण यथा इतने परमाणु इस प्रकृतिमें है, उन परमाणुओंका जो जो आत्माके साथ बंध सो प्रदेशबंध.

इसका बंध इस तरें चार प्रकारें है. सो नव्य जीवोंके सुबोधके वाग्ने चार प्रकारके बंधमें सहुका दृष्टान्त मिलते हैं, जेसे एक सहु है, तिमसा

स्वजाव वात हरणेका वा पित्त हरणेका वा कफ हरणेका इत्यादि होता है. अमेंही प्रकृति स्वजाव कर्मोंका. किन्ही प्रकृतिका ज्ञानावरण करनेका स्वजाव. किन्ही प्रकृतिका दर्शन आवरण करनेका स्वजाव होता है. सो प्रकृतिबंध. १ कोइ लड़ एक दिन रहके बिगड जाता है. कोइ दो, तिन, चार पांच, ष, नान, आठ, नव, दश, इग्यार, बारह, तेरह, चौदह दीन, कोइ पक्ष, मानादि रहता है. पीठें बिगड जाता है. अमेंही कर्मस्थितिनी कोइ घसी, पहर, दिन, पक्ष, मान. यावत् नीनेर कोटाकोटी सागरोंपम लग रह कर फल दे कर चली जाती है. यह इमरा स्थितिवंध. ३ जेमें लड़में रस है किन्हीमें कसुवा, किन्हीमें कपायेंला. किन्हीमें मीठा. अमेंही कर्मोंमें रस है किन्हीमें दुःख रूप, किन्हीमें सुख रूप, जो जो श्वस्या जीवकी संसारमें होनी है. सो मर्य कर्मके अनुतागमें होनी है. यह तीसरा अनुताग बंध. तथा ४ जेमें लड़का तोल, मान. कोइ तोला. कोइ ठ टांकादि होना है. अमें ही कर्मप्रदेशोंकी गिणती किन्ही कर्ममें थोदी, किन्हीमें अधिक होनी है. यह चौथा प्रदेश बंध यह दृष्टान्त कर्मग्रंथमें है.

अथ बंधके हेतु जियने हैं. एक तो मिथ्यात्व सो तन्वार्थ श्रद्धान रहित होना. इमरा पापोंमें निबन होनेके परिणाम रहित होना. सो अ विरतिपणां. तीसरा कप नाम संसारका है तथा कर्मका है. तिसका जो श्राव नाम ज्ञान ना कपाय. क्रोध, मान, माया, लोभ रूप चौथा योग सो मन बचन कायाका व्यापार. यह चारों बंधके मूलहेतु हैं.

अथ उत्तर हेतु स्वजावन जियने हैं. उम्मे प्रथम तो मिथ्यात्व पांच प्रकारका १ अतिग्रह मिथ्यात्व २ अततिग्रह मिथ्यात्व. ३ अति निवेश मिथ्यात्व ४ मजयमिथ्यात्व. ५ अनाताग मिथ्यात्व

१ प्रथम अतिग्रह मिथ्यात्व है सो जो जीव यथा जानता है कि जो कुछ मन समझा है सो सत्य है आगेकी समझ ठीक नहीं है मज पड़क पराह. मनकी समझ नही है मज अनुसंधान विचारता नहीं करता है यह मिथ्या अतिग्रह साक्षरदि प्रत्यक्षन मन-व धारिधारा होना है जो अरुण ललस प्रस ज्ञानन है कि जो मन हमने अगाकार काया है जो सत्य है सो मन मज अनुसंधान अततिग्रह मिथ्यात्व होना है सो अतिग्रह मिथ्यात्व

२ दूसरा अजिग्रह मिथ्यात्व, सो सर्व मतोंको थोड़ा माने, सर्वमतोंसे मोक्ष है, इस वास्ते किसीको बुरा न कहना, सर्वको नमस्कार करनी, यह मिथ्यात्व, जिनोंने कोई दर्शन ग्रहण नहीं करा, ऐसे जो गोपाल बालकादी तिनको है, क्योंकि यह अमृत अरु विषको एक सरिखे जानने वाले हैं.

३ तीसरा अजिनिवेश मिथ्यात्व, सो जो पुरुष जान करके कुछ बोधे प्रथम तो अज्ञानसे किसी शास्त्रार्थको झूल गया, पीछे जब कोई निष्ठान्क है कि तुम इस बातमें झूलते हो, तब जुठे मतका कदाग्रह ग्रहण करे, जात्यादि अजिमानसे कहना न माने, उलटी स्वकपोलकल्पित कृत्यक्रिया बना करके अपने मनमाने मतको सिद्ध करे, बादमें हार जावे, तो जी न माने, ऐसा जीव अतिपापी, अरु बहुल संसारी होता है. ऐसी मिथ्यात्व प्रायः जो जैनी (जेनमतको) विपरीत कथन करता है, उसमें ही है, जैसे गोष्ठमाहिलादिकहूये हैं, इस वार्त्ताको जाप्यकार श्रीअजय देवसूरि नवांगीवृत्तिकारक नवतत्त्वप्रकरणकी जाप्यमें कहता है, “तथा च जाप्यकारः ॥ गोष्ठामाहिलमाई णं, जं अजिनिविसिं तु तयं ॥” आदि शब्दसे घोटिक शिवजूतियों अजिनिवेशिक मिथ्यात्व जानना.

४ चौथा संशय मिथ्यात्व सो जिनोक्त तत्त्वमें शंका करणी, क्या यह जीव असंख्य प्रदेशी है? वा नहीं है? इस तरे सर्व पदार्थोंमें शंका करणी, तिससेंति जो उत्पन्न होवे, सो सांशयित मिथ्यात्व. “तदाह जाप्यकृत् ॥ सांशयिकं मिथ्यात्वं तदशेषया शंका संदेहोजिनोक्ततत्त्वेष्विति ॥” संशय मिथ्यात्वके होनेके कारण श्रीजिनचन्द्रगणिकमाश्रमण ध्यानशतकमें लिखते हैं, कि एक तो जैनमत त्याद्यादिरूप अनंतनयात्मक है, इस वास्ते सम जनां कठिन है, तथा सप्तजंगीके सकलादेशी, विकलादेशी जंगोंका स्वरूप, अष्टपदा, सात सौ नय, चार निक्षेप, ड्रव्य, क्षेत्र, काल, जात्र, तथा १ उत्सर्ग, २ अपवाद, ३ उत्सर्गापवाद, ४ अपवादोत्सर्ग, ५ उत्सर्गोत्सर्ग ६ अपवादापवाद, यह पड़जंगी तथा १ विधिवाद, २ चारित्रानुवाद, ३ विधिवाद, ४ यथास्थितवाद, इत्यादि अनंतनयापेक्षा जैनमतके शास्त्र कथन कीये हूये हैं; जब तांइ जिस अपेक्षा शास्त्रोंमें कथन है वो अपेक्षा न समझे, तब तांइ जैनशास्त्रका यथार्थ अर्थ समजनां कठिन है. इनके समजनेके वास्ते बड़ी निर्मल बुद्धि चाहिये, सो थोड़े जीवोंको है, तथा



के जोगविलासमें मग्न हैं, और अनेक प्रकारके शस्त्र जिसके हाथमें हैं, अपनी ठकुराईमें अजिमाानी हैं, हाथमें माखा जपता है, सावध जोग पंचेंद्रियका बंध चाहता है, ऐसे देवकों जो पुरुष परमेश्वर माने, अथवा परमेश्वरका अंश अवतार माने, और पूजे, तिसके कहे दूये शास्त्रोंसे हिंसाकारी यज्ञादि करे, अनेक तर्रोंके पाप, धर्मके नामसे प्रवृत्त करे, इस लोकि क देवके अनेक जेद हैं. सो मिथ्यात्व सित्तरी प्रमुख ग्रंथोंसे जानने, यह प्रथम लौकिक देवगत मिथ्यात्व है.

२ दूसरा लौकिक गुरुगत मिथ्यात्व, सो जो अठारह पाप सेवे हैं, नव प्रकारका परिग्रह राखे, यहस्याश्रम सेवे, स्त्री, पुत्र, पुत्रीके परिवार बाला होवे, तथा कुलिंगी मनःकल्पित नवा नवा वेप वना कर स्वकपोलकल्पित चलावे, और श्यामवरी होवे, बाह्य परिग्रह तो त्याग दीया है, परंतु अर्च्यं तर ग्रंथि ठोकी नहीं, गुरु नाम धरावे, मंरुलीसें विचरे, जिसकी अनादि जूझ मिटी नहीं, और जिसकों शुद्ध साध्यकी पीठाण नहीं, तिसकों गुरु माने, तिसका बहुमान करे, तिससें मोक्ष जाणी दान देवे, उसकों परम पात्र जाणे, सो लौकिक गुरुगत मिथ्यात्व है.

३ तीसरा लौकिक पर्यगत मिथ्यात्व, सो १ अजापरुषा, २ प्रेतहूज, ३ गुरुतीज, ४ गणेशचौथ, ५ नागपंचमी ६ जीलणाठछ, ७ सीपलसा तम, ८ बुद्धाष्टमी, ९ नोखीनवमी, १० विजयदशमी, ११ व्रतएकादशी, १२ वत्स द्वादशी, १३ धनतेरस, १४ अनंतचौदश, १५ अमावास्या, १६ सोमवतीअमावास्या, १७ रक्षाबंध, १८ होखी, १९ आहोइ, २० दसहरा, २१ सोमप्रदोष २२ खोनी, २३ आदित्यवार, २४ उत्तरायण, २५ संक्रांति, २६ ग्रहण, २७ नवरात्र, २८ आरु, २९ पीपलकों पाणी देनां, ३० गेहू कों माताका घोड़ा मानके पूजणां, ३१ गोत्राटी, ३२ अन्न कूट, ३३ अने क समशान, कवरोंका मेला. इत्यादि यह लौकिक पर्यगत मिथ्यात्व है.

४ चौथा लोकोत्तर देवगतमिथ्यात्व, सो देव श्रीअरिहंत, धर्मका आकर, विश्वोपकार सागर, परमपूज्य, परमेश्वर, सकल दोष रहित, शुद्ध, निरंजन, तिनकी स्थापनारूप जो प्रतिमा, तिसके आगे इस लोकके पौन्यिक मुखकी आशासें मनमें कल्पना करे, जे कर मेरा यह काम हो जायेगा, तो मैं य नी जारी पूजा करुंगा, उत्र चढाउंगा, दीपमाझाकी रोशनी करुंगा, रान जा

ग्रना करंगा, औरों जावोंसें बीतरागकों माने, इस वास्ते यह मिथ्यात्व है, जो पुरुष चिंतामणिका दातासेंती काचका टुकड़ा मागे, वो युक्त नहीं. जिसको अपने कर्मोंदयका स्वरूप माबुम नहीं, वोही जीव ऐसा होता है, यह लोकोत्तरदेवगत मिथ्यात्व है.

५ पांचमा लोकोत्तरगुरुगत मिथ्यात्व, सो जो साधुका वेप रखे, अरु आप निर्गुणी होवे, जिनवाणीका उठापक होवे, अपने मनःकल्पितका उपदेश देवे, सूत्रका सच्चा अर्थ तोड़े, ऐसा लिंगी उत्सूत्रका प्ररूपक तिसको गुरु जान कर मान, सन्मान करे, तथा जो साधु गुणी, तपस्वी, आचारी बहुक्रियावंत, तिसको इस लोक इठा करके सेवा करे, बहुमान करे, मनमें औरों जाणे कि इनकी बहुत सेवा करंगा, तब इनकी मेहरवानगीसें धन, इज्जि, स्त्री, पुत्रादि मुफकों मिलेंगे, यह लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व है.

६ ठठा लोकोत्तरपर्वगत मिथ्यात्व, सो प्रभुके पांच कल्याणिककी तिथि तथा दूसरे पर्वके दिन, तिन दिनोमें धनादिके वास्ते जप, तप, धर्मकरणी करे, सो लोकोत्तरपर्वगत मिथ्यात्व है. इत्यादि मिथ्यात्वके अनेक वि कल्प हैं, परंतु वो सब पूर्वाक्त अजिग्रहादि मिथ्यात्वमेंही अंतर्भूत हैं. यह पांच प्रकारका मिथ्यात्व कहा, यह प्रथमबंध हेतु कहा.

अब बारह प्रकारकी अविरति कहते हैं. पांच इंद्रिय, ठठा मन, अरु ठे काय, यह बारह प्रकार हैं. तिसका स्वरूप इस तरेसें है, पांच इंद्रियोंका अपने अपने विषयमें प्रवृत्तावे, सो पांच अव्रत, अरु ठठा किसी पापकी वस्तुसें मनका निरोध न करनांसो अव्रत है, तथा यद्विध जीवनिकायकी हिसामें प्रवृत्त होवे, यह बारह प्रकारें अविरति है, यह दूसरा बंधहेतु कहा.

तीसरा कषायबंध हेतु है, उनके सोळां कषाय, अरु नव नाकषाय मिल कर पच्चीस जेद हैं. अनंतानुबंधि क्रोध, मान, माया, अरु लोभ, औरों ही अप्रत्याख्यान क्रोधादि चार, तथा प्रत्याख्यान क्रोधादि चार. अरु संज्वलन क्रोधादि चार, एवं सोलह कषाय, इनके सहचारी नव नोकषाय हैं, उत्तका नाम कहते हैं. १ हास्य, २ रति, ३ अरति, ४ शोक, ५ जय, ६ उगुप्ता, ७ स्त्रीवेद. ८ पुरुषवेद, ९ नपुंसकवेद. इन सर्वका व्याख्यान पीठें लिख आये हैं, इनसें कर्मका बंध होता है. यही संसार स्थितिका मूल कारण हैं. यह तीसरा बंध हेतु कहा.

चौथा योगनामा बंधहेतु हैं. सो योग, मन, वचन, अरु काया, यह तीन प्रकारका है. इन तीनोंके पंदरा जेद हैं. तहां प्रथम मनोयोग चार प्रकारका है, और वचन योग चार प्रकारका है, अरु काययोग सात प्रकारका है, ये सब मिलकर पंदरा जेद हैं.

मन नाम अंतःकरणका है, सो चार प्रकारें हैं. १ सत्यमनोयोग, २ असत्यमनोयोग, ३ मिश्रमनोयोग, ४ व्यवहारमनोयोग. मन क्या वस्तु है? कायाके व्यापारसें पुनस्त ग्रहणा करके उन पुनस्तोंको जय मनोयोग करके काढता है, तिसका नाम अव्यमन कहते हैं, अरु उन पुनस्तोंके संयोगसें जो ज्ञान उत्पन्न होता है, तिसका नाम ज्ञानमन है. उस ज्ञान करके जो व्यवहार सिद्ध होता है, तिस व्यवहार करके मनजी सत्यादि व्यपदेशको प्राप्त होता है, अरु उपचार करके अव्यमनजी ज्ञायक है, मनमें जो सत्य व्यवहारका धारण करता सो सत्यमन, सो व्यवहार यह है, कि पापसें निवृत्तनां वचनके उच्चारण बिना जो चिंतन करनां कि मुनि है, जीवादि पदार्थ सत् हैं, इत्यादि मन शब्द करके इहां मनोयोग नोइंद्रियावरण कर्मके कयोपशमसें उत्पन्न हुआ जो मनोज्ञान, उस करके परिणत आत्माको बलाधान करने वाला मनोवर्गणाके संबंधसें उत्पन्न हुआ वीर्यविशेष, सो इहां मन जाननां. इसी मनके चार जेद हैं. ऐसेही वचनयोग, सो वचनकी वर्गणा अर्थात् परमाणुका समूह, उस वचन वर्गणा करके उत्पन्न जइ सामर्थ्यविशेष, आत्माकी परिणति, सो वचनयोग जाननां.

मनके चार जेदमेंसुं सत्यमनोयोगका स्वरूप उत्तर लिख आये हैं, सो प्रथम जेद. अरु दूसरा मृपामन, सो धर्म नहीं, पाप नहीं, नरक, स्वर्ग, कुठ नहीं. इत्यादिक जो वचन निरपेक्ष चिंतन करनी, सो जाननां. तिसरा मिश्रमन, सो सच्च, अरु जूठ, इन दोनोंका चिंतन, जैसे गोवर्गकों देख कर मनमें चिंतन करनां कि यह सर्व गौवां हैं. यह मिश्र इस वास्ते है कि उस गोवर्गमें बलदजी है, इत्यादि मिश्रवचन. चौथा "हे ग्रामं गच्छ" इत्यादि चिंतन करनां. सो व्यवहारमन, इसी तरें जय वचनयोगसें पूर्वोक्त चारोंका उच्चारण करे, तब वचन योगजी चार प्रकारका जान लेनां. यह चार मनके अरु चार वचनके एवं आठ जेद हूवें.

अब सत्यवचन दश प्रकारका है, १ जनपद सत्य, सो जिस देशमें जि

स वस्तुका जो नाम बोलते हैं, उस देशमें वो नाम सत्य है, जैसें कांकण देशमें पाणीकों पिष्ठ कहते हैं, कोइ देशमें वक्रा पुरुषकों वेटा कहते हैं, वा वेटेको काका कहते हैं, किसी देशमें पिताकों जाइ, सासुकों आइ, इत्यादि कहते हैं, सो जनपदसत्य. १ दूसरा सम्मतसत्य, सो जैसें पंकसें उत्पन्न हुआ मंडक, सिवाल, कमल, तोजी पंकज शब्द करके कमलही पूर्व विद्या नोने सम्मत कीया है, परंतु मंडक, सिवाल नहीं. ३ तीसरा स्थापनासत्य, सो जिसीकी प्रतिमा होवे, तिसकों उसके नामसें कहनां, जैसें महावीर, पार्श्वनाथ जी अर्हतकी प्रतिमा होवे, उस प्रतिमाकों महावीर, पार्श्वनाथ कहे, तो सत्य है, परंतु उसकों पठर कहे. सो मृपावादी है, जैसें स्याही और कागज का नाम, स्थापना करनेसें रुग्, यजु, साम, अथर्व, कहे जाते हैं, आचा रांगादि अंग कहे जाते हैं, तथा काष्ठके आकार विशेषकों किवाड कहे जाते हैं, ईंट, पठर, चूनेकों स्थंज कहनां, पुस्तकमें त्रिकोणादि चित्र लिखके उसकों आर्यावर्त्त, नारतवर्प, जंबू द्वीपादि कहनां. तथा ककार, खकार, स्याहीकी स्थापनाकों कहनां. इस स्थापनासें पुरुषकी कटुक सिद्धि जरूर होती है, नहीं तो नाना प्रकारकी स्थापना, पुरुष, किस वास्ते करते हैं? इस वास्ते श्रीमहावीर तथा श्रीपार्श्वनाथजीकी स्थापनारूप प्रतिमाकों श्री महावीर पार्श्वनाथजी कहनां, यह स्थापना सत्य है. इसमें इतना विशेष है, किजो देव शुद्ध है, उसकी स्थापनाजी शुद्ध है, अरु जो देव शुद्ध नहीं, उसकी स्थापनाजी शुद्ध नहीं, परंतु उस स्थापनाकों उनका देव कहनां, यह बात सत्य है. ४ चौथा नामसत्य, सो किसीने अपने पुत्रका नाम कुलवर्द्धन रक्का है, अरु जिस दिनसें वो पुत्र जन्मा है, उस दिनसें उस कुलका नाश होता चला जाता है, तोजी उस पुत्रकों कुलवर्द्धन नामसें पुकारे, तो सत्य है. ५ पांचमां रूपसत्य, सो चाहे गुणोंसें ब्रह्मजी है, तोजी साधुके वेषवालेकों साधु कहे, तो सत्य है, ६ ठप्ठा प्रतीतसत्य, अर्थात् अपेक्षासत्य, सो जैसें मध्यमाकी अपेक्षा अनामिकाकों ठोटी कहनां. ७ सातमा व्यवहारसत्य, सो जैसें पर्वत जलता है, रसता चलता है. ८ आठमा जावसत्य, सो जैसें तोतेमें पांच रंग हैं, तोजी तोता हरे रंगका कहनां. ९ नवमा योगसत्य, सो जैसें दंडके योगसें दंरी कहनां. १० दशमा उपमासत्य, सो जैसें मुख, चंद्रवत् कहनां. यह दश प्रकारका सत्य है.

अथ दश प्रकारके फल कहते हैं. १ क्रोधनिश्चित सो क्रोधके वश हो कर जा वचन बोले, सो असत्य, २ असेंही मानके उदयसें बोले, सो असत्य, ३ असें मायाके उदयसें बोले, सो असत्य, ४ लोभके, ५ रागके, ६ द्वेषके उदयसें बोले, सो असत्य, ७ हास्यके वश बोले, ८ जयके वश बोले, ९ धिक्का करे, सो असत्य. १० जिस बोलनेमें जीवकी हिंसा होवे, सो असत्य. यह दश प्रकारका असत्य वचन है.

अथ दश प्रकारका मिश्रवचन कहते हैं. १ उत्पन्न मिश्रित, सो बिना खबर कह देना कि इस नगरमें आज दश बालक जन्मे हैं, इत्यादि. २ विगत मिश्रित, सो जैसे बिना खबरके कहना कि इस नगरमें आज दश मनुष्य मरे हैं. ३ उत्पन्नविगतमिश्रित, सो जैसे बिना खबरके कहना कि इस नगरमें आज दश जन्मे हैं, अरु दशही मरे हैं. ४ जीवमिश्रित, सो जीव जीवकी राशिकों कहना कि यह जीवहै. ५ अजीवमिश्रित, सो अन्नकी राशिको कहना कि यह अजीव है. ६ जीवाजीवमिश्रित, सो जीवाजीव दोनोंकी मिश्रजापा बोले. ७ अनंतमिश्रित, सो भूली आदिकोंके अवयवोंमें किसी जगे अनंत जीव हैं, किसी जगे प्रत्येक जोव हैं, उनको प्रत्येक काय कहें. ८ प्रत्येक मिश्रित, सो प्रत्येक जीवोंको अनंतकाय कहे. ९ अद्वयमिश्रित, सो दो घडीके तडकेमें कहे कि दिन उग्या है. १० अद्वयमिश्रित, सो घडी एक रात्रि गया, दिनका उदय कहे. यह दश प्रकारका मिश्रवचन है.

अथ व्यवहार वचनके धारह जेद कहते हैं. १ आमंत्रण करना, कि हे जगवन् ! २ आज्ञापना, सो यह काम कर, तथा यह वस्तु लाव. ३ याचना, सो यह वस्तु हमको दीजिये. ४ पृष्ठना, सो अमुक गामका मार्ग कौन सा है ? ५ प्रज्ञापना, सो धर्म असें होता है. ६ प्रत्याख्यानी, सो यह काम हम नहीं करेंगे. ७ इच्छानुलोम, सो यथासुखं. ८ अनजिह्वीता, सो मुझको खबर नहीं. ९ अजिह्वीता, सो मुझे खबर है. १० संशय, सो क्यों कर खबर नहीं है ? ११ प्रगट अर्थ कहे. १२ अप्रगट अर्थ कहे. यह धारह प्रकारका व्यवहार वचन है.

और कायायोगके सात जेद हैं. प्रथम कायायोग उसको कहते हैं, कि आत्माके निवासभूत पुञ्जलज्ज्व घटित बूढेको दुर्बलको अवयं जज्ञूत जैसें छाठी आदि है, तिसकी तरें विपम काममें जिसके योगसें

जीवके वीर्यका परिणाम सामर्थ्य, सो कायायोग है, जैसे आत्मके संयोग से घटकी रक्तता होती है, तैसेही आत्माको कायके करण संबंधसे वीर्य परिणाम है, इस काययोगके सात जेद हैं. १ औदारिककाययोग, २ औदारिकमिश्रकाययोग, ३ वैक्रियकाययोग, ४ वैक्रियमिश्रकाययोग, ५ आहारककाययोग, ६ आहारकमिश्रकाययोग, ७ कर्मणकाययोग. उसमेंसं प्रथमके दो काययोग तो मनुष्य, अरु तिर्यचमें होते हैं, अगले दो स्वर्ग वासी देवताओंमें होते हैं, अरु अगले दो चौदह पूर्वपाठी साधुमें होते हैं, अरु जीव जब काल करके परजवमें जाता है, तब रस्तेमें कर्मण शरीर होता है, तथा समुद्रघात अवस्थामें केवलीमें होता है, अरु जो तैजस शरीर, आहार पांचन करनेमें समर्थ युक्त है, सो कर्मण योगके अंतर जूत होनेसे पृथग् ग्रहण नहीं कीया है. यह सप्तविध काययोग हैं. यह सब मिल कर बंधतत्त्वके उत्तर जेद सत्तावन्न हूये हैं ॥ इति बंधतत्त्व संपूर्ण.

अथ मोक्षतत्त्व लिखते हैं. तहां प्रथम मोक्ष किसको कहते हैं ? ॥ यदुक्तं ॥ जीवस्य कृत्स्नकर्मक्षयेण यत्स्वरूपस्थानं तन्मोक्ष उच्यते ॥ जावार्थः—जीवके संपूर्ण ज्ञानावरणादि कर्मोंके क्षय होने करके जो स्वरूपमें रहना है, सो मोक्ष कहते हैं. वो जो मोक्ष है, सो जीवका धर्म है. अरु धर्म धर्मीका कथंचित् अजेद होनेसे धर्मी जो सिद्ध, तिनकी जो प्ररूपणा, सो जी मोक्ष प्ररूपणा है, क्योंकि मोक्ष जो है, सो जीवपर्याय है, सो जीव पर्याय कथंचित् सिद्ध जीवसे अजिन्न है, सर्वथा जीवकी पर्याय जीवसे जिन्न नहीं हो सकी है ॥ तदुक्तं ॥ श्लोक ॥ अव्यं पर्यायवियुतं, पर्यायव्यवर्जिताः ॥ क कदा केन किं रूपा, दृष्टा मानेन केन वेति ॥ १ ॥ जावार्थः—अव्य पर्यायों करके रहित अरु पर्यायों अव्य वर्जित अर्थात् रहित, किसी जगे, किसी अवसरमें, किसी प्रमाणसे, किसीने कोइ रूप देखा है ?

अब सिद्धोंका सरूप नव द्वारोंसे सूत्रकार अरु जाप्यकार कहते हैं. १ सत्पद प्ररूपणा, २ अव्यप्रमाण, ३ क्षेत्र, ४ स्पर्शना, ५ काल, ६ अंतर, ७ जाग, ८ जाव, ९ अद्वयवहुत्व. इन नव द्वारों करके सिद्धोंका स्वरूप लिखते हैं. १ प्रथम सत्पद प्ररूपणा द्वार, सो जो सत्ता विद्यमानता तिसका कहने वाला पद, सो सत्पद सिद्ध है, वा नहीं सिद्ध है ? सो गति आदि चौद पदोंमें कहना. यथा “पंचविधा” १ पांच प्रकार गति है,

१ नरकगति, २ तिर्यग्गति, ३ मनुष्यगति, ४ देवगति, ५ सिद्धगति. तहां सिद्धगति वर्जके शेष चार गतिमें सिद्ध नहीं. यद्यपि १ कर्मसिद्ध, २ शिल्पसिद्ध, ३ विद्यासिद्ध, ४ मंत्रसिद्ध, ५ योगसिद्ध, ६ आगमसिद्ध, ७ अर्थसिद्ध, ८ यात्रासिद्ध, ९ अजिप्रायसिद्ध, १० तपःसिद्ध, ११ कर्मक्षयसिद्ध. ऐसे अनेक तरोंके सिद्ध आवश्यककी निर्युक्तिकारने कहे हैं. तोजी इहां जो कर्मक्षय करके सिद्ध हुआ है, तिसका अधिकार है, उनहींको मोक्षपर्याय है, औरोंको नहीं. १ इंद्रिय स्पर्शनादि पांच है, एक इंद्रिय, दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय, चार इंद्रिय, पांच इंद्रिय. इन पांचों प्रकारोंमें सिद्ध पणां नहीं, क्योंकि सर्वथा शरीरके परित्यागनेसें सिद्ध होता है, जहां शरीर नहीं, तहां इंद्रियजी कोइ नहीं. इसी वास्ते सिद्ध अर्थांद्रिय हैं, ३ पृथिवीकाय, २ अप्रकाय, ३ तेजःकाय, ४ पवनकाय, ५ वनस्पतिकाय, ६ ग्रसकाय. इन उही कायोंके जीवोंमें सिद्धपणां नहीं. क्योंकि सिद्ध जो हैं, सो अकाय (काय रहित हैं,) ४ काय, वचन, अरु मन जेद करके योग तीन है. उसमें केवल काययोग वाले एकेंद्रिय जीव हैं, अरु काय वचन योग वाले द्वींद्रियादि असंझी पंचेंद्रिय पर्यंत जीव है, अरु काय, वचन, मन योग वाले संझी पंचेंद्रिय पर्याप्त जीव हैं, इन तीनों योगोंमें सिद्धपणेकी सत्ता नहीं, क्योंकि सिद्ध अयोगी हैं, अरु अयोगी पणां तो काय वचन अरु मनके अज्ञावसें होता है. ५ स्त्री, पुरुष, नपुंसक, इन तीनों वेदोंमें सिद्ध पदकी सत्ताका अज्ञाव है, क्योंकि सिद्ध जो हैं, सो पूर्वोक्त हेतुसें अवेदी हैं. ६ क्रोध, मान, माया, लोभ, इन चारों कषायोंमें सिद्ध पणां नहीं, हैं, क्योंकि सिद्ध अकषायी हैं, सो अकषायिपणां कर्मके अज्ञावसें होता है, ७ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अधिज्ञान, मनःपर्यायज्ञान, केवल ज्ञान. यह पांच प्रकारका ज्ञान है. अरु मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विजंगज्ञान, यह तीन अज्ञान हैं. उसमें आदिके चारों ज्ञानों में अरु तीनों अज्ञानोंमें सिद्धपणां नहीं हैं, एक केवलज्ञानमें सिद्धपणां हैं, सो केवलज्ञान, इहां सिद्धावस्थाका जाननां, परंतु सयोगी अवस्थाका नहीं. ८ सामायिक, ठेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसंपराय, अरु यथाख्यात. यह पांच चारित्र, तथा इनके विपक्षी देश संयम, अरु अयंयम. तहां पांचविध चारित्रमें तथा दोनो विपक्षोंमें सिद्धपणां मोक्षपर्याय

जैसेकि यह करा है, यह करुंगा, यह मैं कर रहा हों, ऐसा जो त्रिकाश विषय मनोविज्ञानवाले जीव हैं, तिनको संझी कहते हैं. इनसे जो विषय रीत होवे, सो असंझी जानने. यह संझी तथा असंझी, इन दोनोंहीमें सिद्ध पद नहीं. क्योंकि सिद्ध तो नोसंझी नोअसंझी हैं, १४ ओज आहार, लोम आहार, प्रदेश आहार, ए आहार, तीन प्रकारका है. इन तिनों आहारोंमें सिद्ध नहीं. यह प्रथम सत्पद प्ररूपण द्वार कहा.

दूसरा अव्यय प्रमाण द्वार लिखते हैं. गिणती करियें तो सिद्धोंके जीव अनंत हैं. तीसरा क्षेत्र द्वार, सो आकाशके एक देशमें सर्व सिद्ध रहते हैं, वो आकाशका देश कितना बड़ा है? सो कहते हैं, कि धर्मास्तिकायादिक पांच अव्यय, जहां तक हैं, तहां तक लोक है, ऐसा जो लोक संबंधि आकाश, तिसके असंख्यमें जागमें सिद्ध रहते हैं. चौथा स्पर्शनाद्वार, सो जितने आकाशमें सिद्ध रहते हैं, स्पर्शना उससे किंचित् अधिक है. पांचमा काल द्वार, सो एक सिद्धके आश्री सादि अनंतकाल है, अरु सर्व सिद्धाश्रित अनादि अनंतकाल जानना. छठा अंतर द्वार, सो सिद्धोंके विचाले अंतर नहीं, सर्व सिद्ध मिलके एकही रूपवत् रहते हैं. सातमा जाग द्वार, सो सिद्ध जे हैं ते सर्व जीवोंके अनंतमें जागमें हैं. आठमा जाव द्वार, सो सिद्धोंको क्षायिक परिणामिक जाव है, शेष जाव नहीं. नवमा अव्यय बहुत्व द्वार, सो सर्वसे थोड़े अनंतर सिद्ध हैं, अनंतर सिद्ध उनका कहते हैं कि जिनको सिद्ध हुआ, एक समय हुआ है, तिनसे प रंपर सिद्ध अनंत गुणे हुए हैं, वे मास सिद्ध होनेमें उत्कृष्ट अंतर होता है. यह अव्यय बहुत्व द्वार कहा. यह मोक्षतत्त्वका स्वरूप संक्षेपमात्र लिखा है, जे कर विशेष करके सिद्धोंका स्वरूप देखनां होवे, तदा नंदीसूत्र, प्रज्ञापन्नसूत्र, सिद्धप्राभृतसूत्र, सिद्धपंचाशिका, देवाचार्यकृत नवतत्त्व प्रकरणकी वृत्ति देख लेनी. तथा आगे चतुर्दश गुणस्थानमेंजी सिद्धोंका कुतुक स्वरूप लिखेंगे ॥ इति श्री तपगच्छीयमुनिश्रीबुद्धिविजयशिष्यमुनि आ नंदविजय आत्मारामविरचिते जैनतत्त्वादर्थे नवतत्त्व स्वरूपनिर्णयनामा पंचमः परिच्छेदः संपूर्णः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ परिच्छेद प्रारंभ ॥

यह षष्ठ परिच्छेदमें चौदह गुणस्थानका स्वरूप किंचित् मात्र लिखते हैं। यह जैन मतमें जग्य जीवांको सिद्धिसोपके चढने वास्ते गुणोंकी जो श्रेणी हैं, सोही निसरणी है, तिस गुण निसरणीमें पगभरणरूप गुणोंसँ गुणांतरकी प्राप्तिरूप जो स्थान, अर्थात् भूमिका है, सो चौदह हैं, तिन के नाम कहते हैं, १ मिथ्यात्व गुणस्थानक, २ सास्वादन गुणस्थानक, ३ मिश्र गुणस्थानक, ४ अविरतिसम्यक्दृष्टि गुणस्थानक, ५ देशविरति गुणस्थानक, ६ प्रमत्तसंयत गुणस्थानक, ७ अप्रमत्तसंयत गुणस्थानक, ८ अपूर्वकरण गुणस्थानक, ९ अनिवृत्तवादर गुणस्थानक, १० सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक, ११ उपशांतमोह गुणस्थानक, १२ क्षीणमोह गुणस्थानक, १३ सयोगीकेवली गुणस्थानक, १४ अयोगीकेवली गुणस्थानक, यह चौदह गुणस्थानक अर्थात् गुणरूप भूमिकाके नाम हैं।

तहां प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थानकका स्वरूप कहते हैं, उसमेंजी प्रथम व्यक्त, अव्यक्त, मिथ्यात्वका स्वरूप कहते हैं, जो स्पष्टचैतन्यसंज्ञी पंचेंद्रिय जीवांकी अदेव, अगुरु औ अधर्म, इन तीनोंमें कम करके देव, गुरु, औ धर्मकी बुद्धि होवे, सो व्यक्तमिथ्यात्व है, अरु उपलक्षणसँ जीवादि नव पदार्थोंमें जिसकी श्रद्धा नहीं, अरु जिनोक्त तत्त्वसँ जो विपरीत प्ररूपणा करणी, तथा जिनोक्त तत्त्वमें संशय करणां, तथा जिनोक्त तत्त्वमें रूपणोंका आरोप करणां इत्यादि, तथा आजिग्राहिकादि जो पांच मिथ्यात्व हैं, तिनमें एक अनाजोगिकमिथ्यात्व तो अव्यक्त मिथ्यात्व है, शेष चार जेद, व्यक्त मिथ्यात्वके हैं, तथा “अधस्मे धम्मसन्ना इत्यादि” दश प्रकारकी जो मिथ्यात्व है, सो सर्व व्यक्त मिथ्यात्व है, अरु अपर जो अनादि कालसँ मोहनीय प्रकृतिरूप मिथ्यात्व सत् दर्शनरूप आत्माके गुणका आढादक जीवके साथ सदा अविनाशावि है, सो अव्यक्तमिथ्यात्व है।

अथ मिथ्यात्वकों गुण स्थानक किसी रीतीसँ कहते हैं ? सो लिखते हैं, अनादि अव्यक्त मिथ्यात्व अव्यवहारराशिवर्ती जीवमें सदा होती है, परंतु व्यक्त मिथ्यात्वकी जो बुद्धि है, तिस बुद्धिकी जो प्राप्ति है, सोइ मिथ्यात्व गुणस्थानक है।

प्रश्नः— मिथ्यात्व गुणस्थानमें सर्व जीवोंके स्थान मिलते हैं. यह जैनशास्त्रका कथन है, तो फेर कैसे व्यक्त मिथ्यात्वकी बुद्धिकों गुणस्थान रूपता कहते हो ?

उत्तरः—सर्वज्ञाव सर्व जीवोंने पूर्वे अनंत वार पाया है, इस वचनके प्रमाणसे जो प्राप्तव्यक्त मिथ्यात्वबुद्धिवाले जीव, व्यवहार राशिवर्ती हैं, सोही प्रथम गुणस्थानवाले जीव कहे जाते हैं, नतु अव्यवहार राशि वर्ती जीव ? क्योंकि वो अव्यक्तमिथ्यात्व वाले हैं, इस वास्ते दोष नहीं.

अथ मिथ्यात्व रूप दूषणका स्वरूप कहते हैं. जैसे जीव मनुष्यादिक प्राणी मदिराके उन्मादसे हित, या अहित, यह कुञ्जी नष्टचेतन्य होनेसे नहीं जानता है, तैसेही मिथ्यात्व करके मोहित जीव धर्माधर्म सम्यक् नहीं जानता है, ॥यदाह ॥श्लोक॥ मिथ्यात्वेनालीढचित्ता नितांतं, तत्वातत्यं जानते नैव जीवाः ॥ किं जालंधाः कुत्रचि हस्तुजाते, रम्यारम्यं व्यक्तमासादयेयुः ॥ १ ॥ इति ॥ अथ मिथ्यात्वकी स्थिति कहते हैं, अजगज्य जीवोंकी अपेक्षा मिथ्यात्व जो है, अरु सामान्य प्रकारे अव्यक्त मिथ्यात्व, इनकी अनादि अनंत स्थिति है, सोइ स्थिति जगज्य जीवोंकी अपेक्षा अनादि सांत है, यह स्थिति सामान्यप्रकार करके मिथ्यात्वकी अपेक्षा दिग्बलाह है, जे कर मिथ्यात्व गुणस्थानकी स्थिति विचारिये, तदा जगज्य जीवोंकी अपेक्षा अनादि सांत है. तथा सादि सांतजी है, अरु अजगज्य जीवोंकी अपेक्षा अनादि अनंत है. जब मिथ्यात्व गुणस्थानकमें जीव वर्तता है. तब एक सौ बीस बंध प्रायोग्य कर्मप्रकृतियोंमेंसू १ तीर्थंकर नाम कर्मकी प्रकृति, २ आहारकशरीर, ३ आहारकोपांग, यह तीन प्रकृति नहीं बांधना है. शेष एक सौ सत्तरां प्रकृतिका बंध करता है, तथा एक सौ बासीस कर्म प्रकृति जो उदय प्रायोग्य है, निम्नमेंसू १ मिश्रमोहनीय, २ सम्यक्त्वमोहनीय, ३ आहारक, ४ आहारकोपांग, ५ तीर्थंकर नाम, यह पांच कर्मप्रकृति वर्जके शेष एक सौ सत्तरां प्रकृतिका उदय है, अरु एक सौ अठ्ठासीस कर्म प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति ॥ १ ॥

अथ दूसरा साम्वादन गुणस्थानकका स्वरूप कहते हैं. उसमें प्रथम तो यह गुणस्थानकका कारण नून उपग्रम सम्यक्त्व है, निसका स्वरूप कहते हैं, जीवमें अनादिकाप्रमंनून (उत्पन्न) मिथ्याकर्मकी उपर्गा

तिसें अनादिकाल उद्भव मिथ्याकर्मके उपशम होनेसे, ग्रंथिजेद करण कालसे पीठें औपशमिक सम्यक्त्व होता है, यह सामान्य स्वरूप है, अरु विशेषस्वरूप ऐसे हैं कि औपशमिक सम्यक्त्व दो प्रकारका है, एक तो अंतःकरणौपशमिक सम्यक्त्व, अरु दूसरा स्वध्रेणिगत, अर्थात् उपशम ध्रेणिगत औपशमिक सम्यक्त्व है, तहां अपूर्व करण करकेही करा है ग्रंथिजेद जिसने, अरु मिथ्यात्व कर्म पुञ्ज राशिके तीन पुंज करे हैं जिसने, सो तीन पुंज यह हैं, १ अशुद्ध, २ अर्द्धशुद्ध, ३ शुद्ध, इसमें अशुद्ध पुंज जो है, सो मिथ्यात्वमोहनीय है, अरु अर्द्ध शुद्ध जो है, सो मिथ्यात्वमोहनीय है, तथा शुद्ध पुंज जो है, सो सम्यक्त्व मोहनीय है, इनका स्वरूप पीठें लिख आये हैं, यह तीन पुंज जिसने नहीं करे हैं, अरु उदय आया मिथ्यात्व क्षय कीया है तथा जो मिथ्यात्व उदय नहीं आया, तिसको उपशमाया है, अंतर करणमें अंतर्मुहूर्त्तकाल खगे सर्वथा मिथ्यात्वके अवेदकों अंतर करणमें औपशमिक सम्यक्त्व होता है, यह एक जेद, तथा औपशम ध्रेणिप्रतिपन्नकों मिथ्यात्व अनंतानुबंधीके उपशम हूया स्वध्रेणिगत औपशमिक सम्यक्त्व होता है, सो दूसरा जेद, ये दोनों प्रकारकी जो उपशम सम्यक्त्व है, सो सात्त्वादन उत्पत्तिमें मूळ कारण है,

अथ सात्त्वादनस्वरूप लिखते हैं, औपशमिक सम्यक्त्ववाला जीव शान्त हूये अनंतानुबंधी चारों कपायोमें एकत्री क्रोधादिकके उदय हूयां यकां औपशमिकरूप निरिशिखर तुल्यते " परिच्युतां व्रष्टे " अर्थात् गिरा सो जहां खगि मिथ्यात्वरूप जूतलकों नहीं प्राप्त हुआ, तहां खगि एकतम यत्ते वे कर पदस्थावलिप्रमाण सात्त्वादन गुणन्यायकवर्त्ती होता है,

प्रश्न:-व्यक्तबुद्धिप्राप्तिरूप प्रथम अत मिश्रादि गुणन्यायनोंको उनको तर चरण रूपोंको तो गुणन्यायनपणा युक्त है, परंतु सम्यक्त्वसे पगने वाले सात्त्वादनको गुणन्यायनपणा कैसे संजवे ?

उत्तर:-मिथ्यात्व गुणन्यायनकी अपेक्षा सात्त्वादनकी जग्य आगेद्वारूप होनेसे गुणन्यायन है, क्योंकि मिथ्यात्व गुण अज्ञव्य जीवों कोही होता है, अरु सात्त्वादन तो जग्य जीवोंहीको हीं मत्ता है, जग्य जीवोंमेंही जिसका शक्त पुञ्जसंगवर्न शेष मन्ना है, निनहीको होता है, इस वाले सात्त्वादनकोही मिथ्यात्व गुणन्यायनमें आगेद्वारूप गुणन्या

नत्व हो सका है. तथा साखादन गुणमें वर्तता हुआ जीव, १ मि.
 ४ नरकत्रिक, ८ ऐकेंद्रियादि जाति चार, ९ आतपनाम, १० स्यावन
 ११ सूक्ष्मनाम, १२ अपर्याप्तिनाम, १३ साधारणनाम, १४ हुंरुक संत्य
 १५ सेवार्तसंहनन, १६ नपुंसकवेद, यह सर्व सोलां प्रकृतिका बंध
 छेद करता है, शेष एक सो एक प्रकृतिका बंध करता है, तथा ३
 त्रिक, ४ आतप, ५ मिथ्यात्वोदय, ६ नरकानुपूर्वी, यह छे प्रकृतिका उ
 व्यवछेद होनेसे १११ कर्मप्रकृति वेदता है, तथा तीर्थंकरनामकी सत्ता
 १४७ प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति दूसरे साखादन गुणस्थानकका स्वरूप

अथ तीसरे मिश्रगुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं. दर्शनमोह
 तिरूप मिश्र मोहकर्मके उदयसे जीवविषये जो समकाल समरूप
 सम्यक्त्व मिथ्यात्वके मिलनेसे मिश्रितजाव अंतरमुद्भूत यावत्
 गुणस्थान कहते हैं, जो जीव, सम्यक्त्वमिथ्यात्व दोनोंके एकत्र
 नेसे मिश्रजावमें वर्तते हैं, सो मिश्रगुणस्थानस्थ होता है, क्योंकि मि
 णा जो है, सो दोनोंके मिलनेसे एक रूप जात्यंतर है, अथ दोनों
 के एकत्व जात्यंतर होनेमें दृष्टांत लिखते हैं. कि जैसे घोंनी और ग
 इन दोनोंके संयोगसे जात्यंतर खच्चर उत्पन्न होता है, अथवा जैसे
 और दहीके मिलनेसे जात्यंतर रस शिखरणी रूप उत्पन्न होता है,
 ही जिस जीवको सर्वज्ञ असर्वज्ञके कहे दोनो धर्मोंमें समबुद्धिसे
 सरीखी श्रद्धा उत्पन्न होवे, सो जात्यंतर जेदात्मक होनेसे मिश्र
 स्थानक होता है. जब यह मिश्रगुणस्थानस्थ जीव होता है, तब प
 वका आयु नहीं बांधता है, अरु मिश्रगुणस्थानकमें वर्तता हुआ जी
 मरताजी नहीं है, जातो सम्यक्दृष्टि हो कर चौथे सम्यक्दृष्टि
 णस्थानकमें आरोह कर मरता है, अथवा कुदृष्टि हो कर मिथ्यादृष्टि
 णस्थानकमें पीठा आ कर मरता है, परंतु मिश्रगुणस्थानमें वर्तमान
 ही मरता है. यह मिश्रकी तरे वारहवा क्षीणमोह, अरु तेरहवा सयो
 इन दोनो गुणस्थानोमेंजी जीव नहीं मरता है, शेष इग्यारह गुणस्थ
 में काळ कर जाता है, अरु मिथ्यात्व, साखादन, अविरति सम्यक्दृ
 यह तीन गुणस्थानक जीवके साथ परजवमें जाते हैं. शेष इग्यारह
 स्थानक नहीं जाते हैं, तथा जिन जीवोंने मिथ्यात्वादि गुणस्थानोंमें

नत्व हो सका हैं. तथा सास्त्रादन गुणमें वर्त्तता हुआ जीव, १
 ४ नरकत्रिक, ८ एकेंद्रियादि जाति चार, ९ आतपनाम, १०
 ११ सूक्ष्मनाम, १२ अपर्याप्तनाम, १३ साधारणनाम, १४ हुंरुक
 १५ सेवार्तसंहनन, १६ नपुंसकवेद, यह सर्व सोलां प्रकृतिका बंध
 छेद करता है, शेष एक सो एक प्रकृतिका बंध करता है, तथा ३
 त्रिक, ४ आतप, ५ मिथ्यात्वोदय, ६ नरकानुपूर्वी, यह ठे प्रकृति
 व्यवष्टेद होनेसे १११ कर्मप्रकृति वेदता है, तथा तीर्थंकरनामकी सत्ता
 १४७ प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति दूसरे सास्त्रादन गुणस्थानकका

अथ तीसरे मिश्रगुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं. दर्शनमोहनीय
 तिरूप मिश्र मोहकर्मके उदयसे जीवविषये जो समकाल समरूप
 सम्यक्त्व मिथ्यात्वके मिलनेसे मिश्रितजाव अंतरमुहूर्त्त यावत्
 गुणस्थान कहते हैं, जो जीव, सम्यक्त्वमिथ्यात्व दोनोंके एकत्र
 नेसे मिश्रजावमें बत्ते है, सो मिश्रगुणस्थानस्थ होता है, क्योंकि
 णा जो है, सो दोनोंके मिलनेसे एक रूप जात्यंतर है, अथ दोनों
 के एकत्व जात्यंतर होनेमें दृष्टांत लिखते हैं. कि जैसे घोमी और गज
 इन दोनोंके संयोगसे जात्यंतर खच्चर उत्पन्न होता है, अथवा जैसे
 और दर्हीके मिलनेसे जात्यंतर रस शिखरणी रूप उत्पन्न होता है,
 ही जिस जीवकों सर्वज्ञ असर्वज्ञके कहे दोनो धर्मोंमें समबुद्धिसे
 सरीखी श्रद्धा उत्पन्न होवे, सो जात्यंतर जेदात्मक होनेसे मिश्रगु
 स्थानक होता है. जब यह मिश्रगुणस्थानस्थ जीव होता है, तब पर
 वका आयु नहीं बांधता है, अरु मिश्रगुणस्थानकमें वर्त्तता हुआ जी
 मरतानी नहीं है, जातो सम्यक्दृष्टि हो कर चौथे सम्यक्दृष्टि
 णस्थानकमें थारोह कर मरता है, अथवा कुदृष्टि हो कर मिथ्यादृष्टि
 णस्थानकमें पीठा था कर मरता है, परंतु मिश्रगुणस्थानमें वर्त्तमान
 ही मरता है. यह मिश्रकी तरे धारहवा कीणमोह, अरु तेरहवा सयोग
 इन दोनो गुणस्थानोंमेंनी जीव नहीं मरता है, शेष इग्यारह गुणस्थान
 में काष्ठ कर जाता है, अरु मिथ्यात्व, साम्यादन, अविरति सम्यक्दृष्टि
 यह तीन गुणस्थानक जीवके साथ परनयमें जाते है. शेष इग्यारह गु
 स्थानक नहीं जाते हैं, तथा जिन जीवाने मिथ्यात्वादि गुणस्थानोंमें

आयु बांधा है, अरु पीछें उनको मिश्रगुण स्थानक हुआ है, वो जब मरे
 १, तब जोस गुणस्थानकमें आयु बांधा है, तिसी गुणस्थानमें जा कर
 रता है, ओ गतिजी उसकी उसी मरण बाधे गुणस्थानकके अनुसारें
 होती है, तथा मिश्रगुणस्थानक वाला जीव, १ नरकगति, २ नरकायु,
 नरकानुपूर्वी, ४ स्त्यानर्द्धित्रिक, ५ दुर्जग, ६ दुःस्वर, ७ अनादेय,
 ८ अनंतानुबंधी चार. १७ मध्यके चार संस्थान, १८ मध्यके चार संहन
 ; १९ नीचगोत्र, २० उद्योतनाम, २१ अप्रशस्तविहायोगति, २२ स्त्रीवेद
 ह पच्चीश प्रकृतिका बंधव्यवछेद करता है. तथा मनुष्यायु, देवायु, यह
 तीनों नहीं बांधता है, यह सत्तावीश प्रकृति बिना शेष चोहत्तर प्रकृति
 न बंध करता है. ४ तथा अनंतानुबंधी चार. ५ स्थावरनाम, ६ एकेंद्रिय,
 विकलत्रिक, इनके उदयके व्यवछेद होनेसे अरु मनुष्यानुपूर्वी, तथा
 धीरगानुपूर्वी, इन दोनोंके उदय न होनेसे एक सौ प्रकृतिका उदय वेदता
 है, अरु पूर्वोक्त १४७ प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति मिश्रगुणस्थानकं ॥ ३ ॥

अथ चौथा अविरतिसम्यग्दृष्टि गुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं. तद्वा
 र्थम सम्यक्त्व प्राप्तिका स्वरूप कहते हैं, कि जव्य संधी पंचेंद्रिय जीव
 तें यथोक्ततत्त्व यथावत् सर्ववित् प्रणीत तत्त्वोंमें जीवादि पदार्थोंमें नित
 र्गते धर्मात् पूर्वजव अन्यासविशेष करके उत्पन्न नई अत्यंतनिर्मल गुणा
 मक रूप स्वभाव, इन स्वभावसे अथवा गुरुके उपदेश श्रवण करणसे रु
 चे जावना प्रगट उत्पन्न होती है. सो सम्यक्त्व, सम्यक्श्रद्धान लक्षण
 कहते हैं ॥ यदाह ॥ श्लोक ॥ रुचिर्जिनोक्ततत्त्वेषु. सम्यक् श्रद्धानमुच्यते
 । जायते तत्तिसर्गेषु, गुरोरधिगमेन वा ॥ १ ॥ अथ अविरति सम्यग्दृ
 ष्टिपणा जैसे होता है. तैसे कहते हैं. दूसरी कपाय अप्रत्यास्थान, जिसका
 नाम है. ऐसे जे क्रोध. मान. माया. लोभ, तिनके उदय करके, वर्जित
 हुआ विरतिपणा इसी वास्ते केवल सम्यक्त्व मात्र जहां होवे, सो चाये
 गुणस्थान वालोंको अविरति सम्यग्दृष्टिनामक गुणस्थानक होना है. इस
 का तात्पर्य यह है. कि जैसे कोई पुरुष. न्यायोपपन्न धन जाग बिलास सोद
 र्यशासिकुलमें उत्पन्नजी हुआ है. परंतु दुरंत जूआ आदि व्यसन सेवन
 करने लगा. इत्यादि अनेक अन्याय करे है. सो अपराध करनेमें उसको
 गजदंत मित्रा है. सो मंजित करा है जिनेने अजिमान, ऐसे जो दंड

पाशिक कोटवाल तिनों करकें विडंब्यमान अपने व्यसन जनित कुत्सित कर्मकूं विरूप जानता हुआ अपने कुलके सुंदर सुख संपदाकी अजिज्ञा पा करताजी है, परंतु कोटवालोंसे वृटके सुखका उठासजी नहीं ले सका है, तैसेंही यह जीवजी अविरतिपणेंकों खोटे कर्मका फल जानता है, विरतिके सुंदर सुखकी अजिज्ञापाजी करता है, परंतु कोटवाल समान दूसरी कपायके पाशों वृटनेका उत्साहजी नहीं कर सका है, औ अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकका अनुभव करता है.

अथ चोथे गुणस्थानककी स्थिति कहते हैं, इस अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानककी स्थिति उत्कृष्टी तो तेत्तीस सागरोपम प्रमाण कतुक अधिक है, सो सर्वार्थ सिद्धादि विमानवासीपोंकी स्थिति मनुष्यायु अधिक है, तथा यह सम्यक्त्व, जब जीवका अर्द्ध पुद्गलपरावर्त्त शेष संसार रहता है, तब जीवकों आता है, दूसरोंकों नहीं आता है.

अथ सम्यग्दृष्टिका लक्षण कहते हैं, १ दुःखी जीवके दुःख दूर कर ऐकी जो चिंता, तिसका नाम कृपा है, २ किसी कारणसे क्रोध उत्पन्नजी हो गया है, तोजी तीव्र अनुशय अर्थात् तीव्र वैर नहीं रखता है, तिसका नाम प्रशम है, ३ सिद्धिसौधके चढ़ने वास्ते सोपानसमान सम्यग् दृष्टि नादि साधनोंमें उत्साह लक्षण मोक्षाजिज्ञास, तिसका नाम संवेग है, ४ अत्यंत कुत्सिततर अर्थात् अत्यंत बुरा संसाररूप बंदीखानेसे निकलने वास्ते परम वैराग्य रूप दरवाजेमें जो आ जानां है, तिसका नाम निर्वेद है, ५ श्रीसर्वज्ञ प्रणीत समस्त जावोंकी अस्तित्वका चिंतनां तिसका नाम आस्तिक्य है, यह पांच लक्षण जिस जीवमें होवे, वो जड्यजीव सम्यग् दर्शन करकें अलंकृत होता है.

अथ सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकवर्ती जीवोंकी कौनसी गति है ? सो कहते हैं. इहां जीवपरिणामविशेषरूपकों करण कहते हैं, सो करण, तीन प्रकारका होता है, १ यथा प्रवृत्तिकरण, २ अपूर्वकरण, ३ अनिवृत्तिकरण. तहां पर्वतकी नदीके जल करकें आलोड्यमान पापाणकी तर्र घंचनां (घोलनां) न्याय करकें जीव आयु वर्जके शेष कर्मोंकी स्थिति किंचित् ऊनी एक कोटाकोटी सागर प्रमाण स्थिति करता हुआ जिन अध्वसाय विशेष करकें ग्रंथिदेश तक आता है, सो यथाप्रवृत्तिकरण क

पाशिक कोटवाख तिनों करकें विडंब्यमान अपने व्यसन जनित कुस्ति कर्मकूं विरूप जानता हूँ आ अपने कुलके सुंदर सुख संपदाकी अजिज्ञा पा करनाही है, परंतु कोटवाखोंसें बूटके सुखका उठासजी नहीं ले सका है, तैसेही यह जीवजी अविरतिपणेंकों खोटे कर्मका फल जानता है विरतिके सुंदर सुखकी अजिज्ञापाजी करता है, परंतु कोटवाख समान दूसरी कषायके पाशों बूटनेका उताहजी नहीं कर सका है, ओ अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकका अनुभव करता है.

अथ चोथे गुणस्थानककी स्थिति कहते हैं, इस अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानककी स्थिति उरकृष्टी तो तेत्तीस सागरोपम प्रमाण कबुक अधिक है, सो सर्वाथे सिद्धादि विमानवासीयोंकी स्थिति मनुष्यायु अधिक है तथा यह सम्यग्ज्ञ, जय जीवका अर्द्ध पुण्यपरावर्त्त शेष संसार रहत है, तब जीवकों आता है, दूसरोंकों नहीं आता है.

अथ सम्यग्दृष्टिका लक्षण कहते हैं, १ दुःखी जीवके दुःख दूरक लेकी जो चिंता, तिसका नाम कृपा है, २ किसी कारणसें क्रोध उत्पन्न हो गया है, तोनी तीव्र अनुशय अर्थात् तीव्र वेर नहीं रखता है, तिसका नाम प्रशम है, ३ सिद्धिसाधके चढ़ने वास्ते सोपानसमान सम्यग्ज्ञानादि साधनोंमें उताह लक्षण मोक्षाजिज्ञास, तिसका नाम संवेग है ४ अत्यंत कुस्तिनर अर्थात् अत्यंत बुरा संसाररूप बंदीग्यानेसें निकलने वास्ते परम वैराग्य रूप दग्धाजेमें जो आ जाना है, तिसका नाम निर्वेग है, ५ श्रीमपेक्ष प्रणीत समस्त जावोंकी अस्तित्वका चिंतनां तिसका नाम आत्मिभ्य है, यह पांच लक्षण जिन जीवमें होवे, वो नव्यजीव सम्यग् दर्शन करकें अखंडन होना है.

अथ सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकवर्ती जीवोंकी कौनसी गति है ? सो कहते हैं. इहां जीवपरिणामविशेषरूपकों कर्ण कहते हैं, सा कारण तीन प्रकारका होता है, १ यथा प्रवृत्तिकर्ण, २ अप्रवृत्तिकर्ण, ३ अविप्रवृत्तिकर्ण. तहां पर्यंतकी नदीके जल करकें आसोध्यमान पायाणकी तें पंचनां (घोसनां) न्याय करके जीव आयु वर्जके शेष कर्मोंकी स्थिति किंचित् जनी एक कोटाकोटी सागर प्रमाण स्थिति करना हूँ आ जिन धर्मरसाय विशेष करके प्रविष्टा तरु आता है, सो यथाप्रवृत्तिकर्ण क

पाशिक कोटवाल तिनों करके विडम्ब्यमान अपने व्यसन जनित कुत्सित कर्मकूं विरूप जानता हुआ अपने कुलके सुंदर सुख संपदाकी अजिज्ञा पा करताजी है, परंतु कोटवालोंसे बृटके सुखका उठासनी नहीं ले सका है, तैसेही यह जीवजी अविरतिपणेंकों खोटे कर्मका फल जानता है, विरतिके सुंदर सुखकी अजिज्ञापाजी करता है, परंतु कोटवाल समान दूसरी कपायके पाशों बृटनेका उत्साहजी नहीं कर सका है, ओ अति रति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकका अनुभव करता है.

अथ चौथे गुणस्थानककी स्थिति कहते हैं, इस अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानककी स्थिति उत्कृष्टी तो तेत्तीस सागरोपम प्रमाण कतुक अधिक है, सो सर्वार्थ सिद्धादि विमानवासीशोंकी स्थिति मनुष्यायु अधिक है, तथा यह सम्यक्त्व, जब जीवका अर्द्ध पुण्यपरावर्त्त शेष संसार रहता है, तब जीवकों आता है, दूसरोंकों नहीं आता है.

अथ सम्यग्दृष्टिका लक्षण कहते हैं, १ दुःखी जीवके दुःख दूर का णेकी जो चिंता, तिसका नाम कृपा है, २ किसी कारणसे क्रोध उत्पन्नजी हो गया है, तोजी तीव्र अनुशय अर्थात् तीव्र वैर नहीं रखता है, तिसका नाम प्रशम है, ३ सिद्धिसौधके चढ़ने वास्ते सोपानसमान सम्यग् ज्ञानादि साधनोंमें उत्साह लक्षण मोक्षाजिज्ञास, तिसका नाम संवेग है, ४ अत्यंत कुत्सिततर अर्थात् अत्यंत बुरा संसाररूप धंदीखानेसे निकलने वास्ते परम वैराग्य रूप दरवाजेमें जो आ जाना है, तिसका नाम निर्वेद है, ५ श्रीसर्वज्ञ प्रणीत समस्त ज्ञावोंकी अस्तित्वका चिंतनां तिसका नाम आस्तिक्य है, यह पांच लक्षण जिस जीवमें होवे, वो नव्यजीव सम्यग् दर्शन करके अलंकृत होता है.

अथ सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकवर्त्ती जीवोंकी कौनसी गति है ? सो कहते हैं. इहां जीवपरिणामविशेषरूपकों करण कहते हैं, सो करण तीन प्रकारका होता है, १ यथा प्रवृत्तिकरण, २ अप्रवृत्तिकरण, ३ अतिवृत्तिकरण. तहां पर्वतकी नदीके जल करके आलोड्यमान पापाणकी तर घंचनां (घोलनां) न्याय करके जीव आयु वर्जके शेष कर्मोंकी स्थिति किंचित् जनी एक कोटाकोटी सागर प्रमाण स्थिति करता हुआ जिन अघ्यवसाय विशेष करके ग्रंथिदेश तक आता है, सो यथाप्रवृत्तिकरण क

हते हैं, १ तथा जिन अग्रास पूर्व अध्यवसाय विशेष करके तिस ग्रंथिकां ग्रंथि घन निबिड रागछेप परिणतिरूपकों कहते हैं, तिस ग्रंथिके जेदनेका जो आरंज, तिसको अपूर्वकरण कहते हैं, २ तथा जिन अध्यवसायविशेष करके अनिवृत्त, ग्रंथिजेद करके अति परम आनंद जनक सम्यक्त्व पाता है, तिसका नाम अनिवृत्ति करण है, यह तीनों करणका स्वरूप श्रीजिन ज झगणिह्माश्रमण आचार्य, आवश्यकी श्रुद्धांजोनिधि गंधहस्ति महा ज्ञाप्यमें लिखते हैं, तीन पथिकके दृष्टांतसे तीनों करणका स्वरूप दिखताते हैं, जैसें तीन पथिक उजामके रस्ते चले जाते थे, तहां चलते चलते बि काल बेला हो गई, ओं सूर्य अस्त हो गया, वे पंथी, मनमें बहुत डरने लगे, इतनेमें उस बखत तहां तत्काल दो चोर आ पहुंचे, तिन चोरोंकों देख कर तिनमेंसूं एक पथिक तो मरता हुआ पीठेंकों दौर गया, अरु एक पथिकों चोरोने पकड़ लीया, अरु एक पथिक तिन चोरोसें लन जिड मार पीट करके अगले नगरमें पहुंच गया, यह तो दृष्टांत है, इसका दाष्टांत ऐसे हैं, कि उजाम जो है, सो मनूष्य जब है, तिसमें कमाँकी जो स्थिति है, सो दीर्घ रस्ता है, ओ जो गुंठ है, सो जयका स्थानक है, अरु राग छेप यह दोनो चोर हैं अरु जो पुरुष, पीठेंको दौडा हैं, तिसकी तो स्थिति संसारमें रहणेकी अधिक हो जाती है, अरु जो पुरुष, पकडा गया, वो गाँठके पास जा कर खसा हो गया, सो रागछेप, चोरोनें पकड़ लीया बोझी दुःखी है, अरु जिसने सम्यक्त्व पा लिया, सो गाममें पहुंच गया, ताते सुखी जया, यह दृष्टांत तीनों करणके साथ जोड लेनां.

अथ कीडीयाँके दृष्टांत करके तीनों करणोंका स्वरूप लिखते हैं, जैसें कीमीयाँ बिलमेंसूं निकलके एक खूँटेके तले जमण करती हैं, एकैके की मीयाँ उस खूँटेके उपरि चढती हैं, अरु कितनिक खूँटेके उपर चम कर पंख लग जानेंसें उड गई है. यह तीनों करणजी इसी तरें जान लेने. तब तो जीव यथाप्रवृत्ति करण करके ग्रंथिदेशकों प्राप्त होता है, अरु अपूर्व करण करके ग्रंथिका जेद करता है, ग्रंथिजेद करके कोइक जीव मिथ्यात्व के पुजल राशिको विजज्य (वांट) करके १ मिथ्यात्व माह, २ मिश्रमोह, ३ सम्यक्त्व मोह रूप तीन पुंज करता है, जब अनिवृत्तिकरण करके विशुद्ध मानके उदय हुये अरु मिथ्यात्वके दूय हुये ? उदय नहीं हुये

के उपशान्त हूयें, द्वायोपशमिक सम्यक्त्वकों प्राप्ति होता है. जब जीवों को द्वायोपशमिक सम्यग् दर्शन उत्पन्न होता है, तब जीवोंके मनुष्यगति देवगतिकी संपत् होती है. तथा अपूर्व करण करकेही कृत तीन पुंज वाले जीवकों चौथे गुणस्थानसेही रूपकपणोंको जब आरंज करता है, तब अनंतानुबंधी चार, मिथ्यामोह, मिश्रमोह, अरु सम्यक्त्व मोहरूप तीनों पुंजोंके क्षय हूयें, द्वायिक सम्यक्त्व होता है, तब वो द्वायिक सम्यग् दृष्टि जे कर अवच्छायु है, तब तो तिसी जवमें मोक्ष रूप होवेगा, अरु जे कर आयु बांध कर पीठें द्वायिकसम्यक्त्ववान् हूआ है, तब तो तीसरे जवमें मोक्ष होता है. अरु जे कर असंख्यात वर्ष जीवने बांधे मनुष्य, तिर्यचका आयु बांध कर पीठेसे द्वायिकसम्यक्त्व पावे, तब चौथे जवमें मोक्ष होता है.

अथ अविरति गुणस्थानकवर्ती जीवका कृत्य लिखते हैं. धृत नियम तो उसके कौंइजी नहीं होता है, परंतु देवमें अर्थात् जगवान् श्रीवीतराग में, अरु उक्तलक्षण गुरुमें, तथा श्रीसंघमें, क्रम करके जक्ति, पूजा, नमस्कार, वात्सल्यादि कृत्य करता है. तथा प्रजावक श्रावक होनेसे शासनकी उन्नति, शासनकी प्रजावना करता है. तथा अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक वाला जीव, १ तीर्थंकर नामकर्म, २ मनुष्यायु, ३ देवायु. यह तीन प्रकृति तीसरे गुणस्थानसे अधिक बांधता है. इस वास्ते सत्तत्तर प्रकृतिका बंध करता है, तथा मिश्र मोहके व्यवच्छेद होनेसे अरु आनुपूर्वी चार, अरु सम्यक्त्वमोहके उदय होनेसे एक सौ चार कर्म प्रकृतिकों वेदता है. अरु द्वायिक सम्यक्त्व वालेकों १३७ प्रकृतिकी सत्ता होती है, अरु उपशम सम्यक्त्व वालेकों चौथे गुणस्थानकसे लेकर इग्यारहमे गुणस्थानक पर्यंत १४७ कर्मप्रकृतिकी सत्ता है. अरु द्वायिकसम्यक्त्व वालेकों जिस जिस गुण स्थानमें जितनी जितनी कर्मप्रकृतिकी सत्ता है, सो आगे चल कर लिख देवेंगे ॥ इति अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकका स्वरूप ॥ ४ ॥

अथ पंचम गुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं. जीवकों सम्यग् तत्त्वावबोध करके उत्पन्न हूआ वैराग्य, तिस वैराग्यसे सर्वविरतिकी बांठा करता जी है, तोजी सर्वविरतिघातक प्रत्याख्यान नाम कपायके उदयसे सर्वविरति श्रंगीकार करणोंको सामर्थ्य नहीं, किंतु जघन्य, मध्यम, उत्कृष्टरूप

देशविरति हो सक्ता है, तिनमें जघन्य देशविरति आकुट्टि स्थूलहिंसादि त्याग. मद्य मांसादि परिहार, अरु परमेष्ठि नमस्कारका स्मरण करणां॥य दाह॥श्लोक॥आकुट्टि स्थूल हिंसाऽमद्य मंसाऽचायतं॥जहन्तो सावतं होऽ, जो नमुक्कार धारतं॥१॥ तथा मध्यम देशविरति “अकुट्टादि न्याय सं पन्न विज्व इत्यादि” धर्म योग्यता गुणों करि आकीर्ण गृहस्थ उचित पट्क र्म धर्ममें तत्पर, द्वादश व्रतका पालक, सदाचारवान् औसा होवे, तो म ध्यम श्रावक जाननां. तथा उत्कृष्टदेशविरति, सचित्त आहारका वर्जक, प्रतिदिन एकाशन करे, ब्रह्मचारी होवे, महाव्रत अंगीकार करनेकी इच्छावा ला होवे, गृहस्थका धंदा जिसने त्यागा है, औसा जो होवे, सो उत्कृष्ट देशविरति. यह तीन प्रकारकी विरति जिसकों होवे, उसकों श्राद्ध, अर्थात् श्रावक कहते हैं. देशविरतिकी उत्कृष्टी स्थिति देशोन कोटिपूर्वकी है.

अथ देशविरति गुणस्थानकमें ध्यानका संज्ञव कहते हैं. यह गुणस्थान में १ अनिष्टयोगार्त्त, २ इष्टवियोगार्त्त, ३ रोगार्त्त, ४ निदानार्त्त. यह चार पाद रूप आर्त्तध्यान. तथा १ हिंसानंदरौद्र, २ मृपानंदरौद्र, ३ चौर्यानंद रौद्र, ४ संरक्षणानंदरौद्र. यह चार पादवाला रौद्र ध्यान है वे देशविरति के आर्त्तध्यान मंद होता है, जैसे जैसे देशविरति अधिक अधिकतर होती हैं, तैसे तैसे आर्त्त रौद्र ध्यान, मंद मंदतर होता जाता है, अरु धर्म ध्यान तो जैसे जैसे देशविरति अधिक होती हैं, तैसे तैसे अधिक अधिक होता है, मध्यमरूपही रहता है, परंतु उत्कृष्ट धर्मध्यान नहीं होता है. जे कर उत्कृष्ट धर्मध्यान हो जावे, तब सर्व विरति हो जायगा, वो पांचमे गुणस्थान संबंधी धर्मध्यान कैसा है ? जिसमें पट् कर्म, एका दश प्रतिमा, अरु श्रावक व्रत पाखनेका संज्ञव है.

उक्त पट् कर्मका नाम कहते हैं. १ तीर्थकर अर्द्धत जगयंत वीतराग सर्वज्ञकी प्रतिमाछारा पूजा करे, २ गुरुकी सेवा करे, ३ स्वाध्याय. ४ संय म, ५ तप, ६ दान, यह पट्कर्म हैं ॥ यष्टुक्त ॥ देवपूजा गुरुपास्तिः, न्वा ध्यायः संयमस्तपः ॥ दानं चेति गृहस्थानां. पट् कर्माणि दिने दिने ॥१॥

प्रतिमा जो है. सो अग्निपदविशेषकों कहते हैं. सो नाममात्र यह है॥गाथा ॥ दंतण वय सामाद्रय, पोसह पणिमा अयंत सचिने॥आरंज पेत्त उदिठ. व ज्ञाप समणचूण या॥१॥इनका विस्तार देखनां होवे, तदा पंचाशकनाना शास्त्रके

प्रतिमा पंचाशकमें देख लेनां. अरु श्रावकके व्रत बारह हैं, सो आगे कर लिखेंगे. यह पट् कर्म, एकादशप्रतिमा, बारह व्रत. इनके पालनमें मध्यम धर्म ध्यान होता है, तथा देशविरति गुणस्थानस्थ जीव, अप्रत्याख्यान चार कपाय, नरकगति, नरकायु नरकानुपूर्वी, यह नरक त्रिक. आय संहनन तथा औदारिक शरीर औदारिक अंगोपांग, यह औदारिक द्विक. यह सब मिल कर दश कर्मप्रकृतिका बंध, व्यवच्छेद होनेसे संतसष्ठ कर्मप्रकृतिका बंध करता है. तथा अप्रत्याख्यान चार, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यचांनुपूर्वी, नरकत्रिक, देवत्रिक, वैक्रियद्विक, पुर्जगअनादेय, अयशः कीर्ति. यह सत्तां कर्मप्रकृतिका उदय व्यवच्छेद करनेसे सत्तासी कर्म प्रकृतिका फल जोका है. अरु एक सौ अरुत्तीस प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति देशविरतिगुणस्थानं ॥५॥

अथ पांचमे गुणस्थानक उपरांत जो गुणस्थान है, तिनमेंसूं तरहवा गुणस्थान वर्जके शेष सर्वगुणस्थानोंमें पृथक् पृथक् अंतर मुहूर्त्तमात्र स्थिति है.

अथ ठहा प्रमत्तसंयत गुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं. सर्व त्रिति साधु, यह ठहे प्रमत्त गुणस्थानकमें होता है, वो साधु कैसा है? कि अहिंसादि पांच महाव्रतका धारक है, वो साधु किस करके प्रमत्त होता है? कि प्रमादके होनेसे प्रमत्त होता है, सो प्रमाद पांच प्रकारका है ॥

॥यदाह ॥ गाथा ॥ मज्झं विसय कसाया, निहा विगहा य पंचमी न णिया ॥ ए ए पंच पमाया, जीवं पाडंति संसारे ॥ १ ॥ जावार्थः—मय, विषय, कपाय, निद्रा, अरु विकथा, यह पांच प्रमाद हैं, सो जीवकों संसारमें गेरते हैं, जो साधु इन पांचो प्रमादों करके संयुक्त होवे, अरु संवसनकी चौथी कपायका उदय होवे, तब महामुनि महाव्रती साधु अ वश्य अंतर मुहूर्त्त काल खगि सप्रमाद होनेसे प्रमादी होता है. जे कर अंतरमुहूर्त्तसे उपरांतजी सप्रमादी होवे, तदा प्रमत्त गुणस्थानसेजी नीचे गिर पमता है. अरु जे कर अंतर मुहूर्त्तसे उपरांतजी प्रमाद रहित होवे, तदा फेर अप्रमत्त गुणस्थानमें चढता (आरोहता) है.

अथ प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें ध्यानका संजव कहते हैं. यह गुणस्थानमें मुख्य तो आर्त्तध्यान, उपलक्षणसे रौद्रध्यानकाजी संजव है, क्यों कि नोकपाय, हास्यादि पट्कके होनेसे. तथा आज्ञादि आलंघन युक्त धर्मध्यानकी गोणता है, १ आज्ञा, २ अपाय, ३ विपाक, ४ संस्थान. इन

चारोंके चिंतनलक्षण आलंबनों करके संयुक्त धर्मध्यान होता है. इहां धर्मध्यानके चार पाद हैं ॥ उत्तंच ॥ आज्ञापायविपाकानां, संस्थानस्य विचिंतनात् ॥ इष्टं वा ध्येयजेदेन, धर्मध्यानं चतुर्विधं ॥ १ ॥ आज्ञा उसकां कहते हैं, कि जो कुछ सर्वज्ञ अर्हंत जगवंतने कहा है, सो सर्व सत्य है, अरु जो बात, मेरी समझमें नहीं आती है, वो मेरी बुद्धिकी मंदता है, तथा दुपम कालके प्रज्ञावसें, संशय मिटाने वाले गुरुके अज्ञावसें, इत्यादि निमित्तोंसे मेरी समझमें नहीं आता है, परंतु अर्हंत जगवंतके कहे हुवे वाक्य सत्य है, क्योंकि उनके मृपा बोलनेका कोइनी निमित्त नहीं है, ऐसा जो चिंतन करनां, सो आज्ञा विचयनामा प्रथम जेद है. तथा राग द्वेष कपायादिकों करके जो अपाय (कष्ट) उत्पन्न होते हैं, तिनका जो चिंतन करनां, सो अपायविचयनामा दूसरा जेद हैं. तथा क्षण क्षण प्रति जो कर्मफलोदय विचित्ररूप उत्पन्न होता है, सो विपाकविचयनामा तीसरा जेद है, तथा यह लोक अनादि अनंत है, अरु उत्पाद, व्यय, ध्रुव रूप सर्व पदार्थ हैं, तथा पुरुषकार लोकका संस्थान है, ऐसा जो चिंतन करनां सो संस्थानविचयनामा चौथा जेद है. इत्यादि आलंबनायुक्त धर्मध्यानकी गौणता, प्रमत्त गुणस्थानमें है, परंतु सप्रमाद होनेसें मुख्यता नहीं.

अथ जे कर कोइ प्रमत्त गुणस्थानमें निरालंबन धर्मध्यान कहे, तिसका निषेध करते हैं. जिनजास्कर (जिनसूर्य) अैसें कह गये हैं, कि जो साधु जहां लगि प्रमाद संयुक्त होवे, तहां लगि तिस साधुकों निरालंबन ध्यान नहीं होता है, क्योंकि इहां प्रमत्त गुणस्थानमें मध्यमधर्मध्यानकी गौणताही कही है, परंतु मुख्यता नहीं. तिस वास्ते प्रमत्तगुणस्थानमें उत्कृष्ट निरालंबन धर्मध्यानका संभव नहीं.

अथ जो यह अर्थ न माने, तिसकों कहते हैं, जो साधु प्रमादयुक्तनी आवश्यक सामायिकादि पडावश्यकसाधक अनुष्ठानका परिहार करके निश्चल निरालंबन ध्यानाश्रित होवे, वो साधु मिथ्यात्वमोहित मिथ्याज्ञाव करके मूढ हुआ यका जैनागम श्रीसर्वज्ञप्रणीत शास्त्र नहीं जानता, क्यों कि वो साधु व्यवहार तो ठोड बैठा है, अरु निश्चयकों प्राप्त नहीं हुआ है. अरु जो जिनागमके जानने वाले हैं, सो तो व्यवहारपूर्वक निश्चयकों साधते हैं ॥ यदाह ॥ जइ जिणमयं पवज्जाह, ता मा विवहार निवण मूयह ॥

प्रतिमा पंचाशकमें देख लेनां. अरु श्रावकके घन वारह हैं. सो आगे न कर लिखेंगे. यह पट् कर्म, एकादश प्रतिमा, वारह घन. इनके पावनमें मध्यम धर्म ध्यान होता है, तथा देशविरति गुणस्थानस्य जीव, अप्रत्याख्यान चार कपाय, नरकगति, नरकायु नरकानुपूर्वी, यह नरक त्रिक. आय संहनन तथा श्रौदारिक शरीर श्रौदारिक अंगोपांग, यह श्रौदारिक द्विक. यह सब मिल कर दश कर्मप्रकृतिका बंध, व्यवच्छेद होनेसें संतत कर्मप्रकृतिका बंध करता है. तथा अप्रत्याख्यान चार, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, नरकत्रिक, देवत्रिक, वैक्रियद्विक, पुर्जगथनादेय, अयशः कीर्ति. यह सत्तरां कर्मप्रकृतिका उदय व्यवच्छेद करनेसें सत्तासी कर्म प्रकृतिका फल जोका है. अरु एक सौ अरुत्तीस प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति देशविरतिगुणस्थानं ॥५॥

अथ पांचमे गुणस्थानक उपरांत जो गुणस्थान है, तिनमेंसूं तेरहवा गुणस्थान वर्जके शेष सर्वगुणस्थानोमें पृथक् पृथक् अंतर मुहूर्त्तमात्र स्थिति है.

अथ ठछा प्रमत्तसंयत गुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं. सर्व वि ति साधु, यह ठछे प्रमत्त गुणस्थानकमें होता है, वो साधु कैसा है? कि अहिंसादि पांच महाव्रतका धारक है, वो साधु किस करके प्रमत्त होता है? कि प्रमादके होनेसें प्रमत्त होता है, सो प्रमाद पांच प्रकारका है ॥

॥यदाह ॥ गाथा ॥ मज्झं विसय कसाया, निद्धा विगहा य पंचमी व णिया ॥ ए ए पंच पमाया, जीवं पाडंति संसारे ॥ १ ॥ जावार्थः—मय, विषय, कपाय, निज्जा, अरु विकया, यह पांच प्रमाद हैं, सो जीवकों संसारमें गेरते हैं, जो साधु इन पांचो प्रमादों करके संयुक्त होवे, अरु जं ज्वलनकी चौथी कपायका उदय होवे, तब महामुनि महाव्रती साधु अवश्य अंतर मुहूर्त्त काल लागि सप्रमाद होनेसें प्रमादी होता है. जेकर अंतरमुहूर्त्तसें उपरांतजी सप्रमादी होवे, तदा प्रमत्त गुणस्थानसेंजी नीचे गिर पड़ता है. अरु जेकर अंतर मुहूर्त्तसें उपरांतजी प्रमाद रहित होवे, तदा फेर अप्रमत्त गुणस्थानमें चढता (आरोहता) है.

अथ प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें ध्यानका संज्ञव कहते हैं. यह गुणस्थानमें मुख्य तो आर्त्तध्यान, उपलक्षणसें रौद्रध्यानकाजी संज्ञव है, क्यों कि नोकपाय, हास्यादि पट्कके होनेसें. तथा आज्ञादि आलंघन युक्त धर्मध्यानकी गौणता है, १ आज्ञा, २ अपाय, ३ विपाक, ४ संस्थान. इन

जि निरोध करकें, इंद्रिय समूह ओ इंद्रियोंके
 स पीठें पवनकी अर्थात् आसोवासीकी गतागति
 र्थको अवलंबकें, पद्मासनसँ बैठ करकें, शिवके वा
 र्थकी गुफामें बैठ करकें, एक वस्तु उपरि दृष्टि र
 रहनां योग्य है ॥१॥ चित्तके निश्चल हूयां उतां
 मदके शांति हूयां, अरु इंद्रिय समूहके दूर हूयां,
 अरु आनंदके प्रगट वृद्धिमान्
 जीवको अवस्थामें मेरेको वनमें रहेको छु
 रक्षा करेंगे ? ॥ २ ॥ तथा श्रीसूरप्रज्ञाचार्यनी
 तुमारा आगमरूप जेपज करकें, राग रूप रोग नि
 करकें कब वो दिन आवेगा कि जिस दिन में समाधि
 ? इत्यादि- तथा श्रीहेमचंद्रसूरिजी कहते हैं, कि वनमें
 गी गोदमें मृगका बच्चा बैठे, अरु हिरणोंका स्वामी बड़ा ह
 अरुमें अरणी समाधिमें, स्थित रहूं ॥१॥ तथा शत्रुमें
 स्त्रीमें, सुदर्ण अरु पापाणमें, मणि अरु महिमें, मोक्ष
 निर्विशेषमनि में कब होउगा ? ॥ ४ ॥ अतेंही मंत्री बजु
 रमतमें जठहरिनेनी मनोरथही करा है, अतें स्वयंमय परस
 जो पुरुष हूये हैं, तिनोने परमात्मतत्त्वसँ बैठेमें मनोर
 अरु मनोरथ जो लोकमें करते हैं, सो दुःप्राप्य वस्तु काही
 रंतु जो वस्तु, सुखेन मित्र जावे, तिसका मनोरथ कोइनी नहीं
 जो सदा मिष्टान्न खाता है, अरु बड़ा जारी राज्य जोगता है,
 मिष्टान्न खानेका अरु राज्य जोगनेका मनोरथ नहीं करता है,
 तने सर्व प्रकारसे प्रमत्त गुणस्थानस्थ विवेकी जनोने परम संवेग
 अप्रमत्त गुणस्थानका स्पर्श करानी है, तोनी परम शुद्ध परमा
 त्तिका स्पर्श करणां, परंतु पट्कर्म पनावश्यकदि व्यवहा
 परिहार न करनां, अरु जो मूढ़, योगप्रद कर
 यार व्यवहारसे पराईमुख हैं, तिनका योगनी कि
 ठनका यह साकनी नहीं अरु परलोकनी
 जडाता है ॥ पतः ॥ योगिनः जनतामेतां,

विवहारनञं छेपं, तित्त्वञ्चञं जञं जणिञ्चो ॥ १ ॥ अर्थः—जे कर जिनमत
 कों अंगीकार करते हो, औ जैनमतमें साधु होते हो, तो व्यवहार निश्च
 यका त्याग मत करो, क्योंकि व्यवहार नयके उछेद होनेसे तीर्थका उछेद
 हो जायगा, इस बात उपर यह दृष्टांत है, कि जैसे कोष्क पुरुष अपने व
 रमें सदा वाजरेकी रोटी खाता है, किसीने उसकों निमंत्रण करके अप्
 ये मिष्टान्नाहार कराया, तब तो वो उस खादका छोलुपी हो कर अपने
 घरकी वाजरेकी रोटी निःखाद जान कर खाता नहीं, उस दुःप्राप्य मि
 ष्टान्नकी अजिलाया करता है, तब तो वो अपने घरका कदन्न तो खाता
 नहीं, अरु मिष्टान्नजी मिलता नहीं, तब वो उजयव्रष्ट होता है. तैसें
 यह जीवजी कदाग्रहरूप जूतके लगनेसे प्रमत्तगुणस्थान साध्यस्थूलमात्र
 पुण्यपुष्टिका कारण पडावश्यकदि कष्टक्रिया नहीं करता, अरु कदाचि
 त् प्रमत्तगुणस्थानमें जिसका खान्न है, ऐसा जो निर्विकल्प मनोजनि
 समाधिरूप निराखंवन, ध्यानांशरूप, अमृत आहारतुल्य पाया है. तब
 तो तिस करिकें उत्पन्न हुआ जो परमानंद सुखस्वाद, तिस करिकें प्रमत्त
 गुणस्थानगत पडावश्यकदि कष्टक्रिया कर्म, कदन्न समान कर सम्यक्
 राधन न करे, अरु मिष्टान्न तुल्य निराखंवन ध्यानांश तो प्रथम संहननके
 अज्ञावसे प्राप्त नहीं होता है, तब तो पडावश्यकके न करनेसे उजयव्रष्ट हो
 जाता है, क्योंकि निराखंवन ध्यानका मनोरथही पंचम कालके महामुनि
 पियोने करा है ॥ तथाच पूर्वमहर्षयः ॥ चेतोवृत्तिनिरोधनेन करणप्रामं
 विधायोद्भवं ॥ तत्संहृत्य गतागतं च मरुतो, धैर्यं समाश्रित्य च ॥ पर्यंकेन
 मयाशिवाय विधिवत् स्थित्वेकजूजूदारीमध्यस्थेन कदाचिदपितृदृशा स्यात्
 व्यमंतर्मुखं ॥ १ ॥ चित्ते निश्चलतां गते प्रशमिते रागादिनिज्जामदे ॥ विज्ञाणेऽ
 क्कदंबके विचटिते ध्वांते प्रमारंजके ॥ आनंदे प्रविजृंजिते पुरपते इति
 समुन्मीलिते मां रदयंति कदा वनस्यमजितो दुष्टाशयाः श्वापदाः ॥ २ ॥
 तथा श्रीसूरप्रज्ञाचार्याः ॥ चितावदातेर्जवदागमानां, वा जेपजेरांगरुजंनि
 वर्त्य ॥ मया कदा प्रोढसमाधिसक्षी इत्यादि” तथा श्री हेमचंद्र सूरयः ॥
 वनपद्मासनासीनं, क्रोरुस्थितमृगार्जकं ॥ कदा घ्रास्यति वक्त्रे मां, चरतो
 मृगपूयपाः ॥ १ ॥ शत्रो मित्रे तृणे स्त्रेणे, सुवर्णेऽश्मनि मणौ मृदि ॥ मोक्षे
 जवे न विप्यामि, निर्विशेषमतिः कदा ॥ २ ॥ इन श्लोकोंका थोडासा अर्थजी

सिख देते हैं, चित्तकी वृत्ति निरोध करके, इंद्रिय समूह ओ इंद्रियोंके विषयोंको दूर करके, तिस पीठें पवनकी अर्थात् आसोष्वासकी गतागति को रोक करके, अरु धैर्यको अवलंबके, पद्मासनसे बैठ करके, शिवके वास्ते विधि संयुक्त किसी पर्वतकी गुफामें बैठ करके, एक वस्तु उपरि दृष्टि रख कर, मुजकों अंतर्मुख रहना योग्य है ॥१॥ चित्तके निश्चल हूयां उतां राग, द्वेष, कषाय, निद्रा, मदके शांति हूयां, अरु इंद्रिय समूहके दूर हूयां, अरु त्रमारंजक अंधकारके दूर होयां, अरु आनंदके प्रगट वृद्धिमान् जये, ज्ञानके प्रकाश जये, ऐसी जीवकों अवस्थामें मेरेको वनमें रहेको दुष्टाशयवाले सिंह कब रक्षा करेंगे ? ॥ २ ॥ तथा श्रीसूरप्रजाचार्यजी कहते हैं कि हे जगवन्! तुमारा आगमरूप ज्ञेय करके, राग रूप रोग निवर्त्त करके, निर्मल चित्त करके कब वो दिन आवेगा कि जिस दिन में समाधि रूपी लक्ष्मी कूं देखुंगा ? इत्यादि. तथा श्रीहेमचंद्रसूरिजी कहते हैं, कि वनमें पद्मासन बैठे हुवे मेरी गोदमें मृगका बच्चा बैठे, अरु हिरणोंका स्वामी बड़ा हरण मेरे मृगको सूंघे, अरु मैं अपनी समाधिमें, स्थित रहूं ॥१॥ तथा शत्रुमें मित्रमें, तृण अरु स्त्रीमें, सुवर्ण अरु पापाणमें, मणि अरु महिमें, मोक्ष अरु संसार, मैं निर्विशेषमनि में कब होउगा ? ॥ ४ ॥ अतेंही मंत्री बज्रपावने तथा परमतमें जर्तृहरिनेजी मनोरथही करा है. अतें स्वप्नमय परसमयमें प्रसिद्ध जो पुरुष हूये हैं, तिनोंने परमात्मतत्त्वसंवेत्तिमें मनोरथही करा है, अरु मनोरथ जो लोकमें करते हैं, सो दुःप्राप्य वस्तु काही करते हैं, परंतु जो वस्तु, सुखेन मिल जावे, तिसका मनोरथ कोइजी नहीं करता है, जो सदा मिष्टान्न खाता है, अरु बड़ा जारी राज्य जोगता है, वो कजी मिष्टान्न खानेका अरु राज्य जोगनेका मनोरथ नहीं करता है, तिस वास्ते सर्व प्रकारसे प्रमत्त गुणस्थानस्थ विवेकी जनोंने परम संवेग आरूढ अप्रमत्त गुणस्थानका स्पर्श कराजी है, तोजी परम शुद्ध परमात्मतत्त्वसंवेत्तिका मनोरथ करणां, परंतु पट्कर्म पद्मावश्यकदि व्यवहार क्रिया जो है, उसका परिहार न करना. अरु जो मूढ़, योगग्रह करके ग्रस्त हैं, अरु सदाचार व्यवहारसे पराङ्मुख हैं, तिनका योगजी कि सी कामका नहीं है, अरु उनका यह लोकजी नहीं अरु परलोकजी नहीं. क्योंकि वो जीव जडात्मा है ॥ यतः ॥ योगिनः समतामेतां,

प्राप्य कल्पलतामिव ॥ सदाहारमयीमस्या, वृत्तिमातृत्वतां वह्निः ॥ १ ॥
 ये तु योगग्रहप्रस्ताः, सदाचारपराङ्मुखाः ॥ एष तेषां च योगोपि, न को
 कोपि जन्मात्मनां ॥ २ ॥ तिस्र वास्ते साधुकों जो दूषण दिन रात्रि
 लगता है, तिसके ठेदने वास्ते अवश्यमेव पडावश्यकादि क्रिया करे,
 जहां लगि उपरिखे गुणस्थानों करि साध्य जो निरालंबन ध्यान है,
 तिसकों न प्राप्ति होवे, तहां लगि करे. तथा प्रमत्त गुणस्थानस्थ जीव,
 चार प्रत्याख्यानके बंध, व्यवछेद होनेसें त्रैशव प्रकृतिका बंध करता है,
 तथा तिर्यग्गति, तिर्यगानुपूर्वी, नीचगोत्र, उद्योत, अरु प्रत्याख्यान चार
 यह आव प्रकृतिके उदय उछेद होनेसें अरु आहरक तथा आहारकोषों
 ग, यह दो प्रकृतिके उदय होनेसें एकासी प्रकृति वेदता है: अरु एक सौ
 अन्नत्तीस प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति प्रमत्तगुणस्थानकं पठं ॥ ६ ॥

अथ सप्तम अप्रमत्त गुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं. पांच महाव्रत
 धारी साधु, पांच प्रमाद रहित, अप्रमत्त गुणस्थानस्थ होता है, अरु सं
 ज्वलनकी चारों कपायोंका उदय मंद होवे, तथा नोकपायोंका उदय
 मंद होवे. तात्पर्य यह है कि संज्वलन कपाह तथा नोकपायोंका जैसा
 जैसा मंदोदय होता है, तैसें साधु अप्रमत्त होता है ॥ यदाह ॥ श्लोक ॥
 यथा यथा न रोचंते, विषयाः सुखज्ञाथपि ॥ तथा तथा समायाति, सं
 विचिंतोतत्त्वमुत्तमं ॥ १ ॥ यथा यथा समायाति, संविचिंतोतत्त्वमुत्तमं ॥ तथा
 तथा न रोचंते, विषयाः सुखज्ञाथपि ॥ २ ॥ अर्थः—जैसें जैसें अप्रमत्तगुण
 स्थान वाला जीव मोहनीय कर्मके उपशम करणमें तथा दाय करणमें
 निपुण होता है, तथा जैसें सद्ब्रह्मका आरंभ करता है, सोइ स्वरूप कहते हैं.
 • छर करे हैं सर्व प्रमाद जिसने ऐसा जो जीव, तथा पांच महा
 व्रतका धारक, अरु अष्टादश सदस्र जो शीलांगलक्षण, तिनो करके संयुक्त,
 सदागमका अच्यारी ज्ञानवान् ध्यान एकाग्रता रूप, ऐसा ज्ञान ध्यानरूप
 जिसके पास धन है, इसी वास्ते “मोनी” मोनवान् है. क्योंकि मोनवान् ही ध्या
 न रूप धनवान् हो सका है, तिस पीछें ज्ञान ध्यान मोनवान्, उपशम कर
 णोंके अर्थ अथवा दाय करणोंके अर्थ सन्मुख दूथा यका ऐसा पवित्र मुनि
 संतोत्तर मोहकों पूर्वोक्त सम्यक्त्व मोह, मिथ्रमोह, मिथ्यात्वमोह, अरु
 अनंतानुबंधी चार. यत सात प्रकृतिके बिना शेष इक्कीस प्रकृतिरूप मो

हनीय कर्मके उपशम करणके सन्मुख तथा ह्य करणके सन्मुख जब होता है, तब सालंबन ध्यान त्यागके निरालंबन ध्यानमें प्रवेश करनेका आरंज करता है. यह निरालंबन ध्यानमें प्रवेश करने वाले योगी, तीन तर्रके होते हैं. १ यथाप्रारंजकाः, २ तन्निष्ठा, ३ निष्पन्नयोगाः ॥ यदाह ॥ श्लोक ॥ सम्यग् नैसर्गि कीं वा, विरतिपरिणतिं, प्राप्य सांसर्गिकीं वा ॥ काप्येकांते निविष्टाः, कपिचपलचल, न्मानसस्तंजनाय ॥ शश्वन्नासाग्र पाली, घनघटितदृशो, धीरवीरासनस्थो ॥ ये निःपापाःसमाधे, विंदधति विधिना, रंजमारंजकास्ते ॥ १ ॥ कुर्वाणो मरुतासनेन्द्रियमनः, क्षुत्तर्पनिद्रा जयं ॥ योंतं जडपति रूपणानिरसकृ तत्त्वंसमन्यस्यति ॥ सत्त्वानामुपरिप्र मोदकरुणा, मैत्रिभृशं मन्यते ॥ ध्यानाधिष्ठितचेष्टयाऽन्युदयते, तस्येह तन्नि ष्ठा ॥ १ ॥ उपरतवहिरंतर्चद्वक्त्रोलमात्रे, लसदविकलविद्यापद्मिनीपूर्णमध्ये ॥ सततममृतमंतर्मानते यस्य हंसः, पिवति निरुपलेपः सोऽत्र निष्पन्नयोगी.

अथ अप्रमत्त गुणस्थानमें ध्यानका संज्ञा कहते हैं. सर्वज्ञका कहा हूआ धर्म ध्यान मैत्र्यादि अनेक जेदरूप हैं ॥ यदाह ॥ श्लोक ॥ मैत्र्यादि निश्चतुर्जेदं, यद्वाज्ञादि चतुर्विधं ॥ रूपस्थादि चतुर्धा वा, धर्मध्यानं प्रकी र्त्तितम् ॥ १ ॥ तत्र ॥ मैत्रीप्रमोदकारुण्य, माध्यस्थानि नियोजयेत् ॥ धर्म ध्यानमुपस्कर्तुं, तद्धि तस्य रसायनं ॥ २ ॥ आज्ञापायविपाकानां, संस्थानस्य विचिंतनात् ॥ इष्टं वा ध्येयजेदेन, धर्मध्यानं प्रकीर्त्तितं ॥ ३ ॥ तथा १ पिं दस्थध्यान अपणे अंग अंगीका स्वरूप, २ वाणीव्यापाररूप पदस्थध्यान, ३ संकल्पित आत्मरूप रूपस्थ ध्यान, ४ कदम्बनासें रहित रूपातीत ध्या न, ऐसा जो जिनेश्वरका कहा हूआ धर्मध्यान, सो अप्रमत्त गुणस्थान में मुख्यवृत्ति करके प्रधानपणे होता है. तथा रूपातीतपणे करके शुक्लध्या नजी अंशमात्र करके गौणपणे है. इहां अप्रमत्त गुणस्थानमें आवश्यक क्रियाका जो अज्ञाव है, तोजी शुरू है, यह वार्ता कहते हैं.

इस पूर्वोक्त अप्रमत्त गुणस्थानकमें सामायिकादि षट् आवश्यक, सोजी नहीं है, “कोयः” सामायिकादि ठे आवश्यक व्यवहार क्रियारूप, इस गुण स्थानमें नहीं, परंतु निश्चय सामायिकादि सबे कुछ है, क्योंकि सामायिकादि सर्व आत्माके गुण हैं, “आया तामाश्न. आया तामाश्नस्त अष्ठे” अ

प्राप्य कंदपलतामिव ॥ सदाहारमयीमस्या, वृत्तिमातृत्वतां वहिः ॥ १ ॥
 ये तु योगग्रहग्रस्ताः, सदाचारपराङ्मुखाः ॥ एष तेषां च योगोपि, न को
 कोपि जगत्समं ॥ २ ॥ तिस्र वास्ते साधुको जो छूण दिन रात्रि
 लगता है, तिसके ठेवने वास्ते अवश्यमेव पडावश्यकादि क्रिया करे,
 जहां लगि उपरिखे गुणस्थानों करि साध्य जो निरालंबन ध्यान है,
 तिसकों न प्राप्ति होवे, तहां लगि करे. तथा प्रमत्त गुणस्थानस्थ जीव,
 चार प्रत्याख्यानके बंध, व्यवछेद होनेसें श्रेष्ठ प्रकृतिका बंध करता है,
 तथा तिर्यग्गति, तिर्यगानुपूर्वी, नीचगोत्र, उद्योत, अरु प्रत्याख्यान वा
 यह आठ प्रकृतिके उदय उच्छेद होनेसें अरु आहरक तथा आहारको
 ग, यह दो प्रकृतिके उदय होनेसें एकासी प्रकृति वेदता है: अरु एक
 अरुत्तीस प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति प्रमत्तगुणस्थानकं पद्यं ॥ ६ ॥

अथ सप्तम अप्रमत्त गुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं. पांच महाप्र
 धारी साधु, पांच प्रमाद रहित, अप्रमत्त गुणस्थानस्थ होता है, अरु स
 ज्वलनकी चारों कपायोंका उदय मंद होवे, तथा नौकपायोंका उदय
 मंद होवे. तात्पर्य यह है कि संज्वलन कपाह तथा नौकपायोंका उदय
 जैसा मंदोदय होता है, तैसें साधु अप्रमत्त होता है ॥ यदाह ॥ श्लोक
 यथा यथा न रोचंते, विषयाः सुलजाश्चपि ॥ तथा तथा समायाति, वि
 चित्तोत्तत्त्वमुत्तमं ॥ १ ॥ यथा यथा समायाति, संवित्तोत्तत्त्वमुत्तमं ॥ तप
 तथा न रोचंते, विषयाः सुलजाश्चपि ॥ २ ॥ अर्थः—जैसें जैसें अप्रमत्तगु
 स्थान वाला जीव मोहनीय कर्मके उपशम करणमें तथा क्षय करणमें
 निपुण होता है, तथा जैसें सङ्ख्यानका आरंभ करता है, सोइ स्वरूप कहते हैं
 . छूट करे हैं सर्व प्रमाद जिसने ऐसा जो जीव, तथा पांच महाप्र
 मत्तका धारक, अरु अष्टादश सदृश जो शीलांगसङ्गण, तिनो करके संयुक्त
 सदागमका अन्यासी ज्ञानवान् ध्यान एकाग्रता रूप, ऐसा ज्ञान ध्यान
 जिसके पास धन है, इसी वास्ते “मोनी” मोनवान् है. क्योंकि मोनवान् ही
 न रूप धनवान् हो सका है, तिस पीठें ज्ञान ध्यान मोनवान्, उपशम क
 णोंके अर्थ अथवा क्षय करणोंके अर्थ सन्मुख हूँ अथवा ऐसा पवित्र मुनि
 संतोत्तर मोहकों पूर्वोक्त सम्यक्त्व मोह, मिश्रमोह, मिथ्यात्वमोह, अ
 अनंतानुबंधी चार. यत सात प्रकृतिके विना शेष इक्कीस प्रकृतिरूप

इनीय कर्मके उपशम करणके सन्मुख तथा कृय करणके सन्मुख जब होता है, तब सालंबन ध्यान त्यागके निरालंबन ध्यानमें प्रवेश करनेका आरंभ करता है. यह निरालंबन ध्यानमें प्रवेश करने वाले योगी, तीन तरेंके होते हैं. १ यथाप्रारंभकाः, २ तन्निष्ठा, ३ निष्पन्नयोगाः ॥ यदाह ॥ श्लोक ॥ सम्यग् नैसर्गि कीं वा, विरतिपरिणतिं, प्राप्य सांसर्गिकीं वा ॥ काप्येकांते निविष्टाः, कपिचपलचल, न्मानसस्तंजनाय ॥ शश्वन्नासाग्र पाली, घनघटितदृशो, धीरवीरासनस्यो ॥ ये निःपापाःसमाधे, विंदधति विधिना, रंजमारंजकास्ते ॥ १ ॥ कुर्वाणो मरुतासनेन्द्रियमनः, क्षुत्तर्पनिद्रा जयं ॥ योंतं जल्पति रूपणाजिरसकृत्तत्त्वंसमन्यस्यति ॥ सत्त्वानामुपरिप्र मोदकरुणा, मैत्रिचूशं मन्यते ॥ ध्यानाधिष्ठितचेष्टयाऽच्युदयते, तस्येह तन्निष्ठता ॥ १ ॥ उपरतवहिरंतर्चल्पकक्षोलमाले, लसदविकलविद्यापद्मिनीपूर्णमध्ये ॥ सततममृतमंतर्मानसे यस्य हंसः, पिवति निरुपलेपः सोऽत्र निष्पन्नयोगी.

अथ अप्रमत्त गुणस्थानमें ध्यानका संज्ञव कहते हैं. सर्वज्ञका कहा हूआ धर्म ध्यान मैत्र्यादि अनेक जेदरूप हैं ॥ यदाह ॥ श्लोक ॥ मैत्र्यादि जिश्चतुर्जेदं, यद्वाज्ञादि चतुर्विधं ॥ रूपस्यादि चतुर्धा वा, धर्मध्यानं प्रकीर्तितम् ॥ १ ॥ तत्र ॥ मैत्रीप्रमोदकारुण्य, माध्यस्थानि नियोजयेत् ॥ धर्म ध्यानमुपस्कर्तुं, तद्धि तस्य रसायनं ॥ २ ॥ आज्ञापायविपाकानां, संस्थानस्य विचिंतनात् ॥ इत्वं वा ध्येयजेदेन, धर्मध्यानं प्रकीर्तितं ॥ ३ ॥ तथा १ पिं दस्यध्यान अपणे अंग अंगीका स्वरूप, २ वाणीव्यापाररूप पदस्यध्यान, ३ संकल्पित आत्मरूप रूपस्थ ध्यान, ४ कद्वनासें रहित रूपातीत ध्यान, ऐसा जो जिनेश्वरका कहा हूआ धर्मध्यान, सो अप्रमत्त गुणस्थान में मुख्यवृत्ति करके प्रधानपणे होता है. तथा रूपातीतपणे करके शुक्लध्यानजी अंशमात्र करके गौणपणे है. इहां अप्रमत्त गुणस्थानमें आवश्यक क्रियाका जो अज्ञाव है, तोजी शुरू है, यह वार्ता कहते हैं.

इस पूर्वोक्त अप्रमत्त गुणस्थानकमें सामायिकादि पद आवश्यक, सोजी नहीं है, “कोर्थः”सामायिकादि ठे आवश्यक व्यवहार क्रियारूप, इस गुण स्थानमें नहीं, परंतु निश्चय सामायिकादि सर्वकुठ है, क्योंकि सामायिकादि सर्व आत्माके गुण हैं, “आया सामाश्च, आया सामाश्चस्त अठे” अ

र्थात् आत्माही सामायिक है, अरु आत्माही सामायिकका अर्थ है; यह आगमके वचनसे है.

प्रश्न:- किस वास्ते अप्रमत्त गुणस्थानमें व्यवहार कियारूप पद आ वश्यक नहीं ?

उत्तर:- अप्रमत्त गुणस्थानमें निरंतर ध्यानके सत् योगसे निरंतर ध्या नहींमें प्रवृत्त होता है, इस वास्ते स्वाभाविकी सहज नित्य संकल्प विकल्प मालाके अजावसे एक स्वाभाविकी निर्मल आत्मा होती है, इस गुणस्थानमें वर्तमान जो जीव है, वो जावतीर्थ ज्ञान करके परम शुद्धको प्राप्त होता है ॥ यदाह ॥ दाहोवसमं तल्लाह, ठेयणं मलप्पवाहणं चैव ॥ तिहिं थ्येहिं निउत्तं, तह्मा तं दवउं तिष्ठं ॥ १ ॥ कोहंमि उ निग्गहिण, दाहस्सो वसणं हवइ तिष्ठं ॥ सोहंमि उ निग्गहिण, तल्लाह ठेयणं जाण ॥ २ ॥ थ छवियं कम्मरयं, बहुणहिं जवेहिं संचियं जम्हा ॥ तवसंयमेव धोयइ, तम्हा तं जावउं तिष्ठं ॥ ३ ॥ अर्थ:- दाह उपशांत करे, तृपाका ठेद करे, शरीरकी मलकों छूर करे, इन पूर्वोक्त तीनों अर्थों करके जो नियुक्त होवे, ऐसा जो गंगा मागधादि, तिसकों इस वास्ते उच्यतीर्थ कहते हैं ॥ १ ॥ तथा क्रोधके निग्रह करणसे दाह उपशम होती है, अरु खोजके निग्रह करणसे तृपा ठेद होती है, ऐसे जाननां, अरु आठ प्रकारकी कर्मरज बहुत जवो करके जो संची है, सो तप संयम करके जो धोवे, तिस वास्ते तिसकों जाव तीर्थ कहते हैं ॥ अन्यच्च ॥ श्लोक ॥ रुद्धप्राणप्रचारे, वपुषि नियमि ते, संश्रुतेऽक्षप्रपंचे ॥ नेत्रस्पंदे निरस्ते, प्रलयमुपगतं, तर्विकल्पेन्द्रजाले ॥ जिज्ञे मोहंधकारे, प्रसरति महसि, कापि विश्वप्रदीपे ॥ धन्यो ध्यानाव खंधी कलयति परमानंदसिंधो प्रवेशं ॥ १ ॥ अर्थ:- प्राण, आसोछास का प्रचार आना जाना जिसने रोका है, आं जिसने शरीरकों वश कीया है, आं जिसने नेत्रका टपकारनां बंद कीया है, आं पांच इंद्रियोंको अपने अपने विषयसे रोका है, तथा अंतर विकल्परूप इंद्र जालके लय दृष्टे, मोह रूप अंधकारके नष्ट दृष्टां, अरु त्रिबुवन प्रकाशक ज्ञान प्रदीपके, पगट दृष्टे धन्य वो ध्यानावखंधी पुरुष है, सो परमानंदरूप समुद्रमें प्रवेश करता है.

यह अप्रमत्त गुणस्थानस्थ जीव, १ शोक, २ रति, ३ अरति, ४ अस्थिर, ५ अशुच, ६ अयश, ७ अशातावेदनी. इन सातों प्रकृतियोंका बंध

व्यवच्छेद करता है, अरु १ आहारक, २ आहारकोपांग, यह दो प्रकृतिका बंध करता है. इस वास्ते उणसठ प्रकृतिका बंध करता है, अरु जे कर दे वायु न बांधे, तब अष्टावन प्रकृतिका बंध करता है, तथा स्थानार्द्धिक, अरु आहारक द्विकोदयका व्यवच्छेद करे, तब त्रिहत्तर प्रकृतिका फल वेद ता हैं, अरु १३७ प्रकृतिकीसत्ता है॥इति अग्रमत्त गुणस्थानकं सप्तमं ॥ ७ ॥

अथ आठवा अपूर्वकरण, नवमा अनिवृत्तिवादर, दसवा सूक्ष्मसंपराय, इग्यारवा उपशांत मोह, बारहवा क्षीणमोह. यह पांच गुणस्या नोका नामार्थ सामान्य प्रकारसें लिखते हैं.

जो अग्रमत्तसंयत सातमे गुणस्थान वर्त्ती दिखलाया है, सोइ संज्वलन कपाय चार, नो कपाय ठें, इनके मंद उदय हूये प्रात अप्रातपूर्व अत्यंत परमाह्लादरूप अपूर्व पारिणामिक आठवा गुणस्थान है, इसका नाम अपूर्वकरण इसवास्ते कहते हैं कि इस गुणस्थानकमें अपूर्व आत्म गुणकी प्राप्ति होती है.

तथा देखा, सुना, औ अनुजव्या, जो जोग, तिनकी कांक्षारूप संकल्प विकल्प रहित निश्चल परमात्मैकतत्त्वरूप प्रधानपरिणतिरूप जावोकी निवृत्ति नहीं इस वास्ते इसका नाम अनिवृत्ति गुणस्थान कहते हैं. अरु इसका नाम जो अनिवृत्तिवादर कहते हैं, सो इहां अप्रत्याख्यानादि जो छादश वादर कपाय हैं, तिनका, अरु नव नोकपायोंका शमक, उपशम करने वास्ते अरु क्षपक, क्षय करणेके वास्ते उद्यमी होता है, इस कारणसें इसका नाम अनिवृत्तिवादर कहते हैं. यह नवमा गुणस्थान है.

तथा सूक्ष्म परमात्मतत्त्वजावनावल करके सत्तावीश प्रकृतिरूप मोह के उपशांत हूये, तथा क्षय हूये, एक सूक्ष्म खंडीभूत लोचकी अस्तित्व जहां है, सो सूक्ष्मसंपराय नामक गुणस्थानक है, संपराय नाम कपाय का है, इस वास्ते सूक्ष्मसंपराय दशमा गुणस्थानकका नाम कहा.

तथा उपशामकही उपशम मूर्तिरूप सहजस्वभाव बल करके सकल मोह कर्मके उपशांत करनेसें उपशांत मोहनामक एकादशम गुणस्थान होता है.

तथा क्षपककोही क्षपकश्रेणि मार्ग करके दशमे गुणस्थानसेंही निःकपाय शुद्धात्मजावना बल करके सकल मोहके क्षय करणसें क्षीणमोह

यात् आत्माही सामायिक है, अरु आत्माही सामायिकका अर्थ है, वरु आगमके वचनसे है.

प्रश्न:- किस वास्ते अग्रमत्त गुणस्थानमें व्यवहार कियारूप पद आ वश्यक नहीं ?

उत्तर:- अग्रमत्त गुणस्थानमें निरंतर ध्यानके सत् योगसे निरंतर आ नहींमें प्रवृत्त होता है, इस वास्ते स्वाज्ञाविकी सहज नित्य संकल्प विकल्प मालाके अज्ञावसे एक स्वाज्ञावरूप निर्मल आत्मा होती है, इस गुणस्थानमें वर्तमान जो जीव हैं, वो ज्ञावतीर्थ ज्ञान करके परम शुद्धको प्राप्त होता है ॥ यदाह ॥ दाहोवसमं तण्हाइ, ठेयणं मलप्पवाहणं चेव ॥ तिहिं अथेहिं निउत्तं, तह्मा तं दवउं तिष्ठं ॥ १ ॥ कोहंमि उ निग्गहिण, दाहस्सो वसणं हवइ तिष्ठं ॥ लोहंमि उ निग्गहिण, तण्हाइ ठेयणं जाण ॥ २ ॥ अ छवियं कम्मरयं, वहुएहिं जवेहिं संचियं जम्हा ॥ तवसंयमेव धोयइ, तम्हा तं ज्ञावउं तिष्ठं ॥ ३ ॥ अर्थ:- दाह उपशांत करे, तृपाका वेद करे, शरीरकी मलकों छूर करे, इन पूर्वोक्त तीनों अर्थों करके जो नियुक्त होवे, थोसा जो गंगा मागधादि, तिसकों इस वास्ते अव्यतीर्थ कहते हैं ॥ १ ॥ तथा जो धके निग्रह करणसे दाह उपशम होती है, अरु लोचके निग्रह करणसे तृपा वेद होती है, असें जाननां. अरु आठ प्रकारकी कर्मरज बहुत जवो करके जो संची है, सो तप संयम करके जो धोवे, तिस वास्ते तिसकों ज्ञाव तीर्थ कहते हैं ॥ अन्यच्च ॥ श्लोक ॥ रुद्धप्राणप्रचारे, वपुपि नियमि ते, संवृतेऽक्षप्रपंचे ॥ नेत्रस्पंदे निरस्ते, प्रलयमुपगतं, तर्विकल्पं ज्ञाये ॥ जिघ्रे मोहंधकारे, प्रसरति महसि, कापि विश्वप्रदीपे ॥ धन्यो ध्यानाव संवी कलयति परमानंदसिंधो प्रवेशं ॥ १ ॥ अर्थ:- प्राण, आसोष्मात का प्रचार आना जाना जिसने रोका है, थो जिसने शरीरकों वश कीया है, थो जिसने नेत्रका टपकारनां बंद कीया है, थो पांच इंद्रियोंको अपने अपने विषयसे रोका है, तथा अंतर विकल्परूप इंद्र जालके लय दूये, मोह रूप अंधकारके नष्ट दूयां, अरु त्रिबुवन प्रकाशक ज्ञान प्रदीपके, पगट दूये धन्य वो ध्यानावसंधी पुरुष है, सो परमानंदरूप समुद्रमें प्रवेश करता है.

यह अग्रमत्त गुणस्थानस्थ जीव, १ शोक, २ रति, ३ अरति, ४ अस्थिर, ५ अशुभ, ६ अयश, ७ अशाताचेदनी. इन सातों प्रकृतियोंका बंध

व्यवच्छेद करता है, अरु १ आहारक, २ आहारकोपांग, यह दो प्रकृतिका वंश करता है. इस वास्ते उणसठ प्रकृतिका वंश करता है, अरु जे कर दे वायु न बांधे, तब अष्टावन प्रकृतिका वंश करता है, तथा स्थानर्द्धिक, अरु आहारक छिकोदयका व्यवच्छेद करे, तब त्रिद्वन्तर प्रकृतिका फल वेद ता हैं, अरु १३७ प्रकृतिकीसत्ता है॥इति अग्रमन्त्र गुणस्थानकं सप्तमं ॥ ७ ॥

अथ आठवा अपूर्वकरण, नवमा अनिवृत्तिवादर, दसवा सूक्ष्मसंपराय, इग्यारवा उपशांत मोह, बारहवा क्षीणमोह. यह पांच गुणस्थानोका नामार्थ सामान्य प्रकारसें लिखते हैं.

जो अग्रमन्त्रसंयत सातमे गुणस्थान वनीं दिखलाया है, सोइ संज्वलन कपाय चार, नो कपाय ठें, इनके मंद उदय हूये प्राप्त अप्राप्तपूर्व अत्यंत परमावृद्धादरूप अपूर्व पारिणामिक आठवा गुणस्थान है, इसका नाम अपूर्वकरण इसवास्ते कहते हैं कि इस गुणस्थानकमें अपूर्व आत्मगुणकी प्राप्ति होती है.

तथा देखा, सुना, और अनुभव्या, जो जोग, तिनकी कांक्षारूप संकल्प विकल्प रहित निश्चल परमात्मैकतत्त्वरूप प्रधानपरिणतिरूप जावोकी निवृत्ति नहीं इस वास्ते इसका नाम अनिवृत्ति गुणस्थान कहते हैं. अरु इसका नाम जो अनिवृत्तिवादर कहते हैं, सो इहां अप्रत्याख्यानादि जो द्वादश वादर कपाय हैं, तिनका, अरु नव नोकपायोंका शमक, उपशम करने वास्ते अरु क्षपक, क्षय करणेके वास्ते उद्यमी होता है, इस कारणसें इसका नाम अनिवृत्तिवादर कहते हैं. यह नवमा गुणस्थान है.

तथा सूक्ष्म परमात्मतत्त्वज्ञावनावल करके सत्तावीश प्रकृतिरूप मोहके उपशांत हूये, तथा क्षय हूये, एक सूक्ष्म खंडीभूत लोचकी अस्तित्व जहां है, सो सूक्ष्मसंपराय नामक गुणस्थानक है, संपराय नाम कपाय का है, इस वास्ते सूक्ष्मसंपराय दशमा गुणस्थानकका नाम कहा.

तथा उपशामकही उपशम मूर्तिरूप सहजस्वज्ञाव बल करके सकल मोह कर्मके उपशांत करनेसें उपशांत मोहनामक एकादशम गुणस्थान होता है.

तथा क्षपककोही क्षपकश्रेणि मार्ग करके दशमे गुणस्थानसेंही निःकपाय शुद्धात्मज्ञावना बल करके सकल मोहके क्षय करणेसें क्षीणमोह

र्थात् आत्माही सामायिक है, अरु आत्माही सामायिकका अर्थ है, यह आगमके वचनसे है.

प्रश्न:- किस वास्ते अप्रमत्त गुणस्थानमें व्यवहार कियारूप पद आवश्यक नहीं ?

उत्तर:- अप्रमत्त गुणस्थानमें निरंतर ध्यानके सत् योगसे निरंतर ध्यान नहींमें प्रवृत्त होता है, इस वास्ते स्वाज्ञाविकी सहज नित्य संकल्प विकल्प मालाके अज्ञावसे एक स्वाज्ञावरूप निर्मल आत्मा होती है, इस गुणस्थानमें वर्तमान जो जीव हैं, वो ज्ञावतीर्थ ज्ञान करके परम शुद्धकों प्राप्त होता है ॥ यदाह ॥ दाहोवसमं तप्प्हाइ, ठेयणं मलप्पवाहणं चेव ॥ तिहिं अथेहिं निउत्तं, तद्दा तं दवउं तिठं ॥ १ ॥ कोहंमि उ निग्गहिण, दाहसो वसणं हवइ तिठं ॥ सोहंमि उ निग्गहिण, तप्प्हाइ ठेयणं जाण ॥ २ ॥ अ ठवियं कम्मरयं, बहुणहिं जवेहिं संचियं जम्हा ॥ तवसंयमेव धोयइ, तम्हा तं जावउं तिठं ॥ ३ ॥ अर्थ:- दाह उपशांत करे, तृपाका ठेद करे, शरीरकी मलकों छूर करे, इन पूर्वोक्त तीनों अर्थों करके जो नियुक्त होवे, असा जो गंगा मागधादि, तिसकों इस वास्ते अव्यतीर्थ कहते हैं ॥ १ ॥ तथा जो धके निग्रह करणसे दाह उपशम होती है, अरु खोजके निग्रह करणसे तृपा ठेद होती है, असे जाननां. अरु आठ प्रकारकी कर्मरज बहुत जवो करके जो संची है, सो तप संयम करके जो धोवे, तिस वास्ते तिसकों ज्ञाव तीर्थ कहते हैं ॥ अन्यच्च ॥ श्लोक ॥ रुद्धप्राणप्रचारे, वपुषि नियमि ते, संवृतेऽक्षप्रपंचे ॥ नेत्रस्पंदे निरस्ते, प्रलयमुपगतं, तर्विकल्पेन्द्रजाये ॥ जिज्ञे मोहंधकारे, प्रसरति महसि, कापि विश्वप्रदीपे ॥ धन्यो प्यानाव खंची कलयति परमानंदसिंधौ प्रवेशं ॥ १ ॥ अर्थ:- प्राण, आसोशास का प्रचार थाता जानां जिसने रोका है, अथो जिसने शरीरकों वश कीया है, अथो जिसने नेत्रका टपकारनां बंद कीया है, अथो पांच इंद्रियोंकें अग्रसे अग्रसे विषयसे रोका है, तथा अंतर विकल्परूप इंद्र जालके लय दृष्टे, मोह रूप अंधकारके नष्ट दृष्टां, अरु त्रिचुवन प्रकाशक ज्ञान प्रदीपके, पगट दृष्टे धन्य वो प्यानावखंची पुरुष है, सो परमानंदरूप समुद्रमें प्रवेश करता है.

यद् अप्रमत्त गुणस्थानस्य जीव, १ शोक, २ रति, ३ अरति, ४ अस्थिर, ५ अशुच, ६ अयश, ७ अज्ञातावेदनी. इन सातों प्रकृतियोंका बंध

व्यवच्छेद करता है, अरु १ आहारक, २ आहारकोषांग, यह दो प्रकृतिका
बंध करता है. इस वास्ते गुणसत्त प्रकृतिका बंध करता है, अरु जे कर वे
मायु न बांधे, तब अष्टावन प्रकृतिका बंध करता है, तथा स्थानाद्विचित्रिक,
अरु आहारक छिकोदयका व्यवच्छेद करे, तब त्रिद्वन्द्व प्रकृतिका फल वेद
ता हैं, अरु १३७ प्रकृतिकीसत्ता है॥इति अप्रमत्तगुणस्थानकं सप्तमं ॥ ७ ॥

अथ आठवा अपूर्वकरण, नवमा अनिवृत्तिवादर, दसवा सूक्ष्मसंप
राय, इग्यारवा उपशांत मोह, बारहवा क्षीणमोह. यह पांच गुणस्या
नोका नामार्थ सामान्य प्रकारसें लिखते हैं.

जो अप्रमत्तसंयत सातमे गुणस्थान वर्त्ती दिखलाया है, सोइ संजवल
न कपाय चार, नो कपाय ठें, इनके मंद उदय हूये प्राप्त अप्राप्तपूर्व अ
त्यंत परमाद्धादरूप अपूर्व पारिणामिक आठवा गुणस्थान है, इसका
नाम अपूर्वकरण इसवास्ते कहते हैं कि इस गुणस्थानकमें अपूर्व आत्म
गुणकी प्राप्ति होती है.

तथा देखा, सुना, औ अनुजव्या, जो जोग, तिनकी कांक्षारूप संक
टप विकटप रहित निश्चल परमात्मैकतत्त्वरूप प्रधानपरिणतिरूप जावोकी
निवृत्ति नहीं इस वास्ते इसका नाम अनिवृत्ति गुणस्थान कहते हैं. अरु
इसका नाम जो अनिवृत्तिवादर कहते हैं, सो इहां अप्रत्याख्यानादि जो
छादश वादर कपाय हैं, तिनका, अरु नव नोकपायोंका शमक, उपशम
करने वास्ते अरु क्षपक, क्षय करणेके वास्ते उद्यमी होता है, इस कार
णसें इसका नाम अनिवृत्तिवादर कहते हैं. यह नवमा गुणस्थान है.

तथा सूक्ष्म परमात्मतत्त्वज्ञावनावल करकें सत्तावीश प्रकृतिरूप मोह
के उपशांत हूये, तथा क्षय हूये, एक सूक्ष्म खंडीभूत लोचकी अस्तित्व
जहां है, सो सूक्ष्मसंपराय नामक गुणस्थानक है, संपराय नाम कपाय
का है, इस वास्ते सूक्ष्मसंपराय दशमा गुणस्थानकका नाम कहा.

तथा उपशामकही उपशम मूर्तिरूप सहजस्वभाव बल करकें स
कल मोह कर्मके उपशांत करनेसें उपशांत मोहनामक एकादशम गुण
स्थान होता है.

तथा क्षपककोंही क्षपकश्रेणि मार्ग करकें दशमे गुणस्थानसेंही निःक
पाय शुद्धात्मज्ञावना बल करकें सकल मोहके क्षय करणेसें क्षीणमोह

नामक वारहवा गुणस्थान होता है. यह पांचों गुणस्थानोंका सामान्य प्रकारें नामार्थ कहा.

अथ अपूर्वकरणादि अंशसेही दोनो श्रेणिका आरोह कहते हैं. तहां अपूर्वकरणस्थानमें आरोह समयमें अपूर्वकरणके प्रथम अंशमेंही उपशमक, उपशमश्रेणिमें चढता है, अरु क्षपक, क्षपकश्रेणिमें चढता है.

अथ प्रथम उपशमश्रेणिके चढनेकी योग्यता कहते हैं, इहां उमशमक मुनि, शुक्लध्यानका प्रथम पाया, जिसका आगें स्वरूप लिखेंगे उसका ध्याता हुआ उपशमश्रेणिकों अंगीकार करता है. कैसा वो मुनि है? कि पूर्णगत श्रुतका धारक, निरतिचार, चारित्रवान्, आदिके तीन संहनन युक्त, ऐसा मुनि उपशमश्रेणि करता है.

उपशमश्रेणिवाला मुनि जे कर अल्प आयुवाला होवे, तब काल कर के "अहमिंज" अर्थात् पांच अनुत्तर विमानमें उत्पन्न होता है, परंतु जे सके प्रथम संहनन होवे, वो अनुत्तर विमानमें उत्पन्न होता है, क्योंकि अपर संहनन वाला अनुत्तर विमानमें उत्पन्न नहीं होता है, सेवार्त्त संहननवाला चौथे महेंद्र स्वर्ग तक जा सकता है, अरु कीलिकादि चार संहनन वालोंके दो दो देवलोककी वृद्धि कर लेनी, अरु प्रथम संहननवाला तो मोक्ष तक जाता है, अरु जिसकी आयु जे कर सात स्रव अधि क होती, तां मोक्ष जाना, सोइ सर्वार्थसिद्ध विमानमें उत्पन्न होता है. ॥ यदाह ॥ गाथा ॥ सत्त खवा जइ थाउं, पदुप्पमाणं तउं हृ सिद्धंता ॥ तिच्छिमिन्नं न ह्ययं, तत्तो खव सत्तमा जाया ॥ १ ॥ सवठ सिद्धनामे, उक्कोस छिनु विजयमाईसु ॥ पगावसेस गप्पा, हयंति खव सत्तमा देया ॥ २ ॥

प्रश्न:-उपशमश्रेणिवाला मोक्षके योग्य कैमें हो सकता है?

उत्तर:-ज्ञान जो खव है, सो एक मुहूर्त्तका इग्यारवा हिस्साहै, तब तो खवसत्तमावशेष आयुवालाही मंडित उपशमश्रेणि करने वाला पराईमुल ज्ञानमें गुणस्थानमें आ करके फेर क्षपकश्रेणिमें चढ कर ज्ञान खयके पि चढ़ीने हीपमोह गुणस्थानमें होकर अंतःकृत केवली हो कर मोक्ष हो जाना है, इस वास्ते क्षपक नहीं. तथा जो पुशायु उपशमश्रेणि करता है, सो अम्यंजित श्रेणि करके चारित्र मोहनीयका उपशम करके इग्यारव गुणस्थानमें पदुंन कर उपशमश्रेणि समाप्ति करके गिर पडता है.

अथ औपशमकही अपूर्वादि गुणस्थानोमें जो करता है, सो कहते हैं. संज्वलनका लोच वर्ज्यके शेष वीश प्रकृति मोहनीय कर्मकी. अपूर्व करण, अरु अनिवृत्तिवादर, इन दोनों गुणस्थानोंमें उपशम करता है. तिसके पीछें क्रम करके सूक्ष्म संपराय गुणस्थानमें संज्वलनके लोचकों सूक्ष्म करता है. तिस पीछें क्रम करके उपशांतमोह गुणस्थानमें तिस सूक्ष्म लोचका सर्वथा उपशम करता है, तथा इहां उपशांतमोह गुण स्थानमें जीव, एक प्रकृति, शातावेदनीय रूप बांधता है. अरु उणसष्ठ प्रकृति वेदता है, तथा १४७ प्रकृतिकी उत्कृष्टी सत्ता है.

अथ उपशांतमोह गुणस्थानकमें, जैसा सम्यक्त्व चारित्र जाव लक्ष ण तीन है, सो कहते हैं. यह गुणस्थानमें उपशम सम्यक्त्व अरु उपश म चारित्र होता है, अरु इहां जावजी उपशमही होता है, परंतु दायि क जाव तथा दायोपशमिक जाव नहीं होता है.

अथ उपशांतमोह गुणस्थानसें जैसें पन जाता है, तैसें कहते हैं. उप शमी मुनि तीव्र मोहोदय अर्थात् चारित्र मोहनीयका उदय पा करके उपशांतमोह गुणस्थानसें पड जाता है, फेर मोहजनित प्रमादसें पतित होता है. जैसें पानीमें मल हेठ बैठ जाते हैं, तिस करके उपरसें निर्मल हो जाता है, फेर कोइ निमित्त पा कर मलीन हो जाता है ॥ यदाह ॥ सुय केवलि आहारग, उजुमइ उवसंतगावि हु पमाय ॥ हिंसति नवमणं तं, तं अणंतरमेव चउ गइया ॥ १ ॥ अर्थः—१ श्रुतकेवली, आहारक श रीरी, २ रुजुमति, ४ उपशांतमोह वाला. यह सर्व प्रमादके वशसें अनं त नव करते हैं, प्रमादके वशसें चार गतिमें वास करते हैं.

अथ उपशमक जीवोंको गुणस्थानोमें चढनां, अरु पननां जिस तरें होता है, सो कहते हैं. अपूर्वकरण गुणस्थानसें अनिवृत्तिवादर गुणस्था नमें जाता है, अरु अनिवृत्तिवादर गुणस्थानसें सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानमें जाता है, अरु सूक्ष्मसंपराय वाला उपशांतमोह गुणस्थानमें जाता है. तथा अपूर्वकरणादि चारो गुणस्थानसें उपशम श्रेणिनाला पना दुआ, प्र थम मिथ्यात्व गुणस्थानमें आ जाता है, अरु जे कर चरमशरीरी होवे, तब सातमे गुणस्थान तक आ करके फेर सातमे गुणस्थानसें क्षपकश्रेणि मानता है, परंतु एक बार जिसने उपशमश्रेणि करी होवे, सो क्षपक

श्रेणि कर सका है, श्रु जिसने एक जन्ममें दो बार उपशमश्रेणि करी होवे सो क्षणश्रेणि तिस जन्ममें नहीं कर सका है ॥ यदाह ॥ गाथा ॥ जीवो हु एक जन्ममि, इमसि उवसामगो ॥ खयति कुज्जा नो कुज्जा, दोवारे उवसामगो ॥ १ ॥

अथ उपशमश्रेणि घात्रेके जवांकी संख्या कहते हैं. इस संसारमें बहुतनवींमें चार बार उपशमश्रेणि होती है, श्रु एक जन्ममें दो बार होती है ॥ यदाह ॥ उपसमसेणि चउकं, जायइ जीवस्स आजये नूनं ॥ तो पुन दो पगनये, राउगे स्सेणी पुणो ममा ॥ १ ॥ उपशमश्रेणिकी स्थापना इस अगसे यंत्रमें जान सैनी. इस यंत्रकी संवायक यह गाथा है. ॥ गाथा ॥ अणारंण पुंसित्री, पेयउकं च पुरिसयेयं च ॥ दो वो पगंतरिण, गरिमे सरिमे उवसमेइ ॥ २ ॥ अर्थः—प्रथम अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, श्रु दोन. इन चारोंको उपशम करता है, पीठे मिथ्यात्व मोह, मिथ मोह, श्रु सम्प्रसार मोह, यह तीनोंका उपशम करता है, पीठे नपुंसक वेद, पीठेमें स्त्रीवेद, फेर हान्य, रति, श्रु रति, जय, शोक, जुगुप्सा, यह वै प्रणिता उपशम करता है, फेर पुरुषवेद, फेर अप्रत्याग्यानी क्रोध श्रु प्रत्याग्यानी क्रोध, फेर मंडववनका क्रोध, फेर अप्रत्याग्यानी श्रु प्रत्याग्यानी मान, फेर मंडववनका मान, फेर अप्रत्याग्यानी श्रु प्रत्याग्यानी माया, फेर मंडववनकी माया, फेर अप्रत्याग्यानी श्रु प्रत्याग्यानी दोन, फेर मंडववनका दोन, उपशान करना है ॥ इति उपशमश्रेणि मारूप ॥

अथ क्षयकश्रेणिका मारूप लिखते हैं. त्रिग क्षयकश्रेणिमें चट कर पोरी (क्षयक मुनि) कर्म क्षय कर्णमें प्रवृत्त होता है, अथ अष्टम गुणस्थान कर्म पद्विसे जो कर्मप्रवृत्ति क्षयक मुनि क्षय करता है, सो क्षयनेके, ना मरतीने, अक्षय, अक्षयकर्मों, क्षयकके बांधे गुणस्थानमें नरकायु क्षय हो जाना है, नाक योग्य आयुका बंध नहीं करता है. तथा वांछमें गुणस्थानमें निर्दगायु क्षय होता है, श्रु मानमें गुणस्थानमें देवायु क्षय हो जाना है, तथा इहां मानमें गुणस्थानमें दर्शनमोहमनकरी क्षय हो जाना है. निम पीठे क्षयक मायुके एक सो अक्षय कर्मप्रवृत्ति नहीं गता रहती है. तब अक्षय गुणस्थानको प्राप्ति होता है, कयंजना ? उच्छ्रुत धर्म प्राप्त करतीने उच्छ्रुत विरे कीया है अक्षयम ॥ १ ॥ तो बार बार मंडन क्षयों उच्छ्रुत अक्षयम ॥ १ ॥ निम अक्षय ॥ १ ॥ क्षयप्राप्ति हा

ती हैं ॥ यदाह ॥ अज्यासेन जिताहारो, ज्यासेनैव जितासनः ॥ अज्यासेन
जितश्चासोऽज्यासेनैवानितज्जुष्टिः ॥ १ ॥ अज्यासेन स्थिरं चित्तं, मज्यासेन
जितेंद्रियः ॥ अज्यासेन परानंदोऽज्यासेनैवात्मदर्शनं ॥ २ ॥ अज्यासवर्द्धि
तेर्ध्यानैः, शास्त्रस्थैः फलमस्ति न ॥ जवेन्नहि फलैस्तृप्तिः. पानीयप्रतिविंवितेः
॥ ३ ॥ तिसवास्ते अज्याससंही विशुद्ध (निर्मल) तत्त्वानुयायि बुद्धि होती है.

अथ अष्टम गुणस्थानमें शुक्लध्यानका आरंभ कहते हैं. ऋषक साधु
यह आठमे गुणस्थानमें “ शुक्लसंख्यान ” शुक्ल नामक प्रधान ध्यानका प्र
थम पाद पृथक्त्व विनर्क सप्तविचार नाम है, तिसका स्वरूप आगे लिखें
गे. ऐसा ध्यान ध्याता है, सो कैसा साधु है ? “ आद्यसंहननसमन्वित ”
वज्ररूपजनाराचनामा प्रथम संहननयुक्त है.

अथ ध्यान करने वालेका स्वरूप लिखते हैं. योगीन्द्र ऋषक मुनीन्द्र, व्यं
वहारापेक्ष्य, ध्यान करने योग्य होता है, क्या करके ? निविड दृढ पर्यकास
न करके. कथंचूत ? निश्चल आसन करके, क्योंकि आसनजयही ध्यानका
प्रथम प्राण है ॥ यदाह ॥ आहारासणनिदा, जयं च काज्जण जिणवरमं
एण ॥ जाइज्जा नियं अप्पा, उव्वइठं जिणवरिंदेण ॥ १ ॥ तत्र पर्यकासन, जंघा
के अधोभागमें पग उपर करनेसे होता है, तथा कईक सिद्धासन कहते
हैं, तिसका स्वरूप ऐसा है कि ॥ श्लोक ॥ योनिं वामपदाऽपरेण निविडं, संपी
ड्य शिश्नं हनुं ॥ न्यस्तोरस्यचलेंद्रियः स्थिरमना, लोलां च ताड्वांतरे ॥ वंश
स्थैर्यतया सुनिश्चलतया, पश्यन्नुवोरंतरं ॥ योगी योगविधिप्रसाधनकृते, सि
द्धासनं साधयेत् ॥ १ ॥ अथवा आसनका कोई नियम नहीं, चाहो कोई
आसन होवे. जिस आसनमें चित्त स्थिर हो जावे, सोइ आसन ठीक है
सो कैसा योगीन्द्र है कि नासिकाके अग्रमें दीनी है सत् नेत्रकी दृष्टि, औ
से प्रसन्न नेत्र है जिसके, क्योंकि नासाग्रन्यस्तलोचनवालाही ध्यानका
साधक होता है ॥ यदाह ॥ ध्यानदंरुकस्तुतौ ॥ नासाग्रं शाग्रजाग, स्थित
नयनयुगो, मुक्तताराप्रचारः ॥ शेषाक्षकीणवृत्ति, स्त्रिचुवनविवरो, द्रुतं तयोगै
कचक्रुः ॥ पर्यकातंकशून्यः, परिगलितघनोद्वासनिःश्वासवातः ॥ सख्यानारंभ
मूर्ति, श्रिरजवतु जिनो, जन्मसंच्रूतिनीतैः ॥ २ ॥ फेर कैसा है योगीन्द्र ? किं
चित् उन्मीलित अर्द्धविकसित है नेत्र जिसके, क्योंकि योगियोंके समाधि
समयमें अर्द्धविकसित नेत्र होते हैं ॥ यदाह ॥ गंजीरस्तंजमूर्ति, व्यपगतक

श्रेणि कर सकता है, अरु जिसने एक जन्ममें दो बार उपशमश्रेणि करी है, सो क्षपणश्रेणि तिस जन्ममें नहीं कर सकता है ॥ यदाह ॥ गाथा ॥ जीवो दुष्कर्मजन्ममि, इक्षसिं उवसामगो ॥ खयति कुञ्जा नो कुञ्जा, दोवारे उवसामगो ॥

अथ उपशमश्रेणि वालेके जन्मोंकी संख्या कहते हैं. इस संसारमें बहुतजन्मोंमें चार बार उपशमश्रेणि होती है, अरु एक जन्ममें दो बार होती है ॥ यदाह ॥ उवसमसेणि चउकं, जायइ जीवस्स आजवं नृणं ॥ तो पुण दो एगजवे, खवगे स्सेणी पुणो एगा ॥ १ ॥ उपशमश्रेणिकी स्थापना इस अगले यंत्रसें जान लेनी, इस यंत्रकी संवादक यह गाथा है. गाथा ॥ अणदंसण पुंसिद्धी, वेयठकं च पुरिसवेयं च ॥ दो दो एगंतरिप, सरिसे सरिसं उवसमेइ ॥ १ ॥ अर्थः—प्रथम अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, अरु लोभ. इन चारोंको उपशम करता है, पीठें मिथ्यात्व मोह, मित्र मोह, अरु सम्यक्त्व मोह, यह तीनोंका उपशम करता है, पीठें नपुंसक वेद, पीठेंसें स्त्रीवेद, फेर हास्य, रति, अरति, जय, शोक, जुगुप्सा, यह वै प्रकृतिका उपशम करता है. फेर पुरुषवेद, फेर अप्रत्याख्यानी क्रोध अरु प्रत्याख्यानी क्रोध, फेर संज्वलका क्रोध, फेर अप्रत्याख्यानी अरु प्रत्याख्यानी मान, फेर संज्वलनका मान, फेर अप्रत्याख्यानी अरु प्रत्याख्यानी माया, फेर संज्वलनकी माया, फेर अप्रत्याख्यानी अरु प्रत्याख्यानी लोभ, फेर संज्वलनका लोभ, उपशांत करता है ॥ इति उपशमश्रेणि स्वरूपं ॥

अथ क्षपकश्रेणिका स्वरूप लिखते हैं. जिस क्षपकश्रेणिमें चढ कर योगी (क्षपक मुनि) कर्म दाय करणमें प्रवृत्त होता है, अथ अष्टम गुणस्थान कसें पहिले जो कर्मप्रकृति क्षपक मुनि दाय करता है, सो लिखते हैं. वर मशरीरी, अवकायु, अवपकर्मी, क्षपकके चौथे गुणस्थानमें नरकायु दाय हो जाता है, नरक योग्य आयुका बंध नहीं करता है. तथा पांचमे गुणस्थानमें तिर्यगायु दाय होता है, अरु सातमे गुणस्थानमें देवायु दाय हो जाता है, तथा इहां सातमे गुणस्थानमें दर्शनमोहसप्तकजी दाय हो जाता है, तिस पीठें क्षपक साधुके एक सौ अरुत्तीस कर्मप्रकृतिकी सत्ता रहती है, तब आठमे गुणस्थानको प्राप्ति होता है, कथंचूतो ? उल्लूक धर्म ध्यान रूपातीत लक्षण विषे कीया हैं अज्यास जिसने, जो बारं बार सेव न करनां उसको अज्यास कहते हैं, तिस अज्यास करकेही तत्त्वप्राप्ति हो

हैं, तब छादस अंगुल पर्यंत बारुणमंडल प्रचार अमृतमय पवन आकषे
ए करके इसका नाम पूरक ध्यानकर्म कहते हैं.

अथ रेचक प्राणायाम कहते हैं. तब पूरक ध्यानके अनंतर साधक योगी
योगसामर्थ्यसे अरु प्राणायाम अभ्यासके वक्षसे रेचकनामा पवन नाजिकम
ओदरसे हृदये हृदये बाहिर काडता है, तिसका नाम रेचक ध्यान कहते हैं ॥
यदाह ॥ वज्रासनः स्थिरवपुः स्थिरधीः सचित्तः, मारोप्य रेचक समीरणजन्म
चक्रे ॥ स्वांतेन रेचयति नास्मिन् समीरं, तत्कर्म रेचकमिति प्रतिपत्तिमेति १

अथ कुंजक ध्यान कहते हैं. योगी कुंजकनामा पवन नाजिपंकज कुंजक
ध्यान अर्थात् कुंजककर्म प्रयोग करके कुंजवत् (घटाकार) करके अतिशय क
रके स्थिर करता है ॥ यदाह ॥ चेतसि श्रयति कुंजकचक्रं, नाडिकासु निवि
डीकृतधातः ॥ कुंजवत्तरति यज्जलमग्नये, तच्छ्रुदंति किञ्च कुंजककर्म ॥ १ ॥

अथ पवनके जीतनेसे मन जीत्या जाता है, यह बात कहते हैं. क्यों
कि जहां मन है, तहां पवन है. अरु जहां पवन है, तहां मन वर्चना
है ॥ यदाह ॥ दुग्धांशुवत्संनिक्षिप्तो सदैव, तुल्यक्रियो मानसनाम्नो हि
॥ यावन्मनस्तत्र मरुत्प्रवृत्तिः, यावन्मरुत्तत्र मनःप्रवृत्तिः ॥ १ ॥ तत्रैकना
शादपरत्वनाराधः, एकप्रह्वेनपरप्रवृत्तिः ॥ विष्वक्तयोरैध्रियवर्गशुद्धिः, स
ध्वंसनान्मोक्षपदस्य तिष्ठिः ॥ २ ॥ इस प्रकार करके पूरक, रेचक, कुंजक
के क्रम करके पवनोंका आकुंचन निर्गमन. साध्य करके वायुका संग्रह,
अरु चित्तका एकामग्नयां चित्तन करके समाधिविषे निश्चलपणैको धारण
करना है. क्योंकि पवनके जीतनेसेही मन निश्चल होता है ॥ यदाह ॥
प्रचक्षति यदि, क्षोरी चक्रं, चक्षुस्त्वक्ष्णा अपि ॥ प्रक्षयपवनं, प्रेक्षाक्षोखा,
क्षलंति पयोधयः ॥ पवनजदिनः, स्वावष्टंज, प्रकाशिनशक्तयः ॥ निरररिण
ते, राग्न पाना, क्षलंति न योगिनः ॥ १ ॥

अथ सावकीही प्रधानता कहते हैं. इहां क्षरकश्रेणि आरोहविषे जो
प्राणायामका क्रम प्रोदि पवनका अभ्यासक्रम कहा है. तो प्राणवचना
अर्थात् गति करके जो प्रनिष्ठ है. तो दिखलाया है. परंतु जो प्राणाय
ही करे, तो क्षरकश्रेणि चटे, अस्ता बृह निपन नहीं. क्योंकि क्षरकका ना
वही केवल क्षरकश्रेणिका कारण है, परंतु प्राणायामादि आहंवर नहीं.
चरंतिनामि ॥ नात्तावेदं नादीष्टं, वायोधागः प्रत्यद्दागः ॥ प्राणायामो दी

रणं व्यापृतिर्मंदमंदं ॥ प्राणायामोल्लाटस्थलनिहितमना, दत्तनासा
 ग्रहृष्टिः ॥ नाऽत्युन्मीलन्निमील, नयनमत्तितरां, वरूपयंकत्रंधो ॥ ध्याने प्र
 ध्याय शुक्लं, सकलविदज्जवयः स पायाज्जिनो वः ॥ १ ॥ फेर कैसा योगीज
 है? “मानस” (मन) चित्त अंतःकरण विकल्परूप वावरके बंधनसें छू
 करा है, क्योंकि विकल्पही दृढ कर्मबंधनका हेतु है ॥ यदाह ॥ शुजा वा ह
 शुजा वापि, विकल्पा यस्य चेत्तिस ॥ स खं वध्नात्ययः स्वर्ण, बंधना तेन क
 र्मणा ॥ १ ॥ वरं निज्जावरं भूर्त्वा, वरं विकलतापिवा ॥ नत्वा र्त रौद्रकुलेश्या,
 विकल्पाकुलितं मनः ॥ २ ॥ फेर कैसा है योगी? संसारके उछेद करने वा
 स्ते उद्यम है जिसके क्योंकि जबछेदक ध्यानार्थ उत्साह वालोंकेही योग
 सिद्धि होती है ॥ यदाह ॥ उत्साहान्निश्चयाद्धैर्या, रसंतोपात्तत्त्वदर्शनात् ॥
 मुनेर्जनपदत्यागा, स्पृहजियोगः प्रसिद्धयेदिति ॥ २ ॥ तथा मुनि योगीज अ
 निल (पवनकों) ऊर्ध्व प्रचारासि दशम छार गोचरकों प्राप्त करता है, क्या कर
 कें प्राप्त करता है? कि अपान छार मार्ग करके गुदाके रस्ते पवन अपणी
 इष्टासें निकलतेकों निरुद्ध (संकोच) करके, मूलबंध युक्ति करके करता है.
 सो मूलबंध यह है, कि ॥ श्लोक ॥ पार्ष्णिजागेन संपीड्य, योनिमाकुंच
 येजुदं ॥ अपानमूर्ध्माकुप्य, मूलबंधो निगद्यते ॥ १ ॥ यह आकुंचनक
 र्मही प्राणायामका मूल है ॥ यजुक्तं ॥ ध्यानदंरस्तुतौ ॥ संकोच्यापानरं
 हुतवहसदृशं, तंतुवत्सूदमरूपं ॥ धृत्वा हृत्पद्मकोशे, तदनु च गलके, ताडु
 नि प्राणशक्तिं ॥ नीत्वा शून्यानिशून्यां, पुनरपि खततिं, दीप्यमानं समंता,
 ध्रुवालोकालोकालोकां, कलयति स कलां, यस्य तुष्टो जिनेशः ॥ १ ॥

अथ पूरक प्राणायाम कहते हैं. योगी पूरक ध्यानके योगसें अतिप्रयत्न
 करके (कोष्ठ) सकल देहगत नाभीसमूहकों पवन करके पूरता है, क्या करके
 छादशांगुल पर्यंत पवनकों आकर्षण करके, चारां आंगुल प्रमाण बाहिरसें
 सर्व ओरसें खंच करके पूरता है. इहां यह तात्पर्यार्थ है कि पवन आका
 श तत्त्वके बढ़ते हुये नासिकाके अंदरही पवन होता है, अरु अग्नितत्त्व
 के बढ़ते हुये चार अंगुल प्रमात बाहिर ऊर्ध्वगति स्फुरत होता है, अरु
 वायु तत्त्वके बढ़ते हुये ठे अंगुल प्रमाण बाहिर तिर्यग् फिरता है, अरु
 पृथिवी तत्त्वके बढ़ते हुये आठ अंगुल प्रमाण बाहिर मध्यम जागमें रह
 ता है, अरु जल तत्त्वके बढ़ते हुये बारह अंगुल प्रमाण नीचेकों बढ़ता

है, तब छःदश अंगुल पर्यंत बारुणमंडल प्रचार अमृतमय पवन आकर्षण करके इसका नाम पूरक ध्यानकर्म कहते हैं.

अर्थ रेचक प्राणायाम कहते हैं. तब पूरक ध्यानके अनंतर साधक योगी योगसामर्थ्यसे अरु प्राणायाम अज्यासके वक्षसे रेचकनामा पवन नाजिकम लोदरसें हलुवे हलुवे बाहिर काढता है. तिसका नाम रेचकध्यान कहते हैं ॥ यदाह ॥ वज्रासनः स्थिरवपुः स्थिरधीः सचित्त, मारोप्य रेचक समीरणजन्म चक्रे ॥ स्वांतेन रेचयति नास्मिन् समीरं, तत्कर्म रेचकमिति प्रतिपत्तिमेति १

अथ कुंजकध्यान कहते हैं. योगी कुंजकनामा पवन नाजिपंकजकुंजक ध्यान अर्थात् कुंजककर्म प्रयोग करके कुंजवत् (घटाकार) करके अतिशय करके स्थिर करता है ॥ यदाह ॥ चेतसि श्रयति कुंजकचक्रं, नाडिकासु निविडीकृतवातः ॥ कुंजवत्तरति यज्जालमध्ये, तद्भुदंति किल कुंजककर्म ॥ १ ॥

अथ पवनके जितनेसें मन जीत्या जाता है, यह बात कहते हैं. क्यों कि जहां मन है, तहां पवन है. अरु जहां पवन है, तहां मन वर्त्तता है ॥ यदाह ॥ दुग्धांशुवत्संमिलितौ सदेव, तुल्यक्रियौ मानसमारुतौ हि ॥ यावन्मनस्तत्र मरुत्प्रवृत्तिः, यावन्मरुत्तत्र मनःप्रवृत्तिः ॥ १ ॥ तत्रैकनाशादपरत्त्यनाश, एकप्रवृत्तेरपरप्रवृत्तिः ॥ विध्वस्तघोरैरिचवर्गेशुद्धिः, स्तब्धंस्तनान्मोक्षपदस्य तिष्ठिः ॥ २ ॥ इस प्रकार करके पूरक, रेचक, कुंजक के क्रम करके पवनोंका आकुंचन निर्गमन, साध्य करके वायुका संग्रह, अरु चित्तका एकाग्रपणां चिंतन करके समाधिविषे निश्चलपणैकों धारण करता है, क्योंकि पवनके जीतनेसेंही मन निश्चल होता है ॥ यदाह ॥ प्रचलति यदि, क्षोणी चक्रं, चलंत्यचला अपि ॥ प्रचलयपवन, प्रेक्षालोला, श्रुदंति पयोधयः ॥ पवनजयिनः, स्वावष्टंज, प्रकाशितशक्तयः ॥ स्थिरपरिणते, रात्म ध्याना, चलंति न योगिनः ॥ १ ॥

अथ जावकीही प्रधानता कहते हैं. इहां रूपकश्रेणि आरोहविषे जो प्राणायामका क्रम प्रौढि पवनका अन्यास्तक्रम कहा है. तो प्रागद्वजता अर्थात् रुद्धि करके जो प्रसिद्ध है, तो दिखजाया है. परंतु जो प्राणायाम ही करे, तो रूपकश्रेणि चढ़े, ऐसा कुछ नियम नहीं, क्योंकि रूपकका जावही केवल रूपकश्रेणिका कारण है, परंतु प्राणायामादि आडंबर नहीं. चर्पटिनापि ॥ नासाकंदं नाडीवृद्धं, वायोश्चारः प्रत्याहारः ॥ प्राणायामो वी

जगामो, ध्यानाज्यासोमंत्रन्यासः ॥ १ ॥ हृत्पद्मस्थं त्रुमध्यस्थं, नासाग्र
स्थं श्वासांतःस्थं ॥ तेजः शुद्धं ध्यानं युद्धः, ॐ काराख्यं सूर्यप्रज्ञाख्यं ॥१॥
ब्रह्माकाशं शून्याज्यासं, मिथ्याजद्वपं चिताकद्वपं ॥ कायाक्रांतं जाग्रोपेतं ॥
त्यक्त्वा सर्वं मिथ्यागर्वं ॥३॥ गुर्वादिष्टं चित्तं तमिष्टं ॥ देहातीतं चित्तव्रातं
त्यक्त्वा छंदं नित्यानंदं, शुद्धं तत्त्वं जानीहि त्वं ॥४॥ अन्यच्च ॥ ॐ काराज्यासं
नं विचित्रकरणैः, प्राणस्य वायोर्जाया, तेजश्चित्तनमात्मकायकमले, शून्यांत
रालंबनं ॥ त्यक्त्वा सर्वमिदं कलेवरगतं, चिंतामनोविभ्रमं ॥ तत्त्वं पश्यत ज
द्वपकद्वपनकला, तीतं स्वजावस्थितं ॥ १ ॥ यह सर्वं रूढि करकं कृपकश्रेणि
के आरंवर है, परंतु तत्त्वमें मरुदेवांदिबत् जावही प्रधान है.

अथ आथ शुक्लध्यानका नाम कहते हैं. मन, वचन, अरु कायाके योग
वाले मुनिके प्रथम शुक्ल ध्यानका पाद होता है, सो केसा है ? कि वितर्क का
कें सहित जो बत्ते, सो सवितर्क. अरु सहविचार करकें जो प्रवर्त्ते, सो सविचा
र. तथा सह पृथक्त्वेन वर्त्तते इति सपृथक्त्व. इन तीनों विशेषणों करकें संयु
क्त होनेसे सपृथक्त्व, सवितर्क, सप्रविचार नामक प्रथम शुक्लध्यानका नाम है.

अथ विशेषण तीनोंका स्वरूप कहते हैं, यह पूर्वोक्त प्रथम शुक्लध्यान
प्रयारमक क्रमोत्क्रम करकें गृहीत विशेष तीन रूप हैं, तहां श्रुतचिंता रूप
वितर्क है, तथा अर्थ शब्द योगांतरमें जो संक्रमण करना है, सो विचार
है, अरु द्रव्य गुण पर्यायादि करकें जो अन्यपणा है, सो पृथक्त्व है.

अथ इन तीनोंका प्रगट अर्थ कहते हैं, उसमें प्रथम वितर्कका
स्वरूप कहते हैं, जिस ध्यानमें अंतरंग ध्वनिरूप वितर्कविचार रूप होवे
सो सवितर्कध्यान है, क्योंकि स्वकीय निर्मल परमात्मतत्त्व अनुभवमय
अंतरंगजावगत आगमके अवलंबनसे. यह सवितर्क ध्यान है.

अथ सविचार कहते हैं. जिस ध्यानमें सपूर्वोक्त वितर्क विचारणरूप
अर्थसे अर्थांतरमें संक्रम होवे, शब्दसे शब्दांतरमें संक्रम होवे, योगसे
योगांतरमें संक्रम होवे, सो ध्यान, सविचारससंक्रमण कहते हैं.

अथ पृथक्त्वका स्वरूप कहते हैं. जिस ध्यानमें वो पूर्वोक्त वितर्क सवि
चार अर्थ व्यंजन योगांतर संक्रमणरूपनी शुद्धात्मकी तरें द्रव्यसे द्रव्यांत
रमें जाता है, अथवा गुणोंसे गुणांतरमें जाता है, अथवा पर्यायोंसे पर्या
यांतरमें जाता है, तहां जो सहजात है, सो गुण है, जैसे सुवर्णमें क्षिग्ध

ता पीतता है. अरु जो कमजूर है, सो पर्याय है, जैसे सुवर्णमें मुद्रा कुं डलादिक. तिन उच्च गुण पर्यायांतरोंमें जिस ध्यानमें अन्यत्व पृथक्त्व है, सो सपृथक्त्व है.

अथ आद्य शुक्लध्यान करके जो शुद्धि होती है, सो कहते हैं. योगी समाधिवान् असा पूर्वोक्त त्रयात्मक पृथक्त्व वितर्क सप्रविचाररूप जो प्रथम शुक्लध्यान है, उसका ध्याता हुआ परम प्रकृष्ट शुद्धिको प्राप्त होता है, सो कैसी शुद्धिको प्राप्त होता ? कि जो शुद्धि मुक्तिरूप लक्ष्मीके मुखके दिखलाने वाली है, तिस शुद्धिको प्राप्त होता है.

अथ इसहीका विशेष स्वरूप कहते हैं. यद्यपि यह शुक्लध्यान प्रतिपाति (पतनशील) उत्पन्न होता है, तोजी अतिविशुद्ध होनेसे औ अति निर्मल होनेसे अगले गुणस्थानमें चढना चाहता है, एतावता अगले गुणस्थानको दौनता है, तथा अपूर्वकरण गुणस्थानस्थ जीव निद्रादिक, देवदिक, पंचेंद्रिय जाति, प्रशस्त विहायोगति, त्रसनवक, वैक्रिय, आहारक तेजस, कर्मण, वैक्रियोपांग, आहारकोपांग, आद्य संस्थान, निर्माण, तीर्थकरनाम, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपधात, पराधात उद्भास. यह वत्ती स कर्म प्रकृतिका व्यवच्छेद होनेसे ठवीश कर्मप्रकृतिका बंध करता है. तथा अंतिम तीन संहनन अरु सम्यक्त्व मोह, इन चारके उदय व्यवच्छेद होनेसे बहत्तरी कर्मप्रकृति वेदता है. अरु १३७ कर्मप्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति क्षपक श्रेणिवालेका आठमा गुणस्थानका स्वरूप ॥

अथ क्षपक अनिवृत्तिनामक नवमे गुणस्थानकमें आरोहण करता हुआ जौनसी कर्मप्रकृति जहां जैसे क्षय करता है, सो कहते हैं. पूर्वोक्त आठमे गुणस्थानसे अनंतर क्षपक मुनि अनिवृत्तिनामक नवमे गुणस्थानमें चढता है, तब तिस नवमे गुणस्थानके नव जाग करता है, तिहां प्रथम जागमें सोलां कर्म प्रकृति क्षय करता है, सो यह है. १ नरक गति, २ नरकानुपूर्वी, ३ तिर्यग्गति, ४ तिर्यचानुपूर्वी, ५ साधारणनाम, ६ उद्योतनाम, ७ सूक्ष्म, ८ त्रिंन्द्रिय जाति, ९ त्रिंन्द्रिय जाति, १० चतुरिन्द्रिय जाति, ११ एकेंद्रियजाति, १२ आतप नाम, १५ स्थानार्द्ध त्रिक, अर्थात् निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्थानार्द्ध, यह त्रिक, १६ स्थावर नाम. यह सोलां कर्म प्रकृतिको नवमे गुणस्थानकके प्रथम जागमें क्षय करता है,

जप्रामो, ध्यानाज्यासोमंत्रन्यासः ॥ १ ॥ हृत्पद्मस्थं जुमध्यस्थं, नास्रस्थं श्वासांतःस्थं ॥ तेजः शुद्धं ध्यानं बुद्धः, ॐ काराख्यं सूर्यप्रज्ञाख्यं ॥ ब्रह्माकाशं शून्याज्यासं, मिथ्याजद्वयं चिताकद्वयं ॥ कायाक्रांतं जायोपेतं ॥ त्यक्त्वा सर्वं मिथ्यागर्वं ॥३॥ गुर्वादिष्टं चिंत तमिष्टं ॥ देहातीतं चित्तव्रतं ॥ त्यक्त्वा द्वंद्वं नित्यानंदं, शुद्धं तत्त्वं जानीहि त्वं ॥४॥ अन्यच्च ॥ ॐ काराज्यासं नं विचित्रकरणेः, प्राणस्य वायोर्ज्ञाया, तेजश्चित्तनमात्मकायकमले, शून्यांतं राखंवनं ॥ त्यक्त्वा सर्वमिदं कलेवरगतं, चिंतामनोविभ्रमं ॥ तत्त्वं पश्यत इदं कद्वयकद्वयनकला, तीतं स्वज्ञावस्थितं ॥ १ ॥ यह सर्व रूढि करकं क्षपकप्रेषि के आनंवर है, परंतु तत्त्वमें मरुदेवादिवत् जावही प्रधान है.

अथ आथ शुक्लध्यानका नाम कहते हैं. मन, वचन, अरु कायाके योग पासे मुनिके प्रथम शुक्ल ध्यानका पाव होता है, सो केसा है ? कि वितर्क कर के सदित जो वत्ते, सो सवितर्क. अरु सहविचार करके जो प्रवत्ते, सो सविचार. तथा सह पृथक्त्वेन वर्तते इति सपृथक्त्व. इन तीनों विशेषणों करके संयुक्त होनेसे सपृथक्त्व, सवितर्क, सप्रविचार नामक प्रथम शुक्लध्यानका नाम है.

अथ विशेषण तीनोंका स्वरूप कहते हैं, यह पूर्वोक्त प्रथम शुक्लध्यान प्रयात्मक क्रमोत्क्रम करके गृहीत विशेष तीन रूप हैं, तहां श्रुतचिंता रूप वितर्क है, तथा अर्थ शब्द योगांतरमें जो संक्रमण करना है, सो विचार है, अरु उच्य गुण पर्यायादि करके जो अन्यपणा है, सो पृथक्त्व है.

अथ इन तीनोंका प्रगट अर्थ कहते हैं, उसमें प्रथम वितर्कका स्वरूप कहते हैं, जिस ध्यानमें अंतरंग ध्वनिरूप वितर्कविचार रूप होवे सो सवितर्कध्यान है, क्योंकि स्वकीय निर्मल परमात्मतत्त्व अनुभवमें अंतरंगनावगन आगमके अवलंबनसे. यह सवितर्क ध्यान है.

अथ सविचार कहते हैं. जिस ध्यानमें सपूर्वोक्त वितर्क विचारणरूप अर्थसे अर्थान्तरमें संक्रम होवे, शब्दसे शब्दान्तरमें संक्रम होवे, योगमें योगांतरमें संक्रम होवे, सो ध्यान, सविचारससंक्रमण कहते हैं.

अथ पृथक्त्वका स्वरूप कहते हैं. जिस ध्यानमें वो पूर्वोक्त वितर्कमविचार अर्थ व्यंजन योगांतर संक्रमणरूपनी शुद्धात्मकी तरें उच्यसे उच्यतमें जाना है, अथवा गुणोंमें गुणान्तरमें जाना है, अथवा पर्यायोंमें पर्यायान्तरमें जाना है, तहां जो सहजान है, सो गुण है, जेमें सुवर्णमें किन

ता पीतता है. अरु जो क्रमभूत है, सो पर्याय है, जैसें सुवर्णमें मुद्रा कुं डलादिक. तिन उच्य गुण पर्यायांतरोंमें जिस ध्यानमें अन्यत्व पृथक्त्व है, सो सपृथक्त्व है.

अथ आद्य शुक्लध्यान करकें जो शुद्धि होती है, सो कहते हैं. योगी समाधिवान् औसा पूर्वोक्त त्रयात्मक पृथक्त्व वितर्क सप्रविचाररूप जो प्रथम शुक्लध्यान है, उसका ध्याता हूआ परम प्रकृष्ट शुद्धिकों प्राप्त होता है, सो कैसी शुद्धिकों प्राप्त होता ? कि जो शुद्धि मुक्तिरूप लक्ष्मीके मुखके दिखलाने वाली है, तिस शुद्धिकों प्राप्त होता है.

अथ इत्तहीका विशेष स्वरूप कहते हैं. यद्यपि यह शुक्लध्यान प्रतिपाति (पतनशील) उत्पन्न होता है, तोभी अतिविशुद्ध होनेसे औ अति निर्मल होनेसे अगले गुणस्थानमें चढना चाहता है, एतावता अगले गुणस्थानकों दौनता है, तथा अपूर्वकरण गुणस्थानस्थ जीव निद्रादिक, देवदिक, पंचेंद्रिय जाति, प्रशस्त विहायोगति, त्रसनवक, वैक्रिय, आहारक तैजस, कर्मण, वैक्रियोपांग, आहारकोपांग, आद्य संस्थान, निर्माण, तीर्थकरनाम, वर्णचतुष्क, अगुरुजघु, उपघात, पराघात उद्वास. यह वत्ती स कर्म प्रकृतिका व्यवच्छेद होनेसे ठबीश कर्मप्रकृतिका बंध करता है. तथा अंतिम तीन संहनन अरु सम्यक्त्व मोह, इन चारके उदय व्यवच्छेद होनेसे बहत्तरी कर्मप्रकृति वेदता है. अरु १३० कर्मप्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति क्षपक श्रेणित्रासेका आठमा गुणस्थानका स्वरूप ॥

अथ क्षपक अनिवृत्तिनामक नवमे गुणस्थानकमें आरोहण करता हूआ जौनसी कर्मप्रकृति जहां जैसें क्षय करता है, सो कहते हैं. पूर्वोक्त आठमे गुणस्थानसे अनंतर क्षपक मुनि अनिवृत्तिनामक नवमे गुणस्थानमें चढता है, तब तिस नवमे गुणस्थानके नव जाग करता है, तिहां प्रथम जागमें सोळां कर्म प्रकृति क्षय करता है, सो यह हैं. १ नरक गति, २ नरकानुपूर्वी, ३ तिर्यग्गति, ४ तिर्यचानुपूर्वी, ५ साधारणनाम, ६ उद्योतनाम, ७ सूक्ष्म, ८ द्वींद्रिय जाति, ९ त्रींद्रिय जाति, १० चतुरिंद्रिय जाति, ११ एकेंद्रियजाति, १२ आतप नाम, १५ स्थानर्द्धि त्रिक, अर्थात् निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्थानर्द्धि, यह त्रिक, १६ स्थावर नाम. यह सोळां कर्म प्रकृतिको नवमे गुणस्थानकके प्रथम जागमें क्षय करता हैं,

तथा अप्रत्याख्यानकी चौकड़ी, अरु प्रत्याख्यानकी चौकड़ी, यह आठ मध्यकी कपायकों दूसरे जागमें दाय करता है, तीसरे जागमें नपुंसकवेद, अरु चौथे जागमें स्त्रीवेद दाय करता है, तथा पांचमे जागमें हास्य, रति, अरति, जय, शोक अरु जुगुप्सा, यह ठे प्रकृतिका दाय करता है. शेष ठे जागमें ले कर नवमे जाग तांइ चारों जागमें क्रमसें शुरू हुआ था ध्यानकी अति निर्मलतासें क्रम करके ठे जागमें पुरुषवेद, सातमे जाग में संज्वलनका क्रोध, आठमे जागमें संज्वलन मान, नवमे जागमें संज्वलनकी मायाकों दाय करता हैं, तथा यह गुणस्थानमें वर्तता हुआ मुनि, हास्य, अरति, जय, जुगुप्सा. इन चारोंके व्यवछेद होनेसें बावीस प्रकृति का बंध करता हैं. अरु हास्य पदकके उदय व्यवछेद होनेसें ठासठ प्रकृतिकों वेदता है, तथा नवमे अंशमें माया पर्यंत प्रकृतियोंके दाय करणसें पैंत्तीस प्रकृतिके व्यवछेद होनेसें एक सौ तीन प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति कपकके नवमे गुणस्थानकका स्वरूप.

अथ कपकके दशमे गुणस्थानका स्वरूप लिखते हैं. पूर्वोक्त नवमे गुणस्थानकसें अनंतर कपकमुनि सूदमसंपरायनामक दशमे गुणस्थानमें चढता है. क्या करता हुआ चढता है? कि कणमात्रसें संज्वलनके स्थूल लोचकों सूदम करता हुआ चढता है, तथा सूदम संपराय गुणस्थानस्थ जीव, पुरुषवेद तथा संज्वलन चतुष्कके बंध व्यवछेद होनेसें सत्तरां प्रकृतिका बंध करता है, अरु तीन वेद, तथा तीन संज्वलन कपायके उदय व्यवछेद होनेसें साठ प्रकृति वेदता है, मायाकी सत्ता व्यवछेद होनेसें एक सौ दो प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति कपकस्य दशमं गुणस्थानं ॥

अथ कपकों इग्यारहवा गुणस्थानक नहीं होता है, किंतु दशमे गुणस्थानमें कपक, सूदमलोचांशोंको सूदमकृत लोचस्वंगोंको दाय करता हुआ बारहमे दीणमोह गुणस्थानमें जाता है. इहां कपकश्रेणि समाप्त करता है. उसका क्रम यह हैं. कि प्रथम अनंतानुबंधी चार दाय करता है, फेर मिथ्यात्व मोहनीय, फेर मिश्रमोहनीय, फेर सज्यक्त्व-मोहनीय, फेर अप्रत्याख्यान चार कपाय, तथा प्रत्याख्यान चार कपाय. एवं आठ दाय करता है. फेर नपुंसकवेद, फेर हास्यपदक, फेर पुरुष वेद, फेर संज्वलन क्रोध, फेर संज्वलन मान, फेर संज्वलन माया, फेर संज्वलन लोच दाय करता है.

अथ तहां बारहमे गुणस्थानमें शुक्लध्यानके दूसरे अंशकों आश्रित करता है, यह बात कहते हैं. अथानंतर सो रूपकदीणमोहरूप हो करके दीणमोह गुणस्थानके मार्गमें परिणतिमान् हो करके, प्रथम शुक्लध्यानकी रीति करके दूसरे शुक्लध्यानको आश्रित होता है, कथञ्चुतः रूपक? वीतरागः विशेष करके "इतो (गतो) रागो यस्मात् स वीतरागः" फेर कैसा है रूपकमुनि? महायति, यथाख्यातचारित्र्यी. फेर कैसा है मुनि? कि शुद्धतर जाव करके संयुक्त ऐसा रूपक, दूसरे शुक्ल ध्यानको आश्रित होता है.

अथ सोइ शुक्लध्यान सनाम विशेषण कहते हैं, सो रूपक दीणमोह गुणस्थानवर्ती, दूसरा शुक्लध्यान एक योग करके ध्याता है ॥ यदाह ॥ एकं त्रियोगजाजा, माद्यं त्यादपरमेकयोगवतां ॥ तनुयोगिनां तृतीयं, नि योगानां चतुर्थं हि ॥ १ ॥ कैसा ध्यान है? कि "अपृथक्त्वं पृथक्त्वं व जितं अविचारं विचार रहितं सवितर्कगुणान्वितं वितर्क मात्र गुण संयुक्त" दूसरा शुक्लध्यान ध्याता है.

अथ अपृथक्त्वका स्वरूप कहते हैं. तत्त्वज्ञाता एकत्व अर्थात् अपृथक्त्वज्ञानको धारण करता है, सो एकत्वपणा क्या है? जो निजात्मद्रव्य एक केवल अपणा द्रव्य विशुद्ध परमात्मद्रव्य है, अथवा तिसही परमात्मद्रव्यका एक केवल पर्याय, अथवा एक केवल गुण, इस प्रकारसे एक द्रव्य, एक गुण, एक पर्याय, निश्चल, चलन वर्जित जहां ध्यावे, सो एकत्व है.

अथ अविचारपणा कहते हैं. इस कालमें सज्जानकोविद अर्थात् शुक्लध्यानका जो जननद्वारा है, सो पूर्वमुनिप्रणीत शास्त्रान्नायविशेषते है, परंतु शुक्लध्यानका अनुजवी इस कालमें कोई नहीं ॥ यदाहुः ॥ श्रीहे मचंद्र सूरिपादाः ॥ श्लोक ॥ अनविज्ञित्यान्नायः, समागतोऽप्येति कीर्त्यते ऽस्माभिः ॥ दुष्करमप्याधुनिकैः, शुक्लध्यानं यथाशास्त्रं ॥ १ ॥ जिनसज्जानकोविदोंने शास्त्रान्नायसे शुक्ल ध्यानका रहस्य जान्या है, तिनोंने अविचार विशेषण संयुक्त दूसरे शुक्लध्यानका स्वरूप कहा है, सो क्या है? जो पूर्वोक्त स्वरूपोंमें व्यंजन अर्थयोगोंमें एतावता शब्दार्थ योग रूपोंमें परावर्त्त विवर्जित शब्दांतर, इत्यादि क्रमसे रहित चिंतन श्रुतानुसारही करियें हैं, सो अविचार है.

तथा अग्रत्याख्यानकी चौकड़ी, अरु प्रत्याख्यानकी चौकड़ी, यह आठ मध्यकी कपायकों दूसरे जागमें दाय करता है, तीसरे जागमें नपुंसकवेद, अरु चौथे जागमें स्त्रीवेद दाय करता है, तथा पांचमे जागमें हास्य, रति, अरति, जय, शोक अरु जुगुप्सा, यह छे प्रकृतिका दाय करता है. शेष ठेठे जागसें ले कर नवमे जाग तांड़ चारों जागमें क्रमसें शुद्ध हूवा यका ध्यानकी अति निर्मलतासें क्रम करके ठेठे जागमें पुरुषवेद, सातमे जाग में संज्वलनका क्रोध, आठमे जागमें संज्वलन मान, नवमे जागमें संज्वलनकी मायाको दाय करता हैं, तथा यह गुणस्थानमें वर्त्तता हुआ मुनि, हास्य, अरति, जय, जुगुप्सा. इन चारोंके व्यवष्टेद होनेसें बावीस प्रकृतिका बंध करता हैं. अरु हास्य पट्टकके उदय व्यवष्टेद होनेसें ठासठ प्रकृतिकों वेदता है, तथा नवमे अंशमें माया पर्यंत प्रकृतियोंके दाय करणसें पैंतीस प्रकृतिके व्यवष्टेद होनेसें एक सौ तीन प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति दायकके नवमे गुणस्थानकका स्वरूप.

अथ दायकके दशमे गुणस्थानका स्वरूप लिखते हैं. पूर्वोक्त नवमे गुणस्थानकसें अनंतर दायकमुनि सूदमसंपरायनामक दशमें गुणस्थानमें चढता है. क्या करता हुआ चढता है? कि दायमात्रसें संज्वलनके स्मृष्ट खोनकों सूदम करता हुआ चढता है, तथा सूदम संपराय गुणस्थानस्य जीव, पुरुषवेद तथा संज्वलन चतुष्कके बंध व्यवष्टेद होनेसें सत्तरां प्रकृतिका बंध करता है, अरु तीन वेद, तथा तीन संज्वलन कपायके उदय व्यवष्टेद होनेसें साठ प्रकृति वेदता है, मायाकी सत्ता व्यवष्टेद होनेसें एक सौ दो प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति दायकम्य दशमं गुणस्थानं ॥

अथ दायकों इग्यारहवा गुणस्थानक नहीं होता है, किंतु दशमे गुणस्थानमें दायक, सूदमखोनांशोंको सूदमकृत खोनखोंको दाय करना हुआ बारहमे दीणमोह गुणस्थानमें जाता है. इहां दायकश्रेणि समाप्त करता है. उसका क्रम यह हैं. कि प्रथम अन्नानुबन्धी चार दाय करता है, फेर मिथ्यात्व मोहनीय, फेर मिथ्रमोहनीय, फेर सन्यक्त्य मोहनीय, फेर अग्रत्याख्यान चार कपाय, तथा प्रत्याख्याने चार कपाय. एवं आठ दाय करता है. फेर नपुंसकवेद, फेर हास्यपट्टक, फेर पुरुष वेद, फेर संज्वलन क्रोध, फेर संज्वलन मान, फेर संज्वलन माया, फेर संज्वलन खोन दाय करता है.

अथ तहां बारहमे गुणस्थानमें शुक्लध्यानके दूसरे अंशकों आश्रित करता है, यह बात कहते हैं. अथानंतर सो रूपकक्षीणमोहरूप हो करके क्षीणमोह गुणस्थानके मार्गमें परिणतिमान् हो करके, प्रथम शुक्लध्यानकी रीति करके दूसरे शुक्लध्यानको आश्रित होता है, कथञ्चुतः रूपक? वीतरागः विशेष करके “इतो (गतो) रागो यस्मात् स वीतरागः” फेर कैसा है रूपकमुनि? महायति, यथाख्यातचारित्री. फेर कैसा है मुनि? कि शुद्धतर जाव करके संयुक्त ऐसा रूपक, दूसरे शुक्ल ध्यानको आश्रित होता है.

अथ सोइ शुक्लध्यान सनाम विशेषण कहते हैं, सो रूपक क्षीणमोह गुणस्थानवर्ती, दूसरा शुक्लध्यान एक योग करके ध्याता है ॥ यदाह ॥ एकं त्रियोगनां जा, मायं स्यादपरमेकयोगवतां ॥ तनुयोगिनां तृतीयं, नि योगानां चतुर्थं हि ॥ १ ॥ कैसा ध्यान है? कि “अपृथक्त्वं पृथक्त्वं व र्जितं अविचारं विचार रहितं सवितर्कगुणान्वितं वितर्क मात्र गुण संयुक्त” दूसरा शुक्लध्यान ध्याता है.

अथ अपृथक्त्वका स्वरूप कहते हैं. तत्त्वज्ञाता एकत्व अर्थात् अपृथक्त्वज्ञानको धारण करता है, सो एकत्वपणा क्या है? जो निजात्मद्रव्य एक केवल अपणा द्रव्य विशुद्ध परमात्मद्रव्य है, अथवा तिसही परमात्म द्रव्यका एक केवल पर्याय, अथवा एक केवल गुण, इस प्रकारसे एक द्रव्य, एक गुण, एक पर्याय, निश्चल, चलन वर्जित जहां ध्यावे, सो एकत्व है.

अथ अविचारपणा कहते हैं. इस कालमें सज्जानकोविद अर्थात् शुक्लध्यानका जो जननहारा है, सो पूर्वमुनिप्रणीत शास्त्रान्नायविशेषसे है, परंतु शुक्लध्यानका अनुजवी इस कालमें कोई नहीं ॥ यदाहुः ॥ श्रीहे मचंद्र सूरिपादाः ॥ श्लोक ॥ अनविधित्याम्नायः, समागतोऽस्येति कीर्त्यते ऽस्मान्निः ॥ दुष्करमप्याधुनिकैः, शुक्लध्यानं यथाशास्त्रं ॥ १ ॥ जिनसज्जानकोविदोंने शास्त्रान्नायसे शुक्ल ध्यानका रहस्य जान्या है. तिनोंने अविचार विशेषण संयुक्त दूसरे शुक्लध्यानका स्वरूप कहा है, सो क्या है? जो पूर्वोक्त स्वरूपोंमें व्यंजन अर्थयोगोंमें एतावता शब्दार्थ योग रूपोंमें परावर्त्त विवर्जित शब्दांतर, इत्यादि क्रमसे रहित चिंतन श्रुतानुसारही करिये हैं, सो अविचार है.

अथ सवितर्क कहते हैं, सवितर्क एक गुणसंयुक्त दूसरा शुक्लध्यान किससेंति होता है? तहां कहें हैं, कि जावश्रुतके आलंबनसें होता है. सूक्ष्म अंतर्जल्परूप जावगत अवलंबनमात्र चिंतनसें होता है.

अथ शुक्लध्यानजनित समरसी जाव कहते हैं. इस पूर्वोक्त प्रकार करके एकत्वविचार सवितर्करूप तीन विशेषण संयुक्त दूसरा शुक्लध्यान कहा, तिस दूसरे शुक्लध्यानमें वर्तता हुआ ध्यानी समरसी जावको धारण करता है, सो यह समरसी जाव जो है, सो तदेकशरण मान्या है, कारण कि आत्मा जो अपृथक्त्व करके परमात्मामें लीन करीये, सोइ समरस जावका धारण करणां है, समरस किससेंति करे? कि आत्माके अनुज्ञवसें करे.

अथ क्षीणमोहगुणस्थानके उँहने क्या करता है? सो कहते हैं. इस पूर्वोक्त ध्यानके योगसें और दूसरे शुक्लध्यानके योगसें प्युष्यत कर्मधनोत्कर दद्यमान है, कर्मरूप इंधनका समूह, ओसा योगीन्द्र अंतके प्रथम समय अर्थात् बारहवें गुणस्थानके दूसरे चरम समयमें निजा अरु प्रपला, इन दो प्रकृतिका दाय करता है.

अथ अंत समयमें जो करता है, सो कहते हैं. क्षीणमोह गुण स्थानके अंत समयमें १ चक्षुदर्शन, २ अचक्षुदर्शन, ३ अयधिदर्शन, ४ केय सदर्शन. यह चार दर्शनावरणीय तथा पंचविध ज्ञानावरण, तथा पंचविध अंतराय, यह चौदह प्रकृतिका दाय करके क्षीणमोहांश हो करके केवल स्वरूप होता है. तथा क्षीणमोह गुणस्थानस्य जीव, दर्शनचतुष्क, अरु ज्ञानांतरायदशक, उच्चैर्गोत्र, यशनाम. यह सोळां प्रकृतिका पंधद्वय वश्रेद होनेमें एक शातावेदनीका बंध करता है, तथा १ संज्वलनका सो ज, २ क्षयननाराचमंघयण, इनके उदय विश्रेद होनेसें सत्तायन प्रकृति वेदता है. तथा संज्वलनके लोतकी सत्ता हर होनेसें एक सो एक प्रकृति की सत्ता है. इति दायकस्य छादश गुणस्थानकस्वरूपं ॥ १२ ॥

अथ क्षीणमोहांत प्रकृतियोंकी संख्या कहते हैं चौथे गुणस्थानसें से कर दाय होती हुई त्रैसष्ठ प्रकृति, क्षीणमोहमें संपूर्ण नइ है, सो कहते हैं. एक प्रकृति चौथे गुणस्थानमें दाय हुई, एक पांचमें, आठ सातमें, उचीस नवमें, सत्तरे बारहमें. यह सय त्रैसष्ठ नइ. तथा शेष पंचासी

प्रकृति पुराणे वस्त्रकी तरें (अत्यंत जीर्णवस्त्रसमान) तेरहवे सयोगी केवली गुणस्थानमें रहती हैं.

अथ सयोगी केवलीके जो जाव होता है, अरु जो सम्यक्त्व चारित्र होता है, सो कहते हैं. तिस केवल आत्मा जगवतको इहां सयोगी गुणस्थानमें जाव तो द्वायिक शुद्ध (निर्मल) होता है, औ सम्यक्त्व परम प्रकृष्ट द्वायिक होता है, तथा चारित्र द्वायिक यथाख्या तनामक होता है, इसका तात्पर्य यह है, कि उपशम अरु द्वायोपशमिक यह दो जाव नहीं होते हैं.

अथ तिसकेवलात्मकों केवल कहते हैं. तिस केवल रूप सूर्यके प्रकाश करके चराचर जगत् हस्तामलक उपमावत् (हस्त तलेमें ग्रहण करा आम लेकी तरें) प्रत्यक्ष (साक्षात्कार) करके जासन करते हैं. इहां प्रकाशमान सूर्यकी उपमा जो कही है, सो व्यवहार मात्र कही है, नतु निश्चयसेंति कही है, कारण कि निश्चय करके तो केवलज्ञानका अरु सूर्यका बना अंतर है.

अथ जिसने तीर्थकरनाम उपाज्या है, तिसका विशेष कहते हैं. विशेष करके अर्हत् जक्ति प्रमुख वीश पुण्यके स्थानक जो जीव, आराधन करता है, सो तीर्थकरनामकर्म उपार्जन करता है. सो वीश स्थानक यह है ॥ गाथा ॥ अरिहंत सिद्ध पवयण, गुरु धेर बहुस्सुए तवस्ती ॥ वड लयाइ एसु, अजिस्सुणं एो वडग्गेय ॥ १ ॥ दंसण विणए आव, स्सए सीलवए निरइयारे ॥ खणलवच्चियाए, वेयावच्चे समाहीयं ॥ २ ॥ अपुव नाण गगहणं, सुयजत्ती पवयण पजावण्या ॥ एहिं कारणेहिं, तिच्चयरत्तं लहइ जीवो ॥ ३ ॥ इनका अर्थ आगे लिखेंगे, तिस वास्ते इहां सयोगी गुणस्थानमें तीर्थकर कर्मोदयसें वो केवली (त्रिजगत्पति) त्रिजुवनपति जिनेंद्र होता है. जिन सामान्य केवलीयोंको कहते हैं, तिनमें जो इंद्र की तरें होवे, सो जिनेंद्र जाननां.

अथ तीर्थकरकी महिमा कहते हैं, सो जगवान् तीर्थकर पूर्वोक्त च उत्तीस अतिशय करके संयुक्त होता है, औ सर्व देवता जिसको नमस्कार करते हैं, तथा सकल देव मानवोंने जिसको नमस्कार करा है, सो सर्वोत्तम, औ सकल शासनोमें प्रधान, ऐसा तीर्थप्रवर्तन प्रगट करता हुआ उल्लेख देशोन पूर्वकोटि लग विद्यमान रहता है.

अथ सवितर्क कहते हैं, सवितर्क एक गुणसंयुक्त दूसरा शुक्लध्यान किससेंति होता है? तहां कहें हैं, कि जावश्रुतके आलंबनसें होता है. सूक्ष्म अंतर्जल्परूप जावगत अवलंबनमात्र चिंतनसें होता है.

अथ शुक्लध्यानजनित समरसी जाव कहते हैं. इस पूर्वोक्त प्रकार करके एकत्वविचार सवितर्करूप तीन विशेषण संयुक्त दूसरा शुक्लध्यान कहा, तिस दूसरे शुक्लध्यानमें वर्त्तता हुआ ध्यानी समरसी जावको धारण करता है, सो यह समरसी जाव जो है, सो तदेकशरण मान्या है, कारण कि आत्मा जो अपृथक्त्व करके परमात्मामें लीन करीये, सोइ समरस जाव धारण करणां है, समरस किससेंति करे? कि आत्माके अनुभवसें क

अथ क्षीणमोहगुणस्थानके ठेंहके क्या करता है? सो कहते हैं. इस पूर्वोक्त ध्यानके योगसें और दूसरे शुक्लध्यानके योगसें प्युष्यत कर्मफल कर दह्यमान है, कर्मरूप इंधनका समूह, ऐसा योगीन्द्र अंतके प्रथम समय अर्थात् बारहवें गुणस्थानके दूसरे चरम समयमें निद्रा अर्थात् चला, इन दो प्रकृतिका कय करता है.

अथ अंत समयमें जो करता है, सो कहते हैं. क्षीणमोह गुण स्थानके अंत समयमें १ चक्षुदर्शन, २ अचक्षुदर्शन, ३ अवधिदर्शन, ४ क्लेशदर्शन, यह चार दर्शनावरणीय तथा पंचविध ज्ञानावरण, तथा पंचविध अंतराय, यह चौदह प्रकृतिका कय करके क्षीणमोहांश हो कां केवल स्वरूप होता है. तथा क्षीणमोह गुणस्थानस्थ जीव, दर्शनचतुष्क, अरु ज्ञानांतरायदशक, उच्चैर्गोत्र, यशनाम. यह सोलां प्रकृतिका बंधव बधेद होनेसें एक शातावेदनीका बंध करता है, तथा १ संज्वलनका लोचन, २ रूपजनाराचसंघयण, इनके उदय विष्टेद होनेसें सत्तावन प्रकृति वेदता है. तथा संज्वलनके लोचकी सत्ता दूर होनेसें एक सौ एक प्रकृतिकी सत्ता है. इति कपकस्य द्वादश गुणस्थानकस्वरूप ॥ ११ ॥

अथ क्षीणमोहांत प्रकृतियोंकी संख्या कहते हैं चौथे गुणस्थानसें छे कर कय होती दुइ त्रेसठ प्रकृति, क्षीणमोहमें संपूर्ण जइ है, सो कहते हैं. एक प्रकृति चौथे गुणस्थानमें कय दुइ, एक पांचमें, आठ सातमें, उत्तीस नवमें, सत्तरे बारहमें. यह सर्व त्रेसठ जइ. तथा शेष पंचासी

प्रकृति पुराणे ब्रह्मकी तरें (अत्यंत जीर्णवस्त्रसमान) तैरहवे सयोगी केवली गुणस्थानमें रहती हैं.

अथ सयोगी केवलीके जो जाव होता है, अरु जो सम्यक्त्व चारित्र होता है, सो कहते हैं. तिस केवल आत्मा जगवतको इहां सयोगी गुणस्थानमें जाव तो दायिक शुद्ध (निर्मल) होता है, औ सम्यक्त्व परम प्रकृष्ट दायिक होता है, तथा चारित्र दायिक यथाख्यातनामक होता है, इसका तात्पर्य यह है, कि उपशम अरु दायोपशमिक यह दो जाव नहीं होते हैं.

अथ तिस केवलात्मको केवल कहते हैं. तिस केवल रूप सूर्यके प्रकाश करके चराचर जगत् हस्तामलक उपमावत् (हस्त तलेमें ग्रहण करा आम लेकी तरें) प्रत्यक्ष (साक्षात्कार) करके जासन करते हैं. इहां प्रकाशमान सूर्यकी उपमा जो कही है, सो व्यवहार मात्र कही है, नतु निश्चयसंति कही है, कारण कि निश्चय करके तो केवलज्ञानका अरु सूर्यका बना अंतर है.

अथ जिसने तीर्थकरनाम उपाज्या है, तिसका विशेष कहते हैं. विशेष करके अर्हत् जक्ति प्रमुख वीश पुण्यके स्थानक जो जीव, आराधन करता है, सो तीर्थकरनामकर्म उपाजन करता है. सो वीश स्थानक यह है ॥ गाथा ॥ अरिहंत सिद्ध पवयण, गुरु थेर बहुस्तुष्ट तवस्ती ॥ बढ लयाइ एसु, अजिस्करणं णो वउग्गेय ॥ १ ॥ इंसण विणए आव, स्तए सीलवए निरइयारे ॥ खणलवच्चियाए, वेयावच्चे समाहीयं ॥ २ ॥ अपुव नाण गगहणं, सुयजत्ती पवयण पजावणया ॥ एहिं कारणेहिं, तिठयंरत्तं लहइ जीवो ॥ ३ ॥ इनका अर्थ आगे खिखेंगे, तिस वास्ते इहां सयोगी गुणस्थानमें तीर्थकर कर्मोदयसे वो केवली (त्रिजगत्पति) त्रिचुवनपति जिनेंद्र होता है. जिन सामान्य केवलीयोंको कहते हैं, तिनमें जो इन्द्र की तरें होवे, सो जिनेंद्र जाननां.

अथ तीर्थकरकी महिमा कहते हैं, सो जगवान् तीर्थकर पूर्वोक्त च उत्तीत अतिशय करके संयुक्त होता है, औ सर्व देवता जिसको नमस्कार करते हैं, तथा सकल देव मानवोंने जिसको नमस्कार करा है, सो सर्वोत्तम, औ सकल शासनोमें प्रधान, ऐसा तीर्थप्रवर्तन प्रगट करता हुआ उच्छिष्ट देशोन पूर्वकोटि-लग विद्यमान रहता है.

अथ सवितर्क कहते हैं, सवितर्क एक गुणसंयुक्त दूसरा शुक्लपान किससेंति होता है? तहां कहें हैं, कि जावश्रुतके अवलंबनसें होता है. सूक्ष्म अंतर्जडपरूप जावगत अवलंबनमात्र चिंतनसें होता है.

अथ शुक्लध्यानजनित समरसी जाव कहते हैं. इस पूर्वोक्त प्रकार रकें एकत्वविचार सवितर्करूप तीन विशेषण संयुक्त दूसरा शुक्लध्यान है, तिस दूसरे शुक्लध्यानमें वर्तता हुआ ध्यानी समरसी जावकों धारण करता है, सो यह समरसी जाव जो है, सो तदेकशरण मान्या है, कारण कि आत्मा जो अपृथक्त्व करके परमात्मामें लीन करीये, सोइ समरस जावका धारण करणां है, समरस किससेंति करे? कि आत्माके अनुभवसें करे.

अथ क्षीणमोहगुणस्थानके ठेंहके क्या करता है? सो कहते हैं. इन पूर्वोक्त ध्यानके योगसें और दूसरे शुक्लध्यानके योगसें प्लुप्यत कर्मभंगोत्कार दद्यमान है, कर्मरूप इंधनका समूह, ऐसा योगीन्द्र अंतके प्रथम समय अर्थात् बारहवें गुणस्थानके दूसरे चरम समयमें निजा अंत प्रपञ्चा, इन दो प्रकृतिका दाय करता है.

अथ अंत समयमें जो करता है, सो कहते हैं. क्षीणमोह गुण स्थानके अंत समयमें १ चक्षुदर्शन, २ श्रवणदर्शन, ३ श्रवणधिवर्शन, ४ कोणदर्शन, यह चार दर्शनावरणीय तथा पंचविध ज्ञानावरण, तथा पंचविध अंतराय, यह चौदह प्रकृतिका दाय करके क्षीणमोहांश हो कर्तव्य केवल स्वरूप होना है. तथा क्षीणमोह गुणस्थानस्थ जीव, दर्शनचतुष्टय, श्रुत ज्ञानांतरायदशक, उद्योगोत्र, यशनाम. यह सोळां प्रकृतिका बंधन बन्धेद होनेसें एक शातावेदनीका बंध करता है, तथा १ संज्वसनका शोचन, २ रूपजनाराचमंघरण, इनके उदय विभेद होनेमें सत्तायन प्रवृत्ति वेदता है. तथा संज्वसनके शोचनकी सत्ता छूर होनेसें एक सौ एक प्रवृत्तिकी सत्ता है. इति दायकस्य द्वादश गुणस्थानकस्वरूपं ॥ १२ ॥

अथ क्षीणमोहांत प्रकृतियोंकी संख्या कहते हैं चौथे गुणस्थानमें ६ कर दाय होती दुइ प्रेसठ प्रकृति, क्षीणमोहमें संपूर्ण नष्ट है, सो कहते हैं. एक प्रकृति चौथे गुणस्थानमें दाय दुइ, एक पांचमें, आठ सातमें, उचीत नवमें, सत्तर बारहमें. यह सर्व प्रेसठ नष्ट. तथा शेष पंचांश

प्रकृति पुराणे वक्त्रकी तरें (अत्यंत जीर्णवस्त्रसमान) तेरहवे सयोगी केवली गुणस्थानमें रहती हैं.

अथ सयोगी केवलीके जो भाव होता है, अरु जो सम्यक्त्व चारित्र होता है, सो कहते हैं. तिस केवस आत्मा जगवतको इहां सयोगी गुणस्थानमें भाव तो कायिक शुद्ध (निर्मल) होता है, ओ सम्यक्त्व परम प्रकृष्ट कायिक होता है, तथा चारित्र कायिक यथाव्याप्तनामक होता है. इसका तात्पर्य यह है, कि उपशम अरु कायोपशमिक यह दो भाव नहीं होते हैं.

अथ तिसकेवसात्मको केवस कहते हैं. तिस केवस रूप सूर्यके प्रकाश करके चराचर जगत् हस्तात्मक उपभावत् (इत्त तउमें ग्रहण करा आन लेकी तरें) प्रत्यक्ष (साक्षात्कार) करके भासन करते हैं. इहां प्रकाशमान सूर्यकी उपमा जो कही है, सो व्यवहार मात्र कही है. ननु निश्चयतैति कही है, कारण कि निश्चय करके तो केवसज्ञानका अरु सूर्यका वना अंतर है.

अथ जितने तीर्थकरनाम उपार्ज्या हैं. तिसका विशेष कहते हैं. विशेष करके अर्हत् रज्जि प्रमुख वीर पुत्रके स्थानक जो जीव, आराधन करता है, सो तीर्थकरनामकने उपार्जन करता है. सो वीर स्थानक यह है ॥ गाथा ॥ अरिहंत सिद्ध पवयण. गुरु धेर बहुस्तुष्ट तवस्ती ॥ वक्र उपाइ एतु. अजित्कणं एो वडंगेय ॥ १ ॥ इत्तए विणए आव, स्तए तीजवए निरउयारे ॥ खण्डवडियाए, वेयावडे सनाहीपं ॥ २ ॥ अणुव नाए गहणं, सुयज्जी पवयण पढावयया ॥ एहिं कारखेहिं. तिठयरत्तं लहइ जीवो ॥ ३ ॥ इनका अर्थ आगे दितेंगे, तिस वाले इहां सयोगी गुणस्थानमें तीर्थकर कर्मादयतें वो केवली (त्रिजगत्प्रति) त्रिभुवनरति जिनेइ होता है. जिन तानान्य केवलीयोंको कहते हैं. तिनमें जो इंद्र की तरें आवे, सो जिनेइ जाननां.

अथ तीर्थकरकी सहिना कहते हैं, सो जगवान् तीर्थकर पूर्वोक्त व उचीत अतिशय करके संयुक्त होता है. ओ सब देवता जितको नन स्कार करते हैं, तथा सकल देव मानवोंने जितको ननस्कार करा है, सो सर्वोत्तम, ओ सकल शासनोंने प्रवान, अंता तीर्थप्रवर्तन प्रगट करता हुआ उल्लुप्त देशोन पूर्वकोटि लग विद्यमान रहता है.

अथ सो तीर्थंकर नामकर्म जेसं वेदनेमें आता है, तेसं कहते हैं तिस तीर्थंकरनें सो तीर्थंकर नामकर्म जोगीयें हैं, क्या करनेसें? सो कहते हैं. पृथ्वीमंडलमें जव्यजीवोंके प्रतिबोधनेसें, देशविरति औ सर्वविरति करनेसें, तीर्थंकर नामकर्म वेदनेमें आता है. जे कर तीर्थंकर नामकर्म का उदय न होवे, तब कृतकृत्य होनेसें जगवान्‌कों उपदेश देनेका क्या प्रयोजन है? इस वास्ते जे वादी जगवान्‌कों निःशरीरी नैरुपाधिक मुक्त रहित सर्वव्यापी मानते हैं, सो देहादिकके अज्ञावसें धर्मका उपदेश नहीं हो सका है, जे कर उपाधि रहित सर्वव्यापी परमेश्वरजी उपदेश नहीं होवे, तब तो अब इस कालमें अस्मदादिकोंको क्यों नहीं उपदेश करते हैं? क्योंकि पूर्वकालमें अग्नि आदिक ऋषियोंको उसने प्रेरा, तथा ब्रह्मदि द्वारा चार वेदका उपदेश करा. तथा मूसा, ईसा द्वारा जगत्‌कों उपदेश करा, तो फेर अब क्यों नहीं उपदेश करता? परोपकारीके क्या डीछ है? जे कर कहोगेकि इस कालमें सर्व जीव उपदेश मानने योग्य नहीं है, इस वास्ते उपदेश नहीं देता, तब तो पूर्वकालमेंजी सर्व जीवोंने परमेश्वर का उपदेश नहीं माना है. प्रथम तो काळासुर प्रमुख अनेक जीवोंने नहीं माना, दूसरा अजाजीलने नहीं माना, औ यहूदाने, तथा कितनेक इसराइलियोंने नहीं माना, इस वास्ते पूर्वकालमेंजी परमेश्वरको उपदेश देना योग्य नहीं था. जे कर कहोगेकि उसकी ओही जाने क्यों कर उपदेश दीया अरु अब किस वास्ते उपदेश नहीं देता. तो फेर तुम क्यों कर कहते हो कि परमेश्वरके मुख नहीं? इस वास्ते यही सत्य है, कि जो तीर्थंकर नामकर्मके वेदने वास्ते जगवान्‌ उपदेश करते हैं, अरु जिस वखत उपदेश करते हैं उस वखत देहधारी होते हैं. इत्यलं प्रसंगेन॥ केवली केवलज्ञानवान्‌ पृथ्वीमंडलमें उत्कृष्ट आठ वर्षे ऊणा पूर्वकोटि प्रमाण विचरता है, औ देवताओंके करे हूण कंचनकमलोंके उपरि पारख कर चाखता है, अरु आठ प्रत्याहार करके संयुक्त अनेक सुरासुर कोटि संसेवित विचरता है. यह स्थिति सामान्य प्रकारं केवलीयोंकी कही है, अरु जिनेंछ तों मध्यस्थिति वासा होता है.

अथ केवलि समुद्घातकरण कहते हैं. “असौ” वो केवली जब वेदनी कर्मसेंती, आयुःकर्मकी स्थिति थोड़ी जानता है, तब तिसके तुल्य,

करने वास्ते केवली, समुद्धात करता है, तिस समुद्धातका स्वरूप कहते हैं, तहां प्रथम समुद्धात पदका अर्थ कहते हैं, यथास्वजावस्थित आत्म प्रदेशोंको वेदनादि सात कारणों करके समंतात् उदधातनं स्वजावसें अन्यजावपणे परिणमन करनां, तिसका नाम समुद्धात है. सो समुद्धात सात प्रकारें है. १ वेदनास०, २ कपायस०, ३ मरणस०, ४ वैक्रियस०, ५ तेजःस०, ६ आहारकस०, ७ केवलिस०, इन सातों समुद्धातोंमेंसूं केवलि समुद्धात इहां ग्रहण करणी. तिस केवलिसमुद्धातके अर्थ केवली जग बान् आयु अरु वेदनी कर्मके सम करने वास्ते प्रथम समयमें आत्मप्र देशों करके ऊर्ध्वलोकांत लागि दंमत्व (दंमाकार) लावे आत्मप्रदेश क रता है. दूसरे समयमें पूर्व, पश्चिम, दिशामें आत्मप्रदेशों करके कपाटा कार करता है, तीसरे समयमें उत्तर, दक्षिण, आत्मप्रदेशोंका मंथाना कार करता है, चौथे समयमें अंतर पूर्ण करनेसें सय लोक व्यापी होता है. इस तरे केवली, चौथे समय विश्वव्यापी होता है.

अथ इहांसें निवृत्ति कहते हैं. इस प्रकार करके केवली आत्मप्रदेशों को विस्तार करनेके प्रयोगसें कर्मलेशकों सम करता है. सम करके पीछें तिस समुद्धातसें उलटा निवर्त्तता है, सो ऐसें है, कि केवली चार स मयमें जगत् पूर्ण करके पांचमे समय पूर्णसें निवर्त्तता है. ठठे समयमें मंथानपणा छूर करता है, सातमे समयमें कपाट छूर करता है, आठमे समयमें दंमत्व उपसंहार करता दूआ स्वजावस्थ होता है ॥ यदाहुर्वाच कमुर्याः ॥ दंडं प्रथमे समये, कपाटमथ चोत्तरे तथा समये ॥ मंथानम थ तृतीये, लोकव्यापी चतुर्थे तु ॥ १ ॥ संहरति पंचमे त्वं, तराणि मंथा नमथ पुनः षष्ठे ॥ सप्तमेके तु कपाटं, संहरति तथाऽष्टमे दंमं ॥ २ ॥

अथ केवली समुद्धात करता दूआ जैसा योगवान्. अरु अनाहारक होता है, सो कहते हैं. केवली समुद्धात करता दूआ प्रथम अरु अंत समयमें आहारिककाय योगवाला होता है. दूसरे, अरु ठठे समयमें मि ध्दाहारिककाय योगी होता है. निश्रपणा इहां कर्मण करके आहारिकका है. तथा तीसरे, चौथे, अरु पांचमे समयोंमें केवल कर्मणकाय योगवाला होता है. जिन समयोंमें केवली केवल कर्मण काययोग वाला होता है, तिनही समयोंमें अनाहारक होता है.

अथ जौनसा केवली समुद्धात करता है, अरु जौनसा नहीं करता है, सो कहते हैं. जिसकी ठे महीनेसँ अधिक आयु शेष है, जे कर उ सकों केवल ज्ञान होवे, वोतो निश्चय समुद्धात करे, अरु जिसकी ठे महीनेके जीतर आयु होवे, उसकों जो केवल ज्ञान होवे, तो जजना है. वो केवल समुद्धात करेजी, अरु नहींजी करे ॥ यदाह ॥ ठम्मासाऊ सेसा, उप्पन्नं जेसिं केवलं नाणं ॥ ते नियमा समुग्घाड्य, सेसा समुग्घाय जड्यव्वाः।

अथ समुद्धातसँ निवृत्त हो करकें जो कुठ करता है, सो कहते हैं. वो मन, वचन, अरु काययोगवान् केवली, केवल समुद्धातसँ निवृत्त हो कर योग निरोधनके वास्ते शुक्लध्यानका तीसरा पाद ध्याता है, सोइ तीसरा शुक्लध्यान कहते हैं. तिस अवसरमें तिस केवलीकों तीसरा सूक्ष्म क्रिया निवृत्तिक नाम शुक्लध्यान होता है. सो कंपनरूप जो क्रिया है, तिसकों सूक्ष्म करता है.

अथ मन, वचन, कायाके योगोंकों जैसे सूक्ष्म करता है, सो कहते हैं. सो केवली, सूक्ष्मक्रियानिवृत्तिनामक तीसरा शुक्लध्यान ध्याता, अर्चितात्मवीर्यकी शक्ति करकें वादरकाययोग स्वभावमें स्थित करकें वादरवचन योग वादर मनोयोग, यह युगलकों सूक्ष्म करता है, तिस पीठें वादरकाय योगको सूक्ष्म करता है, फेर सूक्ष्मकाययोगमें क्षण मात्र रह करकें तत्काल सूक्ष्म वचन, मनोयोग, यह युगलका अपचय करता है. तिस पीठें सूक्ष्म काययोगमें क्षण मात्र रह कर प्रगट सो केवली निजात्मानुजव सूक्ष्मक्रिया चिह्नूपकों स्वयमेवही अपने स्वरूपका अनुजव करता है, (जानता है.)

अथ जो सूक्ष्मक्रियावाले शरीरकी स्थिति है. सोइ केवलीयोंका ध्यान होता है, ऐसेी बात कहते हैं. जिस प्रकार करकें उग्रस्थ योगीयों के मनके स्थिरताकों ध्यान कहते हैं, तैसेही शरीरकी निश्चलताकों केवलीयों के ध्यान होता है. अथ शैलेशीकरणका आरंज करने वाला सूक्ष्मकाय योगी जो कुठ करता है, सो कहते हैं. केवलीके ह्रस्वाक्षर पांचके उच्चारण करण मात्र काख जितना आयु शेष रहता है, तब शैलवत् निश्चल कायकों चौथा ध्यानाऽपरिपातरूप शैलेशीकरता होता है. तिस पीठें सो केवली शैलेशीकरणरंजी सूक्ष्मरूप काय योगमेर दृता दुआ शीघ्रही अ योगी गुणस्थानमें जाणेकी इछा करता है.

अथ सो जगवान् केवली सयोगी गुणस्थानके अंश समयमें औदारिक, अस्थिरछिक, विहायोगतिछिक, प्रत्येक त्रिक, संस्थान षट्क, अशु रुलघुचतुष्क, वर्णादिचतुष्क, निर्माण, तेजस, कर्मण, प्रथम संहनन, स्वरछिक, एकतर वेदनीय. यह तीस प्रकृतिका उदय विच्छेद होता हैं. तब तो इहां अंगोपांगके उदय व्यवच्छेद होनेसे अंश्यांग संस्थानावगाहनासे तीसरे जाग ऊणी अवगाहना करता है, किस कारणसे? अपने प्रदेशोंको घनरूप करनेसे चरम शरीरके अंगोपांगमें जो नासिकादि छिड़ हैं, तिनको पूर्ण करता है, तब स्वात्मप्रदेशोंका घनरूप हो जाता है, तिस वास्ते स्वप्रदेशोंका घनरूप होनेसे तीसरा जाग ऊना होता है. सयोगी गुणस्थान स्थ जीव, एकविध बंधक उपांश समय तांश् अरु ज्ञानांतराय, दर्शन च तुष्कोदय व्यवच्छेद होनेसे वेतालीत प्रकृति वेदता है, तथा १ निद्रा, २ प्रचला, १२ ज्ञानांतराय दशक, १६ दर्शनचतुष्क रूप सोलां प्रकृतियोंकी सत्ता व्यवच्छेद होनेसे पंचासी प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति सयोगी गुणस्थानं ॥ १३ ॥

अथ अयोगी गुणस्थानककी स्थिति कहते हैं. तेरहवे गुणस्थानके अनंतर चौदहवे अयोगी गुणस्थानमें रहते हुए जिनेंद्रकी लघु पंचाक्षर उच्चारणमात्र “अ इ उ ऋ ॠ” ये पांच वर्ण उच्चारण करतां जितना काल लगता है, तितनी स्थिति है. यह अयोगी गुणस्थानमें ध्यानका संज्ञक कहते हैं. इहां अनिवृत्ति नामक चौथा ध्यान होता है, इस चौथे ध्यानका स्वरूप कहते हैं. जिस ध्यानमें सूक्ष्मकाययोग रूप क्रियाजी “समुच्चिन्ना” सर्वथा निवृत्त हुई है, सो समुच्चिन्नक्रियं नाम “चतुर्थ” चौथा ध्यान कहते हैं, कैसा वो ध्यान है? कि मुक्ति महिषका द्वार (दरवाजे) समान है.

अथ शिष्यके करे दो प्रश्न कहते हैं, शिष्य पूछता है कि हे प्रभु! देहके होते हूआं अयोगी क्यों कर हो सकता है? यह प्रथम प्रश्न, तथा जे कर सर्वथा काय योगका अभाव हो गया है, तब देहके अभावसे ध्यान क्यों कर घटेगा? यह दूसरा प्रश्न है.

अथ आचार्य इन दोनों प्रश्नोंका उत्तर देते हैं, आचार्य कहता है कि जो शिष्य! अत्र अयोगी गुणस्थानमें सूक्ष्म काययोगके होतेजी अयोगी कहते हैं, किस वास्ते? कि १ काययोगके अति सूक्ष्म होनेसे सूक्ष्मक्रिया रूप होनेसे अरु वो काययोग शीघ्रही क्षय होनेवाला है, तथा कायके

कार्य करणमें असमर्थ होनेसे कायके होतेजी. अयोगी है, तथा शरीराश्रय होनेसे ध्यानजी है, इस वास्ते विरोध नहीं. किसके? कि अयोगी गुणस्थानवर्त्ती जगवत् परमेष्ठिके. कैसे परमेष्ठी जगवत्के? कि निज शुद्धात्मचिद्रूप तन्मयपणे उत्पन्न, निर्जर, परमानन्द विराजमानके विरोध नहीं.

अथ ध्यानका निश्चय व्यवहारपणा कहते हैं. तत्त्वसें निश्चय नयके मतसें आत्माही ध्याता, आत्माही करणरूप है, आत्माही कर्मरूपतापन्नकों ध्याता है, तिससेंती अन्य जो कुठ उपचाररूप अष्टांग योग प्रवृत्तिलक्षण, सो सर्वही व्यवहार नयके मतसें जाननां.

अथ अयोगी गुणस्थान वर्त्तीका उपांत्य समयका कृत्य कहते हैं. केवल चिद्रूपमय आत्मस्वरूपका धारक योगी, अयोगी, गुणस्थानवर्त्तीही स्फुट प्रगट उपांत्य समयमें शीघ्र युगपत् समकाल बहुत्तरि कर्मप्रकृति क्षय करता है, सो यह है, कि देह पांच, अर्थात् शरीर पांच, बंधन पांच, संघात पांच, अंगोपांग तीन, संस्थान ठे, वर्णपंचक, रसपंचक, संहनन पट्टक, अधिर पट्टक, स्पर्शाष्टक, गंध दो, नीचगोत्र, अगुरुलघुचतुष्क, देवगति, देवानुपूर्वी, खगतिद्विक, प्रत्येकत्रिक, सुखर, अपर्याप्त नाम, निर्माणनाम, दोनोंमेंसुं कोइजी एक वेदनी. यह सर्व बहुत्तर कर्म प्रकृति, मुक्तिपुरीके द्वारमें अर्गलजत है, सो उपांत्यसमय द्विचरम समयमें क्षय करता है.

अथ अयोगी अंत समयमें जौनसी प्रकृति क्षय करके जो कुठ करता है, सो कहते हैं. सो अयोगी अंत समयमें एकतर वेदनी, आदेयत्व, पर्याप्तत्व, व्रसत्व वादरत्व, मनुष्यायु, यशनाम, मनुष्यगति, मनुष्यापूर्वी, सौजाग्य, उच्चगोत्र, पंचेंद्रियत्व, तीर्थकरनाम. यह तेरां प्रकृति क्षय करके उसी समयमें सिद्धपर्यायकों प्राप्त होता है. सो सिद्ध परमेष्ठी, सनातन जगवान् शाश्वत लोकांतके पर्यंतकों जाता है. तथा अयोगी गुणस्थानस्य जीव अबंधक है, तथा एकतर वेदनी, आदेय, यश, सुजग, व्रसत्रिक, पंचेंद्रियत्व, मनुष्यगति, मनुष्यायु, उच्चगोत्र, तीर्थकरनाम, यह चारह प्रकृति वेदता है. अंतके दो समयसें पहिलां पंचासीकी सत्ता रहती है, उपांत्य समयमें तेरह प्रकृतिकी सत्ता रहती है, अरु अंत समयमें सत्ता रहित होता है ॥ इति अयोगी चतुर्दश गुणस्थान स्वरूपं ॥ १४ ॥

आशंका:—“ निःकर्म ” (कर्म रहित) आत्मा, तिस समयमें लोकां तमें कैसें जाता है ? इत्याशंकाह.

समाधान:—सिद्ध, कर्म रहितकी ऊर्ध्वगति होती है, “ कस्मात् ” किस हेतुसें होती है ? तत्राह ॥ पूर्व प्रयोगसें अचिंत्य आत्मवीर्य करके उपां त्य दो समयमें पंचासी कर्म प्रकृतिके दाय करने वास्ते पूर्वे जो व्यापार प्रारंभ कीया था, तिससेंती ऊर्ध्वगति होती है, यह प्रथम हेतु है. तथा कर्मकी संगति रहित होनेसें ऊर्ध्वगति होती है, यह दूसरा हेतु हैं. तथा गाढतर बंधनों करके रहित होनेसें ऊर्ध्वगति होती है, यह तीस रा हेतु है. तथा कर्म रहित जीवका ऊर्ध्वगमन स्वभाव हैं, यह चौथा हेतु है. यह चार हेतु, चार दृष्टांत करके सहित कहते हैं. १ जैसें कुंज कारका चक्र पूर्व प्रयोगसें फिरता है, तैसें आत्माकी पूर्वप्रयोगसें ऊर्ध्व गति होती है, २ तथा जैसें माटीके लेपसें रहित होने करके तूवेकी ज लमें ऊर्ध्वगति होती है, तैसेंही अष्टकर्मरूप लेपकी संगतिसें रहित धर्मा स्तिकाय रूप जल करके आत्माकी ऊर्ध्वगति हाती है. ३ तथा जैसें ए रंजफल बीजादि बंधनोंसें टुटा हुआ ऊर्ध्वगतिगामी होता है, तैसेंही क र्मबंधके विच्छेद होनेसें सिद्धकीजी ऊर्ध्वगति हीती है. ४ तथा जैसें अग्नि का ऊर्ध्व ज्वल न स्वभाव है. तैसेंही आत्माकाजी ऊर्ध्वगमन स्वभाव है.

अथ अधो अरु तिर्थागति कर्म रहितको नहीं होती है, यह बात क हते हैं. सिद्धकी आत्मा, कर्म गौरवके अज्ञावसें नीचेको नहीं जाती, तथा प्रेरक कर्मके अज्ञावसें आत्मा, तिर्थाजी नहीं जाती है, तथा कर्म रहित सिद्ध लोकके उपरजी धर्मास्तिकायके न हानेसें नहीं जाती, क्योंकि ? लोकमेंजी जीव, पुद्गलके चलनेमें धर्मास्तिकाय गतिका हेतु है. मत्स्यादिकोंको जैसें जल है. सो धर्मास्तिकाय अलोकमें नहीं. इस वास्ते अलोकमें सिद्ध नहीं जाते.

॥ अथ सिद्धोकी स्थिति ॥ यथा सिद्ध शिलासें उपरि लोकांतमें सिद्ध रहते हैं, सो कहते हैं. ईप्त् प्राग्जाराणामा सिद्धशिला चौद रज्जुलोकके मस्तकके उपरि व्यवस्थित है. उसको सिद्धोंके निकट होने करके सिद्ध शिला कहते हैं, परंतु सिद्ध कुठ उस शिलाके उपर बैठे हुए नहीं हैं, सिद्धतो उस शिलासें उंचे लोकांतमें विराजमान हैं. वो शिला कैसी है ? कि मनोज्ञा मनोहारिणी है, फेर वो शिला कैसी है ? सुरजि कर्पूरसेंजी अ

धिक सुगंधिवाली है, अरु कोमल है, सूक्ष्म है अवयव जिसके फेर वो शिला कैसी है ? पुण्या, पवित्र, परमजासुरा, प्रकृष्ट तेजवाली है, मनुष्यक्षेत्र प्रमाण लंबी चौकी है, श्वेत उत्रके आकार है, उत्तान उत्राकार है, उसका बना शुभ रूप है, वो ईषत् प्रागजारा नामा पृथ्वी सर्वार्थ सिद्ध विमानसें धारा योजन उपरि है, अरु वो पृथ्वी, मध्य जागमें आठ योजनकी मोटी है, तथा प्रांतमें घटती घटती महीके पांखसें नी पतली है, तिस शिलाके उपरि एक योजन लोकांत है, उस योजनका जो चौथा कोस है, उस कोसके ठे जागमें सिद्धोंकी अवगाहना है, सोइ दो हजार धनुष्य प्रमाण कोशके ठे जागमें तीन सौ तेत्तीस धनुष अरु बत्तीस अंगुल होता है, उतनी सिद्धोंके आत्मप्रदेशोंकी अवगाहना है.

अथ सिद्धोंके आत्मप्रदेशोंकी अवगाहनाका आकार लिखते हैं. जैसें कुवाली (मूपा) तिसमें मोम जरके गादिये, तिसके गलनेसें जो आकाशका आकार है, तेसा सिद्धोंका आकार है.

अथ सिद्धोंके ज्ञान दर्शनका विषय लिखते हैं. त्रेलोक्योदरवर्ती चउ दह रज्ज्वात्मक लोकमें जो गुणपर्याय करके संयुक्त वस्तु है, तिन जीवा जीव पदार्थोंको सिद्धमुक्त जानते हैं, सामान्य रूप करके देखते हैं, विशेष रूप करके जानते हैं, क्योंकि वस्तु जो है, सो सर्व सामान्य विशेषात्मक है.

अथ सिद्धोंके आठ गुण कहते हैं. १ जिस हेतुसें सिद्धोंको ज्ञानावरण कर्मके क्षय होनेसें केवलज्ञान प्रगट हुआ है, तथा २ सिद्धोंको दर्शन नावरण कर्मके क्षय होनेसें दर्शन अनंता हुआ है, तथा ३ सिद्धोंको शुद्ध, सम्यक्त्व चारित्र्य दायिकरूप हुये हैं, किस हेतुसें हुये हैं ? कि दर्शन मोहनीय ओ चारित्र्य मोहनीयके क्षय होनेसें हुये हैं, तथा ४ सिद्धोंको अनंत अक्षयसुख अरु ५ अनंत वीर्य शक्ति हुये हैं, किस हेतुसें हुये हैं ? कि वेदनी कर्मक्षय होनेसें अनंत सुख हुये है, अंतराय कर्मके क्षय होनेसें अनंत वीर्य प्रगट हुआ है. तथा ६ सिद्धोंकी अक्षयगति हुई है, किस हेतुसें ? कि आयुःकर्मके क्षय होनेसें हुई हैं, तथा ७ ना मकर्मके क्षय होनेसें अमूर्तपणा सिद्धको प्रगट जया है, तथा ८ गोत्रकर्मके क्षय होनेसें सिद्धोंकी अनंतावगाहना है.

अथ सिद्धोंका सुख कहते हैं, जो सुख, चक्रवर्तीकी पदवीका, अरु जो

सुख, इंद्रादि पदवीका है, तिनसेंजी सिद्धोंका सुख अनंत गुणा है, के सा वो सुख है? कि क्लेश रहित है “अविद्यास्मिता” राग, द्वेष, अजि निवेश, ए क्लेश हैं, सो जिनमें नहीं. है. फेर कैसा है सुख? “अव्ययं न व्येति स्वस्वजावसेंती इति अव्ययं.”

अथ तिन सिद्ध जगवंतोंने जो पाया है, तिसका सार कहते हैं. सिद्ध जगवंतोंने परम पद पाया है, सो कैसा परम पद पाया है? जो आराधकों कों आराध्य हैं, सो पद पाया है, तथा जो पद, साधकोंने सम्यग् दर्शनज्ञान चारित्रादि करके साधीयें हैं, तथा जो पद ध्यायकोंकों ध्येय है, तथा जो पद, सदाही नानाविध ध्यानोपाय करके ध्याइयें है, तथा जो पद अजव्य जीवोंकों सदा दुर्लभ है, अरु कितनेक जव्य जीवोंकोंजी दुर्लभ है, अरु दु र्जव्योंकों कष्टसें प्राप्त होता है, अैसा दुर्लभ पद, तिन सिद्ध जगवंतोंने पाया है, सो पद कैसा है? कि तत्परम पद है, चिदानंदमय चिद्रूपपरमानंद रूप है.

अथ मुक्तिका स्वरूप कहते हैं. कोइक वादी अत्यंताऽज्ञावरूप मोक्ष मानते हैं, सो वौद्धोंकी मोक्ष है. अरु कोइ वादी जडमयी, ज्ञान अज्ञावमयी मोक्ष मानते है, सो नैयायिक वैशेषिक मत वाले हैं. अरु कोइक वादी मोक्ष हो कर फेर संसारमें अवतार लेनां, फेर मोक्षरूप हो जानां, अैसी मोक्ष मानते हैं, सो आजीवका मतवाले हैं? अरु कोइ तो क्लिष्ट कर्म करके विषय सुखमय मोक्ष मानते हैं. वे कहते हैं, कि मोक्षमें जोग क रने वास्ते बहुत अप्सरा मिलती हैं, औ खाने पीनेकों बहुत वस्तु मिल ती है. तथा पान करनेकों बहुत अढी मदिरा मिलती है, औ रहनेकों सुंदर वाग मिलता है इत्यादि तथा कोइक वादी कहते हैं कि मोक्ष, जी वकी कदापि नहीं होती है, यह जैमिनी मुनिका मत है. तथा कोइ खरक ज्ञानी अैसें कहते हैं कि जो वेदोक्त अनुष्ठान करता है, वो सर्वथा उपा धि रहित तो नहीं होता, परंतु शुभ पुण्यफलसें सुंदर देह पा कर ईश्वर के साथ मिल कर कितनेक कष्टोंं लुगि सुख जोग करता है, जहां इच्छा होवे, तहां उड कर चला जाता है. फेर संसारमें जन्म लेता है, फेर पूर्वव त् सुखजोग करतां है, इत्ती तरें अनादि अनंतकाल लुगि करता रहेगा, परंतु एक जगे स्थित न रहेगा, अैसी मोक्ष कहता हैं. अरु सर्वज्ञ अर्हंत परमेश्वरनें तो सत् रूप, ज्ञानदर्शनरूप, तथा असारचूत जो यह संसार

है, तिसमें सारजूत, निस्सीम आत्यंतिक सुखरूप, अनंत, अतींद्रियानंद अनुभवस्थान, अप्रतिपाति, स्वरूपावस्थानरूप, मोक्ष कही है ॥ यह बृहज्जटीय श्रीवज्रसेनसूरिके शिष्य श्रीहेमतिलकसूरिपट्टप्रतिष्ठित श्रीरत्नशेखरसूरिने चौदह गुणस्थानकका स्वरूप लिखा है, तिसके अनुसारें जाण मय किंचित् गुणस्थानकस्वरूप, मैंने लिखा है.

प्रश्न:-हे जैन! तुमने सर्ववादीयोंकी कही हुई मोक्षकों तो अनुपादेय समझी, अरु अर्हंतकी कही हुई मोक्ष उपादेय समझी, इनमें क्या हेतु है?

उत्तर:-हे जग्य! इन सर्व वादीयोंकी मोक्ष, पीठें पट्ट दर्शनके निरूपणमें लिख आये हैं, सो जान लेनी. क्यों कि इन वादीयोंकी कही मोक्ष ठीक नहीं. कारण कि जब अत्यन्ताज्ञावरूप मोक्ष होवे, तब तो आत्माहीका अज्ञाव हो गया, तो फेर मोक्षफल किसकों होवेगा? ऐसा कौन है जो आत्माके अत्यन्ताज्ञाव होनेमें यत्न करे? तथा जो ज्ञानाज्ञावकों मोक्ष मानते हैं, सो जी ठीक नहीं. क्यों कि जब ज्ञानही न रहा, तब तो पापाण जी मोक्षरूप हो गया, तो ऐसा कौन प्रेक्षवान् है, जो अपणी आत्माकों जरु पापाण तुल्य बनाना चाहे? तथा जो सर्व व्यापी आत्माकों मोक्ष मानते हैं, अर्थात् जब आत्माकी मोक्ष होती है, तब आत्मा सर्व व्यापी मोक्षरूप होती है, यह जी कहना प्रमाणानजिज्ञ पुरुषोंका है, क्योंकि आत्मा किसी प्रमाणसें जी सर्वलोकव्यापी सिद्ध नहीं हो सकती है, इसकी विशेष चर्चा देखनी होयें. तदा स्याद्वादरत्नाकरावतारिका देख लेनी. तथा जो मोक्ष हो कर फेर संसारमें जन्म लेना फेर मोक्ष होना, यह तो मोक्षजी काहेकी? यह तो जांडोंका सांग हुआ, इस वास्ते यह जी ठीक नहीं. अरु जो मोक्षमें स्त्रीयोंके जोग मानते हैं, सो विषयके लोभुपी हैं, तथा जो खरमझानीने मोक्ष कही है, सो अप्रामाणिक है, किसी प्रमाणसें सिद्ध नहीं है. इस वास्ते जो अर्हंत सर्वज्ञने मोक्ष कही है, सो निदोष है. इति संक्षेपसें ज्ञानस्वरूप कहा ॥ इति श्रीतपगठीये मुनिश्री ६ गणि मणिविजय तछिप्य मुनि श्रीबुद्धिविजय तछिप्य मुनि आत्माराम आनंदविजयविरचिते जैनतत्त्वाददर्श धर्मतत्त्वनिरूपणाधिकारे चतुर्दश गुणस्थान ज्ञाननिर्णयनामा षष्ठः परिच्छेदः संपूर्णः ॥ ६ ॥

॥ अथ सप्तम परिच्छेद प्रारंभः ॥

यह परिच्छेदमें सम्यग्दर्शनका स्वरूप लिखते हैं। इन सम्यग् दर्शनका स्वरूप कतुक उपर लिखनी आये हैं। तोजी जव्य जीवोंके जानने वास्ते कतुक सम्यक्त्वका स्वरूप लिखते हैं। यह सम्यक्त्वके दो जेद हैं। एक व्यवहार सम्यक्त्व, अरु दूसरा निश्चयसम्यक्त्व, जां यथार्थतत्त्वरूप विज्ञानपूर्वक रुचि है, तिसका नाम सम्यक्त्व कहते हैं। सो सम्यक्त्व, तीन तत्त्वकी यथार्थ रुचि होनेसे होता है, सो तीन तत्त्व यह हैं, कि एक देव तत्त्व, दूसरा गुरुतत्त्व, तीसरा धर्मतत्त्व। इनकेविषे श्रद्धा (प्रतीति) जो पु रूप करे, सो सम्यक्त्ववान् होता है। तिस श्रद्धाके दो जेद हैं। एक व्यवहार, दूसरा निश्चय। इन दोनों श्रद्धायोंमें प्रथम व्यवहार श्रद्धाका स्वरूप लिखते हैं।

व्यवहारश्रद्धामें देव तो श्री अरिहंत जिसका स्वरूप, प्रथम परिच्छेदमें लिख आये हैं, सो सर्व इहां जान लेनां। तथा तिस अरिहंतके चार निक्षेप अर्थात् स्वरूप है सो कहते हैं। १ नामनिक्षेप, २ स्थापनानिक्षेप, ३ अव्यनिक्षेप, ४ जावनिक्षेप। इन चारोंका स्वरूप विस्तार पूर्वक देखनां होवे, तदा विशेषावश्यक देख लेनां। तिनमें प्रथम, नाम अर्हंत, सो “न मो अरिहंताणं” अैसा कहनां, इस पदका जाप करके अनेक जीव संसार समुद्रकों तर गये हैं। तथा दूसरा स्थापनानिक्षेप, सो अरिहंतकी प्रतिमा समस्त दोषके चिन्होंसे रहित, सहज, सुजग, समचतुरस्रसंस्था नवाली, पद्मासन, तथा कायोत्सर्गमुद्रारूप जो जिनविंव, तिसकों देख कर तिसकी सेवा, पूजा करके अनंत जीव मोक्षकों प्राप्त हुये हैं।

प्रश्नः—अरिहंतकी प्रतिमाकों पूजणी, तथा उसकों नमस्कार करणी, औ स्थापना, निक्षेप, मान कर मुक्तिकी दाता समजणी, यह निःकेवल मूर्खताइके चिन्ह है, क्यों कि प्रतिमा जरूप क्या दे सकती है ?

उत्तरः—हे जव्य ? तूं किसी शास्त्रकों परमेश्वरका रचा हुआ मानता है, या नहीं ? जे कर तूं शास्त्रकों परमेश्वरका वचन मानता है, अरु उस शास्त्रकों सच्चा संसार समुद्रसे पार उतारने वाला मानता है, तब जिन प्रतिमाके माननेमें क्यों लज्जा करता है ? क्योंकि जैसा शास्त्र जरूप है, उसमें त्याही अरु कागज रूप वर्जके और कुठनी नहीं है, तैसी जि

नप्रतिमाजी है, जे कर कहोगे कि कागजां उपर स्याहीके अक्षर संस्था नसंयुक्त लिखे जाते हैं, उनके वांचनेसें परमेश्वरका कहनां माधुम हो जाता है, तब इसी तरें परमेश्वरकी मूर्ति देखनेसेंजी परमेश्वरका स्वरूप माधुम होता है.

प्रश्न:—प्रतिमाके देखनेसें अर्हत स्वरूप तो स्मरण होता है, परंतु प्रतिमाकी जक्ति करनेसें क्या लाभ है?

उत्तर:—शास्त्रके श्रवण करनेसें परमेश्वरके वचन तो माधुम हो गये, तो जी जक्त जन जैसें शास्त्रकों उच्चस्थानमें रखते हैं. कोइ शिर ऊपर ले कर फिरते हैं, कितनेक गलेमें लटका रखते हैं, ओ कितनेक मंजी उपर, कितनेक चौकी आदि उपर शास्त्रोंकों सुंदर सुंदर रुमाखोंमें लपेटके रखते हैं, ओ नमस्कारादि करते हैं, ऐसेंही जिनप्रतिमाकी जक्ति, पूजाजी जान लेनी.

प्रश्न:—जैसें पथरकी गायसें दूधकी गरज पूरी नहीं होती है, ऐसें प्रतिमासेंजी कोइ गरज पूरी नहीं होती, तो फेर प्रतिमाकों काहे को माननां चाहियें?

उत्तर:—जैसें कोइ पुरुष मुखसें गौ, गौ, सच्ची गौ कहता है, उस क हनेसें उसका वरतन क्यां दूधसें जर जाता है? अर्थात् नहीं जरता है. ऐसें परमेश्वरके नाम लेने और जाप करनेसेंजी कुछ नहीं मिलता. इस वास्ते परमेश्वरका नामजी न लेनां चाहियें.

प्रश्न:—परमेश्वरका नाम लेनेसें तो हमारा अंतःकरण शुद्ध होता है.

उत्तर:—ऐसेंही श्रीजिनप्रतिमाके देखनेसेंजी परमेश्वरके स्वरूपका बोध होता है, तातें अंतःकरणकी शुद्धि इहांजी तुल्यही है.

प्रश्न:—परमेश्वरके नाम लेनेसें पुण्य है, तो फेर प्रतिमा काहेको पूजनी?

उत्तर:—नामसें ऐसें शुद्धपरिणाम नहीं होते, जैसें स्थापना देखनेसें होते है. क्यों कि? जैसें किसी सुंदर यौवनवंती स्त्रीका नाम लेनेसें राग जागता है, अरु जब उस सुंदर यौवनवती स्त्रीकी मूर्ति प्रगट सर्वाकार वास्ती सन्मुख देखीयें, तब अधिकतर विषयराम उत्पन्न होता है, इसी वास्ते श्रीदशवेकाक्षिकसूत्रमें लिखा है, 'चित्तजित्ती न निज्जणनारी वामुखं कियं' अर्थात् स्त्रीके चित्रामकी जीत देखेसेंजी विकार उत्पन्न होवेगा. यह बात तो प्रगट (प्रसिद्ध) है, कि रागीकी मूर्ति देखनेसें राग उत्पन्न हो

ता है, तथा कोक शास्त्रोक्त स्त्री पुरुषके विषय सेवनके चौरासी चिन्ह दे खनेसे तत्काल विकार उत्पन्न होता है, ऐसेही निर्विकार स्थापनारूप शांतमुद्रा, श्रीवीतरागकी देखनेसे निर्विकार शांतिभाव उत्पन्न होता है, ऐसा नाम लेनेसे नहीं होता है.

प्रश्न:- जैसे किसी स्त्रीके चर्तारका नाम देवदत्त है, सो जब देवदत्त मरगया, तब तिसकी स्त्रीने अपने जरतार देवदत्तकी मूर्ति बनाई है, उस मूर्तिसे उस स्त्रीका सुहाग तथा संतानोत्पत्ति तथा काम इत्यां नहीं होती है, इसी तरे जगवान्की मूर्तिसेजी कुछ लाभ नहीं है.

उत्तर:- देवदत्तकी स्त्री देवदत्तके मरे पीछे आसन धिठाय कर देवदत्त के नामकी माला फेरे, तब उस स्त्रीका सुहाग नहीं रहता, तथा जरतार का नाम लेनेसे संतानोत्पत्तिजी नहीं होती? तथा कामेष्टाजी पूरी नहीं होती? इसी तरे जो कहेंगे तब तो जगवान्के नाम लेनेसेजी कुछ सिद्धि नहीं होगी. इस दृष्टांतसे तो जगवान्का नामजी न लेना चाहिये.

प्रश्न:- प्रतिमा तो कारीगर बनाता है, उस कारीगरकोजी पूजना चाहिये

उत्तर:- वेदादि शास्त्रकोजी लिखारी लिखते हैं, उनकोजी पूजना चाहिये? तथा साधुके मात पिताकोजी साधुसे अधिक पूजना चाहिये.

प्रश्न:- स्थापना कोइजी इस काखमें बुद्धिमान् नहीं मानता है.

उत्तर:- बुद्धिमान् तो सर्व मानते हैं. परंतु मूर्ख नहीं मानते हैं.

प्रश्न:- कौनसे बुद्धिमान् स्थापना मानते हैं? तिनोका नाम लेना चाहिये.

उत्तर:- प्रथम तो सांसारिक विद्यावासे सर्व बुद्धिमान्, जूगोष, खगोष, ह्रीष, अर्थात् युरोपखंडमें विख्यात प्रमुखका चित्र सर्व स्थापनारूप मान ते हैं. और बनाते हैं, तथा जो ककार आदि अक्षर हैं, वे सर्व पुरुषके (इश्वरके) शब्दकी स्थापना करते हैं, तथा जैनीयोंके मतमें एक सौ आठ मणिये. भाषामें रखते हैं, परंतु अधिक न्युन नहीं रखते हैं, इसका हेतु यह है, कि जैन, धारद गुण तो अरिहंत पदके मानते हैं. अरु आठ गुण. सिद्ध पदके मानते हैं, तथा षचीन गुण, आचार्यपदके मानते हैं, तथा पद्मीन गुण. उपाध्याय पदके मानते हैं, तथा सत्ताइस गुण. मुनि नाथ पदके मानते हैं. यह सर्व निश्चय कर एक सौ आठ गुण होते हैं. इन वा स्ते जैनीयोंके मतमें भाषामें जो मणिये हैं, सो एकैक मणिया एक

क गुणकी स्थापना है. यह मालाजी स्थापना है, इसी तरे दूसरे मतों में भी जो माला तसवी है, सो सर्व किसीन किसी वस्तुकी स्थापना है. नहीं तो एक सौ आठ तथा एक सौ एकका नियम न चाहियें. तथा पादरी लोकोंकी भी ठापी दूइ पुस्तकोंके उपर ईशामसीहकी मूर्ति उस वखतकी ठापी दूइ है, जिस अवसरमें मसीहकों श्रुती उपर देनेकों से जाते थे, उस मूर्तिके देखनेसे ईशामसीहकी अवस्था सर्व मायुम होती है, वस स्थापनाका यही तो प्रयोजन है, कि जो उसके देखनेसे असली वस्तु का स्वरूप याद (स्मरण) हो जाता है. आश्चर्य तो यह है कि अब (इस कालमें) कितनेक तुष्टयुद्धिवाले अपनी बनाई पुस्तकमें यज्ञशाला तथा यज्ञोपकरणकी स्थापना अपने हाथोंसे करके अपने शिष्योंको जनाते हैं, जो यज्ञोपकरण इस आकृतिके चाहियें, फेर कहते हैं कि हम स्थापनाको नहीं मानते हैं. अब विचार करना चाहियें कि इनसे भी कोइ अधिक मूर्ख जगत्में है? जो आप तो स्थापना करते हैं और फेर कहते हैं कि हम स्थापनाको नहीं मानते हैं, इस वास्ते जो पुरुष अपने शास्त्रके उपदेशकों देहधारी मानेगा, वो अवश्य उसकी मूर्तिकूँजी मानेगा और जो अपने शास्त्रके उपदेशकों देह रहित मानते हैं, वे भी थोड़ी बुद्धि वाले हैं. क्योंकि जिसके देह नहीं, वो शास्त्रका उपदेश कदापि नहीं हो सका है, कारण कि देह रहित होना और शास्त्रका उपदेश देने वाला भी होना, इस बातमें कोइ भी प्रमाण नहीं है. और निराकार सर्वव्यापी परमेश्वरका ध्यान भी कोइ नहीं कर सका है. जैसे आकाशका ध्यान नहीं हो सका है, इस वास्ते अछारह रूपसे रहित जो परमेश्वर है, तिसकी मूर्ति अवश्य माननी पूजनी चाहियें. सो ऐसा देव तो अर्हंतही है, इस वास्ते अर्हंतकी प्रतिमा माननी चाहियें. परंतु किसी दुष्टयुद्धिके कुहेतुओंसे वो मनी न चाहियें ॥ इति स्थापना निक्षेप दूसरा.

अब तीसरा इव्यनिक्षेप, सो जिस जीवने तीर्थंकर नामकर्मका निकाचित बंध कीना है, तिस जीवमें जावि गुणोंका आरोप अर्थात् ऐसा आगेको तीर्थंकर जगवान् होवेगा ! ऐसा वर्तमानमें आरोप करके बंदन (नमस्कार) पूजन करके, अनेक जीव, मोक्षको प्राप्ति दूये हैं.

चौथ जावनिक्षेप, सो जो वर्तमान कालमें सीमंघर प्रमुख तीर्थंकर

केवलज्ञानसंयुक्त समवसरणमें विराजमान जगज्जीवोंके प्रतिबोधक चतुर्विध संघके स्थापक, सो जाव अर्हत इनके चरण कमलकी सेवा करके अनेक जीव मोक्ष होते हैं, यह जावनिक्षेप है, यह चार निक्षेप करके संयुक्त, ऐसा जो अरिहंत देवाधिदेव, महा गोप, महा माहण, महा निर्यामक, महा सार्थवाह, महा वैद्य, महा परोपकारी, करुणासमुद्र, इत्यादि अनेक उपमा लायक सो जगज्जीवोंके अज्ञानांधकार दूर करणोंको सूर्य समान, प्रमाण करके अविरोधि जिसके वचन हैं, औ मुनिमनमोहन, योगीश्वर, चिदानंद धनरूप, ऐसे अरिहंतकों में देव, अर्थात् परमेश्वर करिके मानता हूं, तिसकी सेवा करूं, तिसकी आज्ञा शिर धरूं, ऐसा जो माने, सो प्रथम व्यवहार शुरू देवतत्व है.

दूसरा निश्चयशुरू देवतत्व कहते हैं. जो शुद्धात्मस्वरूपको अनुभव करना, सो शुद्धात्मस्वरूपही निश्चयदेवतत्व है, कैसा है वो आत्मस्वरूप ? कि पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस, आठ स्पर्श, शब्द, क्रिया, इनसे रहित, तथा योगसे रहित, अतींद्रिय, अविनाशी, अनुपाधि, अवंधी, अक्लेशी, अमूर्ति, शुरू चैतन्य, ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि अनंत गुणों का जाजन, सच्चिदानंदस्वरूपी ऐसीमैरी आत्मा है, सोइ निश्चयदेव है.

अथ दूसरा गुरुतत्व कहते हैं. तिसकेजी दो जेद हैं, एक शुरू व्यवहारगुरु, दूसरा शुरू निश्चयगुरु. उत्तमें शुरू व्यवहारगुरुका स्वरूप तो गुरु तत्त्वनिरूपण परिच्छेदमें लिख आये हैं, तहांसे जान लेना, ऐसे तां धुको गुरु करके माने. ऐसे गुरुकी आज्ञासे प्रवर्त्ते, ऐसे मुनिकों पात्र बुद्धि करके शुरू अन्नादिक देवे. इति व्यवहार शुरू गुरुतत्त्व । तथा निश्चय गुरु तत्व तो शुद्धात्म विज्ञानपूर्वक है, जो हेयोपादेय उपयोगयुक्त परिहार प्रवृत्तिज्ञान, सो निश्चयगुरुतत्व है.

अथ तीसरा धर्मतत्व, कहते हैं. धर्मतत्वकेजी दो जेद हैं, एक व्यवहारधर्मतत्व, दूसरा निश्चयधर्मतत्व. तिनमें जो व्यवहाररूप धर्म हैं, सो दयामुख्य हैं. क्यों कि जो सत्वादि व्रत हैं, सो सर्व दयाकी रक्षा वास्ते हैं, इस वास्ते दयाका स्वरूप लिखते हैं. यह दयाके आठ जेद हैं, सो कहते हैं. १ अव्यदया, २ जावदया, ३ स्वदया, ४ परदया, ५ स्वरूपदया, ६ अनुबंधदया, ७ व्यवहारदया, ८ निश्चयदया.

१ तहां अव्यदया उसकों कहते हैं, कि जो यत् पूर्वक सर्व काम करणां, यह तो जैनमतवालेके कुलका धर्म है, सर्व जैन लोक, पाणी गान के पीते हैं, श्रो अन्न शोधके खाते हैं, जे कर कोइ जेनी ठल (कपट) करता है, फूठ बोलता है, श्रो विश्वासघात करता है, वो पापी जीव है, सो जैनमतकों कलंकित करता है, वो सर्व उस जीवकाही दोष है, परं तु उसमें जैनधर्मका कुछ दोष नहीं है, जैनधर्म तो ऐसा पवित्र है, कि जिसमें कोइजी अनुचित उपदेश नहीं है, यह बात सर्व सुद्ध जनोंकों विदित है, इस वास्ते जो काम करणां, सो यत्पूर्वक जीवरक्षा करके करणां, सो अव्यदया है.

२ दूसरी जावदया है, सो दूसरे जीवोंके गुणप्राप्ति वास्ते तथा दुर्गति परुतेकों रक्षण वास्ते, अंतःकरणमें अनुकंपा बुद्धि संयुक्त जो परजीवकों हितोपदेश करनां, सो जावदया है.

३ तीसरी स्वदया है, सो अपनी आत्मा अनादि कालसें मिथ्यात्व अशुद्ध उपयोग, अशुद्ध श्रद्धानपूर्वक अशुद्ध प्रवृत्ति, कपायादि जावशस्त्रों करी समय समयमें आत्माके ज्ञानादि गुणोंकी घातरूप जावप्राणोंकी हिंसा होती है, ऐसें जिनवचन सुननेसें पूर्वोक्त जाव शस्त्रोंका त्याग करके स्वसत्तामें प्रवृत्ति करके शुद्धोपयोग धारके विषय कपायोंसें दूर रहनां, अरु शुज, अशुज कर्मफलके उदयमें अव्यापक रहनां, अर्थात् सुखदुःख में हर्ष विषाद न करणां, प्रतिक्षण अशुज कर्मके निदान दूर करणेकी जो चिंता, तिसका नाम स्वदया है. इस स्वदयाकी रुचि वाला जीव अपनी परिणति शुद्ध करने वास्ते जिनपूजा, तीर्थयात्रा, रथयात्रा प्रमुख शुज प्रवृत्ति करे, जिनगुण गावे, बहुमान करके असत् प्रवृत्तिसें चित्तकों हटा करके तत्त्वालंबी करे, पुजलावलंबीपणां हटावे, इस शुजाश्रवमें यद्यपि देखनेमें कितनेक जीवोंकी हिंसा दीख परुती है, तोजी आत्माकी अशुद्ध परिणति मिटनेसें आत्मा गुणग्राही हो जाती है, जब गुणग्राही जइ, तब ज्ञानवान् हो गइ. इस वास्ते सर्व साधक जीवोंकों यह स्वदया परमसाधन है, इस स्वदयाके वास्ते साधुजी नवकल्पी विहार करते हैं, श्रो उपदेश देते हैं, चर्चा करते हैं, तथा पूजन, प्रतिलेखन करते हैं, यद्यपि नदी नाले उतरने पडते हैं, तहां योगोंकी चपलतासें आश्रय होता है, तोजी

चेतन स्वरूपानुयायी रहता है, जिनाझा पासता है, औ कषायस्थान मंद करता है, स्वधंदता छूट करता है, तथा धर्मप्रवृत्तिकी वृद्धि करता है, यह स्वदयाके वास्ते शुजाश्रव साधुजी अपने कल्प प्रमाणे आचरण करता है, परंतु यह आश्रव साधकदशामें बाधक नहीं है ॥ इति स्वदया ॥

४ चौथी परदया, सो जो ठे कायके जीवोंकी रक्षा करणी, जहां स्वदया है, तहां परदया तो नियम करके है, अरु जहां परदया है, तहां स्वदयाकी नजना है, अर्थात् होवेजी, नहींजी होवे.

५ पांचमी स्वरूपदया, सो जो इहलोक परलोकके विषयसुख वास्ते तथा लोकोंकी देखा देखी करके जीवरक्षा करे, यह स्वरूप दया है. इस दयासे विषय सुख तो मिल जाते हैं. परंतु मेंडुक चर्णवत् संसारकी वृद्धि हो जाती है, यह देखनेमें तो दया है, परंतु जावे हिंसाही है.

६ ठीठी अनुबंधदया, सो श्रावक बड़े आडंबरसे मुनिकों वंदना करनेको जावे, तथा उपकार बुझिसे दूसरे जीवोंको सन्मार्गमें लाने वास्ते आक्रोश (ताननादि) करे, कोइको शिक्षा देवे. यहां देखनेमें तो हिंसा है परंतु अंतमें स्वपरको लाजका कारण है, इस वास्ते ये दया है. जैसे साधु, आचार्य, अपने शिष्य शिष्यणीयोंको शिक्षा देता है, किस्तीको मूल याद करता है, तथा किस्तीको अनुचित कामसे मना करता है, किस्तीको एक बार कहता है, अरु किस्तीको बारंबार शिक्षा देता है, किस्ती उपर क्रोध भी करता है, शासनके प्रत्यनीकको अपनी लब्धितें दंड देता है, इत्यादि कामोंमें यद्यपि हिंसा दीखती है, तोजी फल दयाका है, इती अनुबंधदया.

७ सातमी व्यवहारदया. सो विधिमागानुयायी जीवदया पावे, सर्व क्रिया कलाप उपयोग पूर्वक करे, सो व्यवहार दया है.

८ आठमी निश्चयदया, सो शुद्ध साध्य उपयोगमें एकत्व जाव, अनेदोपयोग साध्यजावमें एकताज्ञान. सो जावदया. इस दयासेंती उपरिखे शुष त्यागोंमें जीव चटता है, तिस वास्ते उत्कृष्ट है. इत्यादि अनेक प्रकारसे दयाके स्वरूप, विज्ञानपूर्वक सूत्र, निर्गुक्ति, ज्ञाप्य, चूर्णी, वृत्ति, इस पंचांगीसम्मत प्रत्यक्षादि प्रमाणपूर्वक नेगमादिनय, नामादि निक्षेप, सतन नी. ज्ञाननय, क्रियानय, तथा निश्चयव्यवहारनय, तथा ज्ञाप्यार्थिक, पर्यायार्थिक, इत्यादि उक्त्य जावमें दयावस्ते अपित, अनपित नयनिष्ठ

एतासैं मुख्य गोण जावैं उजयनयसम्मत्त, शुद्धस्याद्वादशैसी विज्ञानपूर्वक, श्रीसिद्धांतोक्त दान, शील, तप, जावनारूप शुज प्रवृत्ति, तिसका नाम शुद्ध व्यवहारधर्म कहियैं हैं.

तथा दूसरा निश्चयधर्म, सो अपणी आत्माकी आत्मताकों जाणे, ओ वस्तुके स्वजावकों जाणे कि जो मेरी आत्मा है, सो शुद्ध चैतन्यरूप, असंख्यातप्रदेशी, अमूर्ति, स्वदेहमात्रव्यापी, सर्व पुज्योंसैं निम्न अखंड, अक्षित, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख, वीर्य, अव्यायाध, सत्त्विदानंदवि अनंत गुणमयी, अविनाशी, अनुपाधि, अविकारी, ऐसी मेरी आत्मा है, सोइ उपादेय है. इससैं विलक्षण जो परपुजलादिक सो मेरे नहीं, तिस पुज लके पांच विकार हैं, १ शब्द, २ रूप, ३ रस, ४ गंध, ५ स्पर्श. इन पांचों के उत्तर जेद अनेक हैं. इस लोकाकाशमें जो उद्योत, तथा अंधकार, तथा जो शब्द है, तथा सर्व रूपी वस्तुकी जो ठाया, रत्नकी कांति, शी त, धूप, नानाप्रकारके रूप, रंग, संस्थान, ओ नाना प्रकारके सुगंध, दुर्ग ध, नाना प्रकारके रस, तथा सर्व संसारी जीवोंकी देह, चापा, ओ मन के विकल्प, दश प्राण, ठै पर्याप्ति, हास्य, रति, अरति, जय, शोक, जुग प्ता, ओ खुशी, उदासी, कदाग्रह, हठ, खमाइ, क्रोधादि चार कपाय त था शाता, अशाता, उंच, नीच, निद्रा, विकथा, तथा सर्व पुण्यप्रकृति, सर्व पापप्रकृति, तथा रीज, मोज, खीजना, खेद, तथा ठैं खेश्या, लाजालाज, यश, अपयश, मूर्ख, चतुरता, स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेद, कामचेष्टा, गति, जाति, कुल. इत्यादि आठ कर्मका विपाक फल, यह सर्व घातों जीवके अनुजवसैं सिद्ध हैं, अरु सूक्ष्मपुजल, इंद्रिय अगोचर है, सो परमाणु आ दि लेकें अनेक तरेंका है, इस पूर्वोक्त पुजलके संयोगसैं जीव चारों गतिमें जटकता है. यह पुजल, मेरी जाति नहीं, इस पुजलका मेरे साथ कोड वास्तव संबंध नहीं, ओ यह पुजल सर्व त्यागने योग्य है, जो इस पुजलका संसर्ग है, सोइ संसार है, तथा इसपुजलकी संगतिसैं ज्ञान, दर्शन, चारि त्रादि गुण विगड जाते हैं, जो यह पुजल, अव्यकी रचना है, सो मेरी आ त्माका स्वजाव नहीं, तथा धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिका ग, काल, यह चारों अव्य ज्ञेय रूप हैं, इनसैंजी मेरा स्वरूप अन्य है, अरु और जो संसारी जीव हैं, सो सर्व अपणी अपणी स्वजाव सत्ताके स्वामी.

हैं, सो मेरे ज्ञानमे ज्ञेय रूप है, परंतु मैं इन सर्वसें अन्य हूं, ये मेरे न हीं हैं, मैं इनका नहीं, मैं इनका साथीजी नहीं, ओ मे अपने स्वरूपका स्वामी हूं, मेरा स्वभाव सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्र्यरूप है, वर्णरहित, तथा गंध रहित, रस रहित, चैतन्य गुण, अनंत अव्यावाध, अनंत दान, लाज, जोग, उपजोग वीर्यादिक अनंत गुण स्वरूप है। तिनकी श्रद्धा जासन पूर्वक गुणस्वादिक रूप चिदानंद घन मेरा स्वभाव है, ऐसा जो मेरा पूर्ण नंद स्वभाव, तिसके प्रगट करणे वास्ते सर्वशुद्ध व्यवहारनय निमित्तमात्र है, परंतु मुख्य तो मेरा स्वभाव जो है, तिसहीमें जो रमणता करणी, सोइशुद्ध साधन है, सोइ धर्म है, यह निश्चय धर्म स्वरूप जानना॥ इति धर्मतत्त्व तीसरा

इन तीनों तत्त्वोंकी जो श्रद्धा, निश्चल परिणतिरूप, तिसकों सम्यक्त्व कहते हैं। अरु जिस जीवकों इतना बोध न होवे, वो जीव जे कर ऐसे मनमें धारे, पक्षपात न करे, “तं सर्वं निस्तं कं, जं जिणेहिं पवेइयं इत्यादि जो जिनेश्वर देवोंने कहा है अर्थ, सो सर्व निःशंकित सत्य है, ऐसी तत्त्वार्थ श्रद्धाकोंजी सम्यग्दर्शन सम्यक्त्व कहते हैं, इस्सें जो विपरीत होवे, तिसकों मिथ्यात्व कहते हैं, इस मिथ्यात्वका स्वरूप नव तत्त्वमें लिख आये हैं, तहांसें जान लेना, इस मिथ्यात्वकों त्यागे, तिसकों सम्यक्त्व कहते हैं। इति व्यवहार सम्यक्त्व स्वरूपं संपूर्ण ॥

अथ निश्चय सम्यक्त्वका स्वरूप लिखते हैं। जो पूर्वे निश्चय देव, गुरु, और धर्मका स्वरूप कहा है, सोइ निश्चयसम्यक्त्व है। चार अनंतानुबंधी, सम्यक्त्व मोह, मिश्रमोह, अरु मिथ्यात्व मोह, इन सातों प्रकृतिका उपशम करे, तथा क्षयोपशम करे, तथा क्षय करे, तिस जीवकों निश्चय सम्यक्त्व होती है। परंतु निश्चय सम्यक्त्व परोक्ष ज्ञानविषय नहीं। केवली जान सका है, जो इसके निश्चय सम्यक्त्व है, इस सम्यक्त्वके प्रगट जये जीव नरक अरु तिर्यच इन दोनों गतिका आयु नहीं बांधता है ॥ इति निश्चय सम्यक्त्वं संपूर्ण ॥

अथ सम्यक्त्वकी करणी लिखते हैं, नित्य योगवाइके मिले, अरु शरीरमें कोइ विघ्न न होवे, तब जिनप्रतिमाका दर्शन करिकें पीठसें जोजन करे, जे कर जिनप्रतिमाका योग न मिले, तो पूर्वदिशि तरफ मुख करिकें वर्त्तमान तीर्थकरोंका चैत्यवंदन करे, अरु जे कर रोगादि कोइ विघ्नसें दर्शन

न होवे, तों जिसका आगार है, उनका नियम नहीं टुटता है, अरु जगवान्के मंदिरमें मोटी दश आशातना न करे, यह दश आशातनाका नाम कहते हैं. १ तंबोल पान, फल, प्रमुख सर्व खानेकी वस्तु जगवान्के मंदिरमें न खावे, २ पाणी, दूध, ठास, अर्क प्रमुख पीवे नहीं, ३ जिनमंदिरमें बैठके जोजन न करे, ४ जूती प्रमुख मंदिरके अंदर न लावे, ५ छ्यादि कसें मैथुन सेवे नहीं, ६ जिनमंदिरमें शयन न करे, ७ जिनमंदिरमें धूके नहीं, ८ जिनमंदिरमें लघुशंका न करे, ९ जिनमंदिरमें दिशा न जावे, १० जिनमंदिरमें जूथा, चोपट, सतरंज प्रमुख न खेले, ये दश आशातना टाखे, तथा उत्कृष्टी चौरासी आशातना बजें तथा एक मासमें इतना फूड सेरादि चढाऊं. एक मासमें इतना आदि घृत देऊं, (चढाऊं) एक वर्षमें इतना अंगलूहणां चढाऊं, वर्षमें इतना केशर, इतना चंदन, इतना नीम सेनी बरास, कर्पूर प्रमुख जगवान्की पूजा वास्ते खरच करूं, अपने धन के अनुसारें वर्ष प्रति धूप अगरवत्ती, कर्पूर, चढाऊं. वर्षमें अष्ट प्रकारी सत्तरे प्रकारी इतनीयां पूजा कराऊं तथा करूं, और वर्षमें इतना रूपैया साधारण ड्रव्य में खरचूं, वर्षप्रति पूजावास्ते इतना ड्रव्य खरचूं, दिन दिन प्रति एक न वकरवाली, अर्थात् माला, पंच परमेष्ठिमंत्रकी मोक्षनिमित्त जाप करूं, जे कर कोइ दिन न जपणां हो जोवे, तो अगले दिन दूणा जाप करूं, परं तु रोगादि कारणें आगार है, दिन प्रति समर्थ होतें नमस्कार सहित, अर्थात् दो घड़ी दिन चढे तक चार आहारका प्रत्याख्यान करूं, रात्रिमें दुविहार प्रत्याख्यान करूं, और रस्ते चलते रोगादि कारणसें न होवे, तो आगार. वर्ष प्रति इतना साधर्मिवास्तव्य करूं, (साधर्मि जिमाडुं) इस रीतीसें सम्यक्त्व पावुं, अरु सम्यक्त्वके पांच अतिचार टावुं, सो पांच अतिचार कहते है.

प्रथम शंका अतिचार, सो जिनवचनमें शंका करणी, क्यों कि जिन वचन बहुत गंजीर हैं, अरु तिनका यशार्थ अर्थ कहने वाला इस कालमें कोइ गुरु नहीं, अरु शङ्क जौ हैं, सो अनंतनयात्मक है, तिसकी गिणती, तथा संज्ञा, विचित्र तैकी है, कहीकजगें तोकोनी शब्द कोरुका वाचक है, अरु किसी जगें रूढी वस्तुका वाचक है, क्योंकि श्रीजिनजगणि क माश्रमण सर्वसंघका सम्मत आचार्य, संघयण नामा पुस्तकमें तथा विशेष

षण्वती ग्रंथमें लिखते हैं, कि कोइक आचार्य कोमी शब्दकों एक कोड का वाचक नहीं मानते हैं, किंतु संज्ञांतर मानते हैं, क्यों कि अब वर्तमान कालमेंनी बीशकों कोमी कहते हैं, तथा सौराष्ट्र देश अर्थात् सोरठ देश में अब वर्तमान कालमेंनी पांच आनेकों एक कोमी कहते हैं, यह जैसे कोडी शब्दमें मतांतर है. ऐसेही शत सहस्र शब्दकी किसी संज्ञाका वाचक होवे तो कुछ दोष नहीं तथा शत्रुंजय तीर्थमें जहां मुनि मोक्ष गये हैं, तहांकी पांच कोमी आदि शब्दोंकी कोइ संज्ञा विशेष है. ऐसेही ठप्पन कुछ कोडी यादव कहते हैं, तीहांकी यादवोंके ठप्पनकुलोंकी कोडी कोइ संज्ञा विशेष है. इसी तरे सर्व जगें शास्त्रोंमें चक्रवर्तीकी सेना तथा कोणिक चेटक राजाओंकी सेनामें जो कोडी, अरु शत सहस्र शब्द हैं, सो संज्ञाविशेषके वाचक संभव होते हैं, इस वास्ते सर्व शब्दोंका सर्व जगें एक सरीखा अर्थ माननां युक्त नहीं. इस कथनमें पूज्यश्री जिन जलगणि दामाश्रमण पूरे सादी देने वाले हैं.

तथा कितनेक जव्य जीवोंने सामान्य प्रकारें ऐसा सुण रक्का है, जो पांचमें आरेमें उत्कृष्ट एक सौ बीश वर्षका आयु है, जब वो जीव कीसी अंग्रेज के मुखसे सुनते हैं, तथा और किसीके मुखसे सुनते हैं, कि डेढ सौ तथा दो सौ, तथा अठाइ सौ वर्षकी आयुवालेकी जोशानादि किसी देशमें मनुष्य होते हैं, तब दृढ भ्रष्टावाले जोसे जीव तो कदापि किसीका कहनां नहीं मानते हैं, चाहो बडी आयु वाला मनुष्य उनके तन्मुखकी खडा कर दो, तोकी वे ऊठही मानेंगे. क्योंकि वे जानते हैं, कि जो हमारे जिनेंद्र देवका कथन है, सो कदापि ऊठा नहीं है, परंतु जिनको जैनमतकी दृढ भ्रष्टा नहीं है, वे कुछ संसारिक विद्यामें निपुण है, चाहो जैनमत वालेही हैं, उनके मनमें अवश्य शंका पन जायगी, क्यों कि उनोंनेनी सर्व जैन मतके शास्त्र सुने नहीं हैं, शास्त्रमें जो कथन है, सो तापेक्षिक है, बाहुल्यता करके कसा हुआ है. सो कथंचित् जो अन्यथा होवे तो आधर्य नहीं. क्यों कि बहुत शास्त्रोंमें लिखा है. कि ज्योतिषचक्र. अर्थात् तारा मंडल है, सो सर्व तारे नेत्र पर्यंतकों प्रदक्षिणा देते हैं, वे दान सर्व जैन मानते हैं. परंतु ध्रुवका तारा कहींनी नहीं जाता है. अरु ध्रुवके पास जो तारे सत क्षिपि रुटिमें प्रविष्ट हैं, जिनको वाचक नंजी पद्वंदार

कुत्ता, और चोर कहते हैं, तथा औरजी कितनेक तारे ध्रुवके पार्श्ववर्ती हैं, वे सर्व ध्रुवकी प्रदक्षिणा देते हैं, परंतु मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणा नहीं देते हैं, यह बात हमने आंखोंसे देखी है, अरु औरोंको दिखा सकते हैं, तो फेर प्रथम जो शास्त्रकारने कहा था कि सर्व तारे मेरुकी प्रदक्षिणा देते हैं यह कहना जेनी क्यों कर सत्य मानते हैं ?

इसका समाधान ऐसा है, कि प्रथम जो कथन है, सो बाहुल्यताकी अपेक्षा है, क्योंकि बहुत तारा मंखल ऐसा है, जो मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा देता है, अरु कितनेक ऐसे हैं जो ध्रुवकेही आस पास चक्र देते हैं, यह समाधान, पूज्यश्री जिनजडगणि दामाश्रमणजीने संघषण, तथा वि शेषणवती ग्रंथमें लिखा है, कि मेरु पर्वतके चारों ओर चार ध्रुव हैं, अरु उन चारों ध्रुवोंके पास ऐसे ऐसे तारे हैं, जो सदा उन चारों ध्रुवोंकेही आस पास चक्र देते हैं. इस्से यह सिद्ध हुआ कि जो शास्त्रका कहना है सो बाहुल्यतासे अरु किसी अपेक्षा करके संयुक्त है, अरु किसी जगो स्थूल व्यवहार नयके मनसे कथन है, परंतु सूक्ष्म, अधिक न्यूनताकी विवक्षा नहीं करी है, इसी तरें सो वर्षसे अधिक आयु जो पंचम काष्ठमें कही है, सो बाहुल्यताकी अपेक्षा तथा आर्यखंडकी अर्थात् मध्यखंडकी अपेक्षा है, जे कर किसी पुरुषकी १५०, २००, २५०, इत्यादि वर्षोंकी आयु हो जाये, तो मनमें जिनवचकी शंका न करणी कि क्या जाने जिनवचन सत्य हैं कि जूठ हैं ? ऐसा विकल्प मनमें नहीं करना क्यों कि शास्त्रका आशय अतिगंभीर है, अरु ऐसा गी तार्थ कोश गुरु नहीं है, जो यथार्थ वतसा देवे.

इस आयुके कहनेका यह समाधान है, कि जगवान् श्रीमहावीरके निर्वाण पीठें (५७५) वर्षके लग जग जैनमतका आचार्य श्रीआर्परक्षित मूर्ति सादे नव पूर्वका पाठक जिनोके पास शक्रइंद्र, निर्गोद जीवोंका अ रूप सुनने आया था, तब शक्रइंद्रने प्रथम शृङ्खलास्त्रणका रूप करके श्रीआर्परक्षित मूर्तिकों पूठा, कि हे जगवन ! मैं शृद्ध हो गया हों जे कर मेरी आयु योगी होये, तो मुझे वता दीजियें, जो मैं अजरान करूं, तब श्रीआर्परक्षित मूर्तिजीने दशमे पूर्वके यवका अव्ययनमें उपयोग दे कर देखा, तो तिसकी आयु सो वर्षसे अधिक जानी, फेर उपयोग दे कर

देखा. तो दोसैं वर्षसैं अधिक आयु जानी, फेर उपयोग दीया, तो तीनसैं वर्षसैं अधिक आयु जानी, तब आचार्य श्रीआर्यरक्षितसूरिजीने विचार कीया, जो यह जारत वर्षका मनुष्य नहीं है. ये कथानक आवश्यकसूत्र की सामायिकअध्ययनकी उपोद्घात निर्युक्तिमें है. इस कथानकसैं ऐसा निकलता है, जो जारत वर्षके मनुष्यकी आयु तीन सौ वर्षकी होवे, तो आश्चर्य नहीं, क्यों कि श्रीआर्यरक्षितसूरिजीने जो तीन सौ वर्षसैं जब अधिक आयु देखी, तब कहा ये जारत वर्षका मनुष्य नहीं. इसी कहनेसैं कथंचित् तीन सौ वर्षकी आयु जारत वर्षकी होवे, तो क्या आश्चर्य है ?

तथा कितनेक जीवोंके मनमें ऐसीजी शंका होवे, तो उसका क्या समाधान है ? जरत खंड जैनमतवाले कहां तक मानते हैं ? जो कुछ इस कालमें लोकोंके देखने वा सुननेमें आता है, कि अमेरिकादि देश वे सर्व जैनलोक जारत वर्ष मानते हैं, रूप, वा चिनादि देश इन सर्वकों जारत वर्ष कहते हैं. अरु अमेरिकादि विलायतादि सर्व मुखकोंके बीचमें जो समुद्र पना है, सो रूपज अरु जरत चक्रवर्तीके समयमें नहीं था, किंतु जगती बाहिर जो महासमुद्र है, सोइ था, इस कारणसैं अर्थात् समुद्र के अंदर आ जानेसैं असली जरत क्षेत्रका स्वरूप बिगन गया, कहीं समुद्र हो गया, और कहीं द्वीप बन गये.

इस वित्ते जैनमतका शत्रुंजय महात्म्यनामा जो ग्रंथ है, तिसमें लिखा है कि छत्तरासगरनामा चक्रवर्ती हुआ है, वो इस समुद्रको जारतवर्षमें जंबू द्वीपके दक्षिणदिशिके विजयंत नामक दरवाजेके रस्तेसैं व्याया है, तिसके खानेसैं बर्वरादि अनेक हजारो देश तो जलमें डुब कर समुद्रकी चूर्मि का बन गये, अरु जो उच्चस्थल थे, वे द्वीप और विलायतादि देशो बन गये, पीठेसैं असली देशोका नाम नष्ट होनेसैं बहुत देशोंके नाम कल्पित रक्के गये, अरु जरतखंड कुछ औरका और बन गया, कितनेक देशोंके चारों और समुद्र फिर गया, अरु कितनेक देशोंके उत्तर खंडोंमें वर्षके पन जानेसैं, और समुद्रके बढ़नेसैं, सर्वथा पानी जम गया, अरु समुद्रके साथ मिय गया, तब तो चारों और समुद्रही दीखने लगा है. तिस खिये आना जाना बंद हो गया, अरु हमारे शास्त्रकार तो प्रथम आरेमें तथा रूपज देव अरु जरतचक्रवर्तीके समयमें जो इस जारत वर्षका हाल था सोइ तशतें लिखते

स्थिर रहता है, परंतु यह मत जैनीयोंका नहीं है, उनके शास्त्रोंमें जो प्रगट लिखा है कि सूर्य चलता है, अरु पृथ्वी स्थिर रहती है, ओ सूर्यके चमण करनेके एक सौ चौरासी मंडल आकाशमें हैं, उन मंडलोंमें प्रवेश करना, अरु दिनमानका रात्रिमानका घटना, वधना, अरु मोसमोंका बदलना, ग्रहणका लगना, सूर्यके अस्त उदय होनेमें मतोंका विवाद, इत्यादि बात सर्व सूर्यप्रज्ञप्ति वा चंद्रप्रज्ञप्ति शास्त्रोंके पढ़नेसे अग्री तों मालुम पड जाती है.

अरु जो पृथ्वीके गोल होनेमें समुद्रके ऊहाजकी ध्वजा प्रथम दीखती है, इत्यादि कहते हैं, सो कहनेवालोंकी समझमें ऐसी आती होवेगी, परंतु हमारी समझमें तो नहीं आती है, हम तो ऐसे समझते हैं, कि हमारे नेत्रोंमें ऐसी ही योग्यता है, कि जिस्से वस्तु गोलादि दीख पड़ती है, क्योंकि जब हम सूर्य सड़क पर खड़े होते हैं, तब हमारे पगोंकी जगें सरुक चौकी मालुम पड़ती है, अरु जब दूर नजरसे देखते हैं, तब वोही सड़क संकुचित मालुम पड़ती है, अरु आकाशमें पक्षीको जब शिरके उपर उड़ता देखते हैं, तब हमको उंचा दूर दीख पड़ता है, अरु जब उसी जानवरको थोड़ीसी दूर जातेको देखते हैं तब धरतीसे बहुत निकट देखते हैं, इतनी दूरमें पृथ्वीकी इतनी गोलाइ नहीं हो सकती है, तथा आकाशको जब देखते हैं तब तंबूसा दिखलाइ देता है, इसमें जो कोइ यह बात कहे कि धरतीकी गोलाइके सबधसे आकाशकी गोल दीखता है, यह कहना ठीक नहीं, क्योंकि पृथ्वीकी इतनी दूर इतनी गोलाइ नहीं हो सकि है, इस वास्ते नेत्रोंमें जिस वस्तुके जाननेकी ऐसी योग्यता है, वैसी वस्तु दीखती है, यह कहना ठीक मालुम होता है.

तथा यह पृथ्वी जरतखंडादिककी बहुत जगें उंची, नीची, मालुम होती है, क्योंकि श्रीहेमचंद्रसूरि प्रमुख आचार्य पद्मप्रज्ञचरित्रादि ग्रंथोंमें लिखते हैं, कि लंकासेति इतने योजन पश्चिम दिशिकों जाइयें, तब आव योजन नीचे पाताललंका है, जे कर ये प्रमाण योजन होवें, तब तो क्या जाने अमेरिकाही पताललंका होवे। अरु नीची जगा होनेसे बुद्धिमानों को पृथ्वी गोल मालुम पड़ती होवेगी, इसी पाताल लंकाकी तरे और ज गेंजी धरती उंची नीची होवे, तो क्या आश्चर्य है। क्योंकि पश्चिम महावि

देहकी धरती एक हजार योजन उंची लिखी है, इसी तरें और जगेंजी उंची नीची धरतीके सबवसें कुठ औरका और दीख पड़े, तो जैनमतीकों श्रीअर्हत जगवंतके कहनेमें शंका न करनी चाहियें.

तथा कितनेक पुस्तकोमें लिखा देखा और सुनाजी है, जो अमेरिका दि मुलकोमें ऐसी विद्या निकाही है, कि जिस करके वो दो हजारदि वर्ष पहिलें जो मनुष्य मर गये थे, उनको बुलातेहैं, अरु उनसें वस्तुका सर्व हाल पूछते हैं, अरु वे सर्व अपनी व्यवस्था बतलाते हैं, परंतु परो द शब्द उनका सुणाइ देता है, वे प्रत्यक्ष नहीं दीखते हैं, तथा अनेक तरेंके तमासे दीखाते हैं, कि जिनके देखनेसें अल्पबुद्धियोंकी बुद्धि अस्त व्यस्त हो जाती है, तब उनके मनमें अनेक शंका कंखा उत्पन्न हो जाती हैं. जिसके सबवसें अर्हत कथित धर्ममें अनादर हो जाता है, क्यों कि उन जीवोंने नतो पूरे जैनमतके शास्त्र पढ़े हैं, औ न सुने हैं, इस वास्ते उनके मनको जलद अधीरज हो जाती है, परंतु अपने घरकी सर्व पुस्तकों बिना बांचे, बिना सुने, कुछ बातके वास्ते एक वारगी जिन धर्ममें शंका न लानी चाहियें, क्योंकि यह पूर्वोक्त सर्ववृत्तांत इंद्रजालकी पूर्णविद्या जिसको आती होवे, वो दिखा सकता है, मैंने किसी ग्रंथमें ऐसा लिखा देखा है, जो कुमारपाल राजाके समयमें एक बोधिदेव नामक ब्राह्मण था, उसने राजा कुमारपालकी श्रद्धा जैन मतसें हटानेके वास्ते कुमारपालसें जो प्रथम उनके वंशके मूलराज आदि सात राजाओं हो गये थे, उसको नरककुंडमें पड़े हुए, विहाय करते हुए, अरु ऐसें कहते हुए दिखपड़े, कि हे पुत्र ! जिस दिनसें तूने जैनधर्म अंगीकार किया है, उस दिनसें हम तेरे सात पुरुषों नरक कुंडमें जा पड़े हैं, जे कर तूं हमारा जला चाहे, तो जैनधर्म ठोड़ दे, ऐसी बात देख कर राजा कुमारपाल चित्तमें घबराया, तब जा कर अपने गुरु श्रीहेमचंद्राचार्यको पूछा, कि महाराज ! यह क्या वृत्तांत है ? तब श्रीहेमचंद्र आचार्यजीने कहा कि हे राजेंद्र ! ये सर्व इंद्रजालकी विद्या है, आर्ज मैंनी तुमको कुछ तमासा दिखाऊं ! तब राजा कुमारपालको मकानके अंदर ले मकानमें ले जा कर चउबीस तीर्थकर समसरणमें जूदे जूदे बैठे हैं, अरु कुमारपालके वेही सात पुरुषोंकी तीर्थकरोंकी सेवा करते हैं, अरु राजा कुमारपाल

स्थिर रहता है, परंतु यह मत जेनीयोंका नहीं है, उनके शास्त्रोंमें जो प्रगट लिखा है कि सूर्य चलता है, अरु पृथ्वी स्थिर रहती है, श्री सूर्यके प्रमण करनेके एक सौ चौरासी मंडल आकाशमें हैं, उन मंडलोंमें प्रवेश करना, अरु दिनमानका रात्रिमानका घटना, वधना, अरु मौसमोंका बदलना, ग्रहणका लगना, सूर्यके अस्त उदय होनेमें मतोंका विवाद, इत्यादि बात सर्व सूर्यप्रज्ञप्ति वा चंद्रप्रज्ञप्ति शास्त्रोंके पढ़नेसे अच्छी तौ मायुम पड़ जाती है.

अरु जो पृथ्वीके गोख होनेमें समुद्रके ऊहाजकी ध्वजा प्रथम दी जाती है, इत्यादि कहते हैं, सो कहनेवालोंकी समझमें ऐसी आती होगी, परंतु हमारी समझमें तो नहीं आती है, हम तो ऐसे समझते हैं कि हमारे नेत्रोंमें ऐसी ही योग्यता है, कि जिस्से वस्तु गोलादि दीखती है, क्योंकि जब हम सूधी सड़क पर खड़े होते हैं, तब हम पगोंकी जगें समक चौकी मायुम पड़ती है, अरु जब दूर नजरा देखते हैं, तब थोड़ी सड़क संकुचित मायुम पड़ती है, अरु आकाशमें पक्षीकों जब शिरके ऊपर उड़ता देखते हैं, तब हमको उंचा ही दीख पड़ता है, अरु जब उसी जानवरको थोड़ीसी दूर जातेको देखते हैं तब धरतीसे बहुत निकट देखते हैं, इतनी दूरमें पृथ्वीकी इतनी गोला नहीं हो सकती है, तथा आकाशको जब देखते हैं तब तंगूसा दिखला देता है, इसमें जो कोई यह बात कहे कि धरतीकी गोलाइके मध्यसे आकाशनी गोख दीखता है, यह कहना ठीक नहीं, क्योंकि पृथ्वीकी इतनी दूर इतनी गोलाइ नहीं हो सकती है, इस वास्ते नेत्रोंमें जिस वस्तुके जाननेकी ऐसी योग्यता है, ऐसी वस्तु दीखती है, यह कहना ठीक मायुम होना है.

तथा यह पृथ्वी नरतमंडादिककी बहुत जगें उंची, नीची, मायुम होती है, क्योंकि श्री हेमचंद्रमूरि प्रमुख आचार्य पद्मप्रनचरित्रादि ग्रंथोंमें लिखते हैं. कि खंकासेति इनने योजन पश्चिम दिशिकों जाइयें, तब आकाश योजन नीचें पाताखंका है, जे कर ये प्रमाण योजन होयें, तब तो क्या जाने अमेरिकाही पताखंका होवे. अरु नीची जगा होनेसे बुद्धिमानों को पृथ्वी गोख मायुम पड़ती होगी, इसी पाताखंकाकी तर और जगेनी धरती उंची नीची होवे, तो क्या आश्चर्य है. क्योंकि पश्चिम महादि

स्थिर रहता है, परंतु यह मत जेनीयोंका नहीं है, उनके शास्त्रोंमें जो प्रगट लिखा है कि सूर्य चलता है, अरु पृथ्वी स्थिर रहती है, ओ सूर्यके क्रमण करनेके एक सौ चौरासी मंडल आकाशमें हैं, उन मंडलोंमें प्रवेश करना, अरु दिनमानका रात्रिमानका घटना, वधना, अरु मौसमोंका बदलना, ग्रहणका लगना, सूर्यके अस्त उदय होनेमें मत्तोंका विवाद, इत्यादि बात सर्व सूर्यप्रज्ञप्ति वा चंद्रप्रज्ञप्ति शास्त्रोंके पढ़नेसे थोड़ी तो मालुम पड़ जाती है.

अरु जो पृथ्वीके गोल होनेमें समुद्रके ऊहाजकी ध्वजा प्रथम दीखती है, इत्यादि कहते हैं, सो कहनेवालोंकी समझमें ऐसी आती होवेगी, परंतु हमारी समझमें तो नहीं आती है, हम तो ऐसे समझते हैं, कि हमारे नेत्रोंमें ऐसी ही योग्यता है, कि जिस्से वस्तु गोलादि दीख पड़ती है, क्योंकि जब हम सूधी सड़क पर खड़े होते हैं, तब हमारे पगोंकी जगें सड़क चौकी मालुम पड़ती है, अरु जब दूर नजरसे देखते हैं, तब वोही सड़क संकुचित मालुम पड़ती है, अरु आकाशमें पक्षीकों जब शिरके उपर उड़ता देखते हैं, तब हमको उंचा दूर दीख पड़ता है, अरु जब उसी जानवरको थोड़ीसी दूर जातेको देखते हैं तब धरतीसे बहुत निकट देखते हैं, इतनी दूरमें पृथ्वीकी इतनी गोलाइ नहीं हो सकती है, तथा आकाशको जब देखते हैं तब तंबूसा दिखलाइ देता है, इसमें जो कोई यह बात कहे कि धरतीकी गोलाइके सबवसे आकाशकी गोल दीखता है, यह कहना ठीक नहीं, क्योंकि पृथ्वीकी इतनी दूर इतनी गोलाइ नहीं होसक्ति है, इस वास्ते नेत्रोंमें जिस वस्तुके जाननेकी ऐसी योग्यता है, वैसे वस्तु दीखती है, यह कहना ठीक मालुम होता है.

तथा यह पृथ्वी चरतखंडादिककी बहुत जगें उंची, नीची, मालुम होती है, क्योंकि श्रीहेमचंद्रसूरि प्रमुख आचार्य पद्मप्रज्जचरित्रादि ग्रंथोंमें लिखते हैं, कि लंकासेंति इतने योजन पश्चिम दिशिकों जाइयें, तब आठ योजन नीचे पाताललंका है, जे कर ये प्रमाण योजन होवें, तब तो क्या जाने अमेरिकाही पताललंका होवे। अरु नीची जगा होनेसे बुद्धिमानों को पृथ्वी गोल मालुम पड़ती होवेगी, इसी पाताल लंकाकी तरे और जगें धरती उंची नीची होवे, तो क्या आश्चर्य है। क्योंकि पश्चिम महावि

देहकी धरती एक हजार योजन उंची लिखी है, इसी तरे और जगेंजी उंची नीची धरतीके सबवसें कुठ औरका और दीख पडे, तो जैनमतीकों श्रीअर्हत जगवंतके कहनेमें शंका न करनी चाहियें.

तथा कितनेक पुस्तकोमें लिखा देखा और सुनाजी है, जो अमेरिका दि मुलकोमें ऐसी विद्या निकाली है, कि जिस करके वो दो हजारदि वर्ष पहिलें जो मनुष्य मर गये थे, उनको बुलातेहैं, अरु उनसें वस्तुका सर्व हाल पूठते हैं, अरु वे सर्व अपनी व्यवस्था बतलाते हैं, परंतु परो का शब्द उनका सुणाइ देता है, वे प्रत्यक्ष नहीं दीखते हैं, तथा अनेक तरेके तमासे दीखाते हैं, कि जिनके देखनेसें अल्पबुद्धियोंकी बुद्धि अस्त व्यस्त हो जाती है, तब उनके मनमें अनेक शंका कंखा उत्पन्न हो जाती हैं. जिसके सबवसें अर्हत कथित धर्ममें अनादर हो जाता है, क्यों कि उन जीवोंने नतो पूरे जैनमतके शास्त्र पडे है, ओ न सुने हैं, इस वास्ते उनके मनको जलद अधीरज हो जाती है, परंतु अपने घरकी सर्व पुस्तकों बिना बांचे, बिना सुने, तुठ बातके वास्ते एक बारगी जिन धर्ममें शंका न लानी चाहियें, क्योंकि यह पूर्वोक्त सर्ववृत्तांत इंद्रजालकी पूर्णविद्या जिसको आती होवे, वो दिखा सकता है, मैंने किती ग्रंथमें ऐसा लिखा देखा है, जो कुमारपाल राजाके समयमें एक बोधिदेव नामक ब्राह्मण था, उसने राजा कुमारपालकी श्रद्धा जैन मतसें हटानेके वास्ते कुमारपालसें जो प्रथम उनके वंशके मूलराज आदि सात राजाओं हो गये थे, उसको नरककुंडमें पडे हुए, बिलाप करते हुए, अरु ऐसे कहते हुए दिखपडे, कि हे पुत्र ! जिस दिनसें तूने जैनधर्म अंगीकार किया है, उस दिनसें हम तेरे सात पुरुषों नरक कुंडमें जा पडे हैं, जे कर तूं हमारा बला चाहे, तो जैनधर्म छोड दे, ऐसी बात देख कर राजा कुमारपाल चित्तमें घबराया, तब जा कर अपने गुरु श्रीहेमचंद्राचार्यको पूठा, कि महाराज ! यह क्या वृत्तांत है ? तब श्रीहेमचंद्र आचार्यजीने कहा कि हे राजेंद्र ! ये सर्व इंद्रजालकी विद्या है, आठ मैत्री तुमको कुठ तमासा दिखाजं ! तब राजा कुमारपालको मकानके अंदर ले मकानमें ले जा कर चउबीस तीर्थंकर समसरणमें जूदे जूदे बैठे हैं, अरु कुमारपालके वेही सात पुरुषोंकी तीर्थंकरोंकी सेवा करते हैं, अरु राजा कुमारपाल

लकों कहते हैं, कि हे पुत्र ! तू बना पुण्यात्मा है, कि जिसने जैनधर्म अंगीकार किया है, जिस दिनसे तूने जैनधर्म अंगीकार किया है, उस दिनसे हम नरककुम्हसे निकल कर स्वर्गवासी हुए हैं, इस वास्ते तू धर्ममें दृढ़ रहियो. तद् पीठें श्रीहेमचंद्रसुरि, राजा कुमारपालकों बाहिर लाये पीठें राजाने पूठी कि महाराज ! यह क्या तमासा आश्चर्यकारी है तब श्री हेमचंद्रसुरि कहते जये कि हे राजा ! ये इंद्रजालकी विद्या जिसकों थाती होये, वो कर सका है, क्योंकि इंद्रजाल विद्याके सत्ताईस पीठ हैं, जिनमेंसे सत्तरे पीठ संसारमें प्रचलित हैं, परंतु सत्ताईस पीठ में जानता हूं, और कोइ भी भारत वर्षमें नहीं जानता है, और जिन गुरुवोने हमकों ये विद्यादीनी थी, उनोने ऐसी आज्ञा की है, कि आगेकों तुमने किसीकों ये विद्या न देनी, क्यों कि इस विद्यासे बने अनर्थ उत्पन्न हो जायगे, क्योंकि इसका लमें जीव तुष्टयुद्धिवासे हैं, इस लिये उनकों ये विद्या जरूरी नहीं, इसी वास्ते हमारे आचार्यानें योनिप्राज्ञत शास्त्र विधेद कर दीया है, उसी यो निप्राज्ञतके अनुसार यह इंद्रजाल रचा हुआ है, इस योनिप्राज्ञतका कथ न व्यवहारनाप्यचूर्णामें लिखा है, कि उस योनिप्राज्ञतमें तंत्रविद्या है, जिस्से सर्प, घोडे, हाथी, बिगेरे जिंदे जानवर वस्तुओंके मिलानसे बन जाते हैं, तथा सुवर्ण, मणि, रत्नप्रमुख बन जाते हैं, उन मसालोंमें ऐसी मिश्रन शक्ति है, कि चाहे सो बना लो, इस वास्ते कोइ आज नहीं बन्तु देव कर जैनधर्मसे चलायमान न होना चाहिये. तत्त्वार्थकी महा नाप्यमें सामंतनद्र आचार्यजी लिखते हैं, कि इंद्रजालिया तीर्थकरके समान बाध सिद्धि सर्व बना सका है, इस वास्ते कोइ बातका चमरकार देवके जिन वचनोमें शंका कदापि न करनी.

तथा कितनेक जैनमत बाखोंकों यहनी आश्चर्य है, कि जदा आर्याय तमें दो प्रहर दिन होता है, तदा अमेरीकामें अर्द्धरात्रि होती है और ज दा अमेरीकामें दो प्रहर दिन होता है, तदा आर्यावर्तमें अर्द्धरात्रि होती है, कितनेक लोकोंने धनीयोंके हिसाबसे तथा तारकी ग्यारोंसे इस धान का निश्चय अष्टी नरेमे करा बतलाते है, इस धानका उत्तर में पयाय नहीं दे सका हूं, मेरी श्रद्धा ऐसी नहीं है कि पूर्व आचार्योंके अनुमारे दिना समाधान कर सकूं क्योंकि मेरी कल्पनासे कुछ जैनमत सत्य नहीं

हो सका है, जैनमत तो अपने स्वरूपसेही सत्य बनेगा, जे कर मेरी कल्पनाही सत्यका कारण होवे, तब तो किसी पूर्वाचार्योंकी अपेक्षा न रहेगी, तब तो जिसके मनमें जो अर्थ अग्रा लगे, सो अर्थ कर लेवेगा. जैसे वर्तमानमें किसी पाखंडी मस्करीने ऋग्वेदादि वेदों उपर स्वकपोल कल्पित अर्थ बनाये हैं, सो हमने बांचनी लीये हैं, उनोंने वेद मंत्रादि कोंके उपर जो ज्ञाप्य बनाया है, उसमें मंत्रोंके अर्थोंमें ऐसा लिखा है कि “अग्निवोट” अर्थात् धूये की कलसे चलनेवाले ऊहाज तथा रेलगाडीके चलनेकी विधि, तथा पृथ्वी गोल है, अरु सूर्यके चारों ओर घुमती है, अरु सूर्य स्थिर है, इत्यादि जो अंग्रेजोंने अपनी बुद्धिके बलसे विद्या उत्पन्न करी है, इन सर्व विद्यायोंका वेदोंमेंभी कथन है, अपने शिष्योंको वेदका महत्त्व जनानेके वास्ते स्वकपोलकल्पित अर्थ बना लीये हैं, अरु पूर्वे जो महीधरादि पंडितोंने वेदोंके उपर दीपिका तथा ज्ञाप्य रचे है, उनकी निंदा अर्थात् मूर्खता प्रगट करी है, वे मूर्ख थे उनको वेदका अर्थ नहीं आता था.

प्रश्न:—पिछले अर्थ ठोड कर जो नवीन अर्थ बनाये गये, इनका क्या कारण है?

उत्तर:—प्रथम तो वेदोंके प्राचीन ज्ञाप्य और दीपिका माननेसे वेदोंकी सत्यता, अरु ईश्वरोक्तता, तथा प्राचीनता सिद्ध नहीं होती. इत्ती वास्ते ईशावास्य उपनिषद वर्जके सर्व उपनिषदों, और सर्व ब्राह्मण ज्ञाग, तथा सर्व स्मृति, पुराणादि शास्त्र, ज्ञाप्य, दीपिकादि, मानने ठोर दीये, उनो ने यह विचार कीया है कि इन सर्व पुर्वोक्त ग्रंथोंके माननेसे हमारा मत दूसरे मतवाले खंनित कर देवेंगे, क्योंकि ये पूर्वोक्त सर्व ग्रंथ युक्ति प्रमाणसे बिकल हैं, अरु प्राचीनोने जो अर्थ करे हैं, उनमें बहुत अर्थ ऐसे हैं, कि जिनोंके सुननेसे श्रोता जनकोंनी लज्जा उत्पन्न होती हैं, क्योंकि महीधरकृत दीपिका जो वेदकी टीका है उसमें मंत्रादिकोंके जो अर्थ लिखे हैं, उनमें लिखा है कि यज्ञपत्नी घोडेका लिंग पकड़के अपनी योनिमें प्रक्षेप करे इत्यादि अर्थ है, सो मैं आगे लिखुंगा इत्यादि अर्थोंके ठोडने वास्ते अरु वेदोंके खंडन न होने वास्ते स्वकपोलकल्पित ज्ञाप्य बना कर मानुं अंग्रेजोंके चाल चलन और पंजिलके मनानुसार अर्थ बना

चे गये हैं, परंतु उसकों बुद्धिमान तो कोइजी मानता नहीं है, श्रु जो मानते हैं, वो कुछ जानते नहीं है, क्योंकि जब पूर्वले रूपि, मुनि, पंक्ति छूठे हैं, श्रु उनके बनाये हुये अर्थ असत्य हैं, तो अथके बनाये हुये क दापि सत्य नहीं हो सकेंगे ? जो जरुमेंही छूठ है, वे नवीन रचनासं क दापि सत्य न होवेंगे, इस वास्ते अपनी बुद्धिका विचार सत्य माननां, श्रु प्राचीन उन वेदोंके मानने वालोंका संप्रदाय अर्थकों छूटा माननां इस्सं अधिक निर्विवेकी श्रु अन्ध्यायशिरोमणि कौन हैं ? क्योंकि जब प्रा चीनोंके बनाये अर्थ छूठे उहरेगे, तब तिनके बनाये जये वेदजी छूठेही उहरेगे, इस वास्ते जो मतधारी हैं, यातो उनको अपने प्राचीनोंके कथ न करे हुये अर्थ मानने चाहियें, नहीं तो उस मतका श्रु उस मतके शास्त्रोंको ठोड देना चाहियें. इसी वास्ते मेरी ऐसी श्रुता है, कि जो जैन मतमें प्रामाणिक श्रु पंचांगीकारक आचार्य सिख गये हैं, उनके अनुसा रही हमकों कथन करना चाहियें, परंतु स्वकपोलकल्पित नहीं. जे कर कोइ स्वकपोलकल्पित मानेगा. वो जैनमती कदापि नहीं धन सकेगा, श्रु उसकी कल्पनाजी सत्य सत्य नहीं होवेगी ? क्योंकि जब सर्व मतों के पूर्वाचार्य छूठे उहरेगे, तब नवी कल्पना करने वाले क्यों कर सचे धन बैठेंगे ? इस वास्ते पूर्वोक्त प्रश्नका उत्तर पंचांगीके प्रमाणसं नहीं दे सकता हूं, क्यों कि १ शास्त्र बहुत विभेद हो गये हैं, तथा २ आर्यरहित सूरि के समयमें चारों अनुयोग नगरके श्रुस्थानुयोग रचा गया है. तथा ३ संक्षिप्त आचार्यके समयमें बारह वर्ष काल पमा था, उसमें शास्त्र कंठ से जूझ गये थे, फेर सर्व साधुओंका दक्षिण मथुरामें समाज करके जि स जिस आचार्य. साधुके जिस जिस शास्त्रका जो जो म्यस, कंठ रह ग या, सो सो म्यस एकत्र करके सिखा गया, ४ पीठें देवर्द्धि गणि हमाथ ए प्रवृत्ति आचार्योंनि पत्रोंके उपरि एक क्रोट ग्रंथ सिखा, दोष ठोड दी ये, ५ प्रभावक चरित्रमें सिखा है, कि सर्व शास्त्रोंकी टीका सिखी थी, वो सर्व विभेद हो गई, तथा पीठमें ब्राह्मणोंने तथा बौद्धोंने ग्रंथोंका नाश किया, ६ तथा मुसलमानोंने तो सर्वमतोंके शास्त्र मटीमें मिश्राय दिये. तिनमेंसुं जो रह गये, वे जंगलोंमें गुन रहनेमें गस गये, तथा जो श्रु जंगलोंमें हैं, सर्व हमने पांचे नहीं हैं, तो फेर इनने उग्रज जैन शा

आमैं दीननेसैं हम क्यों कर सर्व शंकायोंका समाधान कर सके ? इस वास्ते जिनमतमें शंका न करनी चाहिये, हमनें सर्वमतोंके शास्त्र देखे हैं, परंतु जैनमत समान अति उत्तम मत कोइ नहीं देखा है, इस वास्ते इस मतमें दृढ़ रहना चाहिये. १ शंका अतिचार उसको कहते हैं, कि जो जिनवचनोंमें शंका करे, जैसेकि ए वार्ता जिनेश्वर देवकी कही सत्य है, वा नहीं ? यह प्रथम अतिचार है.

२ दूसरा आकांक्षा अतिचार, सो अन्यमत वालोंका अज्ञान कष्ट देख कर तथा किसी पाखंडीके पास किसी विद्यामंत्रका चमत्कार देख कर तथा पूर्व जन्मके अज्ञान कष्टके फल करके अन्यमत वालोंको सुखी अरु धनवान् देख कर मनमें विचारें जो अन्यमत वालोंका धर्म अरु ज्ञान अछा है, जिसके प्रभावसे वे धनी, अरु पुत्र आदि परिवार वाले होते हैं, इस वास्ते मेंजी इनहीका धर्म करे, कि जिस कर के मेंजी धनी, अरु पुत्रादि परिवार वाला हो जाउंगा, यह आकांक्षा अतिचार, उन जीवों को होता है, कि जिनको जिनधर्मका अछी तरेसे बोध नहीं है, क्योंकि जैनधर्मवालेजी सर्व दरिद्री अरु पुत्रादि परिवारसे रहित नहीं हैं, तैसे ही अन्यमत वालेजी सर्व धनी अरु परिवारवाले नहीं हैं. इस वास्ते सर्व अपने अपने पूर्व जन्म जन्मांतरके करे हुए पुण्य पापके फल हैं, क्योंकि जे जीव, मनुष्य जन्ममें सात कुव्यसनी हैं, अरु कत्ताइ, बागुरी (बुद्धन) प्रमुख कितनेक धनी (धनवाले) अरु पुत्रादि परिवारवाले हैं, अरु कि तनेक इस अवस्थासे विपरीत हैं, इस वास्ते यही सत्य है कि पूर्व जन्म में करे हुए सुकृत दुःकृतका फल है, प्रायः इस जन्मके कृत्योंका फल नहीं है, सर्व मतोंवाले राजा हो चुके हैं, अरु रंकजी बहुत हैं, इस वास्ते अन्यमतकी आकांक्षा न करे जे कर करे, तो दुसरा अतिचार.

३ तीसरा वित्तिगिह्य नामक अतिचार है, सो कोइ जीव अपने पूर्व जन्मके करे दूये पापोंके उदयसे दुःख पाता है, तब ऐसा विचार करे, जो मैं धर्म करता हूं, तिसका फल मुझे कब मिलेगा ? अर्थात् मिलेगा कि नहीं ? अरु जो धर्म नहीं करते हैं, वो सुखी हैं, अरु हम तो धर्म करते हैं, तोजी दुःखी हैं, इस वास्ते कौन जाने धर्मका फल होवेगा कि नहीं होवेगा ? तथा साधुके मखिन वस्त्र तथा मखिन शरीर रखते देख कर मनमें

जुगुप्सा करे, कि यह साधु अछे नहीं है, जो मखिन वस्त्र तथा मखिन शरीर रखते हैं, इस वास्ते यह संसारसे क्यों कर तरंगे ? जे कर उष्ण जलसे स्नान कर लेवे, तो कौनसा महाव्रत जंग हो जाता है ?

उत्तर:—जे कर धर्मका फल न होवे, तो संसारकी विचित्रता कदापि न होवे, इस वास्ते धर्मका फल अवश्यमेव है, तथा जो साधु मखिन वस्त्र रखते हैं, उनका तो यह कारण है कि सुंदर वस्त्र रखनेसे मन शृंगारसकूं चाहता है, अरु स्त्रीयांजी सुंदर वस्त्र वालोंको देख कर उनसे प्रेमा करेकी इच्छा करती हैं, इस वास्ते शीघ्र पाखनें वाले साधुओंको शृंगार करना अछा नहीं, अरु ज्ञान जो है, सो कामका प्रथमांग है, इस वास्ते साधुओंको उचित नहीं, अरु कोइ कारण पडवेसे साधु हाथ पगादिकोंकूं धोय लेवे, तो कुछ झूषण नहीं. अरु साधुओंको आपणा शरीर उपर ममत्वजी नहीं है, अरु शुचिमात्र स्नान तो साधु करते हैं, परंतु शरीरके सुख वास्ते तथा शरीरके चमकाने (दमकानेके) वास्ते नहीं करते हैं, क्योंकि जेनीयांकी ये श्रद्धा नहीं है, जो जलमें स्नान करनेसे पाप दूर हो जाते हैं, परंतु जलस्नानसे शरीरकी मेख दूर हो जाती है, शरीरकी तत्त मिट जाती है, आत्मस्य दूर हो जाता है, परंतु पाप दूर नहीं होते हैं, जे कर जलस्नानसे पाप मिट जावें, तो अनायास करके सर्वकी मोक्ष हो जावेगी ? ऐसे कौन है, जो जलसे स्नान नहीं करता है ? अरु जो साधुको मेखा समझना, यही बड़ी भूल्यता है, क्योंकि शरीरके मेख होनेसे आत्मा मेखा नहीं होता है, मेखा तो पाप करनेसे होता है, अरु जगत् व्यवहारमें स्त्रीसे संजोग करनेसे और किसी मखिन वस्तुका स्पर्श करनेसे, मेखापना मानते हैं, अरु साधु तो इन सर्व वस्तुओंका त्यागी है, इस वास्ते मेखा नहीं, वलके साधुओंको धन्यवाद देना चाहिये. जो तत्त पडती है, खो चखती है, पसीना बहता है, तोनी साधु नंगे पांय, अरु नंगा शिर करके चखते हैं, आ रातको ठंढे दूये मकानमें सोते हैं, पंखा करते नहीं तथा कोमल शय्या (पड्यंकादि) पर सोते नहीं ओ रात्रिको जल पीते नहीं, दिनमेंजी उष्ण जल पीते हैं, यह नो बुरा जाली तप है. परंतु जो कोइ साधु तो बन रहे हैं, अरु जय गर्मी लगती है, तब महिषकी तरें जलमें जा पडते हैं, ऐसे सुखशीलिये तो तर

जायंगे कि जिनोके किसी बातका नियम नहीं, हाथी, घोड़े, रेल प्रमुख की असवारी करनी, तथा जो फल हैं, सो सर्व जह्ण करने, धन रख णां, मकान बांधणे, खेती करणी, गौ, जैस, हाथी, घोड़े, रथ, शस्त्र रख ने, ठल बलसें लोकों पासों धन ले लेनां, स्त्रीयोंसें विषय सेवन करनां, अन्ना खानां, मांसजह्ण करनां, मदिरा पीनां, जांगके रगड़े, चरसकी चिलमें उमानां, पगोंकों तथा शरीरकों वेश्याकी तरें मांजनां, चित्तमे बड़ा अजिमान रखनां, दंड पेले, गस्त करने जानां, इत्यादि अनेक साधुओंके अनुचित काम करने, फेर श्रीश्री स्वामीजी महाराज वन बैठनां, हम म हंत हैं, हम गद्दीधर हैं, हम जट्टारक हैं, हम श्रीपूज्य हैं, हम जगतका उच्चार करते हैं, हम बड़े अद्वैत ब्रह्मके वेत्ता हैं, हम शुरू ईश्वरकी उपा सना बताते हैं, मूर्तिपूजन पाखंडका नाश करते हैं.

अब जग्य जीवोंकों विचार करनां चाहियें कि यह पूर्वोक्त कुगुरु क्या जलके स्नान करनेसें संसारसमुद्रसें तर जायंगे? अरु जो जीवहिंसा, जूठ, चोरी, स्त्री, अरु परीग्रह, इन पाचोंके त्यागी, शरीरमें ममत्व रहि त, प्रतिबंध रहित, काम क्रोधके त्यागी, महातपस्वी, मधुकर वृत्तिसें जिज्ञा लेने वाले इत्यादि अनेक गुण सुशोभित हैं, वे क्या जलमें स्नान न करनेसें पातकी हो जावेंगे,? कदापि न होवेंगे इस वास्ते साधुकों देख के जुगुप्सा न करनी, जे कर करे तो तीसरा अतिचार लागे ॥

चौथा मिथ्यादृष्टिकी प्रशंसारूप अतिचार है, मिथ्यादृष्टि उसकों कहते हैं, जो जिनप्रणीत आज्ञासें बाहिर है, क्यों कि सर्वज्ञके कहे हुए वचन कों तो वो मानता नहीं, अरु असर्वज्ञके कहे हुए शास्त्रोंको सच्चा मान ता है, उन शास्त्रोंमें जो अयोग्य बातें कही हैं, उनके विधाने वास्ते स्वकपोलकल्पित जाण्य, टीका, अर्थ, बना करके मूर्खलोकोंकों बढ़का ते गल्ल बजाते फिरते हैं, आ जिनके नियमधर्म कोइ नहीं, कृपण पशु योंकों मार जानते हैं, धूर्तपणेंते सच्चा बन कर मूर्खोंकों मिथ्यात्व जाल में फसाते हैं, ऐसे मिथ्यादृष्टि होते हैं, उनकी प्रशंसा करनी, तथा जो अज्ञानी जिनाज्ञासें बाहिर हैं, उनकों कहनां कि ये बड़े तपस्वी हैं? महा पुरुष हैं? बड़े पंथित हैं? इनके बराबर कौन हैं? इनोंने धर्मकी वृद्धि वास्ते अवतार लीया है? तथा मिथ्यादृष्टि कोइ व्रत यज्ञादि करे, तब ति

सकी प्रशंसा करे कि तुम बना अष्टा काम करते हो, तुमारा जन्म स फल है, इत्यादि प्रशंसा करे, सो चौथा अतिचार है.

५ पांचमा मिथ्यादृष्टिकी परिचयकरनी सो अतिचार है, सो मिथ्या दृष्टिके साथ बहुत (मिलाप) रख, एक जगें चोजन संवास करे, इत्यादि है, क्योंकि बहुत मिथ्यादृष्टिके साथ मेल रखनेसे मिथ्यादृष्टिकी वा सना लग जानेसे धर्मसे त्रष्ट हो जाता है, इस वास्ते मिथ्यादृष्टिका बहुत परिचय करना ठीक नहीं. यह पांचमा अतिचार है.

अब जब गृहस्थकों सम्यक्त्व देते हैं, तब उसकों गुरु ठे आगार बत लाते हैं. जे कर ये ठे कारणोंसे तुमकों कोइ अनुचित कामजी करणा पड़े, तो तुमकों ये ठे आगार रखाये जाते हैं, जिनसे तुमारा सम्यक्त्व कलंकित न होवेगा, सो ठे आगार कहते हैं.

१ प्रथम “रायाजिउगेण” सो राजा उस नगरका स्वामी जे कर वो राजा कोइ अनुचित काम जोरावरीसे करावे, तो सम्यक्त्वमें छूपण नहीं.

२ दूसरा “गणाजिउगेण” गणनाम ज्ञाति तथा पंचायत, वे कहे, जो यह काम तुम जरूर करो, नहीं तो ज्ञाति, तथा पंचायत तुमकों बना दंड देवेंगी, उस वखत जे कर वो काम करना पड़े, तो सम्यक्त्वमें अतिचार नहीं.

३ तीसरा “बलाजिउगेण” सो बलवंत चोर म्हेछादि तिनोंके वश पन नेंत वो कोइ अपनी जोरावरीसे अनुचित काम करवावें, तोजी छूपण नहीं.

४ चवथा “देवाजिउगेण” सो कोइ दुष्ट देवता क्षेत्रपालादि व्यंतर शरीरमें आवेश करके अनुचित काम करावे, तो जंग नहीं. तथा कोइ देवता मरणांत दुःख देवे, तब मनमें धैर्य न रहे, तब मरणांत कष्ट जानके कोइ विरुद्ध काम करना पड़े, तो सम्यक्त्वमें अतिचारजंग नहीं.

५ पांचमा “गुरुनिग्गहेण” गुरु सो माता, पितादि उनके आग्रहसे कुछ अनुचित करणा पड़े, तथा गुरु कहियें, धर्माचार्यादि, तथा जिनमंदिर, सो कोइ अनार्य गुरुकों संकट देता होवे, तथा जिनमंदिरकों तोरता होवे, जिनप्रतिमाकों खंडन करता होवे, सो गुरु निग्रह हैं. तिनोंकी रक्षा वास्ते कोइ अनुचित काम करणा पड़े, तो सम्यक्त्वमें छूपण नहीं.

६ छठा “वित्तिकंतारेण” वृत्ति जे दुष्कालादि आपदा आ पड़े, तब आजीविकाके वास्ते किसी मिथ्यादृष्टिके अनुसार चलना पड़े, तथा आ

सकी प्रशंसा करे कि तुम बना अष्टा काम करते हो, तुमारा जन्म फल है, इत्यादि प्रशंसा करे, सो चौथा अतिचार है.

५ पांचमा मिथ्यादृष्टिकी परिचयकरनी सो अतिचार है, सो मिथ्या दृष्टिके साथ बहुत (मिलाप) रख, एक जगें जोजन संवास करे, इस दि है, क्योंकि बहुत मिथ्यादृष्टिके साथ मेल रखनेसे मिथ्यादृष्टिकी सना लग जानेंसे धर्मसे ब्रष्ट हो जाता है, इस वास्ते मिथ्यादृष्टिका बहुत परिचय करना ठीक नहीं. यह पांचमा अतिचार है.

अब जब यहस्यकों सम्यक्त्व देते हैं, तब उसकों गुरु ठे आगार बतावाते हैं. जे कर ये ठे कारणोंसे तुमकों कोइ अनुचित कामजी करणा पड़े, तो तुमकों ये ठे आगार रखाये जाते हैं, जिनसे तुमारा सम्यक्त्व संकित न होवेगा, सो ठे आगार कहते हैं.

१ प्रथम "रायानिर्गणं" सो राजा उस नगरका स्वामी जे कर को राजा कोइ अनुचित काम जोरायरीसे करावे, तो सम्यक्त्वमें झूषण नहीं.

२ दूसरा "गणानिर्गणं" गणनाम ज्ञाति तथा पंचायत, ये कहे, जो यह काम तुम जरूर करो, नहीं तो ज्ञाति, तथा पंचायत तुमकों बना देवेगी, वस यखत जे कर वो काम करना पड़े, तो सम्यक्त्वमें अतिचार नहीं.

३ तीसरा "वज्रानिर्गणं" सो वज्रयंत चोर म्हेछादि तिनोंके यश फल नैंते वो कोइ अपनी जोरायरीसे अनुचित काम करवावे, तोनी झूषण नहीं.

४ चवथा "देवानिर्गणं" सो कोइ छुष्ट देवता क्षेत्रपालादि व्यंत शरीरमें आवेश करके अनुचित काम करावे, तो भंग नहीं. तथा कोइ देवता मरणांत दुःख देवे, तब मनमें धैर्य न रहे, तब मरणांत कष्ट जानके कोइ विरुद्ध काम करना पड़े, तो सम्यक्त्वमें अतिचारभंग नहीं.

५ पांचमा "गुरुनिर्गणं" गुरु सो माता, पितादि उनके आपद्से ठे अनुचित करणा पड़े, तथा गुरु कहियें, धर्माचार्यादि, तथा जिनमंदिर, सो कोइ अनार्य गुरुकों मंकट देना होवे, तथा जिनमंदिरकों तोंगना होवे, जिनप्रतिमाकों खंडन करना होवे, सो गुरु निपट है. तिनोंकी रक्षा वास्ते कोइ अनुचित काम करणा पड़े, तो सम्यक्त्वमें झूषण नहीं.

६ छठा "विनिर्दिष्टांगणं" जनि जे छुप्काछादि आपदा आ पड़े, तब आजीविकाके वास्ते किमी मिथ्यादृष्टिके अनुसार चखना पड़े, तथा आ

जीविकाके वास्ते कोइ विरुद्ध आचरण करनां पड़े, तो छूषण नहीं. एक तो यह ठै वस्तुके आगारोंको ठै ठंडी कहते हैं. तथा चार आगार और जी हैं. सो कहते हैं.

१ “अन्नध्वजाजोगेण” अस्यार्थः कोइ कार्य अजाण पणे उपयोग दीयां विना औरका और हो जावे, अरु जब याद आ जावे, तब वो कार्य फेर न करे, यह प्रथम आगार.

२ “सहस्तागारेण” सो अकस्मात् कोइ काम करे, अपने मनमें जान ता है, यह काम मैंने नहीं करणां, परंतु योगोंकी चपलतासें तथा नित्य बहुत अभ्याससेंती जानता हूआजी विरुद्ध कार्य हो जावे, तो सम्यक्त्व में जंग नहीं यह दूसरा आगार.

३ “महत्तरागारेण” सो कोइ मोटा लाज होता है, परंतु सम्यक्त्वमें छूषण लगता है, तथा कोइ मोटा झानीकी आज्ञासें कमवेशी करनां पड़े, तो यहजी आगार है यह तीसरा आगार.

४ चौथा “सब्रह्मसाहिवृत्तिआगारेण” सो सर्व समाधिब्यत्यसें कोइ बड़ा सन्निपातादि रोगोंके विह्वलसेंती बावरा हो जावे, तथा अतिबृद्ध हो जानेंसें स्मृतिजंग हो जावे, तथा रोगादिक आये मनमें आर्त्तध्यान हो जानेंसें, तथा सर्पादिके डंक मारणेसें, इत्यादि अस्तमाधिमें यह आगार है. इस्सें सम्यक्त्व तथा व्रत जंग नहीं होता है, परंतु किस्ती मूर्खके कहे चुनेंसें आर्त्तध्यानमें प्राण त्यागने योग्य नहीं, कितनेक जिनमतके अनजि झोंका यह जी कहनां हैं, कि चाहो कुछ हो जावे, तोजी जो निमय लीया है, उसको कजी तोरनां न चाहिये, परंतु यह कहनां सर्वथा ठीक नहीं. क्यों कि जब पहिलांहि आगार रखे गये, तो फेर व्रतजंग क्यों कर हू आ ? अरु जो आर्त्तध्यानमें मरजाते हैं, अरु आगार नहीं रखते हैं, वे जिनमार्गकी शैलीके अजान हैं, इत वास्ते ठै ठंडी, अरु चार आगार, सर्व वारोही व्रतोमें जानने, अरु साधुके सर्वप्रत्याख्यानोंमें अनशन पर्यंत यही चार आगार जानने ॥ इति श्री तपगण्डिये गणिश्रीमणिविजय तठि प्य मुनिश्री बुद्धिविजय तठिप्य मुनि आत्माराम आनंदविजयविरचिते जैनतत्त्वादशे सम्यग्दर्शननिर्णयनामा सप्तमपरिच्छेदः संपूर्णः ॥ ७ ॥

॥ अथ अष्टम परिच्छेद प्रारंभः ॥

इस परिच्छेदमें चारित्रका स्वरूप लिखते हैं. चारित्र धर्मके दो जेद हैं. एक सर्वचारित्र, एक देशचारित्र, उसमें सर्वचारित्र धर्म तो साधुमें होता है, तिसका स्वरूप गुरुतत्त्व परिच्छेदमें लीख आये हैं. तहांसे जा खेनां अरु देश चारित्रके बारह जेद हैं, सो यहस्यका धर्म है, सो बा ह व्रतोंका किंचित् स्वरूप लिखते हैं. तिनमें प्रथम स्थूलप्राणातिपात तका स्वरूप लिखते है.

१ प्रथम प्राणातिपातविरमणव्रतके दो जेद हैं. एक द्रव्यप्राणातिपात दूसरा जावप्राणातिपात व्रत, तिनमें द्रव्य प्राणातिपात व्रत ऐसे है, कि पर जीवोंकों अपणी आत्मा समान जान करके तिनके दश द्रव्यप्राणोंकी रक्षा करे, सो द्रव्यप्राणातिपात विरमणव्रत कहियें. ये व्यवहार दयारूप है, तथा दूसरा जावप्राणातिपात, सो अपणा जीव कर्मके वश पडा हुआ दुःख पाता है, अपने जे जाव, प्राण, ज्ञान, दर्शन, चारित्रादिक, तिन का मिथ्यात्व कपायादिक अशुद्ध प्रवर्तनसें प्रतिक्षण घात हो रही है. सो अपने जीवकों कर्मशत्रुसें लुंडाने वास्ते उपाय करणां, सो उपाय यह है, कि आत्मरमणता करे, परजाव रमणता त्यागे, शुद्धोपयोगमें प्रवर्तें. कर्मके उदयमें अव्यापक रहे, एक स्वजावमग्नता, यही समस्त कर्मशत्रुके उधेद करनेकों अमोघ शस्त्र हैं. एतावता सकल परजाव इष्टता दूर करी, स्वरूप सन्मुख उपयोग रक्के, तिसका नाम जावप्राणातिपात विरमणव्रत कहियें, इसीका नाम जाव दया हैं. इहां स्थूल नाम मोटा दृष्टिगोचर हाले, चाले, औसा जो व्रस जीव तिसकों संकल्प करके न हणुंगा.

इहां हिंसा चार प्रकारकी है. एक आकुटी, सो निषेध वस्तुकों उत्सा हसें करे, जैसें संपूर्ण फलका जरूया करनां, श्रावककों निषेध है, अरु जिसने जितने फल खानेमें रक्के हैं, उन फलोंमेंसूंजी किसी फलका जड या नहीं करनां, अरु जो मनमें उत्साह धरके जरूया करे, तो आकुटी हिंसा होवे. दूसरी दर्पहिंसा, सो चित्तके उधरंगसें (उन्मत्तपणसें) मनमें गर्व धरके दौड करे, जैसें गाडी घोडा प्रमुख दोरता हैं, यह आकुटी द

र्षहिंसा हैं. तीसरी प्रमादहिंसा, सो आकुटी अर्थात् जानके काम जोग में तीव्र अजिज्ञापासें कामका जोस चढाने वास्ते त्रस जीवकी हिंसा करे, किसी जीवको मारके गोखी माजुम प्रमुख बना करके खावे, सो आकुटी प्रमादहिंसा है. चौथी कल्पहिंसा, सो अपणा घरका काम काज, रंधण, पीसणादि करते त्रस जीवकी हिंसा हो जावे, सो प्रमादहिंसा है. इन चारो हिंसायोमें प्रथम हिंसा तो विवकुल नहीं करणी, तिस वास्ते यहां संकल्प करके आकुटी, तथा दर्प करके त्रस जीव हणनेका त्याग करे, जेत्तें यह कीनी जाती है, इसको मैं मारुं? अैसे संकल्प करके हणै, हणावे, तिसको आकुटीसंकल्प कहते हैं. अैसे संकल्प करके निपराधी जीवोंको बिना कारणके न हणूं न हणाउं, अरु सांसारिक आरंज रंधनादि करते, तथा पुत्रादिकके शरीरमें कीडे आदिक जीव उत्पन्न होवे, तदा औषधादि करते यत्नें करे. तथा धोडा, बलद, प्रमुखकों चावकादि मारणां पडे उत्तका आगार रक्के, तथा पेटमें कृमी, गंडोला, तथा पगमें नहरवा, अर्थात् वाला, तथा हरत, चम, जू, प्रमुख अपने शरीरमें उपजे, तथा मित्रादिक स्वजनादिकके शरीरमें उपजे, तिसके उपचार करणे की जयणा रक्के, क्योंकि साधुकों तो त्रस, अरु स्यावर, सूक्ष्म, अरु बादर, सर्व जीवोंकी हिंसा नवकोटी विशुद्ध प्रमादके योगोंसें सर्व हिंसाका त्याग है, इस वास्ते साधुकों तो बीस बीश्वा दया है, अरु गृहस्थसें तो सवा विश्वा दया पल सकती है, तिसका स्वरूप बिल्वते है.

॥ गाथा छंद ॥ जीवा सुहुमा धृला, संकप्पा आरंजा जवे डुविहा ॥
 तवराह निरवराहा, ताविक्ता चव निरविक्ता ॥ १ ॥ अर्थ:-जगतमें जीव दो प्रकारके हैं. एक थावर, दूसरा त्रस, तिनमें थावरोंके दो जेद हैं. एक सूक्ष्म, दूसरा बादर, तिनोमें सूक्ष्मजीवोंकी तो हिंसा होतीही नहीं है, क्योंकि अति सूक्ष्म जीवोंके शरीरकों बाह्य शत्रुका थाव नहीं लगता है, परंतु इहां तो सूक्ष्म शब्द, थावर जीव, पृथ्वी, पाणी, अग्नि, पवन. वन स्फतिरूप जो बादर पांच थावर हैं. तिनका वाचक है, अरु स्थूलजीव तो छीद्रिय तींद्रिय. चतुरिंद्रिय, पंचिंद्रिय जानना, इन दोनो जेदोंमें सर्व जीव ध्या गये, तिन सर्वकी त्रिकरणशुद्धसें साधु रक्षा करता है. तिस वास्ते साधुके बीस विश्वा दया हैं, अरु थावकसें तो पांच थावरकी दया पलती

नहीं है, सचित्त आहारादि करणसें अवश्य हिंसा होती है. इस वास्ते दश विश्वा दया छूट हो गई, शेष दश विश्वा रह गई, एतावता एक ब्रस जीवकी दया रहे, उस ब्रस जीवकेजी दो जेद हैं, एक संकल्पसें हननां, दूसरा आरंजसें हननां, तिनमें आरंज हिंसाका आवककों त्याग नहीं है, किंतु संकल्प हिंसाका त्याग है, अरु आरंज हिंसामें तो यत्न है, परंतु त्याग नहीं है, क्योंकी आरंज हिंसा तो आवकसें होती है, इस वास्ते दश विश्वामेंमूं पांच विश्वा फेर जाता रखा, एतावता संकल्प करके ब्रस जीवकी हिंसाका त्याग है, फेर इसकेजी दो जेद हैं, एक सापराधी है, दूसरा निरपराधी है, तिनमें जो निरपराधी जीव हैं, उसकों नहीं हननां, अरु सापराधी जीवकूं हननेकी जयणा है, जिस वास्ते सापराधी जीवकी दया सदा सदैव आवकसें नहीं पड़ती है, क्योंकि घरमेंसें चोर चोरी करके चम्बु लीये जाता है, सो बिना मारे कूटे जोरता नहीं, तथा आवक की म्रीमें कोई अन्य पुरुष अनाचार सेवता देखनेमें आवे, तिसकों मारणां पड़े, तथा कोई आवक राजा है, तथा राजाका आदेशसेंती युद्ध कर नेकों जाये, तब प्रथम तो आवक शस्त्र चलाये नहीं, परंतु जब शत्रु शस्त्र चलावे मारणकों आवे, तब तिसकों मारणां पड़े, तथा मित्रादि जनावर रक्षानेकों आवे, तब उसकों मारणां पड़े, तब संकल्पसेंती हिंसाका त्याग नहीं. इस वास्ते पांच विश्वामेंमूं ती अर्थ जाते रहे, पीछे अष्टादश विश्वा दया रह गई, मात्र निरपराधी ब्रस जीव दृष्टिगोचर आवे, तिनकों न मारें? यह नियम रहा, इसकेजी दो जेद हैं. एक सापेक्ष, दूसरा निरपेक्ष, इनमें ती सापेक्ष निरपराधी जीवकी आवकमें दया नहीं पड़ती है, क्योंकि आवक जब आप घोड़ा, घोड़ी, बैल, रथ, गाड़ी प्रमुखकी अप्पारी कर्कें घोडादिकों को दानका है, तब घोड़े आदिककों बायकादि मारना है, यहां घोड़े तथा बैलादिकोंने कृत्रिमका अपगम नहीं कर है, उसकी पीठ ऊपर तो चढ़ रहा है, अरु यह जानना नहीं कि इस विचारे जीवकी चपलनेकी जक्ति है कि नहीं है? जबवे चपलते हैं, तथा नहीं चपलते हैं, तब अज्ञान है, यह निरपराधीकोंकी दुःख । पुत्र, पुत्री, न्यायी, गोपीदि मुखकें दानमें कीया पड़े, नि

नौके दूर करणे वास्ते कीमायोंकी जगामें औपधि लगानी पडती है, अरु इन जीवोंने श्रावकका कुछ अपराधजी नहीं करा है, क्योंकि वो विचारे अपने कमोंके वशसें ऐसी योनिमें उत्पन्न हूये हैं, कुछ श्रावकका बुरा करनेकी जावनासें उत्पन्न नहीं हूये हैं, तो उनकी हिंसाजी श्रावकसें त्यागी नहीं जाती है, इस वास्ते फेर अर्क जाता रहा. शेष सवा विश्वाकी दया रह गइ, यह सवा विश्वा दयाजी शुद्ध श्रावक होवे, सो पास सक्ता है, एतावता संकल्पसें निरपराध ब्रस जीवोंको कारण विना हणुं नहीं, यह प्रतिज्ञा जहां लगि अपणी शक्ति रहे, तहां लगि पावे, निर्ध्वसपणा न करे, सदा मनमें यह जावना रखे, कि मतमेरेसें कोई जीव मर जाय?

तथा घरमें आरंज करतेजी यत्न करे, तथा लकनी जलाने वास्ते लेवे तब सनी हूई न लेवे, परंतु आगेंको जिसमें जीव न पने, ऐसी पकड़ी, सूकी लकनी लेवे, और रसोईकी बखत लकडीको ऊटका कर जीव रहित करके जलावे, तथा घी, तेल, मीठा प्रमुख रस जरी वस्तुके वासणका मुख बांध कर यत्नसें राखे, उघामा न रखे, तथा चूलेके उपर अरु पाणीके स्थान उपर चंद्रवा अर्थात् ठत उपर कपना ताणै, तथा खानेको जो अन्न ल्यावे, सो चीजा हूआ न ल्यावे, शुद्ध नवा अन्न खानेको ल्यावे, कदापि एक वर्षके उपरांतका अन्न ल्यावे, तो जिसमें जीव न पने होवे, सो ल्यावे, तथा पाणीके ठानने वास्ते बहुत गाढा दृढवस्त्र रखे, एक प्रहर पीठें पाणीको फेर ठान लेवे, जो जीव निकले, सो जीव जिस कूवेका पाणी होवे, उसीमें डाल देवे, तथा वर्षा ऋतुमें बहुत जीवोंकी उत्पत्ति हो जाती है, तिस वास्ते गाडी रथकी अख्तारी न करे, क्योंकि जहां चक्र फिरता है, तहां असंख्य जीवोंका विध्वंस होता है, हरिकाय, बहुबीजां फल, ब्रस संयुक्त फल न खावे, तथा खाटमें माकड प्रमुख जीव पन जाते हैं, इस वास्ते धूपमें न रखे, छतरी खाट बदल लेवे, तथा सड्या हूवां अन्न धूपमें न रखे, जूठा पाणी, अन्नके संसर्गवाला मोरीमें न गेरे, क्योंकि मोरीमें बहुत जीव उत्पन्न हो जाते हैं, अरु मोरीके सन जानेसें घरमें विमारी हो जाती है, तथा चैत्रवदि एकमसें ले कर पत्तोंवाला शाक, आठ मास तक न खावे, क्योंकि पत्रशाकमें बहुत ब्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं, एक तो ब्रस जीवोंकी हिंसा होती है, अरु छतरा उन ब्रस जी

घोंके खानेसे अनेक रोग (विमारीयां) उत्पन्न हो जातीयां हैं, अरु शीत कालमें एक मास तथा उष्णकालमें बीस दिन, तथा वर्षा ऋतुमें पंद्रह दिनके उपरांतकी बनी हुई मिठाई (पकात्र) न खावे, क्योंकि उसमें त्रस स्यावर जीव उत्पन्न होते हैं, अरु खानेवालेको रोगोत्पत्तिजी हो जाती है, तथा वासी अन्न, रोटी प्रमुख न खावे, क्योंकि इनमें जीवोत्पत्ति होती है. अरु रोगजी हो जाता है, बुद्धि मंद हो जाती है, तथा घरमें सावर्णी अर्थात् पुहारी, कोमल शण प्रमुखकी रखे, जिसे जीव न मरे, तथा स्नान, बहुत जलसे न करे, अरु रेतली भूमिकामें स्नान करे, तथा मोटी परातमें बैठके स्नान करे, अरु स्नानका पाणी मैदानमें थोका थोका करके गेर देवे, मोरी उपर बैठके स्नान न करे, तथा जहां पर्यंत थोड़े पापवाला व्यापार मिले, तहां लग महापापकारी व्यापार नौकरी आदि न करे, तथा किसीका हक तोड़े नहीं, घरमें जूठे अन्नका पाणी दो घड़ी उपरांत न रखे, क्योंकि उसमें जीव उत्पन्न हो जाता हैं, तथा जो वस्तु उठावे, तथा रखे, तब पहिलां उस जगाको नेत्रोंसे देख लेवे, पूंज लेवे, पीठसे वस्तु रखे, मोटी मोरीमें जल गेरे नहीं, तथा दीवा बत्ती जलावे, तो फानसादि यत्नसे जीवरक्षा करे, तथा जिस पात्रसे पाणी पीवे, वो पात्र, फेर जलमें जूठा न रूखे, क्योंकि मुखकी लाखां लगनेसे जीव उत्पन्न होते हैं, अरु बहुतोंकी जूठ खाने पीनेसे बुद्धि संक्रमण हो जाती है, अरु केष्क रोग असें हैं कि जिस रोगीका जूठा खावे, पीवे, उस रोगीका रोग, खाने पीनेवालेको लग जाता है, सो रोग यह है कि कुष्ठ, क्षय, रेजस, शीतला वगैरे. इस वास्ते वस्तु जूठी न करनी, अरु बहुतोंके साथ एकठा खावे नहीं, अरु मटकेसे पाणी काढने वास्ते दंडीदार काठका चट्टु रखे. इत्यादि शुद्ध व्यवहारमें प्रवर्त्ते, तो आवकके दया, सवा विश्व होवे, इसी रीतीसे प्रथम व्रत आवकके शुद्ध हैं, इस व्रतके पांच अतिचार हैं, अर्थात् पांच कलंक हैं, तिनको व्रजें, सो लिखते हैं.

१ प्रथम वध अतिचार. सो क्रोधके उदयसे अरु बलके अजिमानसे निर्दय हो कर गाय, घोड़ा, प्रमुखको कूटे, मारके चलावे, सो प्रथम अतिचार

२ दूसरा वधअतिचार. सो गाय, बलद, बठडा प्रमुख जीवोंको कठिन न जवरा बंधनसे बांधे, वो जीव कठिन बंधनसे अति दुःख पाते हैं,

अरु कदापि अग्निका जय हुआ तो जलदि बूट नहीं सकते हैं, तब मर जी जाते हैं, इस वास्ते कठिन बंधनजी अतिचार है, इस हेतुसे जनावर को डीले बंधनसे बांधना चाहिये. अरु कोइ गुनेगार मनुष्य होवे, उस कोंजी निर्दय हो कर गाढा बंधन बांधना चाहिये, यह दूसरा अतिचार है.

३ तीसरा ठविठेद अतिचार है. सो बैल प्रमुखका कान, नाक, ठिदा वे, नय गेरे, खस्ती करे, यह तीसरा अतिचार है.

४ चउथा अतिचारारोपण अतिचार है, सो बैल प्रमुखके उपर जित ना चार लादनेकी रीती है, तिससे अधिक चार लादे, तब अतिचारारोपण अतिचार होता है, श्रावकों तो सदा जित बैल, रासज, गाडी प्र मुखमें चार लादते होवे, उसमेंजी पांच सेर, दश सेर, चार कम लादना चाहिये, तो ब्रत शुद्ध रहे, तिसमेंजी जे कर कोइ जानवरकी बखनेकी शक्ति कम होवे, तब ब्रिवेकी होवे, सो तिस चारकोंजी थोडा कर देवे, अरु जानवर दुर्बल होवे, तो तिसकी घास दाणेकी खर लेवे, परंतु मनमें ऐसा विचार न करे कि सर्व लोक जितना चार लादते हैं, तिन के बराबर मेंजी लादता हुं, यह तो व्यवहार शुद्ध है. ऐसा न विचारे अधिक बोज होवे, तो आर जाडा कर लेवे श्रावकोंका यह व्यवहार है.

५ पांचमा अतिचार जात पाणीका व्यवछेद करनां, सो जो बलद घोडेके खाने योग्य होवे, सो बंद कर देवे, अथवा उसमेंसूं कतुक काड लेवे, अरु खानेका समय लंघा कर पीठे खानेको देवे, तो अतिचार लगे, तथा किस्तीकी आजीविका नौकरी बंद करे, बोजी इसी अतिचारमें है. श्रावक तो दासी, दास, कुटुंब चापाये, बैलादि, इन सर्वके खाने पीनेकी खर ले के पीठे आप भोजन करे, अरु उपलक्षणसे हिंसाकारी मंत्र, तंत्रादि किस्तीको करे, बेजी अतिचार जानने. यह पांच अतिचार श्रावक जान तो लेवे, परंतु करे नहीं. यहां बारह ब्रतोंके सर्व अतिचार जंग होनेके संजवासंजवकी विशेष चर्चा देखनी होवे, तब धर्मरत्न प्रकरणकी टीका श्रीदेवेंद्रसूरिकृत हैं, सो देख लेनी, इहां तो निम्नकेवल अतिचारही में लिखूंगा ॥ इति श्रावक प्रथम ब्रतं संपूर्ण ॥

अथ दूसरा स्थूलमृपावाद विरमणब्रतक स्वरूप लिखते हैं. स्थूल नाम है मोटेका, उस मोटे जूठका विरमण (त्याग) करनां, क्योंकि जूठ

बोझनेसें जगत्में उसकी अप्रतीति हो जाती हैं, अपयश होता है, धर्मकी निंदा होती है, तथा अपणे मतलब वास्ते जो कम वेश करनां इ सका जो त्याग, सो मृपावादविरमणव्रत कहते हैं. तिस मृपावादके दो जेद हैं, एक अव्यमृपावाद, दूसरा जावमृपावाद, तिनमें जो जान कर तथा अजान पणसें जूठ बोले, सो अव्यमृपावाद है, तथा सर्व परजाव वस्तुकों अर्थात् पुद्गलादि जरु वस्तुकों आत्मत्व बुद्धि करके अपणा कहे, तथा राग, द्वेष, कृष्णादि लेश्यासें आगमविरुद्ध बोले, शास्त्रका सचा अर्थ कुयुक्तिसें नष्ट करे, उत्सूत्र बोले, उसकों जावमृपावाद कहते हैं.

यह व्रत सर्वव्रतोंमें मोटा है, इसके पालनेमें बहुत शुरु उपयोंग अरु हुस्पारी चाहियें, क्यों कि प्रथमव्रतमें तो जीव मात्रके जाननेसें दया पल सकती है. अरु दूसरोंकी वस्तुकों बिना दीये न लेनेसें अदत्तविरमणतीसरा व्रत पल जाता है, तथा स्त्री मात्रका संग त्यागनेसें चौथा व्रत पलता है, तथा नवविध परिग्रहके त्यागनेसें परिग्रहव्रतजी पल जाता है, इसी तरें एकेक अव्यके जाननेसें यह चारो व्रत पाले जाते हैं, अरु मृपावाद विरमणव्रत तो जहां लगि पट्टाव्यकी गुणपर्यायसें तथा अव्य, क्षेत्र, काल, जावकी अष्टी तरेंसें पिठाण न होवे, सम्मति प्रमुख अव्यानुयोगके शास्त्र न पढे, बहुत निपुन ज्ञानवान् न होवे, तहां तलक पालनां कठिन है, क्योंकि एक पर्यायमात्रजी विरुद्ध जापण करनेसें यह व्रत जंग हो जाता है, इसी वास्तेही साधुओंकों बहुत बोझणां शास्त्रमें निषेध करा है, अरु जे पूर्वोक्त चारों महाव्रतोंमेंसूं एक महाव्रत जेकर जंग हो जावे, तय तो चारित्र जंग होवे, अरु नहींजी जंग होवे, क्यों कि जेकर एकही कुशील सेवे, तो सर्वथा चारित्र जंग होवे, शेषव्रतो संकलसें देशजंग होवे परंतु सर्वथा जंग नहीं होवे, यह व्यवहार जाप्यमें कहा है. परंतु उसका ज्ञान, दर्शन, जंग नहीं होवे, अरु जब मृपावादविरमणव्रत जंग होवे, तय तो ज्ञान, दर्शन, अरु चारित्र, यह तीनोंही जगामूलसें जाते रहते हैं. अरु मर करके पुर्गतिमें जाता है, अनंत संसारो दुर्खन बोधी हो जाता है, इस वास्ते जेकर यह व्रत पालनां होवे, तो पट्टाव्यके गुण पर्याय जाननेमें अति उद्यम करे, जेकर बुद्धिकी मंदता होवे, तय गीतार्थके कहने प्रमाण श्रद्धा प्ररूपणा करे, क्योंकि अव्यमृपावाद

के त्यागी जीव तो यह दर्शनमेजी हो सके हैं, परंतु जावमृषावादका त्यागी तो एक श्रीजिनैन्द्रदेवके मतमेंही मिलेगा, जो जीव श्रद्धारुचि शुद्ध धारेगा, सोइ होवेगा. अब इस मृषावादके पांच मोटे जेद हैं, सो श्रावककों अवश्य वर्जने चाहियें, सो कहते हैं.

१ प्रथम कन्यालीकजुठ, सो अपने मिलापीकी कन्या है, उसकी सगाइ होने लगी होवे, तब कन्याके लेने वाले पूछे कि यह कन्या कैसी है ? तब वो मिलापीकी प्रीतिसें उस कन्यामें जो दूषण होवे सो ठिपावे, गुण न होवे तोजी अधिक गुणवाली कह देवे, कि यह कन्या निर्दोष है, औ सी कुलवान्, लक्षणवान्, साक्षात् देवांगना समान तुमकों मिलनी मुशकिल है, ऐसा कह देवे, अरु जे कर मिलापीके साथ रूप होवे, तदा वो कन्या जो निर्दोष लक्षणवंती होवे, तोजी कहे कि इस कन्यामें अछे लक्षण नहीं है, बिडालनेत्री है, इसके साथ जो संबंध करेगा, वो पश्चात्ताप करेगा, ऐसे अणहोये दूषण बोल देवे, यह कन्यालीक जुठ है. प्रथम तो व्रतधारी श्रावक किसीकी सगाइ जगडेमें पने नहीं, अरु जे कर आपणा संबंधी मित्रादिक होवे वो पूछे, तब यथार्थ कहे, कि नाइ ! तुम अपणा निश्चय कर लो, क्योंकि जन्मपर्यंतका संबंध है, ऐसे कहे, परंतु जुठ न बोले. यह कन्यालीकमें उपलक्षणसेंती सर्व दोषवालेका जुठ न बोले.

२ दूसरा गवालीक जुठ. सो सर्व चौपद जो हाथी, घोडा, बलद, गाय, जैस, प्रमुख संबंधी जुठ न बोले.

३ तीसरा जून्यालीक जुठ. सो दूसरेकी धरतीको अपनी कहे, तथा औरकी जूमिकों औरकी कहे, तथा घर, हवेली, बानी, बाग, (बगीचा) वृद्धादिक, संबंधी तथा सर्व परीग्रह संबंधीजी जुठ न बोले.

४ चौथा धापणमोसाका जुठ है. कोइ पुरुष श्रावककों प्रतीत वाला जान कर, उसके पास बिना साक्षी तथा लिखत करे बिना कोइ वस्तु रख गया है, फिर वो मांगने आवे, तब नामुकर जावे, कहे कि मैं तुमकों जानताही नहीं, तुम कौन हो ? ऐसा जुठ बोलके उसकी वस्तु रख लेवे, यहजी श्रावकने नहीं करना.

५ पांचमा जुठी साक्षी जरनी. सो दो जण आपसमें जगन्ते हैं, तिसमें जुठे पासों धन ले कर अथवा उसके मुंहसाइ जैस जुठी गवाही देनी,

दे देवे, जे कर उस वस्तुके स्वामीकों न जाने, अरु अपणा मन दृढ रहे, तो लेवे नहीं, अरु कदाचित् बहुमोली वस्तु होवे, अरु मनदृढ न रहे, तो उस वस्तुको ले कर अपने पास कितनेक दिन रखे, जे कर उसका मालक कोइ जान पड़े, तो उसको दे देवे, जे कर उसका स्वामी कोइ मासम न पड़े, तो धर्मखातेमें उस धनको लगा देवे, जेकर खोज अधिक होवे, तो अर्द्ध धर्ममें लगा देवे. तथा अपणी जमीनकूं खोदतां तिसमेंसूं धन निकल आवे, तो रखनेका आगार है, परंतु इसमेंजी अर्द्धा जाग अथवा चौथा हिस्सा धर्ममें लगावे, तथा दूसरेकी जगा मोलसें खीनी होवे, उसमेंसूं खोदतां जे कर धन निकल आवे, जे कर मनमें संतोष होवे, तब तो उस मकान वालेको वो धन दे देवे, जे कर खोज होवे, तब आधा धर्ममें लगावे, अरु आधा अपने पास रखे, तथा कोइ पुरुष अपने पास धन रख कर, पीठेंसें मर गया होवे, अरु उसका कोइ बं रस न होवे, तब आवक उस धनको जखे पंचके आगे जाहर करे, जो कुछ पंच कहे, सो करे, कदापि देश कालकी विपमतासें उस धनको जा हेर करते कोइ राजसंबंधी क्लेप उठता मालुम पड़े, कोइ दुष्ट राजा जो नके वशसें कहे कि तेरे घरमें औरजी ऐसा धन है. इत्यादि होवे, तब तो मौन करके उस धनको धर्मस्थानमें लगा देवे.

तथा घरकी चोरी सो यह है कि:-घरकी सर्व वस्तुओंका मालक माता पिता है, तिनके पूठे बिना धन बख्तादि लेनेकी जयणा रखे, अथवा जिस के साथ प्रेम होवे, तथा जो संबंधी होवे, जिसके घरमें जाने आनेका अरु खाने पीनेका व्यवहार होवे, उसके बिना पूठे कोइ फलादि वस्तु खानेमें आवे, उसका आगार रखे, परंतु जे कर उस वस्तु के खानेसें मालककोका मन दुःखे, तो न लेवे. इसी रीतीसें तीसरा अदत्तव्रत पावे. यह व्यवहार शुरु अदत्तादान विरमणव्रत है.

अरु निश्चयसेंती तो जितना अवंधपरिणाम हुआ है, गुणस्थानकी वृद्धि होनेसें बंध व्यवष्टेद हुआ, सो निश्चय अदत्तविरमणव्रत कहिये हैं. इस व्रतके पांच अतिचार हैं, उसको बजें सो कहते हैं.

१ प्रथम तेनादृढ अतिचार है, सो चोरकी चोराइ वस्तु तिसको तेनादृढ कहते हैं. सो वस्तु न लेवे, एतावता चोरीकी वस्तु जाण कर के न लेवे,

क्यों कि जो चोरीकी वस्तु जानके लेता है, वो लेने वालाजी चोर है, जे कर जैनमतके शास्त्रोमें सात प्रकारके चोर लिखे हैं ॥ यदाहु ॥ चोर श्रौरापको मंत्री, जेदङ्गः क्राणककयी ॥ अन्नदः स्थानदश्चैव, चोरः सप्त विधः स्मृतः ॥ १ ॥ यह प्रथम अतिचार है.

२ दूसरा प्रयोगअतिचार. सो चोरी करने वालोंको प्रेरणा करणी कि:- श्ररे ! तुम चुप चाप निर्व्यापार आज कल क्यों बैठ रहे हो ? जे कर तुमारे पास खरबी नहीं होवे, तो में देता हूं, अरु तुमारी व्याइ हुइ वस्तु में बेच देजंगा, तुम चोरी करणे वास्ते जाउं. इत्यादि वचनों कर के चोरोंको प्रेरणा करणी, यह दूसरा अतिचार है.

३ तीसरा तत्प्रतिरूपकव्यवहार अतिचार. सो सरस वस्तुमें नीरस वस्तु मिला करके बेचे, जैसे केशरमें कशुंजादिमिला करके बेचे, घीमें ठाठादि, हिंगमें गुंदादि, खोटी कस्तूरी खरी करके बेचे, अफगूनमें खोट मि लाने, पुराणा वस्त्र रंगा कर नवेके जाव बेचे, रूडको पाणीसें जिंजो कर बेचे, दूधमें पाणी मिलायके बेचे, इत्यादि करे, तो तीसरा अतिचार लगे.

४ चौथा राजविरुद्धगमन अतिचार है. सो अपने गामके वा देशके राजाने आज्ञा दीनी है, जो फलाणे गाममें जाणां नहीं. इत्यादि जो रा जाकी आज्ञा है, उसका उल्लंघन करनां, बैरी राजाके देशमें अपने रा जाके हुकुम बिना जानां, सो चौथा अतिचार है.

५ पांचमा खोटा तोला, मापा, करणेंका अतिचार है. सो कूट तोलां, मापा, करणा, कमती तोलसें तो देणां, अरु अधिक तोलसें ले लेणां, यह पांचमा अतिचार है. यह पांचो अतिचारको ब्रजे ॥ इति तृतीयव्रतं संपूर्ण ॥

४ चौथा मैथुनसेवनेका त्याग करनां, तिसका नाम मैथुनत्याग व्रत कहते हैं. तिसमैथुनके दो जेद हैं, एक अव्यमैथुनत्याग, दूसरा जाव मैथु नत्याग, उसमें अव्यमैथुन तो परस्त्री तथा परपुरुषके साथ संगम करनां, सो पुरुष स्त्रीका त्याग करे, अरु स्त्री पुरुषका त्याग करे, रतिक्रीडा काम से वनका त्याग करे तिसको अव्यव्रह्मचारी तथा व्यवहारव्रह्मचारी कहियें.

दूसरा जाव मैथुन है. सो एक चेतन पुरुषके विषयविलास परपरिण तिरूप, तथा वृष्णा समता रूप, इत्यादि कुवासना, सो निश्चय परस्त्रीको मिलनां तिसके साथ दाव पाव कामविलासकरनां, सो जावमैथुन जान

नां. तिसकों जिनवाणीके उपदेशसें, तथा गुरुकी हित शिक्षासें ज्ञान दूथा तब जातिहीन जान करके अनागत कालमें महा दुःखदायी जान कर पूर्वकालमें इसकी संगतसें अनन्त जन्म मरणका दुःख पाया, इस वास्ते इस विजातीय स्त्रीकों तजनां ठीक है, अरु मेरी जो स्वजाति स्त्री परम भक्त, उत्तम, सुकुलिनी, समतारूप सुंदरी, तिसका संग करनां ठीक है. अरु विजाय परिणतिरूप परस्त्रीनें मेरी सर्वविभूति हर लीनी है, तो अथ सगुरुकी सहायसेंती ए दुष्ट परिणामरूप जो स्त्री, संग लगी हुई थी, तिसका थोडा थोका निग्रह करूं, त्यागनेका जाय आदरूं, जिस्सें शुद्ध ज्ञाय घटरूप घरमें आ जावे, तथा स्वरूप तेजकी वृद्धि होवे, ऐसी सम ज पा करके परपरिणतिमें भग्नता त्यागे, ओ कर्मके उदयमें व्यापक न होवे, शुद्ध चेतनाका संगी होवे, सो जाय मैथुनका त्यागी कहियें. इहां अल्पमैथुनके त्यागी तो पद दर्शनमें मिल सके हैं, परंतु जायमैथुनका त्यागी तो श्रीजिनवाणी सुननेसें जेदज्ञान जब घटमें प्रगट होता है, तब जयपरिणतिसें सहज उदासीन रूप जाय मैथुनका त्यागी जैनमत मेंही होता है. इहां स्थूल परस्त्रीगमन व्रत. सो परस्त्रीका त्याग करनां, परपुरुषकी विवाहिता स्त्री, तथा परकी रखी हुई स्त्री, तिसके साथ अनाचार न सेवनां, ऐसा जो प्रत्याख्यान करनां सो परदारगमन विरम एवम है. अरु जो अषणी स्त्री है, तिसमें संतोष करूं, ऐसा जो व्रत धारण करे, तिसको स्वदारसंतोष व्रत कहियें.

देवांगना तथा तिर्यचाणी इनके साथ तो कायासें मैथुन सेवनका निषेध है, तथा वर्णमान स्त्री वर्जके आर स्त्रीसें विवाह न करे, तथा दिनमें अषणी स्त्रीसें नी संजोग न करे, क्योंकि दिनसंजोगसें जो संतान उत्पन्न होता है, सो निर्बल होना है, जे कर कामाधिक होवे, तो दिनकी नी मर्यादा कर सेवे, इसी नरें स्त्रीनी परपुरुषका त्याग करे, इसी रीतिसें जो या व्रत पावे, हम व्रतके पांच अतिचार है, उसकों वर्जें, सो विवर्ते है.

१ प्रथम अपरिण्हीतागमन अतिचार. सो विना विवाही स्त्री (कुमारी) तथा विधवा इनको अपरिण्हीना कहते हैं, क्योंकि इनका कोई उत्तार नहीं है, जे कर कोड अल्पमति विषयान्निवासी मनमें विचारे, कि मैं तो परस्त्रीका त्याग करा है, अरु एतो किसीकी नी स्त्रीयां नहीं है, इनके

साथ विषय सेवनेसें मेरा व्रतजंग नहीं होवेगा ? ऐसा विचार करके कुमारी तथा विधवा स्त्रीके साथ जोग विलास करे, तो प्रथम अतिचार लग जावे, तथा स्त्रीजी व्रत धारक हो कर कुमारे पुरुषसें तथा रंमे पुरुषसें व्यभिचार सेवे, तब तिस स्त्रीकोंजी अतिचार लगे.

१ दूसरा इत्तरपरिगृहीतागमन अतिचार है. तिसका स्वरूप कहते हैं. इत्तर नाम थोड़े कालका है, सो थोड़ेसे काल वास्ते किसी पुरुषने धन खरच के वेश्यादिकोंको अपनी करके रखी है, इहांकोइ अज्ञानके उदयसें मनमें ऐसा विचार करे कि मेरे तो परस्त्रीका त्याग है, अरु इस वेश्यादिकों तो मैंने अपनी स्त्री बना करके थोड़ेसे काल वास्ते रखी है, तो इसके साथ विषय सेवनेसें मेरा व्रतजंग नहीं होवेगा ? ऐसे अज्ञानके विचारसें उसके साथ संगम (विषय सेवन) करे, तो दूसरा अतिचार लगे. अरु स्त्रीकोंजी जब अपनी सौकणकी वारीके दिनमें अपने जर्तारसें विषय सेवे, वो अपने मनमें ऐसा विचार करे, कि अपने पति के साथ विषय सेवनेसें, मेरा व्रतजंग नहीं होवेगा, क्यों कि मैंने तो परपुरुषका त्याग करा है ? यह दूसरा अतिचार. इन पूर्वोक्त दोनों अतिचारोंको जो श्रावक जानता है, कि ये श्रावकों करने योग्य नहीं अरु फेर जे कर करे, तो व्रतजंग होवे, परंतु अतिचार नहीं.

३ तीसरा अनंगक्रीडा अतिचार है. सो अनंग नाम कामका है, तिस काम कंदर्पको जाग्रत करना, आलिंगन, चुंबन प्रमुख करना, नेत्रोंका हाव, जाव, कटाक्ष, हास्य, उष्ण, मस्करी प्रमुख परस्त्रीसें करे, सो दिलमें शोचता है कि मैंने तो परस्पर एक शय्या उपरि विषय सेवनेका त्याग करा है, परंतु पूर्वोक्त अनंगक्रीडा तो नहीं त्यागी है, परंतु वो मूढमति यह नहीं जानता है, कि ऐसा काम करने वालेका व्रत कदापि न रहेगा, अरु मनसें उस जीवने महापाप उपार्जन कर लीया, निश्चय नयके मत से उसका व्रतजंगजी हो गया, तथा अपनी स्त्रीसें चौरासी आसनोसें जोग करे, तथा पंदरा तिथिके हिसाबसें स्त्रीके अंगमर्दनादिकरके काम जगावे, तथा परम कामाजिलापी होनेसें जब अपनी स्त्रीका जोग न मिले, तब हस्तकर्म करे, स्त्रीजी काम व्याप्त हो कर गुह्यस्थानमें कोइ वस्तु संचार करके हस्तकर्म करे, तब स्त्रीकोंजी अतिचार है, तिस वास्ते श्रावकों जे

नां. तिसकों जिनवाणीके उपदेशसं, तथा गुरुकी हित शिक्षासं ज्ञान दूआ तब जातिहीन जान करके अनागत कालमें महा दुःखदायी जान का पूर्वकालमें इसकी संगतसे अनंत जन्म मरणका दुःख पाया, इस वासे इस विजातीय स्त्रीकों तजनां ठीक है, अरु मेरी जो स्वजाति स्त्री परम जक्त, उत्तम, सुकुलिनी, समतारूप सुंदरी, तिसका संग करनां ठीक है. अरु विजाव परिणतिरूप परस्त्रीमें मेरी सर्वविभूति हर द्विनी है, तो अब सगुरुकी सहायसेंती ए दुष्ट परिणामरूप जो स्त्री, संग लगी दूई थी, तिसका थोडा थोका निग्रह करूं, त्यागनेका जाव आदरूं, जिस्सें शुद्ध जाव घटरूप घरमें आ जावे, तथा स्वरूप तेजकी वृद्धि होवे, ऐसी समज पा करके परपरिणतिमें मग्नता त्यागे, ओ कर्मके उदयमें व्यापक न होवे, शुद्ध चेतनाका संगी होवे, सो जाव मैथुनका त्यागी कहियें. इहां अव्यमैथुनके त्यागी तो पद दर्शनमें मिल सके हैं, परंतु जावमैथुनका त्यागी तो श्रीजिनवाणी सुननेसें जेदज्ञान जय घटमें प्रगट होता है, तब जबपरिणतिसें सहज उदासीन रूप जाव मैथुनका त्यागी जैनमत मेंही होता है. इहां स्थूल परस्त्रीगमन व्रत. सो परस्त्रीका त्याग करनां, परपुरुषकी विवाहिता स्त्री, तथा परकी रखी दूई स्त्री, तिसके साथ आनाचार न सेवनां, ऐसा जो प्रत्याख्यान करनां सो परदारगमन विरमणव्रत हैं. अरु जो अपणी स्त्री है, तिसमें संतोष करूं, ऐसा जो व्रत धारण करे, तिसको स्वदारसंतोष व्रत कहियें.

देवांगना तथा तिर्यचणी इनके साथ तो कायासें मैथुन सेवनका निषेध है, तथा वर्त्तमान स्त्री वर्जके ओर स्त्रीसें विवाह न करे, तथा दिनमें अपणी स्त्रीसेंजी संजोग न करे, क्योंकि दिनसंजोगसें जो संतान उत्पन्न होता है, सो निर्वल होता है, जे कर कामाधिक होवे, तो दिनकीजी मर्यादा कर लेवे, इसी तरें स्त्रीजी परपुरुषका त्याग करे, इसी रीतिसें चौथा व्रत पावे, इस व्रतके पांच अतिचार हैं, उसकों वर्जे, सो सिखते हैं.

१ प्रथम अपरिग्रहीतागमन अतिचार. सो बिना विवाही स्त्री (कुमारी) तथा विधवा इनकों अपरिग्रहीता कहते हैं, क्योंकि इनका कोइ जर्तार नहीं है, जे कर कोइ अल्पमति विषयाजिह्वापी मनमें विचारे, कि मैंने तो परस्त्रीका त्याग करा है, अरु एतो किसीकीजी स्त्रीयां नहीं है, इनके

साथ विषय सेवनेसे मेरा व्रतजंग नहीं होवेगा ? ऐसा विचार करके कुमारी तथा विधवा स्त्रीके साथ जोग विलास करे, तो प्रथम अतिचार लग जावे, तथा स्त्रीजी व्रत धारक हो कर कुमारे पुरुषसे तथा रंगे पुरुषसे व्यभिचार सेवे, तब तिस स्त्रीकोंजी अतिचार लगे.

१ दूसरा इत्तरपरिगृहीतागमन अतिचार है. तिसका स्वरूप कहते हैं. इत्तर नाम थोड़े कालका है, सो थोड़ेसे काल वास्ते किसी पुरुषने धन खरच के वेश्यादिकोंको अपनी करके रखी है, इहांकोइ अज्ञानके उदयसे मनमें ऐसा विचार करे कि मेरे तो परस्त्रीका त्याग है, अरु इस वेश्यादिकों तो मैंने अपनी स्त्री बना करके थोड़ेसे काल वास्ते रखी है, तो इसके साथ विषय सेवनेसे मेरा व्रतजंग नहीं होवेगा ? ऐसे अज्ञानके विचारसे उसके साथ संगम (विषय सेवन) करे, तो दूसरा अतिचार लगे. अरु स्त्रीकोंजी जब अपनी सौकणकी वारीके दिनमें अपने जर्तारसे विषय सेवे, वो अपने मनमें ऐसा विचार करे, कि अपने पतिके साथ विषय सेवनेसे, मेरा व्रतजंग नहीं होवेगा, क्यों कि मैंने तो परपुरुषका त्याग करा है ? यह दूसरा अतिचार. इन पूर्वोक्त दोनों अतिचारोंको जो श्रावक जानता है, कि ये श्रावकों करने योग्य नहीं अरु फेर जे कर करे, तो व्रतजंग होवे, परंतु अतिचार नहीं.

३ तीसरा अनंगक्रीडा अतिचार है. सो अनंग नाम कामका है, तिस काम कंदर्पको जाग्रत करनां, आलिंगन, चुंबन प्रमुख करनां, नेत्रोंका हाव, जाव, कटाक्ष, हास्य, उष्ठा, मस्करी प्रमुख परस्त्रीसे करे, सो दिलमें शोचता है कि मैंने तो परस्पर एक शय्याउपरि विषय सेवनेका त्याग करा है, परंतु पूर्वोक्त अनंगक्रीडा तो नहीं त्यागी है, परंतु वो मूढमति यह नहीं जानता है, कि ऐसा काम करने वालेका व्रत कदापि न रहेगा, अरु मनसे उस जीवने महापाप उपार्जन कर लीया. निश्चय नयके मत से उसका व्रतजंगजी हो गया, तथा अपनी स्त्रीसे चौरासी आसनोंसे जोग करे, तथा पंदरा तिथिके हिसाबसे स्त्रीके अंगमर्दनादि करके काम जगावे, तथा परम कामाजिलापी होनेसे जब अपनी स्त्रीका जोग न मिले, तब हस्तकर्म करे, स्त्रीजी काम व्याप्त हो कर गुह्यस्थानमें कोई वस्तु संचार करके हस्तकर्म करे, तब स्त्रीकोंजी अतिचार है, तिस वास्ते श्रावकों जे

सैं तैसैं करकें कामेछा घटानी चाहियैं. क्यों किं विषयके घटानेसैं अरु वीर्यके रखनेसैं बुद्धि, आरोग्य, दीर्घायु, बल प्रमुखकी वृद्धि होती है, अरु अधिक काम सेवनेसैं मन मलिन, पापवृद्धि, राजयक्षा, (क्षय) व्रम, मूर्छा, क्लम, स्वेदादि रोग उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते श्रावककों अत्यंत विषय मग्न होनां न चाहियैं. केवल जिस्सैं वेदविकार शांत हो जावे, तितनांही मेथुन करनां चाहियैं. अरु जब काम उत्पन्न होवे, तब स्त्री संबंधि काम सेवनकी जगाकों जाजरू समान मलमूत्रसैं जरी दूई विचारे, मलीन वस्तु है, मुखमें दुर्गंध जरी है, नाकमें सिंघाणकी दुर्गंध है, कानांमें भैल है, पेटमें बिछा, मूत्र, जरा है, नसायांमें स्त्राये पीयेका रस, रुधिर, हारु, चाम, चर्बी, वाय, पित्त, कफ, जरा है, महा अशुचिका पू तला है, जिस अंगमें वास लेवेगा, उहां महा दुर्गंध उठलती है, अनि त्य अशाश्वत है, सरुन, पतन, विघ्नंसन हो जानां, यह इसका स्वभाव है, तो फेर दे मूढ जीव! स्त्रीकों देखकर क्यों कामाकुल होता है? थेसैं विचारसैं कामकों शांत करे, ए तीसरा अतिचार है.

४ चौथा परविवाह करण अतिचार है. सो अपणी पुत्र पुत्री बिना, यश के वास्ते, पुण्यके वास्ते, और लोकोके विवाह करावे, सो चौथा अतिचार.

५ पांचमा तीव्रानुराग अतिचार है. सो जे पुरुष स्त्री ऊपर तीव्र अ निस्त्राप धरे, पराइ स्त्रीकों देख कर मनमें बहुत चाहना धरे, उस स्त्रीके देखे बिना क्षणमात्र रहि न सके, चलतां, फिरतां, उस स्त्रीहीमें चित रहै, अथवा देहमें कामकी वृद्धि वास्ते थफयून, माजूम, जांग, हरताइ, पारा प्रमुख स्त्रावे, तीव्रकाममें प्रीति करे, तब पांचमा अतिचार लगे, अथवा स्त्रीनी कामकी वृद्धि करने वास्ते अनेक उपाय करे, बहुत हाव जाव विषय लावसा करे, तब पांचमा अतिचार लगे, यह पांच अतिचार श्रावक जाने, परंतु आदरे नहीं, इन पांचो अतिचारोंका विशेष स्वरूप धर्मरत्न प्रकरणकी टीकामें जाननां ॥ इति चतुर्थव्रत समाप्त ॥

६ अथ पांचमा स्युषपरिग्रहपरिमाण व्रत सिखते हैं. परिग्रहके दो जेद हैं. एक तो वाह्यपरिग्रह अधिकरण रूप, सो उच्यपरिग्रह नव प्रका रका है. इसग जाव परिग्रह, सा चोदह् अन्त्यंतर ग्रंथिरूप जो परतावका ग्रहण समस्त प्रदेश सहित सकपाई पाण वंध, सो नावपरिग्रह है, अरु

सैं तैसैं करकैं कामेठा घटानी चाहियैं. क्यों कि विषयके वास्ते वीर्यके रखनेसैं बुद्धि, आरोग्य, दीर्घायु, वल प्रमुखकी वृद्धि होती है. अरु अधिक काम सेवनेसैं मन मलिन, पापवृद्धि, राजयक्षा, (द्वय) मूठा, क्लम, स्वेदादि रोग उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते श्रावककों अस्तं विषय मग्न होनां न चाहियैं. केवल जिस्सैं वेदविकार शांत हो जातें तितनांही मेथुन करनां चाहियैं. अरु जब काम उत्पन्न होवे, तब वही संबंधि काम सेवनकी जगाकों जाजरू समान मलमूत्रसैं जरी दूढ़ विचारें मलीन वस्तु है, मुखमें दुर्गंध जरी है, नाकमें सिंघाणकी दुर्गंध है, कानोंमें भेज है, पेटमें विष्टा, मूत्र, जरा है, नसायोंमें खाये पीयेका रस रुधिर, हारु, चाम, चर्मी, वाय, पित्त, कफ, जरा है, महा अगुचिका तला है, जिस अंगमें वास लेवेगा, उहां महा दुर्गंध उठलती है, अलिप्त अशाश्वत है, सक्त, पतन, विध्वंसन हो जानां, यह इसका स्वाद है, तो फेर है मूढ जीव ! स्त्रीकों देखकर क्यों कामाकुल होता है. अस्सैं विचारसैं कामकों शांत करे, ए तीसरा अतिचार है.

४ चौथा परविवाह करण अतिचार है. सो अपणी पुत्र पुत्री विना, यस् के वास्ते, पुण्यके वास्ते, और लोकोंके विवाह करावे, सो चौथा अतिचार.

५ पांचमा तीत्रानुराग अतिचार है. सो जे पुरुष स्त्री ऊपर तीव्र क जिज्ञास धरे, पराई स्त्रीकों देख कर मनमें बहुत चाहना धरे, उस स्त्री देखे विना क्षणमात्र रहि न सके, चलतां, फिरतां, उस स्त्रीहीमें चिंत रहे, अथवा देहमें कामकी वृद्धि वास्ते अफयून, माजूम, जांग, हरताइ. पारा प्रमुख खावे, तीव्रकाममें प्रीति करे, तब पांचमा अतिचार लगे. अथवा स्त्रीजी कामकी वृद्धि करने वास्ते अनेक उपाय करे, बहुत हाव जाव विषय लालसा करे, तब पांचमा अतिचार लगे, यह पांच अतिचार श्रावक जाने, परंतु आदरे नहीं, इन पांचो अतिचारोंका विशेष स्वरूप धर्मरत्न प्रकरणकी टीकासैं जाननां ॥ इति चतुर्थव्रत समाप्त ॥

६ अथ पांचमा स्थूलपरिग्रहपरिमाण व्रत लिखते हैं. परिग्रहके दो जेद हैं, एक तो वाह्यपरिग्रह अधिकरण रूप, सो द्रव्यपरिग्रह नव प्रकारका है. दूसरा जाव परिग्रह, सो चौदह अच्यंतरभंशिरूप जो परजावका ग्रहण समस्त प्रदेश सहित सकपार्ह पणें बंध, सो जावपरिग्रह है, अरु

सैं तैसैं करकैं कामेछा घटानी चाहियैं. क्यों कि विषयके वीर्यके रखनेसैं बुद्धि, आरोग्य, दीर्घायु, बल प्रमुखकी वृद्धि अरु अधिक काम सेवनेसैं मन मलिन, पापवृद्धि, राजयक्षा, (रूप) मूर्छा, क्लम, स्वेदादि रोग उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते श्रावकों अने विषय मग्न होनां न चाहियैं. केवल जिस्सैं वेदविकार शांत हो जातें तितनांही मेथुन करनां चाहियैं. अरु जब काम उत्पन्न होवे, तब संबंधि काम सेवनकी जगाकों जाजरू समान मलमूत्रसैं जरी हुई विकल मलीन वस्तु है, मुखमें दुर्गंध जरी है, नाकमें सिंघाणकी दुर्गंध है, कानोंमें मेल है, पेटमें बिष्टा, मूत्र, जरा है, नसायोंमें खाये पीयेका लक्ष्मि, रुधिर, हान, चाम, चर्बी, वाय, पित्त, कफ, जरा है, महा अशुचि, तला है, जिस अंगमें वास लेवेगा, उहां महा दुर्गंध उठलती है, अतएव अशाश्वत है, सरून, पतन, विध्वंसन हो जानां, यह इसका स्वभाव है, तो फेर दे मूढ जीव! स्त्रीकों देखकर क्यों कामाकुल होता है? ऐसे विचारसैं कामकों शांत करे, ए तीसरा अतिचार है.

॥ चौथा परविवाह करण अतिचार है. सो अपणी पुत्र पुत्री बिना, के वास्ते, पुण्यके वास्ते, और लोकोंके विवाह करावे, सो चौथा अतिचार है.

५ पांचमा तीव्रानुराग अतिचार है. सो जे पुरुष स्त्री ऊपर तीव्र निश्चाय धरे, पराई स्त्रीकों देख कर मनमें बहुत चाहना धरे, उस स्त्री देखे बिना कृणमात्र रहि न सके, चखतां, फिरतां, उस स्त्रीहीमें बिगड़े, अथवा देहमें कामकी वृद्धि वास्ते अफयून, माजूम, जांग, हस्तपादादि प्राण प्रमुख ग्रावे, नावकाममें प्रीति करे, तब पांचमा अतिचार अति अथवा स्त्रीही कामकी वृद्धि करने वास्ते अनेक उपाय करे, बहुत हावभाव विषय छावसा करे, तब पांचमा अतिचार लगे, यह पांच अतिचार श्रावक जानें, परंतु आदरे नहीं, इन पांचो अतिचारोंका विशेष समर्थन धर्मरत्न प्रकरणकी टीकासैं जाननां ॥ इति चतुर्थव्रत समाप्त ॥

५ अथ पांचमा स्थूलपरिमहपरिमाण व्रत श्रित्यते हैं. परिग्रहं जेद हैं, एक तो वाद्यपरिमह अधिकरण रूप, सो द्रव्यपरिमह नव प्रकारका है. दूसरा नाव परिग्रह, सा चौदह अज्यंतर ग्रंथिरूप जो परमाणु परिग्रह समान प्रदेन सहित सकयादे पाण बंध, सो नावपरिमह है, का

शास्त्रमें मूर्च्छाकों मुख्य वृत्ति करके जावपरिग्रह कहा है, तिनमेंसूं चौदह प्रकारका जो अन्यंतर परिग्रह है, सो लिखते हैं. १ हास्य, २ रति, ३ अरति, ४ जय, ५ शोक, ६ जुगुप्सा, ७ क्रोध, ८ मान, ९ माया, १० लोभ, ११ स्त्रीवेद, १२ पुरुषवेद, १३ नपुंसकवेद, १४ मिथ्यात्व. यह चौदह प्रकारकी अन्यंतर ग्रंथि है, इहां संसारमें इस जीवकों केवल अविरतिके बलसें इष्टा, आकाश समान अनंती है. कदापि जरणमें आती नहीं, अविरतिके उदयसें इष्टा अरु इष्टासेंती कर्मबंधनमें पना हुआ चार गतिमें प्रमण करता है. सो कोई पुण्यके उदयसें मनुष्य जवादि सकल सामग्री का योग पा कर, सद्गुरुकी संगतिसें श्रीजिनवाणी सुणी, तब चेतना जाग्रत नई, तब विचार करा कि अहो में समस्त परजावसें अन्य हूं ! अंधि, अन्धेय, अज्ञेय, अद्वयधर्मी हूं ! परंतु इष्टाके वश हो कर समस्त वेदन, जेदन परिप्रमणादि दुःखोंको जोगने वाला परधर्मी बन रह्या हूं ! इस वास्ते समस्त परजावका मूल जो इष्टा है, तिसको छूर करे. तब समस्त परजाव त्यागरूप चारित्र आदरे, साधुवृत्ति अंगीकार करे. अरु जिस जीवके इष्टा प्रबल होनेसें एक साथ सर्व परिग्रह त्यागनेका सामर्थ्य न होवे, अरु दोषसें डरे, तब गृहस्थ धर्म इष्टा परिमाण रूप व्रत आदरे, सो इष्टा परिमाणव्रत नव प्रकारका है, सो कहते हैं:-

१ प्रथम धन इष्टा परिमाण व्रत है. सो धन चार प्रकारका है. प्रथम गणिस धन, सो नालिकेर प्रमुख, जो गिणतीसें बेचनेमें आवे. दूसरा धरिस धन, सो गुरु प्रमुख जो तोलके बेचनेमें आवे. तीसरा परिठेय धन, सो सोना, रूपा, जवाहिर प्रमुख जो परिक्षासें बेचनेमें आवे, चौथा मेयधन, सो छूधादि वस्तु जो मापके बेचनेमें आवे. यह चार प्रकारका धन है. इसका जो परिमाण करे, सो धन परिमाण व्रत है.

२ दूसरा धान्य परिमाण व्रत. सो धान्य चौबीस प्रकारका है. १ शालि, २ गेहूं, ३ जुवार, ४ बाजरी, ५ जव, ६ मूंग, ७ मुठ, ८ उन्नद, ९ वृंट, १० बोडा, ११ मटर. १२ तृथर, १३ कित्तारी, १४ कोडवा, १५ कंगणी, १६ चणा, १७ बाल, १८ मेथी. १९ कुलच. २० मसूर. २१ तिल. २२ मन्वा, २३ कूरी, २४ वरटी. यह खाने वास्ते तथा व्यवहार वास्ते उपयोगी हैं. तथा १ धनीया, २ चीनी, ३ सोवा, ४ अजवयन, ५ जीरा. यह नी

धान्यकी जातिमें हैं, परंतु ये श्रोपध्यादिकमें काम आते हैं. तथा १ सा मक, २ मणकी, ३ जुरट, ४ चेकरीया, ये मारवार देशमें प्रसिद्ध हैं. श्रो रजी अरु क धान्य, बिना बोयां ऊगता है, जिसकों लोक काल डुकाव में खाते हैं, यह सर्व जातिका अन्न, तिसका परिमाण करे.

३ तीसरा क्षेत्रपरिग्रह व्रत है. सो बोनका खेत, तथा बाग (बगी चादिक) जाननां, इस क्षेत्रके तीन जेद हैं, उसमें एक क्षेत्र तो ऐसा है, कि जो वर्षाके पाणीसं होता है, दूसरा कृपादिकके जल सींचनेसं होता है, तीसरा तो यह पूर्वोक्त दोनो प्रकारसं होता है, इनका परिमाण करे.

४ चौथा वास्तुक परिमाण व्रत है. सो घर, हाट, हवेली प्रमुख तिन केजी तीन जेद हैं. एक तो जूहरा प्रमुख, दूसरा उद्धित सो उंची हवे ली, एक मजली, दो मजली, तीन मजली, यावत् सातजूमि तक, तीसरी हेठ जूहरा प्रमुख, उपर एक दो आदि मजल, तिसका परिमाण करे.

५ पांचमा रूपपरिग्रहपरिणाम व्रत है, सो सिके बिनाका काचा रूपा तिसका तोलका परिमाण करे.

६ ठठा सुवर्णपरिग्रह परिमाण व्रत है. सो बिना सिकेका सोना, ति सके तोलका परिमाण करे.

७ सातमा कूपद परिग्रह परिमाण व्रत है. सो ग्रांवा, पीतल, रांग, कांसुं, सींसा, जरत, लोहाप्रमुख सर्व धातुके वर्तनोंके तोलका परिमाण करे.

८ आठमा डुपद परिग्रहपरिमाण व्रत है. सो दासी, दास, अथवा पगारदार गुमान्ता प्रमुख स्वर्णां, तिनकी गणतीका परिमाण करे.

९ नवमा चौपदपरिग्रह परिमाण व्रत है. सो गाय, महीपी, घोरा, बखद, बकरी, जैरु प्रमुख, तिनकी गणतीका परिमाण करे.

अथ अथनी इष्टा परिमाणमें परिग्रह किस तरें रखे ? सो कहते हैं.

१० धना दृष्ट्या अरु अनवडा तथा नगद रूपक इतना रखे, तथा सोनाती ५००० अरु अनवडा अस्सी तथा जवाहीर इतना रखे. इस रीतिमें परिमाण करे, उपरांत पुण्योदयमें धन बचे, तो धर्मस्थानमें लगावे, तथा वर्ष दिन में इतने इस जातिके वस्त्र पहिरे, तथा एक वर्षमें इतना अन्न में घरपर च वास्ते रखे, अरु इतना वणिज वास्ते रखे, तिसका अरूप मातमे व्रत में सिखे. तथा क्षेत्रपरिमाणमें क्षेत्र, वाडी, बगीचा प्रमुख सर्व मिलक

र इतने विग्ने धरती रखुंगा, तथा घर, खिडकी बंध, अरु खुल्ली डुकान, तवेला, बखारी, तथा परदेश संबंधी डुकानकी जयणा, तथा इतना जाडे देणे वास्ते घरकी रखनेकी जयणा, तथा जाडे लीये हूये घरकों समरावणेकी जयणा, तथा कुटुंब संबंधि घर बनानेमें उपदेशकी जयणा, तथा अपणा संबंधि अरु गुमास्ता परदेश गया होवे, पीठेसैं तिसके घर प्रमुख समरावणेकी जयणा, तथा आजीविकाके वास्ते किसीकी चाकरी करनी पडे, तब उसके घर प्रमुखके समरावणेकी जयणा, तथा कुपदपरिमाणमें तांबा, पीतल, रांग, लोहखंभ, कांसी, ज़रत, सर्व मिलीके धातुके वर्तन, तथा और घाट, तथा बूटा, इतने मण रखणेकी जयणा, तथा कुपद परिमाणमें श्रावकने दास्ती, दासकों मोल दे कर नहीं लेनां, परंतु पगारवाले (नौकर) गिणतीमें इतने रखने चाहियें, तथा गुमास्ता रखनेकी जयणा, तथा चौपद परिमाणमें गाय, जैंस, बकरी प्रमुख रखनेका परिमाण करे. अब यह इष्टा परिमाण व्रतके पांच अतिचार हैं, सो लिखते हैं.

१ प्रथम तो धनपरिमाण अतिक्रम अतिचार. इत रीतिसैं होता है. सो जब इष्टा परिमाणसैं धन अधिक हो जावे, तब लोभसंज्ञासैं दिलमें ऐसा मनसुवा करे कि जो मेरा पुत्र बना हो गया है, तिसकोंजी धन चाहियें हैं, अरु मैंनेजी पुत्रकों धन देनाही है ? ऐसा कुविकल्प करके पुत्र के नामके पांच हजारदि रूपक जूदे रखे, तथा अन्न प्रमुख अपने नियम परिमाण घरमें पडा है, तब अधिक रखनेकी इष्टासैं दूसरायोंके घरमें रख ठोडे, जब चाहियें तब ले आवे, अरु अज्ञानसैं ऐसा विचारे कि मैंने तो इष्टा परिमाणसैं अधिक अपने घरमें रखनेका नियम करा है, अरु यह तो दूसरोंके घरमें रखा है, इत वास्ते मेरे नियममें छूपा नहीं, तथा व्रत लेनेके बखतमें कच्चे मणके हिसाबसैं अन्न रखा है, अरु जब परदे शांतरमें गया, तब पक्के मणका उहां तोल जान कर अन्नजी पक्के मणके हिसाबसैं रखे, ऐसे विचार वालेकों प्रथम अतिचार लगता है.

२ दूसरा क्षेत्रपरिमाण अतिक्रम अतिचार है. सो जब इष्टा परिमाणसैं ती अधिक घर हाटादिक हो जावे, तब विचली जित तोडके दो तिनादि घरा दिकोंका एक घरादि बनावे, तथा दो तिनादि खेतोंकी विचली नौली तोडके एक बना लेवे, अरु मनमें यह विचारे कि मैंने तो गिणती रखी है, सो तो

मेरा नियम अखंडित है, बड़ा कर लेनेमें क्या झूठ है ? ऐसे करे, तो दूसरा अतिचार लगे.

३ तीसरा रूपसुवर्णप्रमाण अतिक्रम अतिचार है. सो जब द्रष्टा परिमाणसेंती अधिक होवे, तब अपणी स्त्रीके धेणे जारी तोलके वनवावे, तथा अपने आंजरण तोलमें जारी वनवावे, यह तीसरा अतिचार है.

४ चौथा कुपदपरिमाण अतिक्रम अतिचार है. सो चांवा, पीतल, कांसी प्रमुखके वर्त्तन राठ बगेरें जो गिणतीमें रखे हैं, सो जब घरमें संपदा होवे, तब गिणतीमें तो उतनेही रखे, परंतु तोलमें वजनदार झूठे तिगुणे वनवावे, अरु मनमें ऐसा विचारे जो मेरा व्रत तो अखंडित है ? क्योंकि वर्त्तनोकी गिणती तो मेरे तितनीही है ? तथा कच्चे तोल परिमाण रखे ते, फेर पके तोल परिमाण रख लेवे, सो चौथा अतिचार है.

५ पांचमा द्विपदचतुष्पद प्रमाणातिक्रम अतिचार है. सो दास, दासी, घोडा, गाय, बलद प्रमुख अपने परिमाणसें जब अधिक हो जावे, तब बेच गेरे, अथवा गर्ज ग्रहण अवेरी करावे, जितने गिणतीमें हैं, उनमेंसें प्रथम बेचके फेर गर्ज ग्रहण करावे, अथवा जाइ पुत्रके नामके कर रखे, तो पांचमा अतिचार लगता है. इति पंचमव्रतं संपूर्ण ॥

६-७-८ अथ ठठा सातमा, अरु आठमा, इन तीनो व्रतोंको गुणव्रत कहते हैं. तिनमें ठठे व्रतमें दिशाका विचार है, इस वास्ते इसका नाम दिक्परिमाण व्रत कहते हैं. तिसका स्वरूप लिखते हैं.

पूर्व जो पांच अणुव्रत कहे हैं. तिनको इन तीनो व्रतों करके गुणवृद्धि होती है, इस वास्ते इनका नाम गुणव्रत है, क्योंकि जब दिशिपरिमाणव्रत कीया, तब तिस क्षेत्रसें बाहिरले सर्व जीवोंको अन्नपदान दीया, यह पहिले प्राणातिपात व्रतको गुण पुष्टि जइ, तथा बाहिरले जीवोंके साथ जुठ बोलनां भिड गया, यह मृषावाद व्रतको पुष्टि जइ, तथा बाहिरले क्षेत्रकी वस्तुकी चोरीका त्याग हुआ, यह तीसरे व्रतको पुष्टि जइ, तथा बाहिरले क्षेत्रकी स्त्रीयोंके साथ मेथुन सेवनेका त्याग हुआ यह चौथे व्रतकी पुष्टि जइ, तथा नियम बाहिरके क्षेत्रमें क्रय विक्रयका निषेध जया, यह पांचमे व्रतकी पुष्टि जइ, इस वास्ते पांचो अणुव्रतोंको यह तीन व्रत गुणकारी है.

तहां दिशिप्रमाण व्रत. सो चारों दिशि, तथा चारों विदिशि, तथा ऊर्ध्व, अधो, इन दश दिशिका परिमाण करे, तिसके दो जेद हैं. एक व्यवहारसैं, सों अपणी कायासैं दशों दिशिमें जानेका, तथा मनुष्य जेजनेका, तथा व्यापार करनेका परिमाण करे, उसको व्यवहार दिशि परिमाण व्रत कहियें.

दूसरा निश्चयसैं. सो जो कुठ नरकादि गतिमें गमन है, सो सर्व कर्मका धर्म है. जिसके वश परुके यह जीव चारों गतिमें जटकता है, परा नुयायी चेतना हो रही है, इसी वास्ते जीव परजावानुसारी गतिभ्रमण करता है, परंतु जीव तो शुद्ध चैतन्य, अगतिस्वभाव, तथा निश्चल स्वभाव है, अस्ता श्री जिनवाणीके उपदेशसैं समझकें चेतना शुद्धस्वरूपानुयायी होवे, तब अपना अगति स्वभाव जानिके सर्व क्षेत्रसैं उदास रहे, समस्त क्षेत्रसैं अप्रतिबंधक भावसैं बर्त्ते, सो निश्चयसैं दिक्परिमाण व्रत कहियें. यह दशों दिशिका परिमाण करे, तिसके दो जेद हैं.

प्रथम जलमार्ग. सो ऊहाज नावों करके इतने योजन अमुक दिशि में अमुक बंदर, तथा अमुक द्वीप तक जाऊं, जे कर पवन, तथा वर्षा तके वशसैं और दूर किसी बंदरमें ले जावे तो आगार, अर्थात् व्रतजंग न होवे, अथवा अजाण पणे कर के झूल चूकसैं किसी बंदरमें चला जाऊं, उत्तकाजी आगार है.

दूसरा स्थलका मार्ग. सो जित जित दिशिमें जितने जितने योजन तक जानेका परिमाण करा है, तहां तक जाणेकी जयणा, जे कर चोर, म्हेठ, पकनके नियम क्षेत्रसैं बाहिर ले जावे, तिसका आगार है, तथा ऊर्ध्व दिशिमें चारा कोश तक जाणेकी रखे, तथा अधोदिशिमें आठ कोश तक जाणेकी जयणा, परंतु जो उंचा चढ़के फेर नीचा उतरे, वो अधोदिशिमें नहीं, तथा जितने क्षेत्रका परिमाण करा है, तिसैं बाहिरका कोइ पिठाण बाड़े पुरुषका पत्र आवे, सो बांच कर उत्तका उत्तर दिखनां पड़े, तिसका आगार है, परंतु में अपणी तरफसैं बिना कारण पत्र प्रमुख नहीं दिखुंगा. तथा परदेशकी विक्रया मुननेका आगार, इस व्रतके पांच अतिचार हैं सो कहते हैं.

१ प्रथम ऊर्ध्वदिशापरिमाणातिक्रम अतिचार है. सो अनाजोगसैं अथवा वे सुरतिसैं अधिक चला जावे, तो प्रथम अतिचार.

२ दूसरा अधोदिशिपरिमाणातिक्रम अतिचार पूर्ववत्.

३ तीसरा तिर्थादिशिपरिमाणातिक्रम अतिचार. उपर वत्. जे कर नियम जंगके जयसैं गुमास्ता जेजे, तोजी अतिचार लगे.

४ चौथा एक दिशिमैं सो योजन रखे हें, अरु एक दिशिमैं पचास योजन रखे हें, पीठें जब एकही दिशिमैं डोढसौ योजन जानां पड़े, तब दूसरी तरफके पचास योजनजी उसी तरफ जोरु लेवे, अरु अज्ञानसैं असा विचारे कि मेरे नियमकेही पचास योजन हें, इस वास्ते मेरे व्रतका जंग नहीं.

५ पांचमा स्मृतिग्रन्थान्तर्धान अतिचार. सो अणणे नियमके योजनकों भूल जावे, क्या जाने पूर्वदिशिके सो योजन रखे हें? कि पचास योजन रखे हें? इत्यादि असा संशयके हूए फेर पचास योजनसैं अधिक जावे, तो पांचमा अतिचार लग जावे, यह पांच अतिचार वजें॥ इति षष्ठ व्रतं संपूर्ण.

७ अथ सातमा जोगोपनोग व्रतका स्वरूप लिखते हें. यह दूसरा गुण व्रत है. इस व्रतके अंगीकार करणसैं सचित वस्तु खानेका त्याग करे, अथवा परिमाण करे, तथा जिसमें बहुत हिंसा होवे, असा व्यापार न करे, तथा जिस काममें अवश्य हिंसा बहुत करनी पड़े, तिसका त्याग करे, अजदय त्यागे, अरु चौदह नियमजी इस व्रतमें गिणे जाते हैं, इस वास्ते यह व्रत पूर्वोक्त पांचही अणुव्रतोंकों गुणकारी है, इस व्रतके दो जेद हें, सो कहते हैं.

१ प्रथम व्यवहार. सो जदयानदयका ज्ञान करी त्यागे, दूसरा अथ अव संवरका ज्ञान कर के खान पानादिक जां इंद्रिय मुखका कारण है, उसमें अणुजी शक्ति प्रमाण बहुत आरंभ ठोडकें अद्वयपरंती होनां, सो व्यवहार जोगोपनोगविगमण व्रत है.

२ दूसरा निश्चयमें, तो श्रीजिनवाणी सुण कर वस्तु तत्त्वस्वरूप जान कर विचारे कि जो जगतमें परवस्तु है, सो सर्व हेय है, इस वास्ते तत्व वेत्ता पुनः परवस्तुकों न व्यावे, न अणणे पास रखे, तब शुद्ध चेतन्य गार धार के परम शांतिरूप हो कर जो वस्तु सदे, पड़े, गिरे, जाती रहे,

तब परवस्तु जान कर ऐसा विचार करे कि यह पुण्यकी पर्याय है, सर्व जगत्की जूँव है, ऐसी वस्तुका जोगोपजोग करणां, सो तत्त्ववेत्ताकों उचित नहीं, ऐसे ज्ञानसे परजावकों त्यागे, स्वगुणकी वृद्धि करे, ऐसा ज्ञान पा कर आत्माकों स्वस्वरूपानंदी करे, चिद्धिदासका अनुजवी होवे, सो निश्चय जोगोपजोगविरमण व्रत कहियें.

अथ जोगोपजोग शब्दका अर्थ कहते हैं. जो आहार, पुण्य विषेप नादि, एक बार जोगनेमें आवे, सो जोग कहियें. अरु जो भुवन, वस्त्र, स्त्रीयादि बार बार जोगनेमें आवे, सो उपजोग कहियें. अरु कर्माश्रयी इत व्रतके अनेक जेद हैं, सो आगे लिखुंगा.

तथा श्रावककों उत्तर्ग मार्गमें तो निरवय आहार लेनां लिखा है, जे कर शक्ति न होवे, तब सचित्तका त्यागी होवे, जेकर यहूजी न कर सके, तो वाईत अजक्य अरु वचीत अनंतकाय इनका तो जरूर त्याग करे, तिनमें प्रथम वाईत अजक्य वस्तुका नाम लिखते हैं.

१ वनके फल, २ पीपलके फल, ३ पित्रक्षणके फल, ४ कठंवरके फल, ५ गूलरके फल, यह पांचतो फल अजक्य हैं, क्योंकि इन पांचों फलोंमें व दूत सुद्ध कीडे व्रत जीव जरे दूये होते हैं, जिनोंकी गिणती नहीं हो सकी है, इत वास्ते धर्मात्मा जीव, इन पांचों फलोंको न खावे, जे कर दो जिह्मों अन्न न निवे, तोजी विवेकी पूर्वोक्त पांच फल जक्षण न करे.

६ मदिरा, ७ मांस, ८ मधु, ९ माखण, इन चारोंमें तद्धर्ण असंख्य जीव उत्पन्न होते हैं, अरु यह चारों विगय, महाविगय हैं. सो महावि कारकी करनेवाली हैं, तिनमें प्रथम मदिरा त्यागने योग्य है, क्योंकि मदिराके पीनेमें जो झूण है, सो हेमचंद्रसुरिकृत योगशास्त्रके दश श्लोकोंके अर्थसे लिखते हैं.

१ मदिरा पीनेसे चतुर पुरुषकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, जैसें डुन्गी पुरुषको सुंदर स्त्री ठोड जाती है, तैसें इत पुरुषको बुद्धि ठोड जाती है, २ मदिरापानी पुरुष, अपणी माता, बहिन, बेटाको अपणी जार्याकी तरस मज के जोरा जोरीसे विषयजी सेवन कर लेता है. अरु अपणी जार्याको अपणी माता समजता है, मदिरा पीनेवाला ऐसा निर्बल और महा पापके करने वाला होता है, ३ मदिरापानी, अपनेको अरु परकोजी नहीं

जानता, ४ मदिरापानी, अण्णे स्वामीकों अण्णा किकर जानता है, अरु अण्णैकों स्वामी जानता है, एसी निर्लज्ज बुद्धिवाला होता है, ५ मदिरा पीने वाले पुरुषकों चोंकमें छेटा हुआ देख कर मुदरि जान कर, कुत्ते उसके मुहमें मूत जाते हैं, ६ मदिराके रसमें मग्न पुरुष चोंकमें नंगा मादर जात, निर्लज्ज हो कर, सो जाता है. ७ मदिरा पीने वालेने जो अगम्य गम्य, चोरी, यारी, खून प्रमुख कुकर्म करे हैं. वो सबे लोकोकें आ गें प्रकाश देता है. ८ मदिरा पीनेसें शरीरका तेज, कीर्त्ति, यश, तात्कालिकी बुद्धि, यह सब नष्ट हो जाते हैं. ९ मदिरापानी जूत खगेकी तरें नाचता है, १० मदिरा पीने वाला कीचरु ओर गंदकीमें छोटता है, ११ मदिरा पीनेसें अंग शिथिल हो जाते हैं, १२ मदिरा पीनेसें इंद्रियोंकी तेजी घट जाती है, १३ मदिरा पीनेसें बड़ी मूर्छा आजाती है, १४ मदिरा पीनेवालेका विवेक नष्ट हो जाता है, १५ संयम नष्ट हो जाता है, १६ ज्ञान नष्ट हो जाता है, १७ सत्य नष्ट हो जाता है, १८ शौच नष्ट हो जाता है, १९ दया नष्ट हो जाती है, २० क्रमा नष्ट हो जाती है, जैसें अग्निसें तृण जस्म हो जाते हैं, तैसें पूर्वोक्त गुणजी उसका नष्ट हो जाते हैं, २१ मदिरा है, सो चोरी, अरु परस्त्रीगमनादिकोंका कारण है, क्योंकि मदिरा पीनेवाला कौनसा कु कर्म नहीं कर सकता है? २२ मदिरा, आपदा तथा वध, बंधनादिकोंका कारण है, २३ मदिराके रसमें बहुत जीव उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते दया धर्मिकों मदिरा न पीनी चाहियें. २४ मद्य पीने वाला दीयेकों अण्णदीया कहता है, २५ दीयेकों नहीं लीया कहता है, २६ करेकों न करा कहता है, २७ मद्यपी, घरमें तथा बाहिर, पराये धनकों निर्जय हो कर लूट लेता है, २८ मदिराके उन्मादसें बालिका, यौवनवती, वृद्धा, ब्राह्मणी, चांमाखिनी प्रमुख स्त्रीयोसें जोग कर लेता है, २९ मद्यपर अरराट शब्द करता है, ३० गीत गाता है, ३१ छोटता है, ३२ दौगता है, ३३ क्रोध करता है, ३४ रोता है, ३५ हस्ता है, ३६ स्तंभवत् हो जाता है, ३७ नमस्कार करता है, ३८ त्रमता है, ३९ खडा रहता है, ४० नटकी तरें अनेक नाटक करता है, ४१ ऐसी वो कौनसी छुर्दशा है. जो मदिरा पीने वालेकों नहीं होती है? शास्त्रोंमें सुणते हैं कि सांव कुमारने मदिरा पी कर छैपायन रुपिकों संताया, तब छैपायननें छारकाकों दग्ध कीया, ४२ मदिरा पीनां, वा

सर्व पापोंका मूल है, ४३ मदिरा पीने वाला निश्चय नरक गतिमें जावेगा, ४४ मदिरा सर्व आपदाका स्थान है. ४५ मदिरा अकीर्तिका कारण है, ४५ मदिरा नीच म्लेच्छ लोक पीते हैं. ४६ गुणीजन लोक जो हैं, सो मदिरा पीनेवा लेकी निंदा करते हैं. ४७ मदिरा पछेमें लग जानेसे तत्काल मरजाता है, ४८ मदिरा पीने वालेके मुखसे महादुर्गंध आती है, ५० मदिरा सर्व शास्त्रोंमें निंदित है. ५१ मदिरा पीनेवाला ईश्वरका ऋक्त नहीं. इत्यादि मदिरा पीनेमें अनेक दोष हैं, इस वास्ते श्रावक मदिरा न पीवे. यह ठछा अजह्य.

सातमा अजह्य मांस है. यह मांस ऋक्षण करनेमें जो छूषण है, सो लिखते हैं. जो पुरुष मांस खानेकी इच्छा करता है, वो पुरुष, दयाधर्मरूपी वृद्धकी जन काटता है, क्योंकि जीवके मारे बिना मांस कदापि नहीं हो सका है, जे कर कोइ कहेगा कि हम मांसजी खा लेवेगा, अरु प्राणी थोंकि दयाजी करेंगा, ऐसे कहने वालेको हम उत्तर देते हैं, कि तदा सर्वदा जो मांसके खानेवाले हैं, अरु वो अपने मनमें दयाधर्मी बना चाहता हैं, वो पुरुष अग्निमें कमल लगाना चाहता है, क्योंकि जब उसने मांस खाया, तब प्राणीयोंकी दया उसके मनमें कदापि नहीं हो सकी है, जैसे अं वका खानेवाला आम्रफल देखता है, तब उसकी मनसा आव खानेही दोन्ती है, तैसे मांसाहारी किसी गौ, जेनी, बकरी, प्रमुखकों देखता है, तब उन जीवोंका मांस खानेकी तर्फ उसकी लुरती दोन्ती है. ऐसे पुरुषको दयाधर्म, क्यों कर संजवे ? जे कर कोइ कहेगा कि जीवके मारने वाला सौकरिक अर्थात् कत्ताइ है, तिस पासों बना बनाया मांस व्या कर खावे, तो क्या दोष है ? ऐसे मूढमतिकों उत्तर देते हैं, कि जो मांस खानेवाला है, वोजी जीवका हिंसक है, क्यों कि जगवंतने शास्त्रोंमें सात जनोंको घातक (हिंसक) अर्थात् कत्ताइही कहा है, उसका नाम कहते हैं. एक जीवके मारने वाला, दूसरा मांस बेचने वाला, तीसरा मांस रंधने वाला, चौथा मांस ऋक्षण करने वाला, पांचमा मांस खरीदने वाला, ठछा मांसकी अनुमोदना करने वाला, सातमा पितरोंके, देवताओं को, अतिथिकों, मांस देने वाला, यह सात साक्षात् परंपरा करके घातक अर्थात् जीववधके करने वाले हैं, मनुजीजी मनुस्मृतिमें कहते हैं॥श्लोका॥ अनुमंता विशतिता, निहंता क्रयविक्रयी ॥ संस्कृता चोपहृता च, सादकश्चेति

प्रश्नः—मांसाहारी आपने आपको अधर्मी क्यों बनाता है ?

उत्तरः— मांसके खादमें लुब्ध हूँ या वो धर्म, दया, कुठ नहीं जानता है, जे कर कदाचित् जानजी जाता है, तोजी आप मांसलुब्ध है, इस्से मांसकों त्याग करनेकूं समर्थ नहीं, इस वास्ते वो मनमें विचार करता है, कि मेरे समानही सर्व हो जावे, अइसा जान कर औरोंकोजी मांसजक्षण न करनेका उपदेश नहीं करता है.

अब मांस जक्षण करने वाले महामूढ हैं, यह बात कहते हैं. कितने क मूढमति आप तो मांस नहीं खाते हैं, परंतु देवता, पितर, अतिथि, इनकों मांस चढा देते हैं, क्यों कि उनके शास्त्रकारक कहते हैं ॥ श्लोक ॥ क्रीत्वा स्वयं वा उत्पाद्य, परोपहतमेव वा ॥ देवान् पितॄन् समन्यर्च्य, खादन् मांसं न दुष्यति ॥ १ ॥ यह श्लोक मृगपक्षीयोंके विषयमें है, इसका अर्थ कहते है. कसाईकी दुकान बिना व्याध, शकुनिकादिकोंसे अर्थात् शिकारी और जानवरोंके मारने वालोंसे मांस मोलसे ले कर देवता, अतिथि, पितरोंको देना चाहिये. क्यों कि वे लिखते हैं कि कसाईकी दुकानके मांससे देवता पितरोंकी पूजा नहीं होती है, ताते आप मांस उत्पन्न करके पितृ आदिकोंकूं देवे तो पितृआदि प्रसन्न होते हैं, सो इस प्रकारसूं मांस उत्पन्न करे, कि ब्राह्मण तो मांग कर मांस व्यावे, औ क्षत्रिय शिकार मार के मांस व्यावे, अथवा किसीने मांस छेद करा होवे, उस मांससे देवता पितरोंकी पूजा करके फेर मांस खावे तो दूषण नहीं, यह सर्व महामूढ और मिथ्यादृष्टियोंका कहना है, क्योंकि दयाधर्मी आस्तिकमत वालोंको तो मांस दृष्टिसेजी देखना योग्य नहीं, तो फेर देवता पितरोंकी पूजा मांससे करनी, यह तो धर्मीको स्वप्नेमेंजी न होवेगी, इस वास्ते देवताओं को मांस चढाना यह बुद्धिमानोका काम नहीं, कारण के देवता तो घड़े पुण्यवान् है, कबल आहार करते नहीं है, तो फेर जुगुप्सनीय मांस क्यों कर खावे ? जो कहते हैं कि देवता मांस खाते हैं, वे महा अज्ञानी हैं, अरु पितर जो हैं, वेतो अपने अपने पुण्य पापके प्रजावसें अग्नी वृरी गतिकों प्राप्त हो गये हैं, अपने करे दूये कर्मोंका फल जोगते हैं. पुत्र के करे हुए कर्मका उनको कुठजी फल नहीं लगता है, तब मांस देने रूप पापका तो क्या कहना है ? पुत्रादिकोंका सुकृत कराजी तिनको नहीं

मिसता है, क्योंकि आंवके सींचनेसें केलेमें फल नहीं फलता है, अरु अतिथिकी जक्ति वास्ते जो मांस देनां हैं, सो तो नरकपातका हेतु अरु महा अधर्मका कारण है, यहां कोई ऐसे कहे कि जो वात श्रुति स्मृति में है, वो माननी चाहियें.

उत्तर:-यह कहनां ठीक नहीं है, जो वात श्रुतिमें अप्रामाणिक है, वो बुद्धिमान् कदापि नहीं मानेंगे, क्योंकि श्रुतिमें हम ऐसे सुनते हैं, “वचांसि जूयांसि यथा पापघ्नो गोस्पर्शः द्रुमाणां च पूजागादीनां च पूजा गादीनां च वधः स्वर्ग्यः ब्राह्मणजोजनं पितृप्रीणनं मायावीन्यधिदेवता नि बन्धौ हुतं देवप्रीतिप्रदं” ऐसा कथन जो श्रुतियोंमें है तिसकों बुकि कुशल पुरुष कदापि नहीं मानेंगे, तिस वास्ते यही महा अज्ञान है, कि जो मांस करके देवताओंकी पूजा करणी. कितनेक कहते हैं कि जैसे मंत्रों करके संस्कृत अग्नि दाह नहीं करती है, तैसेही मंत्रों करके मां सज्जी संस्कार करा हुआ दोषके वास्ते नहीं होता है, यह कथन मनुजी का है ॥ श्लोक ॥ असंस्कृतान् पशून्मंत्रै, नद्याद्विप्र कथंचन ॥ मंत्रैश्च संस्कृतानद्या, तान्धेतं विधिना स्थितः ॥ १ ॥ अर्थ:-मंत्रों करके असंस्कृत पशुओंका मांसकों ब्राह्मण न खावे, अरु जो मंत्रों करके संस्कृत पशु हैं, तिनका मांस खावे, तो शाश्वतोन्तियो वैदिक जाननां.

उत्तर:- मंत्र करके जो मांस पवित्र कीया है, वो मांसकों धर्मी पुरुष कदापि नक्षण न करे, क्योंकि मंत्र जैसे अग्निका दाह शक्तिकों रोकता है, तैसें नरकादि प्रापण शक्ति जो मांसकी है, उसको नहीं दूर कर सके. जे कर दूर कर दें तब तो सर्व पाप करके पीठें पापका हनने वाला मंत्रके स्मरणमात्रसेंही सर्व पाप दूर हो जाने चाहियें, तब तो जो वेदोंमें पाप का निषेध करा है, सो सर्व निरर्थक हुआ, क्यों कि सर्व पापोंका मंत्रके स्मरणसें नाश होय गया, इस वास्ते यहजी अज्ञांहीका कहनां है,

तथा कोइ कहते है कि जैसें थोडासा मद्य पीनेसें नशा नहीं चढता है, तैसें थोडासा मांस खानेमेंजी पाप नहीं लगता है.

उत्तर:- बुद्धिमान् यवनमात्रजी मांस न खावे, क्यों कि थोडाजी विष दुःखदायी होता है, तैसें थोडाजी मांस खाना सोजी दोषके तांइ है.

अथ मांस खानेमें अनुत्तर रूप कहते हैं, तत्काल इस मांससें संमूर्धिम जीव उत्पन्न होते हैं, अरु अनंत निगोद रूप जीव तिनका संतान धारं वार होनां तिस करकें दूषित हैं, यदाहु-आमासु अपक्रासु, अविप चमाणासु मंसपेसीसु ॥ सयय चिय उववाउ, जणिउं निगोय जीवाणं ॥१॥
 अर्थ:-कच्ची तथा अपक ऐसी जो मांसकी पेसी वोटी रंधती है, तिसमें निरंतर निगोदके जीव उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते मांसका खानां जो हैं, सो नरकमें जाने वालोंकों पूरी खरची है, इस कारण के लीये बुद्धिमान् पुरुष जो हैं सो मांस कदापि न खावे.

अथ यह मांस खानाकिन्होने कयन करा है, तिनोका नाम लिखते हैं.
 १ मांस खानेके सोनीयोने, २ मयांदा रहितोने, ३ नास्तिकोने, ४ थोड़ी बुद्धि वालोंने, ५ छोटे शास्त्रोंके बनाने वालोंने, ६ बेरीयोंने, मांस खाना कहा है. तथा मांसाहारीसें अधिक कोइ निर्दयी नहीं. तथा मांसाहारी में अधिक कोइ नरककी अग्निका इंधन नहीं, गंदगी खा कर जो सूअर अपने शरीरकों पुष्ट करता है, सो अशुभ है, परंतु जीवकों मारके जो निर्दयी हो कर मांस खाता है, सो अशुभ नहीं है.

प्रश्न:- सर्व जीवोंका मांस खानां तो सर्व कुशास्त्रोंमें लिख दीया है, परंतु मनुष्यका मांस खानां तो कहीं किसी शास्त्रमें नहीं लिखा है, इसका क्या हेतु होगा ?

उत्तर:-अपने मांसकी रक्षा वास्ते मनुष्यका मांस खानां नहीं लिखा, क्यों कि ये कुशास्त्रोंके बनाने वाले जानते थे कि जो मनुष्यका मांस खानां खियेंगे, तो मनुष्य कबी हमकोही न खा खेवे ? इस शंकासें नहीं लिखा जो पुरुषमांसमें अरु पशुमांसमें विशेष नहीं मानता हैं, तिस समान को भी नहीं, अरु तिसमें जो निम्न मानके मांस खाते हैं इस समान कोइ पक्षी नहीं, तथा मांस जो है, तिसकी रुधिरसेंती उत्पत्ति होती है, अरु ऐसे रससें वृद्धि होती है, तथा खट्टु जिसमें जरा रहता है, अरु कृमि तिसमें उत्पन्न होते हैं, ऐसे मांसकों कौन बुद्धिमान् खाता है ? आश्चर्य तो है कि ब्राह्मण लोक शुचिभूष तो धर्म कहते हैं, अरु सप्त धातुमें जो मांस है बनते हैं. तिस मांस हानकों मुझमें शानोमें चवाते हैं, अथ उनकों कृष्ण के समान समजीये कि शुचिधर्मवासे मानीये ? यह आश्चर्य है, कि

दृष्टोंकी ऐसी समझ है, कि अन्न और मांस यह दोनो एक सरीखे हैं, तिनकी बुद्धिमें जीवित अरु मृत्युके देनेवाले अमृत और विषजी तुल्यही हैं,

अरु जो जरुबुद्धि ऐसा अनुमान करते हैं, कि मांस खाने योग्य है, इति प्राणीका अंग होनेसे यह हेतु उदनादिवत् यह दृष्टान्तसे यह मांसजी प्राणीका अंग है, इस वास्ते मांसजी खाने योग्य है, तब तो गौका भूत तथा माता, पिता, चार्या, बेटी, इनका भूत पुरिषजी क्यों नहीं पीते खाते हैं? क्योंकि यहजी प्राणीका अंग है, तथा अपनी चार्याकी तरें अपनी माता, बहिन, बेटीको क्यों नहीं गमन करते हैं? स्त्रीत्व अरु प्राणी अंगत्व सर्व जगे बराबर है, तथा जैसे गौका दूध पीते हैं, तैसें गौका रुधिर तथा माता पितादिकोंका रुधिरजी क्यों नहीं पीते हैं? क्योंकि प्राणी अंग हेतु तो सर्व जगें तुल्य हैं, इस वास्ते जो अन्न और मांस इन दोनोको तुल्य जानते हैं, बेजी महा पापीयोंके सिरदार हैं.

तथा शंखकों शुचि मानते हैं, परंतु पशुके हानकों कोइ शुचि नहीं मानता, इस वास्ते अन्न और मांस यद्यपि प्राणी अंग है, तोजी अन्न नश्य है, अरु मांस अन्नश्य है, एक पंचेंद्रिय जीवका बध करके जो मांस खाता है, जैसी तिसको नरकगति होती है, तैसी खोटी गति, अन्न खानेवालेको नहीं होती है, क्योंकि अन्न मांस नहीं हो सकता है, मांसकी तत्तीरोंसे अन्नकी तत्तीरें और तरेंकी हैं, मांस महाविकारका करने वाला है, तैसा अन्न नहीं. इत्यादि विषय खजाब है, इस वास्ते मांस खाने वालोकी नरकगति जान कर संत पुरुष अन्नके जोजनसे तृप्ति मानते हैं, अरु सरस पदकों प्राप्त होते हैं, यह तो मांसके दूषण श्रीहेमचंद्र सूरिकृत योगशास्त्रके अनुसार लिखे हैं. अरु इस कालमेंजी बुरुपियन लोक जो बुद्धिमान हैं, उनोंनेजी मांस खानेमें चौबीस दूषण प्रगट करे हैं, अरु मदिरा पीनेसे जा ग्यराबीयां होती हैं. तिनकी तो गिणतीजी नहीं है. इस वास्ते मदिरा अरु मांस यह दोनों अन्नश्यकों आवक त्यागे यह सातवा अन्नश्य कहा.

॥ आठमा अन्नश्य माखण है. क्योंकि जैन मतके शास्त्रानुसारे वाठमें बाहिर काटे माखणको जय अंतर मुहूर्त्त अर्थात् दो घटीके लगनग काल व्यतीत हो जाता है. तब उस माखणसे मृश्य जीव तहर्षके उत्पन्न हो जाते हैं, इस वास्ते माखण खाना वर्जित है. जैन लोकोंको वाठमें बाहिर

माखण निकालकें तत्काल अग्निके संयोगसें घी वनाके ठानके देखके भी ठेसै खाना चाहियें, क्यों कि एक तो इस रीतिसें शास्त्रोक्त जीव उत्पन्न नहीं होते हैं, तिनकी हिंसाजी नहीं होती है, अरु मकनी, कंसायी, मछरादि, जानवरोंके अवयव टांग प्रमुखजी घी ठाणणसें निकल जाते हैं, अरु माखण काम कीजी वृद्धि करता है, तब मनमें खोटे विकल्प उत्पन्न होते हैं, इस वास्तेजी श्रावककों माखण न खाना चाहियें, तथा एक जीवके वध करनेसेंजी जघ पाप होता है, तब तो पूर्वोक्त रीतीसें माखन तो जीवोंका पींड हो जाता है, तब माखनके खानेमें पापकी क्या गिनती है ?

प्रश्नः—माखनमें तो दो घनी पीठें कोई जीव उत्पन्न हुआ हम नहीं देखते हैं, तो फेर माखनमें दो घनी पीठें हम क्यों कर जीव मान लेंगे ?

उत्तरः—जो जैनमतके शास्त्रोंको सत्य मानेगा वो तो शास्त्रकारका कथन सत्यही मानेगा, अरु जो जैनके शास्त्रोंको सत्य नहीं मानता, वो चाहें सत्य माने, चाहो न माने परंतु हम आगम प्रमाणके बिना इस घातमें श्रौ प्रमाण नहीं दे सकते हैं, क्योंकि वस्तु दो तरंकी होती है, एक हेतुगम्य दूसरी आगमगम्य, तो माखनछिदलादिमे जो जीव उत्पन्न होते हैं, वे हेतुगम्य नहीं किंतु आगम गम्य हैं, इस वास्ते जो आगम सर्वज्ञ जिन अहंघीतरागका कथा हुआ है, उसीका कहा मानना चाहियें, जे कर कोई पुरुष किसीजी शास्त्रकों न मानेगा, शास्त्रोंसें देखी वस्तुही मानेगा तब तो रक खर्गादि जो अदृष्ट हैं, उनकोंजी न मानना चाहियें, तथा परमेश्वर चौदवे तथा सातवे असमान उपरि रहता है, तथा स्वर्ग अरु नरकमें पुण्य पाप करनेसें जीव जाता है, यहजी न मानना पडेगा, इस वास्ते आगम प्रमाणजी मानना चाहियें. क्योंकि सर्ववस्तु हमारी दृष्टिमें नहीं आती है.

ए नवमा अजदय मधु, अर्थात् सदृश है, उसका स्वरूप लिखते हैं. यह सदृश जो है, सो अनेक जीवोंकी घात होनेसें उत्पन्न होता है. यह तो परलोक विरोध दोष है, अरु मधु (सदृश) जुगुप्सनीय (निन्दने योग्य) है, मुखकी खालवत् यह इहलोक विरुद्ध दोष है, इस वास्ते श्रावकधर्मीकों मधु न खाना चाहियें.

अथ मधु अर्थात् सदृश खानेवालेकों पापी पणा दिखाते हैं, ॥ श्लोक ॥
जहयन्मादिकं हृष्टं, जंतुसकृदयोद्धवं॥स्तोकजंतुनिहतृण्यः, सौनिकेन्योऽ

तिरिच्यते ॥ १ ॥ अर्थ:- झुड़जंतु जो ठोटे जीव अथवा हाड रहित जीव, तिनोंके खाखोंका नाश उपलक्षणसें बहुत जीवोंका जब विनाश होता है, तब मधु उत्पन्न होता है, जब मधु जक्षण करता है, तब थोड़े पशु मारने वाले कसाइसैंजी उसकों अधिक पाप लगता है, क्यों कि जो जक्षण है, सोजी घातक है, यह बात उपर लिख आये हैं. तथा लोकमें यह व्यवहार है, जो जूठा जोजन नहीं खानां, अरु यह जो मधु है, सो तो महा जूठ है, क्योंकि एकेक फूलसें रस (मकरंद) पी करके मद्धीयों जो वमन करतीयों हैं. सो सहत हैं. मधु है इस वास्ते धर्मी पुरुषकों जूठ न खानी चाहियें. यह लौकिक व्यवहारमें प्रसिद्ध है.

कोइ कहेगा कि मधु तो त्रिदोषका दूर करने वाला है, इस लिये रोग दूर करने वास्ते औषधिमें जक्षण करे तो क्या दोष ? इत्याह.

उत्तर:- अप्योषधकृतेजग्धं, मधुश्चत्रनिबंधनं ॥ जक्षितप्राणनाशाय, कालकूटकणोऽपि हि ॥ १ ॥ अर्थ:- जो कोइ रसकी लंपटतासें मधु खावे, उसकी बात तो दूर रही, परंतु जो औषधिके वास्तेजी मधु खावे, सो यद्यपि रोगादि अपहारक है, तोजी नरकका कारण है, हि यस्मात् प्रमादके उदयसें जीवनेका अर्थी हो कर के जो कोइ कालकूट विपका एक कणजी खायगा, सो जरूर प्राण नाशके तांइ होवेगा.

प्रश्न:- मधु तो खजूर डाढ़ादि रसकी तरे मीठा है, सर्व इंडि योंकों सुखकारी है, तो फेर इसकों त्यागने योग्य क्यों कहते हो ?

उत्तर:- सत्य है. जो मधु मीठा है, यह व्यवहारसें हैं, परंतु परमा र्थसें तो नरककी वेदनाका हेतु होनेसें अत्यंत कटूआ है.

अब जो मधुकों पवित्र मान कर मंदबुधि जीवों मधुकों देवस्नानमें उपयोगी समझते हैं, तिनका उपहास्य शास्त्रकार करते हैं ॥ श्लोक ॥ मद्धि कामुखनिष्ठ्युतं, जंतुघातोद्भवं मधु ॥ अहो पवित्रं मन्वाना, देवस्नाने प्रयुं जते ॥ १ ॥ अर्थ:-माखीयोंके मुखकी जूठ, अरु जीवघातमें अर्थात् हजारों वच्चे अरु अंनोंके मारनेसें, उत्पन्न होता है वो वच्चे, अंडे जब मरते हैं, तब तिनके शरीरका लहु पाणीजी मधु (सहत) के बिच मिल जाते हैं, तब तो मधु महा अशुचिरूप है, अहो यह शब्द उपहास्यार्थमें हैं, क्यों कि जैसे वे देवता है, तैसी तिनकों पवित्र वस्तुजी चढाई जाती है. यह उपहास्य है,

अहो शब्द उपहासे ॥ यथा ॥ करजाणां विवाहे तु, रासजास्तत्रगायनाः ॥ परस्परं प्रशंसन्ति, अहो रूपमहो ध्वनिः ॥ १ ॥ यह नवमा अजह्य कथा. १० दशमा पाणीकी वनी हूइ वरफ अजह्य है, क्योंकि यह असंख्य अणु काय जीवोंका पिंड है इसके खानेसें चेतना मंद होती है अरु तत्काल शरदी करती है कुठ बल वृद्धि नहीं करती है अरु वीतराग अर्हंत सर्व ह्य परमेश्वरने, निषेध करा है इस वास्ते यह अजह्य है.

११ अफीम प्रमुख विषवस्तुके खानेसें पेटमें कृमि गंमोलादिक जो जीव होते हैं सो मरजाते हैं विष खानेसें चेतना मुरजा जाती है, अरु जे कर खानेका ढवपड जाता है, तो फेर बूटना मुस्किल होता है, बखतपर अमल न मिले तो क्रोध उत्पन्न होता है, शरीर शिथिल हो जाता है, अरु जो अमली हो जाता है, उसको व्रत नियम अंगीकार करना दुष्कर है, अमली का खजाव बढ़ जाता है, जब अमल खाता है, तब एक रंग होता है अरु जब अमल उतर जाता है तब दूसरा रंग होजाता है, तथा स्वतंत्रता गेड कर पराधीन होना पडता है, इसके खानेमे खादजी बुरा है, तथा विष खा नेवाला जहां लघुनीत बम्नीनीत करता है तिस क्षेत्रमें त्रस थावर जीवों की हिंसा होती है सोमल, वृषनाग, मीठा, तेलीया, संखीया, हरताल, प्रमुख ये सर्व विषहीमें जानने इसके खानेका त्याग करना.

१२ करकथोले (घडे) जे आकाशसें गिरते हैं यहजी अजह्य है.

१३ सर्वजातकी कश्चिमहि अजह्य हैं कश्चि सचिन्तमहि नाना प्रकार की असंख्य जीवात्मक जाननी, मट्टी खानेसें पेटमें बहुतजीव उत्पन्न हो जाते हैं, तथा पांशु रोग थाम वात पित्त पथरी प्रमुख बहुत रोग उत्पन्न हो जाते हैं, बहुत मट्टी खाने वालेका पीला रंग होजाता है, तथा कितनीक जातकी मट्टीमें मैरुक प्रमुख जीवोंकी योनी है इस वास्ते अजह्य है.

१४ रात्रीजोजन अजह्य है. रात्रीजोजन में तो प्रत्यक्षसें झूषण इस लोकमें है, अरु परलोकमें दुःखका हेतु है, रात्रिमें चारों आहार अजह्य है, रात्रिमें जो जैसे रंगका आहार होता है तिसमें तेसे रंगके जीव जिनका नाम तमस्काय जीव हैं वो उत्पन्न होते हैं, तथा आश्रित जीवजी बहुत होते हैं. तथा रात्रिमे उचित अनुचित वस्तुका जेस संजेस हो जाता है. तथा रात्रीजोजन करनेसें प्रसंग दोष बहुत लगते हैं. सो किसतरेंकि जय

रात्रिकां खावेगा तत्र नित्य रात्रिकों जोजन करने वास्ते रसोइजी करनी पड़ेगी, तिसमें जीवोंका संहार होवेगा. श्रावकके कुसका आचार त्रष्ट होजाता है. सूक्ष्म त्रस जीव नजरमें नहीं आते हैं. कदापि दीखजी जायें तोजी यत्न नहीं होता है. जब अग्निबलती है तब पासकी जीतमें रात्रिकों जो जीव आश्रित है वो तससे आकुल व्याकुल होकर अग्निमें गिर पड़ते हैं. सर्पादि कोंके मुखसे जेकर जोजनमें लाल गिरे तब कुटुंबका तथा अपनी आत्मा का विनाश होवे तथा पतंगीचे प्रमुखपडे तथा ठत्तमें अरु ठपरमें रात्रिकों सर्प गिरली, ठपकली, मकड़ी मठरादि बहुत जीव बसते हैं. जेकर ये जीव जोजनमें खायें जायें तो ज़ारी रोगोत्पन्न होजाते हैं. यष्टुकं योगशास्त्रे ॥ मेधां पिप्लिका हंति, यूका कुर्याज्जलोदरां ॥ कुरुते मक्षिका वांति, कुष्ट रोगं च कोलिका ॥ १ ॥ कंठको दारुखंडं च, वितनोतिगलव्यथां ॥ व्यंजनां तर्निपतित, स्ताबुविध्यति वृश्चिकः ॥ २ ॥ विलग्नश्च गलेवालः, स्वरजंगाय जायते ॥ श्ल्यादयोदृष्टदोषाः, सर्वेषां निशिजो जने ॥ ३ ॥ अर्थः— कीड़ी आदिमें खाइ जावे तो बुद्धिकों मंद करती है तथा यूका (जूके) खानेसें जलोदर करती है, मक्षी वमन करती है, मकड़ी कुष्ट रोग करती है, अरु वेरी प्रमुखका कांटा तथा काष्ठका टुकड़ा गलेमें पीडा करता है. तथा वटेरे आदिके व्यंजनमें जेकर बिबु आया जावेतो तालयोंको बंधता है इत्यादि रात्रिजो जन करनेमें दृष्ट दोष सर्वलोकोंके देखनेमें आते हैं तथा रात्रिजो जन करता हुआ अवश्य पाकः अर्थात् रसोइकरनी पड़ेगी तिनमें आवश्यक पट्कायके जीवोंका वध होवेगा. जाजन धोनेसें जलगत जीवोंका विनाश होता है. जलगेरनेसें ज़मीमें कुंथु कीका प्रमुख जीवोंकी घात होती है इसवास्ते जिसके जीव रक्षणेका आकांक्षा होवे वो रात्रि जो जन न करे.

प्रश्नः— जहां अन्नजी रांधना न पड़े जाजनजी धोनें न पड़े ऐसे जो बने बनाये लड्डु खजुर झाड़ादि जड़ है तिनके खानेमें क्या दोष है ?

उत्तरः— श्लोक ॥ नाप्रेक्ष्यसूक्ष्मजंतूनि, निश्याद्यात्प्राशुकान्यपि ॥ अप्युत्केवलज्ञानै, नर्हत्तं यन्निशाशनं ॥ १ ॥ अर्थः— मोदकादि फलादि यद्यपि प्राशुक अर्थात् अचेतनजी है तोजी रातकों न खाना चाहियें किस वास्ते कि सूक्ष्मजीव कुंघादि देखे नहीं जाते हैं, क्योंकि केवलीजी जिनको सदा सर्वकुछ दीखता है सोजी रात्रिमें जो जन नहीं करते हैं केवली

सूक्ष्म जीवोंकी रक्षा वास्ते अरु अशुद्ध व्यवहार दूर करने वास्ते रात्रि नहीं खाते हैं यद्यपि दीवेके चादणसैं कीसी प्रमुख दीख जाती है तो मूलगुणकी विराधना टालने वास्ते रात्रि जोजन अनाचीर्ण है.

अब लौकीक मतवालोंके सम्मति देकर रात्रिजोजनका निषेध का है ॥ श्लोक ॥ धर्मविज्ञैवजुंजीत्, कदाचनदिनात्यये ॥ बाह्याअपि निरजोज्यं, यदजोज्यंप्रचक्षते ॥ १ ॥ अर्थः— श्रुतधर्मका जानने वाला कचित् रात्रिजोजन न करे क्योंकि जो जिनशासनसैं बाहिरखे मतवाले वेनी रात्रिजोजनको अजक्ष्य कहते हैं तिनका शास्त्रही लिखते ॥ श्लोक ॥ त्रयीतेजोमयोजानु, रितिवेदविदोविभुः ॥ तत्करेः पूतमस्त्रिंशुजंकर्मसमाचरेत् ॥ १ ॥ अर्थः— ऋग यजुः साम खण्ड्य तीनों वेद तिनका जो तेज है सो सूर्य है आदित्यः त्रयीतनुः ऐसे सूर्यका नाम है ऐसे वेदोंके जानने वाले जानते हैं, तिस सूर्यकी किरणाकरके पिः— पूतं (विभ्रं) संपूर्ण शुभकर्म अंगीकार करे जब सूर्योदय न होवे तब शुभकर्म न करे तिन शुभकर्मोंका नाम लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ नैवाहुतिर्नचक्षानं नश्राद्धदेवतार्चनं ॥ दानंवाविहृतंरात्रौ, जोजनंच विशेषतः ॥ २ ॥ अर्थः— आहुति सो अग्निमें घृतादि प्रक्षेप करना, क्षानसो अंग प्रयंग प्रक्षालन, श्राद्ध पितृकर्म, देवपूजा, दानदेना, जोजन तो विशेष करकेही न करने, इतना काम रात्रिमें न करने.

तथा परमतके यहजी दो श्लोक हैं ॥ देवैस्तुजुक्तंपूर्वान्हे, मध्यानेरुपिजीस्तथा ॥ अपरान्हेतुपितृजिः, सायान्हेदैत्यदानवैः ॥ १ ॥ संध्यायां यक्षरक्षोजिः, सदाजुंक्कुलोच्छ्रुः ॥ सर्ववेलां व्यक्तिकर्म्य, रात्रौजुक्तमजोजनं ॥ २ ॥ अर्थः— सवेरेतो देवता जोजन करते है, मध्यान्ह अर्थात् दोपहर दिन चढ़े रुपि जोजन करते हैं, अपरान्ह अर्थात् दिनके पीछे जागमें पितर जोजन करते है, अरु सायान्ह विकाख वेखामें दैत्य दानव जोजन करते हैं, संध्यामें रातदिनकी संधिमें यक्ष शुद्धक राक्षस खाते हैं ॥ कुप्रह्मे तियुधिष्ठिरस्यामंत्रणं ॥ सर्वदेवतायांका वखत जलंधके रात्रिकां जो खाना है सो अजक्ष है, यह पुराणोंके श्लोकों करके रात्रि जोजनके निषेधका संवाद कक्षा.

अब वैद्यक शास्त्रकाजी रात्रिजोजनके निषेधका संवाद कहते हैं. श्लो

क ॥ आयुर्वेदेषु ॥ हृन्नाजि पद्मसंकोच, श्रृंगरो चिरपायतः ॥ अतो नक्तं नजो
क्तव्यं, सूक्ष्मजीवा दनादपि ॥ १ ॥ अर्थः— इस शरीरमें दो पद्म अर्थात्
कमल हैं एक तो रुदय पद्म सो अधोमुख है दूसरा नाजिपद्म सो ऊर्ध्वमु
ख है, यह दोनो कमल सो सूर्यके अस्त होनेसे रात्रिमें संकोच हो जाते
हैं, किस कारणसे संकोच होजाते हैं? सूर्यके अस्त होजानेसे संकोच हो
जाते हैं, इस वास्ते रात्रिकों न खाना चाहिये तथा रात्रिकों सूक्ष्म जीव
खाये जाते हैं इस्से अनेक रोगोत्पन्न होते हैं यह पर पद्मका संवाद कथा,

अब फेर खमतसे रात्रिजो जनका निषेध कहते हैं ॥ श्लोक ॥ संसज्ज
जीवसंघातं, जुंजाना निशिजो जनं ॥ राक्षसेभ्यो विशिष्यन्ते, मूढात्मानः कथं
नुते ॥ १ ॥ अर्थः—जब रात्रिमें खाता है तब जीवोंका समूह जो जनमें पन
जाता है ऐसे अंधरूप रात्रिके जो जनके खानेवालोंको राक्षसोंसे भी क्यों
कर विशेष नहीं कहना? जब पुरुष जिनधर्मसे रहित होकर बिरति नहीं
करता है तब शृंग पुच्छसे रहित पशु रूपही है, यद्युक्तं ॥ वासरे च रजन्यां
च, यः खादन्नेव तिष्ठति ॥ शृंगपुच्छपरिच्रष्टः, स स्पष्टं पशुरेव हि ॥ १ ॥

अब रात्रिजो जन निवृत्तिके वास्ते पुण्यवतोंको अन्यास विशेष दिखा
ते हैं ॥ श्लोक ॥ अन्धो मुखे वसाने च, यो द्वे द्वे घटिके त्यजेत् ॥ निशाजो जन
दोषज्ञो, ऽभ्रात्यसौ पुण्यजा जनं ॥ १ ॥ अर्थः—दिन उदयमें अरु अस्त समयमें
दो दो घनी वर्जनी चाहिये क्योंकि रात्रि निकट होनेसे वर्जनी चाहिये,
इसीवास्ते आगममें सर्व जघन्य प्रत्याख्यान मुहूर्त्त प्रमाण नमस्कार सहित
कहते हैं, रात्रिजो जनके छपणोंका जानकार श्रावक दो घटी जब शेष दिन
रहे तब जो जन करे, जेकर दो घडीसे थोना दिन रहे जो जन करे तो रात्रि
जो जनके प्रत्याख्यानका उसको फल नहीं होता है, जेकर कोइ रात्रिकों
नहीं खावे परंतु जो उसने रात्रिजो जनका प्रत्याख्यान न करा है तो उ
सको भी कुछ फल नहीं मिलता है, क्योंकि उसने प्रतिज्ञा नहीं करी है
जैसे रूपइये जमा करावे अरु व्याजका करार न करे उसको व्याज नहीं
मिलता है इस वास्ते नियम जरूर करना चाहिये,

अब रात्रिजो जन खानेका फल परलोकमें कहते हैं ॥ श्लोक ॥ उच्चूक
काकमार्जार, यधशंवरशूकराः ॥ अहिवृश्चिकगोधाश्च, जायन्ते रात्रिजो ज
नात् ॥ १ ॥ अर्थः— उच्चूक, काग, विह्वी, यधचील, वारासिंगा, सूअर, सर्प,

विष्णु, गार्ह, इत्यादि तिर्यंच योनीमें रात्रिजोजन खानेवाले मरके जाते हैं
अरु जो रात्रिजोजन न करे उनको एक वर्षमें ठे महीनेका तपका फल
होता है ॥ इतिरात्रिजोजन अन्नदय संपूर्ण ॥ १४ ॥

१५ बहुवीजा फलजी अन्नदय है. जिसमें गिर थोडा अरु बीज बहुत
होवे सो बड़गण, पटोल, खसखस, पंपोटा प्रमुख फल, जिसमें जितने
बीज हैं उसमें उतने पर्याप्त जीव हैं जेकर खानेमें तो थोडा आता है अरु
जीवपात बहुत होती है तथा बहुवीजा फल खानेसे पित प्रमुख रोगोंका
हेतु होता है अरु जिनाझा विरुद्ध है. इति बहु बीजा अन्नदय ॥ १५ ॥

१६ संधान अथाणा (आचार) तीन दिनसें उपरांतका अन्नदय है. सो अथाणा
(आचार) अंधका, निचुका, पत्रका, कर्मदाका, आदेका, जिमीकंदका,
गिरमिरका इत्यादिक अनेक वस्तुका अथाणा (आचार) घनता है. चाहो
पीका होवे वा तेलका होवे वा पाणीका होवे सर्व तीन दिन उपरांत
अन्नदय है, परंतु इतना विशेष है कि:—जो फल आप खहे हैं अथवा दूत
री वस्तुमें गृह्य अथादिकजो मेल देवे वेतो तीनदिन उपरांत अन्नदय है.
अरु जिस वस्तुमें गृह्य नहीं है उसका अथाणा (आचार) एक रात्रिसें
उपरांत अन्नदय है. क्यों कि:—इस आचार (अथाणामें) घस जीव उत्पन्न
होने हैं, अरु विषु प्रमुखतो प्रथमही अन्नदय हैं. तो फेर उनके अथाणे
(आचारका) तो क्याही कहना है? आचारमें चौथे दिन निश्चय वा
इंद्रियजीव उत्पन्न होने हैं. तथा जूग हाथ लग जावेतो पंचेंद्री जीव
उत्पन्न हो जाते हैं. दूसरे मतवालोंके शास्त्रोंमेंनी अथाणा (आचार)
नरकका हेतु प्रिया है. इति अथाणा अन्नदय समाप्त: ॥ १६ ॥

१७ छिदस्र जिमकी दो दास होजावे अरु घाणीमें पीले जिसमेंसुं तेल
न निकसे अमें सर्व अन्नको छिदस्र कहते हैं. तिस छिदस्रके साथ जो
गोरस अग्नि उपर नहीं चढ़ा है अंसा कच्चा दही कच्चा दूध ठाठ इनके
साथ नहीं जीमणा. अरु जेकर दही दूध ठाठ गरम करी होवे फेर पीवे
चाहो ठंडा हो जावे उसमें जो छिदस्र मिलाकर मारवे तो दोष नहीं है.

१८ सर्व जानके वेंगण एकनो बहु बीजेहें उस वाग्ने अन्नदय है. जिस
के बीटमें मूत्र प्रस जीव रहते हैं, तथा वेंगण कामकी वृद्धि करते हैं, नींद
अधिक करते हैं, कुत्रक वृद्धिकोंनी दीग करते हैं, इनका नामनी वृग है. इन

का आकारजी अष्टा नहीं है, तथा कफ रोगके करता हैं, इनके अधिक खानेसें चोथ इयातप खइ रोगादि हो जाते हैं, और सब जातका फलतो सूकेजी खानेमें आता है, परंतु यहतो सूकेजी खाने योग्य नहीं हैं, क्योंकि सूके पीठे ऐसे हो जाते हैं कि मानों चुहोंकी खलडी है. ताते यह अव्य अशुद्ध है, इस वास्ते अजदय है. इति वंगण अजदय ॥ २८ ॥

१९ तुछ फल जो ढांडु पीछुं पेंचु तथा अत्यंत कोमल फल सोजी अजदय है क्योंकि ऐसी वस्तु बहुतजी खावे तोजी तृप्ति नहीं होती है अरु खानेमें थोडा आता है और गेरना बहुत पडता है, तथा फल खायां पीठें तिनकी गुठली जो मुखमें चबोलके गेरते हैं उसमें असंख्य पंचेंद्री य संमूर्धिम जीव उत्पन्न होते हैं. तथा जो पुरुष बहुत तुछफल खाता है तिसको तत्काळ रोग होजाता है. इति तुछफल अजदय ॥ १९ ॥

२० अजाणा फल सो जिसका नाम कोइ न जानता होवे तथा न कि सीने खाया होवे सो फलजी अजदय हैं. क्योंकि क्या जाने कजी जहर फल खाया जावे तो मरण हो जावे तथा बाबला होजावे ॥ २० ॥

२१ चलित रस सो जिस वस्तुका काल पूरा होगया होवे अरु स्वाद बलद गया होवे सो जब स्वाद बढल जाता है तब तिसका कालजी पूरा होजाता है. जिसमेंसें दुर्गंध आनें लगे, तार पर जावें, सो चलितरस वस्तु है यहजी अजदय है. रोटी, तरकारी, खीचनी, बडा, नरमपूरी, सीरां, हलवा इत्यादि रसोइकी अनेक वस्तु जिनमें पाणीकी सरसाइ है ऐसी वस्तु एक रात उपरांत अजदय है. तथा छिदल (दाल,) बने, गुलगुले, जुजीये जिनमें पाणीकी सरसाइ है, वे चार पहर उपरांत अजदय है. जूग लीकी राव (घेंस) जो बिना विदलके और उदन ठाठमें रांधा है सो आठ पहर उपरांत अजदय है तथा वर्षाकालमें अठीरीतीसें जो मिठाइ बनी होवे तो पंदर दिन उपरांत अजदय है. जेकर पंदर दिनसें पहिले बिगड जावे तो पहिलाही अजदय है. ऐसी तरें सर्वत्र जान लेना. तथा उष्णकालमें मिठाइकी स्थिति बीस दिनकी है. अरु शीतकालमें मिठाइ की स्थिति एक मासकी है, उपरांत अजदय है तथा दही शोलां पहर उपरांत अजदय है. ठाठजी दहीवत् जानलेनी. इस चलित रसमें वें इंड्रिय जीव उत्पन्न होतें हैं इस वास्ते यह अजदय है. ॥ २१ ॥

१२ वत्तीस अनंत काय सर्व अजद्य है. क्योंकि सूर्देकेअप्रजाग उस जितना टुकड़ा अनंतकायका आता है. उस टुकड़ेमेंजी अनंत जीव है वास्ते अजद्य है. तिसका नाम लिखते हैं. १ जूमिके अंदर जितना कं उत्पन्न होता है, सो सर्व अनंतकाय है, २ सूरणकंद, ३ वज्रकंद, ४ हरि हलदी, ५ अजक, ६ हरिया कचुर, ७ सोंफकी जडा, तिसका नाम तिसी कंद है, ८ सतावरवेस ओपधि, ९ कुंआर, १० थोहरकंद, ११ गणो. १२ लसण, १३ वांसका करेला, १४ गाजर, १५ लाणा, जिसकी सजी व नती है, १६ लोढी पयनी सो लोढाकंद, १७ गिरमिर, (गिरिकरनी) फग देशमें प्रसिद्ध है १८ किसलयपत्र (कोमल पत्र) जो नवा अंहर उगता है. सर्व वनस्पतिका उगती वखतके अंकूर, सो सर्व प्रथम अनंत काय होते हैं, पीठें जय बढ़ते है, तत्र प्रत्येकजी हो जाते हैं, अरु अनंत कायनी रहते हैं, १९ खरसूयाकंद. (कसेरु) अनंतकाय, २० येग का विशेष है तथा येग नामक जाजी, २१ हरे मोय, २२ लवण गृदाकी वास, २३ गिलोनी, २४ अमृतवेस, २५ मूली, २६ जूमिरुहा सो जूमिफोना व प्रकार, जिनका वासक पदवहेडे कहते हैं, तथा खुंवां कहते हैं, २७ वयुवेकी प्रथम उगतेकी जाजी, २८ करुहार, २९ सूरयवल्ली जो जंगलमें पनी घेसनी हो जाती है, ३० पलककी जाजी, ३१ कोमल आंयली, जह तक उसमें बीज नहीं पडा है, तर्हातक अनंतकाय है, ३२ आमुख, रतामु पिंकासु, यह वत्तीस अनंत कायका नाम सामान्य प्रकारसें कहा है, आ विशेष नाम तो अनेक हैं, क्यों कि कोईक वनस्पति तो पंचांग अनंतकाय है, कोईका मूख अनंतकाय है, कोईका पत्र, कोईका फूल, कोईकी वास कोईका काट, अमें कोईके एक अंग, कोईके दो अंग, कोईके तीन अंग, कोईके चार अंग, कोईके पांच अंग, अनंत काय हैं. यह पत्रीश अनंत काय अनद्य है ॥ २ ॥

अब यह अनंतकायके जानने वाम्ने सङ्गण लिखते हैं. जिसके पने फूल, फल प्रमुखकी नमां गूट होंवें, दीये नहीं, तथा जिसकी मंथि छु होंवें. जो तोननेमें बगवर टूटे, अरु जो जटसें काटी दुइ फेर हरि ह जावे, जिसके पने मोटे दसदार चीकणें होंवें, जिसके पने अरु फल हुन कोमल होंवें, ये सर्व अनंतकाय जाननी.

इन अजक्तोंमें अफीम जांग प्रमुखका जिसको पहिला अमल लगा होवे, तब तिसके रखनेकी जयणा करे, तथा रात्रिजोजनमें चउविहार, ति विहार, छुविहार एक मासमें इतने करुं ऐसा नियम करे, तथा रोगादिकके कारण किसी औषधिमें कोइ अजक्त खाना पड़े, तिसकी जयणा रखे, तथा वत्तीस अनंतकाय तो सर्वथा निषेध हैं, तोजी रोगादि कारणसें औषधिमें खानी पड़े, तिसकी जयणा रखे, तथा अजाण पणे किसी वस्तुमें मिली दूइ खानेमें आ जावे, तो तिसकी जयणा इति बावीश अजदय स्वरूप.

अथ चौदह नियमका विवरण लिखते हैं. गाथा ॥ सच्चित्तद्वविगइ, वाणेइ तंवोळ वञ्ज कुसुमेसु ॥ बाहण सयण विज्ञेवण, वंजदिसि न्हाणजत्तेसु ॥ १ ॥ अस्वार्थः—श्रावकके जावजीव पांच अणुव्रतमें इछा परिमाण सो कोइ आगेंकी अनेक तरेंकी कर्म परिणतिका संजव करकें अपणे निर्वाह सामर्थ्यका उदय अतिदुस्तर विचारके इछा परिमाणमें बहुत वस्तुखुद्दी रखी है, तिनमेंसें फेर नित्यका आश्रव निवारनेके वास्ते संक्षेप करणार्थ चौदह नियमका धारण दिन प्रत्ये रखनां चाहियें, तिसका स्वरूप कहते है.

प्रथम सच्चित्त परिमाण. सो मुख्यवृत्ती करके तो श्रावकों सच्चित्त कों त्याग करणां चाहियें, क्योंकि अचित्त वस्तुके खानेमें चार गुण हैं, प्रथम तो अप्राशुक जलादिकका पीना बर्जनेसें, सर्व सच्चित्त वस्तुका त्याग हो जाता है, जहां तक अचित्त वस्तु न होवे, तहां तक मुखमें प्रक्षेप न करे, दूसरा जीव्हा इंद्रिय जींती जाती है, क्योंकि कितनीक वस्तु बिना रांधे खादवाली होती है, तिनका त्याग हुआ. तीसरा अचित्त जलादि पीनेसें काम चेष्टा मंद हो जाती है, अरु चित्तमें ऐसा खटका हरहमे श रहता है, कि मेरेकूं मतकजी सच्चित्त वस्तु खानेमें आ जावे ? चौथा जलादिक अव्य अचेतन करनेमें जीवहिंसा दूइ है, सोतो कर्मबंधनका कारण बन चुकी, परंतु जो क्षण क्षणमें असंख्य (अनंत) जीवोंकी उत्पत्ति होती थी, सो मिट गइ तिनकी हिंसा न होवेगी, अरु जो कोइ मूढ मति अपनी मनःकल्पनासें ऐसा विचार करे कि अचित्त करनेमें पट्ट कायके जीवोंकी हिंसा होती है, अरु सच्चित्त जलादिक पीनेमें तो एक जलादिककी हिंसा हैं, इस वास्ते सच्चित्तका त्याग न करनां चाहियें. ऐसा विचारके सच्चित्त त्यागे नहीं, सो मूर्ख जिनमतके रहस्यकों नहीं

जानता, क्योंकि संचित्तकें त्यागनेसें आत्मदमनता, आत्सुक्य निवृत्ता, विषय कषायकी मंदता होती है, अरु जिसमें खदयागुण बहुत है, सोची वो नहीं जानते इस वास्ते सचित्त त्यागनेमें बहुत लाज है.

२ दूसरा अव्य नियम. सो धातुका वा शिला, काष्ठ, मटीका पात्र प्रमुख तथा अपर्णी अंगुली प्रमुख विना जो मुखमें खावे सो अव्य कहते हैं. "परिणामांतरापन्नं अव्यमुच्यते" तिनमें खीचनी तो मोदक, पापरु, बड़ा प्रमुख बहुत अव्यसें बनते हैं, तोची परिणामांतरसें एकही अव्य है तथा एकही गेहूंकी बनी, रोटी, पोखी, गूंगरी, घाटी प्रमुख है, तोची यह सर्व जिन्न अव्य हैं, क्योंकि नामांतर स्वादांतर रूपांतर परिणामांतरसें अव्यांतर हो जाते हैं, तथा कोइक आचार्य और तरेंजी अव्यका स्वरूप कहते हैं, परंतु जो उपर लिखा है, सो बहुत बृद्ध आचार्योंको यही समझते हैं. इस वास्ते अव्योंका परिमाण करे कि आजमें इतने अव्य खाऊंगा.

३ तीसरा विगय नियम. सो विगय दश प्रकारका है, तिनमें १ मधु, २ मांस, ३ माखन, ४ मदिरा, यह चार तो महाविगय हैं, इन चारोंका त्याग तो बावीश अन्नकमें लिख आये है, शेष ठे विगय रही, तिसका नाम कहते हैं. १ दूध, २ दही, ३ घृत, ४ तैल, ५ गुल, ६ सर्वजातका पकवान, इस ठे विगयमेंसें नित्य एक, दो, तीनादि विगयका त्याग करे, अरु एकेक विगयके पांच पांच निवीताजी विगयके साथ त्यागना चाहिये, जेकर निवीता त्यागनेकी मनमें न होवे, तब प्रत्याख्यान करनेके अवसरमें मनमें धारे कि मेरे विगयका त्याग है, परंतु निवीताका त्याग नहीं.

४ चौथा उपानह. सो जूता पहिरनेका नियम करे, पगरखी, खडावा, मोजा, बूट, प्रमुख सर्वका नियम करे, क्योंकि यह सर्व जीवहिंसाके अधिकार हैं, तिनमें श्रावकने जिनपूजादि कारण विना खडावां तो कदापि नहीं पहिरनी, क्योंकि इनके हेठ जो जीव आ जाता है, वो जीता नहीं रहता है, अरु गृहस्थ लोकोंको जूते विना सरता नहीं इस वास्ते मर्यादा कर लेवे, फेर दूसरेके जूतेमें पग न देवे चूख चूक हो जावे तो आगार.

५ पांचमा तंबोल. सो चौथा खादिम नामा आहार है, उसका नियम करे, उसमें पान, सोपारी, खवंग, एलायची, तज. दारचीनी, जातिफल, जावंत्री, पीपलामूख, पीपर, प्रमुख करियाणकी चीज, जिसें मुख शुद्ध हो

जावे, परंतु उदर जरण न होवे, तिसकों तंबोल कहते हैं. तिसका परिमाण करे
६ ठठा वस्त्र नियम है. सो पुरुषके पांचो अंगोके वस्त्रोंका वेप पहरनेका
तिसकी संख्या करे. कि आजके दिनमें मेरेकों इतने वेप रखने हैं, तथा
इतने खुल्ले वस्त्र उंदने हैं, तथा रात्रिकों पहरेनेका वस्त्र तथा स्नान समय
पहरनेका वस्त्रकी वेपमे गिणती नहीं तथा समुच्चय वस्त्रकी संख्या रख
लेवे, अजाण पण जेल संजेल हो जावे तो आगार.

७ सातमां फूलोंके जोगका नियम करे, सो मस्तकमें रखनेवाले, श्रु गले
में पहरने वाले, तथा फूलोंकी शय्या, फूलोंका तकीया, फूलोंका पंखा, फु
लोंका चंद्रवा, जाली प्रमुख जो जो वस्तु जोगमें आवे, फूलकी ठडी से
हरा, कलंगी, श्रु फूल जो सूंघनेमें आवे, तिनका तोल परिमाण रखनां.

८ आठमां वाहन नियम करे, सो रथ, गानी, घोना, पाखली, उंट,
बखद, नाव, प्रमुख जिसके उपर बैठके जहां जाना होंवे, तहां जावे,
सो वाहन सर्व तीन तरेंका है. १ तरता, २ फिरता, ३ उन्ता, तिनकी
संख्याका नियम करे कि इत्तरेंकी अस्वारीमें आज चढनां.

९ नवमां शयन शय्याका नियम करे. सो खाट, चौंकी, पाट, तखत, खुर
सी, पाखली, सुखासन प्रमुख जितने रखने होवे सो मनमें धार लेवे.

१० दशमां विधेपनका नियम करे. सो जोगके अर्थ केसर, चंदन, चोवा
अतर, फूलेख, गुलाबादिक जो वस्तु अंगके लगानी होवे, तिसका नाम
मनमें धार लेवे, तथा अंगखूहणाजी इत्तीमें रक्त लेनां इत्तमें इतना विशेष
है कि देवपूजा, देवदर्शन, इत्यादि धर्म करणी करतां हाथमे धूप, अगर
बत्ती लेनी पड़े, तथा अपणें मस्तकमें तिलक करनां पड़े, तथा जगवानकी
प्रतिमाकों तिलक करनां पने, तिसका आवककों नियम नहीं है.

११ इग्यारवां ब्रह्मचर्यका नियम करे, सो दिनमे श्रु रात्रिमें इतनी
वार खत्रीसें मैथुन सेवनां, उपरांत खत्रीसेंजी नहीं सेवनां, श्रु हास्य
विनोद आसिंगन जुंवनादिक करनेका जांगा राखे.

१२ बारहवां दिशिका नियम करे, सो अमुक दिशिमें आज मेने इतने
कोत्त उपरांत नहीं जानां, इत्तमें आदेश, उपदेश, माणस जेजना, चिछी
खितनी, ये सर्व नियम आ गये, जेंसें पाळ सके, तेंसे नियम करे.

१३ तेरहवां स्नानका नियम करे, सो आजके दिनमें तेलमर्दन पूर्वक तथा

विनमर्दनपूर्वक कितनी वस्त्र स्नान करना, सो धार लेवे, इसमें देखा जाके वास्ते नियमसे अधिक स्नान करना पड़े, तो व्रतजंग नहीं।

१४ चौदहवां जात पाणीका नियम सो चार आहारमेंसुं खाविस तो तंबोलके नियममें परिमाण रखा है, शेष तीन आहार हैं, तिसका प्रथम अशन, सो जात, रोटी, कचौरी, सीरा प्रमुख, तिसका परिमाण करे, कि आजके दिनमें इतना सेर भैरेको खाना है उपरांत त्याग है, घरमें बहुत परिवार होवे तिसके वास्ते बहुत अशनादि कराने पड़े, तिसकी जयणा रखे, तथा औरोंके घरमें पंचायत जीमें तहां जाना पड़े, उक्त बहुत आदमीउंकी रसोई बना रखी है, उसका हूपण नियम धारीका नहीं, क्योंकि नियम धारीने तो अपणेही खानेकी मर्यादा करी है, परंतु न्यातिके खानेकी मर्यादा नहीं करी है, इस वास्ते अपणे खानेका परिमाण करे कि इतने सेर उपरांत में आज नहीं खाउंगा, तथा दूसरा पाणी तिसके पीनेका परिमाण करे, कि इतने कलसो उपरांत पाणी मेंने आज नहीं पीनां, तथा तीसरा खादिम, सो मिठाई अथवा मिष्ठान्न मोदकादिक तिसका परिमाण करे, यह चौदह नियम हैं, इहां अधिक जाय वासा आतक होवे, सो सचित्तादि परिमाणमें अव्यका परिमाण जूदा जूदा नाम करे रखे, तो बहुत निर्झरा होवे ॥ इति चौदह नियमका स्वरूप संपूर्ण ॥

अथ पंदरा कर्मादानका स्वरूप लिखते हैं. यह पंदरह व्यापार आचरकों निषेध हैं, सो कारणों नहीं, क्योंकि इनके करणसे बहुत पाप उत्पन्न होता है, जे कर श्रावककी आजीविका न चलती होवे तो परिमाण कर लेवे सो पंदराकर्मादानका नाम कहते हैं.

१ प्रथम इंगाखकर्म, सो कोयसे बना कर बेचने. इंट बनाकर बेचने, जाले गिलोने बनापका करके बेचे, लोहारका कर्म, सोनारका कर्म, धोलाई कार, मीसकार, कलाख, जड़ीयारा, जडजूजा, हसवाइ, धातुगाखक, इत्यादि जो व्यापार अग्निकरके होवे, सो सर्व इंगाखकर्म हैं. इसमें पाप बहुत उत्पन्न होता है, अरु खान योग्य होता है, इस वास्ते यहकर्म श्रावक न करे.

२ दूसरा वनकर्म, मो ठेया अथवा वन बेचे, घर्गाचेके फल पत्र बेचे. फल, फुल, कंदमूल, तृण, काष्ठ, सकमी, वंशादिक बेचे. तथा जो हरि वनस्पति बेचे, यह सर्व वनकर्म है.

३ तीसरा साक्षीकर्म सो गामी, बहिस तथा अस्वारीका रथ, नावां, जहाज, तथा हल, इंताख, चरखा, घाणीका अंग, तथा धूसरा, चक्री, उखली, मृशख, प्रमुख बना करके वेचे, यह सर्व शकटकर्म हैं.

४ चौथा जाडीकर्म. सो गाडा, गखद, उंट, जैस, गझा, खच्चर, घोना नाव, रथ प्रमुखतें इत्तरोंका बोज बहे जाडे करी आजीविका करे.

५ पांचमा फोनीकर्म. सो आजीविका वास्ते कूप, बावडी, तलाव, खोदावे, हल चलावे, पहर फोनावे, खान खोदावे, इत्यादिक स्फोटिक कर्म हैं. इन पांचों कर्मोंमें बहुत जीवोंकी हिंसा होती है. इत वास्ते इन पांचोंको कुकर्म कहते हैं. अब पांच कुवाणिज्य लिखते हैं.

१ प्रथम दंतकुवाणिज्य, सो हाथीका दांत, उल्लूके नख, जीन, कडे जा, पक्षीयोंका रोम तथा गायका चमर, हरणके सींग, वारासिंगेके सींग, कृम जिस्ते रेतन रंगते हैं, इत्यादिक जो व्रत जीवका अंगोपांग वेचना है. सो सर्व दंतकुवाणिज्य है. जब इन वस्तुओंके लेने वास्ते आगरमें जावे, तब जिल्लादिक लोक तत्काज हाथी, गैना, प्रमुख जीवोंकी हिंसामें प्रवर्त होते हैं. महा पाप अनर्थ करे, तहां जानेंतें अ पणा परिणामभी नखिन हो जाते हैं, कदाचित् लोचपीनित हो कर जिल्ल व्याधोंको कहनां पड़ेकि, हमको मोटा जारी दांत चाह्यीता है, तब वा लोक तत्काज हाथीको मारके बैसा दांत ल्यावेंगे, इत वास्ते जे कर वस्तु लेनी पने, तब व्यापारीके पासतें लेवे, परंतु आगरमें जाकर न लेवे, क्योंकि आगरमें जा कर एक चमर लेवे, तो एक गाय मरे इत वास्ते विचार करके वाणिज्य करे. यह प्रथम दंत कुवाणिज्य है.

२ दूसरा साखकुवाणिज्य. सो लोहा, धावनी, नील, सज्जीखार, सा वन, मनसिख, सोहागा, इत्यादि. तथा साख. ये सर्व साख कुवाणिज्य हैं. प्रथम तो व्रत जीवोंका समूहहीतें साख बनती है. अरु पीठें जब रंग काढते हैं, तब तिसको अनतें सनाते हैं. तब व्रत जीवकी उत्पत्ति होती है, अरु महा दुर्गंध रविर सरीखा वर्ण दीखता है, तथा धावडीमें व्रत जीव उपजते हैं, कुंयुचेनी बहुत होते हैं. अरु यह मदिरके अंग हैं, तथा नीलको जब प्रथम सडाते हैं. तब व्रत जीव उत्पन्न होते हैं; पीठेंनी नीलके कुंनमें व्रतजीव बहुत उत्पन्न होते हैं, अरु नीला बख पहि

रनेसें उसमें जूझीखादि त्रसजीव उत्पन्न होते हैं, तथा हरताल मनसिख पीसती वखत जो यत्न न करे, तो मस्की प्रमुख अनेक जीव मर जाते हैं.

३ तीसरा रस कुवाणिज्य. सो मदिरा, मांस, इत्यादि वस्तुका व्यापार महा पापरूप है, तथा दूध, दही, घृत, तेल, गुरु, खांड प्रमुख जो बीड़ी वस्तु है, इसका जो व्यापार करनां सो रसकुवाणिज्य है. इसमें अनेक जीवोंकी घात होती है. वास्ते यह व्यापार श्रावक न करे.

४ चौथा केशकुवाणिज्य है. सो छिपद जो मनुष्य, दास, दासी प्रमुख, त रीद कर वेचनें, तथा चौपद जो गाय, घोडा, जैस प्रमुख खरीदके वेचनें तथा पंखीयोंमें तीत्तर, मोर, तोता, मैनां, चटेरा प्रमुख वेचे, इस वाणिज्यमें पाप बहुत है. इस वास्ते यह व्यापार श्रावक न करे.

५ पांचमा विप कुवाणिज्य. सो शंखीया (सोमल) वठनाग, अफीम, मनसिख, हरताल, चरस, गांजा प्रमुख तथा शस्त्र जो धनुष, तलवार, टारी, तुरी, धरठी, फरसी, कुहाडी, कुशी, कुदाल, पेसकवज, बंदूक, ढाल, गोली, दारु, वक्कर, पाखर, जिलम, तोप प्रमुख जिन करके संग्राम करते हैं, तथा हल, मूसल, उखल, दंताली, कर्वत, दात्री, गोडा, दवाइ, पटाका, कुहक शतभी प्रमुख सर्व हिंसाहीका अधिकरण है. इनका जो व्यापार करनां, सो सब विपवाणिज्य है, इसमें बहुत हिंसा होती है, ये पांच कुवाणिज्य हैं. अब पांच सामान्य कर्म कहते हैं.

१ प्रथम यंत्रपीलन कर्म. सो तिख सरसों, इह्नुआदि पीलाय करके वेचना, यह सर्व जीवहिंसाके निमित्तरूप यंत्रपीलन कर्म है.

२ दूसरा निर्वाठन कर्म. सो बैल घोडाकों खस्ती करणां, घोडे, घड़ द, ऊंट प्रमुखकों दाग देनां, कोतवाखकी नौकरी, जेलखानेका दरोगा ठेकाखेनां, मसूल इजारे खेनां, चोरोंके गाममें वास करनां, इत्यादि जो निर्दयपणके काम है, सो सर्व निर्वाठन कर्म है.

३ तीसरा दावाभिदान कर्म. सो कितनेक मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जीव धर्म मानके धनमें आग लगा देते हैं, वो अपने मनमें जानते हैं कि नवा घास उत्पन्न होवेगा तब गो चरेंगी, जिल्हादिक लोक सुखसें रहेंगे, अन्न उपजेगा, इत्यादि कार्य अज्ञानपणसें धर्म जाणके करे, आग लगानेसें लाखो जीव मरजाते हैं, उस वास्ते आग न लगानी चाहिये.

४ चौथा शोषणकर्म. सो बावडी, तलाव, सरोवर, इनका जल अपने खेतमें देवे, जब पाणीकों बहार काटे, तब लाखों जीव जल रहित तरफ फरके मर जाते हैं, इस वास्ते सर्व पाणी शोषण न करनां.

५ पांचमा असतीपोषण कर्म. सो कुतूहलके वास्ते कुत्ते, बिल्ले, हिंसक जीवोंको पोपे, तथा छुट्ट चार्या, शरु दुराचारी पुत्रको मोहसे पोषण करे, साचा जूठा जाणे नहीं, जो मनमें आवे सो करे, तिनको राजी रखे, तथा बेचणे वास्ते दुराचारी दास दासीको पोपे, सो असती कर्म कहिये. तथा माठी, कसाई, बागुरी, चमार प्रमुख बहु श्वारंजी जीवोंके साथ व्यापार करे, तिनको द्रव्य तथा खरची प्रमुख देवे, यहनी छुट्ट जीवोंका पोषण है, जे कर अनुकंपा करके श्वान (कुत्ते) प्रमुख कीसी जीवोंको पुण्य जान कर देवे, तो उसका निषेध नहीं, तथा अपने महेष्टमें जो जीव होय तिनकी खबर लेनी पड़े, तथा अपने कुटुंबका पोषण करना पने, इसमें पूर्वोक्त दोष नहीं. क्योंकि यह लोकनीति राजनीतिका रस्ता है, सो पांच सामान्य कर्म कला. इति पंद्रा कर्मादान संपूर्ण.

अब यह सातमें जोगोपजोग व्रतका पांच अतिचार लिखते हैं.

१ प्रथम सचित्त आहार अतिचार, सो मूलजांगमें तो आवश्यक सर्व सचित्तका त्याग करे, जेकर नहीं करे, तो परिमाण कर खेवे, तहां सर्व सचित्तके त्यागी तथा सचित्तके परिमाणवासे जो अनाजोगादिकसे सचित्त आहार करे, तथा जल, तीन ठकासी आजानेसें शुद्ध प्राशुक होता है, तिनमें एक ठकासा, दो ठकासाका पाणी तो मिश्र उदक कहा जाता है, तिस पाणीको अचित्त जाणके पीवे तथा सचित्त वस्तु अचित्त होनेमें देर है, उस वस्तुको अचित्त जानकर खावे. तो प्रथम अतिचार जागे.

२ दूसरा सचित्त प्रतिव्याहार अतिचार. सो जिसके सचित्त वस्तुका नियम है, सो तत्काल खैरकी गांठसें गूंद उखेडके खावे, गूंद तो अचित्त है, परंतु सचित्तके साथ मिश्र दुध्या या सो छुपण खगता है. तथा पटा दुध्या अंग खिरपी बेर प्रमुखको सुखमें खावे. अन्न मनमें जानता है कि मैं तो अचित्त खाता हूं, सचित्त गुठलीको तो गेर देठंगा, इसमें क्या दोष है ? इसका विचार करके खावे. तब दूसरा अतिचार जागे.

तीसरा अन्नशेषधि नष्टण अतिचार. सो दिना वारया आटा, अ

श्रिका संस्कार जिसको करा नहीं, ऐसा कच्चा आटा खावे, क्योंकि सिद्धांतमें आटा पीस्यां पीवे विना ठाण्यां कीतनेही दिन मिश्र रहता है, सो कहते हैं, श्रावण, जादव मासमें अनठान्या आटा पीस्या पीठें पांचदिन मिश्र रहता है, आश्विन और कार्तिक मासमें चारदिन मिश्र रहता है, मगसिर और पौष मासमें तीन दिन मिश्र रहता है, माघ अरु फागुन मासमें पांच प्रहर मिश्र रहता है, चैत्र अरु वेशाख मासमें चार प्रहर मिश्र रहता है, ज्येष्ठ अरु आषाढ मासमें तीन प्रहर मिश्र रहता है, पीठें चित्त हो जाता है, सो मिश्र खावे, तो तीसरा अतिचार लागे.

४ चौथा दुपकोपधि चक्षुण अतिचार. सो कतुक कच्चा, कतुक पका जैसें सवे जातके पोंक अर्थात् सिद्धे जो मक्की, जवार, बाजरे, गेहूं प्रभु उनके धीजोंसें जरे हुए होते हैं, इनको अग्निका संस्कार कर्ष्यां, कतुक कच्चे हो जाये तिनको अचित्त जान कर खावे, तो चौथा अतिचार लागे.

पांचमा तुघोपधि चक्षुण अतिचार. सो तुघ नाम इहां असारका है जिसके खानेसें तृप्ति न होवे, तिसके खानेमें पाप बहुत है, जैसें चणका फूस खावे, तथा बेरकी गुठलीमेंसें गिर निकासके खावे, तथा बाल, सम, मूंग, चवसाकी फली खावे, इसके खानेसें प्रसंग दूषणजी लग जाते हैं, क्योंकि कोई धनस्पति अतिकोमल अवस्थामें अनंतकायजी होती है तिसके खानेसें अनंतकायका व्रत जंग हो जाता है, यह पांचमा अतिचार कक्षा ॥ इति सप्तम नोगोपनोग व्रतं संपूर्ण ॥ ७ ॥

३ अथ आत्ममा अनर्थदंरु विरमणव्रतका स्वरूप लिखते हैं. प्रथम अर्थ दंरु उभकों कहते हैं, कि जो अथणो प्रयोजनके वास्ते करे, सो धन, धान्य, कृत्रादि नवविध परिग्रहमें हानी वृद्धि होवे, तब करे क्योंकि धनवृद्धि निमित्त संसारी जीवकों बहुत पापके कारन सेवने परते हैं, तब सत्य धर्म बोधे विना रह्य नहीं जाना है, पापके उपकरणजी भेसने पड़ते हैं, अरु कोई मनसूया करना पड़ता है, नव अनेक विकल्प रूप आर्तध्यान करना पड़ता है, क्योंकि धनादिक परिग्रह आजीविकाके अर्थ हैं, तिस वास्ते धनकी वृद्धि वास्ते जो जो पाप करना है, सो सो सर्व अर्थ दंड है. इसका जब धनकी हानि होनी है, तब धनहानि दूर करणे वास्ते अनेक विकल्प रूप पाप करता है, सोनी अर्थ दंरु है, क्योंकि संसारके सुखका कारण

रूप धन व्यवहार है, तिस व्यवहारके वास्ते जो पाप करना पड़े, सो अर्थदंड है. तीसरा अपणा खजन कुटुंब परिवारदिकके वास्ते अवश्य जो जो पाप सेवनां पड़े, सो सो सब अर्थदंड है. चौथा पांच प्रकारकी इंद्रियोंके जोग वास्ते जो पाप करे, सोजी अर्थ दंड है, इन पूर्वोक्त चारों प्रयोजनो बिना जो पाप करे, सो अनर्थदंड, जाननां. तिसके चार भेद हैं, सो कहते हैं. प्रथम अपध्यान अनर्थदंड, दूसरा पापोपदेश अनर्थदंड, तीसरा हिंसप्रदान अनर्थदंड, चौथा प्रमादाचरित अनर्थदंड है. इनमेंसुं प्रथम जो अपध्यान अनर्थदंड है, उसके फेर दो भेद है, एक आर्त्तध्यान दूसरा रौद्रध्यान, तिनमें फेर आर्त्तध्यानके चार भेद हैं, सो पृथक् पृथक् कहते हैं.

१ प्रथम अनिष्टार्थ संयोगार्त्तध्यान. सो इंद्रिय सुखका विघ्नकारी ऐसे अनिष्ट शब्दादिकके संयोग होनेकी चिंता करे कि मत मेरेको अनिष्ट शब्द मिले.

२ दूसरा इष्टवियोगार्त्तध्यान. सो हमको नवविध परिग्रह अरु परिवार जो मिला है, इसका वियोग मत होवे, ऐसी चिंता करे, अथवा इष्ट जो माता, पिता, स्त्री, पुत्र मित्र प्रमुख हैं, इनके विदेश गमनसें तथा मरण होनेसें बहुत चिंता करे, खाए पीए नहीं, वियोगके दुःखसें आत्मघात करनेका विचार करे, अथवा सर्वदिन क्रोधहीमें रहे, तथा घरमें यह कुपूत है, यह जाई बेदिल है, मेरे पिताका मेरे उपर मोह नहीं है, यह स्त्री मुझ को बहुत खराब मिली है, सो मेरे उपर दिल् नहीं देती है, इसका कोई उपाय होवे तो अछा है, अरु स्त्री मनमें विचारे कि मुझे शोकन खराब करती है, मेरे पतिकों जूटाती है, क्या जाने किसी दिन पतितें मुझे डूर करेगी? इस वास्ते इस रांनका कुछ उपाय करना चाहियें, तथा सेवक ऐसा विचार करे कि:-मेरे स्वामीके आगें फलाना मेरा दुश्मन गया है, सो जरूर मेरी खोटी कहेगा, मेरी रीत जांतको अदल बदल कर देवेगा, मेरे स्वामीको जूठ साच कह कर मेरी नोकरी तुम देवेगा, तब मैं क्या करूंगा? इसका कुछ उपाय करना चाहियें, तिसके निग्रह वास्ते यंत्र, मंत्र, कामन, मोहन, वशीकरण करे, तिसको जूठाकलंक देवे, बलिदान देने वास्ते तस जीवको मारे, यह सब अपने शत्रुके निग्रह वास्ते करे. तथा मूठ चलाके मारा चाहे, परंतु वो मूर्ख यह नहीं विचारता कि:-जे कर तूं अप ए दिखतें सचा है, तो तुजे क्या फिकर है? अरु जहां तक अगलेका पु

एयोदय है, तहां तक तूं यंत्र, मंत्रसें उसका कुछ बुरा नहीं कर सकता है, ये सर्व संसारी जीवकी मूर्खता है, यह सर्व अनर्थदंड हैं. तथा प्रथम पणी आतुरतासेंति मनमें कुविकल्प करे, कि मेरे बेरीके कुलमें अमुक ज रदस्त उत्पन्न हुआ है, सो मेरेको दुःख देवेगा, इसकी राजदरबारमें आवा जावे, अरु दंड होवे, तो ठीक है, तथा इसका कोई ठिड़ मिले तो सख रमें कह कर इसको गामसें निकलवाय देजं तो ठीक हैं, ऐसा विचार ब अज्ञानी करता है. तथा यहां चोर बहुत पडते हैं, सो पकडे जा फांसी दीये जाय, तो बड़ा अच्छा काम होवे, तथा अमुक पुरुष, मेरे र हो कर चलता है, इस हरामजादेका कुछ बंदोबस्त करना चाहियें, फेर कदापि शिर न उठावे, इत्यादि खोटे विकल्प करके अनर्थदंड करे, क्योंकि किसिकी चिंतवणासें दूसरोंका विगाम नहीं होता है, जे कुछ ना है, सो तो सब पुण्य पापके अधीन है, तो फेर तूं काहेको बिल्ली मनोरथ करता है ? क्यों कि:-यह बिना प्रयोजनके पाप लगता है, सो अनर्थदंड है, ये दूसरा आर्त्तध्यानका जेद कहा.

३ तीसरा रोगनिदानार्त्त ध्यान. सो मेरे शरीरमें किसी बखत रोग होता है, वो न होवे तो अच्छा है, लोकोंको पूछे कि अमुक रोग क्यों कर न हो वे ? तब कोइ कहे कि अमुक अमुक अजह वस्तु खानेसें नहीं होता है, त अजहजी खा लेवे, तथा जब शरीरमें रोग होवे, तब बहुत हाय हाय कद करे, बहुत आरंज करे, घड़ी घड़ीमें ज्योतिपीको पूछे, कि मेरा रोग क व जायगा ? तथा बेयको बार बार पूछे, तथा मेरे उपर किसीने जाडु करा है ? ऐसी शंका करे, अरु रोग दूर करने वास्ते कुल विरुद्ध, धर्मविरुद्ध करे, तथा अजह खानेमें तत्पर होवे, रोग दूर करनेके वास्ते औषधि, ज नी बुटी, मंत्र, यंत्र, तंत्र, सीखे तथा सीखे हुए किसी बखत मेरेकाम आ वेगा, यह रोगनिदानार्त्तनामा आर्त्तध्यानका तीसरा जेद है.

४ चौथा अग्रशोचनामा आर्त्तध्यान. सो अनागत कालकी चिंता करे, कि आवता वर्षमें यह विवाह करंगा, तथा ऐसी हाट, हवेली बनाऊंगा, कि जिसको देख कर सर्व लोक आश्चर्य करे, तथा अमुक क्षेत्रमें बगीचा लगाना हैं, जिसके आगे सर्व याग निकम्मे होजावें, सर्व दुश्मनकी गती जखे, तथ अमुक वस्तुका मेनें सोदा करा है, सो वस्तु आगेको महंगी हो

जावे तो ठीक है, मुझे बहुत नफा मिल जावे. इत्यादि अनागत कालकी अपेक्षा अनेक कुविकल्प श्रेष्ठशीघ्रीकी तरें चिते, इसका नाम अग्रशोच नामा आर्त्तध्यान है. इति आर्त्तध्यानका संक्षेप स्वरूप लिखा ॥

अथ रौद्रध्यानका स्वरूप कहते हैं ? प्रथम हिंसा नंद रौद्र. सो त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसा करके मनमें आनंद माने, तथा बहुत पाप करके सुंदर हाट, हवेली, बाग प्रमुख बनावे, उसको देखके जब लोक प्रशंसा करे, तब मनमें सुख माने कि मैंने कैसी हिकमतसे बनाया है, मेरे समान अकल किसीमें नहीं है, तथा रसोइ प्रमुख खानेकी वस्तु बनावे, तब बहुत मसाले माले, जड़ वस्तुओं अजड़ सदृश बनाके खावे, तथा मानके उदयसे ऐसी जमणवार (ज्योनार) करे, कि जिसको सर्व लोक सराहें, तथा राजाओंकी लकाइ सुन कर खुसी माने. एक राजा का पट्टी बन कर महिमा करे, दूसरेकी निंदा करे, तथा अमुक योद्धेने एक तरवारसे सिंहादिक मारा है, बाहू रे सुजट ! ऐसी प्रशंसा करे, तथा अपने दुश्मनों को मरा सुन कर राजी होवे, मुख मरोड़े, मूठ उपर हाथ फेरे, हाथ घसे, अरु मुखसे कहे कि ये हरामखोर मेरे पुण्यसे मर गया ऐसी ऐसी खोटी चितवणा करके कर्म बांधे, परंतु ऐसा न विचारें कि:—दूसरा कोइ किसीका मारणे वाला नहीं है, उसकी आयु पूरी हो गई इस वास्ते मर गया, एक दिन इसीतरें तूंजी मर जायगा. ऊठा अजि मान करना ठीक नहीं, ऐसा विचार न करे, सो हिंसा नंद रौद्रध्यान कहियें.

२ दूसरा मृषानंद रौद्रध्यान. सो ऊठ बोलके खुशी होवे अरु मनमें अंसा चिते कि मैंने कैसी कवात बनाके करी किसीको जी खबर न पड़ी, मैं बड़ा अकलवंत हूं ? मेरे समान कौन है ? मेरे संमुख कौन जवाब करनेकुं समर्थ है ? बोलना है, सो करामानी है, बोलना किसीको आता है, इस अवसरमें जेकर मैं ना होता तो देखते क्या होता ? ऐसा मन में फूले और अपने दुश्मनों संकटमें गेरके मनमें आनंद माने अरु कहे कि देखा मैंने कैसी हिकमत करी ? राज दरबारमें लोकोंकी चुगली करके स्थानव्रट करे, मनमें खुसी माने. इत्यादि मृषानंद रौद्र है.

३ तीसरा चौर्यानंद रौद्र. सो जड़क जीवोंसे क्रूर कपटकी बातें बना करके बहु मूली वस्तु छोड़े दाममें ले लेवे, तथा पराया धन, लेखेसे अधि

क लेवे, तथा चोरी करके किसीकी वहीमें अधिक उठा लिख देवे, आप पैसा खाय जावे, अनेक कपटकी कलासे शेरकों राजी कर देवे, पीठें विचारे कि मैं कैसा चतुर हूं, कि पेसाजी खाया, अरु सेठके आगे सच्चाजी बन गया? तथा व्यापार करे, तब खोटी छूठी सौगंद खावे, मीठा बोल कर दूसरोंको विश्वास उपजा कर न्यून अधिक देवे, सेवे, अरु मनमें राजी होके कहे कि मेरे समान कमाउ कौन है? तथा चोरी करके मनमें आनंद मानें कि मैंने कैसी चोरी करी, कि जिसकी किसको खचरजी नहीं पड़ी? तथा छूठे खत पत्र बनाकर सरकारसे फते पावे, तब मनमें बड़ा आनंदित होवे, जो मैं बड़ा चलाक हूं मैंने हाकमकोंकी धोखा दीया, इत्यादि चौर्यानंद सो रौद्र ध्यानका तीसरा जेद है.

चौथा संरक्षणानंद रौद्र. सो परिग्रह, धन, धान्य, बहुत बढ़ावे, पीठें औरजी इष्टा करे, पाप कुटुंबके पोषणे वास्ते परिग्रहकी वृद्धि करे, बहुत कुयुद्धि करे, जैसे तेसे कामकों अंगीकार करे, लोक विरुद्ध, राजविरुद्ध, कुलविरुद्ध, धर्मविरुद्धादिक कामकी उपेक्षा न करे, ऐसे करतां पूर्व पुण्योदयसे पाप परिग्रह पावे, धन बहुत हो जावे, तब मनमें बहुत खुशी माने कि इतना धन मैंने एकिलाने पैदा कीया है, ऐसा और कौन हुस्या है, जो पैदा कर सके? ऐसा अहंकार करे, अहंकारमें मग्न रहे, रातदिन मनमें चिंता रहे, कि मत कजी मेरा धन नष्ट हो जावे. रातकों पूरा सो बेजी नहीं, हाट हवेलीके ताले टटोलता रहे, सगे पुत्रकाजी विश्वास न करे, लोकोंको कुयुद्धिसिखावे, इत्यादि संरक्षणानुबंधी रौद्रध्यान है, ये आर्ष अरु रौद्र मिलकर प्रथम अपध्यानार्थदंडके जेद हैं, सो न करना चाहिये.

२ अथ दूसरा पापकर्मोपदेश अनर्थदंड कहते हैं. सो हरेक अवसरमें घर संबंधि तथा दाक्षिण्यता वर्जिक पापोपदेश करे, जैसे तुमारे घरमें बठे बडे हो गये हैं, इनको बझीया करके समारो, नाकमें नथ गेरो, घोडेको चावक अस्वारको देवो, वो इसको फेरके सिखावे, तथा तुमारे क्षेत्रमें सूड बहुत हो रहा है, उसको काटना तथा जलाना चाहिये, इत्यादि जो पापकारी काम है, तिसका बिना प्रयोजन अज्ञानपणेसे उपदेश करे, यह दूसरा पापकर्मोपदेश अनर्थदंड है.

३ तीसरा हिंस्रप्रदान अनर्थदंड, सो हिंसाकारी वस्तु गानी, हल, शस्त्र,

तलवारादि, अग्नि, मूशल, उखल, धनुष, तरकस, चक्र, वृरी, दातु प्रमुख दूसरोंको दाक्षिणता बिना, मागे बिना, देवे सो हिंसप्रदान.

४ चौथा प्रमादाचरण अनर्घदेह. सो कुतूहलसें गीत, नाटक, तमाशा, मेला प्रमुख सुनने देखने जानां, इंड्रियोंकी विषय पोषणी, इहां कुतूहल कहनेसें जिनयात्रा, संध, अष्टाष्टमहोत्सव, रथयात्रा, तीर्थयात्रा, इनके देखने वास्ते जावे, तो प्रमादाचरण नहीं, किंतु यह तो सम्यक्त्व पुष्टिके कारण हैं, तथा कामशास्त्र वात्सायनादिकोंके कर्म तिनमें अत्यंत यत्नि बार बार उत्तका अज्यास करनां, तथा जूया खेलना, मद्य पीनां, शिकार मारने जानां, तथा जलक्रीना (तलाव प्रमुखमें कूदनां) जल उठासनां, तथा वृक्षशाखाके साथ रस्सा बांधकर कूलना (टिंचनां) टिंचोले (कुलानां) टिंचना, तथा लाल, तीत्तर, वटेरे, कूकडे, मिंदे, जैसें, हाथी, बुलबुल, इनकों आपसमें लड़ानां तथा अपने शत्रुके घेरे पोतेसें बर रखनां, बर लेनां, तथा जक्तकथा सो “मांस, कुलमाप, मोदक, उदनादि बहुतथछा भोजन है, जो, खातेहैं, उनको बना खाद आता है. अरु हमनी यह खायंगे” इत्यादि कहनां, तथा स्त्री कथा, सो स्त्रीयोंके पहननेकी तथा अंगप्रत्यंग हावचावादि कथन रूप, तथा “कर्णाटी सुरतोपचारकुशला, लाटी विदग्धा प्रिये” इत्यादि, तथा स्त्रीके रूपोत्पादन, कुच कंठन करणां, योनिसंकोच, इत्यादि स्त्री कथा करणी, तथा देशकथा सो जैसें दक्षिण देशमें अन्न, पाणी, अरु स्त्रीयोंसें संभोग करनां बहुत अछा है इत्यादि, तथा पूर्वदेशमें विचित्र वस्तु गुड, खरु, शालि, मयादि प्रधान चीजें होती हैं, तथा उत्तरदेशके लोक सूरमे हैं, घोडे बडे शीघ्र चलने वाले अरु दृढ होते हैं, तथा गेहूं प्रमुख धान्य बहुत होता है. तथा केशर, मीठी डाढ़, दाडिम, कौठादि जहां सुलभ हैं. इत्यादि तथा पश्चिम देशमें इंड्रियोंकों सुखकारी सुख स्पर्शवाले वस्त्र हैं, इत्यादि, तथा राजकथा सो जैसें हमारा राज बडा सूरमा है, बडा धनवान् है, अश्वपति तुरक इत्यादि है. यह जैसें चार अनुकूल कथा कही, ऐसें ही चारो प्रतिकूल कथाजी जान लेनी, तथा ज्वरादिरोग अरु मार्गका थकेवा, यह दोनों वर्जके संपूर्ण रात्रिकों सो रहनां (निद्रा लेनी) यह सर्व पूर्वोक्त प्रमादाचरणको आवाक वजें, तथा देशविशेषमेंनी प्रमाद न करनां, तथा जिनमंदिरमें कामचेष्टा, हांसी, लमाइ, हसना, धूकनां, निंद

खेनां, चोर परदारिकादिकी खोटी कथा करनी, चार प्रकारका आधार खानां, यह चौथा अर्थदंड है. इस व्रतके पांच अतिचार कहते हैं

प्रथम कंदर्पचेष्टा. सो मुखविकार, जुधिकार, नेत्रविकार, हाथकी संज्ञा बतावे, पगकों विकारकी चेष्टा करके ओरोकों हसावे, किसीकों शोध उत्पन्न हो जावे. कुठका कुठ हो जावे, अण्णी लघुता होवे, धर्मकी निंदा होवे, ऐसी कुचेष्टा करे, सो प्रथम कंदर्पचेष्टा अतिचार है.

२ दूसरा मुखसंती मुखरता करे, असंबंध वचन बोले, जिससे दूसरों का मर्म प्रगट होवे, कष्टमें गेरे, अण्णी लघुता करे, बेर वधे, ढीठ, लया क, चुगल ग्योर इत्यादि नाम धरावे, लोकोंमें लज्जनीय होवे, इसी तरं बहुत याचासपणा करणां, सो दूसरा मुखारविचन अतिचार.

३ तीसरा जोगोपजोगातिरिक्त अतिचार है, सो यहां ग्यान, पान, जोजन, घंदन, कुंकुम, कम्तूरी, यम्र, आनरणादिक अण्णे शरीरके जोगमें अधि क करणे, सो अर्थदंड है. इहां वृद्ध आचार्योंकी यह संप्रदाय है, कि:- तैज, आमसे, दही प्रमुख, जे कर ग्यानके वास्ते अधिक लें जावे, तो तब खोदयना करके ग्यान वास्ते बहुत लोक तलाय आधिकमें जायगे, तदा पाणीके पुरे. तथा अण्णके जीवोंकी बहुत विराधना होवेगी. इस वा स्ते आश्रमकों अंगे ग्यान न करना चाहियें. क्योंकि आश्रमके ग्यानका यह विधि है कि:- आश्रमके प्रथम तो घरमेंही ग्यान करना चाहियें. तिसके अन्तमें तैज, आमसे, आश्रममें घरमेंही शिर घस करके भेष गेर करके तप्राश्रमके कांठे उपरि येनके अंजलिमें पाणी शिरमें टाग करके ग्यान करना तथा जिस दृष्टादिकमें जीवोंकी मंसक्ति जाने, तिनको परिहरे, अंगे सर्व जगे जान खेनां. यह तीसरा जोगाधिक आरंभ अतिचार है.

४ चौथा कौटुम्ब्य अतिचार. सो जिसके बोझने करनेमें अण्णी तथा ओगोंकी चेतना कामक्रोधरूप हो जावे, तथा विरहकी वान संयुक्त कथा दोहा. मात्मी. वेंत, कृष्णा. कविन, ठंड, परजराग, शोक, गुंगारमकी न री हूँ कथा कहनी, यह चौथा काममर्म कथन अतिचार है.

५ पांचवां संयुक्ताधिकरण अतिचार. सो उमयके माय मूसल, हस्तके माय फासा. गाईमें युग, धनुषमें मीर, इत्यादि. इहां आश्रमके संयुक्त अधिकरण नहीं रखनां, क्योंकि संयुक्त रखनेमें कोइ संशय, नो करना

नहीं करी जाती है, अरु जब अलग अलग होवे, तब उसको सुखसे उत्तर दे सकेगा, ये पांचमा अतिचार कहा ॥ इति अष्टमव्रत संपूर्ण ॥

अथ नवमा सामायिकव्रतका स्वरूप लिखते हैं, इन पूर्वोक्त आठां व्रतोंको तथा आत्मगुणोंको पुष्टिकारक अविरति कपायमें तादात्म्यभावसे मिली अनादि अशुद्धता रूप विजाव परिणति, तिसके अज्यासको मिटाने वास्ते अरु आत्मअनुभव करने वास्ते तथा सहजानंद स्वरूपरस प्रगट करने वास्ते यह नवमा शिदाव्रत है, अर्थात् शुद्ध अज्यासरूप नवमा सामायिक व्रत लिखते हैं. दो घड़ी काल प्रमाण समतामें रहना, राग द्वेषरूप हेतुओंमें मध्यस्थ रहणां, तिसको पंक्ति सामायिक व्रत कहते हैं, (सम) नाम हैं राग द्वेषरहित परिणाम होनेसे, जो ज्ञान दर्शन चारित्र्यरूप मोक्ष मार्ग, तिसका "आय" नाम लाज होवे प्रथमसुख रूप इनका जो एक केतां जाव सो सामायिक है, मन, वचन, कायकी खोटी चेष्टा एतावता आर्तध्यान तथा रौद्रध्यान त्यागके अरु सावध्य मन, वचन, काया, पाप चिंतन, पापोपदेश, पापकरणरूप वर्जके श्रावक सामायिक करे. इहां आवश्यक शास्त्रमें लिखा है, कि जब श्रावक सामायिक करता है, तब साधुकी तरें हो जाता है, इस वास्ते श्रावक सामायिकमें देवस्नात्र, पूजादिक, न करे, क्यों कि जावस्तवके वास्ते अव्यस्तव करनां है, सो जावस्तव सामायिकमें प्राप्त हो जाता है, इस वास्ते श्रावक सामायिकमें अव्यस्तव रूप जिनपूजा न करे, सामायिक करने वाला मनुष्य वत्तीस छूपण वर्जके सामायिक करे, सो वत्तीस छूपणमें प्रथम कायाके बार छूपण कहते हैं.

१ सामायिकमें पग उपर पग चढा करके उंचा आसन (पालठी) ल गाकर बैठे, सो प्रथम छूपण है, कारण कि गुरुविनयकी दानि कारक होने से यह अजिमानक आसन है, इस वास्ते जिस बैठनेसे विनयगुण रहे, ओ उद्धता माबुम न होवे, तथा अजयणा न होवे, ऐसे आसन उपर बैठे.

२ दूसरा चलासन दोष. सो आसन स्थिर न रखे, बारं बार आगें पीठें हलावे, चपलाइ करे. मुख्य मार्ग तो यह है, कि श्रावक एक जगे एकही आसन उपर सामायिक पूरा करे, अन्निग पणसे रहे, कदापि रोग निर्बल तादि कारण करके एक आसन उपर टिका न जाय, फिरनां पडे, तो उ

पयोग संयुक्त जयणा पूर्वक चरवलासं जहां तहां पूंजना प्रमार्जना करके
 आसन फिरावे, यह पूर्वोक्त विधि न करे, तो दूसरा दूषण लगे.

३ तीसरा चखदृष्टि दोष है. सो सामायिक करे, पीठें नासिका ऊपरदृष्टि
 रखे, अरु मनमें शुद्ध उपयोग रखे, मौन पणसे ध्यान करे, अरु सा
 मायिकमें शास्त्राज्यास करनां होवे, तो यत्नपूर्वक मुख आगे मुखवन्धि
 का दे कर, दृष्टि पुस्तक उपर रख के पढ़े, अरु सुणे, तथा जय कायां
 रसगं करे, तब चार अंगुल पीठें पग चौका रखे, ऐसी योग मुद्रासें
 खमा हो कर दोनो बाहु प्रसंगित करे, दृष्टि नासिका उपर रखे, अथवा
 सज्जे (दङ्गिने) पगके अंगूठे उपर रखे, यह शुद्ध सामायिक करनेकी विधि
 है, इस विधिकों ठोरुके चपल पणसें चकितमृगकी तरें चारोंदिशि
 आंखें फिरावे, सो तीसरा दोष है.

४ चौथा सावधक्रियादोष. सो क्रिया तो करे, परंतु तिसमें कतुक
 सावध क्रिया करे, अथवा सावध क्रियाकी संज्ञा करे, सो चौथा दोष.

५ पांचमा आसंयन दोष. सो सामायिकमें जीतादिकका आसंयन,
 अर्थात् पीठ खगा कर बैठे, यह बिना पूंजी जीतमें अनेक जीव पैरे
 दूष होते हैं, सो मर जाते हैं, तथा आसंयनसें नींदनी आ जाती है.

६ छठा आकुंचन प्रसारण दोष. सो सामायिक करके बिना प्रयोजन
 हाथ, पग, संकोचे, छांधा करे, सामायिकमें तो महोटे कारण बिना
 दृष्टनां नहीं, जल्दरी काममें चरवलासं पूंजन प्रमार्जन करके दृष्टावे.

७ सातमा आश्रस दोष. सो सामायिकमें अंगमें आश्रस मोड़े, अंगुली
 पोंके कडाके कांटे, कमर बांकी करे, ऐसी प्रमादकी बाहुदयनामें प्रनमें
 अनादर होना है, कायांमें अरति उत्पन्न हो जाती है, जय उठे, तब आश्र
 स मोरु कर अतिशयोक्तनिक उठे. यह सातमा आश्रस दोष.

८ आठमा मोहन दोष. सो सामायिकमें अंगुली प्रमुख देवी
 करी कडाका कांटे. ९ पण प्रमादकी प्रवक्षनामें होना है.

९ नवमा मय दोष. सो सामायिक से करके ग्राज करे, मुख्यगृहि सो
 सामायिकमें ग्राज नहीं करणी, परंतु जय साचार होवे, तब नारयण
 प्रमुखमें पूंजन प्रमार्जन करके दक्षवे दक्षवे ग्राज करे यह दशमी है.

१० दशमा विमामण दोष. सो सामायिकमें गलेमें हाथ दे कर बैठे.

११ इग्यारवा निद्रा दोष. सो सामायिकमें नींद लेवे.

१२ बारमा शीत प्रमुखकी प्रवसतासें अपने समस्त अंगोपांग बख करके ढाँके, यह वारा दोष कायासें उत्पन्न होते हैं, इनका सामायिकमें वजे. अब वचनके दश दोष हैं सो लिखते हैं.

१ प्रथम कुबोल दोष. सो सामायिकमें कुवचन बोले.

२ दूसरा सहसात्कार दोष. सो सामायिक ले करके बिना विचारे बोले.

३ तीसरा असदारोपण दोष. सो सामायिकमें दूसरोंको खोटी मति देवे.

४ चौथा निरपेक्ष वाक्य दोष. सो सामायिकमें शास्त्रकी अपेक्षा बिना बोले.

५ पांचमा संक्षेप दोष. सो सामायिकमें सूत्र, पाठ, संक्षेप करे, अक्षर पाठ हीना कहे. यद्यर्थ कहे नहीं, सो पांचमा दोष है.

६ ठछा कलह दोष. सो सामायिकमें साधर्मियोंसें क्लेश करे, सामायिकमें तो कोई मिथ्यात्वी गालीयां देवे, उपसर्ग करे, कुवचन बोले, तोजी तिसके साथ जनाइ नहीं करनी चाहिये, तो फेर अपने साधर्मिके साथ तो विशेष करके जनाइ करणीहीं नहीं, जेकर करे, तो ठछा दोष खगे.

७ सातमा विकथा दोष. सो सामायिकमें बैठके देशकथादि चार विकथा करे, सामायिकमें तो स्वाध्याय अरु ध्यानही करना चाहिये.

८ आठमा हास्य दोष. सो सामायिकमें दूसरोंकी हांसी करे, मस्करी करे.

९ नवमा अशुद्ध पाठ दोष. सो सामायिकमें सामायिकका सूत्रपाठ शुद्ध न उच्चारै, हीनाधिक उच्चारै, यद्वा तद्वा सूत्र पड़े.

१० दशमा मुणमुण दोष. सो सामायिकमें प्रगट स्पष्ट अक्षर न उच्चारै, दूसरोंको तो जैसा मल्लजणजणट करता होवे, अैसा पाठ मादुम पड़े, पद अरु गाथाका कुठ ठिकाना मालम न पड़े, गडबड करके उतावलेसें पाठ पूरा करे, यह दश दोष वचनके हैं. अब मनके दश दोष लिखते हैं.

१ प्रथम अविवेक दोष. सो सामायिक करके सर्वक्रिया करे, परंतु मनमें विवेक नहीं निर्विवेकतासें करे, मनमें अैसा विचारे कि सामायिक करनेसें कौन तरा है ? इतमें क्या फल है ? इत्यादि विकल्प करे.

२ दूसरा यशोवांछा दोष. सो सामायिक करके यशःकीर्तिकी इच्छा करे.

३ तीसरा धनवांछा दोष. सो सामायिक करनेसें मुझे धन मिलेगा.

४ चौथा गर्वदोष. सो सामायिक करके मनमें गर्व करे कि मुझे

लोक धर्मी कहेंगे, मैं कैसे सामायिक करता हूँ, मूर्ख लोक क्या समझे ?

५ पांचमा जय दोष. सो लोकोंकी निंदासें करता हूँ आ सामायिक करे, क्योंकि लोक कहेंगे कि देखो आवकके कुलमें उत्पन्न हूँ आ हैं, वना पुरुष कहनेमें आता है, परंतु धर्म कर्मका नामजी नहीं जानता, धर्म तो दूर रहा, परंतु हररोज सामायिकजी नहीं करता, ऐसी निंदासें करता हूँ आ करे.

६ ठठा निदान दोष. सो सामायिक करके निदान करे कि इस सामायिकके फलसें मुझे धन, स्त्री, पुत्र, राज्य, जोग, इंद्र, चक्रवर्त्तिका पद मिले.

७ सातमा संशय दोष. सो क्या जाने सामायिकका फल होवेगा कि नहीं होवेगा ? जिसको तत्त्वकी प्रतीति न होवे, सो यह विकल्प करे.

८ आठमा कपाय दोष. सो सामायिकमें कपाय करे, अथवा क्रोध करके तुरत सामायिक करके बैठ जाय. सामायिकमें तो कपाय त्यागना चाहिये.

९ नवमा अविनय दोष. सो विनय हीन सामायिक करे.

१० दशमा अबहुमान दोष. सो सामायिक बहुमान जक्तिनाव उस्ता ह पूर्वक न करे. यह दश मनके दोष कहे. अरु पूर्वोक्त चारह कायके तथा दश वचनके मिल कर बत्तीस दूषण रहित सामायिक करे, इस सामायिक व्रतके पांच अतिचार टाखे, सो पांच अतिचार कहते हैं.

१ प्रथम कायदुःप्रणिधान अतिचार. सो शरीरके अवयव हाथ, पग प्रमुख, घिना पूंजे प्रमाजे हलावे, जीतके पीठ लगा कर बैठे.

२ दूसरा मनोदुःप्रणिधान अतिचार. सो मनमें कुव्यापार चिंतन क्रोध, लोच, जोड़, अजिमान, ईर्ष्या, व्यासंग, संभ्रमचित्त सहित सामायिक करे.

३ तीसरा वचन दुःप्रणिधान अतिचार. सो सामायिकमें सावध वचन बोखे, सूत्राक्षर हीन पढे, सूत्रका स्पष्ट उच्चार न करे.

४ चौथा अनवस्था दोषरूप अतिचार. सो सामायिक वखत सिर न करे, जेकर करेजी तोजी वे मर्यादासें आदर बिना उतावलसें करे.

५ पांचमा स्मृतिविहीन अतिचार. सो सामायिक करी कि नहीं ? सामायिक पारीकि नहीं ? ऐसी चूल् करे. इति नवम सामायिक व्रतं संपूर्ण ॥

अथ दशमा दिशावकाशिक व्रत लिखते हे. ठठे व्रतमें जो दिशोंका परिमाण करा है, सो जावल्लीवे तहां तक है, उसमें तो क्षेत्र बहुत दुट रखा है, तिसका तो रोज काम पडता नहीं, इस वास्ते इस दिन दिन प्रत्ये संक्षेप

करे, जैसे आजके दिन दश कोश वा पंदरां कोश वा पांच कोश, अथवा नगरके दरवाजे तक, वा कोश, अर्द्धकोश, वाग बगीचे तक, घरका हड तक जानां आनां है, उपरांत नियम करनां, सो दिशावकाशिकव्रत है. ए ठठे व्रत का संक्षेपरूप है, उपलक्षणसें पांच अणुव्रतादिकका संक्षेप थोमे कासका सोनी इत्ती व्रतमें जान लेनां, यह व्रत चार मास, एक मास, बीस दिन, पांच दिन, अहोरात्रि, अथवा एक दिन, एक रात्रि, तथा एक मुहूर्त्तमात्रजी हो सक्ता है, इसका नियम ऐसें करे कि मैं अमुक ग्रामादिकमें काया करके जाउंगा, उपरांत जानेका निषेध है, इस व्रत वाले प्राणीके देश परदेशका जिनके व्यापार होवे, सो ऐसें कहे कि मुझको काय करके इतने क्षेत्र उपरांत जानां नहीं, परंतु इर देशका कागज प्रमुख लिखा हुआ आवे, सो वांचुं अथवा कोइ मनुष्य जेजनां पडे, उसका आगार है. परदेशकी बात सुननेका आगार है, अरु जिसका दूरका व्यापार नहीं होवे, सो चींठी खत, पत्रजी न वांचे, अरु आदमीजी न जेजे, तथा चित्तकी वृत्तिसें जे कर संकल्प विकल्प न होवे, तो परदेशकी बातजी न सुने. जे कर नहीं रहा जावे, तो आगार रक्के, परंतु जान करके दोष न लगावे. यह देशावकाशिक व्रत सदा सवेरके बखत चौदह नियमकी यादगिरीमें उपयोगसें रक्के, अरु रात्रिकों जूदा रक्के, यह व्रत जैसें गुरुमुखसें धामे, तैसें करे (पावे) अरु इस व्रतके पांच अतिचार टाले, सो कहते हैं.

१ प्रथम आणवण प्रयोग अतिचार. सो नियमकी जूमिकासें बाहिर की कोइ वस्तु होवे, तिसकी गरज पडे, तब विचारे की मेरे तो नियमकी जूमिकासें बाहिर जानेका नियम है, तब कोइ जाता होवे, तदा तिसको कह करके वो वस्तु मंगवा लेवे, अरु मनमें यह विचारेकी मेरा व्रतजी जंग नहीं हुआ, अरु वस्तुजी आ गइ, यह प्रथम अतिचार है.

२ दूसरा पेसवण प्रयोग अतिचार. सो दूसरे आदमीके हाथ नियमसें बाहिरली जूमिकामें कोइ वस्तु जेजे, सो दूसरा अतिचार है.

३ तीसरा सहाणवाय अतिचार. सो नियमकी जूमिकासें बाहिर, कोइ आदमी जाता है, तिस्सें कोइ काम है, तब तिसको खुंवारादि शब्द कर के बोलावे, फेर कहे कि अमुक वस्तु ले आनां, तब तीसरा अतिचार लगे.

४ चौथा रूपानुपाती अतिचार. सो कोइक पुरुष उसके नियमकी जूमि

कासें बाहिर जाता है, तिसके साथ कोइ काम है, तब हाट हवेली उपर चढकें उसको अपना रूप दिखावे, तब वो आदमी उसके पास आवे, पीठें आपणे मतखवकी उस्सें वातां करे, तब चोथा अतिचार लगे.

५ पांचमा पुज्जलाक्षेप अतिचार. सो नियमकी भूमिकासें बाहिर कोइ पुरुष जाता है, तिसके साथ कोइ काम है, तब तिसको कंकरा मारे, जब वो देखे, तब तिसके पास आवे, तब उसके साथ वात चीत करे, यह पांचमा अतिचार ॥ इति दशम देशावकाशिकं व्रतं संपूर्ण ॥

अथ इग्यारहवा पौपधोपवास नामा व्रत लिखते हैं. यह पौपध व्रतके चार जेद हैं, उसमें प्रथम आहार पौपध है, तिसकेजी दो जेद हैं. एक दे शत; दूसरा सर्वतः तहां देशसें तो त्रिविहार उपवास करकें पौपध करे, अथवा आचाम्ल करकें पौपध करे, अथवा त्रिविहार एकाशनां करकें पौपध करे, यह तीन प्रकारसें देश पौपध होता है, तिसकी विधि लिखते हैं.

पौपध करनेसें पहिले अपने घरमें कह रखे कि मैं आज पौपध करंगा, इस वास्ते आचाम्ल अथवा एकाशना करा है, जोजनके अवसरमें आहार करनेको. आलंगा, अथवा तुमने पौपधशालामें ले आनां पीठेंसें पौपध करने को जावे, तहां पौपध करकें देववंदन करकें, पीठे चरवला, मुखवस्त्रिका, पूंठणा, ये तीन उपकरण साथ ले करकें चादर ओढ करकें साधुकी तरें उपयोग संयुक्त मार्गमें चल कर जोजनके स्थानकमें जा करकें, इरियावहि या पक्किमे, गमनागमनकी आलोचना करे, पीठे पूंठणा उपर बैठके आहार करनेका जाजन प्रतिलेखकें पीठें अपने. लेने योग्य आहार लेवे, साधुकी तरें रसयुज्जिसें रहित आहार करे, मुखसें आहारको अष्टा ब्रान कहे, आहारका जूठ गेरे नहीं, आहार करे पीठे लण जलसें आहारका वरतन धो कर पी जावे, वरतन शुरू करके सूका करकें उपयोग संयुक्त पौपधशाला में आवे, पूर्वस्थानमें जा कर बैठे, परंतु मार्गमें जाते आते किसीके साथ वात न करे, इस रीतसें स्वस्थानकमें आवे. इरियावही पक्किमके चेत्य वंदन करकें धर्मक्रियामें प्रवर्त्ते, तथा आहार अपना कोइ संबंधी अथवा सेवक ले आवे, तोजी पूर्वोक्त रीतिसें आहार करकें वरतन पीठें दे देवे, पीठें धर्मक्रियामें प्रवर्त्ते, तिसको देशसें पौपध कहते हैं. तथा जो चउविहार करकें पौपध करे, सो सर्वसें पौपध कहियें, यह प्रथम जेद.

१ दूसरा शरीरसत्कार पोषध. सो सर्वथा शरीरका सत्कार, स्नान, धोवन, धावन, तैलमर्दन, वस्त्राक्षरणादि शृंगार प्रमुख कोइनी शुश्रूषा न करे, साधुकी तरें अपरिकर्मित शरीर रहे. तिसकों सर्वथा शरीर सत्कार पोषध कहते हैं. तथा पोषधमें हाथ, पग प्रमुखकी शुश्रूषा करनी, तिसका आगार रखे, उसकों देशसत्कार पोषध कहते हैं.

तीसरा अन्नपोषध. सो त्रिकरण शुद्ध ब्रह्मचर्यव्रत पावे, वो सर्वथा ब्रह्मचर्य पोषध है. अरु मन, वचन, दृष्टि प्रमुखका आगार रखे, अथवा परिमाण रखे, सो देशसं ब्रह्मचर्य पोषध है.

४ चौथा सर्वथा सावद्य व्यापारका त्याग. सो सर्वसं अव्यापार पोषध है. अरु जे एकादि व्यापारका आगार रखे, सो देशसं अव्यापार पोषध जाननां.

एवं चार प्रकारकें पोषधके दो दो जेद हैं, सो प्रथम जब आगम व्यवहारी गुरु होते थे, अरु श्रावकजी शुद्ध उपयोग वाले होते थे, तब जो जो प्रतिज्ञा लेते थे, सो सो प्रतिज्ञा अखंन्ति तैसीही पाळते थे, परंतु झूलते नहीं थे, अरु न्यूनाधिकनी नहीं करते थे, और गुरुजी अतिशय ज्ञानके प्रज्ञावसं योग्यता जान कर देश, सर्व, पोषधका आदेश देते थे, तथा श्रावक कदाचित् झूलनी जाते थे, तो जी तत्काल प्रायश्चित्त ले लेते थे, अरु इत कालमें तो ऐसे उपयोगी जीव हैं नहीं, दुखमकालके प्रज्ञावसं जगदुद्धि जीव बहुत हैं, इत वास्ते पूर्वाचार्योंने उपकारके अर्थे आहार पोषध तो दोनो करे, अरु शेष तीन पोषध जीतव्यवहारके अनुसारें निषेध कर दीये हैं. यही प्रवृत्ति वर्तमान संघमें प्रचलित है, पोषध तो श्रावकों जरूर करना चाहियें, कारणकि कर्मरूप जावरोगकी यह औषधि है, तातें जब पर्वदिन आवे, तब जरूर पोषध करे. इसका पांच अतिचार टाळे, सो कहते हैं.

१ प्रथम अप्पडिलेहिय दुप्पन्धिलेहिय सिद्धासंधारक अतिचार. सो जिस स्थानमें पोषध संस्थारक करा है, तिस भूमिकी तथा संधाराकी पडिलेहणा न करे, एतावता संधारेकी जगा अठी तरें निगाह करिकें नेत्रोंसे देखे नहीं अरु कदापि देखे. तोजी प्रमादके उदयसें कुछ देखी कुछ न देखी ऐसें करे.

२ दूसरा अप्पमच्चिय दुप्पमच्चिय सिद्धासंधारक अतिचार. सो संधाराकों रजोहरणादिक करकें पूंजे नहीं, कदापि पूंजे, तोजी यथार्थ न पूंजे, गडवरु कर देवे, जीवरुद्धा न करे, तो दूसरा अतिचार लागे.

३ तीसरा अण्डिलेहिय डुप्पन्डिलेहिय उच्चारपासवण जूमि अतिचार. सो लघुशंका, वनीशंका, परिष्ठवणेकी जूमिका, नेत्रासिं अवलोकन न करे, अरु अवलोकन करे, तोजी अलसु पलसु करकें काम चलावे. जीवयत्न विना करे परिष्ठवे, तो तीसरा अतिचार लागे.

४ चौथा अण्णमद्यियडुप्पमद्यिय उच्चारपासवणजूमि अतिचार. सो जहां मूत्र, विष्टा करे, उस जूमिकाकों उच्चार प्रसवण करनेसें पहिलां पूंजे नहीं, जे कर पूंजे, तोजी यद्वा तद्वा पूंजे, परंतु. यत्नसें न पूंजे.

५ पांचमा पोसहविहिविवरीए अतिचार. सो पोपधमें छुधा लगे, तब पारणेकी चिंता करे, जैसेंकि प्रजातमें अमुक रसोइ अथवा अमुक वस्तु का आहार करंगा, तथा अमुक कार्य करणा है, तहां जानां पड़ेगा, अमुक उपर तगादा करंगा, तथा प्रजातमें पोपध पारकें अष्टी तरें तैलमर्दन कराऊंगा, अष्टे गरम पानीसें स्नान करंगा, तथा अमुक पोसाक करंगा, स्त्रीके साथ जोग करंगा, इत्यादि सावध चिंतवण करे, तथा संध्या सम यें पोपधके मंन्त्र शोधन न करे, सर्व रात्रि सूता रहे, विकथा करे, पोपधके अछारह दूषण हैं, सो वजें नहीं, सो अछारह दूषण लिखते हैं.

१ घिना पोपेवालेका दयाया दूआ जल पीवे, २ पोपध वास्ते सरस आहार करे, ३ पोपधके अगले दिन विविध प्रकारका संयोग मिलायकें आहार करे, ४ पोपध निमित्त अथवा पोपधके अगले दिनमें विजृपा करे, ५ पोपध वास्ते वस्त्र धोवावे, ६ पोपध वास्ते आन्तरण घनाकें पहिरे, स्त्रीजी नय, कंकणादि सोहागके चिन्ह वर्जकें दूसरा नवा गहेनां घनाकें पहिरे, ७ पोपध वास्ते वस्त्र रंगा कर पहिरे, ८ पोपधमें शरीर की मेल उतारे, ९ पोपधमें विना काल निद्रा करे, १० पोपधमें स्त्रीक था करे, स्त्रीकों जल्ली बूरी कहे, ११ पोपधमें आहार कथा करे, जोग नको अथा बूरा कहे, १२ पोपधमें राजकथा करे, युद्धकी बात सुने, कहे, १३ पोपधमें देश कथा करे, अथा बूरा देश कहे, १४ पोपधमें लघुशंका अरु वनीशंका सो मूमिका पूंज्या विना करे, १५ पोपधमें दूसरी रोकी निंदा करे, १६ पोपधमें स्त्री, पिता, माता, पुत्र, जाइ प्रमुखसें वार्त्तालाप करे, १७ पोपधमें चोरकी कथा करे, १८ पोपधमें स्त्रीके अ

गोपांग, स्तन, जघनादि देखे, यह अष्टारह रूपण पोषधमें बजें, तो शुरू पोषध जाननां, अन्यथा पांचमा अतिचार लागे. इति एकादश व्रतं ॥

अथ चारहवा अतिधिसंविजागव्रत लिखते हैं. अतिधि उसकों कहते हैं, कि जिसने लौकिक पवांत्सवादि तिथियोंकों त्याग दीया है, सो अतिधि है, जेंसें प्राहुणा बिना तिधि आता है, एतावता तिधि देखकें नहीं आता है, ऐसेही जो साधु अण चिंत्ताही आ जावे है, सो अतिधि जाननां, ऐसे मधुकर वृत्तिवालेसें जो विजाग करे, एतावता शुरू व्यवहार न्यायोपाजित धन करकें अपणा उदर पूरणे योग्य जो रसोद्ग करी है, उत्तम कुल आचार पूर्वक पूर्वकर्म पश्चात्कर्मादि दोष रहित ऐसा शुरू निर्दोष आहार जक्तिपूर्वक जो देवे, सो अतिधिसंविजाग व्रत है. तहां प्रथम दान देनेवालेमें पांच गुण होवे, तो वो दातार शुरू होता है, सो पांच गुण लिखते हैं.

१ प्रथम जैनमार्गी दातारकूं, शुरू पात्रकी प्राप्ति पा करकें अपणे घर में मुनिका दर्शन मात्र होनेसें अंतरंगमें बहुत दिनकी चाहनाके उद्घास से आनंदके आंसु आवे, जेंसें अपणा प्यारा अति हितकारी बल्लभ बिठके परदेशमें गया है, उसकों मनसें कजी बिसरता नहीं, मिलाही चाहाता है, उस मित्रके अकस्मात् मिलनेसें आनंद आंसु आवे, तेंसें मुनिकों घरमें आया देखकें आनंद आंसु आवे, अरु मनमें विचारे कि मेरा बड़ा जाग्य है, जो ऐसा मुनि मेरे घरमें आया है ? अरु में कैसा हूं ? अनादिका जूट्या, जूव्य संबल रहित, दरिद्रपीनित, ज्ञान लोचन रहित, अंधजाव करि पीनित, अपार संसारचक्रमें जटकता दूआ, बहुत अकथनीय दुःख संयुक्त देख कर मेरे पर परमदया दृष्टि करकें प्रथम मेरे को ज्ञानांजन शलाकासें ज्ञानरूप देखने वाला नेत्र खोल दीना, अरु तीन तत्व सेवा रूप व्यापार सिखलाया, तथा मुझकों रत्नवरीरूप पुंजी (रास) दे कर मेरा अनादि दरिद्र दूर करा, मुझे जखे आदमीयोंकी गिणतीनें करा, ऐसे गुरु मुनिराज बिना गरजके परोपकारी मेरे घरांग एमें आया, ऐसी पुष्ट जावना प्रशस्त राग जावकें उद्घाससें आनंदके आंसु आवे, यह दातारका प्रथम गुण है.

२ दूसरा जेंसें संसारमें जीवकों अत्यंत दृष्ट वस्तुके संयोगसें रोमावली

खनी होती है, तैसैं वडी चत्तिके प्रजावसैं मुनिकों देखकें रोमावली वि कखर होवे, हृदयमें हर्ष समावे नहीं, यह दूसरा गुण हे.

३ तीसरा मुनिकों देखकें बहुमान करे, जैसैं किसी गरीबके घरमें रा जा आप चल कर आवे, तव वो गरीब गृहस्थ जैसा राजेका आदर करे, अरु मनमें विचारे कि महाराजा मेरे घरमें आया हे, तो में अठ्ठी वस्तु इनकों जेट करूं तो ठीक है, क्योंकि राजाका आवनां वारंवार मेरे घरमें कहां है ? ऐसा विचारकें जैसैं वस्तु जेट करे, तैसैं श्रावकजी साधुकों घरमें आया देखकें बहुत मान करे, अरु मनमें ऐसा विचारे कि यह ऐसा निःस्पृहीयोमें शिरोमणि, जगद्वंधु, जगत् हितकारी, जग छत्सल, निष्कामी, आत्मानंदी, करुणासागर, संसारजलधि उद्धरण, परोपकार करणीमें चतुर, क्रोधादि कषाय निवारक, आप तरे परतारक, ऐसा मुनि राज, मेरे घरमें चल कर आया, इस्तें मेरा अहो जाग्य हे ? ऐसा जानकर संत्रम संयुक्त सन्मुख जावे, त्रिकरण शुरू परिणामसैं कहे कि हे स्वामी ! दीन दयाल ! पधारो, मेरे गृह अंगण पवित्र करो, ऐसा बहुमान दे कर घरमें पधरावे, मनमें विचारे कि मेरे बना पुण्योदय हे, जो साधु आहार पाणीका अनुग्रह करते हैं, क्योंकि साधुके आहार लेनेमें बनी विधि है, साधु शुरू जात पाणी जाणे, तो लेवे, इस वास्ते मत मेरेसैं कोइ दोष उपजे ? ऐसा विचार कें त्रिकरण शुरू बहुमान पूर्वक उपयोग संयुक्त विधिपूर्वक आहार व्यावे, अरु मधुरस्वरसैं विनति करे, कि हे स्वामी ! यह शुरू आहार हे, इस वास्ते सेवक उपर परम कृपा नजर करकें पात्र पसारकें मेरा निस्तार करो. ऐसे वचन बोलता हूँ आहार देवे, मुनि जी उस आहारकों योग्य जाण कर ले लेवे, अरु श्रावकजी जिननी दान देने योग्य वस्तु हे, उसके सर्वकी निमंत्रणा करे, इस विधिमें दान दे कर हाथ जोरुके पृथिवी उपर मस्तक लगा कर नमस्कार करे, पीठें मीठे वच नोसैं विनतिकरे, की हे कृपानिधान ! सेवक उपर वडी कृपा करी, आज मेरा घर पवित्र हूँ, क्योंकि पुण्योदयविना मुनिका योग कहां होता हे ? फेरजी हे स्वामी ! कृपा करकें अशन, पान, खादिम, औषध, वस्त्र, पात्र, शय्या, संस्तारकादिसैं प्रयोजन होवे, तव अवश्य सेवक उपर अनुग्रह करकें पधारनां, तुम तो मुनिराज गुणवान् वे परवाह हो, तुमकों किसी बात

की कमी नहीं, किसीके साथ प्रतिबंध नहीं, पवनकी तरें अप्रतिबंध हो, तोजी मेरे उपर जरूर कृपा करणी, ऐसे मुखसे कहता हुआ अपने घर की सीमा तक पहुंचावे, यह तीसरा गुण है.

४ चौथा तहांसे वंदना करके पीछें आ कर जोजन करे, परंतु मनमें आनंद समावे नहीं, विचारे कि मेरा बड़ा जाग्योदय हुआ, आज कोई जल्दी बात होवेगी. क्योंकि आज मुनि, निःस्पृही, सहज उदासी, स्वसुख विलासीकों में विनति करी आहार दीया, अरु आहार देतां विचमें कोई विघ्न न हुआ, इस वास्ते मेरा बड़ा जाग्य है, फेरजी कदे ऐसे मुनिका योग मिलेगा ? ऐसी अनुमोदना बारंवार करे, यह चौथा गुण है.

५ पांचमा जैसे कोई मंदजाग्यवान् व्यापार करतां थोड़ा थोड़ा कमाता है, तिसकों किसी दिन कोई सौदेमें लाख रूपैयेकी प्राप्ति होवे, तब वो कैसा आनंदित होवे है, अरु फेर उस व्यापारकी कितनी चाहना रखता है, तिसेंजी अधिक साधुकों दान देनेकी चाहना श्रावक रखे, यह पांचमा गुण है. यह पांच गुणयुक्त शुद्ध दान देवे, तो अतिथी संविज्ञाग व्रत होवे. इस व्रतके पांच अतिचार व्रजें, सो लिखते हैं.

१ प्रथम सचित्तनिक्षेप अतिचार. सो सचित्त सजीव पृथ्वी, जल, कुंज, चुल्ला, इंधनादिकोंके उपर न देनेकी बुद्धिसें आहारकों रख ठोडे. अरु मनमें ऐसा विचारे कि ए आहार साधु तो नहीं लेवेगा, परंतु निमंत्रणा करनेसे मेरा अतिथि संविज्ञागव्रत पल जावेगा, यह प्रथम अतिचार.

२ दूसरा सचित्त पीहण अतिचार. सो सचित्त करके ढक ठोडे, सूरण, कंद, पत्र, पुष्प, फलादि करके न देनेकी बुद्धिसें ढक ठोडे.

३ तीसरा कालातिक्रम अतिचार. सो साधुओंके जिज्ञाका काल लंघ करके अथवा जिज्ञाके कालसे पहिलां अथवा साधु आहार कर चूके तब आहारकी निमंत्रणा करे, सो तीसरा अतिचार है.

४ चौथा परव्यपदेश मत्सर अतिचार. सो जब साधु मागे तब क्रोध करे. तथा वस्तु पासमें है, तोजी मांग्या न देवे, अथवा इस कंगालने ऐसा दान दीया, तो मैं क्या इस्से हीन हूं, जो न देजं ? इस जावनासे देवे.

५ पांचमा गुड, खंड प्रमुख अपनी वस्तु है, सो न देनेकी बुद्धिसें औरों की कहे, यह पांचमा अतिचार ॥ इति श्रीअतिथिसंविज्ञागव्रतं संपूर्ण ॥

जैसें मेघ संक्रांतिके दिन सूर्यस्वर चले, अरु वृषसंक्रांति दिन चंद्र नाडी चले, तो शुभ जाननी इत्यादि. तथा किसीके मतमें चंद्रमा राशि पल्लटे तिस क्रम करके अढाइ घन्टी तक एक नामी बढ़ती है इत्यादि. परंतु जे नाचार्य श्री हेमचंद्रादिकोंका तो प्रथम लिखा है, सो मत है. ठीसीत गुरु अक्षरोंके उच्चारणमें जितना काल लगता है. तितना काल वायु नामीकों दूसरी नामीमें संचार करते लगता है.

अथ पांच तत्त्वोंकी पहिचान इसी तरें है. सो कहते हैं, नासिकाकी पवन जेकर लुंची जावे, तब तो अग्नि तत्त्व है, जेकर नीची जावे तो जल तत्त्व है, तिर्गो जावे, तो वायुतत्त्व, जेकर नासिकासें निकलके सूधी तिर्गो जावे, तो पृथ्वीतत्त्व, जेकर नासिकाके दोनो पुटोंके अंदर बहे, बाहिर नहीं निकले. तो आकाश तत्त्व जाननां.

पहिलां पवन तत्त्व बढ़ता है. पीठें अग्नि तत्त्व बढ़ता है, पीठें जल तत्त्व बढ़ता है, पीठें पृथ्वीतत्त्व बढ़ता है, पीठें आकाश तत्त्व बढ़ता है. क्रम इनका सदा यही है. दोनोही नामीयोंमें पांचो तत्त्व बढ़ते हैं, उसमें पृथ्वी तत्त्व पंचाश पल प्रमाण बढ़ता है, जल तत्त्व चालीश पल प्रमाण बढ़ता है, अग्नितत्त्व तीस पल प्रमाण बढ़ता है, वायुतत्त्व बीस पल प्रमाण बढ़ता है, आकाश तत्त्व दश पल प्रमाण बढ़ता है.

पृथ्वी अरु जल तत्त्वमें शांतिकार्य करणां, अरु अग्नि, वायु, तथा आकाश इन तीन तत्त्वमें दीप्तिमान् अरु स्थिरकार्य करणां, तो फलोन्नति शुभ होवे है, तथा जीवणेंका प्रश्न पूठनां, जयप्रश्न, खानप्रश्न, धन उत्पन्न करणे का प्रश्न, मेघवर्षनेका प्रश्न, पुत्र होनेका प्रश्न, युद्धका प्रश्न, जाने आनेका प्रश्न, इतने प्रश्न जेकर पृथ्वी अरु जलतत्त्वमें करे, तो शुभ होवे. जेकर अग्नि तत्त्व अरु वायु तत्त्वके बढ़ता ये प्रश्न करे, तो शुभ नहीं, पृथ्वी तत्त्वमें प्रश्न करे तो कार्यकी सिद्धिस्थिरपणे होवे अरु जल तत्त्वमें शीघ्रकार्य होवे.

जब पहिल पहिलां जिनपूजा करे, तथा धन कमावनेके वास्ते जावे. पाणिग्रहणकी (विवाहकी) वेलां, गढ लेनेकी वेलां, नदी उतरनेकी वेलां, ग या है सो आवेगा कि नहीं? ऐसे प्रश्न करते वेलां, जीवनेके प्रश्नमें तथा घर कं आदि लेती वेला, क्रियाणां लेतां, वेचतां, वर्षके प्रश्नमें, नौकरी करणेकी वेलां

खेती करनेके वखत, शत्रुके जीतनेमें, विद्यारंजमें, राज्याजिषेकमें, इत्यादि शुभकार्यमें चंद्रनामी वहे, तो कल्याणकारी है.

प्रश्नके समय कार्यके आरंजमें पूर्ण वामी नामी प्रवेश करती होवे, तदा निश्चय कार्यकी सिद्धि जाननी, इसमें संदेह नहीं. तथा कैदसें कद दूदेगा? रोगी कब अठा होवेगा? अरु जो अपने स्थानसें ब्रष्ट हुआ है, तिसका प्रश्नमें तथा युद्ध करनेके प्रश्नमें, वैरीकों मिलती वखत, अकस्मात् जय हुआ, खान करण लगे, जोजन, पाणी पीने लगे, सोने लगे, गड़ वस्तुके खोज करनेमें, मैथुन करने लगे, विवाद करणमें, कष्टमें, इतने कार्यमें सूर्य नाडी शुभ है. कोशक आचार्य ऐसैज्जी कहते हैं, कि विद्यारंजमें, दीक्षामें, शास्त्रान्यासमें, विवादमें, राजाके देखनेमें, मंत्र यंत्रके साधनेमें, सूर्य नामी शुभ है. अथवा जो चंद्रादि स्वर चलता होवे, निरंतर तिस पासेंका पग उठाके प्रथम चले तो कार्य सिद्धि होवे.

पापी जीवोंके शत्रुओंके चार प्रमुख जे क्लेशके करने वाले हैं, तिनके सन्मुख जो नासिका बंध होवे, सो पासा, इनके सामने करे, जो सुख लाज जयार्थी है, उसमें प्रवेश करता हुआ पूरा स्वर, वामा पग शुक्ल पदमें, अरु जीमणा पग कृष्ण पदमें, शय्यासें उठतां हूयां धरती ऊपर रखता. इस विधिसें श्रावक निंद लागे.

अरु श्रावक अत्यंत बहुमान पूर्वक मंगलके वास्ते पंचपरमेष्ठि नमस्कार स्मरण करे, शय्यामें बैठा हुआ मनमें पंचपरमेष्ठि नमस्कार मंत्र स्मरण करे, परंतु वचनसें उच्चारण न करे, जेकर मुखसें उचार करे, तो शय्या ठोकर धरती उपर बैठ कर नमस्कार मंत्र पढ़े ऐसे नमस्कार मंत्र हृदयमें स्मरण करता हुआ शय्यासें उठे, पवित्र भूमिका उपर बैठे, तथा पूर्व अथवा उत्तरदिशि सन्मुख मुख करके खड़ा रह कर चित्त की एकाग्रताके वास्ते कमलबंध कर जपादि करके नमस्कार मंत्र पढ़े, तदा आठ पांखनीका कमल चिंते, उसकी कर्णिकामें अरिहंत पदका स्थापन करे, पूर्व पांखडीमें सिद्ध, दक्षिण पांखनीमें आचार्य, पश्चिम पांखनीमें उपाध्याय, उत्तर पांखडीमें साधु स्थापन करे, अरु बाकी चूड़िकाके चार पद जो हैं, सो अनुक्रमें अग्न्यादि चारों कृणोंमें स्थापन करे. उक्त चाष्टमप्रकाश योगशास्त्रे ॥ श्रीहेमचंद्रसूरिजिः ॥ अष्टपत्रे तितांजोजे,

कर्णिकायां करस्थितिः ॥ आद्यं सप्ताक्षरं मंत्रं, पवित्रं चिंतयेत्ततः ॥ १ ॥
 सिद्धादिकचतुष्कं च, विक्रपत्रेषु यथाक्रमं ॥ चुलापादचतुष्कं च विदित्य
 त्रेषु चिंतयेत् ॥ २ ॥ त्रिशुद्धचित्तयज्ञस्य, शतमष्टोत्तरं मुनिः ॥ जुंजानोपि च
 जत्येव, चतुर्थतपसः फलम् ॥ ३ ॥

हाथके आचर्त्त करके जो पंच मंगल मंत्र स्मरण नित्य करे उसको
 पिशाचादिक नहीं ठसते हैं, बंधनादि कष्टमें विपरीत शंखावर्त्तकादिक
 अक्षरों करके अथवा विपरीत पदों करके पंचमंगल मंत्र लक्षादि जाप
 करे, तो शीघ्र क्लेशादिकोंका नाश होवे, जे कर हाथ उपर जाप न कर
 सके तो सूतकी, रत्नकी, रुद्राक्षादिककी, माला उपर जाप करे, माला
 बांला हाथ, हृदयके सामने रखे, शरीरसें तथा शरीरके बलोंसें
 तथा जूमिकासें माला न लगने देनी, अंगूठेके उपर माला रख करके
 तर्जनी अंगुलीसें नख, घिना लगाया मणका फेरे, मेरु उल्लंघन न करे,
 शास्त्रकार लिखते हैं कि जो अंगुलीके अग्रसें जाप करे, अरु जो मेरु
 उल्लंघके जाप करे, तथा जो बिखरे हुए चित्तसें जाप करे, यह तीनों
 जाप थोडा फल देते है, जाप करने वाला बहुतोसें एकला अष्टा शब्द
 करके जाप करनेसें मौन करके करे सो अष्टा है, जेकर जप करतां थक
 जावे, तो ध्यान करे, ध्यान करनेसें थक जावे, तो जप करे, दोनोसें
 थक जावे, तो स्तोत्र पढे.

श्रीपादलिख आचार्यकृत प्रतिष्ठाकल्प पद्धतिमें लिखा है, कि जाप तीन
 तरेंका है, एक मानस, दूसरा उपांशु, तीसरा ज्ञाप्य, इन तीनमें मानस
 उसको कहते हैं कि जो मनकी विचारणासें होवे, स्वसंवेद्य होवे, अरु
 उपांशु उसको कहते हैं कि जो दूसरा तो न सुणे, परंतु अतर्जद्वय
 रूप होवे, तथा जो दूसरोंको सुनाइ देवे, सो ज्ञाप्य यह तीनों क्रम
 करके उत्तम, मध्यम, अरु अधम जान लेने. उसमें मानससें शांति
 होती है, एतावता शांतिके वास्ते मानस जाप करणां, अरु पुष्टिके वास्ते
 उपांशु जाप करणां. तथा आकर्षणादिकमें ज्ञाप्य जाप करणां.

नमस्कार मंत्रके पांच पद, नवपद, अथवा अनानुपूर्वी, चित्तकी एका
 प्रताके वास्ते गुणे, तथा जो नवकार मंत्रका एक अक्षर एक पदजी जपे,
 तोजी जाप हो सका है ॥ यदुक्तं योगशास्त्रे अष्टमप्रकाशे ॥ पंचपरमेष्ठि

मंत्रके “अरिहंत सिद्ध आयरिय उववाय साहू” इन सोलां अक्षरका जाप करे, तथा “अरिहंतसिद्ध” इन षट् वर्ण (ठै अक्षर) का जाप करे, तथा “अरिहंत” इन चार अक्षरका जप करे, तथा आकार जो वर्ण है, सो जी मंत्र है इनके जापसें स्वर्ग मोक्षका फल होता है, अरु व्यवहार फल अैसा जाननां, कि:- पङ्कवर्णका जाप तीन सौ बार करे, तथा चार वर्णका जाप चार सौ बार करे, अरु सोलां अक्षरका जाप दो सौ बार करे, तो एक उपवासका फल होता है, तथा नाजिकमलमें स्थित तो अकार ध्यावे, अरु सि वर्ण, मस्तक कमलमें स्थित ध्यावे, तथा आकार मुख कमलमें स्थित ध्यावे, उकार हृदय कमलमें स्थित ध्यावे, तथा साकार कंठ पिंज रमें स्थित ध्यावे, सर्व कल्याणकारी यह जाप है, असिआ उसा यह पांच बीज हैं, इन पांचों बीजोंका उँकार बनता है.

तथा और बीज मंत्रोंकाजी जाप करे, जैसे “नमः सिद्धेज्यः” अैसा मंत्र तो जे कर इस लोकके फलकी इत्ता होवे, तब तो उँकार पूर्वक पढनां चाहिये, अरु मोक्ष वास्ते जपे, तो उँकार रहित पढनां चाहिये, यह जपा दि करनेसें बहुत फल होता है ॥ यतः ॥ पूजाकोटिसमं स्तोत्रं, स्तोत्रकोटिस मो जपः ॥ जपकोटिसमं ध्यानं, ध्यानकोटिसमो लयः ॥ १ ॥ ध्यानकी सिद्धि वास्ते श्रीजिनजन्मदीक्षादि कल्याणक नृमिरूप तीर्थमें जावे, अथवा और कोइ विविक्त स्थान होवे, तहां ध्यान करे. ध्यानका स्वरूप देखनां होवे, तब आवश्यक सूत्रांतर्गत ध्यानशतक देख लेनां, नमस्कार मंत्रका जो जाप है, सो इस लोक परलोकमें बहुत गुणकारी है, ॥ उक्तं हि महानिशीथे ॥ नास्तेऽ चोर सावय, वित्तहर जल जलण बंधण जयाइ ॥ चित्तिज्ज्ञतो रक्कस, रण राय जयाइ जावेण ॥ १ ॥ अर्थ:- चोर, सिंह, सर्प, पाणी, अग्नि, बंधन, संग्राम, राजजय, इतने जय पंचपरमेष्ठि मंत्रके स्मरणसें नष्ट हो जाते हैं. एकाग्रता जावसें जपे, तो यह फल होता है. पंच परमेष्ठि मंत्र सर्व जगे पढनां चाहिये, नमस्कार मंत्रका एक अक्षर जपे, तो सात सागरोपमका करा हूआ पाप नष्ट होता है, जे कर संपूर्ण पंच परमेष्ठिमंत्र जपे, तो पांच सौ सागरका करा हूआ पाप नष्ट हो जाता है, तथा जो पुरुष एक लक्ष बार पंच परमेष्ठि मंत्रका जाप करे, अरु यह नमस्कार नामक मंत्र जो है, तिसकी विधिते पूजा

करे, तो तीर्थंकर नाम कर्मगोत्रका बंध करे, इस बातमें संदेह नहीं, तथा आठ कोमी, आठ खाल, आठ हजार, आठ सौ, आठ धार, जो पंच प रमेष्टिमंत्रका जाप करे, वो जीव, तीसरे जन्ममें सिद्ध हो जाता है, इस वास्ते सूते, उठते, प्रथम नमस्कार स्मरण करणां, तिसके पीठें धर्म जागरणा करणी. सो इसी तरेंकि:-

यथा में कौन हूं? क्या मेरी जाति है? क्या मेरा कुल है? कौन मेरा इष्ट देव है? कौन मेरा गुरु है? क्या मेरा धर्म है? क्या मेरे अजिग्रह है? क्या मेरी व्यवस्था है? क्या मेने सुरुतादि करा है? क्या मेने दुःख तादि नहीं करा है? क्या में करने समर्थ हूं? क्या में नहीं कर सका हूं? मुझकों कोई देखता है कि नहीं? अपनी जूझकों आत्मा जानता है, फेर क्यों नहीं ठोमता? तथा आज कौनसी तिथि है? क्या अर्द्धतका कइया पिक दिन है? आज मेरा क्या कृत्य है? में किस देशमें तथा किस का लमे हूं? सयें उठके ऐसे स्मरण करणेसं जीव सावधान हो जाता है, जो विरुद्ध कृत्य हैं, उसका परिहार करता है अपने नियमका निर्वाह अरु नवीन गुणकी प्राप्ति होती है, येही धर्म जागरणा, आणंद कामदे वादि आवश्यकने करके प्रतिमादि विशेष धर्मकरणी करी है.

तस पीठें जो आवश्यक प्रतिक्रमण करनेवाला होवे, सो प्रतिक्रमण करे, अरु जो प्रतिक्रमण न करे, सोजी रागादिमय कुस्वप्न प्रहेयादिमय अनिष्ट फलका सूचक तिसके हर करणे वास्ते तथा स्वप्नमें श्रीसं प्रसंगादि करनेका छोटा स्वप्न उपखंड हूया होवे, तब एक सौ आठ उन्नास प्रमाण कायोरसर्ग करे, अन्यथा सो उन्नास प्रमाण कायोरसर्ग करे, चार खोग स्वप्नका काठस्सर्ग करे. यह कथन व्यवहार जाप्यमें है, तथा विवेक विद्यादि ग्रंथोंमें ऐसा लिखा है, कि स्वप्न देख्यां पीठें फेर नहीं सोवणां, अरु स्वप्न, दिनमें सगुरुके आगें कहनां, जे कर छोटा स्वप्न आवे तो फेर सोवनां ठीक है, किसीके आगें कहनां न चाहियें, तथा समभावु वासा, प्रज्ञांतचित्तवासा, धर्मी थोर नीरोगी, जितेंद्रिय, इनकों जो शुभाशुभ स्वप्न आवे, सो सत्यही होता है, स्वप्न जो आना है, सो नय का रणोंसे आता है, सो नव कारण कहते हैं.

एक तो अनुजव करी दुइ वस्तुका स्वप्न आता है, दूसरा सुणी दुइ वातका, तीसरा देखा हुआ, चौथा प्रकृति वात, पित्त, अरु कफके बिकारसैं, पांचमा चिंतित वस्तुका, ठछा सहज स्वप्नावसैं, सातवा देवताके उपदेशसैं, आठमा पुण्यके प्रज्ञावसैं, नवमा पापके प्रज्ञावसैं, इसमें आदिके ठे कारणोंसैं, जो स्वप्न आवे, सो निरर्थक है, अरु अगले तीन कारणोंसैं जो स्वप्न आवे तो सत्य होवे.

रात्रिके पहिले प्रहरमें स्वप्न आवे, तो एक वर्षमें फल देवे, अरु दूसरे प्रहरमें स्वप्न आवे, तो ठे महीनेमें फल देवे, तीसरे प्रहरमें स्वप्न आवे, तो तीसरे महीनेमें फल देवे, चौथे प्रहरमें स्वप्न आवे, तो एक मासमें फल देवे, सवरे दो घनी रात्रिमें स्वप्न आवे, तो दश दिनमें फल देवे, सूर्योदयमें स्वप्न आवे, सो तत्काल फल देवे.

एक जो स्वप्नमें बहुत आल जंजाल देखे, तथा दूसरा जो रोगोदयसैं स्वप्न आवे, तथा तीसरा जो मलमूत्रकी बाधासैं स्वप्न आवे, यह तीनों स्वप्न निरर्थक हैं. जे कर पहिला अशुज स्वप्न आवे, अरु पीठेंसैं शुज स्वप्न आवे, तो शुज फल देवे, तथा पहिला शुज स्वप्न आवे, पीठें अशुज आवे, तो अशुज फल देवे, जेकर खोटा स्वप्न आवे, तो शांति अर्थात् देवपूजा दानादिक करणां, तथा स्वप्न चिंतामणि नामक ग्रंथमेंजी लिखा है, कि अनिष्ट स्वप्न देख कर सो जावे, अरु किसीकों कहे नहीं, तो फेर स्पष्ट फल नहीं देता है, सूता उठके जिनेश्वरदेवकी प्रतिमाको नमस्कार करके जिनेश्वरका ध्यान करे, स्तुति करे, स्मरण करे, पंच परमेष्ठिमंत्र पढ़े, तो खोटा स्वप्न वितथ हो जाता है अरु जो पुरुष देव गुरुकी पूजा करते हैं, तथा निजशक्त्यनुसार तप करते हैं, निरंतर धर्मके रागी हैं, तिनोंकों खोटा स्वप्नजी अछा फल देता है. तथा जो पुरुष, देवगुरुका स्मरण करके अरु शत्रुंजय समेत शिखर प्रमुख शुज तीर्थोंका नाम, तथा गौतमस्वामी, सुधर्मस्वामी प्रमुख आचार्योंको नाम स्मरण करके सोवे, उसको कदापि खोटा स्वप्न नहीं होता है.

धूकनां होवे, तो राखमें धूकनां चाहियें, शरीरको दृढ करने वास्ते हाथों करके बज्जीकरण करे, अग्नि तत्त्व, अरु पवन तत्त्व, जब बहता होवे, तब धाप करके आकंठ तांश् छूध पीवे, केइ आचार्य कहते हैं कि

आठ पसली पाणीकी पीवे, इसका नाम वज्जीकरण कहते हैं. तथा सबेरे उठके माता, पिता, पितामह, बन्दा जाइ प्रमुखकों नमस्कार करे, तो तीर्थयात्रा समान फल है. इस वास्ते दिन दिन प्रत्ये करणी चाहियें. तथा जिसने बृद्धोंकी सेवा नहीं करी है, उसकों धर्मकी प्राप्ति नहीं होती है, बृद्ध उसकों कहते हैं कि जो शीलमें, संतोषमें तथा ज्ञान, ध्यानादिकमें बड़े होवे, तिनकी सेवा अवश्य करनी चाहियें. तथा जिसने राजाकी सेवा नहीं करी है, अरु जिसने उत्पन्न होते हुए अपने शत्रुकों बंद नहीं करा, तिस पुरुषसें धर्म, अर्थ, अरु सुख दूर हैं.

आवककों सबेरे उठ करके चौदह नियम धारण करणे चाहियें, तिनका स्वरूप उपर लिख आये हैं. तथा बिवेकी पुरुष प्रथम सम्यक्त्व पूर्वक द्वादश व्रत, विधि पूर्वक गुरुके मुखसें धारण करे, अरु विरति जो पलती है, सो अज्याससें पलती है, इस वास्ते धर्मका अज्यास करना चाहियें. विना अज्यासके कोइ क्रियाजी अष्टी तरे नहीं करी जाती है, ध्यान मौनादि सर्व अज्यास करनेसें दुःसाध्य नहीं. जो जीव, इस जन्म में अष्टा वा बुरा जैसा अज्यास करता है, सोइ प्रायः अगले जन्ममें पाता है, तथा पंचमी, अष्टमी, चतुर्दश्यादिकीके दिनमें तपादि नियम जो जो धर्मी पुरुषने अंगीकार किया है, उसमें जो तिथ्यंतरकी ब्रांत्यादि करके सचित्त जलादि पान, तंबोल चक्षुण, कितनाक चोजनजी कर लीया है, पीठेंसें ज्ञान हुआ कि आज तो तपका दिन था ? तब जो कुछ मुखमें होवे, उनकों राखादिकमें गेर देवे, प्राशुक पाणीसें मुखशुद्धि कर तप करेकी तरें रहे, तो नियम जंग नहीं होता है, अरु जे कर संपूर्ण चोजन करा पीठें जान पड़े कि आज तपका दिन है, तब अगले दिन दंडके निमित्त सो तप करे. समाप्ति हुआ उसके उपर पोरिसी एकाशनादि तप अधिक करे, अरु जे कर तपका दिन जान कर एक दाणाजी खावे, तो ॥ तजंग हो जाता है, अरु जो व्रतका जंग जान करके करना है, सो नरकादिकका हेतु है, तथा जे कर तप करे पीठें गाढा मांदां हो जावे, अथवा चूतादि दोषसें परवश हो जावे, अथवा सर्पादिक काटे, अैसे अस्माधिमें तप करने समर्थ न होवे, तोजी चार आगार उच्चारण करनेसें व्रतजंग नहीं होता है, अैसें सर्व नियमोंमें जान लेनां ॥ उक्तं च ॥ वयजंगे गुरुदो

सो, घोवरसवि पालणा गुणकारि ॥ गुरु लाघवं च नेयं, धम्ममिअ उ
आगारा ॥ १ ॥ अस्यार्थः— व्रतजंग करनेसें महा झूषण होता है, अरु
जो पालन करे, तो थोना व्रतजी गुणकारी है, इस वास्ते गुरु लघु जान
के धर्ममें आगार जगवान्नें कहे हैं.

तथा नियम अंतें ग्रहण करणां, सो कहते हैं. प्रथम तो मिथ्यात्व
त्यागणे योग्य हैं, तिस पीठें नित्य यथाशक्ति एक, दो, तीन बार जिन
पूजा, जिनदर्शन, संपूर्ण देवबंदन, चैत्यबंदन करे, अंतैही गुरुका योग
मिले दीर्घ, लघु बंदन करे, जेकर गुरु हाजर न होवे, तब धर्माचार्यका
नाम लेकें बंदना करे, तथा नित्य वर्षा झुमें (चामातेमें) पांच पर्यंके
दिन अष्ट प्रकारी पूजा करे, जहां लग जीवे, तहां लग नवा अन्न, नवा
फल, पफासादिक देवकों चढावे बिना खावे नहीं, नित्य नेवेय, सोपारी,
पदामादि देवके आगें चढावे, तथा तीन चामाते संवत्सरी दीवाली प्रमु
खमें चावलोंके अष्ट मंगल जरयें होवे. नित्य अथवा पर्यंके दिन तथा व
र्षमें खादिम, स्वादिम, सयं वस्तु देव गुरुकों दे कर जोजन करे, प्रतिमा
स, प्रतिवर्ष, महाध्वजादि उत्सव आकरंर करकें चढावे, यात्र महोत्सव,
अष्टोत्तरी पूजा, रात्रिजागरण करे. नित्य चामाते आदिकमें कितनीक
बार जिनमंदिर, धर्मशास्त्रा, प्रमार्जन करे, देहरा तमरावे, पोषधशास्त्रा
छोपे, प्रतिवर्ष प्रतिमास जिनमंदिरमें धंगझूट्नां तथा दीपकके वास्ते पूर्ण
देवे, दीवे वास्ते तैल देवे. चंदन खंडादि मंदिरमें देवे. पोषधशास्त्रामें मु
खवस्त्रिका, जपमास्त्रा पृंठणा, चरवस्त्रा, कितनेक वस्त्र, सूत, कंबुड़ी, जना
दि देवे, वर्षमें धावकोंके बैठने वास्ते कितनेक पाट, चाकी प्रमुख देवे,
जेकर निर्धन होवे. तो जी वर्ष दिन पीठें सूत नोग अष्टी प्रमुख दे कर
संप पूजा करे. कितनेक साधमीयोंको शक्ति अनुत्तर जोजन देकें, नाथ
मीवास्तव्यादि करे, दररोज कितनेक कायात्मने करे. व्याध्याय करे नित्य
जपन्य नमस्कार सहित प्रत्याख्यान करे. रात्रिमें दिवन चर्म प्रत्याख्या
न करे. दोनों घसत प्रतिश्रमण करे. यह करणी प्रथम कर लेवे, ना पी
ठें पागं व्रत स्वीकार करे. तिन व्रतोंमें लानने व्रतमें मचिन, अचिन,
अरु निध पन्तुका न्यस्त अष्टी करे जाननां चाहिये.

जैतें प्रायः सदै धान्य, अरु. अरु धनीरा. जीरा, अजरदन, मौंर,

सोया, राइ, खसखस प्रमुख सर्व कण, सर्व पत्र, सर्व हरे फल, तथ
 लूण, खारी, खारक, अर्थात् बुहारे, रक्त (खाल) रंगका सिंघालूण, खाण
 का सोंचस लूण, खारा, मट्टी, खरी, हिरमची, हरे दांतण, इत्यादि. ये
 सर्व व्यवहारसें सचित्त सजीव हैं. तथा पाणीमें जिजोये चणे, गेहूं, आदि
 अन्न, तथा चणे, मूंग, उडद-तूथर प्रमुखकी दाख, जिसमें नकू रद्दा गया
 होये, ये सर्व मिश्र है, तथा पहिछां लूण लगा करके अन्निकी वाष्पादि
 दीया बिना तप्त घालु (रेतके) बिना गेरें चणे, गेहूं, जूवारादि जूजे, तथा
 ग्यारादि दीयां बिना मससे हूये तिल, होलां, जंघियां, सिट्टे, पट्टंक. ईपत्,
 सैकी फली. मिरच, राइ, हिंग प्रमुख करके चिर्नटादि फल, बघारे, तथा
 जिसके अंदर बीज सचित्त है, ऐसे पके हूये सर्व फल, यह सब मिश्र
 है. तथा तिलबट, तिलकूट, जिस दिन करे उस दिन मिश्र है, अरु जेकर
 तिखांमें अन्न रोटी प्रमुख गेरके कूटे, तो एक मुहूर्त्त पीठें अचित्त होये,
 तथा दक्षिण मासवादि देशोंमें बहुत गुरु प्रक्षेप करनेसें उसी दिन अ
 चित्त हो जाते हैं, तथा पृथ्वीसें तत्कालका उखड्या गूद, खाल, तिलक,
 तत्कालका फोड्या नाखियर, तथा निंबु, दाहिम, अनार, आंव, नींबू, इम
 इनका तत्कालका काट्या रस, तथा तत्कालका काट्या तिलादिका तेल, तत्का
 लका नांग्या हूया बीज, तथा काटे हूये नखेर, सिंघाडे, सोपारी, आदि त
 था बीज रहित कीया एक फल खरबुजादि, गाढा मर्दन करके कण
 काट्या जीरादि, ये सर्व अन्नमुहूर्त्त लग मिश्र हैं, पीठें प्राशुकका व्यवहार
 है, तथा थोगनी प्रयत्न अन्निके योगबिना प्राशुक करे हूते अन्नमुहूर्त्त तांश
 मिश्र है, पीठें प्राशुकका व्यवहार है, तथा अन्नप्राशुक पाणी, कथा फल,
 कथा अन्नको जेकर बहुत मर्दननी करे है, तोनी खण अग्न्यादिक प्रयत्न
 शत्रु बिना प्राशुक नही होने हैं. क्योंकि श्रीपंचमांग जगवतीमूत्रके उन्नीम
 मे शतकके तीसरे उद्देशमें लिखा है, कि:-वज्रमयी शिला, वज्रमयी छोटा
 आमसे प्रमाण पृथ्वीकाय से के एकबीज बार पीसे, तब कितनेक पृथ्वीके
 जीवोंको छोटेका मर्गनी नही हूया है, ऐसी उनजीवोंकी सूक्ष्म काया
 है, तथा सो योजनमें उपरान आये हूये हरडां, खारक, किसमिस, सास
 डाका, मेवा, मज्जू, काशी मिरची, पीपर, जायफल, बदाम, अमोद, ने
 उजा, जरगोजा, पिन्नां, सीतल, चीनी, स्फटिक समान उज्ज्वल सिंघा

लूण. सज्जी जड़ीमें पकाया लूण, वनावटका खार, कुंजारकी कमांडू हूइ मट्टी, एलायची, लवंग, जावंत्री, सूकी मोथ, कोकणदेश प्रमुखके केले, कदलीफल, उवाले हूये संगाडे, सोपारी, इन सर्वका प्राशुक व्यवहार है; साधुजी कारण पडे ले लेवे. यह बात कदपचाप्यमेंजी लिखी है. "जोय ए सयं तु गंतु, अणाहारे जंन संकंति " इत्यादि. इनमेंसूं हररु, पीपल प्रमुख तो आचीर्ण है, इस वास्ते लेते हैं, अरु खर्जूर, डाढ़ा प्रमुख अनाचीर्ण है, तथा उत्पलकमल, पद्म कमल, धूपमें रखे, एक प्रहरके अर्च्यं तरही अचित्त हो जाते हैं. तथा मोगरेके फूल, जुहिके फूल, यह धूपमें बहुत चिरजी पडे रहे, तोजी अचित्त नहीं होते हैं. तथा मगदंतिना अर्थात् मोगरेके फूल पाणीमें गेरे रहें तो एक प्रहरके अंदरही अचित्त होजाते हैं, तथा उत्पल, नीलकमल अरु पद्मकमल, ये दोनो पाणीमें गेर रखनेसें बहुत कालमेंजी अचित्त नहीं होते हैं, "शीतयोनिक्त्वात्" तथा पत्रोंका फूलोंका जिनफलोमें अजीतक गुठली बंध नहीं हुइ, तिनका तथा वधुआ प्रमुख हरित वनस्पतिका, इन सवनका वृंत, (डंरी) कुमलाय जावे, तब जीव रहित हूये जानने. यह कथन श्रीकदपचाप्य वृत्तिमें लिखा है.

तथा श्रीपंचमांगके ठेठ शतकके पांचमे उद्देशेमें सचित्ताचित्त वस्तुका स्वरूप ऐसा लिखा है, शालि, निहि, गेहूं, जव, जवजव, ये पांच धान्य की जाति कठोरमें तथा ठेके पालेमें तथा मंचा, माला, कोठारविशेषोमें मुख ढांकके रखे, लीप्या होवे, तथा चारो तर्फसें लीप्या होवे, उपर को इ और ढकणा दीया होवे, मुद्रित लांठित करके रखे, तो कितने काल तांइ जीवयोनि रहे? ऐसा प्रश्न पृठनेसें जगवान् कहते हैं कि हे गौतम ! जघन्य तो अंतर्मुहूर्त रहे, अरु उत्कृष्ट तो तीन वर्ष रहे, फेर अचित्त हो जावे. तथा मटर, मसूर, तिल, मूंग, उडद, बाल, कुलधी, चवला, तूयर, गोल चणे, इत्यादि धान्य सर्व उपर वत् जाननां. नवरं, उत्कृष्टसें पांच वर्ष उपरांत अचित्त होते हैं. तथा अलसी. कुसुंजेकी कररु, कोछुं, कंगुनी, वरटी. राल. कोडुसक, सण, सरसों, मूलीके बीज, इत्यादि धान्यजी उपरवत्. नवरं, उत्कृष्टसें सात वर्ष उपरांत अचित्त हो जाते हैं. तथा कर्पासके बिनौले, उत्कृष्ट तीन वर्षसें उपरांत अचित्त जीव रहित हो जाते हैं. यहजी कदपचाप्यमें लिखा है. ————— आटा (चून) आवण, जाड

वाके महिनेमें पांच दिन तक मिश्र रहता है, पीठें अचिच्छ होता है, अ
सोज, कार्तिक मासमें चार दिन तक मिश्र रहता है, पीठें अचिच्छ हो
जाता है. तथा मगसिर, पौष मासमें तीन दिन मिश्र रहता है, पीठें अचिच्छ
होता है, तथा माघ, फागून मासमें पांच प्रहर मिश्र रहता है, तथा चै
त्र, वैशाख मासमें चार प्रहर मिश्र रहता है. तथा ज्येष्ठ आषाढमें तीन
प्रहर मिश्र रहता है, उपरांत अचिच्छ हो जावे, जे कर तत्काल ठान
लेवे, तब अंतमुहूर्त्त लग मिश्र रहे, पीठें अचिच्छ होवे.

शिष्य प्रश्न करता है, कि पीसा हुआ आटा कितने दिनका अचिच्छ
जोगीकों तथा श्रावककों खाना चाहियें ?

उत्तर:-सिद्धांतमें हमने आटेकी मर्यादाका नियम नहीं देखा है. परं
तु बुद्धिमान् नवा, जीर्ण अन्न, तथा सरस नीरस क्षेत्र, तथा वर्षा, शीत,
उष्णादि ऋतु, तिनमें तिस आटेका पंदरा दिन मासादि कालमें वर्षा,
गंध, रस स्पर्शादि विगना देखे, तथा सुरसखी प्रमुख जीव पना देखे,
तब न खावे, जे कर खावे, तो जीवहिंसा अरु रोगोत्पत्तिका कारण है.

तथा मिठाइकी मर्यादा, अरु विदलका निषेध, उपर सातमे व्रतमें लि
ख आये हैं, तहांसे जान लेनां. तथा दहीमें सोसां प्रहर उपरांत जीव
उत्पन्न होते हैं, तथा विवेकी जीवकों बैंगन, टींवरु, जामन, बिह्व, पीलू,
पक कर्मदा, पक्का गूदा, लसूडा पेंबु, मधुक, (महुवा) मोर, बालोल, घडे
घोर, जाडीके घोर, कच्चा कौठफल, खसखस, तिल, इत्यादि न खाने चा
हियें, इनमें ब्रस जीव होते हैं. तथा जो फल रक्त (लालरंग) देखने
में घूरा लगे, पक, गोल, कंकोरा, फणस, कटेस प्रमुखजी बुरी जावनाके
हेतु होनेसे, न खाने चाहियें. तथा जो फल जिस देशमें खानां विरुद्ध
होवे, जैसें करुवा तूवा, कृष्णाम् अर्थात् कोहला हलुवा (कडु) सोजी
न खानां चाहियें, अरु अजहय, अनंतकाय, कंदमूल, परधरके अचिच्छ
करे, रांधे हूयेजी न खाने चाहियें. क्योंकि एक तो निःशुक्रता अरु इस
री रस खंपटता तथा घृष्ट्यादि दोषका प्रसंग होता है. इसी वास्ते न खा
नां. तथा उकाला हुआ सेलरा, रांध्या हुआ आर्द्रादि कंद, सूरण, बैंगना
दि, यद्यपि अचिच्छ हैं, तोजी श्रावक, प्रसंग दूषण त्यागने वास्ते न खा
वे, तथा मूली तो पंचांगही खाने योग्य नहीं. निषिद्धत्वात्, तथा शुंठ,

हृसद, नाम अरु स्वाद जेद होनेसँ अजद्य नहीं है. तथा उष्ण जल, तीन उवाखे आ जावें, तब अचित्त होता है, यह कथन पिंडनिर्युक्तिमें है. चावलोंके धोवणका पाणी जब नितरके निर्मल हो जावे, तब अचित्त होता है, तथा उष्णजलकी मर्यादा प्रवचनसारोद्धारादि ग्रंथोंमें औसी लिखी है, सो कहते हैं. त्रिदंशोद्धृत उष्ण जल, उष्णकालके चारों मास में पांच प्रहर अचित्त रहता है, यह जुद्धेसँ उतारे पीठेंकी मर्यादा है. तथा वर्षाके चारों मासमें तीन प्रहर अचित्त अरु शीत कालके चारों मासमें चार प्रहर अचित्त रहता है, पीठें सचित्त होता है, जे कर ग्लान, बाल, वृद्धादि साधुके वास्ते मर्यादा उपरांत रखनां होवे, तब द्वारादि वस्तुका प्रक्षेप करके रखनां, फेर सचित्त नहीं होता है. प्रवचनसारोद्धारके (१३६)में द्वारमें यह कथन है तथा कोककु मोठ, मूंग अरु हरका दिककी मीजी (गिटक) यह यद्यपि अचेतन हैं, तोजी योनि रखने वास्ते तथा निःशुक्तादिके परिहार वास्ते दांतासँ तोरुनां (जांगनां) न चाहियें. इत्यादि सचित्त वस्तुका स्वरूप जानके सातमा व्रत अंगीकार करनां चाहियें.

आवककों प्रथम तो निरवय (द्रूपण रहित) आहार खानां चाहियें. औसँ न कर सके तो सर्व सचित्त खानेका त्याग करे, औसँजी न कर सके तब बावीश अजद्य अरु वत्तीस अनंतकाय तो अवश्यमेव त्यागने चाहियें, तथा चौदह नियम धारने चाहियें. औसँ सूता उठके यथाशक्ति नियम ग्रहण करे, पीठें यथाशक्ति प्रत्याख्यान करे, नमस्कार सहित पौरुषादि काल प्रत्याख्यान जो है, सो जेकर सूर्य उगनेसँ पहिलां उच्चारण करियें, तो शुद्ध है, अन्यथा शुद्ध नहीं. अरु शेष प्रत्याख्यान सूर्योदयसँ पीठेंजी हो सके हैं. यह तथा नमस्कार सहित जेकर सूर्योदयसँ पहिलां उच्चारण करा हुआ होवे, तब तिसके पूर्व हुआ तिसके बीचही पौरुषी साङ्ग पौरुषादि काल प्रत्याख्यान हो सकता है. जे कर नमस्कार सहित सूर्योदयसँ पहिलां उच्चारण न करियें, तब तो कोइजी काल प्रत्याख्यान करनां शुद्ध नहीं, अरु जे कर प्रथम नमस्कारादि प्रत्याख्यान मुष्टि सहतादि करे, तब सर्वकाल प्रत्याख्यान करे, तो शुद्ध है.

तथा रात्रिमें चौविहार करे अरु दिनमें एकासना करे, पीठें ग्रंथि सहित प्रत्याख्यान करें, तब तिसको प्रतिमास एगुन तीस उपवासका फल

होता है, दो बार जोजन उक्त रीतिसं करे, तो अष्टावीस उपवासका फल होता है, क्योंकि दो घड़ीका काल जोजन करतां लगता है, शेष काल तपमें व्यतीत हुआ, यह कथन पद्मचरित्रमें है, प्रत्याख्यान उप योग पूर्वक पूरा हो जावे, तो पारे.

१. अरु चार प्रहारके आकारका विभाग ऐसें है, एक तो अन्न, पकात्र, मंरुक, सत्तुआदि जो कुधा दूर करनेकूं समर्थ होवे. सो प्रथम अंशं नामक आहार है, दूसरा ठाठका पाणी, तथा उष्ण जलादि, यह सर्व पानक नामक आहार है. तीसरा फल, फूल, इस्कुरस, पटुंक, सूखड़ी, आदिक यह सर्व खादिम नामक आहार है. चौथा सूंठ, हरडे, पिप्पली, काली मिरच, जीरा, अजमक, जायफल, जावंत्री, असेलक, कछा, ख थरबड़ी; ज्येष्ठीमधु, तज, तमालपत्र, एलायची, कौठ, विडंग, विडलव ण, अजमोद, कुलिंजण, पिप्पलीमूल, चीणकवाच, कचूर, मुस्ता, कंटासे खिउं, कर्पूर, सौंचल, हरड, बहेडां, कुंठजउं, धंवूल, धव, खदिर, खंज की ठाल, पान, सोपारी, हिंयुलाष्टक, हिंयु, त्रेवीसउं, पंचकूल, पुष्करमू खं, जयासामूल, वावची, तुलसी, कपूरिकंदादिक, जीरा. यह सर्व ज्ञाप्य अरु प्रवचनसारोद्धारादिक ग्रंथोंके लेखसें स्वादिम नामक आहार है, अरु कदपशुत्तिमें उनकूं खादिम लिखा है. कोष्क अजवयनकोंजी खादि म कहते हैं. यह मतांतर है, यह सर्व स्वादिम नामक आहार है, तथा एलायची कर्पूरादि वासित जल द्विविध आहार प्रत्याख्यानमें पीनां क दपता है, तथा वेशण, सौंफ, सोय, कोठवनी, आमलागांठ, आंवकी गुटली, निंबूके पत्र प्रमुख खादिम होनेसें द्विविध आहार प्रत्याख्यानमें नहीं कदपते हैं. अरु त्रिविध आहार प्रत्याख्यानमें तो जलही पीनां क दपता है, तिसमेंजी फुंकारा हुआ पाणी, साकर, कर्पूर, एलायची, कछा, खदिर, चुर्णक, सेलक, पारुलादि वासित जल, जे कर नितार अरु गान के लेवे तो कदपे, अन्यथा नहीं.

तथा शास्त्रोंमें मधु, गुरु, साकर, खंभादिजी स्वादिम कहे हैं. अरु झाडा, शर्करादि, जल, तक्र, ठाठादिकां पानक कहे हैं. तोजी द्विविध आहार प्रत्याख्यानमें नहीं कदपते हैं ॥ उक्तं च नागपुरीय गद्यकी करी दूइ प्रत्याख्यानज्ञाप्यमें ॥ दस्का पाणाईयं, पाणं तद् साश्मं गुमाईयं ॥ पठियं

सुयंमि तद्वि हु. तिचीजणगंति नायरिअं ॥ १ ॥ स्त्रीके साथ जोग करनेसे चौविहार जंग नहीं होता है, परंतु चालकके तथा स्त्रीके होठ मुखमें ले कर चर्वण करे. तो जंग होवे, अरु द्विविध आहार प्रत्याख्यान में यहजी करे तो जंग नहीं होता, प्रत्याख्यान जो है सो कवल आहारका है, परंतु रोम आहारका नहीं है. इस वास्ते लेपादि करनेसे जंग नहीं.

तथा उत्तनी वस्तु किसी आहारमेंजी नहीं है उसका नाम लिखते हैं. पंचांग नींव, गोमूत्र, गलोय, कसु, चिराइता, अतिविष, कुडेकी ठाल, चीरु, चंदन, राख, हरिद्रा, रोहणी, उपलोटा, वज, त्रिफला, बांडूँकी ठिल्लक, धमासा, नाहि, आसंध, रिंगणी, एलुवा, गुगल, हरनां, ढाल, कर्पासकी जड़, जारु, वेही, कंथेरी, करीर, इनकी जरु, पुंआड, बोहोरी, आठि मंजीठ, बोल, बीउकाष्ठ, कुंआर, चित्रक, कुंदरु प्रमुख जो वस्तु खानेमें अनिष्ट लगे, वो सर्व अनाहार है. यह अनाहार वस्तु रोगादिक प्रमें चौविहार प्रत्याख्यानमेंजी खा लेवे, तो जंग नहीं. इस तरें आहारके जेद जानके प्रत्याख्यान करे.

पीठें मलोत्सर्ग, दंतधावन, जिह्वाखेखन, कुरला करनां, यह सर्व देश ज्ञान करके पवित्र होवे, यह कहनां अनुवाद रूप है. क्योंकि यह पूर्वा क कर्म सवेरे उठके प्रायः सर्व गृहस्थ करते हैं, इसमें शास्त्रोपदेशकी अपेक्षा नहीं. स्वतःही सिद्ध हैं. परंतु इनकी विधि शास्त्र कहता है, उसमें प्रथम मलोत्सर्ग विधि यह है. कि मलोत्सर्ग मौनसे करनां चाहियें. सो निर्दूषण योग्य स्थानमें करे ॥ यत उक्तं विवेकविलासग्रंथे ॥ मूत्रोत्सर्ग मलोत्सर्ग, मैथुनं स्नानजोजने ॥ संध्यादि कर्म पूजा च. कुर्याज्जापं च मौनवान् ॥ १ ॥ अर्थः— मूतना, दिसा फिरनां, मैथुन करनां, स्नान, जोजन, संध्यादि कर्म, पूजा, जाप, यह सर्व मौनपणे करने तथा दोनो संध्या वस्त्र पहिरके करे. तथा दिनमें उत्तरके सन्मुख मुख करके, अरु रात्रिकों दक्षिणदिशि सन्मुख मुख करके लघु शंका उच्चार करे. तथा सर्व नक्षत्रोंका तेज सूर्य करके जब त्रष्ट हो जावे, जहां तक सूर्यका आधा मांरला उगे, तहां तक सवेरेकी संध्या करणी, तथा सूर्य आधा अस्त होवे, तद् पीठें दो तीन नक्षत्र जहां तक नजर न पड़े, तहां तक सायंकाल कहते हैं. तथा राखका ढेर, गोवरका ढेर, गौके बैठनेके स्थानमें, सर्पकी बंवी ऊपर तथा

जहां बहुत लोग पुरीपोत्सर्ग करते हों, तथा उत्तम वृक्ष के देठ, रस्ते के वृक्ष देठ, तथा रस्ते में, तथा सूर्य के सन्मुख, तथा पाणी की जगामें, तथा मसाणों में, तथा नदी के कांठे उपर, तथा जिस जगहों स्त्री पूजती होवे, इत्यादि स्थानों में मलोत्सर्ग न करे. परंतु जहां बैठने से कोढ़ मार पीट न करे, पकड़ने से न ले जावे, धर्म की निंदा न होवे, तथा जहां बैठने से गिरे, फिसले नहीं, पोखी जूमि न होवे, मासादि न होवे, त्रस जीव बीज न होवे, इत्यादि उचित स्थान में मलोत्सर्ग करे, गाम के तथा किसी के घर के समीप मलोत्सर्ग न करे, तथा जिस तर्फ से पवन आती होवे, तथा गाम की सूर्य की पूर्व दिशिके तरफ पीठ करके मलोत्सर्ग न करे. दिसा श्वर मूत्र का वेग रोकना नहीं, क्योंकि मूत्र का वेग रोकने से नेत्रों में हानी होती है, तथा दिसा का वेग रोकने से काल हो जाता है. तथा व मन रोकने से कुछ रोग हो जाता है, जेकर ये तीनो बात न होवेगी तो रोग तो जरूर हो जावेगा, श्लेष्मादि करके ऊपर धूलि गेर देवे, क्योंकि श्रीप्रहापनोपांग के प्रथम पद में लिखा है, कि चौदह जगें समूष्टि म जीव उत्पन्न होते हैं, सो चौदह स्थानक कहते हैं, १ पुरीप में, २ मूत्र में, ३ मुख के धूक में, ४ नाक के मैल में, ५ बमन में, ६ पित्तों में, ७ वीर्य में, ८ वीर्य रुधिर दोनों में, ९ राध में १० वीर्य का पुनल अलग निकल पड़े उस में, ११ जीव रहित क्लेश्वर में, १२ स्त्री पुरुष के संयोग में, १३ नगरी की मोरी में, १४ सर्व अशुचि स्थान में, कान की मैल, आंख की गीम में, काख की मैल प्रमुख में, यह सर्व चौदह बोल मनुष्य के संसर्ग वाले ग्रहण करणें, श्वर जब शरीर से अलग होवे, तब जीव उत्पन्न होते हैं.

तथा दातनजी निरवय स्थान में करे, दातण अचित्त जाने हुए वृक्ष की कोमल करे, तथा दांतों के दृढ करने वास्ते तर्जनी अंगुली करके दांतों की बीड घसे, जो दांतों की मैल पड़े, उसके ऊपर धूलि गेर देवे, तथा दातणजी कैसे करे जो दातण सूधी होवे, बीच में गांठ न होवे, कूर्च श्वा होवे, आगे से पतली होवे, चेंटी अंगुली समान मोटी होवे सुजूमि की उत्पन्न होइ होवे, ऐसी दातण कनिष्ठा अनामिका के बीच ले कर करे, प हिंसा दाहिनी दाढा घसे, फेर वामी घसे, उपयोग वंत स्वस्थ, दांत श्वर पीठ के मांसकों पीका न देवे, उत्तर तथा पूर्व सन्मुख करके निश्चलासन,

मौन युक्त दातण करे, दुर्गंध, पोखी, सूखी, खट्टी, खारी, वस्तु दांतकों न घसे, तथा, व्यतीपात, रविवार, संक्रांति दिनें ग्रहण लगेमें, नवमी, अष्टमी, पडवा, चौदश, पूर्णमासी, अमावस, इन दिनोंमें दातण न करे, जे कर दातण न मिले, तब मुखशुद्धिके वास्ते बारां कुरसे करे, अरु जिह्वा उल्लेखन तो सदा करे, दातणकी फांकसे जिह्वाका मेस हसवे ह सवे सर्व उतारके शुचिस्थानमें दातण धो करके आपणे मुखके सामने गेरे, तथा खांसी, श्वास, तप, अजीर्ण, शोक, तृषावाला मुख, पकेवाला, मस्तक, नेत्र, हृदय, कान, इतने रोग वाला, दातण न करे.

मस्तकके केशोंकों सदा समारे, जिस्में जूथां न पडे, जे कर तिस्रक करके आरीसा देखे, उसमें मुख नहीं दीखे, सिर नहीं दीखे, तो पांच दिनके अंदर उसका मरना जाननां. अरु जिसने उपवास पौरुष्यादिक प्रत्याग्यान करा होवे, वो दांत धोया बिनाजी शुरू हें, क्योंकि तपका बना फल हें, लौकिक शास्त्रोंमेंजी उपवासादि करे, तो दातण बिनाही देवपूजा करते हें, इस वास्ते लौकिक शास्त्रोंमेंजी उपवासादिमें दातण करनेका निषेध हें ॥ यदुक्तं विष्णुजकिचंजोदयग्रंथे ॥ प्रतिपदाशेषधीपु, मध्यांते नवमीतिथौ ॥ संक्रांति दिवसे प्राप्ते, न कुर्यादंतधावनं ॥ १ ॥ उपवासे तथा ध्राऊ, न कुर्यात् दंतधावनं ॥ दंतानां काष्ठसंयोगो, दंति सप्त कुष्ठानि वै ॥ २ ॥ इत्यादि.

तथा जब स्नान करे, तब उत्तिंग पनक कुंथुआदि जीवोंमें रहित जू मिमें करे, तो जू मि उंची, नीची, पोखी, न होवे, प्रथम तो उष्ण प्राश्रक जलसे स्नान करे, जेकर उष्ण जल न मिले, तब बरससे स्नान करके प्रमाण संयुक्त शीतल जलसे स्नान करे, तथा व्यवहार शास्त्रमें ऐसा लिखा हें, कि:-नम हो कर तथा रोगी तथा परदेशसे आया दृष्ट्या नोजन करे पीठें आरूपण पहरेके किसीकों विदा करके पीठें आ करके मंगल कार्य करके स्नान न करे, तथा अन्नजाने पानीमें, दुप्प्रवेश जलमें मेसे जलमें, दृष्टों करके आछादित जलमें, शैबल करके आछादिन जल में स्नान न करे, तथा शीतल जलमें स्नान करके उष्ण नोजन न स्नानां चाहिये, अरु उष्ण जलमें स्नान करके शीतल नोजन न स्नानां चाहिये, तैसनर्शन सदाही करनां चाहिये, तथा स्नान करदां पीठें जिनकी जांति फीकी दीति तथा जिनके दांत परन्दर पने, अरु शरीरमें नृतक केनी

गंध आवे, तिसका मरण तीन दिनके अंदर होगा, तथा स्नान कक्षां पीठें जिसके हृदयमें, तथा दोनों पगोंमें तत्काल पाणी शोष जावे, तब ठे दिनोंके बीच उसका मरण जाननां. मेशुन सेवकें तथा वसन करकें इन दोनोंमें कतुक देर पीठें स्नान करे, तथा मृतककी चिताके धूम लगनेसें मस्तक मुं डवा करकें, ठाने दूये शुद्ध जलसें स्नान करे, तथा तेलमर्दन करी स्नान कक्षां पीठें उज्ज्वल वस्त्र आचरण पहिरनां. पिठें प्रयाण करनेके दिनमें संग्राममें जातां हूआ, विधामंत्र-साधतां, रातकों, सांझकों, पर्वदिनमें नवमे दिनमें स्नान न करे, मस्तक मुंरुनजी न करावे, तथा पक्षमें एक बार दाढी मस्तकके केश तथा नख झूर करावे, परंतु अपणे दांतों करी तथा अपणे हाथ करकें नख न कतरे, स्नान करनेसें शरीर पवित्र चैतन्यसुख कर जाव शुद्धिका हेतु हो जाता है ॥ उक्तं च द्वितीये अष्टकप्रकरणे ॥

श्लोक ॥ जलेन देहदेशस्य, क्षणं यदुद्धिकारणं प्रायोऽन्यानुपरोधेन, अव्यस्नानं तदुच्यते ॥ १ ॥ अर्थः— देहदेश स्वचामात्रहीकी क्षणमात्र शुद्धि है, परंतु प्रभूत काल नहीं शुद्धि जो है, सोजी प्रायें हैं, कुठएकांत नहीं है, क्योंकि अतिसारादि रोग वालोंको क्षण मात्रजी शुद्धि नहीं हो सकती है, धोने योग्य मैलसें अन्य दूसरा मैल नासिकादि अंतर्गत जो है, सोजी स्नानसें झूर नहीं होता है, अथवा पाणी बिना और जीवोंकी हिंसा न करनेसें जो स्नान है, सो बाह्य स्नान है, जो पुरुष स्नान करकें जगवानकी तथा साधुकी पूजा करे, तिसका स्नानजी अष्टा है, क्योंकि जावशुद्धिका निमित्त है, स्नान करनेमें अपकायके जीवोंकी विराधनाजी है, तोजी सम्यग्दर्शनकी शुद्धि रूप गुण हैं ॥ यदुक्तं ॥ पूष्टाय कायवहो, पडिकुष्ठो सोढ किंतु जिणपूष्ट्या ॥ सम्मत्त सुद्धिहेठ, त्तिजावणीयाउं निरवज्जा ॥ १ ॥ अर्थः— कोइ कहते हैं कि पूजा करनेसें जीववध होता है, अरु जीववध तो शास्त्रमें निषेध करा है. इस वास्ते पूजा न करणी चाहियें. इसका उत्तर कहतें हैं, कि पूजा जो जिनराज की है, सो सम्यक्त्व निर्मल करने वाली है, इस वास्ते जिनपूजा निरवय है. ऐसे देवपूजाके वास्ते गृहस्थकों स्नान करनां कहा है, तथा शरीरके चैतन्य सुखके वास्तेजी स्नान है. परंतु जो स्नान करनेमें पुष्ट मानतें हैं. सो वात मिथ्या है. क्योंकि जो कोइ तीर्थमेंजी जान कर स्नान

करता है, तिसकोंजी शरीर शुद्धिके शिवाय और कुछ फल नहीं होता है यह बात अन्यदर्शनके शास्त्रोंमेंजी कही है ॥ उक्तं च ॥ स्कंदपुराणे काशी खंडे षष्ठाध्याये ॥ श्लोक ॥ मृदोजारसहस्रेण, जलकुंजशतेन च ॥ न शुद्ध्यन्ते दुराचाराः, स्नानतीर्थशतैरपि ॥ १ ॥ जायन्ते च म्रियन्ते च, जलेष्वेव जलौकसः ॥ न च गच्छन्ति ते स्वर्गं, मविशुद्धमनोमला ॥ २ ॥ चित्तं स माधिजिः शुद्धं, वदनं सत्यजापणैः ॥ ब्रह्मचर्यादिजिः कायः, शुद्धोगंगाविनाप्यसौ ॥ ३ ॥ चित्तं रागादिजिः क्लिष्टं, मलीकवचनैर्मुखं ॥ जीवहिंसादिजिः कायो, गंगा तस्य पराद्मुखी ॥ ४ ॥ परदारपरद्रव्य परद्रोहपराङ्मुखः ॥ गंगाप्याह कदागत्वं मामयं पावयिष्यति ॥ ५ ॥ जलसे स्नान करनेसे अतन्त्र जीवोंकी विराधना होती है, इस वास्ते पुण्य नहीं है, जलमें जीवोंका होना मीमांसा शास्त्रसेजी सिद्ध होता है. यदुक्तं उत्तरमीमांसायां ॥ श्लोक ॥ वृतात्पतंतुगलिते, ये क्षुद्राः संति जंतवः ॥ सूक्ष्मा ब्रमणास्ते, नैव यांति त्रिविष्टपं ॥ १ ॥ इत्यादि.

किसीके स्नान करनेकी जे कर गुमडादिमेंसे राधादि श्रवे, तदा तिसने अंगपूजा फूलादिकसे आप नहीं करनी, दूसरोंसे करावे. अरु अग्रपूजा तथा जावपूजा आपनी करे, तो कुछ दोष नहीं, योनासानी अपवित्र होवे, तब देवका स्पर्श न करे, तथा स्नान कल्या पवित्र मृदु, गंध, काषायिकादि वस्त्र, अंगदहणां, पोतीयां ठोर करके पवित्र वस्त्रांतर पहिरनेकी शुक्तिसे पाणीके जीजे पगोसे धरतीको अस्पर्शता हुआ पवित्र स्थानमें आ करके उत्तर सन्मुख मुख करके अष्टी तरें मनोहर नवा वस्त्र जा फाटा हुआ तथा सिवाया हुआ न होवे, अरु वर्णमें धवला होवे, श्वेता वस्त्र पहिरे, तथा जिस वस्त्रको कटिमें पहिरा होवे, तथा जिस वस्त्रसे दत्ता गया होवे, तथा जिस वस्त्रसे मैथुन सेव्या होवे, तिस वस्त्रको पहिरके पूजादि न करे, तथा एक वस्त्र पहिरके जोजन तथा देवपूजादि न करे, तथा स्त्री, कंबुकी बिना पहने देवपूजा न करे, इस रीतिसे पुरुष को दो वस्त्र तथा स्त्रीको तीन वस्त्र बिना पूजा करनी नहीं कल्पे है, देव पूजामें धोती अतिविशिष्ट धवली करनी चाहिये, निशीथचूर्णी तथा श्राद्धदिनकृत्यादि शास्त्रोंमें ऐसाही लिखा है, तथा पूजा पुरुषमें श्वेतानी लिखा है, कि रेशमी आदिक जो सुंदर वस्त्र लाल पीला होवे;

सोजी पूजामें पहिरे तो ठीक है, तथा “एगसानियं उत्तरासंगं करेइ इ
 त्यादि आगमके प्रमाणसे उत्तरासंग अखंरु वखका करे, दो ठुकडे सीया
 वख न करे, तथा रेशमी कपडेसें जोजनादि करे, अरु मनमें समके कि
 यह तो सदा पवित्र है, तोजी तिस्सें पूजा न करे. तथा जिस वखको प
 हिरके पूजा करे, उसकोजी वारंवार पहिननेके अनुसार धोवावे, धूप दे
 कर पवित्र करे, धोती योकाही काल तक पहननी चाहियें, उस धोतीसें
 पसीना श्लेष्मादि न झूर करना चाहियें. क्योंकि उस्सें अपवित्रता हो
 जाती है, तथा पहिने हुए वखोंके साथ पूजाके वख बुढाने (अडाने)
 नहीं चाहियें, दूसरायोंकी पहनी हुई धोती पहननी न चाहियें, तथा
 पात्र, गृह, स्त्रीके पहननेमें आइ होवे, तो विशेष करके न पहननी चाहि
 यें, तथा जसे स्थानसें ज्ञातगुण, सुमनुष्य पासों पवित्र जाजन आग्राह
 नसंयुक्त रस्तेमें सानेकी विधिसंयुक्त पाणी अरु फूल, पूजा वास्ते मंगाव
 ने चाहियें. अरु फूलादि साने बाखेकों अच्छी तरें मोल दे कर प्रसन्न कर
 ना चाहियें, ऐसे मुखकोश बांध के पवित्रस्थानादि युक्तिसें जिसमें कोइ
 जीव पडा न होवे, ऐसा शोष्या हुआ केशर कर्पूरादिकसें मिश्र, चंदन घसे,
 शोष्या हूया सुंदर धूप, प्रदीप, अखंड चायखादि वृत्त रहित प्रशंसा करनें
 योग्य ऐसा नेवेद्य फलादि सामग्री मेखके इस रीतें अव्यसें शुचि करके
 अरु जावसें शुचि तो राग, छेप, कपाय ईन्पां रहित तथा इस लोक पर
 लोकके सुखोंकी इशा रहित हो कर अरु कुतूहल चपलादि त्याग करके
 एकाग्र चित्तनारूप जावशुद्धि करे ॥ उक्तं च ॥ श्लोक ॥ मनोवाकायमग्रीं,
 पूजोपकरणस्थितः ॥ शुद्धिः सप्तविधा कार्या, श्रीथर्हत्पूजनदण्डे ॥ १ ॥

ऐसे अव्य जाव करके शुद्ध हो कर जिनघर (दिहरेमें) दक्षिण दिशें पुण्य,
 अरु वामा दिशें स्त्री, यत्र पूर्वक प्रवेश करे, प्रवेशके अवसरमें दक्षिण पग
 पहिछां धरे, पीठें सुगंध बाखे मीठे सरस अव्यों करके पराद्मुख गामानर
 चखते मोनसें देवपूजा करे. इत्यादि तीन नेपथिकी करण, तीन प्रदक्षिणा,
 इत्यादि विधिमें शुचि पाट ठपर पद्मासनादि मुग्धासन पर बैठके, चंदनरा
 जाजनमें चंदन खे कर हूमरी कटोरीमें तथा हृथेसीमें खे कर मग्नहमें
 तिष्ठक करके ह्मनहंका, श्रीचंदनचर्चिन भूषित, हायां करी जिन अर्ध
 नको पूजेके आगे स्थिते हैं जो १ अंगपूजा, २ अग्रपूजा, ३ नारा

जा. तिनोमें पूजकें प्रत्याग्यान जो पूरे करे था. सो यथाशक्ति देवकी साक्षिमें उच्चारण करे, नद पीठें विधिमें बड़े पंचायती मंदिरमें जा कर पूजा करे. सो इस विधिमें करे.

यदि राजादि महर्षिक होवे, सो तो सर्व इन्द्रि, सर्वदीप्ति, सर्वयुक्ति, सर्वसेन्या. सब उद्यममें जिनमनकी प्रभावना वारते महा आठंबर पूर्वक जिनमंदिरमें पूजा करनेको जावे, जमें दशार्णजड़ राजा श्रीमहावीर नग बंतकों वंदना करने गया था तमें जावे.

अन जो सामान्य इन्द्रिवाला होवे. सो अजिमान रहित लोकोपद्वा न्य त्यागकें यथायोग्य आठंबर जाड. मित्र. पुत्रादिकोंमें परिश्रुत हो कर जावे. अतें जिनमंदिरमें जा कर १ पुष्प, नंदोद, नरस, दुर्वादि त्यागे, तथा २ हरी, पापटी, मुकुट, हाथी प्रमुख सचिनाचिन वस्तु शरीरके जोग पी त्यागे, तथा ३ मुकुट चर्कें दोष आचरणादि अचिन वस्तु न त्यागे, अन एक घटे वस्त्रका उत्तरामंग करे. ४ जिनेश्वरकी मूर्ती दीये अंजलि बांधकें मस्तक उपर घटाकें 'नमो जिष्णो' अना कहे. ५ मन एकाग्र करे, इस रीतसे पांच अजिगम संज्ञाकें (सायके) नैपेधिकी पुर्वक प्रवेश करे.

जे कर राजा जिनमंदिरमें प्रवेश करे. तब तत्काल राजचिन्ह छूर करे, १ तलवार, २ छत्र, ३ श्वसवारी. ४ मुकुट, ५ चामर. ये पांचो चिन्ह रा जाके त्यागे, अग्र द्वारमें प्रवेश करतां घर व्यापारका निषेध करने वास्ते नैपेधिकी तीन करे, परंतु तीनों निस्तहीकी एक नैपेधिकी गणतीमें करणी, क्योंकि एकही घर व्यापार एककाही निषेध कीया है. तद् पीठें मूल विंयको नमस्कार करके सर्व कृत्य, कल्याणवांछक पुरुषने दक्षिणके पास करणां, इस वास्ते मूलविंयको दक्षिणके पास करता हृत्था ज्ञान, दर्शन, अरु चारित्र, इन तीनोंके आराधनार्थ प्रदक्षिणा तीन देवे, प्रदक्षिणा देता हृत्था समवसरणस्य चाररूप संयुक्त जिनेश्वरजीको ध्यावे, गंतारेमें पूर्वे वामा दक्षिणा दिशिमें जो विंय होवे, तिनको वंदे, इस वास्ते सर्व मंदिर में चारों तर्फ समवसरणके आकारें तीन तर्फ तीन विंय स्थापे जाते हैं, अतें करनेसे जो अरिहंतकी पीठें वसणेमें दोष था, सो दूर हो गया, पीठ किसी पासंजी न रही, तिस पीठें चैत्यप्रमार्जनादि जो आगे लिखेंगे सो करे. पीठें सर्व प्रकारकी पूजा सामग्री प्रत्ये तथा देहराके समारनेके कामके

निषेध करने वास्ते दूसरी मुखमंरूपादिकमें नेपेधिकी करे, पीठें मूखविंघ को तीन प्रणाम करके पूजा करे, जाप्यकारनेंजी ऐसा कहा है, कि निस्सही तीन करके प्रवेश करी मंडपमें जिनेश्वरके आगें धरती उपर स्थापन कर के, हाथ गोडे करे, विधिसें तीन बार प्रणाम करे, तिस पीठें हर्षसे उद्धास हो करके मुखकोश बांध करके जिन प्रतिमाका निर्माह्य, फूल प्रमुख मोर पीठी करके डूर करे, जिनमंदिरका प्रमार्जन थाप करे, अथवा थोरोसें क रावे, पीठें जिनविंघकी पूजा विधिसें करे, मुखकोश आठ पुरुका करे, जि स्सें नासिका अरु मुखका निःश्वास निरोध होवे, वर्षातमें निर्माह्यमें कुंयुआ दि जीवजी होते हैं इस वास्ते निर्माह्य अरु स्नात्र जल न्यारा न्यारा पवित्र स्थानमें गेरे, गिरावे, ऐसें आशातनाजी नहीं होती है. पूजा कलश ज लसें करता हूआ ऐसी जावना ह्यावे, सो लिखते हैं.

हे स्वामिन् ! बालपणेमें मेरु शिखर पर सुवर्णकलशें करी इंद्र देवताने स्नान कराया था, सो धन्य थे, जिनोनें तुमारा दर्शन करा था, इत्यादि चिंतवणा करके पीठें सुयलसें बालाकूंचीसें जिनविंघके अंग उपरसें चंद नादि उतारे, पीठें जलसें प्रक्षालन करके दो अंगलूहणसें जिनप्रतिमाकों निर्जल करे, पग, जानु, कर, मस्तके पूजा यथाक्रमसें नव अंगमें श्रीचंद नादि करके चर्चे, (पूजे) कोई आचार्य कहते हैं, कि पहिला मस्तकमें तिस क करके पीठें नवांग पूजा करणी, श्रीजिनप्रज्ञसूरिकृत पूजाविधि ग्रंथमें ऐसा लिखा है, किः—सरस सुरिजि चंदन करी देवके, दाहिण जानु, दाहि ण स्कंध, निलारु, वामा स्कंध, वामा जानु, इसक्रमसें पूजा करे, हृदय प्रमुख में पूजा करे, तब नव अंगकी पूजा होती है, अंगोंमें पूजा करके पीठें सरस पांच वर्णके प्रत्यग्र फूलों करके चंदन सुगंध वास करी पूजे, जे कर पहिला किसीने बडे मंमाणसें पूजा करी होवे, अरु अरणे पास बेसी सामग्री पूजा की न होवे, तब पहिली पूजा उतारे नहीं, क्योंकि विशिष्ट पूजा देखनेसें जव्योंको जो पुण्यानुबंधी पुण्य होता था, तिसकी अंतराय हो जाति हैं किंतु तिस वास्ते तिसी पूजाको शौचनिक करे, यह कथन बृहज्जाप्यमें है.

तथा जो पूजा उपर पूजा करणी, सो निर्माह्यके लक्षण न होनेसें निर् माह्य नहीं, जो जोगविनष्ट अव्य है, सोइ निर्माह्य गीतायोंने कहा है, आरू पण बारं बार पहराये जाते हैं, परंतु निर्माह्य नहीं होते हैं, नहीं तो गंध,

कपाय वस्त्र, करके एक सौ आठ जिनप्रतिमाके अंग क्यों कर सूद्धे ? इस वास्ते जिनविंवारीपित जो वस्तु, शोजा रहित सुगंध रहित दीख पड़े, अरु नव्य जीवोंको प्रमोदका हेतु न होवे, तिसहीको बहुश्रुत निर्माद्य कहते हैं। यह कथन संघाचारवृत्तिमें लिखा है, चढे दूये चावला दि निर्माद्य नहीं, कोइ आचार्य निर्मायनी कहते हैं, तत्त्व केवली जाणे क्यों कर हैं ?

चंदण फूलादि पूजा तेसे करणी, जैसे जगवानके नेत्र मुखादि ढके न जावे, अरु बहुत शोजनिक दीखे जिस्ते देखने वालोंको प्रमोद पुण्यादिकी वृद्धि होवे.

तथा १ अंगपूजा, २ अग्रपूजा, ३ जावपूजा, यह तीन प्रकारकी पूजा हैं, तिनमें जो निर्माद्य छूर करनां, प्रमार्जना करनां, अंग प्रक्षालन करनां, वाजकुंचीका व्यापारण, पूजना, कुसुमांजलिमोचन, पंचामृतस्नान, शुद्धोदकधारा देनी, धूपित स्नान मृदुगंध कपायकादि वस्त्रसे अंगसुद्धण करनां कर्पूर कुंडुमादि मिश्र गोशीर्षचंदन विलेपन अंगी रचनी, तथा गोरोचन कस्तूरीसे तिलक करणां, पत्र, वेल, फूल प्रमुखकी रचना करनी, बहुमोल रत्न सुवर्ण मोती रूपे पुष्पादिकें आचरण (अलंकार) पहिरावे, जैसे श्रीवस्तुपालने अपने कराये दूये सवालरु विंवोंके तथा श्रीशत्रुंजयजीमें सर्व विंवोंके रत्न सुवर्णके आचरण कराये ये, तथा दमयंतीने पिठले जवमें अघापद पर्वतपर चौबीस अर्हंतोंके तिलक कराये होते, क्योंकि प्रतिमाजी की जितनी उल्लूख सामग्री होवे, उतनेही अधिक नव्य जीवोंके शुभ जावोंकी वृद्धि होती है. तथा पहरावणी, चंद्रवादि विचित्र डुकूलादि वस्त्र पहिरावे, तथा १ ग्रंथिम, २ वेष्टिम, ३ पूरिम, ४ संघातिम रूप, चतुर्विध प्रधान अन्धान विधिसे व्याया दूआ शतपत्र, सहस्रपत्र, जाइ, केतकी, चंपकादि विशेष फूलों करी माला, मुकुट, सेहरा, फूलधरादिककी रचना करे. तथा जिनजीके हाथमें बिजोरा, नाखियर, सोपारी, नागवल्ली, मोहोर, रूपइया, लड्डु प्रमुख रत्ननां. अरु धूपद्वेष, सुगंध, वासप्रक्षेपादि, यह सर्व अंगपूजाकी गिणतीमें है. महाजाप्यमेंजी कहा है ॥ गाथा ॥ न्हवण विखेव आहरण, वठ फल गंध धूप पुष्फेहिं ॥ कीरइ जिणंगपूया, तव विही एत नायवो ॥ १ ॥ वनेण वंधिणणा, सं अहवा जहा समाहीए ॥ व

कहते हैं, ४ फूलकी वृष्टि करतां जो मासाधर देवता है, तिसका रूप पंचतीर्थके ऊपर बनाते हैं, जिनप्रतिमाकों न्दवण करतां पहिसां मासाधरकों पाणी स्पर्शके पीठें जिनविंव ऊपर पकता है, सो दोष नहीं है, यह वृक्षोंकी आचरणा है, इसी तरें चौबीसी गट्टे आदिकमेंजी जान सेनां प्रयोंमेंजी ऐसी रीति देखनेमें आती है ॥ वृद्धज्ञाप्येप्युक्तं ॥ जाप्यकार का कहनां यदां सिखते है? जिनराजकी इच्छि देखने वास्ते कोइ जक्त जन एक प्रतिमा बनवाता है, प्रगटपणे अष्ट प्रातिहार्य देवागमसुशोभित. २ दर्शन, ज्ञान, चारित्र्यकी आराधना वास्ते कोइ तीन तीर्थी प्रतिमा बनवाता है. ३ कोइ जक्त पंचपरमेष्ठिके आराधनार्थ उद्यापनमें पंचतीर्थी प्रतिमा जराता है. ४ चौबीस तीर्थंकरोंके कल्याणक तप उजमने वास्ते जगत क्षेत्रमें जो रूपजादि चौबीस तीर्थंकर दूए हैं, तिनके बहुमान वास्ते कोइ चौबीसी बनवाता है, कोइ जक्ति करके मनुष्य लोकमें उत्कृष्टे एक कालमें एक सो सित्तेर तीर्थंकर विहरमानकी एक सो सित्तेर प्रतिमा बनवाता है, तिस वास्ते तीन तीर्थी, पांचतीर्थी, चौबीसी आदिकका बना नां युक्ति युक्त है, यह पूर्वोक्त सर्व अंगपूजा हैं.

अयापपूजा विन्यते ॥ रूपके, मुखके, चावल धवला सरसव प्रमुख अङ्गनों करके अष्टमंगल आसेखन करे, जेसैं सेनिकराजा रोजकी रोज एक सो आठ सोनेके बवां करी त्रिकाक्ष जगवान्की प्रतिमा आगें सा थीया करना या, अथवा ज्ञान, दर्शन, चारित्र्यकी आराधनाके वास्ते क मसैं पदादिकमें चावलके तीन पूंज करणे, तथा एक जातप्रमुख अशन, हस्तग सकर गुनादि पान, नीसरा पकात्र फलादि खादिम, चौथा तंयोलादि स्वादिम, इनका चढानां, तथा गोभीपे चंदनके रस करी पंचांगुली तंत्रमें मीथ आसेखनादि पुष्पप्रकर आरती प्रमुख करणी, यह सर्व अयपूजाही गिणतीमें है ॥ यन्नायं ॥ गाथा ॥ गंधर्व नट वाइय, खण जलारनिधाइ दीनाइ ॥ जं किञ्च सत्रं पिठं, अग्नि अग्ग पूयाण ॥ १ ॥ नेवेद्यपूजा तो दिन दिन प्रत्ये करणी सुग्रासी है, अरु इसमें फलनी मोटा है, कोरा अन्न सादीन तथा रांवा दूआ चढावे. शौचिक शास्त्रोंमेंती विन्या है ॥ श्लोक ॥ पूरा दद नि पानानि, दीशे मृत्युर्विनाशकः ॥ नेवेद्यं त्रिपुखं राग्यं, सिद्धिदात्री प्रददि ए ॥ २ ॥ नेवेद्यका चढानां, आरति करणी प्रमुख आगममेंती विन्या

है, “कीरङ्गवलि” ऐसा पाठ आवश्यक निर्युक्तिमें है, तथा निशीथचूर्णी में जी वलि चढ़ानी लिखी है, तथा कल्पनाप्यमें जी लिखा है, कि जो जिन प्रतिमाके आगे चढ़ाने वास्ते नैवेद्य करा है, सो साधुको न कट्ये, तथा प्रतिष्ठाप्राप्तसे रची श्रीपादलिखित आचार्यकृत प्रतिष्ठापद्धतिमें जी लिखा है, कि आरति उतारणी, मंगलदीवा करके पीठें चार स्त्री मिल कर नैवेद्य, गीतगान, विधिसें करे ॥ तथा च महानिशीथे तृतीये अध्ययने ॥ अरिहंताणं जगवंताणं गंधमह्य पद्म समज्जाणोवलेखण विचित्त वलि वत्त धूवईएहिं पूआ सकारेहिं पइदिणमच्चणं पि कुवाणा तिष्ठुपणं करेमोत्ति ॥ इति अग्रपूजा ॥

जावपूजा जो है, सो अव्यपूजाका जो व्यापार है, तिसके निषेधने वास्ते तीसरी निस्तही तीन बार करे, श्रीजिनेश्वरजीके दक्षिणके पासे पुरुष अरु वामी दिशा स्त्री रह कर आशातना टालने वास्ते जघन्य मंदिरमें जूमिके संजव हुए नव हाथ प्रमाण अरु घर देहरेमें जघन्य एक हाथ प्रमाण अरु उत्कृष्टमें तो साठ हाथ प्रमाण अवग्रह है, तिस्सें बाहिर बैठके चैत्यवंदना, विशिष्ट काव्यों करके करे, श्रीनिशीथमें तथा वसुदेवहिंनमें तथा अन्यशास्त्रोंमें श्रावकोंमें जी कायोत्सर्ग धुइ आदि करी चैत्यवंदना करी है, सो चैत्यवंदनाजी तीन तरकी जाप्यमें कही है. सो कहते हैं. एक तो जघन्य चैत्यवंदना, सो अंजलि बांध कर शिर नमा कर प्रणाम करणां, यथा ‘नमो अरिहंताणं’ इति अथवा एक श्लोकादि पदके नमस्कार करणी, अथवा एक शक्रस्तव पढ़े, तो जघन्य चैत्यवंदना होवे. दूसरी मध्यम चैत्यवंदना, सो चैत्यस्तवदंरक युगल ‘अरिहंत चेइयाणं’ इत्यादि कायोत्सर्गके पीठें एक स्तुति कहनी, यह मध्यम चैत्यवंदन है, अरु तीसरा उत्कृष्ट चैत्यवंदन सो पंचदंर, जो १ शक्रस्तव, २ चैत्यस्तव, ३ नामस्तव, ४ श्रुतस्तव, ५ सिद्धस्तव, प्रणिधान, जयवीराराय, इत्यादि यह सर्व उत्कृष्ट चैत्यवंदना है. तथा कोइ आचार्यका ऐसा मत है कि:- एक शक्रस्तव करी जघन्य चैत्यवंदना होती है, दो तीन शक्रस्तव करी मध्यम चैत्यवंदना होती है, तथा चार अथवा पांच शक्रस्तव करी उत्कृष्ट चैत्यवंदना होती है, इसकी विधि चैत्यवंदनजाप्यसें जान लेनी, यह तीन प्रकारकी चैत्यवंदना कही.

अब यह चैत्यवंदना नित्यप्रत्ये सात बार करणी, महानिशीथमें साधुको

कही है, तथा श्रावककोंजी उत्कृष्ट सात बार करणी कही है ॥ यज्ञाय ॥ एक प्रतिक्रमणमें, दूसरी मंदिरमें, तीसरी आहार करणसें पहिखां करणी, चौथी दिवसचरिमं करतां, पांचमी देवसी पन्तिक्रमणमें, ठठी सोती बखत, सातमी सूता उठे उस बखत. यह सात बार चैत्यवंदन साधुकों करणी कही है, तथा जो श्रावक आठों प्रहरसें प्रतिक्रमण करता होवे, वोतो निश्चयें सात बार चैत्यवंदन करे, दो प्रतिक्रमणमें दो चैत्यवंदन करे, तीसरी सोतां बखत, चौथी ऊठतां बखत, तथा तीन काल पूजा कस्यां पीठें, तीन बार, एवं सात बार श्रावक चैत्यवंदन करे, तथा जो श्रावक एकही बार पडिक्रमणां करे, सो ठे बार चैत्यवंदन करे, तथा जो पन्तिक्रमणां न करे. सो पांच बार चैत्यवंदन करे, तथा जो सूतां ऊठतां जी चैत्यवंदन न करे, सो तीन बार करे, जे कर नगरमें बहुत जिनमंदिर होवे, तदा सातसें अधिकजी करे, तथा जे कर त्रिकाल पूजा न कर सके, तो त्रिकाल देववंदना करे, क्योंकि महानिशीथमें लिखा है, कि:- जिसको गुरु प्रथम जैनमतकी श्रद्धा करावे, उसको प्रथम ऐसे नियम देवे कि:- सवेरेकी बखत जिन प्रतिमाका दर्शन करे बिना पाणीजी नही पीनां, तथा मध्यान्ह कालमें जहां तक देव, (जिनप्रतिमा) थरु साधुओं को वंदना न करे, तहां तक जोजन क्रिया न करे, तथा संध्याके समय चैत्यवंदन करे बिना शय्या उपर पग न देवे, ऐसा नियम करावे.

तथा गीत, नृत्य, जो थप्रपूजामें कहे हैं, सो जायपूजामेंजी धन सके हैं. सो गीत, नृत्य, मुख्यवृत्ति करिकें तो श्रावक थाप करे, जैसें निशीथनू णमें उदायनराजाकी राणी प्रतापतीका कथन है. तथा पूजा करणके अवसरमें श्रीअर्द्धनकी तीन अवस्थाकी कल्पना करे, उसमें ज्ञान करती बखत उदयस्य अवस्थाकी कल्पना करे, तथा आठ प्रातिहार्यकी शोभा करतां केवली अवस्थाकी कल्पना करे, तथा पर्यंकासन कायोत्सर्गासन देखके सिद्धावस्थाकी कल्पना करे, इसमें उदयस्य अवस्था तीन तरेकी कल्पे एक जन्मावस्था, दूसरी राज्यावस्था, तीसरी साधुपणकी अवस्था. तहां ज्ञानकी धम्यत जन्म अवस्था कल्पे, तथा माया, क्रुल, आतराण, पहिगा नेकी धम्यत, राज्यावस्था कल्पे, तथा दाडी, मूंठ, शिरके घासोंके न होनेमें साधु अवस्था धिचारे, इनमें साधु, केवली मोक्ष अवस्थाको वंदना करे.

तहां पूजा पंचोपचार सहित, अष्टोपचार सहित, अरु धनवान् होवे, त
दा सर्वोपचारसें पूजा करे, तहां फूल, अक्षत, गंध, धूप अरु दीपसें पूजा करे,
सो पंचोपचार पूजा जाननी. तथा फूल, अक्षत, गंध, दीप, धूप, नैवेद्य,
फल अरु जल, यह अष्टोपचार पूजा है, सो अष्टविध कर्मकी मथने वाली
है, तथा स्नात्र, विलेपन, वस्त्र, आज्ञापणादिक, फल, दीप, गीत, नाटक
आरति आदिक करे, सो सर्वोपचार पूजा है. इति बृहन्नाय्ये ॥

तथा पूजाके तीन जेद हैं. एक आपही कायासें पूजाकी सामग्री ल्यावे,
दूसरी वचनो करके दूसरोंसें मंगवावे, तीसरी मन करके जला फूल फल
प्रमुख करी पूजा करे, ऐसें काया, वचन अरु मन, यह तीनो योगों कर
के करे, करावे अरु अनुमोदे, यह तीन तरसें पूजा है.

तथा एक फल, दूसरा नैवेद्य, तीसरी धुइ, अरु चौथी प्रतिपत्ति, सो
वीतरागकी आज्ञापालन रूप, यह चार प्रकारें पूजा, यथा शक्तिसें करे.
ललितविस्तरादिक ग्रंथोंमें “पुषामिपस्तोत्र प्रतिपत्ति” अर्थात् फूल, नैवे
द्य, स्तोत्र, अरु आज्ञा आराधनीय, ये उत्तरोत्तर प्रधान हैं ॥ इत्यागमो
क्तं पूजाजेदचतुष्टयं ॥

तथा पूजा दो प्रकारकी है, एक डव्यपूजा, दूसरी जावपूजा, जो
फूला दिकसें जिनराजकी पूजा करणी, सो डव्यपूजा है, दूसरी श्रीजिने
श्वरकी आज्ञा पालनी, सो जावपूजा है. तथा पुष्पारोहणं गंधारोहणं इ
त्यादि सत्तरह जेदसें तथा स्नात्रविलेपनादि एकवीश जेदें पूजा है, परंतु
अंगपूजा, अग्रपूजा अरु जावपूजा, यह तीनों पूजा, सर्व पूजायोंके अंत
र्जाव हैं, तिनमें सत्तरह जेद, पूजाके लिखते हैं.

एक १ स्नात्र करनां, जिनप्रतिमाकों विलेपन करनां, २ चक्षुजोरु न,
सुगंध, ३ फूल चढाने, ४ फूलकी माला चढानी, ५ पंच रंगें फूल न,
६ वरास जीमसेनी प्रमुखका चूर्ण चढानां, ७ आज्ञारण चढाने, ८ फूलों
का घर करनां, ९ फूलपगर सो फूलोंका ढेर करनां, १० आरति, मंगल
दीवा, ११ दीपकपूजा, १२ धूपोपक्षेप, १३ नैवेद्य, १४ शुभफल ढाकन, १५
गीतपूजा, १६ नाटक करणां, १७ वाजंत्र. यह सत्तरह जेदों करि पूजा है.
अथ पूजाके एकवीश जेद लिखते हैं.

तहां प्रथम तो पूजा करणेकी विधि लिखते हैं, पूजा करने वाला पू

वैदिशकी तर्फ मुख करके स्नान करे, २ पश्चिम दिशकों मुख करके दातण
 करे, ३ उत्तरदिशाके सन्मुख श्वेत वस्त्र पहिरे, ४ पूर्वोत्तर मुख करके पूजा करे,
 ५ घरमें प्रवेश करतां वामे पासें शय्य रहित भूमिमें देहरासर करावे, ६ डेढ़
 हाथ भूमिकासें ऊंचा देहरासर करावे, जेकर देहरासर नीची भूमिकामें क
 रावे, तब तिसका संतान दिन दिन नीचा होता जावेगा, ७ दक्षिणदिशि
 तथा विदिशिके सन्मुख मुख न करे, ८ घर देहरेमें पश्चिम सन्मुख मुख
 करके पूजा करे, तो चौथी पेढीमें संतानोच्छेद होवे, ९ दक्षिण दिशिकी
 तर्फ मुख करी करे, तो संतान हीन होवे, १० अग्निकूपे करे, तो धन हानी
 होवे, ११ वायुकूपे करे, तो संतान न होवे. १२ नेत्रकूपे कुलकूप
 होवे. १३ ईशकूपे करे, तो एक जगे रहणां न होवे, १४ दोनो पग,
 दोनो जानु, दोनो हाथ, दोनो स्कंध, मस्तक, ये नव अंगमें कमसे पूजा
 करे, १५ चंदन विना पूजा नहीं होती है, १६ मस्तकमें, कंठमें, हृदयमें,
 पेटमें, तिलक करे. १७ नव अंगमें नव तिलक करके निरंतर पूजा करे,
 १८ सवेरे पहिलां वास पूजा करे, १९ मध्याह्नमें फूलोंसे पूजे, २० तां
 ध्याकों धूप, दीप, करके पूजा करे, २१ जो फूल, हाथसें धरतीमें गिर
 पड़े, तथा पगोंको लग जावे, तथा जो मस्तकसें ऊंचा चला जावे, तथा
 जो मैले वस्त्रसें रखा होवे, तथा जो नाजीसें नीचे रखा होवे, तथा जो
 छुष्ट जनोनें स्पर्शा होवे, जो धहुत ठेकाणोंमें हत होवे, जो जीवोने खा
 या होवे, ऐसा फूल, फल, नक्त जनोनें जिनपूजामें नहीं रखनां २२ एक
 फूलके दो टुकड़े न करे, २३ कलीको ठेदे नहीं, चंपक, उत्पल फूलके जां
 गनेसें धना दोष है, २४ गंध, धूप, अक्षत, फूलमाला, दीपक, नैवेद्य,
 पाणी, प्रधानफल, इनां करके जिनराजकी पूजा करे, २५ शांतिकार्यमें
 श्वेत वस्त्र पहिरके पूजा करे, २६ अव्यसाजके वास्ते पीत वस्त्र पहिरके
 पूजा करे, २७ शत्रु जीतने वास्ते काले वस्त्र पहिरके पूजा करे, २८ मां
 गलिकार्य वास्ते लाल वस्त्र पहिरके पूजा करे, २९ मुक्तिके वास्ते पांच व
 र्णके वस्त्र पहिरके पूजा करे, ३० शांति कार्यके वास्ते पंचामृतका होम,
 दीवा, घी, गुरु, लवणका अग्निमें प्रक्षेप, शांति पुष्टिके वास्ते जाननां. ३१
 फाटा दूध्या, जोमा दूध्या, ठिड़वाला, काटा दूध्या, जिसका रक्तवर्ण जयानक,
 ऐसे वस्त्र पहिरके दान, पूजा, तप, होम थरु सामायिक प्रमुख करे, तो

निष्फल होवे. ३२ पद्मासन बैठकें, नासाग्र लोचन स्थापन करकें मोन धारी वस्त्रसैं मुखकोश करकें जिनराजकी पूजा करे.

अथ इक्कीस प्रकारकी पूजाका नाम लिखते हैं १ स्नात्रपूजा, २ विक्षेपन पूजा, ३ आचरण पूजा, ४ फूल, ५ वासपूजा, ६ धूप, ७ प्रदीप, ८ फल, ९ अक्षत, १० नागरवेलके पान, ११ सोपारी, १२ नैवेद्य, १३ जलपूजा, १४ वस्त्रपूजा, १५ चामर, १६ ठत्र, १७ वार्जित्र, १८ गीत, १९ नाटिक, २० स्तुति, २१ जंडारवृद्धि यह एकवीस प्रकारकी पूजा है, जो वस्तु बहु त श्रद्धा होवे, तो जिनराजकी पूजामें चढानी चाहियें ॥ इति ॥ यह पूजा प्रकार, श्री उमास्वातिवाचककृत पूजाप्रकरणमें प्रसिद्ध है.

तथा ईशानकूणमें देवघर बनानां, यह बात विवेकविदासमें है, तथा विपमासन बैठकें, पग उपर पग धरकें, उकमुआसन बैठकें, वामा पग उंचा करकें तथा वामे हाथसैं. इतने करिकें पूजा न करे, सूके हुए फूलोंसैं पूजा न करे, तथा जो फूल धरतीमें गिरा होवे, तथा जिसकी पांखड़ी सड़ गई होवे, नीच लोकोंका जिसकों स्पर्श हुआ होवे, जो शुच न होवे, जो विकसे हुए न होवे, जो कीडेने खाये हुए, सड़े हुए, रात कों वासी रहे, मकड़ीके जाले वाले, जो देखनेमें श्रेष्ठ न लागे, दुर्गंध वाले, सुगंधरहित, खट्टी गंधवाले, मलमूत्रकी जगामें उत्पन्न हुये होवे अपवित्र करे हुए, ऐसे फूलोंसैं जिनेश्वर देवकी पूजा न करणी. तथा विस्तार सहित पूजाके अवसरमें, तथा नित्य, श्रु विशेष करकें पर्वदिनमें, सात तथा पांच कुसुमांजलि चढावे, पीठें जगवान्की पूजा करे, तहां यह विधि करे, सो कहते हैं.

प्रजात समय पहिलां निर्माळ्य उतारे, पीठें प्रक्षाल करे, संक्षेपसैं पूजा करे, आरति मंगल दीवा करे, पीठें स्नात्रादि विस्तार सहित दूसरी बार पूजाका प्रारंभ करे, तब देवके आगें केसर जल संयुक्त कक्षश स्थापन करे, पीठें "मुक्तालंकार विकार सार सौम्यत्वकांतिकमनीयं ॥ सहजनिज रूपनिर्जित, जगन्नयं पातु जिनविभं ॥ १ ॥ " यह आर्या कद् कर अलंकार उतारे, पीठें "अवणवि कुसुमाहरणं, पचइ पड्ठिय मनोहर ठायं ॥ जिणरूपं मज्झणपीठं. संठियं वो सिवं दिसउं ॥१॥ यह कद् कर निर्माळ्य उतारे, पीठें प्रायुक्त कक्षश ढाखन पूजा करे, कक्षश धो कर, धूप दे कर,

चरणोंके आगें रस्क देनां, आरति घूंजा देनेमें दोष नहीं. आरति श्रु मंगल दीवा मुख्यवृत्तिसें घृत, गुड, कर्पूरादिकसें करे, विशेष फल होनेसं. यहां मुक्तालंकार इत्यादि जो गाथा है, सो श्रीहरिजिज्ञसूरिजीकी करी दूध मालुम होती है, क्योंकि श्रीहरिजिज्ञसूरिकृत समरादित्यचरित्र नामक ग्रंथकी आदिमें “उवणेउ मंगलेवो ॥ इति नमस्कारस्य दर्शनात्” अरु यह गाथा तपगद्यमें प्रसिद्ध है. इस वास्ते सर्व गाथा इहां नहीं लिखी.

स्नानादिकमें समाचारि विशेषसं विविध प्रकारकी विधि देखनेसं व्या मोह न करणां, क्योंकि सर्व आचार्योंको अर्हज्जक्रिरूप फलकी सिद्धि वा स्तेही प्रवृत्त होनेसं गणधरादि समाचारीयोमेंजी बहुत जेद होता है, तिस वास्ते जो जो धर्मसं विरुद्ध न होवे, अरु अर्हत जक्रिका पोषक होवे, वो कार्य किसीकोंजी असम्मत नहीं, असंही सर्वधर्म कार्यमें जाण लेनां. यहां लवण, आरति प्रमुखका उतारणां, संप्रदायसं सर्व गद्योंमें अरु परदर्शनोंमेंजी करते हुवे दीखते हैं, तथा श्रीजिनप्रजसूरिकृत पूजाविधिशालमें तो असं लिखा है ॥ गाथा ॥ लवणां उतारण, पावित्तय सूरिमाइ पुवपुरिते हिं ॥ संहारेण अणुन्नयंपि, संपयं सिद्धी एकारिज्जं ॥ १ ॥ अस्त्यर्थः—लवणादि उतारणां श्रीपादलितसूरि प्रमुख पूर्व पुरुषोनें एक बार करने की आज्ञा दीनी है, हम इसकालमें उनके अनुसार करारते हैं. स्नानके करणमें सर्व प्रकार विस्तार सहित पूजा प्रज्ञावनादिकके करणसं परलो कमें उत्कृष्ट मोक्ष प्राप्तिरूप फल होता है. जेसं चौसठ इंद्रोने जिनज न्म स्नान करा है, तिसहीके अनुसारं मनुष्य करते हैं, इस वास्ते इस लोकमें पुण्य निर्जारा अरु परलोकमें मोक्ष फल होता है, यह कथन राजप्रश्रीय उपांगमें लिखा है ॥ इति स्नानविधिः समाप्तः ॥

अब प्रतिमाजी अनेक प्रकारकी है, तिनकी पूजाकी विधि सम्यक्प्रकरणमें असं कही है ॥ गाथा ॥ गुरु कारिआइ केइ, अन्नेसय कारिआइ तं विंति ॥ विहिकारिआइ अन्ने, पडिमाए पुअणविहाणं ॥ १ ॥ व्याख्याः—गुरु कहियें माता, पिता, दादा, पडदादा प्रमुख तिनकी कराइ दूइ प्रति मा पूजनी चाहियें. कोइ असं कहते हैं, तथा कोइ कहते हैं कि अपणी कराइ प्रतिष्ठी दूइ पूजनी चाहियें, कोइ कहते हैं कि विधिसं कराइ प्रतिष्ठी प्रतिमा पूजनी चाहियें, इनमें यथार्थ पद तो यह है, किः—ममत्व रहि

त सर्वप्रतिमाकों विशेष रहित पूजना चाहियें. क्योंकि सर्व जगे तीर्थ करका आकार देखनेसे तीर्थकर बुद्धि उत्पन्न होती है, जे कर ऐसे न मानीयें, तब जिनविंवकी अवज्ञासे डुरंत संसारमें भ्रमण रूप उसकों निश्चयही दंभ होवेगा.

तथा औसाजी कुविकल्प न करणा कि:-जो अविधिसें जिनमंदिर जिनप्रतिमा बनी है, उसके पूजनेसे अविधि मार्गकी अनुमोदनासे जगवंत की आज्ञाभंग रूप दूषण लगता है, तथाही श्रीकल्पजाप्ये ॥गाथा॥ निस्स करु मनिस्सकडे, चेइए सबहिं शुद्धिनि ॥ वेलं च चेईआणिय, नाउं इक्कि किया वावि ॥ १ ॥ व्याख्या:-एक निश्चाकृत उसकों कहते हैं, कि:-जो गणके प्रतिबंधसे बनी है, जैसाकि यह हमारे गणका मंदिर है, दूसरा अ निश्चाकृत, सो जिस उपर किसी गणका प्रतिबंध नहीं है, इन सर्व जिनमंदिरोंमें तीन शुद्ध पढनी, जे कर सर्वमंदिरोंमें तीन तीन शुद्ध देता बहुत काल लगता जाणे, तथा जिनमंदिर बहुत होवें, तदा एक एक जिनमंदिरोंमें एक एक शुद्ध पढे, इस वास्ते सर्व जैनमंदिरोंमें विशेष रहित नक्ति करे.

तथा जिनमंदिरमें मकड़ीका जाला लग जावे, तिसके उतारनेकी विधि, जिनके सपूर्व जिनमंदिर होवे, तिनकों साधु निर्जठना करे, कि:-जिनमंदिरकी नोकरी खाते हो, तो सार संज्ञाळ क्यों नहो करते हो ? मकड़ीका जालाजी तुम नहीं उतारते हो ? तथा जिनकी कोइ सार संज्ञाळ न करे, तिनकों असंविन्न देवकुलिका कहते हैं, तिन मंदिरोंमें जो मकड़ीका जाला होवे, तिसके दूर करणे वास्ते सेवकोंको प्रेरणा करे, कि तुम जिनमंदिरकों मंखफलककी तरें चमक दमक वाला रक्को, जेकर वे सेवक लोक न माने, तब निर्जठना करे, पीठें साधु जयणासे आप दूर करे, क्योंकि जिनमंदिर ज्ञानजंझारादिककी सर्वथा साधुजी उपेक्षा न करे, यह पूर्वोक्त चैत्यगमन पूजा स्नात्रादि विधि जो कही है, सो सब धनवान् श्रावककी अपेक्षा कही है, अरु जो श्रावक धनवान् न होवे, वो अपने घरमें सामायिक करके किसीके साथ लेणे देणेका जगमा न होवे, तदुपयोग संयुक्त साधुकी तरें ईर्या शोधता दूआ नैपेधिकी तीन करी जाव पूजानुयायि विधिसें जावे, पूजादि सामग्रीके अज्ञावसे अव्यपूजा करणे असमर्थ है, इस वास्ते सामायिक पारके कायासे जो कुछ फलशुंभनादिक कृत होवे सो करे.

प्रश्न:-सामायिक त्यागकें अव्यपूजा करणी उचित नहीं ?

उत्तर:-सामायिक तो तिसके स्वाधीन है, चाहे जिस वखत करखेवे, परंतु पूजाका योग उसकों मिलना दुर्लभ है, क्योंकि पूजाका मंडाण तो संघ समुदायके आधीन है, कदेइ होता है, इस वास्ते पूजामें विशेष पुण्य है ॥ यदागमः ॥ “जीवाण वोहि लाजो, सम्मदिष्ठीण होइ पिथरारणं ॥ आणाजिणिंदजत्ति, तिठस्स पजावणा चेव ॥ २ ॥ इस वास्ते अनेक गुण हैं, तातें चेत्यकार्य करे, यह कथन दिनकृत्य सूत्रमें है, दश ग्रिक, पांच अजिगम, इत्यादिविधि प्रधानही सर्वदेवपूजा वंदनकादि धर्मानुष्ठानका महा फल होता है, अन्यथा अल्प फल है, तथा अविधिसें करतां उपद्रवजी हो जाता है ॥ उक्तं च ॥ धर्मानुष्ठानवेतथ्या, त्प्रत्यवायो म हान् जयेत् ॥ रौद्र दुःखोपजननो, दुष्प्रयुक्तादिचोपधात् ॥ १ ॥ चेत्यर्पदनादि अविधिसें करतां आगममें प्रायश्चित्त कहा है, महानिशीथके सातमे अध्यायनमें अविधिसें चेत्यवंदना करे, तो प्रायश्चित्त कहा है, देवता, गिया मंत्रजी विधिसेंही सिद्ध होते हैं,

जो कोइ कहे कि विधि न होवे, तब न करणां श्रेष्ठ है? यह कहनां अयुक्त है ॥ यदुक्तं ॥ अविद्विकया वरमकयं, असूत्रा ययणं जणंति स मयसू ॥ पायश्चित्तं थकए, गुरुथं वितहं कए सहुयं ॥ १ ॥ अस्वार्थ:- अविधि करणमें न करणां श्रेष्ठ है, ऐसे जो कहते हैं, सो अमूया बचन है, यह कहने बाधा जैन सिद्धांतकों जानता नहीं, क्योंकि जैनशास्त्रके ज्ञाना तो ऐसे कहते हैं, कि:-जो न करे उसको गुरु प्रायश्चित्त आता है, थरु जो अविधिमें करे, उसकों सधु प्रायश्चित्त आता है, इस वास्ते धर्म जरूर करनां चाहिये. थरु विधिभागकी अन्वेपणा करणी, यही तत्त्व है, यही श्रद्धावंतका लक्षण है, सर्व कृत्य करकें अविधिशाशतना निमित्त मिथ्यादुष्कृतं दातव्यं ॥

थंग थग्रादि तीनो पूजाकें फल, शास्त्रमें ऐसे लिखे हैं, कि:-गिर उ पशांत करणवासी थंग पूजा है, तथा मोटा अन्वुदय पुण्यकी साधन वासी थगपूजा है, तथा मोटाकी दाता नावपूजा है, पूजा करने बाधा संसार प्रधान जोग जोगकें पीठें सिद्धपद पाता है, क्योंकि पूजा करचें

मन शांत होता है, अरु मन शांतमें उत्तम गुण ध्यान होता है, अरु गुणध्यानमें मोक्ष होता है, मोक्ष हुए अबाध सुख है.

तथा श्रीजिनराजकी जक्ति पांच प्रकारें है ॥श्लोका॥ पुण्यायर्चा तदाज्ञा च, तद्द्वयपरिरक्षणं ॥ उत्सवास्तीर्थयात्रा च, जक्तिः पंचविधा जिने ॥१॥
इव्यपूजा आजोग अरु अनाजोगमें दो प्रकारें हैं, तिसमें श्रीवीतराग देवके गुण जानकें वीतरागकी जावना करकें आदर संयुक्त जिनप्रतिमाकी जो पूजा, सो प्रथम आजोगइव्यपूजा है, इस्में चारित्रिका साज होता है, कर्मका नाश होता है, इस वास्ते बुद्धिमान् ऐसी पूजा अवश्य करे, तथा जो पूजाकी विधि जानता नहीं तथा श्रीजिनराजके गुणजी नहीं जानता सो दूसरी अनाजोग पूजा है, यह गुणपरिणाम पुण्यका कारण है, अरु बोधिलाजका हेतु है, पापक्षय करणका कारण है, उस पुरुषका जन्म धन्य है, आगमें कालमें उत्तका कल्याण है, क्योंकि यद्यपि वो वीतराग के गुण नहींजी जानता, तोजी जक्ति प्रीतिका उल्लास उसके अंदर उठता है, अरु जिस पुरुषको अरिहंतविषयमें छेप है, वो पुरुष जारीकर्मी तथा जवाजिनंदी है, जैसैं रोगीको अपथ्यमें रुचि अरु पथ्यमें छेप होवे, तदा मरणका समय होता है, ऐसैंही जिनविषयमें जितकों छेप है, तिसकाजी दीर्घ संतार जाननां.

इहां सर्व जो जावपूजा है, सो श्रीजिनाज्ञाका पाजनां है, सो जिनाज्ञा दो प्रकारकी है, एक अंगीकार कारणां, एक त्यागनां, तहां सुकृतका अंगीकार करणां, अरु निषेधका त्याग करनां, परंतु स्वीकार पक्षमें परिहार पक्ष बहुत श्रेष्ठ है, क्योंकि जो निषिद्ध आचरण करता है, उसका सुकृतजी बहुत गुणदायक नहीं होता है, जेकर दोनो बातें होवे, तदा पूर्ण फल है, इव्यपूजाका फल अच्युत देवलाक है, अरु जाव पूजाका फल अंतर्मुहूर्तमें मोक्ष है.

इव्यपूजामें यद्यपि पट्कायकी किंचित् विराधना होती है, तोजी कूबेके दंष्ट्रांत करके रहस्यकों करणें योग्य हैं, क्योंकि करनेवाले अरु देखनेवालोंकों गिणती रहित पुण्यबंधनेका कारण होनेसैं करने योग्य है, जैसैं नवे गाममें लान पानादिके वास्ते छोक कूवा खोदते हैं. तिनकों प्यास, श्रम, अरु कीचनसैं मखिनादि होते हैं, परंतु कूबेके जल निकलनेसैं तिनकी तथा

ओरोंकी तृपादि, पूराणा मेस, सर्व श्रगला पिठला दूर हो जाता है, अथ
 सर्वांगीण सुख हो जाता है, असेंही उच्च पूजामें जान लेना, यह कथन
 आवश्यक निर्युक्तिमें है, तथा और जग्गेजी लिखा है ॥ गाथा ॥ आरंभ पस
 चाणं, गिरीण्य जीव वह अविरयाणं ॥ जवश्रुवि निवडियाणं, दवडउं च
 थालंयो ॥ १ ॥ श्लोक ॥ वृत्तं शार्ङ्गखविक्रीडितं ॥ स्येयो वायुवसेन निर्युति
 करं निर्वाणनिर्घातिना, स्वायत्तं बहुनाथकेन सुबहुस्वल्पेन सारं परं ॥ निःसा
 रेण घनेन पुण्यममलं कृत्या जिनाच्यर्चनं, यो गृह्णाति वणिक् स एव निपुणं
 वाणिज्यकर्मण्यलम् ॥ १ ॥ यास्याम्यायतनं जिनस्य लज्जते, ध्यायंश्चतुर्थ
 फलं, पष्टं चोन्नितउद्यतोऽष्टममथो गंतुं प्रवृत्तोऽध्वनि ॥ श्रद्धासुर्वशमं व
 दिजिनपदप्राप्तस्ततो द्वादशं, मध्ये पादिकमीदृते जिनपतो मासोपवासं
 फलम् ॥ २ ॥ पञ्चचरित्रमें तो असें लिखा है, कि १ जव जिनमंदिरमें जा
 नेका मन करे, तब एक उपवासका फल होता है, २ यदि उठे तो ये
 साका फल होता है, ३ चस पडेनेका उद्यमीकों तेलेका फल होता है, ४
 चस पडे, इनकूं चौसेका फल, ५ किंचित् गयेकूं पंचौसेका फल, ६ थर्ड
 मार्गमें गये एक पदके उपवासका फल होता है, ७ जिनराजके देसमें
 एक मासके तपका फल होता है, ८ जिनबुवनमें संप्राप्त हूण उमासी तप
 का फल होता है, ९ जिनमंदिरके दरवाजे पर स्थित दूध्यां एक वर्षके त
 पका फल होता है, १० जिनराजकों प्रदक्षिणा दीयां सो वर्षके तपका फ
 ल होता है, ११ पूजा करे हजार वर्षके तपका फल होता है, १२ स्तुति
 करे, अनंतगुणा फल होता है, १३ जिनमंदिर पुजे, सो गुणा पुण्य होता
 है, १४ खपि नो हजार गुणा पुण्य होता है, १५ फलमासा चढाये, सास
 गुणा पुण्य होना है, १६ गीन वाजिन्न पूजा करे, अनंतगुणा पुण्य होता है,

पूजा दिनप्रत्ये तीन संध्यामें करणी चाहियें ॥ यतः ॥ जिनस्य पूजनं
 हंति, प्रातः पापं निशानयं ॥ आजन्मविहितं मध्ये, सप्तजन्मकृतं निशाम् ॥
 जडाद्गोपयन्नाप, विद्यान्मर्गकृपिक्रियाः ॥ सत्कलाः सत्यकाशेभ्यु, रेवं पू
 जा जिनेश्वरे ॥ २ ॥ गाथा ॥ जिण पुथ्याण निसंजं, कुणमाणो मोहण
 सम्मनं ॥ निठवरनाम गोचं, पावहं मेणीथ नमिंहुव ॥ १ ॥ जो पूण्ड्र निमंतं,
 जिणंदरायं मया विगयदोसं ॥ सो तदंय जवे सिद्धहं, अद्वा सनठमं ज

म्मे ॥ २ ॥ सवायरेण जयवं, पूर्वज्ञतोवि देवनाहेहिं ॥ नो होइ पूइउं खड्डु,
जह्माणं त गुणो जयवं ॥ ३ ॥ यह गाथा सुगम हैं.

तथा देव पूजादिकमें हृदयमें बहुमान अथी विधिसें जक्ति करे, तथा
जिनमतमें चार प्रकारका अनुष्ठान कहा है, एक प्रीतिसहित, दूसरा ज
क्ति सहित, तीसरा वचन प्रधान, अरु चौथा असंग अनुष्ठान, तिनमें जि
सके प्रीतिका रस बढे, अरु कृजु जडक खजाव वाला होवे, जैसें बाल
कोंकों रतनमें देखकें प्रीति होती है, ऐसी जिसकों प्रीति होवे, सो प्रीति
अनुष्ठान है, तथा बहुमान संयुक्त शुरू विवेकवाला होवे, अरु बाकी
शेष पहिले अनुष्ठानकी तरे करें, सो जक्ति अनुष्ठान है, यद्यपि स्त्रीका
अरु माताका पालणां, पोषणां, सरीखा है, तोजी स्त्री उपर प्रीति राग
हैं, अरु माता उपर जक्तिराग है, यह प्रीति अरु जक्तिका स्वरूप कहा,
तथा जो जिनगुणका जानकार, सूत्रोक्तविधि करकें जिनप्रतिमाकों वंदना
करे, सो वचनानुष्ठान है, यह अनुष्ठान चारित्रवंतकों निश्चय करकें होता है,
तथा जो अन्यासके रससें सूत्रालोचना बिनाही फलमें निस्पृह हो कर क
रे, सो असंगानुष्ठान है. जैसें कुंजार चक्रकों पहिलां तो दंरुसें फिराता
ह, पीठेसें दंरु छूरे करे, तोजी चाक फिरता है, यह दृष्टांत वचनानुष्ठान
अरु असंगानुष्ठानमें है.

इन चारोंमें प्रथम तो जावनाके लेशसें प्रायः बालक प्रमुखोंकों होता
है, आगे अधिक अधिक जान लेना. यह चारों प्रकारका अनुष्ठान बहुमा
न विधिसंयुक्त करे, तो रूपश्याजी खरा अरु खरे सन समान, प्रथम जेद
है. दूसरा जो पुरुष, जक्तिराग बहुमान संयुक्त होवे, अरु विधि जानता
न होवे, तिसका कृत्य एकांत छुट नहीं, अशठ पुरुषका अनुष्ठान अतिचा
र सहितजी शुद्धिका कारण है, क्योंकि जो रतन अंदरसें निर्मल है. उस
का बाह्यमल सुखें छूरे हो सकता है, यह रूपश्या खरा अरु सिका खोटा
समान, दूसरा जेद है, तथा जो पुरुष, कपट जूनादि दोष संयुक्त है, अरु
अपणी महिमा पूजाके वास्ते तथा लोंकोंके उगने वास्ते विधिपूर्वक सर्वा
नुष्ठान करता है, उसकों बना अनर्थ फल होता है, यह रूपश्या खोटा,
अरु सन खरा समान, तीसरा जेद जानना. तथा अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जी
वका जो कृत्य है, सो तो रूपश्याजी खोटा, अरु सनजी खोटा समान, चौ

याज्ञेद है. इस वास्ते जो देवपूजादिक करणकों बहुतमान अरु विधिपूर्वक करे, उसकों संपूर्ण फल होता है.

तथा उचित चिंता सो मंदिरप्रमार्जन करनां जिस जगेंसं मंदिर गि कर बिगर गया होवे, उसका समरानां, प्रतिमा प्रतिमाके परिवारक निर्मल करणां, विशिष्ट पूजा दीपोत्सव फल प्रमुखकी शोभा करणां, तथा आगें लिखेंगे जो आशातना सो सर्व वर्जनां, तथा अक्षत नेवेद्यादि चिंता, चंदन, केशर, धूप, दीप, तेलका संग्रह करे, बिनाश न होवे, असे रीतिसें चैत्यद्रव्यकी रक्षा करे, तीन चारादि श्रावकके सामने देवद्रव्यकें उधराणी करे, देवद्रव्यकों बहुत यत्नसें अष्टी जगे स्थापन करे, देवद्रव्यकें छात्र अरु खरचका नाम प्रगट पण्ये लिखे, आप तथा ओरोसैं देवद्रव्य देवे, देवावे, देव द्रव्य किसी पासों छेड़णां होवे, तहां देवके नोकरकें जेज कर जिसी रीतिसें देवद्रव्य जाय नहीं. तैसैं करे, उधराणी वासं नोकर रखे, इसी तरें द्रव्यकी चिंता सार संज्ञाल करे.

देहरा प्रमुखकी चिंता अनेक तरेंकी है, तिनमें धनाढ्यकों धनसैं, तथा स्वजनके बलसैं, चिंता सुकर है. अरु धन रहितकों अपण्ये शरीर तथा स्वजनके बलसैं साध्य है, जिसका जहां जैसा बल होवे, वो विशेष तैसा यत्न करे, जो चिंता थोड़े कालमें हो सके तिसकों दूसरी निस्तहीसैं पहिलां करे, शेषकों यथायोग्य पीठें करे. असेंही धर्मशाला, गुरुज्ञानादिककीजी यथोचित सर्व शक्तिसें चिंता करे, क्योंकि देव गुरु आदिककी सार संज्ञाल श्रावक बिना और कोइ करने वाला नहीं, इस वास्ते श्रावककों देवादि जक्ति सार संज्ञालमें शिथिल न होनां चाहियें, देव गुरु प्रमुखकी जक्ति, सेवा, सार संज्ञाल, जेकर श्रावक न करे, तो उसकी सम्यक्त्व कलंकित हो जाती है. अरु जो श्रावक देव गुरुका जक्त है, वस्सैं कदाचित् कोइ आशातनाजी हो जावे, तो जी अत्यंत दुःखदायी नहीं, इस वास्ते चैत्यादि कृत्यमें नित्य प्रवृत्त होवे ॥ अवोचाम च ॥ देहे द्रव्ये कुंडुवे च, सर्वे संसारिणां रतिः ॥ जिने जिनमते संघे, पुनर्मोक्षाजिजापिणां ॥

देव गुरु प्रमुखकी आशातना जो है, सो जघन्यादि जेद करकें तीन प्रकारें है, तहां प्रथम ज्ञानकी आशातना कहते हैं. पुस्तक, पट्टी, टीपणी, जपमालादिककों मुखकों थूंक वेशमात्र खग जावे, हीनाधिक अक्षर

उच्चारें, ज्ञानोपकरण पाटी, पोथी, नवकरवाली प्रमुख पास हुए, अधो वात निःसर्गादि होवे, सो जघन्याशातना है. तथा अकालमें पठनादि, उपधान बिना सूत्र पठनां, ज्ञांति करकें अर्थ अन्यथा कल्पना करणां, पुस्तकादिकों प्रमादसे पगादिकका स्पर्श करणां, जूमिमें गेरनां, ज्ञानोपकरणके पास हुए आहार भूत्रादि करनां, सो मध्यम आशातना है. तथा धूंक करकें अक्षर मांजे, पाटी, पोथी प्रमुख ज्ञानोपकरणके उपर बैठना दि करे, ज्ञानोपकरण पासें हुए उच्चारादिक करे, तथा ज्ञानकी ज्ञानीकी निंदा प्रत्यनीकपणा उपधात करे, उत्सूत्र जापणादि करे, सो उत्कृष्ट आशातना है.

अब देवकी आशातना कहते हैं. तहां जघन्य देवाशातना सो वास, वरास, केसर प्रमुखके डब्बेकों वजावे, श्वास तथा वल्लके ठेहडे करकें देवका स्पर्श करणां, सो जघन्य आशातना है, तथा पवित्र वल्ल, धोती प्रमुख करे बिना पूजा करे, पूजाके वल्ल जूमिमें गेरे, इत्यादि मध्यम आशातना है, तथा प्रतिमाकों पगसें संघटना, श्लेष्म अरु धूंकका लगानां, प्रतिमाकों जंग करणां. जिनेश्वर देवकी हेलनादि करणां, सो उत्कृष्ट आशातना है, अब देवकी जघन्य दश आशातना, अरु मध्यम चालीश आशातना तथा उत्कृष्टी चौरासी आशातना है, सो क्रम करकें कहते हैं.

प्रथम जघन्य दश आशातना न करणी, सो लिखते हैं. जिनमंदिरमें १ पान सोपारी खावे, २ पाणी पीवे, ३ जोजन करे, ४ पगरखा पहिरे, ५ स्त्रीसें जोग करे, ६ सोवे, ७ धूँके, ८ मूत्रे, ९ उच्चार करे, १० जूआ खेले. जघन्यसें यह दश जिनमंदिरमें वजें, तो आशातना न होवे.

दूसरी मध्यम चालीश आशातना वजें, तिसका नाम कहते हैं. १ मूत ना, २ दिशा जानां, ३ जूता पहरनां, ४ पानी पीनां, ५ खानां, ६ सोनां, ७ मैथुन सेवनां, ८ तंबोल खानां, ९ धूंकनां, १० जूआखेलनां, ११ जूआ देखे, १२ विकथा करे, १३ पालठी करी बैठे, १४ पग जूजूआ पसारे, १५ जगना करे, १६ हांसी करे, १७ किसी उपर ईर्ष्या करे, १८ उंचे आसने बैठे. १९ केश शरीरकी विचूपा करे, २० शिर पर उत्र लगानां, २१ खड्ग रक्के, २२ मुकुट धरनां, २३ चामर कराने. २४ स्त्रीसें कामबिलास सहित हांसी करणी, २५ धरणां लगानां, २६ क्रीडा (खेल) करणां, २७

याज्ञेद है. इस वास्ते जो देवपूजादिक करणकों बहुमान अरु विधिपूर्वक
करे, उसकों संपूर्ण फल होता है.

तथा उचित चिंता सो मंदिरप्रमार्जन करनां जिस जगेंसे मंदिर नि-
कर विगल गया होवे, उसका समरानां, प्रतिमा प्रतिमाके परिवार
निर्मल करणां, विशिष्ट पूजा दीपोत्सव फूल प्रमुखकी शोभा करणां, तथा
आगें लिखेंगे जो आशातना सो सर्व वर्जनां, तथा अक्षत नेवेयादि नि-
ता, चंदन, केशर, धूप, दीप, तैलका संग्रह करे, विनाश न होवे, अग्नी-
रीतिसें चैत्यद्रव्यकी रक्षा करे, तीन चारादि श्रावकके सामने देवद्रव्यकी
उपराणी करे, देवद्रव्यकों बहुत यत्नसें अग्नी जगे स्थापन करे, देवद्रव्यकों
ज्ञान अरु स्वरचका नाम प्रगट पणे लिखे, आप तथा श्रोतोंसे देवद्रव्य
देवे, देवाये, देव द्रव्य किसी पासों छेदणां होवे, तहां देवके नोकरकों
प्रेम कर जिसी रीतिसें देवद्रव्य जाय नहीं. तैसें करे, उपराणी वास्तें
नोकर रखे, इसी तरें द्रव्यकी चिंता सार संज्ञा करे.

देहरा प्रमुखकी चिंता अनेक तरेंकी है, तिनमें धनाढ्यकों धनसें, तथा
मज्जनके यत्नसें, चिंता मुकर है. अरु धन रहितकों अपने शरीर तथा
मज्जनके यत्नसें साध्य है, जिसका जहां जैसा यत्न होवे, वो विशेष नै-
सा यत्न करे, जो चिंता थोड़े कालमें हो सके तिसकों दूसरी निस्सहृद
पहिंसां करे, शेषकों यथायोग्य पीठें करे. ऐसेही धर्मशास्त्रा, गुरुज्ञानादि
ककीनी यथोचित सर्व शक्तिसें चिंता करे, क्योंकि देव गुरु आधिकारी
सार मंत्रास्र श्रावक विना और कोई करने वाला नहीं, इस वास्ते श्रा-
वककों देवादि नकि सार मंत्रास्रमें शिथिल न होना चाहियें, देव गुरु
प्रमुखकी नकि, सेवा, सार संज्ञा, जेकर श्रावक न करे, तो उमकी म-
म्यक्त्व कलंकित हो जाती है. अरु जो श्रावक देव गुरुका नकि है, व-
सैं कदाचित् कोई आशातनानी हो जावे, तो जी अत्यंत दुःखदायी नकि
इस वास्ते चैत्यादि कृत्यमें नित्य प्रवृत्त होवे ॥ अथोचाम य ॥ देहे इदं
कुटुम्बे च, सर्वे संसारिणां रतिः ॥ जिने जिनमते संवे, पुनर्मोहानिष्ठानिनां ।

देव गुरु प्रमुखकी आशातना जो है, सो जघन्यादि जेद करके नीच
प्रकारे है, तहां प्रथम ज्ञानकी आशातना कहते है. पुस्तक, पदी, टीका
की, जपनामादिकों मुक्तकों थूंक खेसामात्र लग जावे, हीनाधिक अरु

उच्चार, ज्ञानोपकरण पाटी, पोथी, नवकरवाली प्रमुख पास हुए, अधो वात निःसर्गादि होवे, सो जघन्याशातना है. तथा अकालमें पठनादि, उपधान बिना सूत्र पढनां, त्रांति करके अर्थ अन्यथा कल्पना करणां, पुस्तकादिकको प्रमादसें पगादिकका स्पर्श करणां, जूमिमें गेरनां, ज्ञानोपकरणके पास हुए आहार मूत्रादि करनां, सो मध्यम आशातना है. तथा धूंक करके अक्षर मांजे, पाटी, पोथी प्रमुख ज्ञानोपकरणके उपर बैठना दि करे, ज्ञानोपकरण पास हुए उच्चारादिक करे, तथा ज्ञानकी ज्ञानीकी निंदा प्रत्यनीकपणा उपघात करे, उत्सूत्र जापणादि करे, सो उत्कृष्ट आशातना है.

अब देवकी आशातना कहते हैं. तहां जघन्य देवाशातना सो वास, व रास, केसर प्रमुखके डब्बेको वजावे, श्वास तथा वस्त्रके ठेहडे करके देवका स्पर्श करणां, सो जघन्य आशातना है, तथा पवित्र वस्त्र, धोती प्रमुख करे बिना पूजा करे, पूजाके वस्त्र जूमिमें गेरे, इत्यादि मध्यम आशातना है. तथा प्रतिमाको पगसें संघटना, श्लेष्म अरु धूंकका लगानां, प्रतिमा को जंग करणां. जिनेश्वर देवकी हेखनादि करणां, सो उत्कृष्ट आशातना है, अब देवकी जघन्य दश आशातना, अरु मध्यम चालीश आशातना तथा उत्कृष्टी चौरास्ती आशातना है, सो क्रम करके कहते हैं.

प्रथम जघन्य दश आशातना न करणी, सो लिखते हैं. जिनमंदिरमें १ पान सोपारी खावे, २ पाणी पीवे, ३ जोजन करे, ४ पगरखा पहिरे, ५ स्त्रीसें जोग करे, ६ सोवे, ७ धूँके, ८ मूत्रे, ९ उच्चार करे, १० जूथ्या खेले. जघन्यसें यह दश जिनमंदिरमें वजें, तो आशातना न होवे.

दूसरी मध्यम चालीश आशातना वजें, तिसका नाम कहते हैं. १ मृत ना. २ दिशा जानां, ३ जूता पहरनां, ४ पानी पीनां, ५ खानां, ६ सोनां, ७ मैथुन सेवनां, ८ तंबोख खानां, ९ धूँकनां, १० जूथ्याखेखनां, ११ जूथ्या देखे, १२ विकया करे, १३ पाखरी करी बैठे, १४ पग जूजूथ्या पतारे, १५ जगना करे, १६ हांती करे, १७ किस्ती उपर ईर्ष्या करे, १८ जंचे आसने बैठे. १९ केश शरीरकी विज्ञूपा करे, २० शिर पर ठत्र खगानां, २१ खड्ग रखे, २२ मुकुट धरनां. २३ चामर कराने. २४ स्त्रीसें कामबिलास सहित हांती करणी, २५ धरपां लगानां, २६ क्रीडा (खेड) करणां, २७

थाजेद है. इस वास्ते जो देवपूजादिक करणकों बहुमान अरु विधिपूर्वक करे, उसकों संपूर्ण फल होता है.

तथा उचित चिंता सो मंदिरप्रमार्जन करनां जिस जगेंसं मंदिर निकर विगड गया होवे, उसका समरानां, प्रतिमा प्रतिमाके परिवारकों निर्मल करणां, विशिष्ट पूजा दीपोत्सव फूल प्रमुखकी शोजा करणां, तथा आगें लिखेंगे जो आशातना सो सर्व वर्जनां, तथा अक्षत नैवेद्यादि चिंता, चंदन, केशर, धूप, दीप, तेलका संग्रह करे, बिनाश न होवे, असी रीतिसें चैत्यद्रव्यकी रक्षा करे, तीन चारादि श्रावकके सामने देवद्रव्यकी उधराणी करे, देवद्रव्यकों बहुत बलसं अछी जगे स्थापन करे, देवद्रव्य खात अरु खरचका नाम प्रगट पणे लिखे, आप तथा औरोंसं देवद्रव्य देवे, देवावे, देव द्रव्य किसी पासों खेहणां होवे, तहां देवके नौ जेज कर जिसी रीतिसें देवद्रव्य जाय नहीं. तैसं करे, उधराणी बातें नौकर रक्के, इसी तरें द्रव्यकी चिंता सार संजाल करे.

देहरा प्रमुखकी चिंता अनेक तरेंकी है, तिनमें धनाढ्यकों धनसं, तथा स्वजनके बलसं, चिंता सुकर है. अरु धन रहितकों अपने शरीर तथा स्वजनके बलसं साध्य है, जिसका जहां जेसा बल होवे, वो विशेष बल सा बल करे, जो चिंता थोडे कालमें हो सके तिसकों दूसरी निस्तहीमें पहिलां करे, शेषकों यथायोग्य पीठें करे. अैसेही धर्मशाला, गुरुज्ञानादिककीजी यथोचित सर्व शक्तिसें चिंता करे, क्योंकि देव गुरु आदिककी सार संजाल श्रावक बिना और कोइ करने वाला नहीं, इस वास्ते श्रावकों देवादि जक्ति सार संजालमें शिथिल न होनां चाहियें, देव प्रमुखकी जक्ति, सेवा, सार संजाल, जेकर श्रावक न करे, तो उसकी कम्यक्त्व कलंकित हो जाती है. अरु जो श्रावक देव गुरुका जक्त है, तैसं कदाचित् कोइ आशातनाजी हो जावे, तो जी अत्यंत दुःखदायी नहीं. इस वास्ते चेत्यादि कृत्यमें नित्य प्रवृत्त होवे ॥ अवोचाम च ॥ देहे जल कुंडुवे च, सर्व संसारिणां रतिः ॥ जिने जिनमते संघे, पुनर्मोक्षनिष्ठापिणां ।

देव गुरु प्रमुखकी आशातना जो है, सो जघन्यादि जेद करकें तीनों प्रकारें है, तहां प्रथम ज्ञानकी आशातना कहते हैं. पुस्तक, पढी, टीकाणी, जपमालादिककों मुखकों थूंक लेशमात्र लग जावे, हीनाधिक अक्षर

उच्चार, ज्ञानोपकरण पाटी, पोथी, नवकरवाली प्रमुख पास हुए, अधो वात निःसर्गादि होवे, सो जघन्याशातना है. तथा अकालमें पठनादि, उपधान बिना सूत्र पढनां. त्रांति करके अर्थ अन्यथा कल्पना करणां, पुस्तकादिकों प्रमादसें पगादिकका स्पर्श करणां, जूमिमें गेरनां, ज्ञानोपकरणके पास हुए आहार मूत्रादि करनां, सो मध्यम आशातना है. तथा धूंक करके अक्षर मांजे, पाटी, पोथी प्रमुख ज्ञानोपकरणके उपर बैठना दि करे, ज्ञानोपकरण पास हुए उच्चारादिक करे, तथा ज्ञानकी ज्ञानीकी निंदा प्रत्यनीकपणा उपघात करे, उत्सूत्र जापणादि करे, सो उत्कृष्ट आशातना है.

अब देवकी आशातना कहते हैं. तहां जघन्य देवाशातना सो वास, वरास, केसर प्रमुखके डब्बेकों बजावे, श्वास तथा वस्त्रके ठेहडे करके देवका स्पर्श करणां, सो जघन्य आशातना है, तथा पवित्र वस्त्र, धोती प्रमुख करे बिना पूजा करे, पूजाके वस्त्र जूमिमें गेरे, इत्यादि मध्यम आशातना है, तथा प्रतिमाकों पगसें संघटना, श्लेष्म अरु धूंकका लगानां, प्रतिमाकों जंग करणां. जिनेश्वर देवकी हेखनादि करणां, सो उत्कृष्ट आशातना है, अब देवकी जघन्य दश आशातना, अरु मध्यम चालीश आशातना तथा उत्कृष्टी चौरासी आशातना है, सो क्रम करके कहते हैं.

प्रथम जघन्य दश आशातना न करणी, सो लिखते हैं. जिनमंदिरमें १ पानसोपारी खावे, २ पाणी पीवे, ३ जोजन करे, ४ पगरखा पहिरे, ५ स्त्रीसें जोग करे, ६ सोवे, ७ धूँके, ८ मूत्रे, ९ उच्चार करे, १० जूआ खेखे. जघन्यसें यह दश जिनमंदिरमें बजें, तो आशातना न होवे.

दूसरी मध्यम चालीश आशातना बजें, तिसका नाम कहते हैं. १ मूत ना, २ दिशा जानां, ३ जूता पहरनां, ४ पानी पीनां, ५ खानां, ६ सोनां, ७ मैद्युन तेवनां, ८ तंबोल खानां, ९ धूंकनां, १० जूआखेलनां, ११ जूआ देखे, १२ विकथा करे, १३ पालठी करी बैठे, १४ पग जूजूआ पसारे, १५ जगना करे, १६ हांसी करे, १७ किसी उपर ईर्ष्या करे, १८ उंचे आसने बैठे. १९ केश शरीरकी विज्ञूपा करे, २० शिर पर उत्र लगानां, २१ खड्ग रखे, २२ मुकुट धरनां, २३ चामर कराने. २४ स्त्रीसें कामबिलास सहित हांसी करणी, २५ धरणां लगानां, २६ क्रीडा (खेल) करणां, २७

थाजेद हे. इस वास्ते जो देवपूजादिक करणकों बहुमान अरु करे, उसकों संपूर्ण फल होता है.

तथा उचित चिंता सो मंदिरप्रमार्जन करनां जिस जगेंसं मंदिर निकर विगम गया होवे, उसका समरानां, प्रतिमा प्रतिमाके निर्मल करणां, विशिष्ट पूजा दीपोत्सव फूल प्रमुखकी शोभा करणां, आगें लिखेंगे जो आशातना सो सर्व वर्जनां, तथा अक्षत नेवेशादि ता, चंदन, केशर, धूप, दीप, तेलका संग्रह करे, विनाश न होवे, रीतिसं चैत्यद्रव्यकी रक्षा करे, तीन चारादि श्रावकके सामने देवद्रव्य उपराणी करे, देवद्रव्यकों बहुत यत्नसं अष्टी जगे स्थापन करे, देवद्रव्य साज अरु खरचका नाम प्रगट पणे लिखे, आप तथा श्रोतंसं देवद्रव्य देये, देयाये, देव द्रव्य किसी पासों खेहणां होवे, तहां देवके नौकरां भोज कर जिसी रीतिसं देवद्रव्य जाय नहीं. तैसें करे, उपराणी काम नौकर रखे, इसी तरें द्रव्यकी चिंता सार संज्ञा करे.

देहरा प्रमुखकी चिंता अनेक तरेंकी है, तिनमें धनाढ्यकों धनसं, तज्जनके धनसं, चिंता मुकर है. अरु धन रहितकों अपणे शरीर तज्जनके धनसं साध्य है, जिसका जहां जैसा धन होवे, वो विशेष सा यत्न करे, जो चिंता थोड़े कालमें हो सके तिसकों दूसरी निस्तही पहिखां करे, शेषकों यथायोग्य पीठें करे. ऐसेंही धर्मशास्त्रा, गुरुज्ञाना ककीनी यथोचित सर्व शक्तिसं चिंता करे, क्योंकि देव गुरु यात्रि सार मंतास श्रावक बिना और कोइ करने वाला नहीं, इस यत्न वककों देवादि त्रिकि सार मंतासमें शिषिस न होना चाहियें, दे प्रमुखकी त्रिकि, सेवा, सार संज्ञास, जेकर श्रावक न करे, तो उसही व्यक्त कउंकित हो जाती है. अरु जो श्रावक देव गुरुका जक्त है, तसें कदाचित् कोइ आशातनानी हो जावे, तो जी अखन दुःखदापी नई. इस वास्ते चेत्यादि कृत्यमें नित्य प्रवृत्त होवे ॥ अत्रोचाम ॥ देहे इति कुंदुवे च, सर्व संसारिणां रतिः ॥ जिने जिनमते संघे, पुनमां दानिजापि ॥

देव गुरु प्रमुखकी आशातना जो है, सो जघन्यादि जेद करके ही प्रकारे है, तहां प्रथम ज्ञानकी आशातना कहते है. पुस्तक, पट्टी, टीपी, जपमाळादिककों मुखकों थूंक क्षेशमात्र खग जावें, हीनाधिक धन

उच्चारें, ज्ञानोपकरण पाटी, पोथी, नवकरवाली प्रमुख पास हूए, अधो
पात निःसर्गादि होवे, सो जघन्याशातना है. तथा अकालमें पठनादि,
उपधान बिना सूत्र पठनां, त्रांति करकें अर्थ अन्यथा कटपना करणां, पु
स्तकादिकों प्रमादसें पगादिकका स्पर्श करणां, जूमिमें गेरनां, ज्ञानोपकर
णके पास हूए आहार मूत्रादि करनां, सो मध्यम आशातना है. तथा
धुंक करकें अहार मांजे, पाटी, पोथी प्रमुख ज्ञानोपकरणकें उपर बैठना
दि करे, ज्ञानोपकरण पास हूए उच्चारादिक करे, तथा ज्ञानकी ज्ञानीकी
निंदा प्रत्यनीकपणा उपघात करे, उत्सूत्र जापणादि करे, सो
उत्कृष्ट आशातना है.

अब देवकी आशातना कहते हैं. तहां जघन्य देवाशातना सो वास, व
रास, केसर प्रमुखके डब्बेकों वजावे, श्वास तथा वस्त्रके ठेहडे करकें देवका
स्पर्श करणां, सो जघन्य आशातना है, तथा पवित्र वस्त्र, धोती प्रमुख
करे बिना पूजा करे, पूजाके वस्त्र जूमिमें गेरे, इत्यादि मध्यम आशातना
है, तथा प्रतिमाकों पगसें संघट्टना, श्लेष्म अरु धुंकका लगानां, प्रतिमा
कों जंग करणां. जिनेश्वर देवकी हेलनादि करणां, सो उत्कृष्ट आशातना
है, अब देवकी जघन्य दश आशातना, अरु मध्यम चासीश आशातना
तथा उत्कृष्टी चौरासी आशातना है, सो क्रम करकें कहते हैं.

प्रथम जघन्य दश आशातना न करणी, सो लिखते हैं. जिनमंदिरमें
१ पान सोपारी खावे, २ पाणी पीवे, ३ जोजन करे, ४ पगरखा पहिरे, ५
खीसें जोग करे, ६ सोवे, ७ धुंके, ८ मूत्रे, ९ उच्चार करे, १० जूथा खेले.
जघन्यसें यह दश जिनमंदिरमें बजें, तो आशातना न होवे.

दूसरी मध्यम चासीश आशातना बजें, तिसका नाम कहते हैं. १ मृत
ना. २ दिशा जानां, ३ जूता पहरनां, ४ पानी पीनां, ५ खानां, ६ सोनां,
७ मैद्युन सेवनां, ८ तंबोख खानां, ९ धुंकनां, १० जूथाखेलनां, ११ जूथा
देखे, १२ विकथा करे, १३ पाखरी करी बैठे, १४ पग जूजूथा पतारे,
१५ जगना करे, १६ हांसी करे, १७ किसी उपर ईर्ष्या करे, १८ उंचे
आसने बैठे. १९ केश शरीरकी चिजूपा करे, २० शिर पर ठत्र खगानां, २१
बद्ध रखे, २२ मुकुट धरनां. २३ चामर कराने. २४ खीसें कामबिबास स
हित हांसी करणी, २५ धरणां लगानां, २६ क्रीडा (खेल) करणां, २७

थाजेद हे. इस वास्ते जो देवपूजादिक करणकों बहुमान अरु करे, उसकों संपूर्ण फल होता है.

तथा उचित चिंता सो मंदिरप्रमार्जन करनां जिस जगेंसं मंदिर नि कर विगुरु गया होवे, उसका समरानां, प्रतिमा प्रतिमाके निर्मल करणां, विशिष्ट पूजा दीपोत्सव फल प्रमुखकी शोजा करणां, आगें लिखेंगे जो आशातना सो सर्व वर्जनां, तथा अद्भुत नैवेद्यादि ता, चंदन, केशर, धूप, दीप, तेलका संग्रह करे, बिनाश न होवे, रीतिसें चैत्यद्रव्यकी रक्षा करे, तीन चारादि श्रावकके सामने उधराणी करे, देवद्रव्यकों बहुत यत्नसें अछी जगे स्थापन करे, धान अरु खरचका नाम प्रगट पणे लिखे, आप तथा औरोंसं देवे, देवावे, देव द्रव्य किसी पासों लेहणां होवे, तहां देवके नौकर जेज कर जिसी रीतिसें देवद्रव्य जाय नहीं. तैसें करे, उधराणी वास्ते नौकर रखे, इसी तरें द्रव्यकी चिंता सार संज्ञा करे.

देहरा प्रमुखकी चिंता अनेक तरेंकी है, तिनमें धनाढ्यकों धनसें, तथा खजनके धनसें, चिंता सुकर है. अरु धन रहितकों अपणे शरीर तथा खजनके धनसें साध्य है, जिसका जहां जैसा धन होवे, वो विशेष तैसा यत्न करे, जो चिंता थोड़े कालमें हो सके तिसकों दूसरी निस्सहृति पहिछां करे, शेषकों यथायोग्य पीठें करे. औरेंही धर्मशाला, गुरुशाला फकीजी यथोचित सर्व शक्तिसें चिंता करे, क्योंकि देव गुरु आदिकों सार संज्ञा श्रावक बिना और कोइ करने वाला नहीं, इस वास्ते श्रावकों देवादि जक्ति सार संज्ञासमें शिथिल न होना चाहियें, देव प्रमुखकी जक्ति, सेवा, सार संज्ञा, जेकर श्रावक न करे, तो उसकी सम्यक्त्व कलंकित हो जाती है. अरु जो श्रावक देव गुरुका जक्त है, वरें कदाचित् कोइ आशातनाजी हो जावे, तो जी अत्यंत दुःखदायी नहिं इस वास्ते चैत्यादि कृत्यमें नित्य प्रवृत्त होवे ॥ अथोचाम घ ॥ देहे द्रव्य कुंदुवे च, सर्व संसारिणां रतिः ॥ जिने जिनमते संघे, पुनर्मोक्षाजिहायिणां ॥

देव गुरु प्रमुखकी आशातना जो है, सो जघन्यादि जेद करकें तीन प्रकारें है, तहां प्रथम ज्ञानकी आशातना कहते हैं. पुस्तक, पटी, टीका, जपमालादिकों मुखकों धूंक खेशमात्र लग जावे, हीनाधिक अद्भुत

उच्चारें, ज्ञानोपकरण पाटी, पोथी, नवकरवासी प्रमुख पास हुए, अधो गत निःसर्गादि होवे, सो जघन्याशातना है. तथा अकालमें पठनादि, उपधान बिना सूत्र पढ़नां, त्रांति करके अर्थ अन्यथा कल्पना करणां, पुस्तकादिकों प्रमादसें पगादिकका स्पर्श करणां, जूमिमें गेरनां, ज्ञानोपकरणके पास हुए आहार मूत्रादि करनां, सो मध्यम आशातना है. तथा धूंक करके अक्षर मांजे, पाटी, पोथी प्रमुख ज्ञानोपकरणके उपर बैठना दि करे, ज्ञानोपकरण पास हुए उच्चारादिक करे, तथा ज्ञानकी ज्ञानीकी निंदा प्रत्यनीकपणा उपधात करे, उत्सूत्र जापणादि करे, सो उत्कृष्ट आशातना है.

अब देवकी आशातना कहते हैं. तहां जघन्य देवाशातना सो वास, वरास, केसर प्रमुखके डब्बेको बजावे, श्वास तथा वस्त्रके ठेहड़े करके देवका स्पर्श करणां, सो जघन्य आशातना है, तथा पवित्र वस्त्र, धोती प्रमुख करे बिना पूजा करे, पूजाके वस्त्र जूमिमें गेरे, इत्यादि मध्यम आशातना है, तथा प्रतिमाको पगलें संघट्टना, श्लेष्म अरु धूंकका लगानां, प्रतिमा को जंग करणां. जिनेश्वर देवकी हेलनादि करणां, सो उत्कृष्ट आशातना है, अब देवकी जघन्य दश आशातना, अरु मध्यम चाखीश आशातना तथा उत्कृष्टी चौरासी आशातना है, सो क्रम करके कहते हैं.

प्रथम जघन्य दश आशातना न करणी, सो लिखते हैं. जिनमंदिरमें १ पान सोपारी खावे, २ पाणी पीवे, ३ नोजन करे, ४ पगरखा पहिरे, ५ स्त्रीसें नोग करे, ६ सोवे, ७ धूंक, ८ मूत्र, ९ उच्चार करे, १० जूआ खेले. जघन्यसें यह दश जिनमंदिरमें बजें, तो आशातना न होवे.

दूसरी मध्यम चाखीश आशातना बजें, तिसका नाम कहते हैं. १ मूत ना, २ दिशा जानां, ३ जूता पहरनां, ४ पानी पीनां, ५ खानां, ६ सोनां, ७ मैथुन सेवनां, ८ तंबोख खानां, ९ धूंकनां, १० जूआखेखनां, ११ जूआ खे, १२ विक्रया करे, १३ पाखरी करी बैठे, १४ पग जूजूआ पतारें, १५ जगना करे, १६ हांसी करे, १७ किसी उपर ईर्ष्या करे, १८ उंचे प्रास्तने बैठे, १९ केश शरीरकी विज्रूपा करे, २० शिर पर ठत्र लगानां, २१ ब्रह्म रखे, २२ मुकूट धरनां, २३ चामर कराने, २४ स्त्रीसें कामबिलास सहैत हांसी करणी, २५ धरणां लगानां, २६ क्रीडा (खेल) करणां, २७

थाजेद हे. इस वास्ते जो देवपूजादिक करणकों बहुमान अरु करे, उसकों संपूर्ण फल होता है.

तथा उचित चिंता सो मंदिरप्रमार्जन करनां जिस जगेंसं मंदिर नि कर विगुरु गया होवे, उसका समरानां, प्रतिमा प्रतिमाके परिवाह निर्मल करणां, विशिष्ट पूजा दीपोत्सव फूल प्रमुखकी शोभा करणां, आगें लिखेंगे जो आशातना सो सर्व वर्जनां, तथा अक्षत नेवेद्यादि ता, चंदन, केशर, धूप, दीप, तेलका संग्रह करे, विनाश न होवे, रीतिसें चैत्यद्रव्यकी रक्षा करे, तीन चारादि श्रावकके सामने दे उघराणी करे, देवद्रव्यकों बहुत यत्नसैं अछी जगे स्थापन करे, देव लाज अरु खरचका नाम प्रगट पणे लिखे, आप तथा औरोंसैं देवे, देवावे, देव द्रव्य किसी पासों लेहणां होवे, तहां देवके नौकर जेज कर जिसी रीतिसैं देवद्रव्य जाय नहीं. तैसैं करे, उघराणी नौकर रखे, इसी तरें द्रव्यकी चिंता सार संजाल करे.

देहरा प्रमुखकी चिंता अनेक तरेंकी है, तिनमें धनाढ्यकों धनसैं, तत्त् खजनके बलसैं, चिंता सुकर है. अरु धन रहितकों अपणे शरीर तथा खजनके बलसैं साध्य है, जिसका जहां जैसा बल होवे, वो विशेष त सा यत्न करे, जो चिंता थोडे कालमें हो सके तिसकों दूसरी निस्सह्य पहिंछां करे, शेषकों यथायोग्य पीठें करे. ऐसेही धर्मशास्त्रा, गुरुज्ञानादि ककीजी यथोचित सर्व शक्तिसैं चिंता करे, क्योंकि देव गुरु आधिक सार संजाल श्रावक बिना और कोइ करने वाला नहीं, इस वास्ते श्रा वकों देवादि जकि सार संजालमें शिथिल न होनां चाहियें, देव गुरु प्रमुखकी जकि, सेवा, सार संजाल, जेकर श्रावक न करे, तो उसकी सम्पत्त्व कलंकित हो जाती है. अरु जो श्रावक देव गुरुका जक है, व सैं कदाचित् कोइ आशातनाजी हो जावे, तो जी अत्यंत दुःखदायी नहीं. इस वास्ते चैत्यादि कृत्यमें नित्य प्रवृत्त होवे ॥ अबोचाम च ॥ देहे जे कुंडुवे च, सर्व संसारिणां रतिः ॥ जिने जिनमते संघे, पुनर्मोक्षाजिहापिणां.

देव गुरु प्रमुखकी आशातना जो है, सो जघन्यादि जेद करकें तीन प्रकारें है, तहां प्रथम ज्ञानकी आशातना कहते है. पुस्तक, पढी, टीाणी, जपमालादिककों मुखकों थूंक लेशमात्र लग जावे, हीनाधिक अक्षर

उच्चारें, ज्ञानोपकरण पाटी, पोथी, नवकरवाली प्रमुख पास हुए, अधो वात निःसर्गादि होवे, सो जघन्याशातना है. तथा अकालमें पठनादि, उपधान विना सूत्र पढनां. त्रांति करकें अर्थ अन्यथा कल्पना करणां, पुस्तकादिकों प्रमादसें पगादिकका स्पर्श करणां, जूमिमें गेरनां, ज्ञानोपकरणके पास हुए आहार मूत्रादि करनां, सो मध्यम आशातना है. तथा धूंक करकें अक्षर मांजे, पाटी, पोथी प्रमुख ज्ञानोपकरणके उपर बैठना दि करे, ज्ञानोपकरण पास हुए उच्चारादिक करे, तथा ज्ञानकी ज्ञानीकी निंदा प्रत्यनीकपणा उपघात करे, उत्सूत्र जापणादि करे, सो उत्कृष्ट आशातना है.

अब देवकी आशातना कहते हैं. तहां जघन्य देवाशातना सो वास, वरास, केसर प्रमुखके डब्बेको वजावे, श्वास तथा वस्त्रके ठेहडे करकें देवका स्पर्श करणां, सो जघन्य आशातना है, तथा पवित्र वस्त्र, धोती प्रमुख करे विना पूजा करे, पूजाके वस्त्र जूमिमें गेरे, इत्यादि मध्यम आशातना है, तथा प्रतिमाको पगसें संघटना, श्लेष्म अरु धूंकका लगानां, प्रतिमा को जंग करणां. जिनेश्वर देवकी हेलनादि करणां, सो उत्कृष्ट आशातना है, अब देवकी जघन्य दश आशातना, अरु मध्यम चालीश आशातना तथा उत्कृष्टी चौरासी आशातना है, सो क्रम करकें कहते हैं.

प्रथम जघन्य दश आशातना न करणी, सो लिखते हैं. जिनमंदिरमें १ पान सोपारी खावे, २ पाणी पीवे, ३ जोजन करे, ४ पगरखा पहिरे, ५ स्त्रीसें जोग करे, ६ सोवे, ७ धूंकें, ८ मूत्रे, ९ उच्चार करे, १० जूआ खेले. जघन्यसें यह दश जिनमंदिरमें वजें, तो आशातना न होवे.

दूसरी मध्यम चालीश आशातना वजें, तिसका नाम कहते हैं. १ मूत ना, २ दिशा जानां, ३ जूता पहरनां, ४ पानी पीनां, ५ खानां, ६ सोनां, ७ मैथुन सेवनां, ८ तंबोल खानां, ९ धूंकनां, १० जूआखेलनां, ११ जूआ देखे, १२ विक्रया करे, १३ पाखठी करी बैठे, १४ पग जूजूआ पसारें, १५ जगना करे, १६ हांसी करे, १७ किसी उपर ईर्ष्या करे, १८ उंचे आसने बैठे. १९ केश शरीरकी विजृषा करे, २० शिर पर ठत्र लगानां, २१ खड्ग रके, २२ मुकुट धरनां, २३ चामर कराने, २४ स्त्रीसें कामविलास सहित हांसी करणी, २५ धरणां लगानां, २६ क्रीडा (खेल) करणां, २७

थानेद हे. इस वास्ते जो देवपूजादिक करणकों बहुमान अरु वि. करे, उसकों संपूर्ण फल होता हे.

तथा उचित चिंता सो मंदिरप्रमार्जन करनां जिस जगेंसं मंदिर कर विगन गया होवे, उसका समरानां, प्रतिमा प्रतिमाके निर्मल करणां, विशिष्ट पूजा दीपोत्सव फूल प्रमुखकी शोभा करणां, आगें सिखेंगे जो आशातना सो सर्व वर्जनां, तथा अक्षत नैवेद्यां ता, चंदन, केशर, धूप, दीप, तेलका संग्रह करे, विनाश न होवे, रीतिसं चेत्यद्रव्यकी रक्षा करे, तीन चारादि श्रावकके सामने देवद्रव्य उपराणी करे, देवद्रव्यकों बहुत यत्नसं अष्टी जगे स्थापन करे, देवद्रव्य साज अरु स्वरचका नाम प्रगट पणे लिखे, आप तथा थोरोसं देवद्रव्य देवे, देवावे, देव द्रव्य किसी पासों छेदणां होवे, तहां देवके नोकर भेज कर जिसी रीतिसं देवद्रव्य जाय नहीं. तैसं करे, उपराणी नोकर रखे, इसी तरं द्रव्यकी चिंता सार संज्ञा करे.

देहरा प्रमुखकी चिंता अनेक तरंकी हे, तिनमें धनाढ्यकों धनसं, राजजनके यत्नसं, चिंता सुकर हे. अरु धन रहितकों अपने शरीर पर यत्नसं साध्य हे, जिसका जहां जैसा यत्न होवे, वो विशेष सा यत्न करे, जो चिंता थोड़े कालमें हो सके तिसकों दूसरी निस्तुष्टि पहिखां करे, शेषकों यथायोग्य पीठें करे. ऐसेही धर्मशाला, गुरुद्वारा ककीनी यथोचित सर्व शक्तिसं चिंता करे, क्योंकि देव गुरु आदि सार मंताख श्रावक विना और कोइ करने वाला नहीं, इस वास्ते देवकों देवादि जक्ति सार मंताखमें शिथिल न होना चाहिये, देव प्रमुखकी जक्ति, सेवा, सार संज्ञा, जेकर श्रावक न करे, तो उसकी मयस्त्व कयंकिन हो जाती हे. अरु जो श्रावक देव गुरुका जक्त हे, तसं कदाचित् कोइ आशातनाही हो जावे, तो जी अत्यंत दुःखदापी होइ इस वास्ते चेत्यादि कृत्यमें नित्य प्रयत्न होवे ॥ अथोचाम च ॥ देहे इति कुंदुवे च, सर्वे संसारिणां रतिः ॥ जिने जिनमते संवे, पुनर्मां दानि प्राप्ति ॥

देव गुरु प्रमुखकी आशातना जो हे, सो जघन्यादि जेद करे, तै प्रकारे हे, तहां प्रथम ज्ञानकी आशातना कहत हे. पुस्तक, पढ़ी, टी, टी, जपमात्रादिकों मुखकों थूंक खेशमात्र लग जावे, हीनाधिक श्रम

आधारे, ज्ञानोपकरण पाटी, पोथी, नवकरवासी प्रमुख पास हुए, अधो
त निःसर्गादि होवे, सो जघन्याशातना है, तथा अकालमें पठनादि,
अपधान बिना सूत्र पढ़नां, ज्ञांति करके अर्थ अन्यथा कल्पना करणां, पु
तकादिकों प्रमादसे पगादिकका स्पर्श करणां, जूमिमें गेरनां, ज्ञानोपकर
णके पास हुए आहार मूत्रादि करनां, सो मध्यम आशातना है, तथा
जुंकरके अक्षर मांजे, पाटी, पोथी प्रमुख ज्ञानोपकरणके उपर बैठना
दे करे, ज्ञानोपकरण पास हुए उच्चारादिक करे, तथा ज्ञानकी ज्ञानीकी
नैदा प्रत्यनीकपणा उपघात करे, उत्सूत्र जापणादि करे, सो
उत्कृष्ट आशातना है.

अब देवकी आशातना कहते हैं, तहां जघन्य देवाशातना सो वास, व
त्स, केसर प्रमुखके डब्बेको वजावे, श्वास तथा वस्त्रके ठेहडे करके देवका
स्पर्श करणां, सो जघन्य आशातना है, तथा पवित्र वस्त्र, धोती प्रमुख
करे बिना पूजा करे, पूजाके वस्त्र जूमिमें गेरे, इत्यादि मध्यम आशातना
है, तथा प्रतिमाको पगसे संघटना, श्लेष्म अरु धूंकका लगानां, प्रतिमा
को जंग करणां, जिनेश्वर देवकी हेलनादि करणां, सो उत्कृष्ट आशातना
है, अब देवकी जघन्य दश आशातना, अरु मध्यम चाळीश आशातना
तथा उत्कृष्टी चौरासी आशातना है, सो क्रम करके कहते हैं.

प्रथम जघन्य दश आशातना न करणी, सो लिखते हैं, जिनमंदिरमें
१ पान सोपारी खावे, २ पाणी पीवे, ३ जोजन करे, ४ पगरखा पहिरे, ५
छीत्ते जोग करे, ६ सोवे, ७ धूँके, ८ मूत्रे, ९ उच्चार करे, १० जूझा खेले.
जघन्यसे यह दश जिनमंदिरमें वजे, तो आशातना न होवे.

दूसरी मध्यम चाळीश आशातना वजे, तिसका नाम कहते हैं. १ मूत
ना, २ दिशा जानां, ३ जूता पहरनां, ४ पानी पीनां, ५ खानां, ६ सोनां,
७ मैद्युन सेवनां, ८ तंबोल खानां, ९ धूंकनां, १० जूझाखेलनां, ११ जूझा
देखे, १२ विक्या करे, १३ पाखरी करी बैठे, १४ पग जूझा पसारे,
१५ जगना करे, १६ हांती करे, १७ किती उपर ईर्ष्या करे, १८ जुंवे
आसने बैठे. १९ केश शरीरकी विचूपा करे, २० शिर पर ठत्र लगानां, २१
खड्ग रक्के, २२ मुकुट धरनां, २३ चामर कराने. २४ छीत्ते कामबिलास स
हित हांती करणी, २५ धरणां लगानां, २६ क्रीडा (खेल) करणां, २७

मुखकोश बिना पूजा करणी, २० मेले शरीरसें मेले वस्त्रोंसें पूजा करे।
 २१ पूजा करतां मन चपल करणां, ३० शरीरके जोगके सचित्त
 बिना उतारे मंदिरमें जानां, ३१ अचित्तद्रव्य आचूषणादि उतारके
 ३२ एकसाडीका उत्तरासंग न करे, ३३ जगवान्कां देखके हाथ न जो
 ३४ शक्तिके दूये पूजा न करे, ३५ अनिष्ट फूलोंसें पूजा करे, ३६
 प्रमुख आदर रहित करे, ३७ जिनप्रतिमाके निंदककों हटावे नहीं,
 मंदिरके द्रव्यकी सार संजाल न करे, ३८ शक्तिके दूयेजी अखारी उग
 के मंदिरमें जावे, ४० देहरेमें वस्त्रासें पहिछां चेत्यचंदन करे, जिनेप्रज
 तथा जहां प्रतिमा होवे, तिहां यह चालीश मध्यमसें आशातना दां

अथ उरुष्ट चोरासी आशातनाका नाम कहते हैं। १ जिनमंदि
 खेल खंखार गेरे, २ जूए आदिककी फ्रीडा करे, ३ कलह करे, ४ धनुष्या
 फला शिखे, ५ कुरला करे, ६ तंबोल खावे, ७ तंबोलका उगाव गे
 ८ गात्री देवे, ९ दिसा मात्रा करे, १० हस्तावि थंग धोवे, ११ केश सम
 १२ नख समारे, १३ रुधिर गेरे, १४ सुखडी प्रमुख देहरेमें खावे, १५
 दे आदिककी त्वचा गेरे, १६ ओपधि खाके पित्त गेरे, १७ वमन करे,
 दांत गेरे, १८ हाथ पग मसखावे, २० घोमादि घांघे, २१ दांतका मे
 गेरे, २२ आंखका मेल गेरे, २३ नखका मेल गेरे, २४ गालका मेल गे
 २५ नाकका मेल गेरे, २६ माथाका मेल गेरे, २७ शरीरका मेल गे
 २८ कानका मेल गेरे, २९ जूतादिके खीखने वास्ते मंत्र सावे, तथा
 राजा प्रमुखका काम होवे, तिसका विचार करे, ३० मंदिरमें विवाहादि
 की पंचायत करे, ३१ व्यापारका खेला करे, ३२ राजका काम बां
 देवे, तथावा जाइ प्रमुखकों धनका हिस्सा बांटके देवे, ३३ घरका प्र
 मंदिरमें रखे, ३४ पगोपरि पग रखेके छुष्टासन करके बैठे, ३५ मंदि
 जीतसें ठाणा खगावे, गोबरका ढेर खगावे, ३६ बस्त्र मुकावे, ३७
 दवे, ३८ पापडवेखी मुकावे, ३९ बटां बनावे, उपखदानसें कयर, चीर
 शाक प्रमुख मुकाने वास्ते गेरे, ४० राजा, जाइ, सहणे घासेके जयसें ना
 मूसगंतारेमें सुक जावे, ४१ पुत्रकथनादिके मरणसें मंदिरमें रों
 श्रीकथा, नरककथा, राजकथा, देशकथा, यह चार विकथा करे, ४२
 ईश्वरका मन्ना घेने, तथा धनुष्यादि शस्त्र घेने, ४४ गाय घेसादि मंदि

रखे, ४५ शीत दूर करणों अग्नि तापे, ४६ धान्यादि रांधे, ४७ रूपइये
परखे, ४८ विधिसँ नैपेधिकी न करे, ४९ ठत्र, ५० पगरखी, ५१
शस्त्र, ५२ चामर, यह चार, मंदिरके बाहिर न ठोडे, ५३ मन एकाग्र न
करे, ५४ तैलादिकका मर्दन करे, ५५ शरीरके जोगके सचित्त फूलादिकका
त्याग न करे, ५६ द्वार, मुद्रा, कुंरुलादि, तिनकों बाहिर ठोड आवे, तो
आशातना लगे, क्योंकि लोकोंमें ऐसा कहनां हो जावे, कि अर्हतके जक्त
सर्व कंगाल जिह्वाचर हैं, औसी तरें जिनमतकी लघुता होती है, ५७ जग
वान्कों देखकें हाथ न जोडे, ५८ एक साडीका उत्तरासंग न करे, ५९
मुकुट मस्तकमें राखे, ६० मौलि शिरका लपेटनां रखे, ६१ फूलका सेह
रा रखे, ६२ नालियर आदिकका ठोत गेरे, ६३ गेंदसँ खेले, ६४ पिता
प्रमुखको जुहार करे, ६५ जानं चेष्टा करे, ६६ तिरस्कारके वास्ते रेका
रा तुंकारा देवे, ६७ लेहणे वास्ते धरणां देवे, ६८ संग्राम करे, ६९ म
स्तकके केश सुकावे, ७० पालवी मारी बैठे, ७१ काष्ठ पाडुकादि पगमें
रखे, ७२ पग पसारें, ७३ सुखके वास्ते पुड पुनी देवावे, ७४ देहरेमें शरी
रका अवयव धोकें कीचड कूडा करे, ७५ पगादिकके लगी हूइ धूल
जाडे, ७६ मैथुन, (कामक्रीना) करे, ७७ जूंथां गेरे, ७८ भोजन जीमे,
७९ गुह्य चिन्ह ढककें न बैठे, ८० वैदकका काम करे, ८१ क्रय विक्रय
रूप बाणिज्य करे, ८२ शय्या बनाकें सोवे, ८३ पानी पीनेके वास्ते जल
का मटका रखे, तथा मंदिरके पतनालेका पाणी लेवे, ८४ स्नान करने
की जगा बनावे, यह उत्कृष्ट चौरासी आशातना जिनमंदिरमें बजें.

अब गुरुकी तेत्तीस आशातना बजें, सो लिखते हैं. १ गुरुके आगें
चले, तो आशातना है. जेकर रस्ता बतावनेके वास्ते चले, तो आशा
तना नहीं होती है, २ गुरुके बराबर चले, ३ गुरुके पीठें अन्के चले,
यह जैसे चलनेकी तीन आशातना कही हैं, औसँही बैठनेकीनी तीन
आशातना जान लेनी, तथा खडा होनेकीनी तीन आशातना जान लेनी,
यह सर्व नव आशातना हूइ. १० भोजन करतां गुरुसँ पहिलां शिष्य
चलु करे, ११ गमनागमन गुरुसँ पहिलां आलोचे, १२ रात्रमें कौन
जागता है, औसँ गुरुके कहेकों सुन कर जागता हुआजी शिष्य उत्तर न
देवे, तो आशातना लगे, १३ जब किसीकों कुछ कहनां होवे, सो गुरुसँ

मुखकोश विना पूजा करणी, २० मेले शरीरसें मेले वस्त्रोंसें
 २१ पूजा करतां मन चपल करणां, ३० शरीरके जोगके सचित्त
 विना उतारे मंदिरमें जानां, ३१ अचित्तद्रव्य आभूषणादि उतारके
 ३२ एकसाडीका उत्तरासंग न करे, ३३ जगवान्कों देखके हाथ न
 ३४ शक्तिके हूये पूजा न करे, ३५ अनिष्ट फूलोंसें पूजा करे, ३६
 प्रमुख आदर रहित करे, ३७ जिनप्रतिमाके निंदककों हटावे नहीं,
 मंदिरके द्रव्यकी सार संचाल न करे, ३८ शक्तिके हूयेनी अस्वारी
 के मंदिरमें जावे, ४० देहरेमें वनासें पहिखां चेत्यर्चदन करे, जिन-
 तथा जहां प्रतिमा होवे, तिहां यह चालीश मध्यमसें

अथ उत्कृष्ट चौरासी आशातनाका नाम कहते है. १ जिनमें
 खेल खंखार गेरे, २ जूए आदिककी फ्रीडा करे, ३ कलह करे, ४
 कला शिखे, ५ कुरखा करे, ६ तंवोल खावे, ७ तंवोलका उगाव
 ८ गाली देवे, ९ दिसा मात्रा करे, १० हस्तादि अंग धोवे, ११ केश
 १२ नख समारे, १३ रुधिर गेरे, १४ सुखडी प्रमुख देहरेमें खावे, १५
 डे आदिककी त्वचा गेरे, १६ ओपधि खाके पित्त गेरे, १७ वमन करे,
 दांत गेरे, १८ हाथ पग मसलावे, १९ घोडादि बांधे, २० दांतका
 गेरे, २१ आंखका मेल गेरे, २२ नखका मेल गेरे, २३ गालका
 २४ नाकका मेल गेरे, २५ माथाका मेल गेरे, २६ शरीरका मेल
 २७ कानका मेल गेरे, २८ जूतादिके खीलने वास्ते मंत्र साधे,
 राजा प्रमुखका काम होवे, तिसका विचार करे, ३० मंदिरमें विवाह
 की पंचायत करे, ३१ व्यापारका लेखा करे, ३२ राजका काम
 देवे, अथवा जाइ प्रमुखकों धनका हिस्सा बांटके देवे, ३३ घरका
 मंदिरमें रखे, ३४ पगोपरि पग रखेके दुष्टासन करके घेठे, ३५ मंदिर
 चीतसें ठाणा लगावे, गोवरका ढेर लगावे, ३६ वस्त्र सुकावे, ३७
 दले, ३८ पापडवेसी सुकावे, ३९ बड़ां बनावे, उपलक्षणसें कयर, चीदा
 शाक प्रमुख सुकाने वास्ते गेरे, ४० राजा, जाइ, लहणे वालेके जयसें नाच
 मूलगंजारेमें लुक जावे, ४१ पुत्रकलत्रादिके मरणसें मंदिरमें रोवे,
 स्त्रीकथा, नक्तकथा, राजकथा, देशकथा, यह चार विकथा करे, ४२
 ईशुका गन्ना घके, तथा धनुष्यादि शस्त्र घके, ४४ गाय वेलादि मंदिरमें

स्के, ४५ शीत दूर करणों अग्नि तापे, ४६ धान्यादि रांधे, ४७ रूपश्ये
 रखे, ४८ विधिसं नैपेधिकी न करे, ४९ ठत्र, ५० पगरखी, ५१
 अत्र, ५२ चामर, यह चार, मंदिरके बाहिर न ठोडे, ५३ मन एकाग्र न
 रे, ५४ तैलादिकका मर्दन करे, ५५ शरीरके जोगके सचित्त फूलादिकका
 याग न करे, ५६ हार, मुझा, कुंमलादि, तिनको बाहिर ठोड आवे, तो
 आशातना लगे, क्योंकि लोकोंमें ऐसा कहनां हो जावे, कि अर्हतके उक्त
 त्रि कंगाल निश्चाचर हैं, ऐसी तरें जिनमतकी लघुता होती है, ५७ नग
 त्रकों देखकें हाथ न जोडे, ५८ एक साडीका उत्तरासंग न करे, ५९
 कुट मस्तकमें राखे, ६० मौखि शिरका लपेटनां रखे, ६१ फूलका सेह
 रखे, ६२ नाखियर आदिकका ठोत गेरे, ६३ गंदसैं खेले, ६४ पिता
 मुखको जुहार करे, ६५ जान चेष्टा करे, ६६ तिरस्कारके वास्ते रेका
 तुंकारा देवे, ६७ लेहणे वास्ते धरणां देवे, ६८ संग्राम करे, ६९ म
 तकके केश सुकावे, ७० पालठी मारी बैठे, ७१ काष्ठ पाडुकादि पगमें
 रखे, ७२ पग पसारे, ७३ सुखके वास्ते पुड पुनी देवावे, ७४ देहरेमें शरी
 का अवयव धोके कीचड कूडा करे, ७५ पगादिकके लगी हूड धूल
 जाडे, ७६ मेधुन, (कामक्रीना) करे, ७७ जुंथां गेरे, ७८ जोजन जीमे,
 ७९ गुण चिन्ह टककें न बैठे, ८० वेदकका काम करे, ८१ क्रय विक्रय
 बाणिज्य करे, ८२ शय्या बनाके सोवे, ८३ पानी पीनेके वास्ते जस
 ता नटका रखे, तथा मंदिरके पतनाडेका पाणी लेवे, ८४ ज्ञान करने
 की जगा बनावे, यह उल्लूक चौरासी आशातना जिनमंदिरमें बजें.

अथ गुरुकी तेत्तीस आशातना बजें, तो सिखते हैं. १ गुरुके आगें
 चले, तो आशातना है. जेकर रस्ता बतावनेके वास्ते चले, तो आशा
 तना नहीं होती है. २ गुरुके बराबर चले, ३ गुरुके पीठे धनके चले,
 यह जेतें चलनेकी तीन आशातना कही हैं, ऐतेंही बघनेकीनी तीन
 आशातना जान लेनी. तथा खडा होनेकीनी तीन आशातना जान लेनी,
 यह संपे नव आशातना हूड. १० जोजन करतां गुरुसैं पहिछां शिष्य
 चडु करे, ११ गमनागमन गुरुसैं पहिछां आखोचे, १२ रात्रमें कान
 जागता है, ऐतें गुरुके कहेको सुन कर जागता हूयाकी शिष्य ठनरन
 देवे, तो आशातना लगे, १३ जब किनीको कुछ कहनां हावे, तो गुरुसैं

मुखकोश विना पूजा करणी, २७ मेले शरीरसें मेले वस्त्रोंसें पूजा
 २८ पूजा करतां मन चपल करणां, ३० शरीरके जोगके सचित्त
 विना उतारे मंदिरमें जानां, ३१ अचित्तद्रव्य आचूषणादि उतारके
 ३२ एकसाडीका उत्तरासंग न करे, ३३ जगवान्को देखके हाथ न
 ३४ शक्तिके दूये पूजा न करे, ३५ अनिष्ट फूलोंसें पूजा करे, ३६
 प्रमुख आदर रहित करे, ३७ जिनप्रतिमाके निंदकको हटावे नहीं,
 मंदिरके द्रव्यकी सार संज्ञाल न करे, ३८ शक्तिके दूयेजी अखारी उपर
 के मंदिरमें जावे, ४० देहरेमें वस्त्रोंसें पहिलां चैत्यवंदन करे,
 तथा जहां प्रतिमा होवे, तिहां यह चालीश मध्यमसें

अथ उत्कृष्ट चौरासी आशातनाका नाम कहते हैं. १ जिनमें
 खेल खंखार गेरे, २ जूए आदिककी क्रीडा करे, ३ कलह करे, ४
 कला शिले, ५ कुरला करे, ६ तंबोल खावे, ७ तंबोलका उगाव
 ८ गाली देवे, ९ दिसा मात्रा करे, १० हस्तादि अंग धोवे, ११ केश
 १२ नख समारे, १३ रुधिर गेरे, १४ सुखडी प्रमुख देहरेमें खावे, १५
 डे आदिककी त्वचा गेरे, १६ ओपधि खाके पित्त गेरे, १७ वमन करे,
 दांत गेरे, १८ हाथ पग मसलावे, २० घोरुआदि बांधे, २१ दांतका
 गेरे, २२ आंखका मेल गेरे, २३ नखका मेल गेरे, २४ गालका मेल
 २५ नाकका मेल गेरे, २६ माथाका मेल गेरे, २७ शरीरका मेल
 २८ कानका मेल गेरे, २९ जूतादिके खीलने वास्ते मंत्र साधे,
 राजा प्रमुखका काम होवे, तिसका विचार करे, ३० मंदिरमें विवाह
 की पंचायत करे, ३१ व्यापारका लेखा करे, ३२ राजका काम
 देवे, अथवा जाइ प्रमुखको धनका हिस्सा बांटके देवे, ३३ घरका
 मंदिरमें रखे, ३४ पगोपरि पग रखेके छुटासन करके बैठे, ३५ मं
 जीतसें ठाणा लगावे, गोबरका ढेर लगावे, ३६ बल सुकावे, ३७ दा
 दले, ३८ पापढवेली सुकावे, ३९ बड़ा बनावे, उपलक्षणसें कयर, ची
 शाक प्रमुख सुकाने वास्ते गेरे, ४० राजा, जाइ, लहणे वालेके जयसें ना
 मूलगंजारेमें छुके जावे, ४१ पुत्रकलत्रादिके मरणसें मंदिरमें रोवे,
 स्त्रीकथा, नक्तकथा, राजकथा, देशकथा, यह चार विकथा करे, ४२ वा
 ईष्टका गन्ना धरे, तथा धनुष्यादि शस्त्र धरे, ४४ गाय घेलादि मंदिर

रखे, ४५ शीत दूर करणों अग्नि तापे, ४६ धान्यादि रांधे, ४७ रूपइये परखे, ४८ विधिसे नैपेक्षिकी न करे, ४९ उत्र, ५० पगरखी, ५१ शस्त्र, ५२ चामर, यह चार, मंदिरके बाहिर न ठोडे, ५३ मन एकाग्र न करे, ५४ तैलादिकका मर्दन करे, ५५ शरीरके जोगके सचित्त फूलादिकका त्याग न करे, ५६ हार, मुझा, कुंमलादि, तिनकों बाहिर ठोड आवे, तो आशातना लगे, क्योंकि लोकोंमें ऐसा कहनां हो जावे, कि अर्हंतके जक्त सर्व कंगाल जिह्वाचर हैं, ऐसी तरें जिनमतकी लघुता होती है, ५७ जग वानकों देखकें हाथ न जोडे, ५८ एक साडीका उत्तरासंग न करे, ५९ मुकुट मस्तकमें राखे, ६० मोलि शिरका लपेटनां रखे, ६१ फूलका सेह रा रखे, ६२ नालियर आदिकका ठोत गेरे, ६३ गेंदसैं खेले, ६४ पिता प्रमुखको जुहार करे, ६५ जानं चेष्टा करे, ६६ तिरस्कारके वास्ते रेका रा तुंकारा देवे, ६७ लेहणे वास्ते धरणां देवे, ६८ संग्राम करे, ६९ मस्तकके केश सुकावे, ७० पालनी मारी बैठे, ७१ काष्ठ पाण्डुकादि पगमें रखे, ७२ पग पतारे, ७३ सुखके वास्ते पुड पुनी देवावे, ७४ देहरेमें शरीरका अवयव धोकें कीचड कूडा करे, ७५ पगादिकके लगी दूध धूल जाडे, ७६ मेथुन, (कामक्रीडा) करे, ७७ जूंआं गेरे, ७८ जोजन जीमें, ७९ गुह्य चिन्ह ढकें न बैठे, ८० वैदकका काम करे, ८१ क्रय विक्रय रूप बाणिज्य करे, ८२ शय्या बनाकें सोवे, ८३ पानी पीनेके वास्ते जल का मटका रखे, तथा मंदिरके पतनालेका पाणी लेवे, ८४ स्नान करने की जगा बनावे, यह उत्कृष्ट चौरास्ती आशातना जिनमंदिरमें बजें.

अब गुरुकी तेत्तीस आशातना बजें, सो लिखते हैं. १ गुरुके आगें चले, तो आशातना है. जेकर रस्ता बतावनेके वास्ते चले, तो आशातना नहीं होती है, २ गुरुके बराबर चले, ३ गुरुके पीठें अन्के चले, यह जैसैं चलनेकी तीन आशातना कही हैं, ऐसैंही बैठनेकीनी तीन आशातना जान लेनी, तथा खडा होनेकीनी तीन आशातना जान लेनी, यह सर्व नव आशातना दूध. १० जोजन करतां गुरुसैं पहिलां शिष्य चबु करे, ११ गमनागमन गुरुसैं पहिलां आलोचे, १२ रात्रमें कोन जागता है, ऐसैं गुरुके कहेकों सुन कर जागता दृष्टाजी शिष्य उत्तर न देवे, तो आशातना लगे, १३ जब किसीकों कुछ कहनां होवे, सो गुरुसैं

पहिलांही शिष्य कह देवे, १४ दूसरे साधुवांके आगे पहिलां अशना।
 आलोवे पीठें गुरु आगे आलोवे, १५ ऐसेही अशनादिक पहिलां हूँ
 साधुवांकों दिखाके पीठें गुरुकों दिखावे, १६ अज्ञादिककी पहिलां ओं
 कों निमंत्रणा करके पीठें गुरुकों निमंत्रणा करे, १७ गुरुके बिना पू
 स्वेष्टासें श्रोतोंकों क्षिग्ध मधुरादि आहार दे देवे, १८ गुरुकों परिक्रि
 श्वादि दे कर पीठें यथेष्टासें क्षिग्धादि आहार आप खावे, १९ गु
 षोलाये, तब पोसे नहीं, २० गुरुकों बहुत कर्कश (कठोर) वचन बोले
 २१ जब गुरु बोलावे, तब आसन उपर बैठाही उत्तर देवे, २२ गुरु बो
 लावे तब कहे, क्या कहते हो? २३ गुरुको तूकारा देवे, २४ गुरुने प्रेरणा
 फरी तब गुरुकी प्रेरणाको उत्तर करके हणो, जैसे गुरु कहे कि:-हे शि
 ष्य! तुमने ग्लानकी वैयाख्य क्यों नहीं करी? तब शिष्य कहे कि तुम
 क्यों नहीं करते? २५ गुरुकथा कहते हुए मनमें प्रसन्न न होवे, किंतु
 विमन होवे, २६ गुरुादि कहते गुरुकों कहे तुमकों अर्थ याद नहीं है?
 यह अर्थ ऐसें नहीं होवे है? २७ गुरु कथा कहता है, तिस कथाकों
 बीचमें रुद करे, अथ कहे, में कथा करुंगा? ऐसें कहे, २८ परंपराकों पागे
 जेमें कहेकी अथ तो निदाका व्यवहार है, इत्यादि कहे, २९ परंपराकों
 बिना उठ्यां गुरुकी कही कथाकों अपणी चतुराई दिखलाने वास्ते विशेष
 प करके कहे, ३० गुरुकी जय्या संयारकादिकों पगोंरीं संघटा करे, ३१
 गुरुकी जय्यादि उपर घेतनादि करे, ३२ गुरुमें उंचे आसन उपरि बैठे,
 ३३ गुरुके बराबर आसन करे, यह तेनीस गुरुकी आशानना है.

ये गुरुकी आशाननाती तीनों खपकी है, एक पगादिमें संघटा करे, मो
 जघन्य आशानना, दूसरी श्लेष्मका दिने गुरुके खयमाय खगाये, मो मज्जम
 आशानना है, तीसरी गुरुका मुखके छुरे, जेकर करे, तांती उलटा करे
 कठोर वचन बोले, गुरुका कथा ने छुरे, खगुपदि उलट्ट आशानना है.

म्यायनाचार्यकी आशाननाती तीन प्रकारकी है, एक तो इधर उधर ह
 खावे रसोंका मनन करे, तो जघन्य आशानना प्रकारकी है, दूसरी तो
 धरे, मो मज्जम आशानना, तीसरी म्यायनाचार्यकी प्रामिमें गेरे, अथवा
 रस आशानना है, ऐसेही ज्ञानोपकरण, जेकरा नाम है, नया तोड़े मो उ
 रस, रजोहरादि, सुगंधद्रव्य, दंष्ट्रक, दंष्ट्रक प्रमुखकी ती आशानना टावे.

श्रावककों सर्वधर्मोपकरण चरवला मुखवस्त्रिकादि विधि पूर्वक स्वस्था नमें स्थापना प्रमुख करणी चाहियें, अन्यथा धर्मकी अवज्ञादि प्रमुख दूषणोंकी आपत्ति होवे, शास्त्रमें लिखा हैकि जो उत्सूत्र जांखे, तथा अर्हत्की अरु गुरुकी अवज्ञादि महा आशातना करे, तो सावद्याचार्य, मरीचि, जमाढी, कुलवालिकादिककी तरें अनंत जन्म मरणकी वृद्धि होवे ॥ यतः ॥ उस्सुत्त जासगाणं, वोहीनासो अणंतसंसारो ॥ पाणच्चएवि धीरा, उस्सुत्तं ता न जासंति ॥ १ ॥ तिठयर पवयण सुयं, आयरियं गणहरं म हिट्ठियं ॥ आसायंतो बहुसो, अणंत संसारिउ होइ ॥ १॥ अत्यर्थः सुगमः ॥

ऐसेही देव, ज्ञान, साधारण ड्रव्यका तथा गुरुका ड्रव्य, वस्त्र, पात्रादिकका विनाश तिनकी उपेक्षादिक जो करनी है सोजी महा आशातना है, चछूचे ॥ गाथा ॥ चेइअ दव विणासे, इस्सिधाए पवयणस्स उड्डाहे ॥ संजई चउज्जंगे, मूलगगी वोहिलाजस्स ॥ १ ॥ तथा श्रावकदिनकृत्य दर्शनशुद्धि आदि शास्त्रोंमेंजी लिखा हैं ॥ गाथा ॥ चेइअ दवं साहा, रणं च जो उहइ मोहिअमईउं ॥ धम्मं च सो न याणाइ, अहवा वड्डाउ उं नरए ॥ १॥ अर्थः—चैत्यड्रव्य तथा साधारण ड्रव्य जो नाश करे, मोहितमति जातो वो धर्म नहीं जानता है, अथवा उसने नरकका आयु बांधा है, उसके वास्तेही ऐसा अयोग्य काम करता है, तथा चैत्यड्रव्यका नाश, नक्षण, उपेक्षण कोइ करे, तिसकों जेकर साधु न हटावे, तो वो साधु जी अनंत संसारी हो जावे.

प्रश्नः—मन, वचन अरु काया करकें जिसने सावद्य त्यागा है, ऐसे यतिकों चैत्यड्रव्यकी रक्षामें क्या अधिकार है?

उत्तरः—जे कर राजा तथा बजीरकों याचना करकें तिनोके पाससैं घर, हाट, गामादि लेकर विधिसैं नवा पेदास उत्पन्न करे, तब तेरा विवक्षित दूषण होवेगा, परंतु यथा ऋद्धकादि करकें जो किसीने पहिलां दीया होवे, उसका नाश देखकें रक्षा करे, तब कोइ दूषण नहीं होता हैं, वलिके जिनाज्ञाकी आराधना होनेसैं धर्मकी पुष्टि होती है.

नवे जिनमंदिरकें बनानेसैं जो पूवें बना हूआ है उसके प्रतिपंधि अर्थात् शत्रुकों जो साधु हटावे, तो वो साधुकों न प्रायश्चित्त है, तथा नवो साधुकी प्रतिज्ञा जंग होती है, आगमजी ऐसाही कहता है. इस वास्ते

जिनद्रव्य जो खावे, उपेक्षा करे, वो श्रावक, आगले जन्ममें बुद्धिहीन होवे, अरु पापकर्मसें लेपायमान होता है.

॥तथा ॥ आयाणं जो चंजइ, पन्निवत्तं धणं न देइ देवस्त ॥ नस्तं तं समुत्तिस्सइ, सोविहु परिजमइ संसारे ॥ १ ॥ अस्वार्थः—जो पुरुष मंश की आमदनी चांगे. अरु जो मुखसें कह कर जिनद्रव्य न देवे, सोनी संसारमें भ्रमण करे ॥ तथा ॥ जिणवयणं बुद्धिकरं, पञ्चावगं नाणदंसणं गुणं ॥ जक्कं तोजिणद्वं, अणंत संसारीउं होइ ॥ १ ॥ अर्थः जो जिनमतकी वृद्धिकरे, चैत्यपूजा, चैत्यसमारणा, महापूजा सत्कारादि करके ज्ञान वंश नकी प्रतापना करे, परंतु जिनद्रव्यका नाश करे, तो अनंत संसारी होवे, अरु जे कर जिनद्रव्यकी रक्षा करे, तो अल्प संसार हो जावे, देवद्रव्यकी वृद्धिकरे, तो तीर्थंकर नामकर्म धांधे, परंतु पंदरा कर्मादान, सोटा यणिज्य यजके सद्व्यवहार करके जिनद्रव्यकी वृद्धि करे ॥ यतः ॥ जिणवर आणा रहियं, वज्जारंतावि केवि जिणद्वं ॥ बुडंति जवसमुरे, मूढा मोहेण अन्नाणी ॥ २ ॥ इसका अर्थ सुगम है.

कोइ कहते हैं कि श्रावक बिना श्रोतोंका अधिक गहनां रखके काज तरमें व्याजकी वृद्धि करे, सो उचित है, ऐसा कहनाजी ठीक है, क्योंकि सम्यक्त्व पचीसी आदिक ग्रंथोंमें संकाशकी कथामें तैसेही लिखा है. चैत्यद्रव्यके खानेसें बहुत कष्ट होते हैं, सागर श्रेष्ठीयत्. यह कथा आरुविधि ग्रंथमें जान लेनी. ज्ञान द्रव्यकी देव द्रव्यकी तरें अकल्पनीय है, अर्थात् नाश करनां, जहण करनां, विगलतेकी सार मंताल न करणी. ऐसेहि साधारण द्रव्यकी संवका दीया दृष्ट्याही कल्पना है, बिना दीया काममें खानां न कल्पे, संवकांती सात क्षेत्रमेंही माधारण द्रव्य लगानां चाहिये मंगने वाशोंकों उसमेंसे देनां न चाहिये, ऐसीही ज्ञान संवंधी कागज पत्रादि सावुका दीया दृष्ट्या श्रावकनें अपने कार्यमें नहीं लगानां, अपनी सीधीमेंनी न रखना, स्थापनाचार्य अरु जपमास्त्रादिसे खेनेका व्यवहार न दीवता है, तथागुरुकी आज्ञा बिना मावु साधविकों सिखारी पासं विमानां अरु यस्त्र मूत्रादिकका खेनांती नहीं कल्पता. इत्यादि विचार खेनां, निस्वास्ते योगासांती ज्ञान अरु साधारण द्रव्यका भोग न करनां चाहिये.

जो देवके नामका बोले, सो अव्य तत्काल देवे, क्योंकि देवअव्य जि तना शीघ्र देवे, उतना अठा है, कदापि बिलंब करे, तो पीठें क्या जाने धनहानि मरणादि होवे? तदा देवअव्यका शृण रहजाये, और संसारीका देनांजी श्रावकको शीघ्र दे देनां चाहियें, तो फेर देवअव्यका क्या करनां है? जिस बखत माला पहराइ तथा और कुछ अव्य देवके जंभा रेमें देनां करा, उत्ती बखतसें वो देव अव्य हो चूका, उस अव्यसें जो लाज होवे, सोजी देवअव्य है उस अव्यको श्रावकनें जोगना नहीं, इस वास्ते शीघ्र दे देनां चाहियें, जे कर मात्तादिक पीठें देनेका कोल करे, तदा करार उपर बिना माग्या जरूर दे देवे, जे कर करार उल्लंघन देवे, तो देवअव्य खायेका छूषण है. देवअव्यकी जगराहीजी श्रावक अपनी जगराहीकी तरें चलतें करे, जेकर देवअव्य लेनेमें ढील करे, अरु कदाचित् दुर्जिह्म दरिद्रादि अवस्था आ जावे, तो फेर मिलनां दुष्कर हो जावे, तथा देनेवालाजी उत्साह पूर्वक कपट रहित हो कर शीघ्र दे देवे, नहीं तो देव अव्य जहणका दोष है.

तथा देव ज्ञान साधारण संबंधी हाट, खेत, बानी, पायाण, ईंट, काष्ठ, बांस, मिट्टी, खनीया, चंदन, केसर, बरात, फूल, फूलचंगेरी, धूपपात्र, कलश, वासकूंपी, ठत्रतहित सिंहासन, चमर, चंद्रोदय, जालर, जेरी, चानणी, तंबू, कनात, पनदें, कंबल, चौकी, तखत, पाटा, पाटी, घना, बडा उरसा, कल्लज, जल, दीवा प्रमुख चैत्यशाला, प्रनालादिकका पाणी, ये सर्व पूर्वोक्त वस्तु देवकी अपने काममें न वर्तनी चाहियें, टूट फूट मलीनादि हो जावे, तो महापाप होवे, देव आगे दीवा बालकें उस दीवेके चानणेमें कोइ सांसारिक काम करे, तो मरकें तिर्यच होवे. उस वास्ते देवके दीवेसें खतपत्रजी न बांचनां चाहियें, रूपकजी न परखणा, घरका कामजी देवके दीवेसें न करणां, तथा देवके चंदन, केसरसें तिलक न करे, देवके जलसें हाथ न धोवे, त्नात्रजलजी थोनासा लेनां चाहियें, तथा देवसंबंधी जल्लरी, मृदंग, जेरी प्रमुख गुरुके तथा संघके न बजावे, जे कर कोइ देवके उपकरण जल्लरी आदिकसें कोइ कार्य करनां होवे तो बहुत निकराणां देव आगे रक्कके लेवे, कदाचित् कोइ उपकरण टूट जावे, तब अपणां धन खरचके नवा बनवावे, देवका दीवा लालटैन (फानूप) प्रमुखमें जुदाही राखे,

जिनद्रव्य जो खावे, उपेक्षा करे, वो श्रावक, आगले जन्ममें बुद्धिहीन होवे, अरु पापकर्मसें लेपायमान होता है.

॥तथा ॥ आथणं जो जंजइ, पन्निवधं धणं न देइ देवस्स ॥ नस्सं वं समुविक्खइ, सोविहु परिजमइ संसारे ॥ १ ॥ अथार्थः—जो पुरुष मंदि की आमदनी जागे. अरु जो मुखसें कह कर जिनद्रव्य न देवे, सोजी संसारमें ज्रमण करे ॥ तथा ॥ जिणवयण बुद्धिकरं, पञ्चावगं नाणदंसण गुणा णं ॥ जत्तं तोजिणद्वयं, अणंत संसारीउं होइ ॥ १ ॥ अर्थः जो जिनमतकी वृद्धिकरे, चैत्यपूजा, चैत्यसमारणा, महापूजा सत्कारादि करके ज्ञान दर्श नकी प्रज्ञावना करे, परंतु जिनद्रव्यका नाश करे, तो अनंत संसारी हो वे, अरु जे कर जिनद्रव्यकी रक्षा करे, तो अल्प संसार हो जावे, देव द्रव्यकी वृद्धिकरे, तो तीर्थंकर नामकर्म बांधे, परंतु पंदरा कर्मादान, खो टा वणिज्य वर्जके सद्व्यवहार करके जिनद्रव्यकी वृद्धि करे ॥ यतः ॥ जिणवर आणा रहियं, वज्झारंतावि केवि जिणद्वयं ॥ बुडंति जवसमुदे, मूढा मोहेण अघ्राणी ॥ १ ॥ इसका अर्थ सुगम है.

कोइ कहते हैं कि श्रावक बिना ओरोकां अधिक गहनां रखके काश्रों तरमें व्याजकी वृद्धि करे, सो उचित है, ऐसा कहनाजी ठीक है, क्योंकि सम्यक्त्व पच्चीसी आदिक ग्रंथोंमें संकाशकी कथामें तैसैही लिखा है. द्रव्यके खानेसें बहुत कष्ट होते हैं, सागर श्रेष्ठीवत्. यह कथा श्राद्धविधि ग्रंथसें जान लेनी. ज्ञान द्रव्यजी देव द्रव्यकी तरें अकल्पनीय है, अर्थात् नाश करनां, नष्टण करनां, बिगन्तेकी सार संज्ञाल न करणी. ऐसेहि साधारण द्रव्यजी संघका दीया हुआही कल्पता है, बिना दीया काममें खानां न कल्पे, संघकोंजी सात क्षेत्रमेंही साधारण द्रव्य खगानां चाहिये मंगने वालोंको उसमेंसे देनां न चाहिये, ऐसीही ज्ञान संबंधी कागज पत्रादि साधुका दीया हुआ श्रावकनें अपने कार्यमें नहीं लगानां, अपणी पोथीमेंजी न रखना, स्थापनाचार्य अरु जपमालादि ले लेनेका व्यवहार तो दीखता है, तथागुरुकी आज्ञा बिना साधु साधविकों लिखारी पासं लिखानां अरु वस्त्र सूत्रादिकका लेनांजी नहीं कल्पता. इत्यादि विचार लेनां, तिसवास्ते थोमासाजी ज्ञान अरु साधारण द्रव्यका जोग न करनां चाहिये.

जो देवके नामका बोले, सो अव्य तत्काल देवे, क्योंकि देवअव्य जि तना शीघ्र देवे, उतना अछा है, कदापि विसंव करे, तो पीठें क्या जाने धनहानि मरणदि होवे? तदा देवअव्यका कृण रहजाये, और संसारीका देनांजी आवश्यकों शीघ्र दे देनां चाहियें, तो फेर देवअव्यका क्या करनां है? जिस वखत माला पहराइ तथा और कुछ अव्य देवके जंमा रेमें देनां करा, उती वखतसे वो देव अव्य हो चुका, उस अव्यसे जो लाज होवे, सोजी देवअव्य है उस अव्यकों आवश्यकनें जोगना नहीं, इस वास्ते शीघ्र दे देनां चाहियें, जे कर मात्तादिक पीठें देनेका कोल करे, तदा करार उपर बिना माग्या जरूर दे देवे, जे कर करार उल्लंघकें देवे, तो देवअव्य खायेका छूपा है. देवअव्यकी उगराहीजी आवश्यक अपनी उगराहीकी तरें चलसें करे, जेकर देवअव्य अनेमें ढील करे, अरु कदाचित् दुर्भिक्ष दरिद्रादि अवस्था आ जावे, तो फेर निजनां छुपकर हो जावे, तथा देनेवालाजी उत्ताह पूर्वक कपट रहित हो कर शीघ्र दे देवे. नहीं तो देव अव्य जहाणका दोष है.

तथा देव ज्ञान साधारण संबंधी हाट, खेत, बानी, पापाण, ईंट, काष्ठ, घांस, मिट्टी, खनीया, चंदन, केसर, वरास, फूल, फूलचंगेरी, गुपपात्र, कलश, वासहुंपी, ठग्नसहित सिंहासन, चमर, चंद्रोदय, जासर, जेरी, चानणी, तंबू, कनात, पनदे, कंबल, चौकी, तखत, पाटा, पाटी, घना, बटा उरसा, कल्लाज, जल, दीवा प्रमुख चैत्यशाखा, प्रनासादिकका पानी, ये सर्व पूर्वोक्त वस्तु देवकी अपने काममें न वर्तनी चाहियें, दूट फूट मल्लीनादि हो जावे, तो महापाप होवे. देव आगे दीवा दासके उन दीविके चानणमें कोई सांसारिक काम करे, तो नरके तिर्पच होवे. उस वास्ते देवके दीवसें न्यनप्रय जी न बांचनां चाहियें. रूपकजी न परखपा, घरका कामही देवके दीवसें न करणां, तथा देवके चंदन, केसरमें तिखक न करे, देवके जलमें हाथ न धोवे, खाद्यजलजी पानाना सेनां चाहियें, तथा देवबंधी उज्जरी, नृदंग, जेरी प्रमुख घरके तथा संपके न दजावे, जे कर कोई देवके उपर ए उज्जरी आदिकमें कोई कार्य करनां होवे तो बहुत निजगणां देव आगे रखके सेवे, कदाचित् कोई उपकरण दूट जावे, तब अगला धन नष्ट करे तथा पतवावे, देवका दीवा साइटेन (फानूस) प्रमुखमें लदाही गाने,

जिनद्रव्य जो खावे, उपेक्षा करे, वो श्रावक, आगले जन्ममें बुद्धिहीन होवे, थरु पापकर्मसें लेपायमान होता है.

॥तथा ॥ आयाणं जो जंजइ, पन्निवन्नं धणं न देइ देवस्स ॥ नस्सं नं समुविक्खइ, सोविहु परिजमइ संसारे ॥ १ ॥ अस्यार्थः—जो पुरुष मंसि की आमदनी जांगे. थरु जो मुखसें कह कर जिनद्रव्य न देवे, सोजी संसारमें भ्रमण करे ॥ तथा ॥ जिणवयणं बुद्धिकरं, पञ्चावगं नाणदंसणं गुणं ॥ जत्तं तोजिणद्वयं, अणंत संसारीउं होइ ॥ १ ॥ अर्थः जो जिनमतकी वृद्धिकरे, चैत्यपूजा, चैत्यसमारणा, महापूजा सत्कारादि करके ज्ञान इतनी प्रज्ञावना करे, परंतु जिनद्रव्यका नाश करे, तो अनंत संसारी होवे, थरु जे कर जिनद्रव्यकी रक्षा करे, तो अल्प संसार हो जावे, वरु जिनद्रव्यकी वृद्धिकरे, तो तीर्थंकर नामकर्म बांधे, परंतु पंदरा कर्मावान, सो टा वणिज्य वर्जके सद्व्यवहार करके जिनद्रव्यकी वृद्धि करे ॥ यतः ॥ जिणवर आणा रहियं, वज्जारंतावि केवि जिणद्वयं ॥ बुडंति जवसमुगे, मूढा मोहेण अघ्राणी ॥ १ ॥ इसका अर्थ सुगम है.

कोइ कहते हैं कि श्रावक बिना थोरोकां अधिक गहनां रखके काश्रों तरमें व्याजकी वृद्धि करे, सो उचित है, ऐसा कहनाजी ठीक है, क्योंकि सम्पत्त्य पचीसी आदिक ग्रंथोंमें संकाशकी कथामें तैसंहि सिखा है. वरु जिनद्रव्यके खानेसें बहुत कष्ट होते हैं, सागर श्रेष्ठीवत्. यह कथा आरुविधि ग्रंथसें जान लेनी. ज्ञान द्रव्यजी देव द्रव्यकी तरें थकवनीय है, अर्थात् नाश करनां, नष्टण करनां, बिगड़तेकी सार संज्ञा न करणी. ऐसेहि साधारण द्रव्यजी संघका दीया दूयाही कल्पता है, बिना दीया काममें खानां न कल्पे, संघकांजी सात क्षेत्रमेंही साधारण द्रव्य खगानां चाहिये मंगने बाघोंकां उसमेंसे देनां न चाहिये, ऐसीही ज्ञान संबंधी कागज पत्रादि साधुका दीया दूया श्रावकनें अपने कार्यमें नहीं खगानां, अपनी जीर्णोद्धार न रखना, स्थापनाचार्य थरु जपमाळादि से लेनेका व्यवहार सो दीव्यता है, तथागुरुकी आज्ञा बिना साधु साधविकां सिखारी पासं सिखनां थरु ब्रह्म सूत्रादिकका खेनांजी नहीं कल्पता. इत्यादि विचार लेनां, निःसंवास्ते थोमासाजी ज्ञान थरु साधारण द्रव्यका जोग न करनां चाहिये.

तथा देव, गुरु, यात्रा, तीर्थ अरु संघकी पूजा, साधर्मिवात्सल्य, स्नात्र, प्रज्ञावना, ज्ञान लिखानां इत्यादिक कारणो वास्ते दूसरोंके पाससें जब धन लेवे, तब चार पांच पुरुषोंकी साहीसें लेवे, फेर खरचनेके अवसर में जी गुरु संघादिकके आगे प्रगट कह देवे, कि यह धन मैंने अमुक का दीया खरचा है, परंतु मेरा नहीं है.

तथा तीर्थादिमें अरु पूजा स्नात्र ध्वजा चढाने आदि आवश्यक कर्तव्यमें दूसरोंका सीर न करे, किंतु स्वयमेवही यथाशक्ति करे, जेकर कि सीने धर्म खरचमें धन दीया होवे, तब तिसका प्रकट नाम ले कर सर्व समक्ष न्याराही खरच करना चाहिये, यदा बहुतें मिल कर यात्रा साधर्मि वात्सल्य संघपूजादि करे, तब जितना जितना जिसका हिस्सा होवे, उतना उतना प्रगट कह देवे, नहीं तो पुण्यफलकी चोरी लगे.

तथा मरणांत समयमें माता, पितादिक जो धर्मका खरचकरनां कहे, तथा पुत्रादि जो खरच करनां माने, सो बहुत श्रावकादिकोंके आगे कहनां चाहिये, जैसें मैं तुमारे नामसें इतने दिनोके बीचमें इतना धन खरचुंगा, तुम उसकी अनुमोदना करो, पीठें सो धन सर्व समक्ष अपने नामसें नहीं, किंतु माता पितादिके नामसें तत्काल खरच कर देनां चाहिये, धर्मका खरच मुख्यवृत्ति करके तो साधारण अव्यवहीका करनां चाहिये, क्योंकि जहां जहां काम पड़े, तहां तहां खरचमें लावे, सात क्षेत्रोंमें जौनसा क्षेत्र सीदाता देखे, तिसमें धन खरचके तिसको उपष्टंज देवे, कोइ श्रावक निर्धन हो जावे, तोजी उसको उसी धनसें उपष्टंज देवे, लोकेष्युक्तं॥श्लोक॥ दरिद्रं नर राजेन्द्र, मा समृद्धं कदाचन॥ व्याधितस्योपधं पथ्यं, नीरोगस्य किमौपधं ॥ १ ॥ इत्सी वास्ते प्रज्ञावना संघ पहिरावणी, सम्यक्त्वका खड्गलंजनादिकमें जो निर्धन साधर्मी हूवे, तिनको विशेष वस्तु देनी चाहिये, अन्यथा धर्मावज्ञादि दोष होवे. यह बात युक्त है, जो धनवानसें निर्धनको अधिक वस्तु देनी चाहिये, यदा शक्ति न होवे, तदा दोनोको बराबर देवे.

अपणा खरच धर्मअव्ययसें न करणां, यात्रादिकके निमित्त जो धन काढे, सो सर्व देवादि निमित्त हो गया, जे कर वो अव्यय अपने जोजनमें अथवा गाडी आदिकके जाडेमें लगावेगा, तब जरूर उसको देवअव्यय खा

तथा साधारण ड्रव्यसें जो ऊँछरी प्रमुख बनावे, तब तो सर्वधर्म कार्यमें वत्ते, तो दोष नहीं जैसे जावोंसें करे सोई प्रमाण है.

देवका तथा ज्ञानका घरादिकजी श्रावककों निःशूकतादि दोष होनेसें जाड़े खेनां न चाहियें. साधारण संबंधि घरादिक संघकी अनुमतिसें लोक बहारका जाना दे कर वरते तो दोष नहीं, परंतु जाड़ा करारके दिनमें स्वयमेव दे देवे, उस मकानके समरानेमें जो धन लगे, तिसकों जाड़ेमें गिन लेवे, तो दोष नहीं. श्रु जो साधर्मी संकट (निर्धनपणेसें दुःखी) होवे, वो संघकी आज्ञासें बिना जाड़े दीयांजी रहे, तो दोष नहीं तथा तीर्थादिकमें श्रु देहरेमें जो बहुत काल रहनां पड़े, उहां सोवे, तो तहांजी लेखे अनुसार अधिक जाना दे देवे, थोड़ा देवे तो दोष है. जाना बिना दीयां देव, ज्ञान, साधारण संबंधी वस्त्र नाखियर सोने रूपेकी पाटी, कलश, फूल, पकान, सुखड़ी प्रमुख उजमणेमें, पुस्तक पूजामें, नंदी मांमनेमें, न मेलनी चाहियें, क्योंकि उजमणादि तो उसमें अपने नामका करा है फेर देव, ज्ञान, साधारण संबंधी पूर्वोक्त वस्तु जाड़े बिना वत्ते, तो स्पष्ट दोष है.

तथा घर देहरेमें अक्षत, सोपारी, फल, नैवेद्यादिकके वेचनेसें जो धन होवे, तिसके लीये फूलादिककों घर देहरेमें न चढावे, तथा पंचायती वगैरे मंदिरमेंजी थाप न चढावे, पूजारी थागें सर्वे स्वरूप कहे कि यह मंदिरही का ड्रव्य है, परंतु मेरा नहीं, पूजारी न होवे, तो संघ समझ कह देवे, ऐसे न कहे तो झूठ है. घर देहरेका नैवेद्यादि मांसीको देवे, परंतु वो मांसीकी नौकरीमें न गिन लेवे, जे कर पहिलांही सामग्री नौकरीमें देणी करछे तो दोष नहीं. मुख्यवृत्तिमें तो नौकरी चढावेसें अलग देनी चाहियें.

घर देहरेके चढे हूए चावसादि बड़े मंदिरमें जेज देवे; अन्यथा घर देहरेके ड्रव्यसें घर देहरेकी पूजा होवेगी, नतु स्वड्रव्य करके होवेगी, तब अनादर अवज्ञादि दोष है, ऐसा करणां युक्त नहीं, क्योंकि स्वड्रव्यसेंही पूजा करणी उचित है, तथा देहरेका नैवेद्य अक्षतादि अपने धनकी तरफ रखने चाहियें, पूरे मूत्रासें वेचके देव ड्रव्यकों बधारनां चाहियें, परंतु जेतें तें से मोक्षसें न जाने देवे, नहीं तो देवड्रव्यके नाश करेका झूठ लग जावेगा.

तथा सर्व तरें रहा करतांजी चौर, अग्नि, आदिकके उपड्रव्यमें देव ड्रव्य नष्ट हो जाये, तो चिंता कारककों दोष नहीं.

तथा देव, गुरु, यात्रा, तीर्थ अरु संघकी पूजा, साधर्मिवात्सल्य, स्नात्र, प्रज्ञावना, ज्ञान लिखानां इत्यादिक कारणो वास्ते दूसरोंके पाससे जब धन लेवे, तब चार पांच पुरुषोंकी साक्षीसे लेवे, फेर खरचनेके अवसर में जी गुरु संघादिकके आगे प्रगट कह देवे, कि यह धन मैंने अमुक का दीया खरचा है, परंतु मेरा नहीं है.

तथा तीर्थादिमें अरु पूजा स्नात्र ध्वजा चढाने आदि आवश्यक कर्त्तव्यमें दूसरोंका सीर न करे, किंतु स्वयमेवही यथाशक्ति करे, जेकर कि तीने धर्म खरचमें धन दीया होवे, तब तिसका प्रकट नाम ले कर सर्व समक्ष न्याराही खरच करना चाहिये, यदा बहुतें मिल कर यात्रा साधर्मि वात्सल्य संघपूजादि करे, तब जितना जितना जिसका हिस्सा होवे, उतना उतना प्रगट कह देवे, नहीं तो पुण्यफलकी चोरी लगे.

तथा मरणांत समयमें माता, पितादिक जो धर्मका खरच करना कहे, तथा पुत्रादि जो खरच करना माने, सो बहुत श्रावकादिकोंके आगे कहना चाहिये, जैसे मैं तुमारे नामसे इतने दिनोके बीचमें इतना धन खर चुंगा, तुम उसकी अनुमोदना करो, पीछे सो धन सर्व समक्ष अपने नामसे नहीं, किंतु माता पितादिके नामसे तत्काल खरच कर देना चाहिये, धर्मका खरच मुख्यवृत्ति करके तो साधारण अव्यवहारीका करना चाहिये, क्योंकि जहां जहां काम पड़े, तहां तहां खरचमें लावे, सात क्षेत्रोंमें जौनसा क्षेत्र सीदाता देखे, तिसमें धन खरचके तिसको उपष्टंज देवे, कोइ श्रावक निर्धन हो जावे, तोजी उसको उसी धनसे उपष्टंज देवे, लोकेप्युक्तं॥श्लोक॥ दरिद्रं जर राजेंद्र, मा समृद्धं कदाचन॥ व्याधितस्योपथं पथं, नीरोगस्य किमौपथं ॥ १ ॥ इसी वास्ते प्रज्ञावना संघ पहिरावणी, सम्यक्त्वका लड्डुलंजनादिकमें जो निर्धन साधर्मी हूवे, तिनको विशेष वस्तु देनी चाहिये, अन्यथा धर्मावज्ञादि दोष होवे. यह बात युक्त है, जो धनवानसे निर्धनको अधिक वस्तु देनी चाहिये, यदा शक्ति न होवे, तदा दोनोको बराबर देवे.

अपणा खरच धर्मअव्यसे न करणां, यात्रादिकके निमित्त जो धन काटे, सो सर्व देवादि निमित्त हो गया, जे कर वो अव्य अपने जोजनमें अथवा गाडी आदिकके जाडेमें लगावेगा, तब जरूर उसको देवअव्य खा

नेका पाप लगेगा, कदाचित् अज्ञान करके चूकिकें वे समजीसैं इत्यादि कारणोंसैं कोइ श्रावकादि देवादि अव्यका उपभोग कर लेवे, तो तिसकें प्रायश्चित्तमें जितना अव्य खाया होवे, उतना अव्य देव साधारण संबंधि करे, मरण अवस्थामें शक्तिके अज्ञावसैं धर्मस्थानमें थोड़ाही खरचे, परंतु देणा किसीका न रखे, देवादि अव्य तो विशेष करकें न रखे, इसी री तिसैं श्रीजिनराजजीकी पूजा दृढभावोंसैं करनी चाहियें ॥ इति संक्षेपतो जिनेश्वर परमेश्वर पूजनविधिः संपूर्णः ॥

अथ गुरु वंदनाकी विधि लिखते हैं, जो ज्ञानादि पांच आचार करकें सं युक्त होवे, और गुरु प्ररूपक होवे, सो गुरु है, पांच आचारका स्वरूप देखना होवे, तदा श्री रत्नशेखरसूरिकृत आचारप्रदीप ग्रंथ देख लेना.

यद् पूर्वोक्त गुरु आचार्यादिकके पास जो प्रत्याख्यान पूर्वे अपने आप करा था, सो विशेष करकें विधि पूर्वक गुरु मुखसैं उचारावे, क्योंकि प्रत्याख्यान तीन तरोंसैं करा जाता है, एक आत्मसाक्षिक, दूसरा देव साक्षिक, तीसरा गुरुसाक्षिक, तिसकी विधि यह है, कि:-

मंदिरमें देववंदनार्थ, ग्रात्रादि देखनेके अर्थ, धर्मापदेश देनेके अर्थ, गुरु जिनमंदिरमें थापा होवे, तथा वस्तिमें होवे, तहां मंदिरकी तरें तीन निरस्तही पंचाजिगमनादि यथायोग्य विधिसैं जा करकें गुरुके धर्मापदेश पहिछां तथा पीठें, यथाविधिमें पंचवीश आचक्षपक गुरु द्वादशावर्त्त वंदना देवे, वंदनाका बड़ा फल कहा है, कृष्णवासुदेववत्. तथा जाप्यमें वंदना तीन तरोंकी कही हैं, एक तो मस्तक नमावणादि सो फेटा वंदना, दूसरी संपूर्ण दो ग्यमासमण पढ़नेमें स्तोत्रवंदना होती है, तिसरी द्वाद शावर्त्त करनेमें द्वादशावर्त्त वंदना होती है, तिसमें प्रथम वंदना तो सर्व संघकों करणी, दूसरी वंदना सर्व स्वदंशनी साधुओंको करणी, थरु ती सरी वंदना जो है, सो पदवीधर आचार्यादिकको करनी.

जिसने मंत्रेका पञ्चक्रमणां न करा होवे, तिसने विधि पूर्वक वंदना क रणी, क्योंकि जाप्यमें असेही विन्या है. १ जाप्योक्तविधि देवापयप्रतिक्रमे २ पीठें कृष्णवक्त्रका कायोत्सर्ग करे, सो उद्गास प्रमाण करे, जेकर स्त्रमें श्री में संगम करा होवे, तदा अशुचिकी सर्व जगा धोकें पीठें एक सो आठ आत्मोद्गम प्रमाण कायोत्सर्ग करे, ३ पीठें चैत्यवंदन करे, ४ पीठें द

माश्रमण पूर्वक मुखवस्त्रिका प्रतिलेखे, ५ पीठें दो वंदना देवे, ६ पीठें देवसिआदिक आलोवे, ७ फेर वंदना दो देवे, ८ पीठे अष्टुष्ठिउंमि कहे, ९ पीठें दो वंदना करे, १० पीठें प्रत्याख्यान करे, ११ पीठें जगवन् अहं इत्यादि चार कृमाश्रमण देवे, १२ पीठें स्वाध्याय संदिसावठ कहे, फेर कृमाश्रमण पूर्वक सधाय करूं, औसैं कहे, पीठें स्वाध्याय करे, यह सवे रकी वंदनाविधि है.

तथा प्रथम १ ईर्यापध पडिक्रमे, २ पीठें चैत्यवंदना करे, ३ पीठें कृमाश्रमण पूर्वक मुखवस्त्रिका प्रतिलेखन करे, ४ पीठे दो वंदना करे, ५ पीठें दिवसचरिमका प्रत्याख्यान करे, ६ पीठें दो वंदना करे, ७ पीठें देवसि आलोउं कहे, ८ पीठें दो वंदना करे, ९ पीठें अष्टुष्ठिउं कहे, १० पीठें जगवन् इत्यादि चार स्तोत्रवंदना करे, ११ पीठें दैवसिक प्रायश्चित्त का कायोत्सर्ग करे, १२ पीठें पूर्ववत् दो कृमाश्रमण देकर स्वाध्याय करे, यह संध्याकी वंदन विधि है.

जे कर किसी कार्य करणादिसैं गुरुका चित्त और तर्फ होवे, तदा संक्षेप मात्र वंदना करें. औसैं वंदना पूर्वक गुरु पासों प्रत्याख्यान करावे, क्योंकि श्रावकप्रज्ञासूत्रमें लिखा है, कि प्रत्याख्यान करणेंके परिणाम दृढनी होवे, तोनी गुरुके पासों करावे, गुरु पासों प्रत्याख्यान करानेमें यह गुण है, सो लिखते हैं. १ दृढता होती है, २ आज्ञाका करणों होता है, ३ कर्मका क्षय होता है, ४ उपशमकी वृद्धि होती है.

औसैंही दैवसिक चातुर्मासिक नियमादिनी गुरुका संजव होवें, गुरु साक्षिकही करनां चाहियें, योगशास्त्रमें गुरुकी जक्ति औसैं लिखी है॥श्लोक॥ अच्युतानं तदालोके, ऽजियानं च तदागमे ॥ शिरस्पंजलिसंश्लेषः, स्वयमासनढोकनं ॥ १ ॥ आसनाजिग्रहो जक्त्या, वंदना पर्युपासनं ॥ तद्ध्यानेऽनुगमश्चेति, प्रतिपत्तिरियं गुरौ ॥ २ ॥ अस्यार्थः—१ गुरुकों आता देखकें खडा हो जानां, २ सन्मुख लेने जानां, ३ मस्तक उपर अंजलि बांध कर प्रणाम करणां, ४ गुरुकों आसन देनां, ५ जब गुरु आसन उपर बैठा जावेगा, तद में आसन उपर बैठुंगा, औसा अजिग्रह लेवे, ६ जक्तिसैं वंदना पर्युपासना करे, जब गुरु जावे, तब पौहुंचाने जावे, ७ यह गुरुकी जक्ति है. तथा १ अडके गुरुके बराबर न बैठे, २ आगें न बैठे, ३ गुरुकी

तर्क पीठ दे कर न बैठे, ४ पग उपर पग चढा करके गुरुके पास न बैठे, ५ पालठी मारके न बैठे, ६ हाथोंसे जंघाकों खपेटके न बैठे, ७ पग पसार के न बैठे, ८ विकथा न करे, ९ बहुत हसे नहीं, १० नींद न लेवे, ११ मन, वचन, काया गोप करके हाथ जोमी जक्ति बहुमान पूर्वक उपयोग सहित सुणे क्योंकि गुरु पासों धर्म सुननेसे इस लोक परलोकमें बहुत गुण होता है.

तथा गुरुको पूठे, किसी साधुको रोगादि होवे, तदा वैद्यकों बोलाउं? औषधिका योग मिलाउं? इत्यादि गुरु गच्छकी सर्व तरसे खबर सार लेवे, जोजनके अक्षरमें उपाश्रयमें जा करके साधुओंको निमंत्रणा करे, तथा औषधि पध्यादि जो जिसको योग्य होवे, सो देवे, जब साधु, श्रावकके घरमें आवे, तब जो जो वस्तु साधुके योग्य होवे, सो सो सर्व वस्तुको देने वास्ते निमंत्रणा करे, सर्व वस्तुओंका नाम लेवे, जेकर साधु नहीं जी लेवे, तो जी दाताको जीर्णशेष वत् पुण्य फल है. रोगी साधुकी प्रतिचर्या करणसे जीवानंद वैद्यवत् महापुण्य फल होता है. साधुओंके रहनेको स्थान देवे, तथा जिनशासनके प्रत्यक्षी कों सर्वशक्तिसे निवारण करे, तथा साधवीयोंको दुष्ट, नास्तिक, दुःशील जनोंसे रक्षा करे, अपने घरके पास बंदोबस्त बाखा गुप्त उपाश्रय रहनेको देवे, उनोंकी अपणी छी, बहू, बहिन, बेटी प्रमुखसे सेवा जक्ति करावे, अपणी बेटीयोंको साधवीयोंसे विद्या शिखलावे, जेकर किसी बेटीको वैराग्य चढे, तब साधवीयोंको दे देवे, जे कर कोइ साधवी धर्मकृत्य भूल जावे, तदा स्मरण करा देवे, जेकर कोइ साधवी अन्यायमें प्रवृत्त होवे, तो निवारण करे, तथा आप रोज गुरुपासों नवीन नवीन शास्त्र पढे, जेकर बुद्धि थोड़ी होवे, तदा ऐसा विचारे कि सुरमेंदानीमेंसे थोडा थोडा अंजन निकलनेसे अंजन क्षय हो जाता हैं, तथा वर्मीका बंधणा, ऐसे परिश्रम अन्यास करणसे निःफल दिन न जाने देवे, थोड़ी बुद्धिजी होवे तो जी पढने का अन्यास न ठोडे, इत्यादि धर्मकृत्य करके पीठें जेकर राजा श्रावक होवे, तदा राजसज्जामें जावे, प्रधान होवे, तो न्याय सज्जामें जावे, वणिजा होवे, तदा हट्टीवजारमें जावे, इत्यादि उचित स्थानमें जा करके धर्मसे विरुद्ध न होवे, उसी रीतिसे धन उपार्जनेकी चिंता करे.

प्रथम राजा किस रीतिसे प्रवर्त्त, सो लिखते हैं. १ जो राजा होवे, सो दरिद्री. मान्य, अमान्य, उत्तम, अधमादि सर्वलोकोका पक्षपात रहित मध्य

स्थ हो कर न्याय करे, २ राजाके कारजारी (मंत्री) आदिक तिनका धर्माविरोध यह है, कि राजाका अरु प्रजाका नुकसान न होवे, तैसें प्रवर्त्ते, क्योंकि जो मंत्री राजाका हित बांठता है, उस उपर प्रजा छेप करती है. अरु जो प्रजाका हितकारी है उसको राजा ठोड देता है, इसी वास्ते राजमंत्री आदिकोंको दोनोका हितकारी होना चाहिये.

बणिक् व्यापारी लोकोका धर्माविरोध यह है. जो व्यापारकी शुद्धि करे ॥ तथैव चाह ॥ विवहारसुद्धि देता, ३ विरुद्ध ज्ञाय उचित चरणेहिं ॥ तो कुण्ड अचंचितं, निवाहितो नियं धम्मं ॥ १ ॥ अन्वार्थः— व्यापारकी शुद्धि, देशादि विरुद्धका त्याग, उचित आचरण, इन तीनों प्रकारें करके धन उपार्जनकी चिंता करे, अरु अपने धर्मका भी निर्वाह करे. क्योंकि ऐसा कोई कार्य नहीं है, कि— जो धनसे सिद्ध न होवे ? तिस वास्ते बुद्धिमान् धन उपार्जनमें बल करे ॥ यदाह ॥ नहि तद्विद्यते किंचि. यद्येन न सिध्यति ॥ यत्नेन मतिमांस्तस्मा, दयमेकं प्रसाधयेत् ॥ १ ॥ इहां जो अर्थ चिंता है. सो अनुवादरूप है, क्योंकि धन उपार्जनकी चिंता लोकमें स्वतः ही सिद्ध है. कुछ शास्त्रकारके उपदेशसे नहीं. अरु 'धर्म निर्वाहयन्' यह जो कहना है, सो विधेय करने योग्य है, क्योंकि इसकी प्राप्ति नहीं है, शास्त्रका जो उपदेश है. सो अघ्रात अर्थकी प्राप्ति वास्ते है, शेष सब अनुवादरूप है. अथ आजीविका चखानेके प्रकार कहते हैं.

आजीविका जो है, सो सात प्रकारसे है. १ व्यापार करनेसे, २ विद्यासे, ३ खेती करनेसे, ४ पशुओंके पालनेसे. ५ कारीगरी करनेसे, ६ नौकरी करनेसे, ७ जीव मांगनेसे. तिनमें बलिज्य करनेसे बलिक लोकोकी आजीविका है. २ विद्यासे वेद्यादिकोंकी आजीविका है. ३ खेती करनेसे जाटादिकोंकी है. ४ पशुपालनेमें गोपाल अजापालादिकोंकी है. ५ शिल्प करके चितारादिकोंकी है. ६ नौकरी करनेसे सिपाही लोकोकी है. ७ जिहा करके मांग खानेवालोंकी आजीविका है. तिनमें १ बलिज्य सो धान्य, घृत, तैल, काष्ठांस, सूत्र, वस्त्र, धानु, मणि, मोती, रत्नइया. मोनइया प्रमुख जिनकी जातका किरियाया है. सो सब व्यापार है. अरु जो व्यापार देना है. सोही व्यापार है.

२ विद्याकी औपधि, रत्न. रत्नापन, चूर्त, अंजनादि. बान्धुक शास्त्र. पन्नी

का शकुन, जूत जविष्यतादि निमित्त, सामुद्रिक, चूनामणि, जवाहिर परस
नेका शास्त्र, धर्म, अर्थ, काम, ज्योतिष तर्कादि जेदसँ अनेक प्रकारकी हे,
इस वेद्यविद्यामें अतारपणां, पंसारिपणां करनां ठीक नहीं, क्योंकि इसमें
प्रायः दुष्पर्याप्त होनेसँ बहुत गुण नहीं दिखता हे, क्योंकि जिसकों जिसमें
लाज होता हे, वो उसी बातकों चाहता हे ॥ तदुक्तं ॥ आर्या ॥ विप्रहृमि
धृतिं जटा, वेद्याश्च व्याधिपीकितं लोकं। मृतकं बहुलं विप्राः, क्षेमसुजिह्वं च
निर्मयाः ॥ १ ॥ अर्थः— सुजट संग्राम चाहते हैं, वेद्य रोगपीकित लोकों
कों चाहते हैं, अरु ब्राह्मण बहुत लोकोंकों मरणां चाहते हैं, तथा निरुप
द्रव्य मुकासकों साधु निर्मय चाहते हैं, परंतु जो वेद्य अत्यंत लोभी होवे,
धन खेने वास्ते उसटा औपधि जानके देवे, जिसके मनमें दया न होवे,
जो त्यागी साधुओंकी औपधि न करे, जो दरिद्री अनाथादि लोकोंकों म
रते जानकेजी धन खोस खेवे, मांस मद्यादि अजहय वस्तुका जहण क
रनां वतावे, जूरी औपधि बनाके लोकोंकों ठगे, वो वेद्यविद्या नरफकी देने
वासी हे, सो न करनी चाहियें. अरु जो वेद्य सत् प्रकृति वासा होवे,
लोभी न होवे, पूर्वोक्त हृषण रहित होवे, परोपकारी होवे, ऐसेकी वेद्य
विद्या श्रीरूपनंददेवजीके जीव जीवानंद वेद्यकी तरें दोनों जयोंमें गुण
देने वासी हे, ऐसेी वेद्यविद्यासँ आजीविका करे, तो अमी हे.

३-४ तीसरी खेती, चौथा पशुपालक, उसमें खेतीनी तीन तरेंमें होती
हे, एक मेघसँ, दूसरी कृष नहरादिसँ, तीसरी दोनोंसँ. चौथा पशु पालक
पणां, सो गौ, महिष, बकरी, ऊंट, बैल, घोडा, हाथी, इनकों घेच घेचके आ
जीविका करणी, ये खेती अरु पशुपाल्य, यह दोनों काम विवेकीकों क
रने उचिन नहीं. जे कर इनके करे बिना नियांह न होवे, तदा धीज पों
नेका काख जाणे, जूमि सरस नीरस जाणे, अरु जो खेन पहिलां बाघों
बिना घोया न जावे, इसरा रस्तेका क्षेत्र, यह दोनों, क्षेत्रकों बर्ज, सो धन
नहीं वृद्धि होवे, अरु जो पशुपाल्य पणां करे, तो पशुओं ऊपर निर्दय न
होवे, पशुका कोइ अवयव न वेदे. इसी तरें पशुपाल्यणा करे.

५ पांचवीं शिक्ष आजीविका हे, सो शिक्ष सो तरेंका हे, मूल शिक्ष
तो पांच हैं, १ कुंनार २ खोहार, ३ विनाग, ४ वणकर, अर्थात् गुननेका
सा, ५ नाइ इन पांचोंके बीस बीस जेद हे, यद्यपि इसमें न्यूनाधि

कजी होवेंगें, परंतु श्रीकृष्णदेवजीने प्रथम सौ तरेंहीका शिष्टप पर्याकों शिखलाया था, इस वास्ते सौही लिखाहै. जो सांसारिक विद्या है, सो सर्वकोइ शिष्टपमें है, कोइ कर्ममें है, शिष्टप गुरु उपदेशसें आताहै, सोही है. अरु कर्म स्वयमेवही आ जाता है, यह कर्मजी सामान्यसें चार प्रकारें है, १ उत्तम बुद्धिसें धन कमाता है, २ मध्यम हाथोंसें कमावे. ३ अधम पगोंसें कमावे, ४ अधमाधम मस्तकसें वोजा ढो कर कमावे.

६ सेवा करकें आर्जाविका करे, सो सेवा राजाकी, मंत्रीकि, शेठकी, सामान्य लोकोंकी, नोकरी यह चार प्रकारें है. प्रथम तो नौकरी किसी कीजी न करनी चाहियें, क्योंकि नौकर परवश हो जाता है, जे कर निर्वाह न होवे, तदा नौकरीजी करे, परंतु जिसकी नौकरी करे, उसमें यह कहे हुए गुण होवे, तो उसके उहां नौकर रहे, जो १ कानोंका दुर्बल न होवे, २ सूरमा होवे, ३ कृतज्ञ होवे, ४ सात्विक, गंजीर, धीर, उदार, शीलवान्, गुणोंका रागी होवे, उसकी नौकरी करे, अरु जो क्रूर प्रकृति वाला होवे, कुव्यसनी होवे, लोभी होवे, चतुर न होवे, सदा रोगी रहे, मूर्ख होवे, अन्यायी होवे, अैसोंकी नौकरी न करे, क्योंकि कामंदकीय नामक नीति शास्त्रमें लिखा है, कि जिस राजाकी वृद्ध पुरुषोंनें सेवा करी होवे, सो राजा अछा है, स्वामीकोजी चाहियें कि जैसा सेवक होवे, तैसा उसका सन्मान करे, सेवकजी थके हुए, जूखे हूये, क्रोधमें हूये, व्याकुल होये, तृपावंत होये, शयन करने लगे, दूसरेके अर्ज करते हूये, इन अवस्थाओंमें स्वामीकों विनति न करे, तथा राजाकी माता, राजाकी राणी, राजकुमार, मुख्यमंत्री, अदालती, राजेका दरवाजेवान, इनके साथ राजाकी तरें वर्तना चाहियें. इस रीतीसें प्रवर्त्ते, तो धनकी प्राप्ति दुर्लभ नहीं ॥ यद्भवे ॥ श्लोक ॥ इच्छुक्तेत्रं समुद्रश्च, यौनिपोषणमेव च ॥ प्रसादो जूजुजां चैव, सद्यो धंति दरिद्रतां ॥१॥ निंदंतु मानिनां सेवा, राजादीनां सुखैषिणः ॥ स्वजनाः स्वजनोद्धार, संहारो न विना तथा ॥ २॥ मंत्री, श्रेष्ठी, सेनानी इत्यादि व्यापारजी सर्व नृपसेवाके अंतर्भावही हैं, परंतु जेहलखाने का दरोगादि, नगरका कोटवालपणां, सीमापाल, इत्यादि नौकरी न करणी चाहियें, क्योंकि यह नौकरीयो निर्दयी लोकोंके करनेकी हैं, तिस वास्ते श्रावककों नहीं करनी. जे कर कोइ श्रावक राजाधिकारी हो जावे,

तव वस्तु पालादिक मंत्रीयोंकी तरें महाधर्म कीर्तिका करनेवाला होवे, श्रावक मुख्यवृत्ति करकें तो सम्यग्दृष्टिकीही नोकरी करे.

७ सातमी जीख मांगनेसें आजीविका है, सो जीख मांगनेकेजी अनेक जेद हैं. तिनमें धर्मोपपन्न मात्र आहार, वस्त्र, पात्रादिककी जिद्दा लेवे, सो जी जिस साधुने सर्वसंसार और परिग्रहका संग त्यागा है, तिसको मांगनी उचित है, क्योंकि उसकी जीख मांगनेसें और गति नहीं है, श्रीहरिजगत्सरिजीने पांचमे अष्टकमें जिद्दा तीन प्रकारकी लिखी है, प्रथम जिद्दा सर्व संपत्करी, दूसरी पौरुषघ्नी, तीसरी वृत्तिजिद्दा है, जो साधुपरिग्रहका त्यागी, धर्मध्यान संयुक्त, जिनाज्ञासहित होनेसें पदकायके आरंजसें रहित, तिसकी जिद्दा सर्व संपत्करी है, तथा जो साधु तो बन गया है, परंतु साधु के गुण उसमें नहिं हैं, तथा जो यहस्थावासमें लष्ट पुष्ट पदकायका आरंजी पक्किमावहे बिनाका श्रावक, तथा और यहस्थ जो मांगकें खावे, तिसकी पौरुषघ्नी जिद्दा है, वो पुरुष धर्मकी लाघवताका करने वाला है, पूर्वजन्ममें जिनाज्ञा खंडने वाला है, आगे अनंत जन्म लग दुःखी रहेगा, तथा जो निर्धन, अंधा, पांगला, असमर्थ, और कोई काम करने समर्थ नहीं, वो जीख मांगकें खावे, तो तीसरी वृत्तिजिद्दा है, यह जिद्दा दुष्ट नहीं. इस जीखके मांगनेसें लघुतादि धर्मके दूषण नहीं होते हैं, क्योंकि जो इनको देता है, वो अनुकंपा (दया) करकें देता है, देनेवाला पुण्य उपार्जन करता है, इस वास्ते यहस्थको जीख न मांगनी चाहियें. धर्मी श्रावकको तो विशेष करकें जीख न मांगनी चाहियें, जिद्दा मांगनेसें धर्मकी निंदा, अरु धर्मकी निंदासें दुर्लजबोधी होता है, जीख मांगनेसें उदर पूर्ण तो होता है, परंतु लक्ष्मी नहीं होती है ॥ यतः॥ लक्ष्मीर्वसति वाणिज्ये, किंचिदस्ति च कर्पणी ॥ अस्ति नास्ति च सेवायां, जिद्दायां न कदाचन ॥ १ ॥

मनुस्मृतिके चौथे अध्यायमेंजी लिखा है, कि जब वाणिज्य करे तब कष्टमें सहायक, पूंजीका बल, स्वज्ञाग्योदय, देश काल, देखकें करे, वाणिज्य करणे लगे, तब पहिला थोड़ा करे, पीछें लाज जाणे, तो यथायोग्य करे, कदाचित् निर्वाहके न दूये खरकर्मजी करे, तोजी अपने आपको निंदता दूया करे, बिना देखा बिना परीक्षाके सौदा न लेवे, जो सौदा संदेह वाला

होवे, वो बहुतोंके साथ मिल कर लेवे, जहां खचक परचक्रादिका उपद्रव न होवे, श्रु धर्म सामग्री होवे, तिस क्षेत्रमें व्यापार करे.

कालसैं अछाही तीन, पर्वतिथिके दिन व्यापार न करे, जो वस्तु वर्षा कालके साथ विरोधि होवे, सो त्यागे, जावसैंती जो कृत्रिय जातिका व्यापारी राजा प्रमुख होवे, तिसके साथ व्यापार न करे, अपणे विरोधीकों उधारा न देवे, तथा नट विट बेस्या, जुआरी प्रमुखकों तो विशेष करके उधारा नहींही देवे, हथीयारबंधके साथ तथा व्यापारी ब्राह्मणके साथ लेन देन न करे, मुख्य तो अधिक मोलका गहनां रखके व्याजु देवे, क्योंकि उस्तें मांगनेका क्लेश, विरोध, धर्महानी, धरणादिक कष्ट नहीं होते हैं, जे कर असैं निर्वाह न होवे, तदा सत्यवादीकों व्याजु उधार देवे, व्याज जी एक, दो, तीन, चार, पांच प्रमुख सैंकडे पीठें महीनेमें जले लोक जि सको निंदे नहीं, अस्ता लेवे.

जेकर देनां होवे, तदा करार उपर विन मांग्याही देनां चाहियें, कदाचित् निर्धनपणसैं एकवारमें दे न सके, तो किशत प्रमाणें जरूर दे देवे, क्योंकि देनां किसीको न रखनां चाहियें ॥ यष्टुकं ॥ धर्मरिंजे कृण्वेदे, कन्या दाने धनागमे ॥ शत्रुघातेऽग्निरोगे च, कालक्षेपं न कारयेत् ॥१॥ जे कर देनां न उतरे, तव उसका नोकर रहकर जी देनां उतार देवे, नहींतो जवांतरोंमें उसका कर्मकर (चाकर) महिप, बैल, जंट, खर, खचर, घोना प्रमुख व न कर देनां पड़ेगा, लेने बाखाजी जब जान लेवे, कि यह देने समर्थ नहीं तव बिलकुड मांगनां ठोन देवे, असैं कहै कि जब तूं देने समर्थ होवेगा, तव दे देनां, नहीं तो यह धन में अपणें धर्ममें लगाया, वहीमें लिख ले ता हूं, तेरेसैं में कुछ नहीं लेवुंगा ?

आवककों मुख्यवृत्ति तो धर्माजनोंसैंही व्यवहार करनां चाहियें, क्योंकि दोनों पास धन रहेगा तो धर्ममें लगेगा, श्रु किसी म्लेछ पास धन रहि जावे, तदा व्युत्सर्जन कर देवे, व्युत्सर्जन करां पीठें जेकर वो म्लेछ फेर धन दे देवे, तदा वो धन धर्ममें खरचणे वास्ते संघकों सांप देवे, श्रु व्युत्सर्जन करा है, अस्ताजी कह देवे, असेही जो कोइ वस्तु खोइ जावे, श्रु दुंदनेसैं न मिले, तो तित वस्तुकाजी व्युत्सर्जन कर देवें, पीठें कदाचित् अपने पास

धनहानी हो जावे, धनकी अप्राप्ति हो जावे, तोजी खेद न करे, क्योंकि खेदका न करणां, यही लक्ष्मीका मूल कारण है, बहुत धन जाता रहे, तोजी धर्म करणमें आलस न करे, क्योंकि संपदा अरु आपत्त बड़े आदमीकोंही होती है, सदा एक सरिखे दिन किसीके नहीं जाते हैं, पूर्व जन्म जन्मांतरके पुण्यपापोदयसें संपदा, विपदा होती है, इस वास्ते धैर्यका अवलंबनां श्रेष्ठ है, यदा अनेक उपाय करनेसेंजी दरिद्र छूट न होवे, तदा किसी जाग्यवान्का आधार लेवे, अर्थात् सांजी धनके व्यवहार करे, क्योंकि काष्ठके संग लोहाजी तर जाता है.

जे कर बहुत धन हो जावे, तदा अजिमान न करे, क्योंकि लक्ष्मीके साथ पांच वस्तु होती हैं, १ निर्दयत्व, २ अहंकार, ३ तृष्णा, ४ कठिन वचन योसनां, ५ वेष्ट्या, नट, विट, नीच पात्र, बल्लज होते हैं, इस वास्ते बहुत धन हो जावे तो इन पांचोंको, अवकाश न देवे, किसीके साथ लडाइ न करे, जयदस्तके साथ तो विशेष करके लडाइ नहिं करे, तथा १ धनयंत, २ राजा, ३ पक्षवासा, ४ बलवान्, ५ दीर्घरोपी, ६ गुरु, ७ नीच, ८ तपस्वी, इन आठोंके साथ वाद न करे, जहां तक नरमाइसें काम बने, तहां तक कठिनाइ न करे, लेने देनेमें त्रांति जूलादिकसें अन्यथा हो जावे, तो विशाद न करे, किंतु न्यायसें जगका मिटावे, न्याय करनेवालेकोंजी निखौती पक्षपात रहित होनां चाहियें, तथा जिस वस्तुके महंगे होनेमें पर्यायकों पीडा होवे, उसी वस्तुके महिंगे होनेकी चिंता न करे, परंतु कर्मयोगसें दुर्निहादिक हो जावे. तबनी सोदेमें दुणे तिणे खान हो जावे, तदा अन्नमें अधिक न लेवे, तथा एक, दो, तीन, चार, पांच रूपइये संकडेमें अधिक व्याज न लेवे, किमीका गिर पडा धन न लेवे, तथा का खांतरमें क्रयविक्रयादिमें देशकालादि अपेक्षा उचित शिष्टजन अनिहित खान होवे, सो लेवे. यह कवन प्रथम पंचाशकसूत्रमें लिखा है, तथा मोटा तोस, मोटा मापो, न्यूनाधिक वाणिज्य रसमें जेस संतेस न करे, वस्तु का अनुचित मोस, अनुचित व्याज, खंचा अर्थान् घुस, कोटवटी न लेवे. पमा दृष्ट्या तथा मोटा रूपकादि किसीकों ग्यरेमें न देवे, दूमांके व्यापारमें जंग न करे, ग्राहक न बकावे, बानकी थोर न दिमावे, अयोग करके वस्तु न बेचे, जासी मन पत्रादि न बनावे, इत्यादि परवचन ५

णाकों बजें, सर्वथा प्रकारें व्यवहार शुद्धि करे, क्योंकि व्यवहार शुद्धिही गृहस्थ धर्मका मूल है।

तथा स्वामिजोह, मित्रजोह, विश्वासघात, वासजोह, वृद्धजोह, देवगु रजोह न करे, घापणमोसा न करे, ये सर्व महापापके काम बजें, तथा कूडी साक्षी, रोष, विश्वासघात, कृतघ्नपणा, ये चारों कर्मचंगलपणां हैं, तिसको बजें, फूठ जो है, सो सर्व पापोंसे बड़ा पाप है, इस वास्ते छुठ सर्वथा न बोले, न्यायसे धन उपार्जन करे, अरु जो अन्यायी लोक सुखी दिखते हैं, वो अन्यायसे सुखी नहीं हैं, किंतु उनके पूर्व जन्मके पुण्यके फलसे सुखी हैं, क्योंकि कर्मफल चार तरेंका है ॥ यदाहुर्धर्मघोषसूरिपा दाः ॥ एक पुण्यानुबंधी पुण्य है, दूसरा पापानुबंधी पुण्य है, तीसरा पुण्या नुबंधी पाप है, चौथा पापानुबंधी पाप है, यह चार प्रकार जो हैं, तिनकूं किंचित् विस्तार पूर्वक कहते हैं।

१ जिसने जिनधर्म नहीं विराध्या है, किंतु संपूर्ण आराधकें जो संसार में जवांतरमें महां सुखी धनाढ्य-उत्पन्न होवे, जगत बाहुबलकी तरें, सो पुण्यानुबंधी पुण्य है।

२ जो पुरुष नीरोगादि गुणयुक्त होवे, अरु धनाढ्यजी होवे, परंतु कोणिकराजाकी तरें पाप करणेंमें तत्पर होवे, यह पुण्य पूर्व जन्ममें अज्ञान कष्ट करणेंसे होता है, सो पापानुबंधी पुण्य है।

३ जो पुरुष पापके उदयसे दरिद्री अरु दुःखी होवे, परंतु श्रीजिनधर्ममें बड़ा अनुरक्त होवे, धर्म करणेंमें तत्पर होवे, सो पुण्यानुबंधी पाप है, यह दुमकमहर्षिवत् पूर्व जन्ममें लेश मात्र दयादि सुकृत करणेंसे होता है।

४ पापी चंड कर्मका करनेवाला निर्धर्मी, निर्दय, पाप करकें पश्चात्ताप रहित यह पुरुष दुःखीया है, तोजी पाप करणेंमें तत्पर है, सो पापानुबंधी पाप है, काल सौकरिकादिवत्।

बाह्य जो नव प्रकारका परिग्रह रूप ऋद्धि है, अरु अंतरंग जो आत्माकी अनंत गुण रूप ऋद्धि है, सो पुण्यानुबंधी पुण्यसे होती है, अैसे जे कर कोइ जीव पापानुबंधी पुण्यके प्रभावसे इस लोकमें सुखी दीखता है, तोजी आगले जन्ममें महा आपदा पावेगा, अरु जो महसूखकी चोरीहै, सो स्वामिजोहमें है, यह चोरी इस लोक अरु परलोकमें अनर्थकी दाता

हे. जिसमें दूसरोंको पीना होवे, ऐसे व्यवहार न करे ॥ यतः ॥ इन्द्रज
 वृत्तं । शास्त्रेन मित्रं कपटेन धर्मं, परोपतापेन समृद्धिजावं ॥ सुखेन शिवा
 परुषेण नांरी, वांठंति ये व्यक्तमपंडितास्ते ॥ १ ॥ तथा जिसतरें लोकोमें
 राग जाव होवे तैसें यत्न करे ॥ यतः ॥ वंशस्थ वृत्तं ॥ जितेंद्रियत्वं त्रि
 यस्य कारणं, गुणप्रकर्षो विनयादवाप्यते ॥ गुणप्रकर्षेण जनोन्नरंज्यते, जना
 नुरागप्रजवाहि संपदः ॥ १ ॥ तथा धनहानि, वृद्धि, संग्रहादि, गुण, इस
 रोंके आगे प्रकाश न करे ॥ यतः ॥ अनुष्टुप् वृत्तं ॥ स्वकीयं दारमाहारं सु
 कृतं इषिणं गुणं ॥ दुष्कर्म मर्म मंत्रं च, परेषां न प्रकाशयेत् ॥ १ ॥ तथा
 कुतूहली न बोले, जेकर राजा गुरु आदिक पूठे, तो सत्य कह देवे सत्य बो
 लनां सोही पुरुषकी परमदशा हे.

तथा यद्यर्थ कहनेसें मित्रका मन हरे, तथा बांधव जनोकों सन्मानसें
 वश करे, तथा स्त्रीकों प्रेमसें वश करे, तथा चाकरोंकों दान देनेसें वश
 करे. तथा दाक्षिण्यता करके इतर लोकोका मन हरे, तथा किसी जग
 अपने कार्यकी सिद्धि करने वास्ते पुष्ट जनोकोनी थगुवे, (ध्यागडी) करे,
 तथा जिस जग प्रीति होवे, तहां खेने देनेका व्यापार न करे, यह कथ
 न सोमनीतिमेंही है.

तथा साही बिना मित्रके घरमेंही धनादिक रखनां न चाहियें, क्योंकि
 खोज घना दुर्दांत है, तथा जो धन रखनेवाला मर जाये तो वो धन उस
 के पुत्रादिकों दे देनां चाहियें, जे कर धन रखने वालेका कोइती संय
 धी न होवे, तब वो धन सर्वलोकोके समस्त धर्मस्थानमें लगा देवे, तथा
 धावक, देवगुरु, चैत्य, जिनमंदिरकी चाहे सची, चाहे कुतूहली न पय
 अर्थात् न स्यावे, तथा दूसरोंका साहीनी न घने, यत कर्पांसि
 क

वैक्रयादेम दशकोलादृष्टं जायें, पयि दंष्ट्रं द्विधा कृषिः ॥
 होवे, सो खेवे. यह कथन प्रथम पंचाशकम् ॥

तोष, मोटा मासो, न्यूनाधिक नापि

मास. अनुचित व्याज,

अनीश्वरप्रादि वि

पंचानयाः नापं कृतः ॥
 नमो भगवते वासुदेवाय

करे, क्यों
 सर्व

शमें जावे, उक्तमपि ॥ जीवंतोपि मृताः पंच, श्रुयंते किञ्च जारते॥ दरिद्री व्याधितो मूर्खः, प्रवासी नित्यसेवकः ॥ जे कर निर्वाह न होवे, तदा आप तथा पुत्रादिकोंकों परदेशमें न जेजे; किंतु सुपरीक्षित गुमास्तेकों जेजे, जेकर स्वयमेव देशांतरमें जावे, तदा जज्ञा मुहूर्त शकुन निमित्त देखकें अरु देव गुरुकों वंदना करकें मंगलपूर्वक जाग्यवान् साथकें वीचमें निद्रादि प्रमाद वर्जकें कितनेक अपने ज्ञातियोंकों साथ ले कर जावे, क्योंकि जाग्यवान् के साथ जातां विघ्न टल जाता है. तथा लेनां, देनां, गमा हूवा धन, सर्व, पिता, चाई, पुत्रादिकोंकों कह जावे, अपने संबंधियोंकों जली शिक्षा दे जावे, बहुमान पूर्वक सर्वकों बोलाकें जावे, परंतु जो जीवनेकी इच्छा होवे, तो देव गुरुका अपमान करकें, किसीकों निर्जत्रिकें, स्त्रीयादिकों ताडना कूटना करकें, बालकों रुदन करवा करकें न जावे, कदापि कोइ पर्व महोत्सवादिकका दिन निकट होवे, तदा उत्सव करकें जावे ॥ यतः ॥ उत्सवमशनं सर्वं, प्रगुणं चोपेक्ष्य मंगलमशेषं ॥ असमापिते च सूतक, युगेंऽग्नौ च नो यायात् ॥ १ ॥ तथा दूध पीकें, मैथुन करकें, स्नान करकें, अपनी स्त्रीकों हणकें, वसन करकें, धूंकें, रुदन करकें, कठिन शब्द सुणकें, गालीयां सुणकें, प्रदेशकों न जावे, तथा शिर मुंनन करवाकें, आंसु गिराकें, खोटे शुकनके हूयें ग्रामांतर न जावे.

तथा कार्यके वास्ते जब चले, तब जौनसा खरबहता होवे, उस पासै का पग पहिला उठाकें धरे, जिस्ते कार्यसिद्धि होवे, तथा रोगी, बूढ़ां, ब्राह्मण, अंधा, गौ, पूजनिक, राजा, गर्जवती स्त्री, जार उठानेवाला, इनकों कुठ दे कर ग्रामांतरमें जावे, तथा धान्य पक्का वा कच्चा पूजा योग्य मंत्र में मल, इनकों त्यागे नहीं, तथा स्नानका जल, रुधिर, मुरदा, धूंक, श्लेष्म, विष्टां, मूत्र, बलती अग्नि, साप, मनुष्य, शस्त्र, इनकां उल्लंघे नहीं, तथा नदीके कांठे, गौआंके गोकुलमें, वरु वृद्धके हेठ, जलाश्रयमें, अरु कूपकांठे, इतने जगो पर विष्टा न करे, तथा रात्रिकों वृद्ध हेठ न रहे, उत्सव, सूतक, पूरा हूये परदेशकों जावे, बिना साथके न जावे, दासके साथ न जावे, मध्यान्हमें तथा अर्द्धरात्रिमें मार्गमें न चले, तथा कुर प्रकृतिवाला मनुष्य, कोटवाल, चुगल, दरजी, धोबी प्रमुख अरु कुमित्र, इतनोंके साथ गोष्टि न करे, इनोके साथ अकालमें चले नहीं, तथा महिष, गर्दज, अरु

यह कथन हितोपदेशमालामें लिखा है, कि देश, काल, राज, धर्म विरुद्ध जो त्यागे, सो पुरुष सम्यग्धर्मको प्राप्त होता है.

तिनमें देशविरुद्ध तो जैसे कि:—सोवीरदेशमें खेती करणी, छाट देशमें मदिरा बनानी, यह देश विरुद्ध है, तथा औरजी जो जिस देशमें शिष्ट जनोंके अनाचीर्ष है, सो तिस देशमें विरुद्ध जाननां. जाति कुलादि अपेक्षा जो अनुचित होवे, सो देशविरुद्ध है, जैसे ब्राह्मण जातिकों सुरापान करनां, तिल लूणादि बेचनां, सो कुलापेक्षा विरुद्ध है, तथा जैसे चोहाणाकों मद्यपान करनां तथा और देशवालोंके आगें और देशवासों की निंदा करणी, यहजी देशविरुद्ध है.

तथा कालविरुद्ध, सो जैसे हिमालयके पास अत्यंत शीतगर्मी जंगल तथा मरुदेशमें वर्षातमें अत्यंत पिछिल (पंक) संयुक्त दक्षिण समुद्रके पर्यंत जांगोमें, तथा अति दुर्जिह्ममें, दो राजाओंका परस्पर विरोध होने से, धारुने रस्ता गेका होवे, दुरुत्तार महाशय्वीमें, सांजकी बेला जय में, इतने स्थानकोंमें तैसा सामर्थ्य सहायादि दृढ बल बिना जावे, तो प्राण धन नाशादि अनर्थकारि है, तथा फागुण मास पीठें तिलोंका व्यापार, तिल पीलाने, तिल जक्षण करने, वर्षाकृत चउमासेमें पत्र शाकका ग्रहण करणां, तथा बहुजीवाकुल जूमिमें हल फेरानां यह महा दोषका कारण है, यह सर्व कालविरुद्ध जान लेनां.

तथा राजविरुद्ध यह है, कि:—राजाके दोष बोलनां, जिसको राजा माने तिसको न माननां, तथा राजाके बेरीयोंसें मेल करनां, राजाके शत्रु के स्थानमें लोभसें जानां, राजाके शत्रुके पासों आयेके साथ व्यापार करनां, राजाके काममें अपणी इष्टासें विधि निषेध करणां,

तथा लोकविरुद्ध यह है, कि:—नगरनिवासियोंके साथ प्रतिकूल पण करणां, तथा स्वामिद्रोह करणां, लोकोंकी निंदा करणी, गुणवान् अरु धनवान्की निंदा करणी, अपणी वनाइ करणी, सरलकी हांसी करणी, गुणवान्में मत्सर रखनां, कृतघ्नत्व करणां, बहुत लोकोंके जो विरोधी होवे, उसकी संगति करणी, लोकमान्यकी अवज्ञा करणी, जसे आचार वा लेकों कष्ट पने तब राजी होनां, अपनी शक्तिके हुये साधर्मिके कष्टकों दूर न करनां, देशादि उचितताचार लंघन करनां, थोड़े धनके दूषण उं

कोंका वेष रखनां, मैले वस्त्र पहिरने, इत्यादि लोक विरुद्ध हैं. यह सर्व इस लोकमें अपयशकां कारण है ॥ यदुवाच वाचकमुख्यः ॥ लोकः खट्वाधारः, सर्वेषां धर्मचारिणां यस्मात् ॥ तस्माद्लोकविरुद्धं, धर्मविरुद्धं च संत्याज्यं ॥ १ ॥ अर्थः—उमास्वाति पूर्वधारी आचार्य कहते हैं, कि—सर्वधर्म करने वालोंके लोकजन समुदाय आधार है, तिस वास्ते लोकविरुद्ध अरु धर्म विरुद्ध यह दोनों त्यागने योग्य हैं, क्योंकि ऐसे करनेसे धर्मका सुखें निर्वाह होता है, लोक विरुद्धके त्यागनेसे सर्व लोकोंको बल्लज होता है, अरु जो लोकोंको बल्लज होनां है, सोइ सम्यक्त्व तरुका बीज है.

अथ धर्म विरुद्ध लिखते हैं. मिथ्यात्वकी करणी, सर्व गौ आदिकों निर्दय होके तारुनां, बांधनां, जूं, मांकमादिकों निराधार गेरणे, धूपमें गेरणे, शिरमें कंधीसें लीख फोरनी, उष्ण कालमें तथा शेष कालमें चौ मा, लंबा, गाढा गलनां पाणी गलनेके वास्ते न रखनां, पाणी ठानके पीठें जीवोंको युक्तिसें पाणीमें न गेरनां, तथा अन्न, इंधन, शाक, दाल, तांबूल, अरु फलादिकोंको विना शोषे खानां, तथा अकृत, सोपारी, खारीक, वाड्ड, उलि, फली प्रमुख संपूर्ण मुखमें गेरे, दूटीके रस्ते, तथा पाणी आदिकों धारा बांधकर पीवे, तथा चलतेमें, बैठनेमें, स्नान करतां, हरेक वस्तु रखतां, लेतां बांधतां, धान ठडतां, पीसतां, औषधि घसतां, तथा मूत्र, श्लेष्म, कुरलादि, काजल, तंबोलका उगाल गेरतां उपयोगसें न करे, तथा धर्ममें अनादर करें, देव, गुरु, अरु साधर्मियोंसें द्वेष धरे, जिनमंदिरका धन खावे, अधर्मोंकी संगति करे, धर्मियोंका उपाहास करे, कपाय बहुलता होवे, तथा बहुत पापकारी क्रय विक्रय खरकर्म करनां, पापकी नौकरी करनी, इत्यादि सर्व धर्मविरुद्ध हैं, यह पांच प्रकारका विरुद्ध श्रावकों त्यागनां चाहियें.

अथ उचित आचरण कहते हैं. उचित आचरण सो, पितादि नव प्रकारकी है. स्नेहवृद्धि कीर्त्यादि हेतु, सो हितोपदेशमाला ग्रंथसें लिखते हैं. एक पिताके साथ उचित, दूसरा माताके साथ उचित, तीसरा जाइयोंके साथ, चौथा स्त्रीके साथ, पांचमा पुत्रके साथ, ठछा स्वजनके साथ, सातमा गुरुके साथ, आठमा नगरवालोंके साथ, नवमा परतीर्थी अर्थात् दूसरे मतवालोंके साथ, यह नवके साथ उचित आचरण करणां.

यह कथन हितोपदेशमालामें लिखा है, कि देश, काल, राज, विरुद्ध जो त्यागें, सो पुरुष सम्यग्धर्मको प्राप्त होता है.

तिनमें देशविरुद्ध तो जैसे कि:-सोबीरदेशमें खेती करणी, साट देना मंदिरा बनानी, यह देश विरुद्ध है, तथा औरजी जो जिस देशमें कि जनोके श्रमाचीर्ण है, सो तिस देशमें विरुद्ध जाननां, जाति कुशादि पेक्षा जो अनुचित होवे, सो देशविरुद्ध है, जैसे ब्राह्मण जातिकों, कुपाय करनां, तिल लूणादि बेचनां, सो कुलापेक्षा विरुद्ध है, तथा बें चोहाणाको मद्यपांन करनां तथा और देशवालोंके आगें और देशवालों की निंदा करणी, यहजी देशविरुद्ध है.

तथा कालविरुद्ध, सो जैसे हिमालयके पास अत्यंत शीतगर्मी जंगल तथा मरुदेशमें वर्षातमें अत्यंत पिछिल (पंक) संयुक्त दक्षिण समुद्रके पंथत जागोमें, तथा अति दुर्जिहमें, दो राजाओंका परस्पर विरोध होने से, धानने रस्ता रोका होवे, दुरुत्तार महाअटवीमें, सांफकी बेड़ा जंगल में, इतने स्थानकोमें तैसा सामर्थ्य सहायादि हठ बल बिना जावे, तो प्राण धन नाशादि अनर्थकारि है, तथा फागुण मास पीठें तिलोंका व्यापार, तिल पीछाने, तिल जक्षण करने, वर्षाकतु चउमासेमें पत्र शाकका ग्रहण करणां, तथा बहुजीवाकुल जूमिमें हल फेरानां यह महा दोषका कारण है, यह सर्व कालविरुद्ध जान लेनां.

तथा राजविरुद्ध यह है, कि:-राजाके दोष बोलनां, जिसको राजा माने तिसको न माननां, तथा राजाके बैरीयोंसे मेल करनां, राजाके शत्रुके स्थानमें लोभसे जानां, राजाके शत्रुके पासों आयेके साथ व्यापार करनां, राजाके काममें अपणी इछासें विधि निषेध करणां,

तथा लोकविरुद्ध यह है, कि:-नगरनिवासियोंके साथ प्रतिकूल पलायन करणां, तथा स्वामिद्रोह करणां, लोकोंकी निंदा करणी, गुणवान् शूर धनवान्की निंदा करणी, अपणी वग्राह करणी, सरलकी हांसी करणी, गुणवान्में मत्सर रखनां, कृतघ्नत्व करणां, बहुत लोकोंके जो विरोधी होवे, उसकी संगति करणी, लोकमान्यकी अवज्ञा करणी, जखे आचार वा लोको कष्ट पड़े तब राजी होनां, अपनी शक्तिके हुये साधर्मिके कष्टों को न करनां, देशादि उचितताचार लंघन करनां, योगे धनके दूषण

गोका वेष रखनां, मेले वस्त्र पहिरने, इत्यादि लोक विरुद्ध हैं। यह सर्व इस लोकमें अपयशकां कारण है ॥ यदुवाच वाचकमुह्यः ॥ लोकः खट्वाधारः, सर्वेषां धर्मचारिणां यस्मात् ॥ तस्माद्व्योक् विरुद्धं, धर्मविरुद्धं च संत्याज्यं ॥ १ ॥ अर्थः—उमास्वाति पूर्वधारी आचार्य कहते हैं, कि—सर्वधर्म करने वालोंके लोकजन समुदाय आधार है, तिस वास्ते लोकविरुद्ध अरु धर्म विरुद्ध यह दोनों त्यागने योग्य हैं, क्योंकि ऐसे करनेसे धर्मका सुख निवाह होता है, लोक विरुद्धके त्यागनेसे सर्व लोकोंको वल्लभ होता है, अरु जो लोकोंको वल्लभ होना है, सोइ सम्यक्त्व तरुका बीज है।

अथ धर्म विरुद्ध लिखते हैं, मिथ्यात्वकी करणी, सर्व गो आदिकों निर्दय होके ताननां, बांधनां, जूं, मांकनादिकों निराधार गेरणे, धूपमें गेरणे, शिरमें कंधीसें लीख फोननी, उष्ण कालमें तथा शेष कालमें चौ ना, लंबा, गाढा गलनां पाणी गलनेके वास्ते न रखनां, पाणी ठानके पीठें जीवोंको चुक्तिसें पाणीमें न गेरनां, तथा अन्न, इंधन, शाक, दाल, तांबूल, अरु फलादिकोंको बिना शोथें खानां, तथा अकृत, सोपारी, खारीक, बाब्द, उखि, फली प्रमुख संपूर्ण मुखमें गेरे, टूटीके रस्ते, तथा पाणी आदिकों धारा बांधकर पीवे, तथा चलतेमें, बैठनेमें, ज्ञान करतां, हरेक वस्तु रखतां, लेतां रांधतां, धान ठडतां, पीसतां, औपधि घसतां, तथा मूत्र, श्लेष्म, कुरखादि, काजल, तंबोखका उगास गेरतां उपयोगसें न करे, तथा धर्ममें अनादर करे, देव, गुरु, अरु साधर्मिसें छेप धरे, जिनमंदिरका धन खावे, अधर्मीकी संगति करे, धर्मीयोंका उपाहास करे, कपाय बहुलता होवे, तथा बहुत पापकारी क्रय विक्रय त्वरकर्म करनां, पापकी नोकरी करनी, इत्यादि सर्व धर्मविरुद्ध हैं, यह पांच प्रकारका विरुद्ध आचकको त्यागनां चाहिये।

अथ उचित आचरण कहते हैं, उचित आचरण तो, पितादि नवप्रकारकी है, सेट्टइ कीर्त्यादि हेतु, तो हितोपदेशनासा ग्रंथमें लिखने है, एक पिताके साथ उचित, दूसरा माताके साथ उचित, तीसरा नाइयोंके साथ, चौथा स्त्रीके साथ, पांचवा पुत्रके साथ, छठा स्वजनके साथ, सातवा गुरुके साथ, आठवा नगवालोंके साथ, नववा पत्नीयां अर्थात् दूसरे मतवालोंके साथ, यह नवके साथ उचित आचरण करनां।

१ तिनमें प्रथम पिताके साथ उचित आचरणः सो मन, वचन, दाय काया करके तीन प्रकारें है, तिसमें काया करके तो पिताके शरीरकी शुभ्र पा करे, किंकर दासकी तरें विनय करे, बिना मुखसँ निकलाही पिताका वचन प्रमाण करे, पिताके शरीरकी शुभ्रपा करे, पिताके चरण धोवे, मुँह चाँपी करे, उठावे, घेठावे, देश काख उचित जोजन शय्या, वस्त्र, शरीर विज्ञानादिका योग मिलावे, विनयसँ करे, परंतु आग्रहसँ न करे, ध्या करे, परंतु नोकरोसँ न करावे, पिताके वचन प्रमाण करणे वास्ते श्रीराम चंडजी राज्याजिपेक ठोरुके धनयासमें गये, तथा पिताका वचन सुण्या अणुमुण्या न करे, मस्तक धुननां, काखक्षेप करे नहीं पिताके मनके अनुमारे प्रवर्त्ते, तथा सयं कृत्योंमें यत्नपूर्वक जो अपने मनमें कार्य करना उपदेश दूया है. सो पिता आगें कह देवे, पिताके मनकां जो कार्य गमे, सो करे, क्योंकि माता, पिता, गुरु, बहुश्रुत, ये आराधे दूये सयं कार्यका रहस्य प्रकाश देते हैं, माता, पिता, कदाचित् कठिन वचनजी घोसे, तो नो मोधन करे, जो जो धर्मका मनोरथ माता पिताके होवे, सो सो पूरे करे, इत्यादि माता पिताके साथ उचित आचरण करे.

माताके साथ उचित आचरण, सोनी पितावत् करे, परंतु माताके मनोरथ पितासँनी अधिक पूरे, देवपूजा, गुरुसेवा, धर्म सुननां, देशश्रिति अंगीकार करणी, आवश्यक करणां, सात देशोंमें धन लगानां, तीर्थयात्रा, अनाथ दीनका उद्धार करणां, इत्यादि माताके मनोरथ विशेष करके पूरा करे, क्योंकि यह करणे योग्यही है, ये पूर्वोक्त कृत्य जैसे सपुत्र पुत्रों का इस लोकमें गुरु, माता, पिता है, सो माता पिताकां जो पुत्र श्रीअर्थ तके धर्ममें जोडे, तो ऐसा और कोई उपकार जगन्में नहीं है, उन पुत्रने माता पिताका सयं कृण दे दीया, और किसी प्रकारसँनी माता पिताका देणां पुत्र नहिं दे सका है, यह कथन श्रीम्यानांग सूत्रमें है.

अब यह मानपिताके उचितआचरणमें जो विशेष है, सो लिखते हैं. माताके चित्तके अनुसार प्रवर्त्ते, क्योंकि म्रीका स्वभावही ऐसा होता है, कि जसदी पीनाकां प्राण जो जानां, इस याम्ने जिस काममें माताका पीना होवे, सो काम न करे, क्योंकि पितासँनी माता मिले दूय है ॥ यन्मनुः ॥ श्लोक ॥ उपाध्यायाइशाचार्यः, आचार्येभ्यः ॥

पिता ॥ सहस्रं तु पितुर्माता, गौरवेणातिरिच्यते ॥१॥ तथा औरोंमें भी कि हा है कि जहां तक इध पीवे, तहां तक अपनी माता ऐसे पशु जानते हैं, तथा आहार न खावे तहां तक अधम पुरुष, माता जानते हैं, तथा जहां तक घरका काम करे, तहां तक मध्यम पुरुष, माता जानता है, और जहां तक जी वे, तहां तक तीर्थकी तरें माताको उत्तम पुरुष मानते हैं, पशुओंकी माता पुत्रसें सुख मानती है, धन उपाजें तो मध्यम पुरुषकी माता सुख मान ती है, तथा पुत्र वीर होवे, संपूर्ण धर्माचरण करके संयुक्त होवे, निर्मल चरितवाला होवे, तब उत्तम पुरुषकी माता संतोष पावे है.

३ अथ सहोदरके साथ उचित आचारण लिखते हैं. बड़े जाइको तो पिता समान जाने, और छोटे जाइको सर्वकायोंमें माने, तथा जे कर इ सरी माताका बेटा होवे, तो जैसे श्रीरामचंद्र और लक्ष्मणकी परस्पर प्रीति थी, तैसी प्रीति करणी चाहिये, ऐसेही बड़े जाइ और छोटे जाइ की स्त्रीयोंके साथ तथा पुत्र पुत्रीयोंके साथ भी उचित आचरण यथायोग्य करे, परंतु पृथग्भाव न करे, जाइको व्यापारमें पूछे, ठानी बात न र स्के, तथा धनभी जाइसें गुप्त (ठानां) न रस्के, अपने जाइको ऐसी शि द्धा देवे, जिसें उसको कोई धूर्त न ठस सके, जे कर जाइको खोटी सं गति लग जावे, तथा अविनीत होवे, तदा क्या करे? सो कहते हैं, जेकर अविनीत होवे, तदा आप शिक्षा देवे, तथा जाइके मित्र पासों उखांचा देवावे, तथा सगा संबंधियोंसें शिक्षा देवावे, काकासें, मामासें, सुतरासें, इनके पुत्रोंसें अविनीत जाइको शिक्षा देवावे, अन्योक्ति करके शिक्षा दे वावे परंतु आप तर्जना न करे, और जे कर आप तर्जना करे, तब क्या जा ने निर्लज्ज होकर निर्मर्याद हो जावे? सन्मुख बोल उठे? तिस वास्ते हृद यमें केह सहित उपरसें जब जाइको देखे, तब ऐसे जान पड़े जो जाइ मेरे उपर बहुत वे राजी हैं, जब जाइ विनयमार्गमें आ जावे, तदा निःक पट भीठे बचन बोलके प्रेम धरे, कदाचित् जाइ अविनीतपणा न ठोडे, तब चित्तमें ऐसा विचारे की:-इसकी प्रकृतिही ऐसी है, तब उदासीन प णसें प्रवर्त्ते, तथा जाइकी स्त्री और पुत्रोंके साथ दान सन्मान देनेमें संस दृष्टि होवे, तथा दो मातके पुत्रके साथ विशेष करके दान सन्मान प्रेमा दि करे, क्योंकि उसके साथ थोनाभी अंतर करे, तो उसको वे प्रतीति

हो जावे, श्रु लोकोंमें निंदा होवे, ऐसेही मांता, पिता श्रु जाइके मान जो और जन हैं, तिनोंके साथजी यथोचित उचिताचरण विन लेनां ॥ यतः ॥ जनकश्चोपकर्त्ता च, यस्तु विद्यां प्रयच्छति ॥ अन्नदः प्रा दश्चेव, पंचैते पितरः स्मृताः ॥ १ ॥ राजपत्नी गुरोः पत्नी, पत्नीमाता तथे च ॥ स्वमाता चोपमाता च, पंचैता मातरः स्मृताः ॥ २ ॥ सहोदरः स ध्यायी, मित्रं वा रोगपालकः ॥ मार्गे वाक्यसखा यश्च, पंचैते त्रातरः स्मृ ताः ॥ ३ ॥ अस्वार्थः सुगमः ॥ तथा अपणे जाइकों धर्मकार्यमें श्रव प्रेरणा करे, जाइकी तरें मित्रके साथजी उचिताचरण करे.

४ अथ स्त्रीके साथ उचित कहते हैं. स्त्री विवाहिताके साथ गेह सं क्त वचन दोसकें स्त्रीकों अजिमुख करे, वल्लज, और गेह संयुक्त वचन, श्रव प्रेमका जीधन है, तथा स्त्री पासों स्नान करावे, श्रवणा स्नान पगचर्च प्रमुखमें स्त्री प्रत्ये प्रवर्त्तावे, जय स्त्री विश्वास पा करके सदा गेह धरेगी तब कदापि गुरा आचारण न करेगी, तथा देश काल कुटुंब धनादि उ चित वस्त्राजरण देवे, क्योंकि अलंकार संयुक्त स्त्री लक्ष्मीकी वृद्धि करत है, तथा स्त्रीकों रात्रिमें कहीं जाने न देवे, तथा कुशील पुरुषकी श्रव पाखंडी जगत योगी योगीकोंकी संगति न करणे देवे, स्त्रीकों घरके काममें जोर देवे, तथा राजमार्गमें वेश्याके पाडेमें न जाने देवे, धर्मकृत्य प डिक्रमणा सामायिकादिक जे कर करणे चास्ते धर्मशास्त्रा उपाश्रयमें जाये, तदा माता बहिनादि सुशील धर्मिणी स्त्रीयोंकी दोस्तीमें जावे, आवे. प रका काम, दान देनां, सगे संबंधीका सन्मान करणां रसोइका कारण क रणां यह सब करे, तथा प्रजात समयें शय्या उठावे, घर प्रमार्जन करे, दूधके वर्त्तन धोवे, चाकादि चुस्त्रकी क्रिया करे, तथा जाने धोने, अन्न पीत णां, गो, जैस दोहनी, दहिं बिछोनां, रसोइ करणी, ग्याने वाखांकों पुगेम नां, जूते वर्त्तन शुचि करने, सासु, जरतार, नणंद, देवर, इतनांका विनय करनां, इत्यादि पूर्वोक्त कामोंमें स्त्रीकों जोडे, अर्थात् काम करणेमें तगर करे, जे कर स्त्रीकों पूर्वोक्त कामोंमें न जोडे, तब स्त्री, चपलतासें विशा रकों प्राप्त हो जाती है, काममें लगे रहनेसें स्त्रीकी रक्षा, गोपना होती है, तथा जरतार स्त्रीके सन्मुख देखे, बोझावे, गुणकीर्त्तन करे, घन, वस्त्र, आ म्रपण देवे, जिस तरें स्त्री कहे, उस तरें करे, स्त्रीकों दूर न ठांवे, तब

वो स्त्रीका जरतार उपर अत्यंत प्रेम हो जाता है, तथा स्त्रीकों न देख नेंसें, अतिदेखनेसें, देख कर न बुलानेसें, अपमान देनेसें, अहंकार करनेसें, इन पूर्वोक्त बातोंसें प्रेम टुट जाता है.

तथा जरतार बहुत परदेशमें रहे, तब स्त्री कदाचित् अनुचित काम कर लेवे, इस वास्ते बहुत काल परदेशमेंजी न रहना चाहिये. तथा स्त्री का अपमान न करे, स्त्री जूझ जावे, तो शिक्षा देवे, रूस जावे, तो मना लेवे, तथा धनकी हानी वृद्धि, घरका गुह्य, स्त्रीके आगें प्रगट न करे, तथा क्रोधमें आ करके दूसरी स्त्री न विवाहे, क्योंकि दो स्त्री करनीमहा दुःखोंका कारण है. कदाचित् संतानादिकके वास्ते दो स्त्रीजी कर लेवे, तदा दोनों उपर समजावसें प्रवर्त्ते, तथा स्त्री किसी काममें जूझ जावे, तदा ऐसी शिक्षा देवे, कि जे कर फेर वो स्त्री, उस कामकों न करे, तथा रूसी स्त्रीकों जे कर नहिं मनावे, तो सोमजष्ट जार्या अंवावत् कूवेमें गिर पड़े, इत्यादि अनर्थ करे. इस वास्ते स्त्रीसें सर्वकाम, स्नेहकारी वचनोंसें करावे, नतु कठिनतासें.

जेकर निर्गुण स्त्री मिले, तब विशेष करके नरमाइसें प्रवर्त्ते, परंतु स्त्रीकों घरमें प्रधान न करे, जिस घरमें पुरुषकी तरें स्त्री सामर्थ्य प्रधान पणा करे, वो घर नष्ट हो जाते हैं, यह कहनां, बाहुल्यतासें है, क्योंकि को एक स्त्री तो ऐसी बुद्धिमान् होती है, कि:-जेकर उसकों पृथके कार्य करे, तो बहुत गुणके तांइ होता है, जैसें तेजपालकी जार्या, अनुपदेवीकों तेजपाल अरु वस्तुपाल पृथके काम करते थे, तथा स्त्री जब धर्म कार्योंमें तप करे, चारित्र्य लेवे, उद्यापन करे, दान देवे, देवपूजा, तीर्थयात्रादि करे, तथा यह बातोंकों करनेका मनमें उत्साह धरे, तब धन देवे सुशील सहायक दे के उसका मनोरथ पूर्ण करे, परंतु अंतराय न करे, क्योंकि स्त्री जो धर्मकृत्य करेगी उसमेंसें पतिकोंजी पुण्य होगा, क्योंकि पति उस कृत्य करणमें बहुत राजी रहे है ॥ इति ॥ ५ ॥

५ अथ पुत्रके साथ उचिताचरण लिखते हैं. पिता अपने पुत्रकों बाल अवस्थामें बहुत मनोइ पुष्टाहारसें पोषे, स्वेच्छा नाना प्रकारकी क्रीडा करावे, क्योंकि मनोइ पुष्ट आहार देनेसें बालकों बुद्धि, बल, अरु कांतिकी वृद्धि होती है, स्वेच्छा क्रीडा करानेसें शरीर पुष्ट होता है, अरु अ

गोपांग-संकुचित नहीं होते हैं ॥ पठन्ति ॥ श्लोक ॥ लालयेत् पंच वर्षाणि,
 दश-वर्षाणि ताडयेत् ॥ प्राप्ते पौरुषशमे वर्षे, पुत्रो मित्रवदाचरेत् ॥ १ ॥
 तथा गुरु, देव, धर्म श्रु सुखी स्वजन, इनकी संगति करावे, जली जाति
 कुल-आचार, शीलवान् ऐसा पुरुषके साथ मित्राचार करावे, क्योंकि गुरु
 आदिकका परिचय होनेसे वाढ्यावस्थामें जली वासनावाला हो जाता है,
 बढकलचीरीवत् जाति, कुल, आचारशील संयुक्तकी मित्रतासे, देवयोगसे
 कदापि अनर्थजी आ पडे, तोजी जले मित्रकी सहायसे कष्ट दूर हो जाता
 है, जैसे अजयकुमारके साथ मित्रता करनेसे आर्जुनकुमारको जली वासना
 हो गई तथा जब अठार वर्षका पुत्र हो जावे, तब उसका विवाह करे,
 क्योंकि वाढ्यावस्थामें वीर्यक्षय हो जानेसे बुद्धि, पराक्रम श्रु आयु
 अधिक नहीं होता है, सर्व-जेनमतके शास्त्रोंमें ऐसेही लिखा है, कि ज
 पुत्रको जोगसमर्थ जाने, तब पुत्रका विवाह करे, तथा जिस कन्यासे
 विवाह करावे, उस कन्याका कुल, जन्म, रूप, सरिखा होवे, तब वि
 वाह करावे, तथा पुत्रके उपर घरका चारसर्व गेरे, घरका स्वामी घनादेवे,
 तथा जिस कन्यामें सरिखे गुण न होवे, उसके साथ विवाह कराना महा
 विडम्बना है, विवाहज्जेद आगे लिखेंगे, जब पुत्रके उपर घरका चार हो
 वेगा, तब चिन्ताक्रान्त होनेसे कोइजी स्वछंद उन्मादादि न करेगा, क्योंकि
 वो जान जावेगा कि, धन बडे क्लेशोंसे प्राप्त होता है, इस वास्ते श्रु
 चित व्यय न करना चाहिये, ऐसा वो आपसे जान जावेगा, परंतु पुत्रकी
 परीक्षा करके पीठे उसके घरका चार डाल देवे, जैसे प्रसेनजित राजाने श्रे
 णिकपुत्रको दीया, तथा पुत्रकी तरें पुत्रीके साथ श्रु जत्तीजादिकके साथजी
 यथायोग्य उचित जान लेना, ऐसेही बेटेकी बहूके साथजी धनश्रेष्ठी
 की तरें उचिताचरण करे, तथा प्रत्यक्ष पणे पुत्रकी प्रशंसा न करे, तथा
 जब कष्ट पके, तब दुःख सुखकी बात कहे, तथा आय व्ययका स्वरूप
 कहे, तथा पुत्रको राजसत्ता देखावे, क्योंकि क्या जाने बिना विचारों
 कोइ कष्ट आ पके, तब क्या करे? तथा कोइ दुष्टजन उपद्रव कर देवे, तब रा
 जसत्ता बिना वृटकारा नहीं होता है ॥ श्लोक ॥ तत्पठन्ति ॥ आर्या ॥ गंतव्यं
 राजकुले, द्रष्टव्यं राजपूजितालोकाः ॥ यद्यपि न जवंत्यर्था, स्थाप्यानर्था
 विलीयन्ते ॥ १ ॥ तथा पुत्रको परदेशका आचार, व्यवहारादिकसे जानकार

करे, क्योंकि प्रयोजनके वशसे कदा काल देशांतरमें जी जाना पड़े, तो कोइ कष्ट न होवे, तथा दो मातके पुत्रके साथ विशेष उचित करे.

६ अब सगोके साथ उचित करणं लिखते हैं, पिता, माता, स्त्रीके पक्षके जो लोक हैं, तिनको खजन कहते हैं, यह खजनोंका कोइ घरके बड़े काममें तथा सदा काल सन्मान करे, तथा आपजी खजनोंके काम में अग्रेश्वरी बने, जो खजन धनहीन होवे, रोगातुर होवे, तिसका उद्धार करे, क्योंकि खजनका जो उद्धार करणं है, सो तत्त्वसे अपणाही उद्धार करणं है. तथा खजनके परोक्ष उनकी निंदा न करे, तथा खजनके वैरीयोंसे मित्राचारी न करे, खजनादिकसे प्रीति करणी होवे, तदा शुष्क कलह, हास्यादि, वचनकी लम्बाइ न करे, खजन घरमें न होवे, तो उसके घरमें एकिला न जावे, देव, गुरु, धर्म अरु धनके कार्यमें खजनों के साथ सामिल रहे, जिस स्त्रीका पति परदेशमें गया होवे, ऐसे खजनके घरमें एकिला न जावे, तथा खजनोंके साथ लेने देनेका व्यापार न करे ॥ तथाह ॥ यदीष्टेऽपि पुलां प्रीतिं, त्रीणि तत्र न कारयेत् ॥ वाग्व्यादमर्थसंबंधं, परोक्षे दारदर्शनम् ॥ १ ॥ तथा इस लोकके कार्यमें खजनोंके साथ एकचित्त रहे, अरु जिनमंदिरादि कार्यमें तो विशेष करके खजनसेही मिलके करे, क्योंकि ऐसे कार्य जे कर बहुतोंसे मिलके करे, तोही शोभा है. इत्यादि खजनोचित जाननां.

७ अब गुरुउचित कहते हैं. धर्माचार्यके साथ उचित जक्ति आंतरंग की बहुमान, वचन, कायाका आवश्यक प्रमुख कृत्य करणं, गुरु पासों शुद्ध श्रद्धा करके धर्मोपदेश श्रवण करणं, गुरुकी आज्ञा माने मनसे जी गुरुका अपमान न करे, गुरुके अवर्णवाद किसीको बोलने न देवे, गुरुकी प्रशंसा सदा प्रगट करे, गुरुके प्रत्यक्ष वा परोक्ष स्तुति करे, गुरु स्तुति जो है, सो अगणित पुण्यबंधनेका कारण है, गुरुके छिद्र कदापि न देखे, गुरुसे मित्रकी तरफ अनुवर्तन करे, गुरुके प्रत्यनीक निंदकको सर्व शक्तिसे निवारण करे, कदाचित् गुरु, प्रमादके वशसे कहीं चूक जावे, तब एकांत हितशिक्षा देवे, अरु कहे कि हे जगवन्! तुम सरीखोंको यह काम करणं उचित नहीं, गुरुका विनय करे, गुरुके सन्मुख जावे, गुरु निकट आवे, तो आसन ठोडके खड़ा हो जावे, गुरुको आसन देवे, गुरुकी पग

चंपी करे, गुरुकों शुद्ध, निर्दोष, वस्त्र, पात्राहारादि देवे, यह द्रव्योपचार करे, श्वर जावोपचार सो गुरुका परदेशमें सदा स्मरण करे, इत्यादि.

८ अथ नगर निवासी जनोंका उचित कहते हैं. जिस नगरमें रहे, उस नगरके निवासी जनोके साथ उचित इसी प्रकारसें करनां कि:-अपणे सरीखी जीन व्यापारीयोंकी वृत्ति होवे, उनके साथ जो एकचित्तसें सुख दुःख, व्यसन, कष्ट, राजउपद्रवादिमें बराबर रहे, उनके उत्साहमें उत्साह बान् होवे, राजदरबारमें किसीकी चुगली न करे, तथा नगरनिवासीयोंसें फटे नहीं, सर्वसें मिल कर राजका हुकुम करे, क्योंकि जब निर्मल पुण्य बहुते एकिठे होके कार्य करे, तब तृणरज्जुवत् बलवान् हो जाते हैं, जब विवाद हो जाये, तब निःपक्ष होके कार्य करे, किसीसें लंचा ले के कूटा काम न करे, तथा किसीसें थोड़ीसी खमाइ हो जावे, तो उसका राजमें पुकार न करे, तथा राजाके कारजारीयोंसें लेने देनेका व्यापार न करे, क्योंकि उनलोकोकों नाणां देनेके अवसरमें क्रोध आ जाता है, तब वो कोइ और अनर्थ कर देते हैं, तथा समानवृत्ति नागरोंकी तरें असमान वृत्ति वाले नगरवासीयोंके साथनी यथायोग्य उचिताचरण करे ॥ ९ ॥

९ अथ परतीर्थी परमत वालोके साथ उचिताचरण लिखते हैं. जो परमतवाला जिहाके वास्ते उसके घरमें थावे, वो सर्वका उचित करे, तथा राजाका माननीयका विशेष उचित करे, उचित कृत्य सो यथायोग्य दान देनां चाहे, जे कर उन साधुओंकी मनमें जक्ति नहींनी होवे, तानी घरमें मांगने थायेकां देनां चाहिये, क्योंकि:-दान देनां यह गृहस्थका धर्मही है, तथा महंत कोइ घरमें था जावे, तो आसन, दान, सन्मुख जानां, उठके खड़ा होनां प्रमुख करे, तथा परमतवाला किसी कष्टमें पमा होवे, तदा व सका उछार करे, दुःखी जीवोंकी दया करे, पुरुषापेक्षा मधुर आवापारि करे, तथा थन्यमनवालेकां कामका पूठनादि करे, जेसें कि थापका थानां किस प्रयोजनके बान्ने दृष्टा है? पीठें जो कार्य वो कहे, सो कार्य जे कर उचित होवे, तो पूरा कर देवे, तथा दुःखी, थनाथ, थंभा, धर्षीर, रोगी प्रमुख दीन लोकोंकी दीननाकों यथाशक्तिसें प्रतिकार करे, जो थापकादि व वीर लोकिक उचिताचरणमें कृशस्त नहीं होवे, तो वो जिनमतमेंनी क्यो

कर कुशल होवेंगे ? तिस वास्ते अवश्य धर्माधीनोने उचिताचरणमें निपुण होना चाहिये ॥ इति नवविध उचिताचरणं समाप्तं ॥

अब अवसरमें उचित बोलना, यही वरुण गुणकारी है, तथा औरजी जो कुशोच्चाकारी होवे, सो त्यागे ॥ उक्तं च विवेकविलासादौ ॥ जंजाइ, ठीक, नकार, तथा हसनां, यह सब मुख टांकके करे, तथा सजाके बीच नाकमें अंगुली नाखके मेल न काढे, हाथ मोमे नहीं, पर्यस्तिका न करे, पग न पसारे, निद्रा विकथा न करे, सजामें कोई बुरी चेष्टा न करे, जो कुलीन पुरुष है, सो अवसरमें हस्ते, तो होठ फरकने मात्र हस्ते, परंतु मुख फाड़के न हस्ते, अपना अंग बजावे नहीं, ठूण तोड़े नहीं, व्यर्थ झूमिमें खिखे नहीं, नखां करके दांत घसे नहीं, दांतों करी नख न तोड़े, अजिमान न करे, जाट चारणकी करी दुइ प्रशंसा सुनके गर्व न करे, अपने गुणोंका निश्चय करे, बातकों समझके बोले, नीच जन जो अपनेकों हीन वचन कहे, तो उसकों बदलेका हीन वचन न बोले, जिस वस्तुका निश्चय न होवे, सो बात प्रगट न कहे, जो कोई पुरुष कार्य करे, अरु उस कार्य करणमें वो समर्थ न होवे, तिसकों पहिलां वर्ज देवे, कहे कि यह काम तुम न करो, तथा कीसीका बुरा न बोले, जेकर बेरीका बुरा बोले, तो उसका अटकाव नहीं, परंतु सोजी अन्योक्ति करके बोले, तथा माता, पिता, रोगी, आचार्य, परादुष्ट, अज्यागत, जाइ, तपस्वी, बृद्ध, बाल, स्त्री, वधू, पुत्र, गोत्री, पामर, बहिन, बहिनोइ, मित्र, इन सर्वके साथ वचनकी खडाइ न करे, सदा सूर्यकों न देखे, तथा चंद्र सूर्यके ग्रहणकों न देखे, जंडे (गहिरे) कूबेकों फूकके न देखे, संध्या समय आकाश न देखे, तथा नैद्युन करतेकों, शिकार मारतेकों, नंगी स्त्रीकों, यौवनवंती स्त्रीकों, पशुकीडाकों, कन्याकी योनिकों, इतनेकों देखे नहीं, तथा तेखमें, जलमें, शत्रुमें, भूतमें, रुधिरमें, इतनी वस्तुओंमें अपना मुख न देखे, क्योंकि इस कामसे आयु टूट जाती है, तथा अंगीकार करेकों त्यागे नहीं, नष्ट हो गइ वस्तुका शोक न करे, किसीका निद्राछेद न करे, बहुतोंसे वैर न करे, जो बहुतोंको सन्मत होवे, सो बोले, जिस काममें रस न होवे, सो न करे, कदापि करनां पने, तोनी बहुतोंसे निषेक करे, तथा धर्म, पुण्य, दया, दानादि शुभ काममें बुद्धिमान् मुख्य होवे, अश्वेश्वरी

वने, तथा किसीके बुरे करनेमें जलदी अग्रेश्वरी न वने, तथा सुपात्रता धुमें कदापि मत्सर ईर्ष्या न करे, तथा अपने जातिवालेके कष्टकी व पेक्षा न करे, पंच एकिछे मिल कर आदरसें उनकी कष्ट दूर करे, तथा माननीयका मानत्रंश न करे, तथा दरिद्रपीडित, मित्र, साधर्मिक, त्या तिमें बुद्धिवाला होवे, तथा गुणों करके बड़ा होवे, वहिन संतान रहित होवे, इन सर्वकी पालना करे, अपने कुलमें जो काम करने योग्य न हों, सो न करे, इत्यादि. तथा नीतिशास्त्रोक्त तथा श्रौर शास्त्रोंमें जो उचित चरण होवे, सोकरे, अरु अनुचित होवे, सो वर्जे, मध्यान्हसें पूर्वांक विधि सें विशेष करके प्रधान शास्त्रोदनादि निष्पन्न निःशेष रसवती ढोवे, दूसरी बार जिनपूजा, जो मध्यान्हकी पूजा, अरु जोजन, इन दोनोका कासनियम नहीं, क्योंकि जब जूल लगे, सोइ जोजनकाव है, इस वास्ते मध्यान्हसें पहिलांनी प्रत्याख्यान पारके देव पूजापूर्वक जोजन करे, तो दोष नहीं, वैदकग्रंथोंमेंजी लिखा है, कि:-एक प्रहरमें दो बार जोजन न करे, तथा दो प्रहर उल्लंघे नहीं, क्योंकि एक प्रहरमें दो बार खानेसें रसोत्पत्ति होती है, अरु जेकर दो प्रहर पीठें न खावे, तो बलक्षय होता है.

अथ सुपात्रदानादिककी युक्ति लिखते हैं. सो ऐसे हैं कि:-जोनन वेलामें जक्ति सहित साधुर्थोंका निमंत्रणा करके, साधुके साथ घरे आवे, अथवा साधु स्वयमेव आता होवे तब सन्मुख जाके आदर करे, विनयसहित संविज्ञा जावित अजावित क्षेत्र देखे, तथा सुजिह्वा दुर्जिह्वा दिक कास देखे, तथा सुखज दुर्लनादि देने योग्य वस्तु देखे, तथा आचार्य, उपाध्याय, गीतार्य, तपस्वी, ब्राह्म, बृह्म, ग्लान, सह्य असहादि अर्थ द्वा करके महत्त्व, स्पर्शा, मत्सर, खेद, लज्जा, जय, दाक्षिण्य, पारानुयायि पणा, प्रत्युपकार, इष्टा, माया, विलंब, अनादर, बुरा बोलना, पश्चात्तापादि ये सर्व दानके दूषण वर्जके आत्माको संसारसें तारनेके वास्ते ऐसी बुद्धिसें वेतालीश दूषण रहित जो कुठ घरमें अन्न, पक्वान्न, पाणी, वस्त्रादि होवे, तिसकी अनुक्रमसें सर्व निमंत्रणा करे, अपने हाथमें पात्र धेके पास रही जायादिकसें दान दिखावे, पीठें बंदना करके अपने घरके दरवाजे तक साथ जावे, फेर पीठा आवे, जे कर साधु न होवे, तदा विना वादलों मेघकी तरें साधुका आना देखे, जे साधु आ जावे, तो मेरा जन्म स

फल हो जावे, इस वाले दिशावलोका न करे, जो जोजन साधुकों न दी या होवे, सो जोजन आवक न लावे, तथा जो आवक लष्ट पुष्ट साधु कां बिना कारण अशुल आहार देवे, तो खेने देने वाले दोनोंकों रोगी के दृष्टांत करिकें हितकारी नहीं हैं, तथा जित साधुका निर्वाह न होवे, दुर्भिक्ष होवे, साधु रोगी होवे, तथा और कोइ कारण होवे, तो उस साधुकों अशुल अप्राशुक आहार देवे, तो खेने देने वाले दोनोंकों हितकारी होवे, तथा रस्तेके थकेकों, रोगीकों, शाल पडने वालेकों, खोच करे कों, पारणके दिनकों, दान देवे, तो बहुत फल होता है, इस सुपात्र दानका नाम अतिथिसंविभाग कहते हैं ॥ यथागमः ॥ अतिथि संविभागो नाम नायगयाणं ॥ इत्यादि पाठका अर्थ कहते हैं, अतिथि संविभाग उक्तों कहते हैं, कि जो न्यायसे आया कल्पनीय अन्न, पाणी प्रमुख, देश, काष्ठ, श्रद्धा सत्कार क्रमयुक्त उत्कृष्ट भक्तित आत्माको अनुग्रह बुद्धिते, संयत साधुको दान देवे, सुपात्र दानसे देवता संबंधी तथा आदरिकादि संबंधी अमृत योग इष्ट सर्व सुखसमृद्धि राज्य प्रमुख मनगमतासंयोगादि प्राप्ति, और निर्विलंब, निर्विघ्न, मोक्षफलप्राप्ति है, क्योंकि अन्नयदान, अरु सुपात्र दान, तो मोक्ष देते हैं, और अनुकंपादान, उचितदान, अरु कीर्ति दान, यह तीनों सांसारिक सुखयोगोंके देने वाले हैं.

पात्रही तीन तरेंका कहा है. एक उत्तम पात्र साधु है, दूसरा मध्य मपात्र आवक है, तीसरा अविरतितन्यगृहदि, तो जवन्यपात्र है, तथा अनादर, काष्ठविलंब, विमुख, खोटा बवन बोलनां, अरु दान देके पश्चात्ताप करणों, ये पांच सत्तदानके कलंक हैं, तथा आनंदके आंशु आवे, रोनांव होवे, बहुमान देवे, नीठा बोले, दान दीये पीठें अनुमोदना करे, यह पांच सुपात्र दानके रूपण हैं, सुपात्रदानका परिग्रह परिमाण करने का फल, रत्नसार कुनारकी तरें होता है, यह कथा आखिविधि ग्रंथसे जान लेनी, इस वाले अंते साधु आदि संयोगके निमित्त सुपात्रदान, दिन प्रतिदिन विवेकवान् अवश्य करे.

तथा यथाशक्ति जोजनावतरने आवे साधनीयोंकों अपने साथ जोजन करावे, क्योंकि वोही पात्र है, तथा अंधे आदि नांगनेवालोंकोंही यथा योग्य देवे, परंतु किसी नांगनेवालेको निराश न जाने देवे, धर्मकी निंदा

न करावे, कठिन हृदयवाला न होवे, जोजनके अवसरमें दयावंतकों कपाट लगाने न चाहियें, उसमेंजी धनवान् तो विशेष करके कपाट लगा वेही नहीं ॥ आगमेऽप्युक्तं ॥ नेव दारं पिहावेई, जुंजमाणो सुसावउ ॥ अणुकंपा जिणंदेहिं, सद्वाणं न निवारिया ॥ १ ॥ विदूषण पाणिनिवहं, जीने जव सायरंमि दुस्कत्तं ॥ अविसेस अणुकंपं, दुहावि सामठउं कुणई ॥ २ ॥

स्वार्थः—जोजन करतां हूआ दरवाजा जडे नहीं, क्योंकि अनुकंपादान श्रावकों जिनेश्वर जगवान् ने मने नहीं करा है, जीवोंका समूहकों जयान क संसारमें दुःखपीकित देखके विशेष रहित अव्य अरु जाव दोनों तोंसे अनुकंपा करे, उसमें अव्यसे तो यथायोग्य अन्नादि देवे, अरु जावसे उनकों सन्मार्गमें प्रवर्त्तावे, श्रीपंचमांगादिकमें जहां श्रावकोंका वर्णन करा है, तहां ऐसा पाठ है, “अवगुंतिअ जुवारा” इस विशेषण करके जिक्रका बिकोंके प्रवेश वास्ते सदा किंवाड उघाडे रखे, दीनोद्धार तो संवत्सरी दान देनसे तीर्थकरोनेजी करा है, कदापि काख डुकाख पड जावे, तबतो श्रावक जो होवे, सो विशेष करके दीनोद्धार दानवसे करे, क्योंकि थागेजी चिक्रमादित्यके संवत् १३१५में जडेसर गामके वसने वाला श्रीमाख जाति शाह जगडु श्रावकने (११२) एक सौ बारह दानशाला करके दान दी या है, तथा चिक्रमादित्यके संवत् १४२९ में सोनी सिंहा श्रावकने २४००० मण अन्न, दीन जीवोंको डुकाखमें दीया है, तथा निर्दूषण आधार देवे, तो सुपात्र दान शुरू है.

तथा माता, पिता, जाइ, बहिन, पुत्र, बहू, सेवक, ग्लान, अरु पांचे हूये गौ प्रमुख इन सर्वकी चिंता करके अर्थात् इन सर्वकों जोजन कराके पीठे पंच परमेष्ठि स्मरण करके, प्रत्याख्यान पारके, सर्व नियम स्मरण करके, साम्यतासे जोजन करे. साम्यता ऐसे जाननी कि जो अन्न पाणी थापसमें विरुद्ध न होवे, तथा उखटा न परिणमे, थापणे स्वभावके मा फक होवे, तिसकों साम्य कहते हैं, जो पुरुष संपूर्ण जन्म तक साम्य तासे जोजन करे, वो कदी विपनी खावे, तोजी अमृत हो जावे, अरु थ साम्यतासे अमृत खायानी विप हो जाता है, परंतु इतना विशेष है किः—साम्यतासेनी पय्यही खाना चाहियें, नतु थपय्यं. तथा खानेका अत्यंत रुद्धि न होना चाहियें, कंठ नाकसे जव देठ उतर जाता है, तब

सर्व जोजन बराबर हो जाता है, इस वास्ते एक कृष्णमात्रिका खादके वास्ते अति लोभ्यता न करनी चाहिये, तथा अजडयं अनंतकायं, बहुत सावय वस्तु, अर्थात् बहुत पापवाली वस्तु न खावे, तथा जो थोडा खाता है, सो बहुत बलादिवान् होता है, तथा जो बहुत खाता है, सो अल्प खानेके फलवाला होता है, तथा अधिक खानेसें अजीर्ण वमन विरेचना दि मरणांत कष्टनी हो जाता है ॥ श्लोक ॥ हितमितविपक्वजो जी, वामं शयी नित्यचक्रमणशीलः ॥ उश्नितमूत्रपुरीषः, स्त्रीषु जितात्मा जयति रो गान् ॥ १ ॥ अर्थः—जो सूख लगे तो हितकारी ऐसा अन्न थोडा जीमे, वाना पासा हेठ करके सोवे, नित्य चक्रनेका खजावशील होवे, जब वा धा होवे, तबही दितामात्रा करे, स्त्रीसें जोग न करे, वो पुरुष रोगोंको जीत लेता है.

अथ जोजनविधि, व्यवहार शास्त्रादिकोंके अनुसार लिखते हैं. अतिप्रं चातमें, अतिसंध्यामें, तथा रात्रिमें जोजन न करना चाहिये, तथा सडा, वात्सा, अन्न न खावे, चखता दूध न खावे, तथा जीमणा (दाहिण) पग ऊपर हाथ रखके न खावे, हाथ उपर रखके न खावे, खुल्ले आकाशमें न खावे, धूपमें बैठके न खावे, अंधारेमें बृकके तले न खावे, तर्जनी अंगुली उंची करके कदापि न खावे, मुख, हाथ, पग, अरु वस्त्र, बिना धोया न खावे, नंगा हो कर, मैले वस्त्रोंसें, दाहिणें हाथसें, थालकों बिना पकड़े, न खावे, थोती आदिक एक वस्त्र पहिरके न खावे, जीजे वस्त्र पहिरके न खावे, जीजे वस्त्रसें मस्तक छपेटके न खावे, यदा अपवित्र होवे, तदा न खावे, अति रुख लंपट हो कर न खावे, तथा जूते सहित, व्यग्रचित्त, निःकेंवल शूनि उपर बैठके अरु मंजे उपर बैठके न खावे, विदिशिकी तर्फ तथा दक्षिणकी तर्फ मुख करके न खावे, पतले आसनपे बैठके जोजन न करे, तथा आसन उपर पग रखके जोजन न करे, चंदायके देखते न खावे, जो धर्मसें पतित होवे, उसके देखते न खावे, तथा फूटे पात्रमें अरु मलीन पात्रमें न खावे, जो शाकादिक वस्तु विष्टासें उत्पन्न होवे, सो न खावे, बाख हत्वादि जिसने करी होवे शनने तथा रजखला बीने जो वस्तु स्पर्शी होवे, तथा जो वस्तुको गाय, श्वान, पंखीने मूंघी होवे, तथा जो वस्तु अजापी होवे, तथा जो वस्तु फेरके उष्य करी होवे, सो न खावे, तथा

वचवचाट शब्द करके न खावे, तथा मुख फाटे तो बुरा लगे ऐसे मुख करके न खावे, तथा जोजनके अवसरमें दूसरोंको बुझाके प्रीति उपजावे, अपने देवगुरुका नामस्मरण करके समासन उपर बैठके, जो अन्न अपनी माता, वहिख, ताड़, (पितासें बडे चाइकी औरत) जाणजी, स्त्री प्रमुखनें रांध्या होवे, सो पवित्र पणें जोजन परांसा दूआ उसको, मोन करके दाहिना खर चखते खावे, जो जो वस्तु खावे, सो नासिकासें सूंघके खावे, इसमें दृष्टिदोष नष्ट हो जाता है, तथा अति खारा, अति खट्टा, अति उष्ण, अति शीतल, अति शाक, अति मीठा, ये सर्व न खावे, मुखके स्वाद मात्र खावे, क्योंकि अति उष्ण खावे, तो रस हृष्या जाता है, अति खट्टा खावे, तो इंद्रियोंकी शक्ति कम हो जाती है, अति खवण खावे, तो नेत्र बिगड़ जाते हैं, अति स्निग्ध खावे, तो नासिका विषय रहित हो जाती है, तथा तीक्ष्णद्रव्य अरु कौमा द्रव्य खावे, तो कफ दूर हो जात है, तथा कषायेला अरु मीठा खावे, तो पित्त नष्ट हो जाता है, स्निग्ध घृतादिक खानेसें वायु दूर हो जाता है, घाकी शोष रोग जो हैं, सो न खानेसें दूर हो जाते हैं.

जो पुरुष शाक न खावे, अरु घृतसें रोटी खावे, तथा जो दूधसें चावल खावे, तथा बहुत पाणी न पीवे, अजीर्ण होवे, तदा खावे नहिं, सो पुरुष, रोगोंको जीत लेता है, जोजन करती बखत पहिखां मीठा अरु स्निग्ध जोजन करे, बीचमें तीक्ष्ण जोजन करे, पीठें कौडी वस्तु खावे ॥ उक्तं च ॥ सुस्निग्ध मधुरैः पूर्वं, मश्रीयादन्वितं रसेः ॥ द्रव्याम्लखणैर्मध्ये, पर्यंते कटुतिक्तकैः ॥

तथा जो पहिखां द्रव अर्थात् नरम वस्तु खावे, मध्यमें कडुआ रस खावे, अंतमें फेर नरम रस खावे, सो बलवंत अरु नीरोगी रहे, तथा पाणीको जोजनसें पहिखां पीवे, तो मंदाग्निका जनक है, तथा जोजनके विचमें पीवे, तो रसायन समान गुणकारी है, तथा जोजनके अंतमें पीवे, तो विष समान है, जोजनके अनंतर सर्वरससें खिप्त दूधे हाथसें एक चबुरो ज पीवे, पशुकी तरे पाणी न पीवे, पीया पीठें जो पाणी रहे सो गेर देवे, अंजलिसें पाणी न पीवे, पाणी थोडा पीणां पथ्य है, पाणीसें जीजे दूधे हाथोंको गला, तथा कपोल, हाथ, नेत्र, इतने स्थानोंमें न लगावे, न पूंजे, गोडे (जानु) का स्पर्श करे, तथा अंगमर्दन, दिसा जानां, चार उठानां, बैठनां

स्नान करनां, ये सर्व जोजन कीया पीठें न करे, तथा कितनेक काल तांइ बुद्धिमान् पुरुष जोजन करकें बैठ जावे, तो पेट बन्ना हो जाता है, तथा उपरिकों मुख करकें चित्त हो कर सोवे, तो बल बधे, वामे पासें सोवे, तो आधु बधे, जोजन करकें दौड़े, तो मरण होवे, जोजन कीयां पीठें वामे पासें दो घड़ी तांई सोवे, परंतु निद्रा न लेवे, अथवा सोवे नहीं तो सौ पग (सौ मिंग) चले, (फिरे) अन्यत्रजी कहा है कि देवकों, साधुकों, नगरका स्वामी राजाकों तथा स्वजनोंकों, जब कष्ट होवे, तब तथा चंद्र सूर्यके ग्रहणमें जे कर शक्ति होवें, तो विवेकवान् पुरुष जोजन न करे. जैसेही “अजीर्ण प्रज्वारोगा” इस वास्ते अजीर्णमेंजी जोजन न करे.

ज्वरकी आदिमें लंघन करनां श्रेष्ठ है, परंतु वायुज्वर, श्रमज्वर, क्रोध ज्वर, शोकज्वर, कामज्वर, घावकीज्वर, इतने ज्वरकों वर्जकें शेष ज्वर तथा नेत्ररोगके दूये लंघन करे.

तथा देव गुरुके वंदनादिके अयोगसें, तथा तीर्थ अरु गुरुकों नमस्कार करण जाते बखत, तथा विशेष धर्मांगीकार करतां बन्ना पुण्य कार्य प्रारंभ करतां, अरु अष्टमी, चतुर्दशी आदि विशेष पर्वके दिन, जोजन न करनां चाहियें. तपका जो करणां है, सो इस लोक अरु परलोकमें बहुत गुणकारी है, तथा जोजन करा पीठें नमस्कार स्मरण करकें उठे, चैत्यवंदना करकें देव गुरुकों यथायोग्य वंदना करे, तथा जोजनके पीठें गंठिसहित दिवसचरिमं प्रत्याख्यान विधिसें करे, पीठें गीतार्थ साधु गीतार्थ श्रावक, तथा सिद्धपुत्रादिकोंके समीपें स्वाध्याय (पठन पाठन) यथायोग्य करे, योगशास्त्रमें लिखा है, कि जो गुरुमुखसें पढा होवे, सो औरोंकों पढावे, स्वाध्याय करे, पीठें संध्यामें जिनपूजा करे, पीठें पन्निक्कमणां करे, पीठें स्वाध्याय करे, पीठें वैयावृत्य अर्थात् मुनिकी पगचंपी करे, पीठें घर जा कर सकल परिवारकों जोमकें धर्मका स्वरूप कथन करे, उत्सर्गमार्गे तो श्रावकों एक वारही जोजन करनां चाहियें ॥ यदज्ञाणि ॥ उत्सर्गगेणं तु सद्योय, सचित्ताहारं वज्जार्ज ॥ इक्कासण्ण जोइअ, वंजयारि तहेव य ॥ १॥ जेकर एक जुक्त न करने सामर्थ्य होवे, तदा दिनका अष्टमा जाग अर्थात् चार घनी दिन जब रहे, तब जोजन कर लेवे, (जीम लेवे) दो घड़ी दिन रहनेसें पहिलांही जोजन कर लेवे, पीठें यथाशक्ति चार आहार, तीन

वृचवत्राट शब्द करके न खावे, तथा मुख फाटे तो घुरा खगे श्रेसें मुं करके न खावे, तथा जोजनके अवसरमें इसरोकों बुझाके प्रीति ^{उपनि} वे, अपने देवगुरुका नामस्मरण करके समासन उपर बैठके, जो अन्न अपनी माता, वहिख, ताड़, (पितासें बडे जाइकी औरत) जाणजी, स्त्रीशु खनें रांध्या होवे, सो पवित्र पणें जोजन परोंसा दूथा उसकों, मोन स के दाहिना खर चखते खावे, जो जो वस्तु खावे, सो नासिकासें सूंके खावे, इसमें दृष्टिदोष नष्ट हो जाता है, तथा अति खारा, अति खट्टा, अति उष्ण, अति शीतल, अति शाक, अति मीठा, ये सर्व न खावे, मुखसें स्वाद मात्र खावे, क्योंकि अति उष्ण खावे, तो रस हूया जाता है, अति खट्टा खावे, तो इंद्रियोंकी शक्ति कम हो जाती है, अति खवण खावे, तो नेत्र विगन जाते हैं, अति स्निग्ध खावे, तो नासिका विषय रहिन हो जाती है, तथा तीक्ष्णद्रव्य अरु कोना द्रव्य खावे, तो कफ दूर हो जात है, तथा कपायेला अरु मीठा खावे, तो पित्त नष्ट हो जाता है, स्निग्ध घृतादिक खानेसें वायु दूर हो जाता है, बाकी शेष रोग जो हैं, सो न खानेसें दूर हो जाते हैं.

जो पुरुष शाक न खावे. अरु घृतसें रोटी खावे, तथा जो दूधसें चावल खावे, तथा बहुत पाणी न पीवे, अजीर्ण होवे, तदा खावे नहिं, सो पुरुष, रोगों को जीत लेता है, जोजन करती बखत पहिखां मीठा अरु स्निग्ध जोजन करे, बीचमें तीक्ष्ण जोजन करे, पीठें कौडी वस्तु खावे ॥ उक्तं च ॥ सुस्निग्ध मधुरैः पूर्वं, मश्रीयादन्वितं रसेः ॥ द्रव्याम्ललवणैर्मध्ये, पर्यंते कटुतिक्तकैः ॥

तथा जो पहिखां द्रव अर्थात् नरम वस्तु खावे, मध्यमें कडुआ रस खावे, अंतमें फेर नरम रस खावे, सो बलवन्त अरु नीरोगी रहे, तथा पाणीको जोजनसें पहिखां पीवे, तो मंदाम्रिका जनक है, तथा जोजनके विचमें पीवे, तो रसायन समान गुणकारी है, तथा जोजनके अंतमें पीवे, तो विष समान है, जोजनके अनंतर सर्वरससें स्निग्ध दूध हाथसें एक चबुरो ज पीवे, पशुकी तरे पाणी न पीवे, पीया पीठें जो पाणी रहे सो गेर देवे, अंजलिसे पाणी न पीवे, पाणी थोडा पीणां पथ्य है, पाणीसें जीजे दूध हाथोंको गला, तथा कपोल, हाथ, नेत्र, इतने स्थानोंमें न लगावे, न पूंजे, गोडे (जानु) का स्पर्श करे, तथा अंगमर्दन, दिसा जानां, चार उठानां, वेठनां

स्नान करनां, ये सर्व जोजन कीया पीठें न करे, तथा कितनेक काल तांइ बुद्धिमान् पुरुष जोजन करकें बैठ जावे, तो पेट बुरा हो जाता है, तथा उपरिकों मुख करकें चित्त हो कर सोवे, तो बल बधे, वामे पासें सोवे, तो श्वायु बधे, जोजन करकें दौड़े, तो मरण होवे, जोजन कीयां पीठें वा मे पासें दो घड़ी तांई सोवे, परंतु निद्रा न लेवे, अथवा सोवे नहीं तो लो पग (लो भिंग) चले, (फिरे) अन्यत्रजी कहा है कि देवकों, साधुकों, नगरका स्वामी राजाकों तथा स्वजनोको, जब कष्ट होवे, तब तथा चंद्र सूर्यके ग्रहणमें जे कर शक्ति होवें, तो विवेकवान् पुरुष जोजन न करे. असेही "अजीर्ण प्रचवारोगा" इस वास्ते अजीर्णमेंजी जोजन न करे.

ज्वरकी आदिमें लंघन करनां श्रेष्ठ है, परंतु वायुज्वर, श्रमज्वर, क्रोध ज्वर, शोकज्वर, कामज्वर, घावकीज्वर, इतने ज्वरकों वर्जकें शेष ज्वर तथा नेत्ररोगके दूधे लंघन करे.

तथा देव गुरुके वंदनादिके अयोगसें, तथा तीर्थ श्रु गुरुकों नमस्कार करण जाते बखत, तथा विशेष धर्मांगीकार करतां बना पुण्य कार्य प्रारंभ करतां, श्रु अष्टमी, चतुर्दशी आदि विशेष पर्वके दिन, जोजन न करनां चाहियें. तपका जो करणां है. सो इस लोक श्रु परलोकमें बहुत गुणकारी है, तथा जोजन करा पीठें नमस्कार स्मरण करकें उठे, चैत्यवंदना करकें देव गुरुकों यथायोग्य वंदना करे. तथा जोजनके पीठें गंत्रिसहित दिवसचरिमं प्रत्याख्यान विधितें करे. पीठें गीतार्थ साधु गीतार्थ आचक, तथा सिद्धपुत्रादिकोंके समीपें स्वाध्याय (पठन पाठन) यथायोग्य करे, योगशास्त्रमें लिखा है, कि जो गुरुमुखसें पढा होवे, सो औरोंको पढावे, स्वाध्याय करे, पीठें संध्यामें जिनपूजा करे. पीठें पन्डितोंको करे, पीठें स्वाध्याय करे. पीठें वैद्याष्टय अर्थात् मुनिकी पगचंपी करे. पीठें घर जा कर सकल परिवारकों जोरुके धर्मका स्वरूप कथन करे, उत्सवनामें तो आचकको एक बारही जोजन करनां चाहियें ॥ चंद्रज्ञाणि ॥ उन्मग्लेण तु सद्योप, लक्षित्वाहारं पञ्चार्थ ॥ इक्ष्वाक्येण जोइत्य, वंजयारि नद्वय ॥ १॥ जेकर एक भुक्त न करने नामर्प्य होवे. नदा दिनका अष्टमा राग अर्थात् चार पनी दिन जय रहे. तब जोजन कर सेवे. (जीम सेवे) दो घड़ी दिन रहनेसें पहिल्यांही जोजन कर सेवे. पीठें यथाशक्ति चार आहार, तीन

बचवचाट शब्द करके न खावे, तथा मुख फाटे तो बुरा खने श्रेष्ठ करके न खावे, तथा जोजनके अवसरमें दूसरोंको बुझाके प्रीति उपदेखे, अपने देवगुरुका नामस्मरण करके समासन उपर बैठके, जो शत्रु अपनी माता, बहिष्, ताड़, (पितासे बड़े जाइकी श्रौरत) जाणजी, स्त्री मुखने रांध्या होवे, सो पवित्र पण जोजन परांसा दूध्या उसको, मोन करके दाहिना खर चलते खावे, जो जो वस्तु खावे, सो नासिकासें सुख खावे, इसमें दृष्टिदोष नष्ट हो जाता है, तथा अति खारा, अति खट्टा, अति उष्ण, अति शीतल, अति शाक, अति मीठा, ये सर्व न खावे, मुतके खाद मात्र खावे, क्योंकि अति उष्ण खावे, तो रस हृण्य जाता है, अति खट्टा खावे, तो इंद्रियोंकी शक्ति कम हो जाती है, अति खवण खावे, तो नेत्र विगन जाते हैं, अति स्निग्ध खावे, तो नासिका विषय रहित हो जाती है, तथा तीक्ष्णद्रव्य अरु कौनो द्रव्य खावे, तो कफ दूर हो जात है, तथा कपायेला अरु मीठा खावे, तो पित्त नष्ट हो जाता है, स्निग्ध घृतादिक खानेसें वायु दूर हो जाता है, बाकी शेष रोग जो हैं, सो न खानेसें दूर हो जाते हैं.

जो पुरुष शाक न खावे, अरु घृतसें रोटी खावे, तथा जो दूधसें चावल खावे, तथा बहुत पाणी न पीवे, अजीर्ण होवे, तदा खावे नहीं, सो पुरुष, रोगोंको जीत लेता है, जोजन करती बखत पहिलां मीठा अरु स्निग्ध जोजन करे, बीचमें तीक्ष्ण जोजन करे, पीठें कौडी वस्तु खावे ॥ उक्तं च ॥ सुस्निग्ध मधुरैः पूर्वं, मश्रीयादन्वितं रसेः ॥ द्रव्याम्लखवणैर्मध्ये, पर्यंते कटुतिक्तकैः ॥

तथा जो पहिलां द्रव अर्थात् नरम वस्तु खावे, मध्यमें कटु अरु रस खावे, अंतमें फेर नरम रस खावे, सो बलवन्त अरु नीरोगी रहे, तथा पाणीको जोजनसें पहिलां पीवे, तो मंदाग्निका जनक है, तथा जोजनके विचमें पीवे, तो रसायन समान गुणकारी है, तथा जोजनके अंतमें पीवे, तो विष समान है, जोजनके अनंतर सर्वरससें खित हूये हाथसें एक चबुत्तों ज पीवे, पशुकी तरे पाणी न पीवे, पीया पीठें जो पाणी रहे सो गेर देवे, अंजलिसें पाणी न पीवे, पाणी थोडा पीणां पथ्य है, पाणीसें जीजे हूये हाथोंको गला, तथा कपोल, हाथ, नेत्र, इतने स्थानोंमें न लगावे, न पूजे, गो दे (जानु) का स्पर्श करे, तथा अंगमर्दन, दिसा जानां, चार उठानां, बैठनां

ज्ञान करनां, ये सर्व जोजन कीया पीठें न करे, तथा कितनेक काल तांइ बुद्धिमान् पुरुष जोजन करकें बैठ जावे, तो पेट बन्ना हो जाता है, तथा उपरिकों मुख करकें चित्त हो कर सोवे, तो बल बधे, वामे पासें सोवे, तो आयु बधे, जोजन करकें दौड़े, तो मरण होवे, जोजन कीयां पीठें वा मे पासें दो घड़ी तांइ सोवे, परंतु निद्रा न लेवे, अथवा सोवे नहीं तो सौ पग (सौ किंग) चले, (फिरे) अन्यत्रजी कहा है कि देवकों, साधुकों, नगरका स्वामी राजाकों तथा स्वजनोंकों, जब कष्ट होवे, तब तथा चंद्र सूर्यके ग्रहणमें जे कर शक्ति होवें, तो विवेकवान् पुरुष जोजन न करे. औसैंही “अजीर्ण प्रज्वारोगा” इस वास्ते अजीर्णमेंजी जोजन न करे.

ज्वरकी आदिमें लंघन करनां श्रेष्ठ है, परंतु वायुज्वर, श्रमज्वर, क्रोध ज्वर, शोकज्वर, कामज्वर, घावकीज्वर, इतने ज्वरकों वर्जकें शेष ज्वर तथा नेत्ररोगके हूये लंघन करे.

तथा देव गुरुके वंदनादिके अयोगसें, तथा तीर्थ अरु गुरुकों नमस्कार करण जाते बखत, तथा विशेष धर्मांगीकार करतां बन्ना पुण्य कार्य प्रारंभ करतां, अरु अष्टमी, चतुर्दशी आदि विशेष पर्वके दिन, जोजन न करनां चाहियें. तपका जो करणां है, सो इस लोक अरु परलोकमें बहुत गुणकारी है, तथा जोजन करा पीठें नमस्कार स्मरण करकें उठे, चैत्यवंदना करकें देव गुरुकों यथायोग्य वंदना करे, तथा जोजनके पीठें गंठिसहित दिवसचरिमं प्रत्याख्यान विधिसें करे, पीठें गीतार्थ साधु गीतार्थ श्रावक, तथा सिद्धपुत्रादिकोंके समीपें स्वाध्याय (पठन पाठन) यथायोग्य करे, योगशास्त्रमें लिखा है, कि जो गुरुमुखसें पढा होवे, सो औरोंकों पढावे, स्वाध्याय करे, पीठें संध्यामें जिनपूजा करे, पीठें पक्कमणां करे, पीठें स्वाध्याय करे, पीठें वैयावृत्य अर्थात् मुनिकी पगचंपी करे, पीठें घर जा कर सकल परिवारकों जोरुके धर्मका स्वरूप कथन करे, उत्सर्गमागें तो श्रावककों एक वारही जोजन करनां चाहियें ॥ यदज्ञाणि ॥ उत्सर्गगेणं तु सद्योय, सचित्ताहारं वज्जुळ ॥ इक्कासणग जोइअ, वंजयारि तद्देव य ॥ १॥ जेकर एक शुक्त न करने सामर्थ्य होवे, तदा दिनका अष्टमा जाग अर्थात् चार घंटी दिन जब रहे, तब जोजन कर लेवे, (जीम लेवे) दो घड़ी दिन रहनेसें पहिलांही जोजन कर लेवे, पीठें यथाशक्ति चार आहार, तीन

आहार, दो आहारका त्यागरूप दिवसचरिम सूर्य उगते तांश् करे, सो मु
 वृत्तिसें तो दिन होतेही करना चाहियें, परंतु अपवादमें रातकोजी करे,
 इतिश्री तपगणीय गणिश्री मणिविजय तष्ठिप्य मुनि श्रीशुद्धिविजय ता
 प्य मुनि आत्माराम आनंदविजयविरचिते जैनतत्त्वादशें श्राद्धविधि
 आनुसारेण श्रावक दिनकृत्यप्रकाशकनामा नवम परिच्छेदः संपूर्णः ॥ ५

॥ अथ दशम परिच्छेद प्रारंभः ॥

इस परिच्छेदमें श्रावकोंका एक रात्रिकृत्य, दूसरा पर्यंकृत्य, तीसरा
 मासिककृत्य, चौथा संवत्सरीकृत्य, अरु पांचमा जन्मकृत्य, यह पांचकृत्य
 अनुक्रमसें लिखेंगे. तिसमें प्रथम रात्रिकृत्य लिखते हैं.

साधुके पास तथा पोषधशालादिमें यत्नपूर्वक प्रमार्जना पूर्वक सा
 यिक करके प्रतिक्रमण करे, पीठें आधुओंकी पगचंपी करे, यद्यपि सा
 ने श्रावकके पासों उत्सर्गमार्गमें विश्रामणादि नहीं करावणी, तोनी भ
 यक विश्रामणा करणेके जाव करे, तो महाफल है, पीठें श्राद्धदिनकृत्य
 श्रावकविधि, उपदेशमाला अरु कर्मग्रंथादि शास्त्रोंकी स्वाध्याय करे, प
 ठें सामायिक पारके घरमें जावे.

पीठें सम्यक्स्वमूल वारह व्रतमें, सर्वशक्तिसें यत्न करणादिरूप तथा सा
 धा अर्हत् चेत्य, अरु साधर्मिक वर्जित वासस्यानमें अनिवासरूप तथा पूज
 प्रत्याख्यानानादि अजिग्रहरूप, यथाशक्ति सप्त क्षेत्रमें धन खरचनरूप ऐस
 यथायोग्य सकल परिवारकों धर्मोपदेश कथन करे, जेकर श्रावक अपने
 रिश्वारकों धर्म न कहे, तब उन परिवारकों धर्मकी प्राप्ति न होयेगी, तो इस
 लोक परलोकमें जो वे पापकर्म करेंगे, सो सर्व उस श्रावककों लगेंगे, क्योंकि
 लोकमें यह व्यवहार है, कि:-जो चोरकों खाने पीनेकों देवे, सोनी शो
 गिना जाना है. ऐसे धर्ममेंनी जान खेनां, इस वास्ते श्रावकने उच्य तथा
 जावसें अपने कुटुंबकों शिक्षा देनी चाहियें, उसमें उच्यसें तो पुत्र, कन्य
 वेटी प्रमुखकों यथायोग्य वस्त्रादि देवे, अरु नावसें तिनकों धर्मका उपदेश
 करे, तथा दुःस्त्रीये सुस्त्रीयेकी चिंता करे॥अन्यग्राप्युक्तं॥राक्ष राष्ट्रकृतं पापं,
 राक्षः पापं पुरोहिते ॥ नर्त्तरि श्रीकृतं पापं, शिष्यपापं गुरावपि ॥ १ ॥ धर्म
 देशना दीये पीठें, रात्रिका प्रथम प्रहर नीत्या पीठें शरीरकों हितकारी

ध्यामें विधिसें निद्रा अल्पमात्र करे, यहस्थ बाहुंक्षयता करके मैथुनसें व
र्जित होवे, जे कर यहस्थ जावजीव तक ब्रह्मव्रत पालने समर्थ न होवे,
तदा पर्व तिथिके दिन तो अवश्य ब्रह्मचर्यव्रत पालनां चाहियें.

नींद लेनेकी विधि नीतिशास्त्रके अनुसारें यह है:—जिस मांचेमें जीव
पड़े होवे, जो खाट ठोटी होवे, चागी हुइ होवे, मैली होवे, दूसरे पा
चे संयुक्त होवे, तथा अग्निके बले काष्ठकी खाट होवे, सो त्यागे, खाटमें
तथा आसनमें चार जातकी लकड़ी लगे, तब तांइ तो शुज है, परंतु पांचा
दि काष्ठ लगे, तो अशुज है, तथा पूजनिक वस्तुके उपर न सोवे, तथा पा
णीसें पग जीजे न सोवे, तथा उत्तर दिशि अरु पश्चिमदिशि तर्फ शिर
करके न सोवे, वांसकी तरें न सोवे, पगोंके ठिकाणी न सोवे, हाथीके
दांतकी तरें न सोवे, देवताके मंदिरके मूलगंजारेमें, सर्पकी बंवी उपर,
बृह्मके द्वेष्ठ, तथा श्मशानमें सोवे नहीं, किसीके साथ लनाइ हुइ होवे,
तदा मिटाके सोवे, सोने वखत पाणी पास रखे तथा दरवाजा जनके, इ
ष्टदेवकों नमस्कार करके बनी शय्यामें अष्टी तरें जंढनेके वस्त्र समारके,
सर्वाङ्गार त्यागके, वामापासा नीचें करके सोवे.

दिनकों सोवे नहीं, परंतु क्रोध, शोक, अरु मद्यके मिटाने वास्ते त
था स्त्रीकर्म, अरु जारके चकेवेके मिटाने वास्ते तथा रस्तेके खेदके मि
टाने वास्ते तथा अतिसार, श्वास, हिजकी प्रमुख रोग दूर करने वास्ते
सोवे, तथा जो बाल होवे, बृद्ध होवे, बलहीण होवे, सो सोवे, तथा
तृपा, शूल, गरु, गूमनकी वेदन करके विव्हल होवे, सो सोवे, तथा जि
सकों अजीर्ण हुवा होवे, वाय हुवा होवे, जिसकों खुसकी हुइ होवे,
तथा जिसकों रात्रिमें निद्रा थोडी आती होवे, वो दिनमेंनी सो जावे.
तथा ज्येष्ठ अरु आपाढ महीनेमें दिनमेंनी सोनां अष्टा है, और मही
नोमें सोवे, तो कफ अरु पित्त करता है, तथा बहुत नींद लेनी बहुत
काल लग सूता रहनां अष्टा नहीं, तथा रातकों सोवे तदा दिशावकाशिक
व्रत उच्चारके सोवे, तथा चार सरणां लेवे, सर्व जीवराशिसें खामणां करे,
अष्टारह पाप स्थानक व्युत्सर्जन करे, दुष्कृतकी निंदा करे, सुकृतानुमोदन
करे, तथा ॥ जइ मे हुज्ज पमारुं, श्मस्त देहस्त श्माइ रयणीये ॥ आहा
रमुवहि देहं, तवं तिविद्देण वोसरियं ॥ १ ॥ नमस्कार पूर्वक इत्त गा

थाकों तीन वार पड़े. साकार अनसन करे, पंच नमस्कार स्मरण सोनेके अवसरमें पड़े, स्त्रीसे दूर अलग शय्यामें सोवे, जेकर निकट सोवे, तब एक तो विकार अधिक जागता है, तथा दूसरा जिस वासना युक्त पुरुष सोवे, सो जितना चिर जागे नहीं, उतना चिर उन्ही वासना उस पुरुषकों रहती है, इस वास्ते स्त्रीसे अलग दूसरी शय्यामें सोवे, तथा पागल (दीवाना) हो जावे, तथा मरणावसरमें गफलत हो जावे, तोजी तिसके जो सचित्त अवस्थामें वासनाधी, उन्ही वासना है, ऐसे जानना॥ इत्या तोपदेशः ॥ इस वास्ते सर्वथा उपशांतमोह हो करके, धर्म वेराग्यादि जावना करके वासित हो करके निद्रा करे, तो खोटा स्वप्न न होवे, जिस रीतिसे अष्टा धर्ममय स्वप्न देखे, इसी रीतिसे सोवे, जेकर कदाचित् उसका आशु समाप्तिजी हो जावे, तोजी वो अष्टी गतिमें जावे.

तथा सूतां पीठे रात्रिमें जब जाग जावे, तदा अनादि कालका अन्यासरससे कदाचित् काम पीडा करे, तब स्त्रीके शरीरका अशुचिपणा विचारे, अरु श्रीजंबूस्वामी तथा धूलिजडादि महा कृपियोका तथा सुदर्शनादि महा श्रावकोंकी दुष्कृत शील पालनेमें दृढता विचारे, तथा कपाषादि दोषके जीतनेका उपाय जो अवस्थिति अत्यंत दुःखदाता है, धर्म मनोरथ इनकी चिंतवणा करे, तिनमें स्त्रीके शरीरकों अपवित्रता, जुगुप्सनीयादि सर्व विचारे, जैसे श्रीहेमचंद्रसूरिजीने योगशास्त्रमें लिखा है. तथा पूज्यश्री मुनिसुंदर सूरिजीने अध्यात्मकल्पद्रुममें लिखा है, तैसे विचारे, सो लेशमात्र इहां लिखते हैं.

चाम, हार, मल्ला, आंदरा, चरबी, नसा, रुधिर, मांस, विष्टा, मूत्र, खल, खंकारादि अशुचि पुण्यका, पिंक स्त्रीका शरीर है, इस पिंकमें तुं क्या रमणिक वस्तु देखता है? जो विष्टेको दूरसे देख कर लोक धूधूकार करते हैं, वेही मूढ लोक विष्टे अरु मूत्रसे पूर्ण, ऐसे स्त्रीके शरीरकी अजिछाया करते हैं? विष्टेकी कोथली बहुत ठिझावाली जिसके ठिझावारा कृमीजाल निकलते हैं, अरु कृमीजालसे जरी है, ऐसी स्त्री है, तथा चपलता, माया, जूठ, उगी, इनां करके संस्कारी दुष्ट है, ताते जो पुरुष मोहसे इसका संग करे, जोगविद्यास करे, तिसको नरकके तांड़ है, ऐसी स्त्री विष्टेकी कोथली जिसके इग्यारों द्वारोंसे अशुचि जरती है, जिस द्वारकों सुंधो,

उसीमें महा सडे दूये कुत्तेके कलेवर समान दुर्गंध आती है, तो फेर का मीजन क्यों कर उन स्त्रीके शरीरमें रागांध होते हैं? इत्यादि स्त्रीके शरीरकी अशुचि विचारे, वो पुरुषकों धन्य है, वो पुरुष जंबुकुमार, जिसने नवपरिणीत आठ पद्मिनी स्त्री, अरु निनानवे क्रोम सौनइये त्रिनकमें त्याग दीया, तिसका माहात्म्य विचारे, तथा श्रीधूविजय अरु सुदर्शन शैठके शीलका माहात्म्य विचारे.

कषाय जीतनेका उपाय इस तरें करे:-क्रोधकों क्षमा करकें जीते, मा नकों नरमाइतें जीते, मायाकों सरलताइसें जीते, खोजकों संतोषसें जी ते, रागकों वैराग्यसें जीते, द्वेषकों मित्रतासें जीते, मोहकों विवेकसें जीते, कामकों स्त्रीके शरीरकी अशुचि जावनासें जीते, मत्सरकों परकी संपदा देखकें पीना न करनेसें जीते, विषयकों संयमसें जीते, अशुच मन, वचन, अरु काया इन तीनोंकों तीन गुप्तिसें जीते, आलसकों उद्यमसें जीते, अ विरतिपणाकों विरतिपणासें जीते, इस प्रकार करकें यह सब सुखसें जी ते जाते हैं, आगेन्नी बहुत महात्माउने इनकों इसी तरें जीता हैं.

नवस्थिति महादुःखरूप है, क्योंकि चारों गतिमें जीव नाना प्रकारके दुःख पा रहे हैं, तिनमें नरकगतिमें तो सातों नरकोंमें क्षत्रवेदना है, तथा पांच नरकोंमें परस्पर शस्त्रों करकें उद्दीरी वेदना है, तथा तीन नरकमें पर माधर्मिक देवताकृत वेदना है, आख मीचके उधाने, इतना कालग्री नरक वासी जीवोंकों सुख नहीं है, निःकेवल दुःखही पूर्व जन्मका करा दूथा पापों से उदय दूथा है. रात, अरु दिन, एक तरीखे दुःखमें जाते हैं, जितना नरकगतिमें जीव दुःखकों पावे है, उस्सें अनंतगुणा दुःख निगोदमें जी व पावे है, तथा तिर्यङ्गगतिमें अंकुश, पराणा, छात्री, सोटा, शृंगनोटन, गलमोनन, तोडन, ठेदन, जेदन दहन, अंकन, परवशादि, अनेक दुःख पावे हैं, तथा मनुष्य गतिमें गर्द, जन्म, जरा, मरण, नानाप्रकारकी पी डा, राग, व्याधि, दरिद्रता, माता, पिता, स्त्री, पुत्रका मरणादि अनेक दुःख पावता है, तथा देवगतिमें चवनका दुःख, दासपणका दुःख, परा जय, ईर्ष्यादि अनेक दुःख हैं, इत्यादि नवस्थिति विचारे.

तथा धर्मेननोरथ जायना, तो आदकके घरमें जो दान, दर्शन, वन सज्जन में दासनी हो जाऊं, तोनी अछा है, परंतु निष्पादष्टिमें चक्रवर्ती राजाती

न होउं? तथा कव में संविद्ध सो संवेगी वेराग्यवंत गीतार्थ गुरुके चरणोंमें सजनादि संग रहित प्रव्रज्या ग्रहण करुंगा? तथा कव में तिर्यंचके पिशाच के जयसें निःप्रकंप हो कर श्मशानादिमें विधिपूर्वक कायोत्सर्ग करुंगा? तथा कव में तपसें कृश शरीर हो के उत्तम पुरुषोंके मार्गमें चहुंगा? इत्यादिक जावनासें कामके कटककों जीते ॥ इति श्राद्धविधि ग्रंथानुसार रात्रिकृत्य ॥

अथ श्रावकका पर्वकृत्य लिखते हैं. पर्व जो अष्टमी, चतुर्दशी आदिक दिवस, तिसमें धर्मकी पुष्टि करे तिसका नाम पोपध है, सो पोपधक जसे व्रतवाले श्रावककों पर्वके दिनमें अवश्य करनां चाहियें, जे कर पर्वके दिन शरीरमे शाता न होवे तदा पोपध न कर सके, तो दो बार प्रतिक्रमणां करे, तथा बहुत बार सामायिक अरु दिशावकाशिक व्रत अंगीकार करे, तथा पर्वदिनोंमें ब्रह्मचर्य पासे, आरंज वजें, विशेष तप करे, चैत्यपरिवानी करे, सर्वसाधुओंको नमस्कार करे, तथा सुपात्रदान, देवपूजा अरु गुरुनक्ति, यह सर्व, और दिनोंसें विशेष करे, धर्मकरणी तो सर्वदिनोंमें करणी अष्टी है, जे कर सदा न करी जावे, तो पर्वके दिन तो अवश्यमेव करणी चाहियें, सो पर्व ये हैं, अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णमासी, अमावास्या. यह एक मासमें ठे पर्व, अरु पक्षमें तीन पर्व, तथा झूज, पंचमी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी, यह पांच तिथि, तीर्थकरोंने कही है. उसमें झूजके दिन दो प्रकारका धर्म आराधना करनां. पंचमीके दिन ज्ञानकों आराधनां, अष्टमीको अष्टकर्मका नाश करणां, एकादशीमें इग्यारह अंगकों आराधनां, चतुर्दशीको चौदह पूर्वकों आराधनां, यह पांच तथा पूर्वोक्त अमावास्या अरु पूर्णमासी एवं पट् पर्व दूये. अरु वर्षमें ठे अष्टाद पर्व है, चौमासी परादि पर्वोंमें जेकर सर्वथा आरंज न त्याग सके, तो स्वल्प स्वल्पतर आरंज करे, तथा पर्वके दिन सर्व सचित्ताहार वजें, श्रावककों तो नित्यही सचित्ताहार वर्जनां चाहियें, जेकर शक्ति न होवे, तदा पर्वके दिन तो अवश्य वजें, तथा ऐसे पर्वके दिनोंमें ध्यान, शिर दिखाने, गुंथन करानां, वस्त्र धोनां, वस्त्र रंगनां, गाना ह्वादि चखानां, धान्यका मूढक घंधनां, कोट्टु, अरुद्व चखानां, दसनां, ठरुनां, पीपणां, पत्र, पुष्प, फल तोरनां. सचित्त स्त्री हरमजीका मर्दन करनां, धान्य काटनां, सीपनां, माटी मारदनी तथा घर बनानां, इत्यादि आरंज सर्व यथाशक्तिसें त्यागनां चाहियें.

तथा सर्व सचिताहार न त्याग सके, तो नाम लेकें कितनीक वस्तु खानेकी वृत्त रखे, उपरांत त्याग देवे. तथा ठेहों अष्टाश्योंमें जिनवर पूजा करनां, तप करनां, ब्रह्मचर्य पालनां, ठेहों अष्टाश्योंमें चैत्र तथा आसोजकी यह जो दो अष्टाश्र है, सो शाश्वती है, इन दोनोमें वैमानिक देवताजी नंदीश्वरादिमें यात्रोत्सव करते हैं, तथा तीन चौमासेकी तीन अष्टाश्र अरु चौथी पर्यूपणकी तथा दो चैत्र अरु आसोजकी, यह सब मिल कर ठे अष्टाश्र हैं.

तथा तिथि जो प्रजातसमय प्रत्याख्यानकी वेलामें होवे, सो जैनमतमें माननी प्रमाण है, सूर्योदय अनुसारें लोकमेंजी दिनका व्यवहार होनेसे माननी प्रमाण है, तथा च निशीथजाण्ये ॥ चउमासी अ वरीसे, पक्खिय पंच छमीसु नायवा ॥ ताउ तिहिउं जासिं, उदेइ सूरु न अन्नाउं ॥ १ ॥ पूआ प च्चखाणं, पक्खिमणं तह्य नियम गहणं चा॥ जीए उदेइ सूरु, तीए तिहिए उ कायवं ॥ २ ॥ उदयम्मि जा तिहि सा, पमाणमिअरी कीरमाणीए ॥ आणाजंगणवन्ना, मिष्ठत्त विराहणं पावे ॥ ३ ॥ अस्यार्थः—चौमासी, संवत्सरी, पक्षी, पंचमी, अष्टमी, ये तिथियां सूर्योदयमें होवे, तब प्रमाण है, नान्यथा. पूजा, पक्खिमणा, प्रत्याख्यान, तैसेही नियम ग्रहण करनां सो जिस तिथिमें सूर्योदय होवे, तिसमें करनां चाहियें, जो तिथि सूर्योदयमें होवे, सो प्रमाण है, तथा उदय तिथि विना जो कोइ और तिथि करे, माने, सो आज्ञाका विराधक, अनवस्था कारक, मिथ्या दृष्टि है. पाराशरस्मृत्यादिमेंजी लिखा है ॥ श्लोक ॥ आदित्योदयवेलायां, या स्तोकापि तिथिर्जवेत् ॥ सा संपूर्णेति मंतव्या, प्रजुता नोदयं विना ॥ १ ॥ उमास्वातिवाचकप्रधोपश्रैवं श्रूयते ॥ दूये पूर्वा तिथिः कार्या, वृद्धौ कार्या तथोत्तरा ॥ श्रीवीरज्ञाननिर्वाणं, कार्यं लोकानुगैरिह ॥ २ ॥

तथा श्रीअर्हतांके जन्मादि पंचकल्याणकके दिनजी पर्व हैं, जब दो, तीन, कल्याणक होवे, तब तो विशेष करकें पर्व माननां चाहियें, शास्त्रों में सुनते हैं, कि श्रीकृष्ण वासुदेव सर्व पर्व आराधनेमें अपणैकों असमर्थ जान कर श्रीनेमिनाथ अरिहंतकों पूठता हूआ कि, उत्कृष्ट पर्व कौनसा है? तब जगवान् कहते जये कि हे कृष्ण वासुदेव! मगसिर शुद्ध एकादशी, यह पर्व सर्वोत्तम है, क्योंकि इस दिन श्रीजिनेन्द्रोंके पांच कल्याणिक जयें हैं, सर्व क्षेत्रोंके डेढ सौ कल्याणिक दूये हैं, तब श्रीकृष्ण वासुदेवने

मौन पोषधोपवास करके तिस दिनकों माना, तबसेही "यथा राजा तथा प्रजा." यह रीतिसें सब लोक एकादशी मानने लगे, सो आज तांड़प्रसिद्ध हैं,

तथा दूज, पंचमी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी, इन तिथियोंमें प्रायः जीवोंका परजवायु बंधता है, इस वास्ते इन तिथियोंमें विशेष धर्मकरणी करे, तथा पर्वके महिमाके प्रज्ञावसे अधर्मी निर्दयादिजि धर्मी अरु दयावान् हो जाता है, कृपणजी धन खरच देते हैं, कुशीलजी सुशील हो जाते हैं, वो जयवंत रहो, कि जिसने संवत्सरी, चातुर्मासी आदि अष्टे पर्व कथन करे हैं, क्योंकि जो अनायोंके चलाये पर्व हैं, तिनमें आग जलाना, जीव मारने, रोना, पीटना, धूल उठानी, वृक्षोंके पत्रादि तोमने, इत्यादि नाना प्रकारके पाप होते हैं, अरु जो पर्व, परमेश्वर अरिहंतने कहे हैं, उनमें तो निःकेवल धर्मकृत्यही करना कहा है, इस वास्ते पर्वदिनमें पोषधादि करे, पोषधके जेद, अरु विधि, यह सब श्राद्धविध्यादि शास्त्रोंसे जान लेना ॥ इति

अथ चौमासिककृत्य विधि लिखते हैं, चौमासेमें विशेष करके नियम व्रत परिग्रह परिमाण करना चाहियें, वर्षा (चौमासेमें) बहुत जीव उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते विशेष नियमादि करना चाहियें, वर्षादमें गाना चलाना, तथा हल फेरना न करे, तथा राजादन, अर्थात् क्षिरनी आवादिमें कीड़े पर जाते हैं, सो न खाने चाहियें, देशोंका विशेष अपनी बुद्धिसे समझ लेना, तथा नियमजी दो तरके है, एक सुनिर्वाह, दूसरा दुर्निर्वाह, तिनमें धनवंतोंको व्यापार, अरु अविरतियोंको सचित्तका त्याग, रसका त्याग, तथा शाकका त्याग करना, अरु सामायिकादि ये अंगीकार करना यह दुर्निर्वाह है. अरु पूजा, दान, महोत्सवादि सुनिर्वाह है, अरु निर्धनोंको इस्से विपरीत जान लेना, तथा चित्त एकाग्र करना. यह तो सर्वहीको दुष्कर है, इनमें दुर्निर्वाह नियम न हो सके तो सुनिर्वाह नियम अंगीकार करे, तथा चौमासेमें ग्रामांतर न जावे, जे कर निर्वाह न होवे तो जिस गाममें अवश्य जाना है, तिसको बर्जके और जगें न जावे सर्व सचित्तका त्याग करे, निर्वाह न होवे, तो परिमाण करे, तथा दो, तीन बार जिनराजकी अष्टप्रकारी पूजा करे, संपूर्ण देववंदन सर्व जिनमंदिरोंमें जिनविघोंकी पूजा वंदना करनी, स्नात्रपूजा महामहोत्सव, प्रज्ञावनादि करे, गुरुकों वृहत्वंदना तथा और साधुओंको प्रत्येक वंदनाकरे, च

तुर्विंशतिस्तवका कायोत्सर्ग करे, अपूर्वज्ञान पडे, गुरुकी वेय्यावृत्य करे, ब्रह्मचर्य पावे, अचित्त पाणी पीवे, सचित्तका त्याग करे, वासी, विदल, रोटी, पूरी, पापरु, बडी, सूका साग, पत्ररूप हरिया साग, खारक, खजूर, डाक, खारु, गुंठ्यादि यह सर्व, नीली फूलण, कुंथुआदि लट कीडे पडनेसे खाने योग्य नहिं रहते है, इस वास्ते इनका त्याग करे, कदाचित् औषधादि विशेष कार्यमें लेनी पडे, तो सम्यगुरीतिसें शोधके लेवे, तथा खाट, लान, शिरगुंदानां, दातण, पगरखा, इनका त्याग करे, तथा जूपण, वस्त्र रंगनेका निषेध करे, तथा घर, हाट, जीत, स्तंज, खाट, पाट, पट्टक, पट्टिका, ठीका, अरु घृत तैलादिकका वासण, इंधन धान्यादि सर्व वस्तुमें नीली फूली हो जाती है, तो इसकी रक्षा वास्ते पहिलांही चूना आदि खार लगा देवे, मैल छूर करे, धूपमें न गेरे, शीतल स्थानमें रख देवे, तथा दिनमें दो तीन बार जल ठाणे, लेह, गुड, ठाठ प्रमुखके वासणका मुख यत्से ठकके रखे, तथा उत्सामणका अरु लानका पाणी, जहां जीव न होवे, तहां पृथक् पृथक् जूमिमें थोडा थोडा गेरे, तथा चूला अरु दीपक प्रमुख उघाना न ठोडे, तथा खंननां, पीसनां, रांधनां, वस्त्र जालन धोने, इत्यादि कामो देख के यत्से करे, तथा जिनमंदिर अरु धर्मशालाको समराके रखे, तथा यथाशक्ति उपधान तप प्रतिमा मासादि बहे, तथा कपाय अरु इन्द्रियको जीते, तथा योगशुद्धि तप, वीशस्थानक तप, अमृत अष्टमी तप, एकादशांग तप, चौदह पूर्वतप, नमस्कार तप, चौबीश तीर्थकरके कव्याणिक तप, अक्षयनिधि तप, दमयंती तप, जडमहाजडादि तप, संसारतारण अष्टाष्ट तप, पद्ममासादि विशेष तप करे, तथा रात्रिकों चतुर्विध आहार, त्रिविध आहार त्याग करे, पर्वदिनमें विवृति त्यागे, पर्व दिनमें पोषधोपवासादि करे, तथा निरंतर पारणमें अतिथिसंविज्ञाग करे, चातुर्मासिक अजिग्रह पूर्वाचार्योंने इस तरेसे लिखा है. ज्ञानाचारमें, दर्शनाचारमें, चारित्राचारमें, तपस्याचारमें, तथा वीर्याचारमें इत्यादि अनेक प्रकारका अजिग्रह करे, तो इस रीतिसें है:—ज्ञानाचारमें शक्ति अनुसार सूत्र पडे, सुने, चिंते, तथा शुद्ध पंचमीको ज्ञानकी पूजा करे, तथा दर्शनाचारमें काजा काटे, अर्थात् समार्जना करे, देहरेमें छीपे, गुंढली करे. मांनली करे, चैत्यजिनप्रतिमाकी पूजा करे, देववंदना करे, जिनधियोंको निर्मल करे,

तथा चारित्र्यमें जूयांकी यत्ना करे, वनस्पतिमें कीड़े पके खार न देवे, झं
 नमें, जलमें, अग्निमें, धान्यमें जीव होवे, तिनकी रक्षा करे, किसीको क
 लंक न देवे, कठिन वचन न बोले, रूखा वचन न बोले, तथा देवद्वी
 अरु गुरुकी सोगंद न खावे, किसकी चुगली न करे, किसीके अवर्णवाद
 न बोले, माता पितासे ठाना काम न करे, निधान तथा पना दूथा धन दे
 खके जैसे शरीर और धर्म न बिगरे, तैसें करे, दिनमें ब्रह्मचर्य पासे, रात्रि
 को स्वदारासे संतोष करे, तथा धनधान्यादि नव प्रकारके परिग्रहका इष्ट
 परिमाण व्रत करे, दिशावकाशिक व्रत करे, तथा स्नानका, उबटनेका, वि
 लेपनका, आचरणका, फूलका, तंबोलका, घरासका, अंगरका, केशरका,
 फस्तूरिका, इतनी जोगनेकी वस्तुओंका परिमाण करे. तथा मंजीव, सात,
 कुमुंजा, नील, इनसे रंगे वस्त्रोंका परिमाण करे, तथा रत्न, वज्र, नील
 मणि, मुवर्ण, रूपा, मोती प्रमुखका परिमाण करे, तथा जंघीर, जंघरूढ़,
 जंघू, राजदन, नारंगी, शंतरा, धीजोरा, काकडी, अखोड, घदाम, फोव
 फल, टींगरु, बिल, खजूर, डाह, दाडिम, उत्तिजका फल, नास्तिथर, अं
 घली, पोर, धीझूक फल, चीनमा, चीननी, कयर, कर्मदां, जोरड, निवू,
 आंवली अथाणा (आचार) तथा अंकूरिया दूथा नाना प्रकारके फल, प
 त्र, सचित्त, बहुधीजा, अत्यंतकाय, इतनी वस्तु वजें, तथा विगय अरु वि
 गयगतका परिमाण करे, तथा वस्त्र धोनेका, लोपणेका, हल बाढ़नेका,
 स्नानकी वस्तुका परिमाण करे, तथा खंरुनां, पीसनां, इत्यादिकका परिमाण
 करे, छूनी साग्य न देवे, तथा पाणीमें कूदनां अरु अन्न रांधनेका परिमाण
 करे, व्यापारका परिमाण करे, चोरीका त्याग करे, तथा स्त्रीके साथ संता
 पण करनां, स्त्रीको देखनां त्यागे, तथा अत्यर्थदंरु त्यागे, सामायिक, पौष
 करे, अतिविसंधिनाग करे, इन सब वस्तुओंका प्रतिदिन परिमाण करे,
 तथा जिनमंदिरको देखे, तथा जिन मंदिरकी वस्तुकी सार संताप करे,
 पर्यमें तप करे, उजमणे करे, धर्मके वास्ते मुखवस्त्रिका अरु पाणीका ठ
 जनां देवे, तथा आपधी देवे, साधर्मीवत्सल यथाज्ञातिसं करे, गुरुकी वि
 नय करे, मास मानमें सामायिक करे, वर्षमें पौषध करे ॥ इत्यादि ॥ इति
 आरुआविका चानुमांसिक नियमम्बरूप कथनं समाप्तं ॥

अथ श्रावककों वर्षकृत्य द्वादश द्वारों करी सिखते हैं.

१ प्रथम संघपूजा करे, सो स्वयंभूकुलादि अनुसारें बहुत आदर मानसैं साधु साध्वी योग्य निर्दोष वस्त्र, कंबल, पूंठणां, सूत, ऊन, पाणीका पात्र, तुंबकादि, दंत, दंनिका, सूइ, कागद, दवात, लेखिनी, पुस्तकादिक, श्रीगुरुकों देवे, औरजी जो संयमका उपकारी उपकरण होवे, सोजी देवे, ऐसेंही प्रातिहारक, पीठ, फलक, पट्टिकादि सर्व साधुश्रोंकों देवे, ऐसेंही श्रावक, श्रावकारूप संघकी जक्ति यथाशक्तिसैं पट्टरावणादि करकें सत्कार करे, देवगुरुके गुण गाने वाद्ये गंधर्वादिक यात्रकोंकोंजी यथोचित दान देवे, संघकी पूजा तीन प्रकारकी है, एक जघन्य, दूसरी मध्यम, तीसरी उत्कृष्ट. तिसमें सर्वदर्शन सर्व संघकों करे, सो उत्कृष्टी पूजा, तथा सूत मात्रादि देवे, तो जघन्य पूजा, तथा शेष सर्व मध्यम पूजा है, तहां अधिक खरच करनेकी शक्ति न होवे, तो गुरुकों मृत, मुखवस्त्रिका देवे. तथा एक दो तीन श्रावक श्राविकाकों सोपारी प्रमुख वर्ष वर्ष प्रत्ये देवे, इसरीतिसैं संघपूजा करे, तो निर्धनकोंजी महा फल है ॥ यतः ॥ संपत्तो नियमाशक्तौ, सद्गुणं योवने व्रतं ॥ दारिद्र्ये दानमप्यल्पं, महालाजाय जायते ॥१॥

२ दूसरी साधर्मिक वात्सल्य करे, सो सर्व साधर्मियोंकी अथवा कितनेकोंकी यथाशक्ति यथायोग्य जक्ति करे, तथा पुत्रके जन्मोत्सवमें, विवाहमें तथा और किसी कार्यमें पहिलें तो साधर्मियोंकों निमंत्रणा करकें विशिष्ट भोजन, तांबूल, वस्त्राभरणदि देवे, तथा किसी साधर्मियोंको कोइ कष्ट पने, तब अथपणा धन खरचकें उसका कष्ट दूर करे, जे कर कोइ साधर्मी निर्धन होवे, तो धनसैं सहाय करे, परदेशसैं देशमें पहुंचावे, तथा धर्मसैं सीढ़ताकों जैसें बने तैसें स्थिर करे, जे कर कोइ साधर्मी प्रमादी होवे, तो तिसकों प्रेरणादि करे, साधर्मियोंकों विद्या पढावे, पठना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा, धर्मकथामें यथायोग्य जोड़े, तथा धर्मकरणे वास्ते साधारण पोषध शालादि करावे, तथा श्राविकाके साथजी श्रावकोंवत् वात्सल्य करे, क्योंकि श्राविकाजी ज्ञान, दर्शन, चारित्र, शील संतोष वाली होती हैं. तथा सधवा विधवा जो जिनशासनमें अनुरक्त होवे, वो सर्वकों साधर्मिकपणे मानना चाहियें, तिसकाजी माताकी तरें वहिनकी तरें बेटीकी तरें हितकरनां चाहियें, बहुत करकें राजाका तो अतिथि संविज्ञाग व्रत साधर्मोंवा

तथा चारित्र्यमें जूयांकी यत्ना करे, वनस्पतिमें कीड़े पके खार न देवे, झं
 नमें, जलमें, अग्निमें, धान्यमें जीव होवे, तिनकी रक्षा करे, किसीको न
 लंक न देवे, कठिन वचन न बोले, रूखा वचन न बोले, तथा देव
 अरु गुरुकी सोगंद न खावे, किसकी चुगली न करे, किसीके श्रवणना
 न बोले, माता पितासें ठाना काम न करे, निधान तथा पत्नी हूआ धन
 खर्चें जैसें शरीर और धर्म न बिगड़े, तैसें करे, दिनमें ब्रह्मचर्य पावे, रात्रि
 कों खदारासें संतोष करे, तथा धनधान्यादि नव प्रकारके परिग्रहका इष्ट
 परिमाण व्रत करे, दिशावकाशिक व्रत करे, तथा स्नानका, उबटनेका, वि
 लेपनका, आचरणका, फूलका, तंबोलका, बरासका, अंगरका, केशरका,
 कस्तूरिका, इतनी जोगनेकी वस्तुओंका परिमाण करे. तथा मंजीठ, लाल,
 कुसुंजा, नील, इनसें रंगे वस्त्रोंका परिमाण करे, तथा रत्न, वज्र, नील
 मणि, सुवर्ण, रूपा, मोती प्रमुखका परिमाण करे, तथा जंबीर, जंबूरु,
 जंबू, राजदन, नारंगी, शंतरा, बीजोरा, काकडी, अखोड, बदाम, कोठ
 फल, टांगरू, बिल, खजूर, डाक, दाडिम, उत्तिजका फल, नास्तिअरु अं
 वली, बोर, बीलूक फल, चीजना, चीजमी, कयर, कर्मदां, जोरड, निंबू,
 आंवली अथाणा (आचार) तथा अंकूरिया हूआ नाना प्रकारके फल, प
 त्र, सचित्त, बहुबीजा, अनंतकाय, इतनी वस्तु वर्जें, तथा विगय अरु वि
 गयगतका परिमाण करे, तथा वस्त्र धोनेका, सीपणेका, हल बाहनेका,
 स्नानकी वस्तुका परिमाण करे, तथा खंरुनां, पीसनां, इत्यादिकका परिमाण
 करे, छूठी साख न देवे, तथा पाणीमें कूदनां अरु अन्न रांधनेका परिमाण
 करे, व्यापारका परिमाण करे, चोरीका त्याग करे, तथा स्त्रीके साथ संजा
 पण करनां, स्त्रीकों देखनां त्यागे, तथा अनर्थदंरु त्यागे, सामायिक, पोषध
 करे, अतिथिसंविजाग करे, इन सर्व वस्तुओंका प्रतिदिन परिमाण करे,
 तथा जिनमंदिरकों देखे, तथा जिन मंदिरकी वस्तुकी सार संज्ञा करे,
 पर्वमें तप करे, उजमणे करे, धर्मके वास्ते मुखवस्त्रिका अरु पाणीका ठ
 खनां देवे, तथा श्रोपधी देवे, साधर्मीवत्सल यथाशक्तिसें करे, गुरुकी वि
 नय करे, मास मासमें सामायिक करे, वर्षमें पोषध करे ॥ इत्यादि ॥ इति
 श्राद्धश्राविका चातुर्मासिक नियमस्वरूप कथनं समाप्तं ॥

अथ श्रावककों वर्षकृत्य द्वादश द्वारों करी लिखते हैं.

१ प्रथम संघपूजा करे, सो खड्गव्यकुलादि अनुसारें बहुत आदर मानसैं साधु साध्वी योग्य निदोष वस्त्र, कंचल, पूंठणां, सूत, ऊन, पाणीका पात्र, तुंबकादि, दंरु, दंरिका, सूइ, कागद, दवात, लेखिनी, पुस्तकादिक, श्रीगुरुकों देवे, औरजी जो संयमका उपकारी उपकरण होवे, सोजी देवे, औरसैंही प्रातिहारक, पीठ, फलक, पट्टिकादि सर्व साधुओंकों देवे, औरसैंही श्रावक, श्रावकारूप संघकी जक्ति यथाशक्तिसैं पहरावणादि करकें सत्कार करे, देवगुरुके गुण गाने वाले गंधर्वादिक याचकोंकोंजी यथोचित दान देवे, संघकी पूजा तीन प्रकारकी है, एक जघन्य, दूसरी मध्यम, तीसरी उत्कृष्ट. तिसमें सर्वदर्शन सर्व संघकों करे, सो उत्कृष्टी पूजा, तथा सूत मात्रादि देवे, तो जघन्य पूजा, तथा शेष सर्व मध्यम पूजा है, तहां अधिक खरच करनेकी शक्ति न होवे, तो गुरुकों सूत, मुखवस्त्रिका देवे, तथा एक दो तीन श्रावक श्राविकाकों सोपारी प्रमुख वर्ष वर्ष प्रत्यें देवे, इसरीतिसैं संघपूजा करे, तो निर्धनकोंजी महा फल है ॥ यतः ॥ संपत्तौ नियमाशक्तौ, सहनं यौवने व्रतं ॥ दारिद्र्ये दानमप्यल्पं, महालाजाय जायते ॥१॥

२ दूसरी साधर्मिक वात्सल्य करे, सो सर्व साधर्मियोंकी अथवा कितनेकोंकी यथाशक्ति यथायोग्य जक्ति करे, तथा पुत्रके जन्मोत्सवमें, विवाहमें तथा और किसी कार्यमें पहिलें तो साधर्मियोंकों निमंत्रणा करकें विशिष्ट भोजन, तांबूल, वस्त्राभरणदि देवे, तथा किसी साधर्मियोंकों कोइ कष्ट पने, तब अथवा धन खरचकें उसका कष्ट दूर करे, जे कर कोइ साधर्मी निर्धन होवे, तो धनसैं सहाय करे, परदेशसैं देशमें पहुंचावे, तथा धर्मसैं सीढ़ ताकों जैसैं बने तैसैं स्थिर करे, जे कर कोइ साधर्मी प्रमादी होवे, तो तिसकों प्रेरणादि करे, साधर्मियोंकों विद्या पढ़ावे, पठना, परिवर्त्तना, अनुप्रेक्षा, धर्मकथामें यथायोग्य जोडे, तथा धर्मकरणे वास्ते साधारण पापधशालादि करावे, तथा श्राविकाके साथजी श्रावकोंवत् वात्सल्य करे, क्योंकि श्राविकाजी ज्ञान, दर्शन, चारित्र, शील संतोष वादी होती हैं. तथा सधवा विधवा जो जिनशासनमें अनुरक्त होवे, वो सर्वकों साधर्मिकपणे मानना चाहियें, तिसकाजी माताकी तरें वहिनकी तरें बेटाकी तरें हितकरना चाहियें. बहुत करकें राजाका तो अतिथि संविज्ञागत व्रत साधर्मिया

तथा चारित्र्यमें जूयांकी यत्ना करे, वनस्पतिमें कीड़े पके खार न देवे, ईश्वर नमें, जलमें, अग्निमें, धान्यमें जीव होवे, तिनकी रक्षा करे, किसीको बलंक न देवे, कठिन वचन न बोले, रूखा वचन न बोले, तथा देवकी श्रु गुरुकी सोगंद न खावे, किसकी चुगली न करे, किसीके श्रवणका न बोले, माता पितासे ठाना काम न करे, निधान तथा पत्नी दूथा धन देवके जैसे शरीर और धर्म न विगमे, तैसे करे, दिनमें ब्रह्मचर्य पावे, रात्रि को स्वदारासे संतोष करे, तथा धनधान्यादि नव प्रकारके परिग्रहका इष्ट परिमाण ग्रह करे, दिशावकाशिक ग्रह करे, तथा स्नानका, उबटनेका, विस्त्रेपनका, आचरणका, फूसका, तंबोखका, बरासका, श्यगरका, केशरका, फस्त्रिका, इतनी जोगनेकी वस्तुओंका परिमाण करे. तथा मंजीठ, साम्ब, कुमुन्ता, नील, इनसे रंगे वस्त्रोंका परिमाण करे, तथा रत्न, घड़, नील मणि, सुवर्ण, रूपा, मोती प्रमुखका परिमाण करे, तथा जंघीर, जंघरु, जंगू, राजदन, नारंगी, शंतरा, चीजोरा, काकडी, अग्नोड, घदाम, कोड फल, टीणरु, विल, सजूर, झाडा, दाडिम, उत्तिजका फल, नास्त्रिथर, धं यत्री, पोर, पीसूक फल, चीनमा, चीनमी, कयर, कर्मदां, जोरड, निंगू, थांगली अथाणा (आचार) तथा अंकूरिया दूथा नाना प्रकारके फल, पत्र, सचिन, बह्युजीजा, अत्यंतकाय, इतनी वस्तु बजें, तथा विगय श्रु विगयगतका परिमाण करे, तथा वस्त्र धोनेका, लीपणका, हल बाहुनेका, स्नानकी वस्तुका परिमाण करे, तथा खंरनां, पीसनां, इत्यादिकका परिमाण करे, फून्नी साम्ब न देवे, तथा पाणीमें कूदनां श्रु श्रु रांधनेका परिमाण करे, व्याघ्रका परिमाण करे, चोरीका त्याग करे, तथा स्त्रीके साथ संतापण करनां, स्त्रीको देवनां त्यागे, तथा अत्यंतदंष्ट्र त्यागे, सामायिक, पौष करे, अतिथिमंत्रिनाग करे, इन सब वस्तुओंका प्रतिदिन परिमाण करे, तथा जिनमंदिरको देखे, तथा जिन मंदिरकी वस्तुकी सार संताप करे, पर्यमें नद करे, उजमणे करे, धर्मके वास्ते मुखवस्त्रिका श्रु पाणीका न खनां देवे, तथा आषधी देवे, साधमीवत्सल ययाशक्तिमें करे, गुरुकी दि नय करे, मास माममें मानायिक करे, वर्षमें पौषय करे ॥ इत्यादि ॥ इति श्राद्धश्राविका चानुमांसिक नियमम्बरूप कथनं समानं ॥

अथ श्रावककों वर्षकृत्य द्वादश छारों करी लिखते हैं.

१ प्रथम संघपूजा करे, सो स्वयंभूकुलादि अनुसारें बहुत आदर मानसैं साधु साध्वी योग्य निदोष वस्त्र, कंबल, पूंठणां, सूत, ऊन, पाणीका पात्र, तुंबकादि, दंरु, दंमिका, सूड, कागद, दवात, लेखिनी, पुस्तकादिक, श्रीगुरुकों देवे, औरजी जो संयमका उपकारी उपकरण होवे, सोजी देवे, ऐसैंही प्रातिहारक, पीठ, फलक, पट्टिकादि सर्व साधुओंकों देवे, ऐसैंही श्रावक, श्रावकारूप संघकी जक्ति यथाशक्तिसैं पहरावणादि करकें सत्कार करे, देवगुरुके गुण गाने वाले गंधर्वादिक याचकोंकोंजी यथोचित दान देवे, संघकी पूजा तीन प्रकारकी है, एक जघन्य, दूसरी मध्यम, तीसरी उत्कृष्ट. तिसमें सर्वदर्शन सर्व संघकों करे, सो उत्कृष्टी पूजा, तथा सूत मात्रादि देवे, तो जघन्य पूजा, तथा शेष सर्व मध्यम पूजा है, तहां अधिक खरच करनेकी शक्ति न होवे, तो गुरुकों सूत, मुखवस्त्रिका देवे, तथा एक दो तीन श्रावक श्राविकाकों सोपारी प्रमुख वर्ष वर्ष प्रत्ये देवे, इसरीतिसैं संघपूजा करे, तो निर्धनकोंजी महा फल है ॥ यतः ॥ संपत्तो नियमाशक्तौ, सहनं योवने व्रतं ॥ दारिद्र्ये दानमप्यल्पं, महालाजाय जायते ॥१॥

२ दूसरी साधर्मिक वात्सल्य करे, सो सर्व साधर्मियोंकी अथवा कितनेकोंकी यथाशक्ति यथायोग्य जक्ति करे, तथा पुत्रके जन्मोत्सवमें, विवाहमें तथा और किसी कार्यमें पहिले तो साधर्मियोंकों निमंत्रणा करकें विशिष्ट भोजन, तांबूल, वस्त्राभरणादि देवे, तथा किसी साधर्मियोंकों कोइ कष्ट पड़े, तब अपणा धन खरचकें उसका कष्ट दूर करे, जे कर कोइ साधर्मी निर्धन होवे, तो धनसैं सहाय करे, परदेशसैं देशमें पहुंचावे, तथा धर्मसैं सीढ़ ताकों जैसैं वने तैसैं स्थिर करे, जे कर कोइ साधर्मी प्रमादी होवे, तो तिसकों प्रेरणादि करे, साधर्मियोंकों विद्या पढ़ावे, पूठना, परिवर्त्तना, अनुप्रेक्षा, धर्मकथामें यथायोग्य जोड़े, तथा धर्मकरणे वास्ते साधारण पौषध शालादि करावे, तथा श्राविकाके साथजी श्रावकोंवत् वात्सल्य करे, क्योंकि श्राविकाजी ज्ञान, दर्शन, चारित्र, शील संतोष वाली होती हैं. तथा सधवा विधवा जो जिनशासनमें अनुरक्त होवे, वो सर्वकों साधर्मिकपणे मानना चाहियें, तिसकाजी माताकी तरें बहिनकी तरें बेटाकी तरें हितकरना चाहियें, बहुत करकें राजाका तो अतिथि संविज्ञाग व्रत साधर्मिवा

रसल करनेसेंही हो सका है, क्योंकि मुनिकों तो राजर्षिखेनांही तिस वास्ते श्रीजरतचक्री, तथा दंरुवीर्य राजादिकोंनें ऐसेही करा है, तथा श्रीसंजवनाथ अर्हंतके जीवनें तीसरे जवमें धातकीखंर ऐराकले ग्रमें केमापुरी नगरीमें विमलवाहनराजाने महा दुर्जिहमें सकल साधर्मिकादिकोंकों जोजनादिक देनेसें तीर्थकरनामकर्म उपार्जन करा है, तथा देवगिरि मांरुव गढमें शाह जगतसिंहने तथा थिरापड नगरमें श्रीमास अचूने तीन सो साठ साधर्मियोंकों धन देकें थपणे तुल्य करा, तथा शाह सारंगदि अनेक पुरुषोंने बडा बडा साधर्मियात्सल्य करा है ॥ इति ॥ २ ॥

३ तीसरी यात्राविधि कहते हैं, वर्ष वर्षमें जघन्यसें एक यात्रा तो अवश्य करनी चाहियें, यात्राजी तीन तरेंकी है, एक अष्टाष्टयात्रा, दूसरी रथयात्रा, तीसरी तीर्थयात्रा, तिसमें अष्टाष्टमें विस्तार सहित सर्व वैत्यपरिवानी करे, इसका नाम चैत्ययात्राजी कहते हैं, तथा रथयात्रा श्रीहेमचंद्रसूरिकृत परिशिष्ट पर्वमें जैसी सांप्रतिराजाने करी है, तैसें करे, तथा महापद्मचक्रवर्तीने जैसें माताके मनोरथ पूरणे वास्ते करी है, तैसें करे, तथा जैसी कुमारपाल राजाने रथयात्रा करी तैसें करे ॥ इति ॥ ३ ॥

तीसरी तीर्थयात्राका स्वरूप लिखते हैं, तहां श्रीशत्रुंजय रेवतादि तीर्थ तथा तीर्थकरोंके जन्म, दीक्षा, ज्ञान, निर्वाण, अरु विहारचूमि, यह सर्व प्रज्ञत नव्यजीवोंकों शुजनावका संपादक है, इस वास्ते संसारसें तारण का कारण होनेसें इसकों तीर्थ कहनां चाहियें. तिन तीर्थोंमें जानेसें सम्यक्त्व निर्मल होता है, अब जिनशासनकी उन्नति करनेके वास्ते जिस विधिसें यात्रा करे, सो विधि यह है, कि:-चलनेके स्थानसें से कर यात्रा करे, तहां तक एक वार जोजन करे, दूसरा सचित्त परिहार, तीसरा चूमिशयन, चौथा ब्रह्मचारी, पांचमा सर्व सामग्रीके हूयेजी पंगे चलनां, ठछा सम्यक्त्वधारी पणां. तथा यात्रा वास्ते राजासें आज्ञा लेवे, विशिष्ट मंदिरोकों स जावे, विनय बहुमान सहित स्वजन और साधर्मियोंकों बुलावे, तथा गुरुका साथ ले जाने वास्ते निमंत्रणा करे, अमारी ढंडेरा फिरावे, मंदिरमें महापूजा महोत्सव करावे, खरची रहितोंकों खरची देवे, वाहन विनाकों वाहन देवे, निराधारोंकों यथायोग्य आधार देवे, सार्थवाहकी तरें दौंकी फिराकें लोकोंकों उत्साहवंत करे, तथा आभंवर सहित बडा चरु, घडा,

थाल, डेरा, तंत्र, कमाहिया साथ लेवे, चलतां कूपादिकों सज करे, तथा गा
ना, सेजवाला रथ, पर्यंक, पालखी, जूट, घोना प्रमुख साथ लेवे, तथा श्रीसं
घकी रक्षावास्ते बडे योद्धोंकों नौकर रखे, योद्धोंकों कवच अंगकादि उपस्कर
देवे, तथा गीत, नाटक वाजित्रादि सामग्री मेलवे, तथा अष्टे मुहूर्तमें, शुभ
शकुनमें प्रस्थान (चलनां) करे; जोजनादिसें श्रीसंघका सत्कार करके संघप
तिका तिलक देवे, आगे पीठें रखवाला रखे, संघके चलने उतरणेका संकेत
करे, तथा संघवालोंकी गानी आदिक दूट जावे, तो समरा देवे, अपणी
शक्तिअनुसार सर्वसंघकों सहाय देवे, तथा गाम नगरमें जहां जिनमंदिर
आवे, तहां महाध्वज देवे, चैत्यपरिवानी आदि बडा महोत्सव करे, जी
र्णचैत्यका उद्धार करे, तथा जब तीर्थोंकों देखे, तब सुवर्ण, रत्न, मोती
आदिकसें वर्ष्मपना करे, लापसी, लड्डु प्रमुखका लाहणा करे, तथा साध
र्मिवात्सल्य, यथोचित दान देवे, बडे उत्सवसें जब तीर्थकों प्राप्त होवे,
तब प्रथम हर्षपूजा धन चढावे, तथा अष्टोपचारविधि, स्नात्रमालोद्घटन,
घीकी धारा देवे, पहरावणी मोचन करे, तथा नवांगजिनपूजन, फूलघर
कदलीघरादि महापूजा करे, डुकूलादिमय महाध्वज देवे, मांगनेवालोंकों
नाहीं न करे, तथा रात्रिजागरण नाना प्रकारके गीतनृत्यादि उत्सवकरे
तथा तीर्थोपवास ठठ प्रमुख तप कोडि लाख अक्षतादि विविध प्रकारका
उजमणां ढोवे, तथा नाना प्रकारकी वस्तु फल एक सौ आठ, चौबीश,
व्यासी, बावन, बहत्तरादि ढोवे, सर्व नद्य जोजनके थाल ढोवे, डुकूला
दि मय चंडुवा पहरावणी करे, तथा अंगलूहणां, दीपक, तेल, धोती, चंद
न, केसर, कस्तूरी, चंगेरी (ठावनी) कलश, धूपधाणां, आरति, आचरण,
प्रदीप, चामर, जंगार, थाल, कचोलक, घंटा, जालरी, पन्हादि विविध
प्रकारके वाजित्र देवे, देहरी करावे, कारीगरोंकों सत्कार देवे, तीर्थके वि
गडे कामकों समरावे, सार संजाल करे, तीर्थके रक्षोंकों बहु सन्मान दे
वे, जैनके मंगतोंकों, दीनोंकों, उचित दान देवे, तथा साधर्मिवात्सल्य
गुरुभक्ति करे, इस रीतिसें यात्रा करके तैसेही पीठा फिरे, वर्षादि तक
तीर्थ व्रत करे ॥ इति यात्राविधिः ॥ इति यात्रात्रयस्वरूपं समाप्तम् ॥ ३ ॥

॥ अथ स्नात्रविधिर्लिख्यते ॥ मंदिरमें स्नात्र महोत्सवकी घृतका मेरु

करे, अष्ट मांगलिक नैवेद्यादि ढोवे, बहुत बहुत जातिवंत चंदन, केम, पुष्प, अंबरदि ल्यावे, सकल श्रावकसमुदाय मेले, गीत नृत्यादि आडंबरचावे, डुकूलादि महाध्वज देवे, प्रौढाडंबरसें प्रजावनादि, निरंतर तथा पर्वदिनमें करे, जेकर निरंतर अथवा पर्वदिनमें जी न कर सके, तो जी वर्षमें एक बार तो अवश्य करे. स्नात्र महोत्सवमें स्वधनकुलप्रतिष्ठादि श्रुत सारें सर्वशक्तिसें करे, जिनमतका महा उद्योत करे ॥ इति स्नात्रविधिः ॥ १४ ॥

तथा देवद्रव्यकी वृद्धि वास्ते प्रतिवर्ष मालोद्घटन करे, इन्द्रमाला तथा और मालाजी यथाशक्ति करे, ऐसेंही पहरावणी, नवीन धोती, विचित्र प्रकारका चंडुआ, अंगलूहणां, दीपक, तेल, जातिवंत केसर, चंदन, वरास, कस्तूरी प्रमुख चैत्योपयोगी वस्तु प्रतिवर्ष यथाशक्तिसें देवे ॥ ५ ॥

तथा सुंदर अंगी, पत्रजंगी, सर्वांगजरण, पुष्पगृह, कदलीगृह, पूतली, पाणीके यंत्रादिककी रचना करे, तथा नाना गीत नृत्यादि उत्सवसें महा पूजा रात्रि जागरण करे ॥ ६ ॥ ७ ॥

तथा श्रुतज्ञानकी पुस्तकादिककी पूजा कर्पूरादिसें सदा सुकर है, अथ प्रशस्त वस्त्रादिकसें विशेषपूजा तो प्रतिमास शुक्लपंचमीके दिन श्रावकको करनी योग्य है, जे कर शक्ति न होवे, तो जी वर्षमें एक बार तो अवश्य करे, इसका विस्तार, जन्मकृत्यमें ज्ञानजक्तिछारमें लिखेंगे ॥ ८ ॥

तथा पंचपरमेष्टि नमस्कार, आवश्यकसूत्र, उपदेशमाला, उत्तराध्ययनादि ज्ञान दर्शनका तप, इत्यादिमें जघन्य एक बार उद्यापन करे, जिसें लक्ष्मी सफल होवे, जब जप तपका उद्यापन करे, तब चैत्य उपर कलशारोपण करे, फल चढावे, अर्कृत पात्रके मस्तक उपर अर्कृत देवे, जैसें जो जन उपर तांबूल देते हैं, तेसी तरें यहजी जान लेनां. यह उपधान, उद्यापनविधि, शास्त्रांतरसें जान लेनी ॥ इति उद्यापनविधिः ॥ ९ ॥

तथा तीर्थकी प्रजावना वास्ते वाजे गाजे प्रौढाडंबरसें गुरुका प्रवेश करावे, यह व्यवहारजाप्यमें कहा है, क्योंकि इससें जिनमतकी प्रजावना होती है, तथा यथाशक्ति श्रीसंघका बहुमान करणां, तिलक करणां, चंदन, वरास, कस्तूरी प्रमुखसें विलेपन करे, तथा सुगंधि फूल, जक्तिसें नालियरादि विविध तांबूलप्रदानरूप जक्ति करे, क्योंकि शासनकी उन्नति करनेसें तीर्थकर गोत्र उपार्जन करता है, यह कथन ज्ञातासूत्रमें है ॥ १० ॥

तथा गुरुके योग मिसे हुए जघन्यसंज्ञी एक वर्षमें एक बार आलोचना लेवे, अपण्णे करे हुए सर्व पापकों गुरुके आगें कह देवे, पीठें गुरु जो प्रायश्चित्त देवे, सो लेवे, फेर उस पापकों न करे, तिसका नाम आलोचना लेनी है, ऐसी श्राद्धजितकल्पादिमें विधि लिखी है. पढ़ पीठें, चारमास पीठें, एक वर्ष पीठें, उत्कृष्ट वारा वर्ष पीठें, निश्चैही आलोचना करे, अपणा शक्य काढनेकों क्षेत्रसें सात सौ योजन, अरु कालसें वारा वर्षतक गीतार्थ गुरुका अन्वेषण करे, तथा जिस गुरुके आगें आलोचना करे, सो गुरु कैसा होवे? सो लिखते हैं. गीतार्थ होवे, मन, वचन, काया स्थिर होवे, चारित्र्यवन्त होवे, आलोचना ग्रहणमें कुशल होवे, प्रायश्चित्तका जाणकार होवे, विपाद रहित होवे, अस्ता गुरु होवे, सो आलोचना प्रायश्चित्त देने योग्य होता है.

तिनमें गीतार्थ उत्तकों कहते हैं, कि जो १ निशीथादि छेद शास्त्रोंका मूलपाठ, निर्युक्ति, जाप्य, चूर्णी, इनका जानकार होवे, तथा ज्ञानादि पंचाचार युक्त होवे, तथा २ आधारवन्त आलोचितपापका धारणे वाला होवे, ३ आगमादि पांच व्यवहारका जानने वाला होवे, तिसमेंजी इस कालमें तो जितव्यवहार मुख्य है, तिसका जानने वाला होवे, ४ प्रायश्चित्त आलोचककी लज्जा दूर करानेवाला होवे, ५ अलोचककी शुद्धि करने वाला होवे, ६ आलोचकके पापकर्म, औरके आगें न कहे, ७ जैसे वो आलोचक निर्वाह कर सके, तैसें प्रायश्चित्त देवे, ८ जो प्रायश्चित्त न करे, तिसकों इस लोक अरु परलोकका जय दिखावे, यह आठ गुण युक्त गुरु होता है.

साधुने तथा श्रावकने १ प्रथम तो अपण्णे गठमें गठके आचार्य आगें, २ तदयोगे (तदज्ञावे) उपाध्यायके पास, ३ तदज्ञावे प्रवर्तकके पास, ४ तदज्ञावे स्थविरके पास, ५ तदज्ञावे गणावछेदकके पास, स्वगठमें इन पांचोंके अज्ञावसें संज्ञोगी एकसमाचारी वाले गठांतरमें पूर्वोक्त आचार्यादि पांचोंके पास क्रमसें आलोचे, तिनकेजी अज्ञावसें असंज्ञोगी संज्ञोगी गठमें पूर्वोक्त क्रमसें आलोचे, तिनकेजी अज्ञाव हुआ गीतार्थ पार्श्वस्थके पास आलोचे, तिसके अज्ञावसें गीतार्थ सारूपीके पास आलोचे, तिसके अज्ञावे पश्चात्कृतके पास आलोचे, सारूपी उत्तकों कहते हैं, कि

जो शुक्लवस्त्रधारी होवे, शिरमुंडित, अवलकड, रजोहरण रहित, चारी, स्त्रीरहित जिह्वावृत्ति होवे, अरु जो सिद्धपुत्र होता है, सो शिखर सहित, अर्थात् चोटी सहित, स्त्री सहित होता है, तथा जो पश्चात्कृत होता है, सो चारित्र ठोडकें गृहस्थके वेपवाला होता है, आलोचनावे अवसरमें पार्श्वस्थादिककोजी गुरुकी तरें वंदना करे, क्योंकि विनयमूढ धर्म है, इस वास्ते वंदना करे, जे कर वो पार्श्वस्थादिक अपने आपको गुणहीन जान कर वंदना न करावे तब तिसकों आसन उपर बैठा का प्रणाम मात्र करकें आलोचना लेवे, तथा पश्चात्कृतकों इत्तर सामायिक आरोपण लिंग दे कर पीठेसैं उसके पास यथाविधिसैं आलोचना लेवे, तथा पार्श्वस्थादिकके अज्ञावें जहां राजगृहादि गुणशील चैत्यादिकमें जहां श्री अर्हत गणधरादिकोंने बहुत बार प्रायश्चित्त लोकोंकों दीया है, सो तहां रहनेवाले देवतानें देखा है, वास्ते तिस देवताकों अष्टमादि तपसैं आराधकें तिसके आगें आलोचे, कदाचित् वो देवता चव गया होवे, अरु उसकी जगे और उत्पन्न हुआ होवे, तदा वो देवता महाविदेहके अर्हतकों पूठके प्रायश्चित्त देवे, तिसके अज्ञावें अर्हत प्रतिमाके आगें आलोचे, आप प्रायश्चित्त लेवे, तिसके अज्ञावें पूर्वोत्तरमुख करकें अर्हतसि ऊँके समक्ष आलोवे, परंतु शय्य न रखे, आलोचना करनेवाला पुरुष, मायारहित बालककी तरें सरल हो कर आलोवे, जो कोइ किसी कारण सैं आलोचना न करे, वो आराधक नहीं है.

आलोचना करनेवाला दश दोष वर्जके आलोचना करे, सो दश दोषका नाम लिखते हैं. १ गुरुकों वेयावृतादिकसैं खुशी करकें पीठें आलोवे, जिसे वो गुरु थोना प्रायश्चित्त देवे, २ यह गुरु थोना दंड देता है, असैं अनुमान करकें आलोवे, ३ जे दूसरोंने देखा होवे, सो आलोवे, परंतु जो अपणा कीया अपराध दूसरा कोइने न देखा होवे, उसकों न आलोवे, ४ वादर दोषकों आलोवे, परंतु सूक्ष्म दोषकों न आलोवे ५ सूक्ष्म दोष आलोवे, परंतु वादर दोष न आलोवे, ६ अव्यक्त स्वरसैं आलोवे, ७ जेसैं गुरु समजे नहीं, असैं रोसा करकें आलोवे, ८ आलोचा हुआ बहुतोंकों सुणावे, ९ अव्यक्त अगीतार्थके पास आलोवे, १० अपराध जो गुरुने कहा होवे, तिसही अपने अपराधकों आलोवे, यह दश दोष हैं.

आलोचना करनेसे जो गुण होता है, सो कहते हैं, जैसे बोजा उठाने वाला चारके झर दूए हलका होता है, तैसा पापसे वो हलका हो जाता है, तथा पापरूप शय्य झर हो जाता है, प्रमोद उत्पन्न होता है, आत्मपरके दोषोंसे निवृत्ति तिसकों देखके औरजी आलोचना करेंगे, सरलता होती है, शुद्ध हो जाता है, वो दुष्कर कामके करने वाला है, क्योंकि दोषकों सेवनां तो दुष्कर नहीं है, किंतु आलोचना प्रकाश करनां यह दुष्कर है, तथा श्री तीर्थंकरकी आज्ञाका आराधक होता है, निःशय्य होता है, आलोचनावालेकों ये गुण होते हैं. यह आलोचना विधि श्राद्धजितकल्पसूत्रवृत्तिके अनुसार लीखा है, आलोचना करनेसे बाल, स्त्री, यति हत्यादि पाप तथा देवादिव्यज्रपाप, तथा राजपत्नी गमनादि महापापजी सम्यक्करीतिसें आलोवे, गुरुदत्त प्रायश्चित्त करे, तो झर हो जाते हैं, नहीं तो दृढपरिहारि प्रमुख उत्ती जवमें मोक्ष कैसें जाते ? इसी वास्ते वर्ष वर्ष प्रति चौमासे चौमासे आलोचना लेवे ॥ इति श्राद्धविध्यनुसारे वर्षकृत्यं संपूर्णम् ॥

अथ जन्मकृत्य, अष्टारह द्वारों करके लिखते हैं. १ तिसमें प्रथम उचित द्वार है, सो पहिलां तो उचित योग्य वसनेका स्थान करे, जहां रहनेसे धर्म, अर्थ अरु काम, तीनोंकी सिद्धि होवे, तहां श्रावकको वास करनां चाहिये. क्योंकि और जगे वसनेसे दोनों जब विगन जाते हैं, नीलपट्टीमें, चौरोंके गाममें, पर्वतके किनारे, हिंसक लोकोमें, दुष्ट लोकोंमें धर्मीलोकोंके निंदकोंमें, इत्यादि स्थानमें वास न करे, परंतु जहां जिन चैत्य होवे, जहां मुनि आते होवें, जहां श्रावक वसते होवें, जहां बुद्धिमान् लोक स्वभावसेही शीलवान् होवें, जहां प्रजा धर्मशील होवें, बहुत जल, इंधन, होवे, तहां वास करे. जैसा अजमेरके पास हर्षपुर नगर था, ऐसे नगरमें रहनेसे धनवंत, गुणवंत अरु धर्मवंतकी संगतिसें विनय, विचार, आचार, उदारता, गंजीरता, धैर्य, प्रतिष्ठा आदि गुणकी प्राप्ति होती है, धर्मकृत्यमें कुशलता प्रगट होती है, इस वास्ते बुरे गामोंमें चाहो धन प्राप्ति होवे, तोजी वास न करे ॥ उक्तं च ॥ यदि वांछसि मूर्खत्वं, ग्रामे वस दिनत्रयं ॥ अपूर्वस्यागमो नास्ति, पूर्वाधीतं च नश्यति ॥ १ ॥

उचितस्थानजी स्वचक्र, परचक्र परस्पर विरोध, दुर्जिह्वा, मारी, (हैजा)

जो शुक्लवस्त्रधारी होवे, शिरमुंडित, अवरूकठ, रजोहरण रहित, ब्रह्मचारी, स्त्रीरहित जिज्ञासुति होवे, अरु जो सिरूपुत्र होता है, सो शिखा सहित, अर्थात् चोटी सहित, स्त्री सहित होता है, तथा जो पश्चात्कृत होता है, सो चारित्र ठोडकें यहस्यके वेपवाला होता है, आलोचनाके अवसरमें पार्श्वस्थादिककोजी गुरुकी तरें वंदना करे, क्योंकि विनयमृषधर्म है, इस वास्ते वंदना करे, जे कर वो पार्श्वस्थादिक अपने आपको गुणहीन जान कर वंदना न करावे तब तिसकों आसन उपर घेठा कर प्रणाम मात्र करकें आलोचना लेवे, तथा पश्चात्कृतकों इत्वर-सामायिक आरोपण लिंग दे कर पीठेसैं उसके पास यथाविधिसैं आलोचना लेवे, तथा पार्श्वस्थादिकके अज्ञावें जहां राजगृहादि गुणशील चैत्यादिकमें जहां श्री अर्हत गणधरादिकोंने बहुत बार प्रायश्चित्त लोकोंकों दीया है, सो तहां रहनेवाले देवतानें देखा है, वास्ते तिस देवताकों अष्टमादि तपसैं आराधकें तिसके आगें आलोचे, कदाचित् वो देवता चव गया होवे, अरु उसकी जगे और उत्पन्न हुआ होवे, तदा वो देवता महाविदेहके अर्हतकों पूठके प्रायश्चित्त देवे, तिसके अज्ञावें अर्हत प्रतिमाके आगें आलोचे, आप प्रायश्चित्त लेवे, तिसके अज्ञावें पूर्वोत्तरमुख करकें अर्हतसि ऊँके समक्ष आलोवे, परंतु शय्य न रखे, आलोचना करनेवाला पुरुष, मायाराहित बालककी तरें सरल हो कर आलोवे, जो कोइ किसी कारण सैं आलोचना न करे, वो आराधक नहीं है.

आलोचना करनेवाला दश दोष वर्जके आलोचना करे, सो दश दोषका नाम लिखते हैं. १ गुरुकों बेयावृतादिकसैं खुशी करकें पीठें आलोवे, जिसेसैं वो गुरु थोरा प्रायश्चित्त देवे, २ यह गुरु थोरा दंड देता है, असें अनुमान करकें आलोवे, ३ जे दूसरोंने देखा होवे, सो आलोवे, परंतु जो थपणा कीया अपराध दूसरा कोइने न देखा होवे, उसकों न आलोवे, ४ वादर दोषकों आलोवे, परंतु सूक्ष्म दोषकों न आलोवे ५ सूक्ष्म दोष आलोवे, परंतु वादर दोष न आलोवे, ६ अव्यक्त स्वरसैं आलोवे, ७ जेसैं गुरु समझे नहीं, असें रोसा करकें आलोवे, ८ आलोचा हुआ बहुतोंकों सुणावे, ९ अव्यक्त अगीतार्थके पास आलोवे, १० अपराध जो गुरुने कहा होवे, तिसही अपने अपराधकों आलोवे, यह दश दोष हैं.

आलोचना करनेसे जो गुण होता है, सो कहते हैं. जैसे बोझ उठाने वाला चारके दूर दूर हलका होता है, तैसा पापसे वो हलका हो जाता है, तथा पापरूप शय्य दूर हो जाता है, प्रमोद उत्पन्न होता है, आत्मपरके दोषोंसे निवृत्ति तिसको देखके औरजी आलोचना करेंगे, सरलता होती है, शुद्ध हो जाता है, वो दुष्कर कामके करने वाला है, क्योंकि दोषकों सेवनां तो दुष्कर नहीं है, किंतु आलोचना प्रकाश करनां यह दुष्कर है, तथा श्री तीर्थंकरकी आज्ञाका आराधक होता है, निःशय्य होता है, आलोचनावालेको ये गुण होते हैं. यह आलोचना विधि श्राद्धजितकल्पसूत्रवृत्तिके अनुसार लीखा है, आलोचना करनेसे बाल, स्त्री, यति इत्यादि पाप तथा देवादिद्रव्यजक्षण पाप, तथा राजपत्नी गमनादि महापापजी सम्यक्क्रीतिसें आलोवे, गुरुदत्त प्रायश्चित्त करे, तो दूर हो जाते हैं, नहीं तो दृढपरिहारि प्रमुख उसी जवमें मोक्ष कैसें जाते ? इसी वास्ते वर्ष वर्ष प्रति चौमासे चौमासे आलोचना लेवे ॥ इति श्राद्धविध्यनुसारे वर्षकृत्यं संपूर्णम् ॥

अथ जन्मकृत्य, अष्टारह द्वारों करके लिखते हैं. १ तिसमें प्रथम उचित द्वार है, सो पहिलां तो उचित योग्य वसनेका स्थान करे, जहां रहनेसे धर्म, अर्थ अरु काम, तीनोंकी सिद्धि होवे, तहां श्रावकको वास करनां चाहिये. क्योंकि और जगे वसनेसे दोनों जव बिगड़ जाते हैं, ज़ी हृषद्वीमें, चोरोंके गाममें, पर्वतके किनारे, हिंसक लोकोमें, दुष्ट लोकोमें धर्मीलोकोके निंदकोमें, इत्यादि स्थानमें वास न करे, परंतु जहां जिन चैत्य होवे, जहां मुनि आते होवें, जहां श्रावक वसते होवें, जहां बुद्धिमान् लोक स्वभावसेही शीलवान् होवें, जहां प्रजा धर्मशील होवें, बहुत जल, इंधन, होवे, तहां वास करे. जैसा अजमेरके पास हर्षपुर नगर था, अैसें नगरमें रहनेसे धनवंत, गुणवंत अरु धर्मवंतकी संगतिसें विनय, विचार, आचार, उदारता, गंजीरता, धैर्य, प्रतिष्ठा आदि गुणकी प्राप्ति होती है, धर्मकृत्यमें कुशलता प्रगट होती है, इस वास्ते बुरे गामोंमें चाहो धन प्राप्ति होवे, तोजी वास न करे ॥ उक्तं च ॥ यदि वांछसि मूर्खत्वं, ग्रामे वस दिनत्रयं ॥ अपूर्वस्यागमो नास्ति, पूर्वाधीतं च नश्यति ॥ १ ॥

उचितस्थानजी स्वचक्र, परचक्र परस्पर विरोध, दुर्जिह्वा, मारी, (हैजा)

प्रजाविरोध, अन्नादि वस्तुक्षय, इत्यादि कारण हो जावे, तो तत्काल ठोर जाना चाहिये, नहीं तो त्रिवर्गकी हानी हो जावेगी, जैसे आम तुरकोंके जयसे लोक दिक्षिकों ठोरके गुजरातादि देशोंमें जानेसे सुबी और धनी हुए हैं, तथा कितिप्रतिष्ठित, चनकपुर, रूपनपुर, प्रमुखके उ जड़नेकी व्यवस्था जान लेनी, सो इस रीतिसे हे कि:- कितिप्रतिष्ठित उ जरुके चनकपुर वसा, अरु चनकपुर उजरुके रूपनपुर वसा, अरु रूपनपुर उजरुके राजगृह वसा, तथा राजगृह उजरुके चंपा वसी, अरु चंपा उजरुके पारुलीपुत्र अर्थात् पटना वसा. ऐसे आवकजी पूर्वोक्त हानि जाने तो नगरकों ठोरके और जगें जा कर वसे.

तथा रहनेका घरजी अछे पनोसीयोंके पास करे, परंतु वेश्या, यंच, जिह्वाचर, श्रमण, बौद्ध, तापसादि ब्राह्मण, मशाण, कोटवाल, माठी जूशारी, चोर, नट, नचानेवाला, जाट, कुकुर्मी, इत्यादिकोंके पडोसमें घुंटा न लेवे, न वसे, जे कर देहरेके पास रहे, तो हानी होवे, तथा चौकमें, धूर्तके अरु प्रधानके पास रहे, तो धन अरु पुत्र दोनोंका हानि होवे. तथा मूर्ख, अधर्मी, पाखंडी, पतित, चोर, रोगी, क्रोधी, चंगास मदनोन्मत्त, गुरुतद्वपग, बेरी, खामीबंचन, लोत्री, तथा कृपि, ली, अरु पाखंड्या करनेवाला, इतने लोक जे कर अपणां जला चाहे, तोजी इतके पडोसमें न रहे, क्योंकि इनकी संगतिसे गुणहानी प्रमुख अनेक उपजते होते हैं, इस वास्ते इनके पनोसमें न रहे.

तथा जला स्थान वो होता है, की जहां हड्डीका शल्य न होवे, राख न होवे, जहां काज उगती होवे, जला वर्षा, गंधवाली मिट्टी होवे, मीठा जल होवे, खोदतां धन निकले, वो जगा शुज है, तथा जो जूमि, शीत कालमें उष्ण स्पर्शवाली होवे, अरु उष्ण कालमें शीतस्पर्शवाली होवे, वो जगा बहुत शुज है. एक हाथमात्र जूमि पहिलां खोदके फेर तिस मट्टी करके पीठें वो खारु जरे, जे कर मट्टी अधिक रहे, तो श्रेष्ठजूमि जाननी, अरु जो मट्टी बराबर रहे, तो समानजूमि जाननी, अरु मट्टी उनी हो जावे तो नेष्टजूमि जाननी, तथा सो पग चाखे इतने कालमें जिस जूमि कामें पाणी न शूके, सो उत्तम जूमि जाननी, अरु जे कर सो पग चाखे, इतने कालमें एक अंगुली जर पाणी शोष होवे, तो मध्यम जूमि जाननी,

अरु एक अंगुलीकेजी उपरांत पाणी झूके, तो अधमजूमि जाननी, तथा पक्षांतरमें जिस जूमिके खातमें फूल गेरे, वो फूल जे कर झूके नहीं. तो उत्तम जूमि जाननी, अरु झूके, तो मध्यमजूमि जाननी, अरु सर्व झूक जावे, तो अधम जूमि जाननी, तथा जिस जूमिमें ब्रीहि बोझ हुई तीन दिन पीठें उगे तो उत्तम, पांच दिन पीठें उगे तो मध्यम, अरु सातदिन पीठें उगे तो हीन जूमि जाननी.

सर्पकी बंधी उपर घर बनावे, तो रोग होवे, पोखी जूमि उपर घर बनावे, तो निर्धन होवे, शल्ययुक्त जूमि उपर घर बनावे, तो मरण पावे. मनुष्यका हान अरु केशका शल्य होवे, तो मनुष्योंकी हानी करे. खर का शल्य होवे, तो राजा प्रमुखका जय होवे, श्वानका हाड होवे, तो वासक मरण पावे, वासकका हाड होवे, तो गृहस्वामी परदेशमें उजन जावे, गौका शल्य होवे, तो गौरूप धनकी हानी होवे, मनुष्यके केश तथा कपास अरु जस्म होवे, तो मरण देवे.

तथा प्रथमप्रहर अरु पश्चिम प्रहर वर्जके शेष प्रहरमें शूद्रकी अथ ध्व जाकी ठाया घर ऊपर पड़े, तो दुःखदायी है, अर्द्धतके मंदिरके पीठें न बसे. ब्रह्मा और कृष्णके पास न रहे, चंनिका और सूर्यके सन्मुख रहे नहीं, महादेवके तो किसी पातेंजी न रहे, कृष्णके दायें पानें अरु ब्रह्माके दाहिणें पातें न रहे. निर्माह्व (ज्ञानका पाणी) ध्वजकी ठाया. विज्ञेपन वर्ज. जिनमंदिरके शिखरकी ठाया अरु अर्द्धतकी दृष्टि होवे, तहां न बसे. तथा नगर अथवा गामके ईशान कोणमें घर न बनावे. बनावे, तो जंघ जातिवालेको दुःखदायी है.

घर बनावे तो पूरा मोक्ष देवे. पनोसीको दुःख न देवे. घर खेती व खत किसीको दुःख न देवे. अस्तेही ईंट, काष्ठ. पाषाण प्रमुख वस्तु नि शेष. दृष्ट, यखवान्, अरु जो नवीन होवे. सो योग्य मोक्ष दे कर खेवे. सो विक्रय होती होवे. तिसका योग्य मोक्ष दे कर खेवे. परंतु आप ईंट पचाया न लगावे. तथा जिनशालादिककी ईटादि न ग्रहण करें. क्योंकि शास्त्रमेंनी कहा है. जो देहरा. हृदा. बाधनी. नलाए. नर. अरु राजाके मंदिर. इनके पाषाण. ईंट. काष्ठको लगनी नाप्रनी वर्ज, क्योंकि इनका

पापाणके, स्तंज, पीढ, पट्टा, छार, शाखा, ये सर्व गृहस्थके घरमें लि-
ध कारी हैं, अरु धर्मके स्थानमें सुखदायी हैं.

तथा पापाणमय घरमें काष्ठके स्तंज, अरु काष्ठमय घरमें पापाणके
स्तंज, मंदिरमें तथा घरमें बनानां वजें, तथा हलका काष्ठ, कोट्टुका
काष्ठ, गाढेका काष्ठ, अर्द्धका काष्ठ, चरखेका काष्ठ, कांटेवाले वृक्षका
काष्ठ, पंच उंबरका काष्ठ, थोहरका काष्ठ, ये काष्ठ घरमें न लगावे, तथा
वीजोरा, केला, दाडिम, चेरी, जंवीरी, हलड, आंवलीकी कर अरु धनुरा,
इतनेका काष्ठ वजें, तथा इन वृक्षोंकी जरु पत्तोंसमें घरमें प्रवेश करे,
अथवा इनकी ठाया घरमें पड़े तो कुलका नाश करे, तथा पूर्वदिशि की
तरफ घर उंचा होवे, तो धनका नाश करे, तथा दक्षिणदिशें उंचा होवे,
तो धनकी वृद्धि करे, पश्चिमदिशें उंचा होवे, तो धनादिकी वृद्धि करे,
उत्तर दिशिमें होवे, तो उजड़ जावे, तथा जो गोख घर होवे, बहुत कू
णें वाला होवे, अथवा एक कूणा दो कूणा तीन कूणा होवे. अरु दक्षिण
वामी तरफ लंबा होवे, ऐसे घरमें न बसे. तथा जिस घरके कवाड ख
यमेव उघड़े अरु जिडे वो घर सुखकारी नहीं.

तथा घरके द्वार आगें कलशादि चित्राम होवे, तो शुभ है, तथा रं
गनी, नाटारंज, चारत रामायणका युद्ध, राजाओंका युद्ध, कृषियोंका च
रित्र, देवचरित्र, ये चित्राम करानां, घरमें शुभ नहीं, तथा फलवृक्ष, फू
ली वेल, सरस्वती, नवनिधान, यज्ञस्तंज, लक्ष्मीदेवी, कलश, वर्द्धमान,
चौदह स्वभावलि, ये चित्राम करानां शुभ है.

तथा खजूर, दाकिम, केलां कोहला, वीजोरां, ये जिसघरमें उगे, उस
घरका नाश करते हैं, वटवृक्ष उगे तो लक्ष्मीका नाश करे, कांटावाला
वृक्ष उगे, तो शत्रुका जय करे, घने फल वाला वृक्ष उगे, तो संतानका
नाश करे, इन वृक्षका काष्ठजी वजें, तथा कोइ शास्त्र ऐसा कहता है
कि:- घरके पूर्व वरुवृक्ष होवे, तो अष्टा है, दक्षिणपासं उदंवरवृक्ष शुभ
है, पश्चिमजागें पीपल, उत्तरपासं प्रीक्षण वृक्ष अष्टा है.

तथा घरमें पूर्वदिशिमें लक्ष्मीका घर करे, अग्निकोणमें रसोइ करे, द
क्षिणदिशिमें शयनकी जगा करे, नैऋतकोणमें शस्त्रशाला करे, पश्चिम
दिशें नोजनक्रिया करे, वायुकोणमें अन्न संग्रह करे, उत्तर पासं जल र

खनेका स्थान करे, ईशानकोणमें देवगृह करे, तथा दक्षिणपासं अग्नि, पाणी, गाय, वायु, दीवेकी जूमि बनावे, तथा वामे पासं जोजन, धान्य, द्रव्य, वाहन, देवताकी जूमि करे, यह पूर्वादि दिशा सो घरके दरवाजेकी अपेक्षासं जाननी. ठीकवत्. नतु सूर्यापेक्षा.

तथा घर बनानेवाले सूत्रधार मजूर प्रमुखकों बोले प्रमाणसं कबुक अधिक मजुरी देवे, इसमें शोभा है, यहस्यकों चाहियें वैसा घर बनावे. परंतु व्यर्थ बना घर न बनावे, क्योंकि उसमें व्यर्थ धन खरचनां है, घरका द्वार, मर्यादासं योग्य जाणकें ररेके. क्योंकि बहुत दरवाजे बनानेसं दुष्ट जनोके आने जानेसं छी अरु धनका नाश हो जाता है, तथा दरवाजे का किंवाड हड बनावे, सांकल अर्गलादिसं सुरक्षित करे, किंवाडजी सुखें खुल जावे, ऐसे बनावे, जौतमें जोगल रखनेसं पंचेंद्रिय जीवकी विराधना होती है, किंवा न जेडे, तब यत्नसं जेने. ऐसे प्रणाला खालादि काजी यथाशक्तिसं उद्यम करे, इत्ती तरें देश, काल, स्वविभव उचित स्वजाति उचित घर बनाकें विधि सहित स्नात्रपूजा, साधर्मिकवात्सल्य, संघ पूजा करकें जले मुहूर्तमें जले शकुनमें प्रवेश करे, तो बहुत सुखदायी होवे, त्रिवर्गकी सिद्धिका हेतु होवे ॥ इति प्रथम उचित द्वार ॥ १ ॥

१ दूसरा विद्या द्वार कहते हैं. विद्या सो लिखित, पठित, वाणिज्यादि कलाका ग्रहण करे, अर्थात् अध्ययन करे, क्योंकि जो विद्या नहीं शीखता है, सो मूर्ख रहता है, पग पगमें पराजय पाता है, अरु विद्यावान् परदे शमेंजी माननीय होता है, इस वास्ते सर्व प्रकारकी कला शीखनी चाहियें. क्या जाने क्षेत्र कालके विशेषसं किस कलासं आजीविका करणी पडे ? जिसने सर्वकला शीखी होवे, उसनेजी पूर्वोक्त सात प्रकारकी आजीविकामेंसं जिस करकें सुखें निर्वाह होवे, सो आजीविका करणी. जे कर सर्वकला शीखने समर्थ न होवे, तब जिस कलासं अपनां सुखें निर्वाह होवे, अरु परलोकमें अष्टी गति होंवे, सो कला, शीखे, पुरुषकों दो बातें. अवश्य शीखनी चाहियें, उसमें एक तो जिस्सं सुखें निर्वाह होवे सो, अरु दूसरी जिस्सं मरकें अष्टी गतिमें जावे, यह दो बातें अवश्य शीखनी. १

३ तीसरा विवाहद्वार. सो विवाहजी त्रिवर्गशुद्धिका हेतु होनेसं उचित ही करणा चाहियें, विवाह अन्यगोत्रवालेसं करना चाहियें तथा समान

कुल, सदाचारादि, शील, रूप, वय, विद्या, धन, वैप, जाया प्रतिष्ठादि
करके जो आप समान होवे, तिसके साथ विवाह करे, अन्यथा
वहेलना, कुटुंब कलहादि अनेक कलंक उत्पन्न होते हैं, श्रीमतीवत्
मुद्रिक शास्त्रोक्त शरीरके लक्षण अरु जन्मपत्रिका देखके वर कन्याकी
परीक्षा करके विवाह करे, तदुक्तं ॥ श्लोक ॥ इन्द्रवज्रावृत्तं ॥ कुलं च शीलं
च सनाथता च, विद्या च वित्तं च वपुर्वयश्च ॥ वरे गुणाः सप्त त्रिलोकनी
या, स्ततः परं जाग्यवशा हि कन्या ॥ १ ॥ तथा जो मूर्ख होवे, निर्दय
होवे, डूर होवे, सूरमा होवे, मोक्षाजिखापी बेरागवंत होवे, वपमें
न्यासें त्रिगुणा अधिक होवे, इनको कन्या न देनी, तथा अतिधनवान्,
तिशीतल, अतिक्रोधी, विकसांग, अरु रोगी, इनको जी कन्या न देनी,
तथा जो कुल जातिसें हीन होवे, माता पिता रहित होवे, स्त्री पुत्रसहित
जिसके होवे, इनको जी कन्या न देनी, तथा जिसका बहुतोंसे बैर होवे, जो
नित्य क्रमाके खावे, अरु जो थालसी होवे, इनको जी कन्या न देनी,
तथा गोत्रीयकों, जूथारीकों, कुट्यसनीकों, विदेशीकों, इनको जी कन्या न
देनी, जो स्त्री, कपट रहित जत्तारके साथ वत्ते, देवरके साथ जी कपट रहित
वत्ते, सामुकी जक्ता होवे, स्वजनकी वत्सल होवे, जाइयोमें छेदवाली होवे,
कमलकी तरें विकसित वदन वाली होवे, सो कुलबहू सुलक्षणी है.

अग्नि देवताकी साखसें पाणीग्रहण करनां, तिसका नाम विवाह कहते
हैं, सो विवाह लोकमें आठ प्रकारका है, एक अलंकार करके कन्या देवे,
तिसका नाम ब्राह्मविवाह है, दूसरा कन्याके पिताकों धन देके जो कन्या
विवाह, तिसका नाम ग्राजापत्य विवाह है, इन दोनो विवाहकी विधि आ
चारदिनकर शास्त्रसे जान लेनी, तीसरा बठडे सहित गोदान पूर्वक सां
रूपिविवाह, चाथा जो यज्ञके वास्ते दीक्षा लेवे, उसकों जो कन्या देवे,
सो इन्द्रविवाह है, सो देवविवाह है, ये दोनो विवाह, लोकिकदेव सम्मत है,
परंतु जैनवेदमें सम्मत नहीं हैं. क्योंकि इन दोनो विवाहोंके मंत्र, जैनवेदमें
नहीं हैं, अरु ये दोनो विवाह जैनमतवालोंके मतमें करने योग्य नहीं हैं,
इन पूर्वोक्त चारों विवाहोंको लोक नीतिमें धर्मविवाह कहते हैं, पांचमा
मातापिताकी आज्ञा बिना परस्पर स्त्री पुरुषके रागसें जो विवाह होवे, ति
सकों गांधर्व विवाह कहते हैं, ठछा किसी कामकी प्रतिष्ठा कराके कन्या

देवे, सो आसुरविवाह है, सातमा जो जोरावरीसे कन्याको ग्रहण करे, सो राक्षस विवाह है, आठमा सूती, मदोन्मत्त, वावरी, प्रमादवन्त, कन्याको ग्रहण करे, सो पिशाच विवाह है, इन चारोंको अधर्म विवाह कहते हैं, जे कर वधूवरकी परस्पर रुचि होवे तदा अधर्मविवाहको जी धर्मविवाह जानने. अठ्ठी स्त्रीका लाज होना, यह विवाहका फल है, अरु स्त्री मिल नेका फल यह है कि:-अठ्ठा पुत्र उत्पन्न होवे, चित्तकी वृत्ति अनुपहत रहे, शुद्धाचार, देवगुरु, अतिथि, बंधवादिका सत्कार होवे.

तथा विवाहमें जो धन खरचे, सो अपणे कुल वैजवकी अपेक्षा लोक में जैसे अठ्ठा लगे, तितना खरच करे, परंतु अधिक अधिक खरचनेकी चाह न बढावे, क्योंकि अधिक अधिक खरच तो धर्मपुण्यकी जगेही करना ठीक है, विवाहादिके अनुसारें स्नात्रमहोत्सव, वनी पूजा, आदर सहित करे, रसवती ढोकन अरु चतुर्विधसंघका सत्कारादि करे, क्योंकि विवाहादि जो हैं, सो सब संसारके कारण हैं, इसमेंसे जितना धर्ममें लग जावे, सो सफल है ॥ इति तृतीयछार ॥ ३ ॥

४अथ चौथा मित्र छार कहते हैं. मित्र बनावे उसको गुमास्ता रखे, उसको जो सहायक होवे, उत्तमप्रकृतिवाला, साधमी, धैर्यवन्त, गंजीर, चतुर, बुद्धिमान्, प्रतीतकारी, सत्यवादी, इत्यादि शुभगुण युक्त होवे, उसको मित्र बनावे ॥

५ पांचमा छार जगवान्का मंदिर बनावे. सो बना ऊंचा, तोरण शिखर मंनषादि मंनित, चरतचक्रवर्त्यादिवत् बनावे. सुवर्ण, मणि, रत्नमय तथा विशिष्टपाषाणमय, अथवा विशिष्ट काष्ठ इंदुमय मंदिर बनावे, जेकर शक्ति न होवे, तो तृणकी कुटीजी न्यायार्जित धनसे बना कर उसमें मट्टीकी प्रतिमा बना करके पूजे, न्यायोपाजित धनसेही जिनमंदिर बनाना चाहिये, जिसने जिनजवन नहीं कराया, जिनप्रतिमा नहीं बनवाई, जिनप्रतिमाकी पूजा नहीं करी, अरु साधुपणा नहीं लीया, उस पुरुषने अपना जन्म हार दीया है, जो पुरुष शक्तिके अभावमें एक फुलसेही पूजा करे, तोही वो परमपुण्य उपार्जन करता है, तो फेर जिसने दृढ़, निविड, सुंदर शिवासे श्रीजिनजवन मानरहित हो करके बनवाया है, तिसके पुण्यका क्या कहना है? उसका तो जन्मही सफल है.

जिनमंदिर बनानेकी जो विधि है, सो लिखते हैं:-मृनि अरु काष्ठादि

शुरू होवे, मजूरोंसें ठल न करे, सूत्रधारकारीगरोंको सन्मान देवे, तब
पूर्व जो घर बनानेकी विधि कही, वो सर्व इहां विशेष करके जाननी
काष्टादि जो द्यावे, सोची देवाधिष्ठातावनादिसें सूका द्यावे, परंतु अविधि
न द्यावे, तथा आप ईंट पकावे तो अष्टा नहीं, नोकेरोंको काम करने
वालोंको ठहरावसेंजी कटुक महीना अधिक देवे, क्योंकि वे लोक तु
मान होके अष्टा पका काम करे, अरु मंदिरादि करानेमें शुभ परिणामके
वास्ते गुरु संघ समक्ष ऐसें कहे, कि जो इहां अविधिसें पारका धन मे
पास आया होवे, तिसका पुण्य तिसको होवे, इसी तरें जिनमंदिर बनावे,
परंतु भूमि खोदनी, पूरणी, पापाणदलसें कपाट खाने, शिला फोदनी, चि
नने प्रमुखमें महा आरंभ होता है, इस वास्ते जिनमंदिर न बनानी चाहि
यें? ऐसी आशंका न करनी, क्योंकि यत्नसें करके प्रवृत्त होनेसें निर्दोष है
अरु नाना प्रतिमास्थापन, पूजन, संघसमागम, धर्मदेशना करणी, दर्शन व
तादिककी प्रतिपत्ति, शासनप्रजावना, अनुमोदनादि, अनंत पुण्यका हेतु
होनेसें तथा शुभोदयका हेतु होनेसें कूपके दृष्टांतसें महालाजका कारण है.

अरु जीर्णोद्धारमें ऐसी रीति है. यतः ॥ नवीनजिनगेहस्य, विधाने
यत्फलं जवेत् ॥ तस्मादष्टगुणं पुण्यं, जीर्णोद्दारेण जायते ॥ १ ॥ जीर्णे
समुद्धृते याव, तावत्पुण्यं न नूतने ॥ उपमदोमहांस्तत्र, स्वचैत्यख्यातिर्वा
रपि ॥ २ ॥ तथा ॥ राय अमघ सेष्ठी, कोडंबीएवि देसेण काठं ॥ जिबे
पुवायणे, जिणकप्पीवावि कारवई ॥ १ ॥ अर्थः—राजा, मंत्री, श्रेष्ठी, कौ
टंबीकोको उपदेश दे कर जीर्ण जिनमंदिरका उद्धार जिनकल्पी साधुजी
करावे, जो जिनजवनका उद्धार करे, तिसनें जयंकर संसारसें अपनी
आत्माका उद्धार करा है, ऐसा जान लेनां. जीर्णचैत्योद्धारकरणपूर्वकही
नवीन चैत्य करानां योग्य है, इसी वास्ते संप्रति राजाने नवासी हजार
जीर्णोद्धार कराये हैं, अरु नवीन जिनमंदिर तो ठत्तीश हजारही बन
वाये हैं, ऐसेही कुमारपाल राजा तथा वस्तुपालादिकोंनेजी नवीन जि
नमंदिरों बनानेसें जीर्णोद्धार बहुत कराये हैं.

तथा जब चैत्य बन जावे, तब शीघ्रही प्रतिमा विराजमान करनी चा
हियें ॥ यदाह श्रीहरिचन्द्रसूरिः ॥ जिनजवने जिनविंधं, कारयितव्यं दुतं
तु बुद्धिमता ॥ साधिष्ठानं होवं, तद्भवनं श्रद्धिमद्भवति ॥ १ ॥ देहरेमें कुंडी,

कलश, उरसा, प्रदीप, जंमार, बाग, वाडी, गाम, नगर प्रमुख राजा देवे, जैसे सिद्धराजराजाने, श्रीरैवताचल उपर श्रीनेमिनाथके चैत्य वास्ते बारा गाम दीये थे, तथा जैसे कुमारपालराजाने वीतजय पाटनके खुदानेसे त्रां वापत्रमें श्रीउदयन राजाके दीये गाम निकले, सो कबूल करके दीये, ते सें देवे, श्रीजिनमंदिरके बनानेका फल यह है कि:—जो यथाशक्तिसे अण्ण धनके अनुसार श्रीजिनवरका जवन करावे, सो देवता जिसकी स्तुति करे, बहुत काल लग आनंद रूप, ऐसा देवविमानादिक परम सुख पावे ॥५॥

६ अथ षष्ठ प्रतिमाधार. सो श्रीअर्हंतका विंव, मणि, सुवर्ण, धातु, चंदनादि काष्ठ अरु पाषाण, माटी प्रमुखका पांच सो धनुष प्रमाण यावत् अंगुष्ठ प्रमाण यथाशक्तिसे बनावे, श्रीजिनप्रतिमा बनानेवालेको फल हो ता है, सो कहते हैं ॥ श्लोक ॥ वसंततिलकावृत्तं ॥ सन्मृत्तिकामलशिला तलदंतरोप्य, सौवर्णरत्नमणिचंदनचारुविंवम् ॥ कुर्वन्ति जैनमिह ये लघना नुरूपं, ते प्राप्नुवन्ति नृसुरेषु महासुखानि ॥ १ ॥ आर्या ॥ दारिद्र्यं दोहृगं, कुजाश्च कुत्तरीर कुगश्च कुमईष्ठं ॥ अवसाण रोग सोगा, न हुंति जिणविंव कारीणं ॥ २ ॥ अर्थ:—जो जिनविंवका कराने वाला है, सो दारिद्र्य, दोहृग, कुजाति, कुजाति, विरूप शरीर, नरक तिर्यचकी गति, बूरी बुद्धि, परव शपणां, रोगी, अरु शोकी पणांको न पावे.

तथा प्रतिमाची वास्तु शास्त्रमें कही विधिपूर्वक बनावे, सुखरूपा संतति की वृद्धि करनेवाली बनावे, तथा जो प्रतिमा अन्यायोपार्जित अव्यसे वने, दोरंगादि रंगवाले पाषाणकी बने, जिसका अंग हीनाधिक होवे, सो प्रतिमा लपरकी उन्नतिकी नाश करने वाली है, तथा जिस प्रतिमाका सुख, नाक, नेत्र, नाभि, कटि, इतने अंग, अंग होवे, तो वो प्रतिमाको मूल नायक न करना चाहिये, अरु आचरण सहित, वस्त्रसहित, परिकर सहित, लंठन सहित पूजे, तथा जिस प्रतिमाको सो वर्षसे अधिक वर्ष हो गया होवे, अरु आगे जो प्राजापिक पुण्यकी प्रतिष्ठी दुई होवे, वो प्रतिमा जे कर लंथित होवे, तोही पूजने योग्य है, तथा विंवके परिवारमें पाषाणमयमें, जेकर दूसरा रंग होवे, तो वो विंव, सुखकारी नहीं, जो विंव, लम अंगुष्ठ प्रमाण होवे, सो शुद्ध नहीं, तथा एक अंगुष्ठसे छे कर इग्यारह अंगुष्ठ प्रमाण विंव घरमें पूजनां चाहिये. इत्ते उपरांत प्रमा

एवाला धिंव होवे, तो प्रासादमें पूजनां चाहियें. यह कथन तथा निर्यावलिस्त्रमें कहा है, कि लेपकी, पायाणकी, काष्टकी, दांतकी, लोहकी प्रतिमा, परिवार अरु प्रमाण रहित होवे, तो घरमें न पूजे, घरप्रतिमाके आगे नैवेद्यका विस्तार न करे, तीन कालमें निश्चयें अजिबेक करे, पूजा, जावसें करे, प्रतिमा मुख्यवृत्तिसें परिकर सहित तिखक सहित आचरण सहित करावे, उसमें मूल नायक तो विशेष करके शोजनीक नाना चाहियें. क्योंकि जिनप्रतिमाकी अधिक शोजा देखनेसें परिणाम अधिक उद्धासमान होनेसें अधिक निर्जरा होती है, जिनमंदिर अरु जिन प्रतिमा बनानेवालेको अतुल्य पुण्य फल होता है, जहां तक वो मंदिर अरु प्रतिमा रहेंगे, तहां तक पुण्य फल होवे, जैसे अष्टापद उपर जरत राजाका कराया चेल तथा रेवतगिरि उपर ब्रह्मैन्द्रका कराया कांचन वहां नकादि चैत्यप्रतिमा, अरु जरतचक्रीकी अंगूठीमें माणककी प्रतिमा, तथा कुल्पाक तीर्थमें माणिक्यस्वामीकी प्रतिमा कहलाती है, तथा श्री स्तंभ नक पार्श्वनाथकी प्रतिमा आज लग पूजते हैं, इसी वास्ते इस चौबीसी में पहिलां जरतचक्रीने श्रीशत्रुंजय तीर्थमें रत्नमय चौमुख चौरासी मंगल संयुक्त श्रीरूपजदेवका मंदिर बनवाया, पांच कोडी मुनियोंसें पुंनरीक गणधर मोक्ष पाये, ज्ञाननिर्वाणके ठिकाणेजी बनवाये, ऐसेही बाहुवल्ली, मरुदेवी शृंगमें तथा रेवतगिरि, अर्बुदगिरि, वेचारगिरि अरु समेत शिखरमेंजी जिनमंदिर बनवाये, प्रतिमाजी सुवर्णादिककी बनवाइ, तथा जरतराजाकी आवमी पीढीमें (पुस्तमें) दंरुवीर्य राजानें तथा दूसरा सगरचक्रवर्त्यादि कौनों तिनका उद्धार कराया, तथा हरिपेण नामक दशमे चक्रीनें श्रीजिनमंदिरमंजित पृथ्वी करी, तथा संप्रतिराजाने सवा लाख जिनमंदिर तथा सवा क्रोम जिनप्रतिमा बनवाइ, तथा आमराजा आवकने गोपालगिरि अर्थात् गवाखियरके राजाने श्रीमहावीर अर्हंतका मंदिर एक सौ एक हाथ ऊंचा बनवाया, तिसमें साढे तीनकोड सोना मोहोर खरचके सात हाथ प्रमाण ऊंची श्रीमहावीर अर्हंतकी प्रतिमा विराजमान करी, तहां मूलमें रुपमें सवा लाख सोनइया लगाया, अरु प्रेक्षामंडपमें एकवीश लाख सो नइया खरच कत्वा, तथा कुमारपाल राजानें चौदह सौ चौतालीस (१४४४) नवीन जिनमंदिर कराये, अरु सोलां सौ मंदिर, जीर्णोद्धार क

राये, ठानवे क्रोड रूपइये खरचकें त्रिभुवनविहार नामा जिनमंदिर बन वाया, उसमें एक सौ पंचवीश अंगुल प्रमाण अरिष्टरत्नमयी प्रतिमा बह न्तर देहरी संयुक्त अरु चौबीस प्रतिमा रत्नकी, चौबीस सोनेकी, चौबीस रूपेकी स्थापन करी, अरु चौदह नार प्रमाण एकेक चौबीसी बनवाई, तथा मंत्री वस्तुपालने तेरां सौ तेरां नवीन जिनमंदिर बनवाये, औ वाइ सौ जीर्णोद्धार कराये, सवा लाख प्रतिमा, अरु सवा लाख रत्नसुवर्णें जडे औसे आभूषण, प्रतिमाजीके बनवाये. तथा साह पेथरुने चौरासी जिनमंदिर बनवाये, मांथाता अरु ऊँकार नगरमें तथा देवगिरिमें क्रोडों रूपक खरचकें वीरमदे राजाके राज्यमें चौरासी जिनमंदिर बनवाये, तीन लाख रूपइया दानमें दीना, तथा तिसही पेथरुशाहने श्रीशत्रुंजय तीर्थमें श्रीरूपन देवजीके मंदिरको सुवर्णपत्रसें मढाके मेरुके शृंगवत् कर दीया था, ये सर्व पूर्वोक्त मंदिर, राजा अजयपालनें अरु मुसलमानोंनें गारत कर दीये, शेष जो बचे बचाये रहे हैं, वे आजन्नी आबु तारंगादि पर्वतों उपर विद्यमान हैं.

७ सातमा प्रतिमाकी प्रतिष्ठाका द्वार. सो प्रतिमाकी प्रतिष्ठा शीघ्र करनी चाहियें, पुरुषकग्रंथमें लिखा है, कि मंदिर त्थार दूआं पीठें दश दिनके अन्त्यंतरही प्रतिष्ठा करानी चाहियें, यह प्रतिष्ठाकी विधि प्रतिष्ठा कल्प प्रमुख ग्रंथोंसें जान लेनी ॥ इति सप्तमद्वार ॥ ७ ॥

८ आठमा दीक्षा द्वार. सो बने महोत्सवसें पुत्र, पुत्री, जाइ, जन्मीजा, स्वजन, मित्र, परिजन प्रमुखकों दीक्षा दिलावे, उपस्थापना करावे, तथा और दीक्षा देनेवालोंका महोत्सव करे, ये महापुण्यका कारण है, जिसके कुलमें चारित्र धारक पुरुष होवे, सौ बडा पुण्यवान् कुल है, लौकिक शास्त्रमेंजी लिखा है कि ॥ श्लोक ॥ तावद्भ्रमंति संसारे, पितरः पिंडकां क्षिणः ॥ यावत्कुले विशुद्धात्मा, यतिः पुत्रो न जायते ॥१॥ इति अष्टमद्वार ॥

ए नवमा तत्पदस्थापनाद्वार. सो गणि, वाचनाचार्य, वाचक, आचार्यादि पदप्रतिष्ठाकों शासनकी उन्नति वास्ते बडे महोत्सवसें करे, जैसे पहिला गणधरोकों शक्र (इन्द्र) ने करी है, तथा मंत्री वस्तुपालने एक वीश आचार्योंको पदस्थापना करी ॥ इति नवमद्वार ॥ ए ॥

१० दशमा पुस्तक लिखावनेका द्वार. सो पुस्तक जो आचारांगादि कल्प सूत्र, अरु जिनचरित्रादिकों न्यायार्जित धनसें लिखावे, अठे पत्र (वागज)

उपर बहुत शुद्ध सुंदर अक्षरोंसे लिखावे, तथा आप वांचे, संवेगी गीतां पासों वंचावे, तथा प्रौढ प्रारंजादि महोत्सवसें दिनप्रत्ये पुस्तककी पूजा व हुमान पूर्वक व्याख्यान करावे, तिनके पढने वालोंको वस्त्र श्रद्धादिसें उ पष्टंज करे, शास्त्र जो होते, सो दुःखम कालके प्रजावसें चारां वर्षके दु र्जिह्वा कालमें बहुत विष्टेद गये, अरु जो शेष रहे, सो जगवान् नागार्जुन स्कंदिलाचार्य प्रमुखोंने पुस्तकोंमें लिखे, तवसें लिखे हुए चास्त्रोंका बहु मान करने लगे, तिस वास्ते पुस्तक जरूर लिखाने चाहियें. क्योंकि जो यह विष्टेद हो जायेंगे, तो फेर इस क्षेत्रके अनाथ जीवोंको कौन ज्ञान देवेगा? इस वास्ते पुस्तकोंके उपर दुकूलादि वस्त्र धांधकें यत्नासें पूजने रखने चाहियें, शाह पेथरुनें सात क्रोम, अरु मंत्री वस्तुपाखनें अठारह फोड रूपइये खरचकें तीन ज्ञानके चंगार बनाये, तथा धिरापडीय संघ पति आचूने अपणी माताके नामके रूपइये तीन क्रोमसें सर्वांगमार्गी प्रति सोनेके अक्षरोंसें लिखवाइ, शेषग्रंथ त्याहीके अक्षरोंसें लिखाये ॥१०॥

११ द्यारदवा पौपधशाखा बनानेका छार. सो आवक प्रमुखोंके पौपध करने वास्ते साधारण स्थानमें पूर्वोक्त घर बनानेकी विधिके अनुसार प नानी चाहियें. वो शाखा समराके अवसरमें सुसाधुके रहनेकोंनी देये, ति सका महाफल है, श्रीवस्तुपाखने नौ सो चौरासी (९८४) पौपधशाखा कगइ, सिद्धराज जयसिंह राजाके प्रधान, सांतूने अपणे रहने वास्ते बहुत सुंदर आवास कराके श्रीवादिदेवसूरिजीकों दिखलाया, अरु मंत्रीजीने पुत्रा कि:-कैसा आवास है? तब चेखे माणिक्यने कहा कि पौपधशाखा हांवे तो वर्णन करियें, तब मंत्रीने कहा कि:-यह पौपधशाखाही होये ॥

१२-१३ तथा दारदवा अरु तेरदवा छारमें आजन्म पाछ अवस्थासें भुंक् र जावजीव सगे सम्यक्त्वदर्शन यथाशक्तिसें पाछे, यह दारदमा छार ॥१२॥ १३ अरु यथाशक्तिसें व्रतादि पाछे, यह तेरदवा छार ॥ १३ ॥

१४ चौददवा दीक्षा ग्रहणका छार. सो आवक अवसर जानके दीक्षा ग्रहण करे, तात्पर्य यह है कि:-आवक जो है, सो निश्चय पासायस्यामें दी क्षा न खेवे, तो अपणे मनमें ठगाया दूथा माने, जैसें जगतमें अति बड़ न वस्तुकों सोक स्मरण करते हैं, तैसें आवकनी नित्य सर्वविरति खेनेही चिंता करे, जे कर गृहवासनी पाछे, तोनी श्रौदासीन्य अक्षितपणे अन्न

कों प्राहुणे समान समजें, क्योंकि जावश्रावकके लक्षण सत्तरे प्रकारें कहे हैं, तिनका नाम कहते हैं.

१ स्त्रीसैं वैराग्य, २ इंद्रियवैराग्य, ३ धनसैं वैराग्य, ४ संसारसैं वैराग्य. ५ विषयसैं वैराग्य, ६ आरंज स्वरूप जाणे, ७ घरकों दुःखरूप जाणे, ८ दर्शनधारी, ९ गरुडीप्रवाह ठोडे, १० धर्ममें आगें हो कर प्रवर्त्तें, आगमानुसारें धर्ममें प्रवर्त्तें, ११ दानादिकमें यथाशक्ति प्रवर्त्तें, १२ त्रिधिमा र्गमें प्रवर्त्तें, १३ मध्यस्थ रहे, १४ अरक्तछिद्र, १५ असंवद्ध, १६ परहित वास्ते अर्थ कामका जोगी न होवे, १७ वेद्याकी तरें घरवास पावे, ए सत्तरे पद संयुक्त जावश्रावक होता है. तिनमें १ प्रथम स्त्री जो है, सो अनर्थका जवन है, चपलचित्तवाली है, नरककी वाट सरीखी है, जानता दूआ कामी, इसके वशवर्त्ती न होवे, २ दूसरी इंद्रियों जो हैं, सो चपल घोडे समान है, खोटी गतिकी तरफ नित्य दौडती हैं, उसकों जव्य जीव, संसार का स्वरूप जानकें सत्ज्ञानरूप रज्जु (दोरडी) सैं रोके, ३ तीसरा धन जो है, सो सर्व अनर्थका औ क्लेशका कारण है, इस वास्ते धनमें बुद्ध न होवे, ४ चौथा संसारकों दुःखरूप दुःखफल दुःखानुबंधी विम्वनारूप जान कें प्रीति न करे, ५ पांचमा विषयका क्षणमात्र सुख है, विषय विषफल समान है, ऐसे जानकें कदापि विषयमें गृह्णित्व न करे, ६ ठछा तीव्रारंज सदा वर्जें, जे कर निर्वाह न होवे, तोजी खटपारंज करे, अरु आरंज रहि तोंकी स्तुति करे, सर्व जीवों उपर दयावंत होवे, ७ सातवा गृहवासकों दुःख रूप फांसी मानकें गृहवासमें वसे, अरु चारित्रमोहनीय कर्मके जीत नेमें उद्यम करे, ८ आठमा आस्तिक्य जाव संयुक्त जिन शासनकी प्रभावना गुरुजक्ति करे, ऐसे सम्यग्दर्शन निर्मल धरे, ९ नवमा जिस तरें बहुत मूर्ख लोक जेन (गरुडी) प्रवाहवत् चलते होवे, तैसैं न चले, परंतु जो काम करे सो विचारकें करे, १० दशमा श्रीजिनागम विना और कोइ परलोकका यथार्थ मार्ग कहनेवाला शास्त्र नहीं, इस वास्ते जो काम करे, सो जिना गमानुसारे करे, ११ इग्यारहवा आपणी शक्तिके विना गोप्यां चार प्रकारका दानादि धर्म करे, १२ बारहवा हितकारी, अनवद्य धर्मक्रियाकों चिंतामणि रत्नको तरें दुर्लभ जानकें करता दूआ किसी मूर्खके हसनेसैं लज्जान करे, १३ तेरहवा शरीरके रखने वास्ते धन, खजन, आहार, घर प्रमुखमें वसे,

जोग रहे, परंतु राग, द्वेष, किसी वस्तुमें न करे, १४ चौदहवां उपशान्त वृत्तिसार है, ऐसे विचारसे जो राग द्वेषमें लेपायमान न होवे, खोटा आग्रह न करे, हितका अजिलापी मध्यस्थ रहे, १५ पंदरहवां सर्ववस्तु कां क्षणजंगुर पणा निरंतर विचारे, धनादिके साथ प्रतिबंध तजे, १६ शोलहवां संसारमें विरक्त मन होवे, क्योंकि जोग जोगनेसे आज तक कोइ तृप्त नहीं हुआ है, परंतु स्त्रीआदिके आग्रहसे जे कर जोगमें प्रवर्त्ते, तोत्री विरक्तमन रहे, १७ सत्तरहवां वेदयाकी तरें अजिलापा रहित बर्त्ते, ऐसा विचारे की आज काल ये अनित्यसुख मुऊकों ढोडने पंगे, इस वास्ते घरवासमें स्थिर जाव न रखे, यह सत्तरे गुण संयुक्त श्रीजि नागममें जाव आवक कहा है ॥ इति धर्मरत्नशास्त्रे कथितं ॥

ऐसें शुजजावना वासित प्रायुक्त दिनकृत्यादिमें रक्त "इणमेव निगंधं पवयणे अठे परमठे सेसे अणठे" ऐसी सिद्धांतोक्त रीतिसें वर्त्तमान सर्व व्यापारोंमें सर्वप्रयत्नसें वर्त्तता हुआ सर्वत्राऽप्रतिबद्ध चित्त करकें क्रमसें मोह जीतने समर्थ होके पुत्र, जाइ, जत्रीजादिकों यहचार सांपकें अण्णी शक्तिकों देखकें अर्हत चैत्यमें अछाइ महोत्सव करकें संघकी पूजा करकें दीन अनाथोंको यथाशक्ति दान देकें परिचित जनोंसें खामणां करकें सुदर्शन श्रेष्ठीवत् विधिसें सर्वविरति अंगीकार करे ॥ १४ ॥

१५ पंदरहवां द्वारमें जे कर दीक्षा लेनेकी शक्ति न होवे, तदा आरंभका त्याग करे, जे कर निर्वाह न होवे, तोत्री सर्व सच्चित्ताहाराविक कितनाक आरंभ वजे ॥ इति पंचदशं द्वारं ॥ १५ ॥

१६ शोलमे द्वारमें ब्रह्मचर्य, जावज्जीव तक अंगीकार करे, यथा शाहू पे थडनें बसीस वर्षकी अवस्थामें ब्रह्मचर्य धारण कीया ॥ इति पोकश द्वारं ॥

१७ सत्तरहवे द्वारमें प्रतिमादि तप विशेष करे, आदि शब्दसें संसार तारणादि तप करे, तहां इग्यारह प्रतिमाका स्वरूप इस तरें है, प्रथम राया जिउगेणादि ठे आगार रहित, तथा सतशठ बोल श्रद्धादि सहित सम्पद दर्शन जय लज्जादिसें अतिचार रहित त्रिकाल देवपूजादिमें तत्पर एक मास तक सम्यक्त्व पावे, यह प्रथम प्रतिमा, दूसरी दो मास तक अखंति पांच अणुव्रत पावे, सोत्री पीठली प्रतिमा सहित बर्त्ते, तीसरी तीन मास तक उजय काल अग्रमत्त-पूर्वोक्त दो प्रतिमा सहित सामायिक करे, चौथी

चार मास तक चार पर्वोंमें पूर्वखी तीन प्रतिमा सहित अखंडित परिपूर्ण पौषध करे, पांचमी पांच मास तक स्नान न करे, रात्रिकों चार आहार व जे, दिनमें ब्रह्मचर्य धरे, कठ बांधे नहीं, चार पर्वोंमें घरमें तथा चौकमें निः प्रकंप होकें सकलरात्रि कायोत्सर्ग करे, यह सर्व पूर्वखी प्रतिमा सहित करे. यह बात आगेजी सर्व प्रतिमामें जान लेनी. ठीी ठे मास तक ब्रह्म चारी होवे, सातमी सात मास तक सच्चित्त आहार व जे, आठमी आठ मास तक आप आरंज न करे, नवमी नव मास तक आरंज करावे नहीं, दशमी दश मास तक क्षुरमुंडित रहे अथवा अटप चोटी राखे, घरमें गडा हूआ धन होवे, जब घरके पूठे तब कहे जानता हूं, औ जो न गना होवे, तो कहे में नहीं जानता, शेष घरका कृत्य सर्व वजे, तिसके निमित्त जो घरमें आहार कथा होय, तोजी न खावे. इग्यारहवीं इग्यारां मास तक घरका संग त्यागे, लोच करे, वा क्षुरमुंडित होवे, रजोहरण पात्रे प्रमुख लेकें मुनिका वेपधारी हो कर स्वकुक्षमें जिह्वा लेवे, मुखसें ऐसा कहे कि “प्रतिमाप्रति पन्नाय श्रमणोपासकाय जिह्वां देहीति वचन कहे,” धर्मलाज शब्द न कहे, सर्वरीतिसें साधुकी तरें प्रवर्त्ते ॥ इति श्राद्धप्रतिमा सप्तदशद्वारम् ॥ १७ ॥

१७ अष्टारहवा द्वार, आराधनाका कहते हैं, आवक अंतकालमें आराधना जो आगे कहेंगे तो अरु संक्षेपनादिकों विधिसें करे. आवक जब सर्व धर्म कृत्यमें अशक्त हो जावे, तब मरण निकट जानकें अव्य अरु जावें दो प्रकारें संक्षेपना करे. तहां अव्यसंक्षेपना तो अनुक्रमसें आहार त्यागे, अरु जावसंक्षेपना सो क्रोधादि कपाय त्यागे, मरण निकट इन लक्षणों से जान लेवें, सो लक्षण कहते हैं. १ बूरे स्वप्न आवे, २ प्रकृति स्वभाव और तरंका होवे, ३ दुर्निमित्त मझे, ४ खोटे ग्रह आवे, ५ आत्माका आचरण फिर जावे, अथवा कोइ देवता कह जावे तो मरण निकट जान जावे, जो अव्य जावें संक्षेपणा न करे, अरु अनशन कर देवे, उसकों प्रायें दुर्ध्यान होनेसें कुगति होती है. इस वास्ते संक्षेपना अवश्य करे, पीठें आवकोंके धर्मके उद्यापन करने वास्ते संयम अंगीकार करे, क्यों कि एक दिनकीजी दीक्षा स्वर्गलोककी दाना है. जैसे नखराजाके चाड़े कुवेरके पुत्र सिंहकेसरी, पांच दिनकी दीक्षासें केवलज्ञान पाकें मोक्ष ग या, तथा हरिवाहन राजाने नव प्रहरका शेष आयु सुनकें दीक्षा लोनी.

सर्वार्थसिद्धि विमानमें गया, संयारा और दीक्षाके अवसरमें प्रजावनाशन यथाशक्ति धन खरचे, जैसे सात क्षेत्रोंमें ते अवसरमें घिरापड़ी संयति आज़ूने सात क्रोम धन खरच्या तथा जिसकों संयमका योग न होवे, सं संलेपना करकें शत्रुंजयादि तीर्थ सुस्थानमें जा कर निर्दोष स्थितिमें विधि सें चार आहार त्यागरूप अनशनकों आणंद कामदेवादि श्रावकोंवत् करे, तिस पीछें सर्वातिचारका परिहार चारशरणादि रूप आराधना करे.

आराधना दश प्रकारसैं होती है, सो कहते हैं. १ पहिलां सर्वाति-
आलोवे, २ व्रत उच्चारण करे, ३ सर्व जीवोंसैं क्षमावे, ४ अपणी
कों अछारह पापस्थानक करनेसैं व्युत्सर्जन करे, ५ चार सरणां लेवे,
गमनागमन दुःकृती गर्हणा करे, ६ जो किसीने जिनमंदिरादि धुं
रा होवे, तिसकी अनुमोदना करे, ७ शुचिजावना जावे, ८ अनशन
अर्थात् चार आहार तीन आहारका त्याग करे, १० पंच नमस्कारका
रण करे, ऐसी आराधना करणेंसैं जे कर तिस जवसैं मुक्ति न होवे, जे
जी सुदेव अथवा सुमनुष्यके आठ जव करकें तो अवश्यमेव मोक्ष
हो जावेगा ॥१०॥ इति अष्टादश द्वारं समाप्तम् ॥

इस गृहस्थके धर्म करनेसैं निरंतर गृहस्थ लोक इस लोक, परलोकमें
सुखकों प्राप्त होवे हैं. अरु परंपरासैं मोक्षकों प्राप्त होते हैं ॥ इति
श्राद्धविधि ग्रंथानुसार श्रावकस्य जन्मकृत्यं संपूर्णम् ॥

इति श्रीतपगुणीयमुनि श्रीमणिविजयगणि तछिप्य मुनिश्रीबुद्धि-
तछिप्य मुनिश्री मुक्तिविजयगणि तस्य विजयविरचिते जैनतत्त्वादशें गृहस्थधर्मनिरूपणनामा दशमः परिच्छेदः ॥

॥ इति श्री जैनतत्त्वादशें दशम
परिच्छेदः समाप्तः ॥

ते थे, जुगल जोड़ेजी गिणतीमें थोड़े थे, बाकी (शेष) बउगाय, पक्षी, पंखें
 जिय सर्व जातिके जीव थे, परंतु वो जड़क थे, कुड़क नहीं थे, शास्त्रिप्रमुख
 सबे अन्न तथा इहु प्रमुख चीजें सब जंगलोंमें खयमेवही उत्पन्न हो जाते
 थे, परंतु वो कुछ मनुष्योंके खानेमें नहीं आते थे, क्योंकि मनुष्य तो निः
 केवल फल फूलोंकाही आहार करते थे, वस्त्रकी जगें वृक्षोंके पत्ते वा त्रि
 व्यक उँडते थे, इत्यादि प्रथम आरेका स्वरूप, जंबूद्वीपप्रशस्ति प्रमुख शा
 स्त्रोंने जान डेना ॥ इति प्रथम आराका किंचित्स्वरूप कहा ॥ १ ॥

द्वितीया आरा, तीन कोडाकोनी सागरोपम प्रमाण, तिसरें दो गाऊ
 (कोश) देहना, दो पश्योपमायु, एक तो अष्टाष्ट पृष्ठ करंडक हान थे,
 शेष व्यवहार प्रथम आरावत् जाननां ॥ इति द्वितीया आरक ॥ २ ॥

तीसरा आरा, दो कोनाकोडी सागरोपम प्रमाण, एक गाऊ (कोश)
 देहना, एक पश्योपमायु, चौतठ पृष्ठ करंडकी पतलीयां, शेष व्यवहार
 प्रथम आरेवत् जाननां, इन सबे आरोंमें सर्ववस्तु कमलें घटती घटती ठे
 हंडे अगले आरेतुल्य रह जाती हैं, परंतु एक बारगी सर्ववस्तु नहीं घटती हैं

इत तीसरे आरेके ठेहंडे एक वंशमें सात कुञ्जर उत्पन्न हुए, कुञ्ज
 कर उत्तको कहते हैं कि जिनोंने तित तित काञ्चके मनुष्योंके वास्ते कहु
 क नयाँदा बांधी हैं, इनही सात कुञ्जरोकों लोकिकमें सत मनु कहते हैं,
 द्वितीये वंशोंके कुञ्जर गिनीये, तब श्रीरूपमदेवकों वर्जके चौदह कुञ्जर
 होता हैं, अरु रूपमनाथ पंदरहवा कुञ्जर होता हैं.

पूर्वोक्त सात कुञ्जरोकों नाम खिलते हैं. प्रथम विनयवाहन, द्वितीया
 चक्रपान, तीसरा यशस्वान, चौथा अजिबंज, पांचनां प्रभेष्टि, ठठा मरु
 देव, सातमा नाभि, इन सातोंकी चार्याका नाम कमलें कहते हैं, १ चंज
 यश, २ चंजकाता, ३ सुल्पा, ४ प्रतिरुपा, ५ चक्रुःकांता, ६ श्रीकांता, ७
 नरदेवी, ये सबे कुञ्जर. गंगा अरु सिंधु नदीके मध्यके खंनमें हुये हैं

यह कुञ्जर होनेका कारण कहते हैं. तीसरे आरेके उतरतां दश जा
 तिके कल्पवृक्ष, काञ्चके शेषमें थोड़े हो गये, तब युगलक लोकोंने अपने
 अपने वृक्षोंका नमस् कर लीया, पीठें जब द्वितीये युगलोंके रखे हुए
 वृक्षोंमें रुझ डेने लगे, तब नमस् बाजे युगल उनमें डेरा करने लगे,
 तब युगलक पुरुषोंकों अँता विचार आया कि कोइ अँता होवे, जो ह

मारे क्लेशका निवेग करे, तब तिन युगलियोंमेंसे एक युगलकों एक नके श्वेत हाथीनें देखकर प्रेमसे अपने स्कंध पर चढ़ा लीया जब वो युगल पुरुष एकला हाथी ऊपर चढ़कें फिरने लगा, तब और युगलोंने विचार किया कि यह युगल, हमसे बड़ा है, क्योंकि यह, हाथी ऊपर चढ़ा फिरता है, और हम तो पगोंसे चलते हैं, इस वास्ते इसकों न्यायाधीश बनाऊ. अर्थात् जो यह कहे, सो मानो, तब तिनोनें उसको न्यायाधीश बनाया. जिस कारनसे हाथीनें युगलकों अपने ऊपर चढ़ाया है, सो कारण, और इनोके पूर्वजवकी कथा आवश्यक सूत्र तथा प्रथमा नुयोगसे जान लेनी.

तब तिस विमलवाहननें सर्व युगलियोंको कल्पवृक्ष बांटके दे दीये कितनेक युगलीये अपने कल्पवृक्षोंसे संतोष न करके औरोंके कल्पवृक्षोंसे फल लेने लगे, तब उस वृक्षके मालक क्लेश करने लगे. पीछे तिस निःसंतोषी युगलीयेको पकड़के विमलवाहनके पास लाते हुए, तब विमलवाहननें उनको कहा कि हा तुमने यह क्या करा? तबसे विमलवाहनने ऐसी दंमनीति प्रवर्त्ताई, तिस हकार दंडनीतिसें फेर वे ऐसा काम नहीं करते थे. पीछे तिस विमलवाहनका पुत्र चक्षुष्मान् हुआ, अपने चापके पीछे वो राजा अर्थात् कुलकर बना, तिसके बखतमेंजी हाकारही दंड र हा, तिसके यशस्वान् नामा पुत्र हुआ, तिसके अजिचंद्र पुत्र हुआ, इन दोनोंके समयमें थोड़े अपराध वालेको हाकार दंड और बहुत टीढको मकार दंड जो यह काम मत करनां, ये दो दंडनीति हुई, तिसके पुत्र प्रश्रेणि हुआ, प्रश्रेणिके पुत्र मरुदेव हुआ, मरुदेवका पुत्र नाजि हुआ, ये तीनों कुलकरोंके समयमें हाकार, मकार और धिक्कार, ये तीन दंडनीति हो गई, तिसमें थोड़े, अपराधीको हाकार, और मध्यम अपराधीको मकार, तथा उत्कृष्ट अपराधीको धिक्कार दंड करते हुए, तिस नाजिकुल करके मरुदेवी नामा चार्या थी, यह नाजिकुलकर बहुलतासे इन्द्राकु जूमि अर्थात् विनता नगरीकी जूमिमें निवास करता था, यह जूमि, कस्मीर दे शके परे थी, क्योंकि विनता नगरीके चारों दिशामें चार पर्वत थे, तिसमें पूर्वदिशामें अष्टापद अर्थात् केलासगिरि थे, दक्षिणदिशामें महाशैल्य थे, पश्चिमदिशामें सुर शैल्य, तथा उत्तरदिशामें उव्याचल पर्वत होते.

तिस नाजिकुञ्जकरकी मरुदेवी नामक जायाकी कूलमें आषाढवदि चौथकी रात्रिकों सर्वार्थसिद्ध देवशोकसें च्यवके रूपजदेवका जीव, गर्भमें पुत्रपणे उत्पन्न हुआ, मरुदेवीने चौदह स्वप्न देखे, इंद्रमहाराजने स्वप्न फल कहा, चैत्रवदि अष्टमीको रूपजदेवजीका जन्म हुआ, ठप्पनदिगुरु मारी और चौशठ इंद्रने मित्रके जन्ममहोत्सव करा, मरुदेवीने चौदह स्वप्नकी आदिमें बेलका स्वप्न देखा था तथा पुत्रके दोनो साथियोंमें बेल का चिन्ह था, इस बातसे पुत्रका नाम रूपज दीया.

बास अवस्थामें श्रीरूपजदेवको जब जूल लगती थी, तब अपने हाथका अंगूठा मुलमें डेकें चूस डेते थे, उस अंगूठेमें इंद्रने अमृत से चार कर दीया था, जब रूपजदेवजी बड़े हुए, तब देवता उनको कल्प वृक्षोंके फल द्या कर देते थे, वे फल खा डेते थे, जब रूपजदेव कूठ न्यून एकवर्षके हुए, तब इंद्र आया, हाथमें इक्षुदंड द्याया, क्योंकि रीते हाथसें खानीके समीप न जाना चाहिये, इस बातसे इक्षुदंड द्याया, उस वखतमें श्रीरूपज देवजी नाजिकुञ्जकरकी गोदीमें बैठे थे, तब रूपज देवकी दृष्टि, इक्षुदंड उपर पनी, तब इंद्रने कहा के, हे जगवन् ! इक्षु अक्षु अर्थात् इक्षु चक्षण करोगे ? तब रूपजदेवजीने हाथ पतात्या, तब इंद्रने रूपजदेवजीका इक्ष्वाकुवंश स्थापन करा, तथा श्रीरूपजदेवजीके वंशवालोंमें काशकार पीया, इस बातसे गोत्रका नाम काश्यप हुआ, श्री रूपजदेवजीके जिस जिस वयमें जो जो काम उचित था, सो सो शक्र (इंद्र) ने करा, यह अनादिते जो जो शक्र (इंद्र) होते हैं, तिनका जीत कल्प है, जो प्रथम जगवान्के वयोचित सर्वकाम करने.

इस अवतरमें एक लनकी लनका बहिन और जाइ बासावस्थामें तानवृक्षके द्वे खेडते थे, उहां तानके फल गिरनेसे लनका भर गया, तब लनकीको नाजिकुञ्जकरने यह रूपजदेवजीकी जाया होवेगी ? ऐसा विचार करके अपने पात रख डीनी, तिसका नाम सुनंदा था, और दूसरी जो रूपजदेवजीके साथ जन्मी थी, तिसका नाम सुनंगडा था, इन दोनोंके साथ रूपजदेव बासावस्थामें खेडते हुए यौवनके प्राप्त हुए, तब इंद्रने विवाहका प्रारंभ करा, धागे युगलके समयमें विवाहविधि नहीं थी, इस बातसे यह विवाहमें पुरुषके कृत्य तो सर्व इंद्रने करे

और स्त्रीयोंकी तर्फसे सर्वकृत्य इंद्राणीयोंने करे, तहांसे विवाहविधि गतमें प्रचलित हुआ, तब श्रीरूपजदेव दोनों जायोंके साथ सांसारिक पयसुख जोगता, जब ठे लाख पूर्वे वर्षे व्यतीत हुए, तब सुमंगला णीके जगत और ब्राह्मी यह युगल जन्मे, तथा सुनंदाके बाहुवली शं सुंदरी यह युगल जन्मे, पीछेसे सुनंदाके तो और कोइ पुत्र पुत्री न जन्मे, परंतु सुमंगला देवीके उणपंचास (४९) अर्थात् एक कम पंचा जोडे पुत्रोंहीके जन्मे. यह सब मिला कर सो पुत्र और दो पुत्रीयों, १ रूपजदेवके अपत्य अर्थात् पुत्र पुत्री हुए हैं.

तिन सो पुत्रके नाम लिखते हैं. १ जगत, २ बाहुवली, ३ श्रीमत्तर ४ श्रीपुत्रांगारक, ५ श्रीमल्लिदेव, ६ अंगज्योति, ७ मलयदेव, ८ जार्ग ताथं, ९ वंगदेव, १० वसुदेव, ११ मगधनाथ, १२ मानवर्त्तिक, १३ मा युक्ति, १४ वेदार्जदेव, १५ वनवासनाथ, १६ महीपक, १७ धर्मराष्ट्र, १८ म पकदेव, १९ आत्मक, २० दंरुक, २१ कर्त्तिका, २२ ईपकदेव, २३ पुरुषदेव २४ अकल, २५ जोगदेव, २६ वीर्यजोग, २७ गणनाथ, २८ तीर्णनाथ, २९ अंबुदपति, ३० आयुर्वीर्य, ३१ नायक, ३२ काक्षिक, ३३ आनर्त्तिक, ३४ स रिक्, ३५ मृदपति, ३६ करदेव, ३७ कठनाथ, ३८ सुराष्ट्र, ३९ नर्मद, ४० सारस्वत, ४१ तापसदेव, ४२ कुरु, ४३ जंगल, ४४ पंचाल, ४५ शूरसेन, ४६ पुट, ४७ काखंगदेव, ४८ कार्शिकुमार, ४९ कौशढ्य, ५० नडकाश, ५१ विकाशक, ५२ त्रिगर्त्त, ५३ आवर्ष, ५४ साक्षु, ५५ मत्स्यदेव, ५६ कुक्षि पक, ५७ सुपकदेव, ५८ बाह्वीक, ५९ कांबोज, ६० मधुनाथ, ६१ सांड क, ६२ आग्नेय, ६३ यवन, ६४ आनीर, ६५ वानदेव, ६६ वानस, ६७ केय, ६८ मिथु, ६९ सौवीर, ७० गंधार, ७१ काष्ठदेव, ७२ तोपक, ७३ शौ रक, ७४ नारदाज, ७५ शूरदेव, ७६ प्रस्थान, ७७ कर्णक, ७८ त्रिपुरनाथ, ७९ अवंतिनाथ, ८० चेदिपति, ८१ विष्कंठ, ८२ नैपथ, ८३ दशार्णनाथ, ८४ कुसुमवर्ण, ८५ जूपाखदेव, ८६ पासग्रनु, ८७ कुशख, ८८ पय, ८९ म हास्य, ९० विनिज, ९१ विकेश, ९२ वेदेष्ट, ९३ कन्नपति, ९४ नडदेव, ९५ वज्रदेव, ९६ सांडनड, ९७ सेतज, ९८ वत्सनाथ, ९९ अंगदेव, १०० नरोत्तम, यह रूपज देवके सो पुत्रोंका नाम जाननां.

इम अवसरमें जीवोंके कथायां प्रवस हो जानेसे पूर्वोक्त द्दकारादि तीनों

दंडका लोक जय नहीं करने लगे, इस अवसरमें लोकोने सर्वसं अधिक ज्ञानवानादि गुणों करके संयुक्त श्रीरूपजदेवकों जानके युगलक लोक, श्रीरूपजदेवकों कहते हुए कि, अबके सब लोक दंडका जय नहीं करते हैं? श्रीरूपजदेवजी गर्भमेंजी मति, श्रुत, अरु अवधि, यह तीन ज्ञानों करके संयुक्त थे, यह श्रीरूपजदेवजीके पूर्वजोंका वृत्तांत आवश्यक तथा प्रथमानुयोगसें जान लेनां, तब श्रीरूपजदेव वो युगलक पुरुषोंकों कहते जये कि, जो राजा होता है, सो दंड करता है, और राजा जो होता है, सो मंत्री कोटवालादि सेना संयुक्त होता है, अरु कृताजिपेक होता है, फेर उसकी आज्ञा अनतिक्रमणीय होती है, ऐसा वचन सुनकर, वे मिथुनक बोले कि ऐसा राजा हमाराजी हो जावे? तब रूपजदेवजी वो ले, जो तुमारी मनसा ऐसी है, तो नाजिकुलकरसें याचना करो, पीठें ति नोनें नाजिकुलकरसें विनति करी, तब नाजिकुलकरने कहा, जाउं रूपजदेवजी तुमारा राजा हुआ, तब वे मिथुनक, रूपजदेवकों राज्याजिपेक करने वात्ते पद्मिनी सरोवरमें गये, इस अवसरमें इंद्रका आसन कंभमान हुआ, तब अवधिज्ञानसें राज्याजिपेकका अवसर जानके यहां आकर श्रीरूपजदेवकों राज्याजिपेक करा. मुकुटादि सर्व अलंकार जो कुछ राजाके योग्य थे, सो पहिराये, इस अवसरमें मिथुनक लोक पद्मसरोवरसें नखिनीकमलोंमें पाणी ल्याये, उनोने आ कर जब श्रीरूपजदेवजीकों अलंकृत देखा, तब सज्जनोने चरणों उपर जल गेर दीया, तब इंद्रने मनमें चिंता करी कि ये बडे विनीत पुरुष हैं, ऐसा जान कर वैश्रमणकों आज्ञा दीनी कि, इन विनीतोंके रहने वात्ते विनीता नामा नगरी बसाउं, तब विनीता नगरी वैश्रमणनें बसाइ, इसका स्वरूप, शत्रुंजयमहात्म्यसें जान लेनां.

अथ संग्रहके वात्ते हाथी, घोडे, गौ प्रमुख श्रीरूपजदेवके राज्यमें वनोंसें पकडे गये, तब श्रीरूपजदेवने चार प्रकारका संग्रह करा १ उद्या, २ जोगा, ३ राजन्या, ४ कृत्रिया, उसमें जिनकों कोटवालादी पद्मिनी दीनी, सो दंडके करनेसें उग्रवंश कहलाया, तथा जिनकों श्रीरूपजदेवजी ने गुरु अर्थात् उंचे बडे करके माने, तिनोंका जोगवंश कहलाया, तथा जो श्रीरूपजदेवजीके मित्र थे उनोका राजन्यवंश जान रखा गया, तथा शेष जो रहे, तिनका कृत्रिवंश हुआ.

अथ आहारकी विधि कहते हैं, जब कल्पवृक्षांके फलोंका अन्न हुआ, तब पकाहारका खाना किस तरेंसें हुआ? सो लिखते हैं. कालके प्रजावसें कल्पवृक्ष फल देनेसें रह गये, तब लोक, और वृक्षांके कंद मूल, पत्र, फूल, फल, खाने लगे, केष्क इक्षुका रस पीने लगे, तथा सत्तरे जातका कच्चा अन्न खाने लगे, परंतु कितनेक दिनो पीठें कच्चा अन्न उनकों जीष न होनेसें रुपजदेवजीने उनकों कहा कि, तुम हाथोंसें मसलकें तूतडा डूर करकें खाउं. फेर कितनेक दिनो पीठें बेसेजी पाचन न होने लगा, तो फेर दूसरी तरें कच्चा अन्न खानेकी विधि बताइ, औसें बहुत तरेंसें कच्चा अन्न खानेकी विधि बताइ, तोजी कालदोपसें अन्न पाचन न होने लगा, इस अवसरमें जंगलोंमें वांसादिके घसनेसें अग्नि उत्पन्न हुआ.

प्रश्न:—तुम कहते हो कि रुपजदेवजीकों जातिस्मरण और अवधि ज्ञान था, तो फेर रुपजदेवजीने प्रथमसेंही अग्नि बनाना उस अग्निसें अन्न रांधके खानां क्युं न बतलाया?

उत्तर:—हे जग्य! एकांत स्निग्ध कालमें और एकांत रुक्षकालमें अग्नि किसी वस्तुसेंजी उत्पन्न नहीं हो सकि, कदाचित् कोइ देवता विदेहक्षेत्रसें अग्निकों लेजी आवे, तोजी यहां तत्काल बूज जाती थी, इस वास्ते अग्निसें पकाकें खानेका उपदेश नहीं दीया, पीठें तिस अग्निकों तृणादि दाह करता देखके अपूर्व रत्न जानकें पकननें लगे, जब हाथ जले, तब डर खा कर दौडकें श्रीरुपजदेवजीसें सर्व वृत्तांत कहा, तब श्रीरुपजदेवने अग्नि ले खानेकी विधि बताइ, तिस विधिसें अग्नि घरमें ले आवे, तब हस्ती उपर बैठे हुये रुपजदेवने हाथीके शिर उपरही मिट्टिका एक कुंभासा बनाकर उनांके पास अग्निसें पकाकर उसमें अन्न रांध कर खानां बतलाया, पीठें जिसके हाथसें वो कुंडा पकनाया वो कुंजार नामसें प्रसिद्ध हुआ, इसी वास्ते कुंजारकों प्रजापति पर्यापति कहते हैं, फेर तो शनैःशनैः सर्वतरेंका आहार पकाकें खानेकी विधि प्रवृत्त हो गइ, सर्वविधि श्रीरुपजदेवजीनेही बताइ है.

अथ शिल्पद्वार कहते हैं. श्रीरुपजदेवजीके उपदेशसें पांच मूल शिल्प अर्थात् कारीगर बने, तिसका नाम लिखते हैं. १ कुंजकार, २ लोहकार, ३ चित्रकार, ४ वस्त्र बुनने वाले, ५ नापित अर्थात् नाइ, ये पांच शिल्प

बने. यह एकेक शिल्पके अन्तर जेद वीश वीश हैं, इस वास्ते सर्व मिलकर एक सौ शिल्प उत्पन्न हुए.

अथ कर्मछार लिखते हैं. कर्मछारमें १ खेती करणी, वाणिज्य करणां, धनका ममत्व करणां, इत्यादि कर्म बताये. प्रथम महीके संचयोंमें जरकें, अहरण, हथोरी प्रमुख बनाये, पीछें उनसें सर्व वस्तु काम लायक बनाइ गइ.

तथा जरतादि पर्यालोकोंको वृहत्तर कला सिखलाइ, तथा स्त्रीयोंको चौशष्ठ कला सिखलाइ. इन सजोंका नाम मात्र ऐसें हैं:— १ लिखनेकी कला, २ पढ़नेकी कला, ३ गणितकला, ४ गीतकला, ५ नृत्यकला, ६ ताल वजानां, ७ पटह वजानां, ८ मृदंग वजानां, ९ वीणा वजानां, १० वंशपरीक्षा, ११ जेरीपरीक्षा, १२ गजशिक्षा, १३ तुरंगशिक्षा, १४ धातु वाद, १५ दृष्टिवाद, १६ मंत्रवाद, १७ वलिपलितविनाश, १८ रत्नपरीक्षा, १९ नारीपरीक्षा, २० नरपरीक्षा, २१ ठंदबंधन, २२ तर्कजटपन, २३ नीतिविचार, २४ तत्त्वविचार, २५ कविशक्ति, २६ ज्योतिषशास्त्रका ज्ञान, २७ वैद्यक, २८ पट्टजापा, २९ योगाज्यास, ३० रसायणविधि, ३१ अंजनविधि, ३२ अछारह प्रकारकी लिपि, ३३ स्वप्नलक्षण, ३४ इंद्र जालदर्शन, ३५ खेती करणी, ३६ वाणिज्य करणां, ३७ राजाकी सेवा, ३८ शकुनविचार, ३९ वायुस्तंजन, ४० अग्निस्तंजन, ४१ मेघवृष्टि, ४२ विलेपनविधि, ४३ मर्दनविधि, ४४ ऊर्ध्वगमन, ४५ घटबंधन, ४६ घट त्रमन, ४७ पत्रछेदन, ४८ मर्मछेदन, ४९ फलाकर्पण, ५० जलाकर्पण, ५१ लोकाचार, ५२ लोकरंजन, ५३ अरुलवृक्षोंको सफल करणा, ५४ खड्गबंधन, ५५ तुरी बंधन, ५६ मुद्राविधि, ५७ लोहज्ञान, ५८ दांत स मारणे, ५९ काललक्षण, ६० चित्रकरण, ६१ बाहुयुद्ध, ६२ मुष्टियुद्ध, ६३ दंनयुद्ध, ६४ दृष्टियुद्ध, ६५ खड्गयुद्ध, ६६ वागयुद्ध, ६७ गारुड विद्या, ६८ सर्पदमन, ६९ जूतमर्दन, ७० योग सो अव्यानुयोग, अक्षरानुयोग, व्याकरण, औपधानुयोग, ७१ वर्षज्ञान, ७२ नाममात्रा. यह पुरुषोंको वृत्तर कला सिखलाइ, तिसका नाम कहा.

अथ स्त्रीयोंको चौशष्ठ कला सिखलाइ, तिसका नाम कहते हैं, १ नृत्य कला, २ ओचित्यकला, ३ चित्रकला, ४ वादित्र, ५ मंत्र, ६ तंत्र, ७ ज्ञान,

८ विज्ञान, ९ दंरु, १० जलस्तंज, ११ गीतगान, १२ तालमान, १३ मेघवृष्टि, १४ फलवृष्टि, १५ आरामारोपण, १६ आकार गोपन, १७ धर्मविचार, १८ शकुनविचार, १९ क्रियाकल्पन, २० संस्कृतजल्पन, २१ प्रसादनीति, २२ धर्मनीति, २३ वर्णिकावृद्धि, २४ स्वर्णसिद्धि, २५ तैलसुरजीकरण, २६ लीलासंचरण, २७ गजतुरंगपरीक्षा, २८ स्त्री पुरुषके लक्षण, २९ कामक्रिया, ३० अष्टादश लिपि परिच्छेद, ३१ तत्कालवृद्धि, ३२ वस्तुशुद्धि, ३३ वैद्यकक्रिया, ३४ सुवर्ण रत्नजेद, ३५ घटत्रय, ३६ सारपरिश्रम, ३७ अंज नयोग, ३८ चूर्णयोग, ३९ हस्तलाघव, ४० वचनपाठव, ४१ ज्ञेयविधि, ४२ वाणिज्यविधि, ४३ काव्यशक्ति, ४४ व्याकरण, ४५ शास्त्रिखंजन, ४६ मुखमंडन, ४७ कथाकथन, ४८ कुसुमगुंथन. ४९ वरवेप, ५० सकलज्ञापविशेष, ५१ अजिधानपरिज्ञान, ५२ आभरण पहनने, ५३ नृत्योपचार, ५४ गृह्याचार, ५५ शास्त्र्यकरण, ५६ परनिराकरण, ५७ धान्यरंधन, ५८ केशबंधन, ५९ वीणादि नाद, ६० वितंडावाद, ६१ अंकविचार, ६२ लोकव्यवहार, ६३ अत्याहारिका, ६४ प्रश्नप्रहेलिका यह स्त्रीकी चौशठ कला कही.

अबकी सर्व सांसारिक कला पूर्वोक्त कलाओंका प्रकरभूत है, इस वास्ते सर्व कला इनहीके अंतर्गत हैं, जैसे प्रथम लिपि कलाके अष्टारह जेद दक्षिण हाथसे ब्राह्मीपुत्रीको सिखाइ, तिसके नाम कहते हैं १ हंसलिपि, २ चूतलिपि, ३ यक्षलिपि, ४ राक्षसलिपि, ५ यावनी लिपि, ६ तुरकीलिपि, ७ कीरीलिपि, ८ डावडीलिपि, ९ संधवीलिपि, १० माखवी लिपि, ११ नडीलिपि, १२ नागरीलिपि, १३ लाटीलिपि, १४ पारसीलिपि, १५ अनिमित्तीलिपि, १६ चाणकीलिपि, १७ मूलदेवी, १८ उड़ीलिपि, यह अष्टारह प्रकारकी ब्राह्मीलिपि, देशविशेषके जेदसे अनेक तरेकी हों गइ, जैसेकी १ लाटी, २ चौमी, ३ डाहली, ४ कानमी, ५ गोजरी, ६ सारठी, ७ मरहठी, ८ कोंकणी, ९ खुरासाणी, १० मागधी, ११ सिंधवी, १२ हामी, १३, कीरी, १४ हम्मीरी, १५ परतीरी, १६ मसी, १७ माखवी, १८ महायोधी, इत्यादि लिपि सिखाइ, तथा सुंदरी पुत्रिकों वाम हाथसे अंकविद्या सिखाइ, जो जगत्में प्रचलित कला है, जिनसे अनेक कार्य सिद्ध होते हैं, वे सर्व श्रीरूपजदेवने प्रवर्त्ताइ हैं. तिसमें कितनीक कला कइ बार बुझ हो जाती हैं, फिर सामग्री पाकर प्रगटनी हो जाती हैं, परंतु

नवीन विद्या वा कला कोइसी नहीं उत्पन्न होती है, जो कलाव्यवहार, श्रीरूपजदेवजीनें चलाया है, वो सर्व आवश्यक सुत्रमें देख लेनां.

ब्राह्मी जो जरतके साथ जन्मी थी, तिसका विवाह बाहुवलीके साथ कर दीया, और बाहुवलीके साथ जो सुंदरी पुत्री जन्मी थी तिसका विवाह जरतके साथ कर दीया, तबसें माता पिताकी दीनी कन्याका व्यवहार प्रचलित हुआ.

श्रीरूपजदेवजीनें युगल अर्थात् एक उदरके उत्पन्न हुए वहिन जाइका विवाह पूर कीया, श्रीरूपजदेवकों देखके लोकजी इत्ती तरे विवाह करने लगे, श्रीरूपजदेवने बहुत काल तांइ राज्य करा, प्रजाके वास्ते सर्वतरेके सुख उत्पन्न हुए, इत हेतुसें श्रीरूपजदेवकों जैनीलोक, जगत् का कर्ता मानते हैं, दूसरे मतवाले जो ईश्वरकी करी छट्टि कहते हैं, वे जी ईश्वर, आदीश्वर, जगदीश्वर, योगीश्वर, जगत्का कर्ता ब्रह्मा आदि विष्णु आदि योगी आदि जगवान् आदि अर्हंत आदि, तीर्थंकर, प्रथम बुद्ध, सर्वसें बना, इत्यादि जो नाम, और महिमा गाते हैं, वे सर्व श्रीरूपजदेवजीकेही गुणानुवाद हैं, और कोइ छट्टिका कर्ता नहीं है.

मूर्ख और अज्ञानीयोंने स्वकपोलकल्पित शास्त्रोंमें ईश्वरविषयमें मन नानी कल्पना कर लीनी है, उस कल्पनाकों बहुत जीव आज तांइ सबी मानते चले आये हैं, क्योंकि सर्वमत जैनके बिना ब्राह्मणोंनेही प्रायः चलाये हैं, इत वास्ते ब्राह्मणोंही मतोंके विश्वकर्मा हैं, अरु लौकिक शास्त्रोंमें जो कुछ हैं, तो ब्राह्मणोंहीके वास्ते हैं. ब्राह्मणजी लौकिक शास्त्रोंमें तार दीये, क्योंकि शास्त्र बनाने वालोंके संतानादि, खूब खाते, पीते, और था नंद करते हैं, इन ब्राह्मणोंकी तथा वेदोंकी उत्पत्ति जैसें आवश्यक आदिक शास्त्रोंमें मिली है, तैसें जन्म जीवोंके जानने वास्ते यहां मेंजी सीखुंगा.

निदान सर्व जगत्का व्यवहार चला कर, जरत पुत्रकों विनीता नगरीका राज्य दीया, अरु बाहुवली पुत्रकों तक्षिलाका राज्य दीया, शेष पुत्रोंको और और देशोंका राज्य दीया. उनही पुत्रोंके नामसें बहुत देशोंका नामजी तैसाही पड़ गया, जैसें थंगदेश, बंगदेश, मगधदेश, इत्यादि नाम देशोंकाजी पुत्रोंके नामसें पड़ गया.

० विज्ञान, १० वृद्ध, १० जलस्तंज, ११ गीतगान, १२ ताडमान, १३ फलवृष्टि, १४ आरामारोपण, १५ आकार गोपन, १६ शकुनविचार, १७ क्रियाकल्पन, २० संस्कृतजल्पन, २१ प्रसादनीति, २२ धर्मेनीति, २३ वर्णिकावृद्धि, २४ स्वर्णसिद्धि, २५ तैलसुरजीकरण, २६ लीलासंचरण, २७ गजतुरंगपरीक्षा, २८ स्त्री पुरुषके लक्षण, २९ कालिया, ३० अष्टादश लिपि परिच्छेद, ३१ तत्कालवृद्धि, ३२ वस्तुशुद्धि, ३३ वैद्यकक्रिया, ३४ सुवर्ण रत्नजेव, ३५ घटप्रम, ३६ सारपरिभ्रम, ३७ नयोग, ३८ चूर्णयोग, ३९ हस्तसाधव, ४० वचनपाटव, ४१ पाणिग्रहविधि, ४२ काव्यशक्ति, ४३ व्याकरण, ४४ शास्त्रिकर्म, ४५ समंडन, ४६ कथाकथन, ४७ कुसुमगुंथन, ४८ वरवेष, ४९ शेष, ५० अग्निधानपरिज्ञान, ५१ आचरण पहनने, ५२ नृत्योपदेशाचार, ५३ शाब्दिककरण, ५४ परनिराकरण, ५५ धान्यरंधन, ५६ धीणादि नाव, ५७ वितंडायाव, ५८ अंकविचार, ५९ अंत्याहारिका, ६० प्रश्नप्रदेक्षिका यह स्त्रीकी

अथकी सवे सांसारिक कला पूर्वोक्त कलाओं में सवे कला इनहीके अंतर्गत हैं, जैसे प्र-
 नेद दक्षिण हाथसे ब्राह्मीपुत्रीको सिखाइ
 सखिपि, २ नूनखिपि, ३ यक्षखिपि, ४ रा-
 नुरकीखिपि, ५ कीरीखिपि, ६ डावडीखि-
 खिपि, ११ नडीखिपि, १२ नागरीखि-
 १५ अग्निमिर्नाखिपि, १६ चाणकीदि
 ह अन्नाद् प्रकारकी ब्राह्मीखिपि,
 गइ, जेमेंकी १ खाली, २ चोली, ३
 रती, ४ मरहरी, ५ कोंकणी, ६
 १२ हानी, १३, कीरी, १४ हम्मारी, १५
 १७ महायोधी, इत्यादि खिपि सिखाइ,
 अंकविद्या सिखाइ, जो जगत्में प्रचलित
 निह दोते हैं, वे सब श्रीरूपदेवने प्र-
 २३ बार बुझ हो जानी हैं, फिर सामग्री पा कर प्र-

गोकें ऊपर धर्मचक्रतीर्थ स्थापन कराये, वो धर्मचक्र तीर्थ, विक्रमराजा तक तो रहा, पीठें जब पश्चिमदेशमें, नवे मतमतांतर खड़े हुए, तबसे वो तीर्थ नष्ट हो गया।

तद्वपीठें श्रीरूपजदेवजी बाढहीक, जोनक, अम्व, इत्याक, सुवर्णभूमि, पल्लवकादि देशोंमें विचरने लगे। तहां जिनोंने श्रीरूपजदेवजीका दर्शन करा वो तो सब जड़क खजाव बाखे हो गये, अरु शेष जो रहा, वो सब म्लेच्छ, निर्दयी अनार्य हो गये, अनेक कटपानाके मत मानने लगे, उनका व्यवहार और तरंका बन गया।

जब श्रीरूपजदेवकों एक हजार वर्षे व्यतीत हुए तब विहार करके विनीतानगरीके पुरिमताल नामा वागमें आये, तब वन वृद्धके हेठ, फागुन वदि एकादशीके दिन तीन दिनके उपवासी थे, तहां पहिले प्रहरमें केवलज्ञान अर्थात् चूत, जविष्यत् वर्तमानमें सर्व पदार्थोंके जानने देखने वाला आत्मस्वरूप रूप केवलज्ञान प्रगट हुआ, तब चौशठ इंद्र आए, देवताओंने सम वसरण बनाया, तीन गढ वारों दरवाजे इत्यादि समवसरणकी रचना करी, एकैक दिशामें तीन तीन दरवाजे बनाये, मध्यजागमें मणिपीठिका अर्थात् चौतरा बनाया, तिसके मध्यजागमें अशोकवृद्ध रचा, तिसके हेठ दरवाजोंके सन्मुख चारों दिशोंमें चार सिंहासन रचे, तिसमें पूर्वके सिंहासन ऊपर श्रीरूपजदेव अर्हत विराजमान हुए, अरु शेष तीनों सिंहासनो ऊपर श्रीरूपजदेव सरीखे तीन वीं स्थापन करे, तब जिस दरवाजेसे कोई आवे, वो तिस पात्तेही श्रीरूपजदेवजीकों दीखते थे, इसी वास्ते जगत्में चार मुख वाला श्रीजगवान् रूपजदेवजी ब्रह्माके नामसे प्रसिद्ध हुआ, धनंजयकोशमें श्रीरूपजदेवजीका नाम ब्रह्मा लिखा है।

जब श्रीरूपज देवजीकों केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, तब जरत राजा श्रीरूपजदेवजीकों केवली सुन कर सकल परिवार संयुक्त समवसरणमें वंदना करनेकों अरु उपदेश सुननेकों आया, उहां श्रीरूपजदेवजीका उपदेश सुन कर जरत राजाके पांच सौ पुत्र अरु सात सौ पोते तथा ब्राह्मी रूपजदेवजीकी बेटी औरजी अनेक स्त्रियोंने दीक्षा लीनी, मरुदेवीजी तो जगवान्के ठाढ़ादि देखके तथा बानी सुनके केवली हो कर मोक्ष हो गइ, तथा जरतके बड़े पुत्रका नाम रूपजत्तेन पुंनरीक था, वो सौरवदेशमें

शत्रुंजय तीर्थे ऊपर देह त्यागकर मोक्ष गया, इस वास्ते शत्रुंजयका नाम
जुंरुसीकगिरि रक्ता गया.

चरतके पांच सौ पुत्रोंने जो वीक्षा लीनी थी, तिनमें एकका नाम प
रीची था. जो मरीचीने जैन वीक्षाका पासनां कठिन जान कर थार
आजीविताके चक्षाने वास्ते नरीन मनःकषिपत उपाय लडा कीरा,
इसके उसने वृद्धास करनेमें तो पत्नी लीनता जाणी, तब एक कुत्रि
पनाना गाहा, सो इसी रीतिसे बनाया कि साधु तो मगरुण, वचन
अथ काय रंग, इन तीनों वंशोंसे रहित है, थोर में तो इन तीनों से
हरके मंगुल है, इस वास्ते मुक्तकों मित्ररत्ननां चाहियें. दूसरा साधु तो प्रज
अथ नाव करके मुक्ति है, सो सोच करते हैं, अरु में तो प्रज मुक्ति
है, इस वास्ते मुक्त उसारे पात्रोंमें मस्तक मुक्तानां चाहियें, शिखा
रगनी चाहिये, तीसरा साधु तो पांच महायन पावते हैं, अरु मेरे स
मरा श्रुत जीवही विसाहा त्याग रहा. आथा साधु तो निःकपन है, अ
पांच परिग्रह रहित है, अरु मुक्तकों एक पवित्रहादि रखनी चाहिये. पा
गमा साधु तो जीवने सुगंधित है, अरु में ऐसा नहीं है, इस वास्ते मुक्त
पदनादि सुगंधी धनी जीव है, वृद्धा साधु तो मोक्ष रहित है, अरु में
माद संयुक्त है, इस वास्ते मुक्त मोक्षरहितकों वृत्ती रखनी चाहिये, सा
नमा साधु जने रहित है, मुक्तकों पगोंमें कृत्त उपानह (जुनी) प्रयु
चाहिये, व्यग्रमा साधु तो नीमेत है, इस वास्ते जनेत मुक्तावर पावे
अरु में तो काय, मान, माया अरु ध्यान, इन आगे कपायां हरके मेरा
है, इस वास्ते मुक्त काय अथ अर्थसि गेहके रंग (तमरे) वस्त्र रंग
चाहिये, नानमा साधु तो मथिन जयके त्यागी है, इस वास्ते में जने
मथिन वापी रीतना, आनवी दनमा, इस वास्ते मयूतमृगासारालिनी नि
रुक्त है, इस वास्ते नरीनीने नरना, पत्नी आजीविताह पान
विच कतावा पवित्रावही है.

नरीनी ने
र देवदे को
अरु अरु
मदे मन

जी विना
नरीनी
नरीनी

मादुखीने विना
अरु देवदे को
अरु अरु
मदे मन

धुओंकों दे देता था. एकदा समय मरीची मांदा (रोग ग्रस्त) हुआ, तब विचार किया कि मैं तो असंयती हूँ, इस वास्ते साधु भैरी वैयावृत्त नहीं करते हैं, अरु मुझे करानीजी युक्त नहीं है, तो कोइ चेलाजी मुझे वैयावृत्त वास्ते करना चाहियें, तिस कालमें श्रीरूपनदेवजी निर्वाण हो गये थे, पीठें एक कपिलनामक राजाका पुत्र था, सो मरीचीके पास धर्म सुननेकों आया, तब मरीचीने उसकों यथार्थ साधुका लिंग आचार कहा, तब कपिलने कहा तो तेरा लिंग विलक्षण क्यों कर है? तब मरीचीने कहा कि मैं साधु पणा पालने समर्थ नहीं हूँ, इस वास्ते मैं यह लिंग निर्वाहके वास्ते स्वकपोलकल्पित बनाया है, तब कपिलने कहा कि मुझे श्रीरूपनदेवके साधुओंका धर्म रचता नहीं है, तुम कहो. तेरे पासजी कुछ धर्म है, या नहीं है? तब मरीचीने जानां, यह जारीकर्मी जीव है, मैं राहू शिष्य होने योग्य है, इसलोकसे मरीचीने कह दीया कि वहांजी धर्म है, अरु मेरे पासजी कुछ धर्म है, यह सुन कर कपिल मरीचिका शिष्य हो गया, यह कपिल मुनिकी उत्पत्ति है. उस वखत मरीचीके पास तथा कपिलके पास कोइजी पुस्तक नहीं था, निःकेवल जो कुछ आचार मरीचीने कपिलकों बता दीया. सोइ आचार कपिल करता रहा, मरीचीने उत्सूत्र जापण करनेसे एक कोटाकोटी सागरोपम लग संसारमें जन्ममरणकी वृद्धि करी, मरीचि तो काल कर गया. अरु पीठेंसे कपिल ग्रंथायें ज्ञान शून्य मरीचीकी बताइ हूइ रीति ऊपर चखता रहा, उस कपिलका आसुरीनाना शिष्य हुआ, कपिलने आसुरीकोंजी आचार मात्रही मार्ग बतसाया, कपिलने औरजी बहुत शिष्य बनाये, उनके प्रेममें तत्पर यका भरके ब्रह्मनामक पांचमे देवलोकेमें देवता हुआ, तब उत्पत्तिके अनंतर अवधिज्ञानसे देखा, कि मैंने क्या दानादि अनुष्ठान करा है? जिस्से मैं देवता हुआ हूँ, तब अवधिज्ञानसे ग्रंथज्ञानशून्य अपने आसुरी नाना शिष्योंको देखा, तब विचार करा कि मेरा शिष्य कुछ नहीं जानता? इसको कुछ तत्व उपदेश करूं? ऐसा विचार कर, कपिल देवता आकाशमें पंचवर्णके मंडपमें रहकर तत्वज्ञानका उपदेश करता गया कि अव्यक्तसे व्यक्त प्रगट होता है. तिस अवसरमें पट्टिनंत्र शान्त्र. आसुरीने बनाया. तिसमें ऐसा कथन करा कि, प्रकृतिसें महान् होता है, अरु महा

नसं अहंकार होता है, अहंकारसं गण पुरुष होता है, तिस शमेंसूं पंचतन्मात्रोंसं पांच जूत इत्यादि स्वरूप पूर्वे यही ग्रंथमें मतविषे लीख आये हैं, उहांसं जान लेनां. पीठें इनकी संप्रदायमें नामोख नामा आचार्य हुआ, तवसें इस मतका नाम सांख्यमत प्रसिद्ध हुआ, वास्तवमें सर्वपारिव्राजक संन्यासीयोंकें लिंग आचारादि धर्मका लख मरीचि हुआ, इन सांख्यमतका तत्त्व अवज्ञी जगवज्ञीता तथा जगवतादि ग्रंथोंमें तथा सांख्यमतके शास्त्रोंमें प्रचलित है, एक जैनमतके विनां सर्वमतोंकी जरू इस्सें समझनी चाहियें.

जब श्रीरूपजदेवजीकों केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था, उसीदिन जरत राजाकी आयुद्धशालामें चक्ररत्न उत्पन्न हुआ, तब जरतने जरत क्षेत्रमें उहाँ खंनूमें राज बनाया, अपनी आज्ञा मनाइ, इसी वास्ते इसका नाम जरत खंनू प्रसिद्ध हुआ.

जब जरतने अपने ठोटे जाइयोंकों आज्ञा मनाने वास्ते इत जेजा, तब तिनोंने विचार करा कि राज्य तो हमकों हमारा पिता दे गया है, तो फेर हम जरतकी आज्ञा क्यों कर माने? चलो पितासं कहे, जे कर अपना पिता श्रीरूपजदेवजी कहेंगे, कि तुम जरतकी आज्ञा मानो, तब तो हम आज्ञा मान लेंगे, जे कर हमारा पिता कहेगा खनो, तो हम लेंगे, ऐसा विचार करके कैलास पर्वतके ऊपर श्रीरूपजदेवजीके पास गये, तब रूपजदेवजीने उनके मनका अजिप्राय जान कर उनकों उपदेश करा, जो उपदेश करा था, सो श्रीसूत्रकृतांग सूत्रके दूसरे वैतालीय अध्ययनमें लिखा है, तब तो उपदेश सुन कर अछानवे (९७) पुत्रोंने दीक्षा ले लीनी, सर्व जगदे ठोर दीये, इस वार्त्तामें जरतकी अपकीर्ति हुई, तब जरत चक्रवर्त्ती पांच सौ गाडे पकान्नके लेकर समवसरणमें आया, और कहने लगा कि, मैं अपने जाइयोंकों जोजन कराउंगा, और मेरा अपराध क्षमा कराउंगा, तब श्रीरूपजदेवजीने कहा कि, ऐसा आहार साधुओंकों लेनां योग्य नहीं, तब जरत मनमें वना उदास हुआ, जरतने कहा अब मैं यह आहार, कित को देउं? तब शक (इंद्रने) कहा कि, जो तेरेसें गुणोंमें अधिक होवे, तिनकों यह जोजन देवो, तब जरतने मनमें विचार करा कि मेरेसें गुणाधिक तो आवक हैं, तब जरतने बहुत गुणवान् आवकोंकों वो जोजन

जिमाया, और उन श्रावकोंको जरतजीने कह दीया कि तुम सर्व मिश्र कर प्रतिदिन अर्थात् रोजकी रोज मेराही जोजन करा करो. खेति वाणिज्यादि कुछ काम मत करा करो, निःकेवल स्वाध्याय करनेमें तत्पर रहो, जोजन करके मेरे महिलोंके दरवाजे आगे निकट बैठके तुमने ऐसे कहना कि “जितो जवान् वर्द्धते जयं तस्मान्माह्न माह्नेति” तब वे श्रावक ऐसेही करते हुये, अरु जरत राजा तो जोगविवासोंमें मग्न रहता था, परंतु जब तिनका शब्द सुनता था, तब मनमें विचारता था, कि कितने मुझे जीता है? तब विचार करा कि क्रोध, मान, माया अरु लोभ, इन चार कषायोंने मुझे जीता है, तिनोसेही जयकी वृद्धि होती है, ऐसा विचार करनेसे जरतको बड़ा चारी वैराग्य उत्पन्न होता था, इस अवसरमें रसोइ जीनणे वाले श्रावक बहुत हो गये. जब रसोइदार रसोइ करने समर्थ न रहा, तब जरत महाराजको निवेदन करा कि, मैं नहीं जान सका, जो इनमें श्रावक कौन है, और कौन नहीं है? तब जरतने कहा तुम पूछके उनको जोजन दिया करो, तब रसोइ करनेवाले उनको पूछने लगे कि, तुम कौन हो? वे कहने लगे, हम श्रावक हैं. फेर तिनोको पूछा कि श्रावकोंके कितने व्रत हैं? तब तिनोने कहा हमारे पांच अणुव्रत हैं, अरु सात शिक्षा व्रत हैं, इस तरेसे जब जाना कि यह श्रावक ठीक है, तब उनको जरत महाराजके पास ब्याये, जरतने उनके शरीरमें काकणी रखसे तीन तीन रेखाका चिन्ह कर दीया, अरु ठेके नहिने अनुयोग परीक्षा करते रहे, वे सर्व श्रावक ब्राह्मणके नामसे प्रतिष्ठ हुये, क्योंकि जब जरत महाराजके दरवाजे आगे वे माह्न माह्न शब्द बार बार उच्चारन करते थे, तब लोक उनको माह्न कहने लग गया, जैनमतके शास्त्रोंमें प्राकृत जापामें अवन्ती ब्राह्मणोंको माह्न करके लिखा है. अरु जो संकृती ब्राह्मण शब्द है, वो प्राकृत व्याकरणमें वंजण और माह्णके स्वरूपसे सिद्ध होता है, श्रीअनुयोगद्वार सूत्रमें ब्राह्मणोंका नाम “बुद्धसावया” अर्थात् बड़े श्रावक ऐसा लिखा है यह सर्व ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति है, अरु सो ब्राह्मण अपने बेटोंको साधुओंको देते हुये; जिनोने प्रव्रजा न लीनी वे श्रावक व्रतधारी हुए. यह रीति तो जरतके राज्यमें रही.

पीठें जरतका वेटा आदित्ययश हुआ, अर्थात् सूर्ययश जिसके संतान वाले जरत क्षेत्रमें सूर्यवंशी कहे जाते हैं, अरु बाहुवलीका बड़ा पुत्र चंद्रयश था. तिसके संतानवाले चंद्रवंसी कहे जाते हैं. श्री रूपजदेवजीके कुरु नामा पुत्रके संतान सब कुरुवंशी कहे जाते हैं. जिनमें कौरव पांडव दूये हैं.

जब जरतका बड़ा बेटा सूर्ययश सिंहासन पर बैठा, तब तिसके पास का कणी रत्न नहीं था, क्योंकि काकणी रत्न, चक्रवर्त्तिके शिवाय और किसी पास नहीं होता है, इस वास्ते सूर्ययश राजानें ब्राह्मण श्रावकोंके गखमें सुवर्णमय यज्ञोपवीत करवा दीये जज्ञेज इतिज्ञापा तथा जोजन प्रमुख सर्व जरत महाराजकी तरें देता रहा, जब सूर्ययशका बेटा महायश गद्दी पर बैठा, तब तिसने रूपेके यज्ञोपवीत बनवा दीये, आगे तिनोकी संतानोंने पंचरंगे रेशमी पटसूत्र मय यज्ञोपवीत बनाते रहे, आगे सादे सूतके बनाये गये, यह यज्ञोपवीतकी उत्पत्ति है.

जरतके आठ पाट तक तो ब्राह्मणोंकी जक्ति जरतकी तरें करते रहे पीठें प्रजाजी ब्राह्मणोंको जोजन कराने लगे, तब सर्व जगे ब्राह्मणपूजनीक त मजे गये, आठमा तीर्थकर श्रीचंद्रप्रज स्वामीके बखत तक सर्व ब्राह्मण तधारी, जैनधर्मी श्रावक रहे, अरु श्रीचंद्रप्रज जगवान्के पीठें कितनाकि काख व्यतीत जये, इस जरत खंरुमें जैनमत अर्थात् चतुर्विधसंघ और सर्व शास्त्र विछेद हो गये, तब तिन ब्राह्मणाज्ञासोंको लोक पठने लगे कि धर्मका स्वरूप हमको बतलाउ, तब तिनोने जो मनमें माना, और थ पणा जिसमें खान देखा सो धर्म बतलाया, अनेक तरेंके ग्रंथ बनाते रहे.

जब नवमे श्रीसुवीधिनाथ पुष्पदंत अरिहंत हुए, तिनोने जब फेर जैन धर्म प्रगट करा, तब कितनेक ब्राह्मणाज्ञासोंने न माना, स्वकपोलकल्पित मतहीका कदाग्रह रक्का, साधुओंके छेपी बन गये, चारों वेदोंका नामग्री बदल दीया, अरु उन वेदोंमें मतलबजी औरका और लिख दीया.

अब चारों वेदोंकी उत्पत्ति लिखते हैं. जब जरतराजाने ब्राह्मणोंको पूजा, तब दूसरा लोकजी ब्राह्मणोंको बहुत तरेका दान देने लग गये, तब जरत चक्रवर्त्तिने श्रीरूपजदेवजीकी उपदेशानुसार तिन ब्राह्मणोंके स्वाध्याय करने वास्ते श्रीआदीश्वर रूपजदेवजीकी स्तुति और श्रावकके धर्मका स्वरूपगर्जित ऐसे चार आर्यवेद रचे, तिनके यह नाम रक्के १

संसारदर्शन वेद, २ संस्थापनपरामर्शन वेद, ३ तत्त्वावबोध वेद, ४ विद्या प्रबोध वेद, इन चारोंमें सर्वनय, वस्तुके कथन संयुक्त तिन ब्राह्मणोंको पढाये, तब वे ब्राह्मण, अरु पूर्वोक्त चार वेद, आठमे तीर्थंकर तक य धार्थ चले आये, परंतु जब आठमे तीर्थंकरका तीर्थ विच्छेद हुआ, तद् पीठें, तिन ब्राह्मणाजासोनें धनके लोभसें तिन वेदोंमें जीवहिंसा आदिकी प्ररूपणा करके उलट पुलट कर माले, जैनधर्मका नामज्जी वेदों मेंसे निकाल दीया, बलकि अन्योक्ति करके “दैत्यदस्युवेदवाह्य” इत्यादि नामोंसे साधुओंकी निंदा गर्जित १ ऋगू, २ यजु, ३ साम, ४ अथर्व, ये चार नाम कल्पन कर दीये. तिन ब्राह्मणोंमेंसूं जिनोनें तीर्थंकरोंका उप देश मान्या, उनोनें पूर्ववेदोंके मंत्र न त्यागे, सो आज तक दक्षिण कर णाटक देशमें जैन ब्राह्मणोंके कंठ है. ऐसा सुना और देखाज्जी है, तथा उन प्राचीन वेदोंके कितनेक मंत्र मेरे पासज्जी हैं. यत्त उक्त आगमे ॥ सीरि जरह चक्रवट्टी, आयरिय वेयाणविस्सु उप्पत्ती ॥ माहण पढणठमिणं, कहि यं सुहचाण विवहारं ॥ १ ॥ जिणतिष्ठे बुद्धिन्ने, मिष्ठत्ते माहणेहिं तेठ विया ॥ अस्संजयाण पूआ, अप्पाणं काहिया तेहिं ॥ ४ ॥ इत्यादि य हांसें आगे तिनवेदोंकी रचना हिंसा संयुक्त याज्ञवल्क्य, सुलसा, पीपलाद, अरु पर्वत प्रमुखोने विशेष कर रचना रच दइ, तिसकाज्जी स्वरूप किंचित् मात्र यहां लिख देते है.

बृहदारण्यक उपनिषद्की जाप्यमें लिखा है, कि जो यज्ञोंका कहने वाला सो याज्ञवल्क्य तिसका पुत्र याज्ञवल्क्य इस कहनेसेंज्जी यही प्रतीत होता है, जो यज्ञोंकी रीति प्रायः याज्ञवल्क्यसेंही चली है, तथा ब्राह्मण लोकोंके शास्त्रोंमें लिखा है, कि याज्ञवल्क्यने पूर्ववर्ती ब्रह्मविद्या वमके सूर्य पासों नवीन ब्रह्मविद्या सीखके प्रचलित करी, इस्सेंज्जी यही अनुमान निकलता है, जो याज्ञवल्क्यने प्राचीन वेद ठोड दीये, और नवीन बनाये.

तथा श्रीत्रेशठ सलाका पुरुष चरित्र ग्रंथमें आठमे पर्वके दूसरे सर्गमें ऐसा लिखा है, कि काशपुरीमें दो संन्यासिणीया रहती थी. तिसमें एकका नाम सुलसा था, अरु दुसरीका नाम सुजडा था, यह दोनोही वेद अरु वेदांगोंकी जानकारथी. तिन दोनो वहिनोने बहु वादीयोंको वादमें जीता, इस अवसरमें याज्ञवल्क्य परित्राजक तिनके साथ वाद करनेकों

आया, आपसमें ऐसी प्रतिज्ञा करी कि जो हार जावे, वो
 लेकी सेवा करे, तब याज्ञवल्क्यने सुखसाकों वादमें जीतके अपनी सेवा
 करने वाली बनाई, सुखसाजी रात दिन याज्ञवल्क्यकी सेवा करने लगी।
 याज्ञवल्क्य और सुखसा यह दोनों यौवनवन्त (तरुण) थे, इस वास्ते दोनों
 कामातुर होकर जोगविलास करने लग गये, सचतो है कि अग्नि और
 घृत मिलकर अग्नि क्यों कर प्रज्ज्वलित न होवे? निदान दोनों काम क्रिाने
 मग्न होकर काशपुरीके निकट कुटीमें वास करते थे, तब याज्ञवल्क्य सुख
 सासें पुत्र उत्पन्न हुआ। पीछे लोकोंके उपहासके जयसे उस लड़केकी
 पीपलके वृक्षके डेठ ठोड कर दोनों उठके कहींकों चले गये, यह वृक्ष
 मुनजा जो सुखसाकी वह्निनी उसने सुना, तब तिस वालकके पास
 आइ, जब वालकों देखा, तो पीपलका फल स्वयमेव मुखमें पड़ेका
 योज रहा है, तब तिसका नामजी पिप्पलाव रखा, और तिसको अपने
 स्थानमें ले जाकर यज्ञसे पाला, और वेवादि शास्त्र पढाये, तब पिप्पलाव
 बड़ा बुद्धिमान् हुआ, बहुत वादीयोंका अजिमान दूर करा, पीछे, तिस
 पिप्पलावके साथ सुखसा और याज्ञवल्क्य यह दोनों वाद करनेको आए,
 तिस पिप्पलावने दोनोंकों वादमें जीत लीया, और मुनजा मासीके कर्त
 नेसे जान गया कि, यह दोनों मेरे माता पिता हैं. और मुझे जन्म
 तैकों निर्दय हो कर ठोर गये थे, जब बहुत क्रोधमें आया तब याज्ञ
 वल्क्य और सुखसाके आगे मातृमेध पितृमेध यज्ञोंकों युक्तिसं सम्यक् रीतिमें
 स्थापन करके पितृमेधमें याज्ञवल्क्यको और मातृमेधमें सुखसाको मारके
 होम करा, भीमांसक मतका यह पिप्पलाव मुख्य आचार्य हुआ, इसका
 यातजी नामा शिष्य हुआ, तबसे जीवहिंसा संयुक्त यज्ञ प्रचलित हुए.

याज्ञवल्क्यके वेद बनानेमें कुत्रही शंका नहीं, क्योंकि वेदमें लिखा है,
 'याज्ञवल्क्यकेति होवाच' अर्थात् याज्ञवल्क्य ऐसे कहता हुआ, तथा वेदमें
 जो शास्त्रा है, वे वेदकर्ता मुनियोंकेही सबवसे हैं, इस वास्ते जो या
 द्यक शास्त्रमें लिखा है, कि जीवहिंसा संयुक्त जो वेद हैं, वे सुखसा या
 याज्ञवल्क्यादिकोंने बनाये हैं, सो सत्य है. क्योंकि कितनीक उपनिषदोंने पि
 प्लावकाजी नाम है, तथा और मुनियोंकाही कितनेक जगमें नाम है.

जमदग्नि कश्यप तो वेदोंमें खुद नामसें लिखे हैं, तो फेर वेदोंके नवीन होनेमें क्या शंका रहती है ?

तथा लंकाका राजा रावण जब दिग्विजय करनेके वास्ते देशोंमें चतुरंग दल ले कर राजाओंको अपनी आज्ञा मना रहा था, इस अवसरमें नारद मुनि, छाठी, सोटे, और, लात, घुंस्तियोंका पीटा हुआ पुकार करता हुआ रावणके पास आया, तब रावणने नारदको पूछा कि तुझको किसने पीटा है ? तब नारदने कहा कि राजपूर नगरमें मरुत नामा राजा है, सो मिथ्यादृष्टि है, वो ब्राह्मणानासोंके उपदेशसें यज्ञ करने लगा, हो मके वास्ते सौनिकोंकी तरें वे ब्राह्मणानास अरराट शत्रु करते हुए, ऐसे विचारे पशुओंको यज्ञमें मारते हुए मैंने देखा, तब मैं आकाशसें उतरके जहां मरुतराजा ब्राह्मणोंके साथमें बैठा था, तहां आ कर मरुत राजाको कहा कि यह तुम क्या करने लग रहे हो ? तब मरुतराजाने कहा ब्राह्मणोंके उपदेशसें देवताओंकी तृप्ति वास्ते और स्वर्ग वास्ते यह यज्ञ में पशुओंकी बलिदानसें करता हूं. यह महाधर्म है, तब नारद कहता है, कि मैं वो मरुतराजाको कहा कि हे राजा जो चारोंवेदोंमें यज्ञ करना कहा है, वो यज्ञ में तुमकुं सुनाता हूं, आत्मा तो यज्ञका यष्टा अर्थात् करनेवाला है, तथा तपरूप अग्नि है, ज्ञानरूप घृत है, कर्मरूपी ईंधन है, क्रोध, मान, माया, अरु लोभादि पशु हैं, सत्य बोलनेरूप घृष अर्थात् यज्ञस्तंज है, तथा सर्व जीवोंकी रक्षा करणी यह दक्षिणा है, तथा ज्ञान, दर्शन, अरु चरित्र, यह रत्नत्रयी रूप त्रिवेदी है. यह यज्ञ वेदका कहा हुआ है. ऐसा यज्ञ जो योगाज्यास संयुक्त करे, तो करनेवाला मुक्त रूप हो जाता है, और जो राक्षस दुष्ट होके ठागादि मारके यज्ञ करता है, सो मरके घोर नरकमें चिरकाल तक महादुःख जोगता है, हे राजा ! तू उत्तमवंशमें उत्पन्न हुआ है, बुद्धिमान् और धनवान् है, इस वास्ते हे राजन् तू इस व्याधोचित पापसें निवर्त्तन हो जा, जेकर प्राणीवधसेंही जीवोंको स्वर्ग मिलता होवे तब तो थोड़ेही दिनोंमें यह जीवलोक खाली हो जावेगा, यह मेरा वचन सुनके यज्ञकी अशिकी तरें प्रचन हुए होये ब्राह्मण हाथमें छाठी, सोटे, ले कर सर्व मेरेको पीटने लगे, तब जैसें कोश-पुलप नदीके पूरसें नरकर दीपमें चला आता है तैसें मैं दौडता हुआ

तेरे पास पहुँचा हूँ. हे रावण राजा !-विचारे निरपराधि पशु मारे जाते हैं, तू तिनकी रक्षा करणमें तत्पर हो, जैसे मैं तेरे शरणसे बचा हूँ. तू पशुओंकी बचा, तब रावण विमानसे उतरके मरुत राजाके पास गया. मरुत राजाने रावणकी बहुत पूजा, जक्ति, आदार, सन्मान करा, तब रावण कोपमें हो कर, मरुत राजाको ऐसे कहता हुआ:-धरे ! तू नरक का देने वाला यह यज्ञ क्या कर रहा है ? क्योंकि धर्म तो अहिंसारूप सर्वत्र तीर्थकरोने कहा है, सोइ जगत्के हितका करनेवाला है, जब तुमने पशुओंको मारके धर्म समझा, तब तुमको हितकारक क्योंकर होवेगा ? इस वास्ते यह यज्ञ तुमको दोनो लोकमें अहितकारक है, इसमें ठोड था, नहीं तो इस यज्ञका फल तेरेको इस लोकमें तो मैं देता हूँ, और परलोकमें तुम मारा नरकमें पास होवेगा, यह सुन कर मरुत राजाने यज्ञ करना ठोड वीथा, क्योंकि रावणकी आज्ञा उस वखत ऐसी जयंकरथी, कि कोई उसको जलपन नहीं कर सका था, इस कथानकसें यहजी माधुम हो जाता है, कि जो ब्राह्मण लोक कहते हैं कि आगे राक्षस यज्ञ विध्वंस कर देंगे, सो क्या जाने रावणादि जबरदस्त जैनधर्मी राजाओं यशुवध रूप यज्ञ करणां बुझा देंगे, तबसेंही ब्राह्मणोंने पुराणादि शास्त्रोंमें उन जबरदस्त जैनराजाओंको राक्षसोंके नामसें लिखा है ? तथा यहजी सुननेमें आया है, कि नारदजीनेनी मायाके वशसें जैनमत धारके वेदोंकी निंदा करी थी तो क्या जाने ? इस कथानकका यही तात्पर्य लोकोने लिख लीया है ?

पीठे रावणने नारदको पूछा कि ऐसे पापकारी पशुवधात्मक यह यज्ञ कहाँसें चला है, तब नारदजीने कहा कि:-शुक्तिमती नदीके किनारे वार एक शुक्तिमती नगरी है सो वीथमें श्रीमुनिसुव्रत स्वामी हरिचंश तीर्थकरजी आज्ञादमें जब कितनेक राजा व्यतीत होगये, तब अन्नचंद्रनामा राजा हुआ, तिस अन्नचंद्रराजाका वसुनामा बेटा हुआ, वो वसु महाबुद्धिमान्, सत्यवादी, लोकोमें प्रसिद्ध हुआ, तिस नगरीमें क्षीरकंदक उपाध्याय रहता था, तिसके पर्यंत नाम पुत्र था, उहां एक तो राजाका बेटा वसु, दूसरा पर्यंत और तीसरा मैं (नारद) हम तीनों क्षीरकंदक उपाध्यायके पास पढ़ते थे, एकदा समय हमतो तीनों जन पाठ करनेके धर्मसें रात्रिको सो गये थे और उपाध्याय जागता था, हम उत ऊपर मूँ

ये तब दो चारण साधु ज्ञानवान्. आकाशमें परस्पर बातें करते चले जाते थे, कि यह क्षीरकदंबक उपाध्यायके तीन ठात्रोंमेंसुं दो नरकमें जायेंगे और एक स्वर्गमें जायेगा, यह मुनियोंका कहना सुन करके उपाध्याय जी चिंता करने लगा कि जब मेरे पढ़ाये दूये नरकमें जायेंगे, तब यह मुझको बहुत दुःख है, परंतु इन तीनोंमेंसुं नरक कौन जायेंगे? और स्वर्ग कौन जायगा? इस बातके जानने वाले तीनोंको एक साथ बुझाया, पीछें वो गुरुने हम तीनोंको एकैक पीठिका कुकड़ दीया और कह दीया कि इनको ऐसी जगें मारो जहां कोइजी न देखता होवे! पीछें वसु और पर्वत यह दोनों तो शून्य जगहोंमें जाकर दोनों पीठके बनाये कुकड़ोंको मार ड्याये और मैं उक्त पीठके कुकड़को ले कर बहुत दूर नगरमें बाहिर चला गया, जहां कोइजी नहीं था, तहां जा कर खड़ा हुआ, चारों ओर देखने लगा और मनमें यह तर्क उत्पन्न हुआ, कि गुरु महाराजने तो यह आज्ञा दीनी है, कि हे वस्तु यह कुकड़ तूं तहां मारी, जहां कोइ देखता न होवे, तो यह कुकड़ देखता है, और मैंजी देखता हूं, खेचर देखते हैं, झोकपात्र देखते हैं, इानी देखते हैं, ऐंता तो जगत्में कोइजी स्थान नहीं जहां कोइजी न देखता होवे, इस वाले गुरुके कहनेका यही तात्पर्य है, कि इस कुकड़का बध न करना क्योंकि गुरुपूज्य तो सदा दया वंत और हिंसातें पराङ्मुक्त हैं, निःकेवल हमारी परीक्षा लेने वाले यह आदेश दीया है, तब मैंने ऐंता विचार करके बिनाही मारे कुकड़को लेके गुरुके पास चला आया, और कुकड़के न मारनेका सबब सर्व गुरुको कह दीया, तब गुरुने मनमें निश्चय कर लीया कि यह नारद जैसे विवेकवाला है, तो स्वर्ग जायगा. तब गुरुजीने मुझको ठातीतें अगाया, और बहुत सा धुंकार कहा, तथा वसु और पर्वतजी मेरेतें पीछे गुरुके पास आये, और गुरुको कहते दूये कि हम कुकड़को ऐंसी जगें मारके आये हैं, कि जहां कोइजी देखता नहीं था, तब गुरुने कहा तुम तो देखते थे, तथा खेचर देखते थे, तब हे पापियो! तुमने कुकड़ क्यों मारे? ऐसे कह कर गुरुने शोचा कि पर्वत, और वसुके पड़ानेकी मेहनत मैंने व्यर्थही करी, मैं क्या करूं? पानी, जैसे पात्रमें जाता है, वैसाही बन जाता है. विद्याकाजी यही स्वभाव है. जब प्राणोंतें प्यारा पर्वतपुत्र और पुत्रोंतें प्यारा वसु

यह दोनो नरकमें जायगे तो मुझे फेर घरमें रह कर क्या करण
 ऐसे निवेदसे क्षीरकदंबक उपाध्यायने दीक्षा ग्रहण करी, साधु हो
 तिसके पद उपर पर्वत बैठा क्योंकि व्याख्या करणेमें पर्वत बड़ा विचित्र
 था और में (नारद) गुरुके प्रसादसे सर्वशास्त्रोंमें पंडित हो कर अपने
 स्थानमें चला आया, तथा अजिचंद्रराजाने तो संयम लीया, और वसु
 राजा राजसिंहासन ऊपर बैठा, वसुराजा जगत्में सत्यवादी प्रसिद्ध हो
 गया अर्थात् वसुराजा छूठ नहीं बोलता है, ऐसा प्रसिद्ध हो गया, वसु
 राजानेजी अपनी प्रसिद्धिकों कायम रखने वास्ते सत्य बोलनाही अपनी
 कार कीया, वसुराजाको एक स्फटिकका सिंहासन गुप्त पणे ऐसा मिला
 कि:-सूर्यके चांदणेमें जब वसुराजा उसके उपर बैठताथा, तब सिंहासन
 लोकोकों बिलकुल नहीं दीख पडताथा, इसी तरें वसुराजा आकाशमें ब
 धर बैठा दीख पडताथा, तब लोकोंमें यह प्रसिद्धी होगइ, कि सत्यके प्रजापति
 वसुराजाका सिंहासन देवता आकाशमें थांजे रक्कते हैं, तब सब राजा न
 रकें वसुराजाकी आज्ञा मानने लग गये, क्योंकि चाहो सच्ची हो चाहो
 छूठी हो तोजी प्रसिद्धि जो है सो पुरुषके जयकारी होती है.

तब एकदा प्रस्तावमें (नारद) वो सूक्तिमतीनगरीमें गया, उहां जा
 कर पर्वतकों देखा तो वो अपने शिष्योंकों ऋग्वेद पढा रहा है, और उ
 सकी व्याख्या करता है, तब ऋग्वेदमें एक ऐसी श्रुति आई "अजैर्यद्व्य
 मिति" तब पर्वतने इस श्रुतिकी ऐसी व्याख्या करी जो अजानाम ठागका
 (बकरीका) है तिनोंसें यह करनां तिनकों मारके तिनके मांसका होम क
 रनां, तब मैंने पर्वतकों कहा है ब्राता ! यह व्याख्या तू क्या ब्रांतिसें क
 रता है ? क्योंकि गुरु श्रीक्षीरकदंबकने इस श्रुतिकी ऐसे व्याख्या नहीं करी
 है, गुरुजीने तो तीन वर्षका धान्य पुराणें जोका ऐसा अर्थ यह श्रुतिकी
 करा है, "न जायंतइत्यजा" जो बोनेसें न उत्पन्न होवे, सो अजा, ऐसा
 अर्थ श्रीगुरुजीने तुमकों और हमकों सिखलाया था वो अर्थ, तुमने कित
 हेतुसें झूठा दीया ? तब पर्वतने कहा कि तुमने जो अर्थ करा है, यह
 अर्थ गुरुजीने नहीं कहा था, किंतु जो अर्थ मैंने करा है, यही अर्थ ग
 र्नुने कहा था क्योंकि निघंटमेंजी अजा नाम बकरीका ही लिखा है, तब
 मैंने (नारदने) पर्वतकों कहा कि शब्दोंका अर्थ दो तरेंके होते हैं, एक

गुरुवार्य दूसरा गौणार्थ. तो यहां श्रीगुरुने गौणार्थ करा था. गुरु धर्मोप
 दैष्टाका वचन और वचार्थ श्रुतिका अर्थ, दोनोंकों अन्यथा करके हे मित्र
 तूं महापाप उपार्जन मत कर, तब फेर पर्वतने कहा कि अजा शब्दका
 अर्थ श्रीगुरुजीने मेपेका करा है. निघंटमेंजी ऐसेही अर्थ हैं, इनको उल्लं
 यन करके तूं अधर्म उपार्जन करता है? इस बातसे वसुराजा आपणा स
 हाध्यायी है. तित्तकों मध्यस्थ करके इस अर्थका निर्णय करो, जो ऊँचा
 होवे तित्तकी जीव्हाछेद करणी, ऐसी प्रतिज्ञा कही, तब मनेजी पर्वतका
 कहना मान लीया क्योंकि सांचकों क्या आंच है? तब पर्वतकी माताने
 पर्वतकों ठाना कहा कि हे पुत्र! तूं ऐसा ऊँचा कदाग्रह मत कर. क्योंकि
 मनेजी इस श्रुतिका अर्थ तीन वर्षका धान्यही सुना है, इस बातसे तूने
 जो जीव्हाछेदकी प्रतिज्ञा करी है, सो अग्री नहीं करी, क्योंकि जो बिना
 विचारें काम करता है, वो अवश्य आपदामें पडता है. तब पर्वत कहने
 लगा कि हे माताजी! जो मैं प्रतिज्ञा करी है, वो अबमें कित्तीतरेंतेंजी
 हर नहीं कर सका हूं. तब माता अपने पर्वत पुत्रके दुःखकी पीडी हूइ
 दुःखिनी हो कर वसुराजाके पास पहुंची क्योंकि पुत्रके जीवतव्य बातसे
 कौन ऐसी है, जो उपाय न करे? जब वसुराजाने अपनी गुरुकी पत्नीकों
 आता देखा तब सिंहासनसे उठके खडा हुआ, और कहने लगा कि मैंने
 आज कीरकदंबकका दर्शन करा जो माता तुझकों देखा, अब हे माता!
 कहो (आज्ञा करो) मैं क्या करूं? और क्या देऊं? तब ब्राह्मणी कहणे
 लगी कि तूं हुंके पुत्रकी बिरहा दे क्योंकि बिना पुत्रके मैंने हे पुत्र! धन,
 धान्य क्या करणां है? तब वसुराजा कहने लगा हे माता! नेरेकोंतो प
 र्वत पूजने और पावनने योग्य है, क्योंकि गुरुकी तरें गुरुके पुत्रके सा
 यजी वर्तना चाहियें. यह श्रुतिका वाक्य है, तो फेर आज कित्तकों का
 उने क्रोधमें आकर पत्र जेजा है, जो नेरे जाइ पर्वतकों नारा चाहता
 है? इस बातसे हे माता? तूं मुझे सब वृत्तांत कह दे, तब ब्राह्मणीने अ
 पने पुत्रका अज व्याख्यान और जिव्हाछेदनेकी प्रतिज्ञा कह सुनाइ,
 और कहा कि जो तेने अपने वाइकी रक्षा करनी है, तो अजा शब्दका
 अर्थ नेप अथात् बकरी बकराकरानां क्योंकि महात्मा जन परोपकारके
 बातसे अपने प्राणजी दे देते हैं, तो वचनसे परोपकार करनेमें तो क्या क

हनां है ? तब वसु राजाने कहा कि हे माताजी मैं मिथ्यावचन बोलुं ? क्योंकि सत्यबोलनेवाले पुरुष जेकर अपणें प्राणजी जा तोजी असत्य नहीं बोलते हैं, तो फेर गुरुका वचन अन्यथा करण ऊठी साक्षी देणी, इसका तो क्याही कहना है ? तब ब्राह्मणीयांतो गुरुके पुत्रकी जान बचेंगी, यां तेरा सत्यव्रतका आग्रहही और मैंजी तुके अपणें प्राणकी हत्या देऊगी, तब वसुराजाने लाच कर ब्राह्मणीका वचन माना, पीठें क्षीरकंदवककी चार्या प्रमुदित अपने घरकों गइ, इतनेहीमें मैं (नारद) और पर्वत दोनो जने वसुरा सजामें गये, तब तहां बड़े बड़े विद्वान् एकठे सजामें मिले, और ककें सिंहासन ऊपर बैठके वसुराजा सजाके विचमें सजापति बन कर तब पर्वतने और मैंने अपणी अपणी व्याख्याका पक्ष वसुराजाकोंसु और ऐसाजी कहा कि हे राजन् तूं ! सत्य कह दे कि गुरुने इन दो अर्थ कौनसा अर्थ कहा था ? तब वृद्ध ब्राह्मणोंने कहा हे राजा तूं सत्य जो होवे सो कह दे क्योंकि सत्यसेही मेघ वर्षता है, और सत्यसेही वे सिद्ध होते हैं, सत्यके प्रजावसेही यह लोक खड़ा है, और तूं पृथ्वीमें वादी सूर्यकी तरें प्रकाशक है, इस वास्तेही सत्यही कहनां तुमकों उचित है, और हम इस्से अधिक क्या कहें ? यह वचन सुनकरजी वसुराजाने पने सत्य बोलनेकी प्रतिज्ञाकों जवांजली दे कर “अजान्मेपान्गुरु ख्यदिति” अर्थात् अजाका अर्थ गुरुने मेप (वकरे) कहे थे, ऐसी सार्व वसुराजाने कही, तब इस असत्यके प्रजावसें व्यंतर देवताने वसुराज सिंहासनकों तोड़के वसुराजाकों पृथ्वीके उपर पटकके मारा, तब तो राजा मरके सातमें नरकमें गया, पीठें वसुराजाके राज सिंहासन उपर राजाके आठपुत्र १ पृथुवसु, २ चित्रवसु, ३ वासव, ४ शक्र, ५ विनाश ६ विश्वावसू, ७ सूर, ८ महासूर, ये आठो अनुक्रमसें गद्दी ऊपर बैठे वो आठोंहीकों व्यंतर देवतार्थोंने मार दीये, तब सुवसु नामा नवमा पुत्र हांसें जाग कर नागपुरमें चला गया और दसमा बृहध्वज नामा पुत्र जा कर मथुरामें चला गया, और मथुरामें राज करणे लगा. इस बृहध्वजवंश संतानोंमें यदुनामा राजा बहुत प्रसिद्ध हुआ, इस वास्ते हरिवंशका नाव बूट गया और यदुवंशी प्रसिद्ध हो गये.

यहु राजाके सूर नामक पुत्र हुआ, तिस सूर राजाके दो पुत्र हूवे, एक बड़ा शौरी और दूसरा छोटा सुवीर हुआ, शौरि राजा पिताके पीछे बना. शौरिने मधुरांका राज्यतो अपने छोटे चाइ सुवीरको दे दीया, और आप कुशावर्त देशमें जा कर अपने नामका शौरिपुर नगर वसा के राजधानी बनाइ, शौरिका बेटा अंधकविष्णु, आदि पुत्र हुआ, और अंधकविष्णु के दश बेटे हूयें १ समुद्रविजय, २ अक्षोभ्य, ३ स्तिमित, ४ सागर, ५ हिमवान्, ६ अचल, ७ धरण, ८ पूर्ण, ९ अजिचंद्र, १० वसुदेव, तिनमें समुद्रविजयका बड़ा बेटा अरिष्टनेमि जो जैनमतका बावीशमा तीर्थंकर हुआ, और वसुदेवके बेटे प्रतापी कृष्णवासुदेव, अरु बलजङ्गजी हूये, तथा सुवीरका बेटा जोजवृष्णि और जोजवृष्णिका उग्रसेन और उग्रसेनका कंस बेटा हुआ, और वसुराजाका दूसरा बेटा सुवसु जो जागके नागपुर गया था, तिसका बृहद्गुप्त नामा पुत्र हुआ तिसने राजगृहमें आ कर राज करा, तिसका बेटा जरासिंधू हुआ, यह मैंने यहां प्रसंगसें लिख दीया है.

तब उहांतो नगरके लोक और पंक्तितोनें पर्वतका बहुत उपहास करा, सवने पर्वतकों कहा कि तूं जूठा है, क्योंकि तेरे साखी वसुकों जूठा जान कर देवताने मार दीया, इस वास्ते तेरेसें अधिक पापी कौन है? ऐसे कहकर लोकोनें मिलके पर्वतको नगरसें बाहर निकाल दीया, तब महाकाल असुर, उस पर्वतका साहायक हुआ..

यहां रावणने नारदको पूठाकि वो महाकाल असुर कौन था? नारदने कहा यहां चरणा युगल नामा नगर है, तिसमें अयोधन नामा राजा था, तिसकी दिति नामा जार्याथी, तिन दोनोंकी सुलसा नामक बहुत रूपवान् बेटा थी, तिस सुलसांका स्वयंवर उसके पिताने करा उहां और सर्व राजे बुलवाये, तिन सर्व राजाओंमेंसूं सगर राजा अधिक था तिस सगरराजाकी मंदोदरी नामा रणवात्सकी दरवाजेदार सगरकी आज्ञासें प्रति दिन अयोधनराजाके आवात्समें जाती हुई, एकदिन दिति घरके बागके कदलीघरमें गई, और सुलसांके साथ मंदोदरीजी तहां आ गई, तब मंदोदरी, सुलसा और दिति इन दोनोंकी बातों सुननेके वास्ते तहां ठिप गई, तब दिति, सुलसांको कहने लगी, हे बेटा! मेरे मनमें इस तेरे स्वयंवरमें बड़ा शक्य है. तिसका उच्चार करनां तेरे अधीन है, इस वास्ते तूं सुनखे मुखसें

श्रीरूपनदेव स्वामीके जरत अरु बाहुबली यह दो पुत्र हूये, केर तिनके दो पुत्र हूये तिनमें जरतका सूर्यवंश और बाहुबलीका चंद्रवंश जिनोसे सूर्यवंश और चंद्रवंश चले हैं. चंद्रवंशमें मेरा जाइ तृणविंदुनाभा हुआ, तथा सूर्यवंशमें तेरा पिता राजा अयोधन हुआ, और अयोधन राजाकी बहिन सत्यपरा नामा तृणविंदुकी जार्या हुई, तिसका बेटा मधुपिंगल नामा मेरा जन्मी जाइ, तो हे सुंदरी! मैं तेरेको तिस मधुपिंगलको दीया चाहती हूं, और तूने क्या जाने सूर्यवंशमें किसको देइ जायेंगी? मेरे मनमें यह शक्य है इस समे तूने सूर्यवंशमें सर्वराजाओंको ठोरुके मेरे जन्मीजे मधुपिंगलको परना, तब मुखसाने माताका कहनां स्वीकार कर लीया, और मंदोवरीने यह सर्वश्रुति सुन कर सगरराजाको कहि दीया, तब सगरराजाने अपने विश्वभूतिनामा पुरोहितको आदेश दीया, वो विश्वभूति बड़ा कवि था उसने तबका सब राजाके लक्षणोंकी संहिता बनायी तिस संहितामें ऐसे खिता कि सगर तो गुणलक्षण वात्सा बन जावे और मधुपिंगल लक्षण हीन सिद्ध हो जावे, तिस पुस्तकको मंडूकमें बंध करके रख ठोका, जब सब राजा आ कर सूर्यवंशमें एकठे बैठे, तब सगरकी आज्ञासे विश्वभूतिने वो पुस्तक काश अरु सगरने कहा कि जो लक्षण हीन होवे, तिसको या तो मार देना, या यथा सूर्यवंशमें यादिर निकाश देना, यह कहनां सबोंने मान लीया, तब तो पुरोहित यथापथा पुस्तक बांचना जाता है, तथा तथा मधुपिंगल अपने लक्षणों अलक्षण वात्सा मान कर लज्जावान् होता जाता है, और सूर्यवंशमें आपही निकल गया, तब मुखसाने सगरको वर लीया, दूसरे सर्व राजा अपने अपने स्थानोंको चले गये, अरु मधुपिंगल तो उस अथमानमें पाव तब करके सात हजार वर्षकी आयुवात्सा काशनामा असुर परमधर्मिक हो हुआ. तब अविज्ञानमें सगरका कपट जो उसने मुखसाके सूर्यवंशमें लूना पुस्तक बनाया था, और अपना जो अथमान हुआ था, सो देना जाना, तब विचार करा कि सगर राजादिकोंको मैं माके? तब तिनके दिष्ट देखने लगा, जब शुक्तिमती नगरीके पासपर्वतको देखा, तब बाहुबली कह करके पर्वतको कहने लगा कि हे पर्वत! मैं तेरे पिताका मित्र हूं, मेरा नाम शंखिष्ठ है, मैं और तेरा पिता दम दोनो साथ होकर गौतम उग्र प्यायके नाम पर ये. मैंने सुना था कि नारदन और दूसरे लोकोंने तुझे

बहुत दुःखी करा, अब मैं तेरा पक्ष पुरंगा, और मंत्रों करके लोकोंको विमोहित करंगा, यह कह कर पर्वतके साथ मिलके लोकोंको नरकमें डालने वास्ते तिस असुरने बहुत व्यामोह करा, व्याधि जूतादि दोष लोकों को कर दीये, पीठें जहां जो लोक पर्वतका वचन मान लेता था, तिसको अठा कर देता था, शांडिल्यकी आज्ञासें पर्वतजी लोकोंको अठा करने लगा, उपकार करके लोकोंको अपने मतमें मिलाता जाता था, तब तिस असुरने सगर राजाको तथा तिसकी राणीयोंको बहुत ज़ारी रोगादिकका उपद्रव करा, तब तो राजाजी पर्वतका सेवक बना, अरु पर्वतने शांनिलके साथ मिलके तिसका रोग शांति करा, तब पर्वतने राजाको उपदेश करा कि हे राजा ! सौत्रामणि नामा यज्ञ करके, मद्यपान अर्थात् सराब पीनेमें दोष नहीं, तथा गोसव नामा यज्ञमें अग्न्य स्त्री (चांडाली) आदि तथा माता, वहिन, बेटी आदिसें विषय सेवन करना चाहिये, मातृमेधमें माताका और पितृमेधमें पिताका वध अंतर्वेदी कुरुक्षेत्रादिकमें करे, तो दोष नहीं, तथा कट्टुकी पीठ ऊपर अग्नि स्थापन करके तर्पण करे, कदाचित् कट्टु न मिले तो शुद्ध ब्राह्मणके मस्तककी टटरी उपर अग्नि स्थापन करके होम करे, क्योंकि टटरीजी कट्टुकि तरें होती है. इस बातमें हिंसा नहीं है, क्योंकि वेदोंमें लिखा है, श्लोक ॥ सर्वपुरुषैववेदं, यद्वृतं यज्ञविश्रयति ॥ इशानोयं सृ तत्त्वस्य, यदन्नेनातिरोहति ॥ १ ॥ इसका जावार्थ यह है, कि जो कुठ है, सो सब ब्रह्मरूपही है, जब एकही ब्रह्म हुआ, तब कौन किसिकों मारता है ? इस वास्ते यथार्थसें यज्ञोंमें जीवहिंसा करो, और तिन जीवोंका मांस जक्षण करो, इसमें कुठ दोष नहीं. क्योंकि देवोद्देश करनेसें मांस पवित्र हो जाता है, इत्यादि उपदेश देकर सगरराजाको अपने मतमें स्थापन करके अंतर्वेदी कुरुक्षेत्रादिमें वो पर्वत यज्ञ कराता हुआ तब कालासुरने अब सर पा करके राजसूयादिक यज्ञजी कराता हुआ, और जो जीव यज्ञमें मारे जाते थे, तिनको विमानोंमें बैठाके देवमायासें दिखाता हुआ, तब लोकोंको प्रतीत था गइ, पीठें वो निःशंक होकर जीवहिंसारूप यज्ञ करने लगे और पर्वतका मत मानने लगे, सगरराजाजी यज्ञ करनेमें बन्ना तत्पर हुआ, सुखसां और सगर दोनों मरके नरकमें गये, तब महाकालासुरने सगर राजाको नरकमें मार पीटादि महादुःख देके अपणा बैर लीया, इस वास्ते

तिसके चौदह स्वप्न पूर्वक अजितनाथ नामा पुत्र हुआ, और सुमित्रकी राणी यशोमतीकांजी चौदह स्वप्न देखने पूर्वक सगर नामा पुत्र हुआ. ज दोनों यौवनवंत हुए तब जितशत्रु और सुमित्रतो दीक्षा लेकें मोक्ष प हो गये. तब श्रीअजितनाथ राजा हुये और सगर युवराजा हुये, कि तनेक काल राज करकें श्री अजितनाथजीने तो स्वयमेव दीक्षा लेकें तप करा, और केवलज्ञान पा कर दूसरा तीर्थकर हुआ, पीठें सगर रा जा हुआ, सो सगर दूसरा चक्रवर्त्ति हुआ है, यह सगर राजाने जत की तरें पट्ट खंनका राज्य करा, यह सगर राजाके जन्हु कुमार प्रमुल शाठ हजार बेटे हुये, तिनोंनिं दंन रत्नसैं गंगा नदीकों अपने असस्त्री प्र वाहसैं फेरके और कैलासके गिरदनवाह खाइ खोदके उस खाइमें गंगाकों लाकें गेरा, क्योंकि उनोंने विचार करा था कि हमारे बड़े जरतने जो इस पर्वत ऊपर सुवर्णरत्नमय श्रीरूपजादि तीर्थकरोंका मंदिर बनाया है, तिसकी रक्षा वास्ते इस पर्वतके चारों उर खाइ खोद कर उसमें गंगा फेर देउं, जिससैं तीर्थकी विशेष रक्षा हो जावेगी, तिन शाठ हजार कों नाग देवताने मार दीया, क्योंकि खाइ खोदने और जल जरनेसैं उ नको तकलीफ पहुची थी, तब गंगाके जलनें देशमें बड़ा उपद्रव करा, तब सगरराजाका पोता जन्हुका बेटा जगीरथने सगरकी आज्ञासैं दंन रत्नसैं जूमि खोदके गंगाकों समुद्रमें मिलाया, इसी वास्ते गंगाका नाम जा न्हवी और जगीरथी कहा जाता है, सगरराजाने श्रीशत्रुंजय तीर्थ ऊपर श्रीजरतके बनाये रूपजदेवजी मंदिरका उद्धार करा, तथा और जैनतीर्थोंकाजी उद्धार करा, तथा यह समुद्रजी जरतकेत्रमें सगरही देवताके सहाय्यसैं आया, लंकाके टापूमें वेताढ्य पर्वतसैं सगरकी आज्ञासैं घनवाहन पहिछा राजा हुआ, और लंकाके टापूका नाम राक्षस द्वीप है, तिसका यह हेतु हैकि, घनवाहन राजाके वंसके राक्षस कहलाये, इसी वंसमें राजा राक्षस और विनीषणादि हुये हैं. इत्यादि सगरचक्रवर्त्तिके समयका हाउ बकठ शलाका पुरुष चरित्रसैं जान लेनां, क्योंकि तिस चरित्रके तेचीसई आर काव्य हैं. इस वास्ते में सारा हाउ उसका इस ग्रंथमें नहीं लिख सका हूं, परंतु संक्षेप मात्र वृत्तांत लिखुंगा. सगरचक्रवर्त्ति राज्य करकें पीठें श्री अजितनाथजीके पास दीक्षा ले कर, संयम तप करकें केवलज्ञान पा

कर मोह पढ़ूँचे, और अजितनाथ स्वामीजी समेतशिखर पर्वतके ऊपर शरीर ठोडकें मोह गये. श्रीरूपजदेव स्वामीके निर्वाणसे पंचाश लाख कोनी सागरोपमके व्यतीत हूयां श्रीअजितनाथ तीर्थंकरका निर्वाण हुआ तिनोंके पीठें तीस लाख कोडी सागरोपम व्यतीत हूये, श्रीसंजव नाथजी तीसरे तीर्थंकर हूये, राज्य सर्व सूर्यवंशी, चंद्रवंशी, और कुरु वंशी, आदिक राजाओंके घरानेमें रहा ॥ इति श्रीअजितनाथ और स गरवक्रवर्तिका अधिकार संपूर्ण ॥

अब श्रावस्ती नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी जितारिराजा राज्य करता था, ति सकी सेना नामें पटराणी थी, तिनोंका संजव नामा पुत्र तीसरा तीर्थंकर हुआ, यह चौबीसही तीर्थंकरोंका वर्णन प्रथम परिच्छेदमें यंत्र और वा चीमें लिख आये हैं. इस वास्ते यहां संक्षेपसें लिखेंगे. और तीर्थंकरोंके आपत्तमें जो अंतरकाळ हैं सोनी यंत्रोंमें देख लेनां. इति तृतीय तीर्थंकरवृत्तांत

इनके पीठें अयोध्यानगरीमें इक्ष्वाकुवंशी संवरराजाकी सिद्धार्था नामक राणी तिनोंका पुत्र अजिनंदन नामक चौथा तीर्थंकर हुआ, पीठें अयोध्या नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी मेघराजाकी सुमंगला राणी तिनोंका पुत्र सुमतिनाथ नामक पांचमा तीर्थंकर हुआ, पीठें कौसंबी नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी श्रीधरराजाकी सुतीमा राणी तिनोंका पुत्र पद्मप्रज नामक ठठा तीर्थंकर हुआ, पीठें वाणारस्ती नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी प्रतिष्ठराजाकी पृथ्वी नामा राणी तिनों का पुत्र श्रीसुपार्श्वनाथ नामा सातमा तीर्थंकर हुआ, पीठे चंद्रपुरी नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी महासेन राजाकी लक्ष्मणा नामें राणी तिनोंका पुत्र श्री चंद्रप्रज नामा आठमा तीर्थंकर हुआ, पीठें काकंडी नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी सुग्रीवराजाकी रामा नामक राणी तिनोंका पुत्र श्रीसुविधिनाथ अपर नाम पुष्पदंत नामक नवमा तीर्थंकर हुआ.

यहां तक तो सर्व ब्राह्मण जैनधर्मी श्रावक और आर्य चारों वेदोंके पढने बाधे बने रहे, जब नवमें तीर्थंकरका तीर्थ व्यवछेद हो गया, तबसें ब्राह्मण मिथ्यादृष्टि और जैनधर्मके द्वेषी और सर्व जगत्के पूज्य कन्या, श्रुमि, गोदानादिकके लेने बाधे, सर्व जगत्में उत्तम और सर्वके हर्ता कर्ता मतोंके माखक बन गये क्योंकि शूना घर देखकें कुत्ताजि आटा खा जाता है, और जो जगत्में पाखन तथा तुरे तुरे देवतादिकोंकी पूजा

है, तथा औरजी जो जो कुमार्ग प्रचलित हुआ है, वे सर्व ऊनांड़ीने हैं, मानो आदीश्वर जगवानकी रची हुई सृष्टिरूप अमृतमें जहर डाले वाले हूये, क्योंकि आगे तो जेनमतके और कपिलके मतके बिना और की मत नहीं था, कपिलके मतवालेजी श्रीआदीश्वर अर्थात् रूपनदेवकोही देव मानते थे, निदान यह इस हुंदा अथर्वसर्पिणिमें आश्चर्य गिना जाता है.

तीस पीठें जदिलपुरनगरमें इक्ष्वाकुवंशी दृढरथराजाकी नंदा नामा राणी तिनोंका पुत्र श्री शीतलनाथ नामा दशमा तीर्थंकर हुआ, इनही तीर्थंकरके शासनमें हरिवंश उत्पन्न हुआ है, तिसकी कथा लिखते हैं.

कौशांघिनगरीमें वीरा नामा कोली रहताया, तिसकी वनमासा नामा स्त्री अत्यंत रूपवंती श्री सोनगरके राजाने तीनके अपणी राणी बना ले, वीरा कोली स्त्रीके विरहसें वाचला हो गया, हा वनमासा! हा वनमासा! ऐसे कहता हुआ नगरमें फिरने लगा. एकदा वर्षाकालमें राजा वनमासाके साथ महिलाके जरोखेमें बैठा था, तब राजा राणीनें वीरेकों तिस हाथमें देख के बड़ा पश्चात्ताप करा, अरु विचार करने लगे कि हमने यह बहुत बुरा काम करा, ऊसी वखत बीजली गिरनेसें राजा राणी दोनो मरके हरिवासे त्रमें युगल स्त्री पुरुष हो गये, तब वीरा कोली राजा राणीका मरण सुनके राजी हो गया, पीठें तापस वनके तप करा, अज्ञान तपके प्रज्ञावसें किष्कि देवता हुआ तब अधिज्ञानसें राजा राणिकों युगलीये हूये देख कर विचार करा कि यह जड़क परिणामी और अद्वारंजी है, इस वास्ते मरके देवता होवेंगे, तो फेर में अपना बैर किससें लेजंगा? इस वास्ते ऐसा कर कि:-जिससें ये दोनों मरके नरकमें जावे, ऐसा विचार के तिन दोनोंकों तहांसें उठा करके जरत क्षेत्रमें चंपा नगरीके इक्ष्वाकुवंशी चंडकीर्ति राजा अपुत्रिया मरा था, लोक सब चिंतामें बैठे थे कि कौन यहांका राजा होवेगा? पीठें तिस देवतानें ये दोनो उनकों सोपे, और कहा कि यह तुमारा हरि नामा राजा हुआ, इसकी यह हरणी नामा राणी है, इनके खाने वास्ते तुमने फलमिश्रित मांस देनां और इनसें शिकारजी करानां तब लोकोंनें तेसेही करा वे दोनों पापके प्रज्ञावसें मरके नरकमें गये, और उनकी ओलाद सब हरिवंशकी कहलाये इसी वंशमें वसुराजा हुआ. इति हरिवंशोत्पत्ति ॥ इन श्री शीतलनाथजीकाजी शासन विष्टेव गया, इसी

तर्हे पंदरहवें तीर्थकर तक सात तीर्थकरोंका शासन विभेद होता रहा, और मिथ्याधर्म बढ गये.

तिस पीछें सिंहपुरी नगरीमें इक्ष्वाकु वंशी विष्णुराजा हुआ तिसकी विष्णुश्री राणी तिनोंका पुत्र श्रीश्रेयांसनाथ नामा इग्यारमा तीर्थकर हुआ, तिनके समयमें वेताड्यपर्वतसें श्रीकंठ नामा विद्याधरके पुत्रने वझोत्तर विद्याधरकी वेटीकों हरकें अपने वहनोइ राक्षसवंशी लंकाका राजा कीर्त्तिधवलकी शरण गया, तब कीर्त्तिधवलने तीनसौ योजन परिमाण वानर द्वीप उनके रहनेकों दीया, तिनोंके संतानोंमेंसें चित्र विचित्र विद्याधरोने विद्यासें बंदरका रूप बनाया, तब वानर द्वीपके रहनेसें और वानरका रूप बनानेसें वानरवंशी प्रसिद्ध हूये, तिनोंहीकी औलादमें वाली और सुग्रीवादिक हूये हैं.

तथा श्रेयांसनाथके समयमें पहिला त्रिपृष्ठ नामा वासुदेव हरिवंशमें हुआ, तिसकी उत्पत्ति ऐसें हैं:—पोतनपुर नगरमें हरिवंशी जितशत्रु नामा राजा हुआ, तिसकी धारणी नामा राणी थी, तिसका अचल नामा पुत्र और मृगावती नामा वेटीथी, सो अत्यंत रूपवान् और यौवनवंती थी, उसकों देखकें उसके पिता जितशत्रुने अपनी राणी बना लीनी तब लोकों ने जितशत्रु राजाका नाम प्रजापति रक्का, अर्थात् अपनी वेटीका पति ऐसा नाम रक्का, तबहीसें वेदोंमें यह श्रुति लिखी गइ “प्रजापतिर्वैत्वा दुहितरमन्य ध्यायद्विनित्यन्यथाहुपुरसमित्यन्येतामृश्योञ्जूत्वा तदसावा दित्योञ्जवत्” इसका जावार्थ यह है कि:—प्रजापतिब्रह्मा अपनी वेटीसें विषय सेवनेकों प्राप्ति होता हुआ, हमारे जैनमतवालोंकी तो इस अर्थसें कुछ हानी नहीं, परंतु जिनलोकोंने ब्रह्माजीकों वेदकर्त्ता हिरण्यगर्भके नामसें इश्वर माना हैं, और इस कथाकों पुराणोंमें लिखा है, उनका फजीता तो जरूर दूसरे मतवाले करेंगे? इसमें हम क्या करे? क्योंकि जो पुरुष अपने हाथोंसेंही अपना मुह काला करे, तब उसकों देखने वाले क्योंकर हांसी न करेंगे? यद्यपि मीमांसाके वार्त्तिककार कुमारिलनें इस श्रुतिके अर्थके कलंक दूर करणेकों मनमानी कटपना करी है, तथा इस कालमें दयानंद सरस्वतीनेंजी वेदश्रुतियोंके कलंक दूर करनेकों अपनी बनाइ जायमें खूब अर्थोंके जोर तोड लगाये हैं, परंतु जो पुराणवालेने कथानक

लिखा हैं, तिसकों क्योंकर ठिपा सकेंगे? इसमें यह मशाल मशाल है कि:-बूंदकी बात तो विलायत गई अब क्यों घड़े रुम्हाते हो अज्ञात मारे मतमेंतो वेदश्रुति और ब्रह्मा (प्रजापति) का अर्थ यथार्थही का है. अरु जब त्रिपृष्ठ और अचल दोनो योवनवंत हूये तब तिनोनें प्रियं डका राजा अश्वग्रीवकों मारके तीन खंमका राज्य करा.

तिस पीठें चंपा पुरीका इक्ष्वाकुवंशी वसुपूज्य नामा राजा हुआ, तिसकी जया नामा राणी तिनोका पुत्र श्रीवासुपूज्यनाथ नामा बारहवां तीर्थंकर हुआ, तिनोके वारें दूसरा द्विपृष्ठ वासुदेव और अचल वल्लभ देव हूये. और इनका प्रतिशत्रु रावण समान तारक नामा दूसरा प्रतिवासुदेव हुआ, इन सर्ष वासुदेव और चक्रवर्त्ति आदिकोंका संपूर्ण वरन न त्रेशठ शलाका पुरुष चरित्रसें जान लेनां.

तिस पीठें कपिलपुर नगरमें इक्ष्वाकुवंशी कृतवर्माना नामा राजा हुआ, तिसकी श्यामा नामा राणी, तिनोका पुत्र श्रीधिमलनाथ नामा तेरहवां तीर्थंकर हुआ, तिनोके वारें तिसरा स्वयंभु वासुदेव और जड़नामा वल्लभ देव तथा मेरक नामा प्रतिवासुदेव हूये.

तिस पीठें अयोध्या नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी सिंहसेन राजा हुआ तिसकी सुयशाराणी तिनोका पुत्र श्रीअनंताथ नामा चौदहवां तीर्थंकर हुआ, तिनके वारें चौथा पुरुषोत्तम नामा वासुदेव और सुप्रज नामा वल्लभ देव तथा मधुकैटज नामा प्रतिवासुदेव हूये.

तिस पीठें रत्नपुरी नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी जानु नामा राजा हुआ, तिसकी सुव्रतानामा राणी तिनोका पुत्र श्रीधर्मनाथ नामा पंदरहवां तीर्थंकर हुआ, तिनके वारे पांचमा पुरुषसिंह नामा वासुदेव और सुदर्शन नामा वल्लभ देव तथा निशुंज नामा प्रतिवासुदेव हुआ, यहांतक पांच वासुदेव हूये सो पांचोही, अरिहंतोके सेवक अर्थात् जैनधर्मी हूये.

तिस पीठें पंदरहवे धर्मनाथ और शोलवें श्रीशांतिनाथजीके अंतरमेंतीसरा मधवा नामा चक्रवर्त्ती और चौथा सनत्कुमार नामा चक्रवर्त्ती हूये.

तिस पीठें हस्तिनापुरी नगरीमें कुरुवंशी विश्वशेन राजा हुआ तिसकी अचिरा राणी तिनका पुत्र श्रीशांतिनाथ नामा हुआ सो पहिला इक्ष्वासमें तो पांचमा चक्रवर्त्ति था पीठे दीक्षावेके केवली होकरशोलवांतीर्थंकर हुआ.

तिस पीठें हस्तिना पुर नगरमें कुरुवंशी सूरनामा राजा हुआ, तिसकी श्रीराणी तिनोंका पुत्र श्रीकुंथुनाथ हुआ, सो प्रथम यहस्यावस्यामें ठठा चक्रवर्त्ति था, अरु दीक्षा लीया पीठें सत्तरहवां तीर्थकर हुआ.

तिस पीठे हस्तिनापुरनगरीमें कुरुवंशी सुदर्शन नामा राजा हुआ, तिसकी देवी राणी, तिनोंका पुत्र श्रीअरुनाथ हुआ, सो यहस्यावासमें तो सातवां चक्रवर्त्ति था और दीक्षा लीया पीठें अष्टारहवां तीर्थकर हुआ.

अष्टारहवें और उन्नीसवें तीर्थकरके अंतरमें आठवां कुरुवंशी सुभूज नामा चक्रवर्त्ति हुआ, वह शुभूमके बखतमेंही परशुराम हुआ, इन दोनों का संबंध जैनमतके शास्त्रोंमें जैसे लिखा है तैसें मैं भी यहाँ लिख देता हूँ.

यह कथा योग्य शास्त्रमें ऐसे लिखी है कि, वसंत पुर नामा नगरमें उवन्नवंश नामा अर्थात् जिसका कोइनी संबंधी नहीं था ऐसा अग्निक नामा एक लडका था, सो अग्निक एकदा समये किसी साथवाराके साथ देशांतरकों जाता हुआ मार्गमें साथसें जूबके जंगलमें एक तापसके आश्रममें गया, तब कुलपति तापसने तिसकों अपना पुत्र बनाके रखलीया, पीठें तहां अग्निकने बड़ाजारी घोर तप करा और बड़ा तेजस्वी हुआ, जगत्में यमदग्नि तापसके नामसें प्रसिद्ध हुआ. इस अवसरमें एक जैनमति विश्वानर नामा देव और दूसरा तापसोंका जक्त ध्वनंतरी नामा देव, यह दोनो देव परस्पर विवाद करने लगे, तिसमें विश्वानर तो ऐसा कहने लगा कि:- श्रीअर्हंतका कहा धर्म प्रामाणिक है? और दूसरा कहने लगा कि तापसोंका धर्म सच्चा है, तब विश्वानरने कहा कि दोनो धर्मके गुरुओं की परीक्षा कर लो तिसमेंजी अर्हंतधर्मके तो जघन्य गुरु जो होवे तिसकी और तापस धर्मके उत्कृष्ट गुरु जो होवे, तिसका धैर्य देख लो, तब मिथिला नगरीका पद्मरथ राजा नवाही जिन धर्मी हो कर जावयति हुआथा सो चंपानगरीमें गुरुओंके पास दीक्षा लेने वास्ते जाताथा, तिसकों पंथमें तिन दोनो देवताओंने देखा, तब रस्तेमें दुःख देनेवाले बहुत कंडे कंकरे बना दीचे, तथा रस्तेके सिवाय दूसरे स्थानमें बहुत कीडे आदि जीव हरजगें बना दीचे, तब राजा जावयतिके जावोंसें कमल समान कोमल, नंगे पगोंसें उन कांटे कंकरोके उपर चला जाता है, पगोंमेंसुं रुधिरकी ततीरीयां बूटती हैं, तोजी जीवों संयुक्त भूमि उपर नहीं चलता है, तब देवता

श्रोने गीत नाटकका बड़ा प्रारंभ करा तोजी वो राजा
 आ तब दोनों देवता सिद्धपुत्रोंका रूप करके राजाको कहने लगे, हे
 प्राग ! तेरी आयु अति बहुत है, तूं स्वयं जोगवीलास कर क्योंकि यों
 तप करना ठीक नहीं इस वास्ते जब तूं मृत् हो जावंगा, तब दीक्षा
 लीजो यह बात सुन कर राजा कहने लगा यदि मेरा बहुत आयु है,
 व में बहुत धर्म करुंगा क्योंकि जितना ऊंडा पाणी होता है, तितनीही
 लकी नाखिची बढ़ जाती है और यौवनमें जो इंद्रियोंको जीतना है, सोइ
 सली तप होता है. तब तिन देवताओंने जानां यह तो कदापि चलायमान
 न हांगा, पीठें वो दोनों देवता मिल कर सर्वसं उत्कृष्ट जमदग्नि तापसके पास
 परीक्षा करणेंको गये, तब तिनोंने जिसकी बड़वृद्धकी जटाकी तरें तो धरतीसे
 जटा लग रही है, और पगोंमें सप्पोंकी बिंदीयां बन गई हैं, ऐसे हाथमें
 जमदग्निकों देखा, तब वो दोनों देवतानें देव मायासे जमदग्निकी दाढीमें
 घोंसला बनाकर चिड़ा और चिड़ी बनकर घोंसलेमें दोनों बंध गये पीठें
 चिड़ा चिड़ीसे कहने लगा मैं हिमवत पर्वतमें जाऊंगा तब चिड़ी कहने
 लगी मैं तुझे कभी न जाने देऊंगी, क्योंकि तूं तहां जाके किसी और चि
 डीसे आसक्त हो जावंगा, फेर मेरा क्या हाथ होवेगा ? तब चिड़ा कहने
 लगा कि जो मैं फिर कर न आऊं, तो मुझे गो घातका पाप लगे, तब
 चिड़ी कहने लगी मैं तेरी शपथको नहीं मानती हूँ, जो मैं सपथ (सो
 गंद) कहूं वो तूं करे, तो मैं जाने देऊंगी, तब चिड़ेने कहा तूं कह दे तब
 चिड़ी कहने लगी कि जो तूं किसी चिड़ीसे यारी करे तो इस जमदग्नि
 का जो पाप है, सो तुझको लगे. चिड़ा चिड़ीका ऐसा वचन सुणके जम
 दग्निकों क्रोधोत्पन्न हुआ तब दोनों हाथोंसे चिड़ा चिड़ीको पकड़ लीया
 और कहता हुआ कि मैं तो बड़ा दुष्कर तप जो पापोंका नाश करने वाला
 है, सो कर रहा हूं तो फेर मेरेमें ऐसा कौनसा पाप शेष रह गया है जिससे
 तुम मुझे पापी बतलाते हो ? तब चिड़ा जमदग्निकों कहता हूँ, हे ऋषि !
 तूं हमारे उपर कोप मत कर. क्योंकि हमने ऊँच नहीं कहा है, और जो
 तेरेको अपने तपका घमंड है, सो तप तेरा निष्फल है, क्योंकि तुमारे
 शास्त्रोंमें लिखा है, जो “ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति ” अर्थात् पुत्र रहितकी गति
 नहीं यह तुमने शास्त्रमें नहीं सुना ? तो जिसकी शुभगति न होइ तिससे

अधिक और पापी कौन है? तब जमदग्निने शोचा कि हमारे शास्त्रमें तो जैसे चिडेने कहा है तेसेही है, तब मनमें विचारा जब मेरे स्त्री, और पुत्र नहीं, तब मेरा सर्व तप ऐसा है, जैसा पाणीके प्रवाहमें मूतनां, तैसा है, पीठें जमदग्नि के मनमें स्त्रीकी चाहना उत्पन्न हुई, यह देखके ध्वनंतरि देवता श्रावक जैनधर्मी हो गया और उहांसे दोनो देवता अहं हो गये और जमदग्नि तहांसे ऊठकेनेमिक कोष्टक नगरमें पहुंचा तिस नगरमें जितशत्रुराजा था, तिसके बहुत बेटीयां थी तिस राजा पासों एक कन्या मांगु? ऐसा विचार किया? राजाजी आत्मनसें उठके और हाथ जोनके कहता हुआ कि आप कित वास्ते आये हो? और मुझे आदेश देउ क्या करूं? तब जमदग्निने कहा मैं तेरे पास तेरी एक कन्या मांगने आया हूं तब राजाने कहा मैरी सो (१००) पुत्री हैं तिनमेंसूं जो नत्ती तुमकों बांठे सो तुम लेख्यो, तब जमदग्नि कन्यायोंके महिलमें गया और कहने लगा कि तुममेंसें जितने मेरी धर्मपत्नी (स्त्री) बननां है, सो कह देवे कि मैं तुमारी स्त्री बनूंगी, तब तिन राजपुत्रीयोंने जटाला और पलित धौलेकेशोंवाला दुर्वल और जीव मांगके खानेवाला जब देखा और उसका पूर्वोक्त वचन सुना तब सजोने धुंका और कहा कि ऐसी बात कहते दूये तुजकों लज्जा नहीं आती है? यह बात सुनकर जमदग्नि को बड़ा क्रोध चढा, तब विद्याके प्रज्ञावसें उन राजपुत्रीयोंको कूबनी और महाकुरूपवान् बना दीया, और आप तहांसे निकलके महिलोंके अंगनमें आया, तहां एक ठोटी राजाकी बेटी रेणु पुंजमें (मट्टीके ढेरमें) खेळ रही थी, तिसको हाथमें विजोरेका फल ले कर कहने लगा हे रेणुका! तूं मुजकों बांठती है? तब तिस वाञ्छिकाने विजोरेको देखके हाथ पतारा तब मुनिने कहा मुजकों यह बांठती है ऐसे कहकर मुनिने उसको ले लीया पीठे राजाने कितनीक गोथां और धन देकर उनकीका विवाह उसके साथ विधिते कर दीया. तब जमदग्निने शास्त्रीयोंके कहते तब कन्यायोंको अग्रा कर दीया. और तिस रेणुका जार्याको लेकर अपने आश्रममें आया पीठें तिस मुग्धा, मधुर आकृति, हरीपीतनान खोजाकीको प्रेमसें वृद्धि करता चला, जब जमदग्नि को अंगुष्ठियों ऊपर दिन गिबतेको वो रेणुका सुंदर यौवन कानके लीजा वनको प्रात हुई, तब जमदग्निने

अग्निकी साक्षी करके रेणुकासें फिर विवाह करा, जब रेणुका कृतकाशकों प्राप्ति हुई, तब जमदग्नि कहने लगा कि मैं तेरे वास्ते चरु साधता हूँ, व "होममें नालनेकी वस्तुआंकों कहते हैं" जिस्सें सर्व ब्राह्मणोंमें उत्तम प्र ताप वाला तेरेकों पुत्र होवेगा, तब रेणुकानें कहा हस्तिना पुरमें कुरुवंशी अनंतवीर्य राजाकों मेरी वहिन व्याही है तिसके वास्ते तूं क्षत्रिय चरु जी साध्य, अर्थात् मंत्रोंसें संस्कार करके सिद्धकर, पीठे जमदग्निने ब्राह्मण चरु तो अथर्णी जार्या वास्ते अरु क्षत्रिय चरु तिस जार्याकी वहिन वाले सिद्ध करा तब रेणुकाने मनमें विचार कराकि मैं जेसें अटवीमें हरिणीकी तरें रहती हूँ, तो मेरा पुत्रजी वैसेही जंगलोमें रहेगा, इस वास्ते मैं क्षत्रिय चरु नक्षण करूं, जिस्सें मेरा पुत्र राजा होके इस जंगल वाससें बूट जावे, ऐसा विचारके क्षत्रिय चरु खा लीया और ब्राह्मण चरु अपनी वहिनकों न क्षण कराया; तब तिन दोनोंके दो पुत्र हुये तिसमें रेणुकाके तो राम नामक पुत्र हुये, और रेणुकाकी वहिनके कृतवीर्य पुत्र हुये, क्रमसें दोनों पडे हुये, राम तो आश्रममें पला, और कृतवीर्य राज महेलांमें पला, राम तो क्षत्रीतेज अर्थात् क्षत्रिय पणेंकी तेजी देखानें लगा, अन्यदा एक विद्याधर अतिसार रोग वाला तिस आश्रममें आ गया, अतिसारके प्रभावसें आकाशगामिनी विद्या झूल गया, तब तिस मांदे विद्याधरकी रामने थोपध पथ्यादि करके नाइकी तरें सेवा करी, पीठे तिस विद्याधरने तुष्ट मान होके रामको परशुविद्या दीनी, तब रामजी सरकडेके वनमें जाकर तिस विद्याकों सिद्ध करता हुआ, तिस विद्याके प्रभावसें राम परशुराम नाम करके जगत्में प्रसिद्ध हुआ, एकदा अवसरमें अपना जमदग्नि पतिकां पू ठके रेणुका वनी उलंठासें अथर्णी वहिनके मिलने वास्ते हस्तिना पुरमें गइ, तहां रेणुकाकों अथर्णी शाखि जान कर अनंतवीर्य राजा हंसी मश करी करने लागी, और रेणुकाका बहुत सुंदर रूप देख कर कामातुर होके उसके साथ निरंकुश हो कर विषय सेवन करने लगा, तब अनंतवीर्यके जोगसें रेणुकाके एक पुत्र जन्मा, पीठे जमदग्नि पुत्र सहित रेणुकाकों आश्रममें व्याया क्योंकि पुरुष जब स्त्रीयांका बुद्ध हो जाता है तब बहुत ताइसें कोइती दोष नहीं देखता है, जब परशुरामने अपनी माताकों पुत्र सहित देखा, तब क्रोधमें आकर परशुसें अपनी माताका और तिस वन

केका दोनोंका शिर काट माखा, जब यह वृत्तांत अनंतवीर्य राजाने सुना, तब क्रोधमें जर कर और फौज ले कर जमदग्नि का आश्रम जाल फूक तोड़ फोर गेरा और सर्व तापसोंको त्रास मान करा, तब तापसोंने दो डूँठे हूँयां जो रौला करा तिसकों परशुरामने सुना और सारा वृत्तांत सुनके परशु लेके राजाकी सेना ऊपर दोहा, परशुरामने परशुसे राजा और राजाकी सेना सुजटोंको काटकी तरे फाड़के गेर दीया, आप पीछे आश्रममें चला गया, उधर प्रधान राजपुरुषोंने अनंतवीर्यके बेटे कृतवीर्यको राजसिंहासन उपर बैठाया, परंतु वो उमरमें ठोटा था, एकदिन अपनी माताके मुखसे अपने पिताके मरणका वृत्तांत सुनके सर्पके डंसे हूँयेकी तरे आ कर जमदग्नि को मार दीया, तब परशुराम अपना पिताका बंध देखके क्रोधमें जाज्वल मान हो कर हस्तिनापुरमें आके कृतवीर्यको मारके आप राजसिंहासन उपर बैठ गया, क्योंकि राज्य जो है, सो पराक्रमके आधीन है, तब कृतवीर्यकी तारा नामा गर्जवती राणी परशुरामके जयसे दौनकर किसी जंगलमें तापसोंके आश्रममें गई, तब तिन तापसोंने दया करके तिस राणीको अपने मछके जोंहरेमें निधानकी तरे ठिपाके रखा, तहां तिस राणीके चौदह स्वप्न सूचित पुत्र जन्मा तिसका नाम तिसकी माताने सूझूम रखा. क्षत्रिय जो जहां मिलता है, तहांही परशुरामका कुहाना जाज्वलमान होजाता है, तब परशुराम परशुसे क्षत्रियोंका शिर काट देता है, अन्यदा परशुराम जिहां ठिपी हूँइ राणी पुत्रसे रहती थी तिस आश्रममें आया तहां परशुरामका परशु जाज्वलमान हुआ, तब परशुरामने तापसोंको पूठा, क्या यहां कोई क्षत्रिय है, तब तापसोने कहा हम गृहस्थावासमें क्षत्रिय थे, तब परशुरामने जी क्षत्रियोंको ठोक्के सात बार निःक्षत्रिय पृथ्वी करी, अर्थात् सात बार चढ़ाई करके अपनी जाणमें कोई क्षत्रिय बाकी नहीं ठोना, जैसे अग्नि, पर्वत ऊपर घांसको नहीं ठोमती है, तैसे परशुरामने जी जो क्षत्रिय राजादि प्रसिद्ध थे, तिनको मारके तिनको दाढासे एक थाल जरा, और परशुरामने ठाना निमित्तियेको पूठा कि मेरा मरण किसके हाथसे होगा? तब निमित्तियेने कहा कि जो तैने दाढासे थाल जरा है, सो थाल जिसके देखनेसे दाढाकी क्षीर बन जायेगी, और इस सिंहासन ऊपर बैठके जो तिस क्षीरको खा

यगा, तिसके हाथसें तेरा मरणा होवेगा, यह सुन कर परशुरामने इन शाला बनाइ, और दानशालाके आगे एक सिंहासन रचाया, तिस ऊपर कृत्रियोंकी दाढ़ावाला स्थल रखवाया, अब इधर तापसांके आश्रममें प्रतिदिन तापस सूक्ष्म बालककों लाने लाते, खिलाते, अंगणके वृद्धी तरें वृद्धि करते हुये रहतेहैं, इस अवसरमें मेघ नामा विद्याधर कोइ निमित्तियेकों पूठने लगा कि मेरी जो पद्मश्री कन्या है, तिसका वर कौन होवेगा? तब तिस निमित्तियेने सूक्ष्म वर चतखाया, और उसका सर्व वृत्तांतजी सुना दीया, तब मेघ विद्याधरने अपनी बेटी सूक्ष्मकों व्याही, और तिसकाही सेवक बन गया. एकदा कूपके मेरुककी तरें और कंदी जानमें रहित हुआ होया सूक्ष्म अपनी माताकों पूठने लगा कि हे माता! इतनाही लोक है, कि जिसमें हम रहते हैं, क्या इससे अधिकजी है? तब माता कहने लगी हे पुत्र! लोक तो अनंत है, तिसमें मक्षिके पग जितनी जगमें यह आश्रम है, इस लोकमें बहुत प्रसिद्ध हस्तिना पुर नगर है, तिस न गरीका राजा तेरा पिता कृतवीर्य था, परंतु परशुराम तेरे पिताकों मारके हस्तिना पुरका राजा बन गया है, और तिस परशुरामने निःकृत्रिय पृथ्वी कर दइ है, तिस परशुरामके जयसें हम यहां आश्रममें ठिपे हुये बैठे हैं. अपनी माताका यह कहना सुनके सूक्ष्म जोमकी तरें अर्थात् मंग लके तारेकी तरें खाल हुआ, और तहांसे निकलके सीधा हस्तिना पुरमें आया, तब लोकोंने पूठा कि तूं शैसा अत्यंत सुंदर किसका बेटा हैं? तब कहा मैं कृत्रियका पुत्र हूं. तब लोकोंने कहा तूं यहां ज्वलती आगमें क्यों आया? तब तिसने कहा मैं परशुरामकों मारनेके वास्ते आया हूं, तब लोकोंने बालक जानके उसकी बात उपर कुठ ख्याल न करा, अब सूक्ष्म सिंहकी तरें उस पूर्वोक्त सिंहासन उपर जाके बैठा, और तहां वे वृत्ताके विनियोगसें दाढ़ाकी क्षीर बन गइ, तिसकों सूक्ष्म खाने लग गया, तब तहां जो रखवाले ब्राह्मण थे, वे सर्व सूक्ष्मको मारणेंकों उठे, तब मेघनाद विद्याधरने सब ब्राह्मणकों मार दीया तब कंपता हुआ और हो गेकों चावता हुआ, क्रोधमें जरा हुआ, शैसा परशुराम कोहाडा (परशु) लेके सूक्ष्मकों मारने आया. परशुरामने सूक्ष्मके मारणेंकों परशु चलाया वो परशु सूक्ष्मतक पहुंचनेसें पहिछाही आगके अंगारेकी तरें बुरा गया,

विद्या देवी जो थी, सो सुजूमके पुण्य प्रजावसें परशुकों ठोम के जाग गइ तब सुजूमनें शस्त्रके अजावसें थालही उठाके परशुरामकों मारा तिस थालका चक्र बन गया, तिस चक्रने परशुरामका मस्तक काट गेरा तिस चक्रसेंही सुजूम आठवां चक्रवर्त्ति हुआ।

इस कथा उपर लोकोंने जो यह कथा बना रखी, सो ठीक नहीं है, सो कथा कहते हैं. जैसे कि परशुराम परशुसें द्रवियोंकों काटता हुआ रामचंद्रजीके पास पहुंचा और परशुसें रामचंद्रजीकों मारने लगा, तब रामचंद्रजीने नरमाइसें पग चंपी करके उसका तेज हर लीया, तब परशुरामका परशु हाथसें गिर पना, और फिर न उठा सका, यह श्रीरामचंद्र नहीं था, परंतु यह तो सुजूम नामा आठवां चक्रवर्त्ति था, जिसने परशुरामका काम तमाम कीया, इस कथाके बनाने वालोंने परशुरामकी हीनता दूर करनेकों श्रीरामचंद्रजीका संबंध लिख दीया है, असली सुजूमचक्रवर्त्ति लिखने वालोंने यहजी शोचा होगा एक अवतारनें दूसरे अवतारका अंस खींच लीया, इसमें परशुरामकी लघुता न होवेगी, परंतु यह नहीं शोचा होगा कि दोनों अवतार अज्ञानी बन जायेंगे. जब परशुराम आपही अपने अंशकों कोहाडेसें काटने लगा, तब तिसमें और अधिक अज्ञानी कौन बनेगा ? जब सुजूम चक्रवर्त्ति आठमा हुआ, तब जैसे परशुरामने सात बार निःद्रविया पृथ्वी करी थी, तैसें सुजूमने पिढवे वैरसें श्क्कवीश बार निर्वाहण पृथ्वी करी अपनी जाणमें कोइजी ब्राह्मण जीता नहीं ठोडा, इसी वास्ते इन राजायोंकों ब्राह्मणोंनें दैत्य, राक्षसके नामसें पुस्तकोंमें लिख दीया है, यह दोनों मरके अधोगतिमें गये ॥ इति परशुराम और सुजूमचक्रवर्त्तिका संबंध संपूर्णः ॥

यह सुजूमचक्रवर्त्तिसें पहिला इसी अंतरेमें ठठा पुरुषपुंमरीक वासुदेव तथा आनंद नामा बलदेव और बलि नामा प्रतिवासुदेव हुये, तथा सुजूमके पीठें इस अंतरेमें दत्त नामा सातमा वासुदेव तथा नंद नामा बलदेव और प्रव्हाद नामा प्रतिवासुदेव हुये.

तीस पीठें मिथुला नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी कुंज राजा हुआ, तिसकी प्रजावती राणी तिनीकी पुत्री मल्लिनाथ नामा एगुणवीसमा तीर्थंकर हुआ, तिस पीठें राजग्रह नगरीमें हरिवंशी सुमित्र राजा हुआ, तिसकी

पद्मावती राणी तिनका पुत्र मुनिसुव्रत नामा वीशमा तीर्थंकर दूध्या, नोंकें समयमें महापद्म नामा नवमा चक्रवर्त्ति दूध्या, तिसका संबंध ब्रह्म शलाका पुरुष चरित्रसें जान लेनां परंतु तिसके जाइ विष्णु कुमारका जे डासा संबंध यहां लिखते हैं.

इस्तिना पुर नगरमें पद्मोत्तर नामा राजा तिसकी ज्वालादेवी राणी तिनका बड़ा पुत्र विष्णुकुमार, और ठोटा जाइ महापद्म दूध्या, तिस अन्न सरमें थवंती नगरीमें श्रीधर्म नामा राजेके मंत्री नमुचि अथपर नाम ब्रह्म यह नामके मिथ्यादृष्टि ब्राह्मणने श्रीमुनिसुव्रत तीर्थंकरका शिष्य श्री मुप्रताचार्यके साथ अपनी मत्तका विवाद करा, बादमें हार गया. तब राजा त्रिकां तक्षवार लेकें आचार्यको मारने चला, रस्तेमें पग थंजगये यह ल रूप राजानें सुनकें अपने राज्यसें बाहिर निकास दीया तब नमुचि ब्रह्म तहांसैं चलके इस्तिना पुरमें युवराज महापद्मकी सेवा करने लगा किसी काममें लुप्त मान होकें महापद्मने तिसको यथेष्टा वर दीया पीछें पद्मोत्तर राजा और विष्णु कुमार दोनोंनें सुव्रत गुरुके पास दीक्षा ले के पद्मोत्तर मोक्ष गया, और विष्णु कुमार तपके प्रज्ञाप्रसें महालब्धिमान् दूध्या इस अवसरमें मुप्रताचार्य फेर इस्तिना पुरमें आये, तब नमुचिबखनें विचारा कि यह वर लेनेका अवसर है, तब महापद्म चक्रवर्त्तिसें विनति करीकि:—मैंनें जैमें देवोंमें कहा है, तेसें एक महायज्ञ करना है इस वास्ते मैं पूर्वांक वर मांगना चाहता हूं, तब महापद्मने कहा मांग, तब नमुचिने कहा मुझे कितने दिन तक आपनां सर्व राज दे देवो, यह सुनकर महापद्मनें उसके कहे दिन तक सर्व राज उसे दे कर आप अपने अंतेश्रोमें चला गया, तब नमुचिबखनें नगरसें निकलके यह वास्ते यह पाग बनाया, उसमें दीक्षा ले के आसन उपर बैठा तब जैनमतके साधु ठोरके दूसरे सर्व पाग नी त्रिशु और गृहस्थ जेटना ले के आये जेट दे के सबोंने नमस्कार करा, तब नमुचिबखनें पूछा कि नहीं आया होये, ऐसा तो कोइ रहा नहीं? तब लोकोंनें कहा कि जैनमती मुप्रताचार्य ब्रह्मके सर्व दर्शनी आ गये हैं, तब नमुचिबखनें यह ठिड प्रगट करके और श्रोधमें तरकें सिंग ही घोषानेकों जेजे, और कइसा जेजा कि राजा चाहो कैसाही हो, तो ची सर्वकों मानने योग्य है, उसमेंनी सावुठकों तो विशेष करके मान

नां चाहियें, क्यों राजासें उपरांत जैसे अनाथ लिंगियोंकी रक्षा करने वाला कौन है ? तथा मेरा तुम कुठ करने समर्थ नहीं. और बड़े अजि मानी हो, तथा हमारे धर्मके निंदक हो इस वास्ते मेरे राजसें बाहिर हो जाऊं. जो रहेगा, उसकों में मार काडूंगा इसमें मुझे पापनी नहीं होगा, तब गुरुने आ कर मीठे वचनसें कहा कि हमारा यह कदप नहीं जो गृहस्थके कार्यमें जानां, परंतु हम अजिमानसेंही नहीं आये ऐसा मत समझना क्योंकि साधु समजावसें अपने धर्मकृत्यमें लगे रहते हैं, तब नमुचिवल अति शांतिवृत्तिवाले मुनियोंकों कठोर हो कर कहनें लगा कि सात दिनके अंदर मेरे राजसें बाहिर हो जाऊं जो रहेगा, सो मारा जायगा, यह सुनके सब साधु अपने तपोवनमें आये, और शोचने लगे कि अब क्या उपाय करीयें ? तब एक साधु कहने लगा कि महापद्म चक्रवर्तिका बना जाइ विष्णुमुनि लब्धिपात्र है, अर्थात् बन्नी शक्तिवाला मेरु पर्वत ऊपर है, तिसके कहनेसें यह नमुचिवल प्रशान्त हो जावेगा; इस वास्ते कोइ चारण साधु उसकों यहां बोला द्यावे तो ठीक है तब एक साधु बोला कि मैरी उहां मेरु पर्वत पर जानेकी तो शक्ति है, परंतु पीठे आवनेकी शक्ति नहीं है तब गुरु कहने लगे कि तुमकों पीठा विष्णु मुनिही यहां ले आवेंगे, तुम जाऊं. तब वो साधु लब्धिसें एक क्षणमें तहां गया, और सर्व वृत्तांत सुनाया, तब विष्णु मुनि उस साधुकोंनी साथ ले कर तत्काल गुरुके पास आके बंदना करी, पीठें गुरुकी आज्ञासें एकिलाही राज सत्तामें आया उहां एक नमुचिवलके बिना और सर्व सत्ताके लोकोंनें उठके बंदना करी तब विष्णु मुनिने धर्मापदेश देकर कहाकि निःसंगी सा धुओंसें वैर करणां, यह महा नरकका कारण है, क्योंकि साधु किसीका कुठ बिगाफते नहीं. और जगत् तो और बड़े पुरुषोंकों नमस्कार करते हैं, किसी शास्त्रमें मुनि निंदे नहीं है, तो फेर यह आश्चर्य है, कि:-तुठ, क्ष णिक राजके पानेसें अंधे अधम पुरुष अपनेकों साधुओंसें नमस्कार क राया चाहते है, और नमुचिवलकों कहा तूं इस घुरे कामकों जानेदे जिस्सें साधु सब सुखसें रहे, और तूं क्यों मत्सरमें मगन होके अपना आप बिगाना चाहता है ? साधु बोलालेनें विद्वार करते नहीं क्योंकि वो मात्सेमें जीवोंकी बहुत उत्पत्ति हो जाती है और सर्व जगें तेराही राज्य

है, तो सर्व साधु सात दिनमें कहाँ चले जाय ? तब नमुचिवल कुकाष्ट्री तरें होकर बोला कि बहुत कहनेसे क्या है ? पांच दिनसे उपरांत जो कांइ तुमारा साधु मेरे राज्यमें रहेगा, तो मैं उसको चोरकी तरें बद्ध करूंगा और तू हमारे मानने योग्य है, उसी वास्ते तू जाकर साधुओंको कह दे जो कि जीवनां चाहते हो तो नमुचिके राज्यसे बाहिर चले जाऊं क्योंकि राज्य ब्राह्मणका है, और तेरे मान्यके रहने वास्ते तीन कदम अर्थात् तीन डिंग जगा देता हूं, तिससे बाहिर किसी साधुको देखूंगा तिसका शिरच्छेद करूंगा, तब विष्णुमुनिने विचारा कि यह साम अर्थात् मीठे वचनोंके योग्य नहीं यह तो बड़ा पापी साधुओंका घातक है, इसकी जड़ही उखाड़नी चाहियें, तब विष्णुमुनिने कोपमें आ कर वैक्रिय लब्धिसें लाख योजनकी देह बनाई, एक डिंगसेतो भरतक्षेत्रादि मापा और दूसरी डिंग पूर्वपर स मुझ उपर धरी और तीसरी डिंग नमुचिवलके शिर ऊपर रखके सिंहासनसे हेठ गेरके धरतीमें घसोड़ दीया, नमुचि मरके नरकमें पहुंच गया और विष्णुमुनिकों देवताओंने कानोंमें मधुर गीत सुनाकर शांत करा, तब शरीरको शंकोचके गुरोंके पास जाकर आलोचना करी, पापका प्रायश्चित्त लेकर विहार कर गया, जप, तप, कर संयम पालके मोक्षगया.

इस कथासे ऐसा मालूम होता है कि ब्राह्मणोंने पुराणोंमें जो लिखा है, कि विष्णु जगवान्ने वामन रूप करके यज्ञ करते बलिराजाको उखा, सो यही विष्णुमुनि अरु नमुचिकी कथाको बिगानके अपने मतके अनुसार औरकी और कथा बना लीनी है, क्योंकि श्रीजगवान्को क्या गरज थी, कि जो धर्मी बलिराजा यज्ञ करने वालेके साथ ठल करता ? यह तो निःकेवल बुद्धि हीनोका काम है, जो अपनी बेटीयोंसे तथा परस्त्रीयोंसे विषय सेवन करा कहनां, तथा जगवान्ने जूठ बोला, औरोंसे बोलाया, चोरी करी, औरोंसे कुशील जगवान्ने सेवन करा, उससे मारा, कपट करा, इत्यादि कामतो नीचजनोंके करनेके हैं, श्री वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर यह काम कजीजी नहीं करता तो और करने वालेको परमेश्वर ब्रूलकेजी न माननां चाहियें ॥ इति विष्णुमुनि तथा नमुचिवलका संबंध समाप्त ॥

वीसमें और इक्कीसमें तीर्थकरके अंतरमें श्री अयोध्या नगरीके दशरथराजाकी कौशल्या राणीका पद्म (रामचंद्र) नामा पुत्र हुआ, सो था

तथा वल्लभदेव और दशरथराजाकी सुमित्रा राणीका पुत्र नारायण अपर नाम लक्ष्मण सो आठमा वासुदेव हुआ जिनोंका प्रतिशत्रु रावण प्र तिवासुदेव लंकाका राजा हुआ सो जगतमें प्रसिद्ध है. इन तीनोंका य धार्थ स्वरूप पद्मचरित्रसें जान लेना, परंतु लौकिक रामायणमें जो रावणके दश शिर लिखे हैं, सो ठीक नहीं है, क्योंकि मनुष्यके खानाबिकही दश शिर कदापि नहीं हो सके हैं, पद्मचरित प्रथमानुयोग शास्त्रमें लिखा है कि रा वणके बड़े बड़ोंकी परंपरायसें एक बड़ा नव माणिकका हार चला आता था, सो रावणने वालावस्थासें अपने गलेमें पहिर लीये थे और वे नौही माणक बहुत बड़े थे, सो चार माणक एक पासें स्कंधके ऊपर हारमें जड़े हुये थे, और पांच माणक दूसरे पासे जड़े थे, दोनों स्कंधो उपर नव माणकमें नवमुख दीखते थे, और एक रावणका असली मुख था इस वास्ते दशमुख वाला रावण कहा जाता है, तथा रावणके समय सेही हिमालयके पहाणमें बड़ीनाथका तीर्थ उत्पन्न हुआ है, तिसकी उत्पत्ति जैनमतके शास्त्रोंसे अैसे जानी जाती है कि:-यह असली पार्श्व नाथकी मूर्तिथी, तिसकाही नाम बड़ीनाथ रखा गया है. इसका पूरा स्वरूप गद्यवन्द पार्श्वपुराणसें जान लेना.

तिस पीठें मिथुबानगरीमें इक्ष्वाकुवंशी विजयसेनराजाकी विप्रा राणी तिनका पुत्र श्रीनमिनाथ नामा इक्ष्वातमा तीर्थकर हुआ तिनोके वारें ह रिपेणनामा दशमा चक्रवर्त्ति हुआ है, तथा यह इक्ष्वातसें और बाबीसमें तीर्थकरके अंतरेमें इग्यारहमा जयनामा चक्रवर्त्ति हुआ.

तिस पीठें सौरीपुर नगरमें हरिवंशी समुद्रविजय राजा तिसकी शिवा देवी राणी तिनका पुत्र श्रीअरिष्टनेमि नामा बाबीसमा तीर्थकर हुआ तिनोके वारें तिनोके चाचेके वेड़े नवमे कृष्णवासुदेव और राम बलदेव (वल्लभ देव) इनका प्रतिशत्रु जरासिंधू प्रतिवासुदेव हुआ, तिसमें कृष्ण अरु बल चद्र तो जगतमें बहुत प्रसिद्ध हैं क्योंकि लोक श्रीकृष्ण वासुदेवको साक्षात् ईश्वर तथा ईश्वरका अवतार जगत्काकर्त्ता मानते हैं, यह बात कृष्ण वा सुदेवके जीते हुये नहीं हुआ, किंतु उनके मरे पीठें लोक कृष्ण वासुदेवको ईश्वरावतार मानने लगे हैं, तिसका हेतु ब्रह्म सत्ताका पुरुष चरित्रमें अैसें लिखाहै कि:-जब कृष्ण वासुदेवने कुसंबी वनमें शरीर ठोका तब कास क

रकें बाहुप्रज्ञा पृथ्वी (पातालमें) गये और बलजडजी एक सौ वर्षे जैनदीक्षा पालके पांचमें ब्रह्मदेवलोकमें गये उहां अवधिज्ञानसें अपने जाइ श्रीकृष्ण को पातालमें तीसरी पृथ्वीमें देखा, तब जाइके स्नेहसें वैक्रिय शरीर बनाकर श्रीकृष्णके पास पहुँचा और श्रीकृष्णसें आखिगन करके कहा कि मैं बलजडनामा तेरे पिठले जन्मका जाई हूँ, मैं काल करके पांचमें ब्रह्मदेवलोकमें उत्पन्न हुआ हूँ, और तेरे स्नेहसें यहां तेरे पास मिलनेको आया हूँ सो मैं तेरे सुख वास्ते क्या काम करूँ ? इतना कह कर जब बलजडजीनें आ पनें हाथों ऊपर कृष्णजीको लीया, तब कृष्णका शरीर पारेकी तर्र हाथसें करके जूमि ऊपर गिर पना, और मिलकर फेर संपूर्ण शरीर पूर्ववत् हो गया. इसीतरें प्रथम आखिगन करनेसें फेर विरतांत कहनेसें और हाथों ऊपर उठानेसें कृष्णनेजी जान लीयाकि यह मेरे पूर्वजवका अति बलज बलजड जाई है तब कृष्णजीने संच्रमसें उठके नमस्कार करा तब बलजडजीनें कहा हे ब्राता ! जो श्रीनेमिनाथने कहाथाकि यह विषय सुख महादुःखदाई है सो प्रत्यक्ष तुमको प्राप्ति हुआ और तुज कर्मनियंत्रितको मैं स्वर्गमेंजी नही ले जा सका हूँ परंतु तेरे स्नेहसें तेरे पासमें रहा चाहता हूँ तब कृष्णने कहा हे ब्राता ! तेरे रहनेसेंजी तो मैंनें करे दूये कर्मका फल अवश्यमेव जोगनाही है परंतु मुजकों इस दुःखसें वो दुःख बहुत अधिक है जो मैं छारिका और सकल परिवारके दग्ध होजानेसें एकला कुसंधी वनमें जरा कुमारके तीरसें मरा और मेरे शत्रुओंको सुख तथा मेरे मित्रोंको दुःख हुआ जगतमें सर्व यदुवंशी वदनाम दूये इस वास्ते है ब्राता ! तू जरतखंभमें जा कर चक्र, शारंग, शंख, गदाका धरने वाला और पीत (पीले) वस्त्र वाला, तथा गुरुड ध्वजा वाला, ऐसा मेरा रूप बना कर विमानमें बैठ कर लोकोंको दिखला तथा नीलवस्त्र और तालध्वज थरु हल, मूशल, शस्त्रका धरनेवाला ऐसा तू विमानमें बैठके अपना रूप सर्वजगें दिखलाकर लोकोंको कहो कि राम कृष्ण दोनो हम अविनाशी पुरुष है, और स्नेहा विहारी हैं, जब लोकोंको यह सत्य प्रतित हो जा वेगा तब हमारा सर्व अपयश दूर हो जावेगा यह श्रीकृष्णजीका कहना सर्व श्रीबलजडजीने स्वीकार कर लीया, और जरतखंभमें आकर कृष्ण बलजड दोनोका रूप करके सर्व जगे विमानारूढ दिखलाया और ऐसे क

हने लगा कि जो लोको ! तुम कृष्ण बलजङ्ग अर्थात् हमारे दोनोंकी सुंदर प्रतिमा बनाकर ईश्वरकी बुद्धिसें वरे आदरसें पूजो क्योंकि हमही जगतके रचनेवाले और स्थिति संहारके कर्त्ता हैं और हम अपनी इष्टासें स्वर्ग (वैकुण्ठ) संयहां चले आते हैं, और पीठें स्वर्गमें अर्थात् वैकुण्ठमें अपनी इष्टासें चले जाता हैं और द्वारका हमनेही रची थी तथा हमनेही उसका संहार करा है, क्यों कि जब हम, वैकुण्ठमें जानेकी इष्टा करते हैं, तब सर्व अपना वंश द्वारिका सहित दग्ध करके चले जाते है, हमारे उपरांत और कोई अन्य कर्त्ता, हर्त्ता नहीं है ऐसा बलजङ्गजीका कहना सुननेसें सर्व ग्राम (नगर) के लोकोंने कृष्ण बलजङ्गजीकी प्रतिमा सर्व जगे बना कर पूजी तब प्रतिमा पूजनेवालोंको बहुत सुख धनादिसें बलजङ्गने आनंदित करा, इस वास्ते बहुत लोक हरिजक्त हो गये, जबसें जक्त हूये तबसें पुस्तकोमें कृष्णजीको पूर्णब्रह्म परमात्मा ईश्वरादि नामोंसें लिखा, क्याजाने जबसें बलजङ्गजीने कृष्णकी पूजा कराई, तबसेंही लोकोने कृष्णकोही ईश्वरावतार माना हो ? और उस समयको पांच हजार वर्ष हूये हों, जिस्सें लौकीकमें कृष्ण हूयेको पांच हजार वर्ष कहते हैं.

वाइसमें अरु तेइसमें तीर्थकरके अंतरेमें वारमा ब्रह्मदत्तनामा चक्रवर्ती हुआ, तिस पीठे वाणारसी नगरीमें इन्द्राकुवंशी अश्वसेन राजा हुआ तिसकी वामादेवी राणी तिनका पुत्र श्रीपार्श्वनाथ नामा तेइसमा तीर्थकर हुआ तिस पीठें कृत्रियकुंभ नामा नगरमें इन्द्राकुवंशी दूसरा नाम सूर्यवंशी सिद्धार्थ नामा राजा हुआ तिसकी त्रिसला नामा राणी तिनका पुत्र श्रीवर्द्धमान महावीरनामा चौबीसमा चरम ठेला तीर्थकर हुआ, आज काल जो जैनमत जरत खंरुमें प्रचलित है, सो इसही श्रीमहावीरका शासन अर्थात् उनहीके कहे उपदेशसें चलता है, और जो जैनमतके शास्त्र हैं, वे सर्व इसही श्रीमहावीर जगवंत के उपदेशानुसार रचे गये है यह श्रीमहावीर जगवंतका संपूर्ण वृत्तांत देखना होवे, तदा आवश्यक सूत्रवृत्ति कदपसूत्र वृत्ति तथा श्रीमहावीर चरितादि ग्रंथोंसें जान लेना.

इति श्रीतपगङ्गीय मुनिश्रीगणि मणिविजय तद्विष्य मुनिबुद्धिविजय तद्विष्य मुनि आत्माराम आनंदविजय विरचिते जैनतत्त्वादशें श्रीरूपजादि महावीर पर्यंत पूर्ववृत्तांत निरूपण नाम एकादश परिच्छेदः संपूर्णः ॥ १ ॥

अथ छादशः परिच्छेद प्रारंभः ॥

यह परिच्छेदमें श्रीमहावीर जगवानसें लेकर आजकाल पर्यंत कितनाक वृत्तांत लिखते हैं. श्रीमहावीर जगवंतके इग्यारह शिष्य मुख्य, और सब साधुओंमें बड़े हूये, तिनका नाम कहते हैं. १ इंद्रिचूति, अर्थात् गौतम स्वामी, २ अग्निचूति, ३ वायुचूति, ४ व्यक्तस्वामी, ५ सुधर्मस्वामी, ६ मंडिकपुत्र, ७ मोर्यपुत्र, ८ अवकंपित, ९ अचलव्रजाता, १० मेतार्य, ११ प्रनास, यह इग्यारह वने शिष्य श्रीमहावीर जगवंतके हुए और सब शिष्य तो चौदह हजार साधु हूये, परंतु चौदह हजारमें फदेजी अधिक नहीं हूये, और साध्वी ठीकीस हजार हुए, तथा श्रेणिक, उदायन, फोणक, उदायी, वत्सदेशका उदायन, चेटक, नयमल्लिक क्षत्रियजातिके, नयमल्लिक क्षत्रिय जातिके, उदायनका राजा चंद्रप्रद्योत, अमलकदश नगरीका स्वेत नामे राजा, पोलासपुरका विजय राजा, क्षत्रिय कुंडकाने दिव्यरत्न राजा, धीतनय पट्टनका उदायनराजा, दशार्णपुरका दशार्णवज राजा, पावापुरीका हस्तिपाल राजा, इत्यादि अनेक राजे श्रीमहावीर जगवंतके सेवक थे, अर्थात् श्रावक थे, और आनंद, कामदेव, संख, पुष्कसी प्रमुख श्रावक, और जयंती, रेवती, मुखसा प्रमुख श्राविका तो साध्यांही थे, तिन श्रावकोंमें एक सत्यकी नामा अवरिति, सम्यग्दृष्टि श्रावक हुआ है, तिसका संबंध आवदयक शास्त्रमें इसी तरें लिखा है. सो कहते हैं:-

विशालानगरीके चेटक राजाकी ठीकी पुत्री मुज्येश नामा कुमारी कन्याने दीक्षा स्वीनी थी अर्थात् जैनमनकी साध्वी हो गई थी, वो किसी अमल रमें उपाश्रयके अंदर सूर्यके सन्मुख आनापना खेती थी, इस अवसरमें पेडाव नामा परीव्राजक अर्थात् संन्यासी गिया सिद्ध था, सो आपनी विद्या देनेके बान्ने पात्र पुरुषकों देखता था, और उसका विचार ऐसा था कि:- यदि ब्रह्मचारणीका पुत्र होवे, तो सुनाय दोगेगा. तब तिस संन्यासीने त्रिभिनें मुज्येशकों नम्र पण्ण शीतकी आनापना खेतीकों देखा, तब पुंथ विद्यामें अंधकारमें विमोह अर्थात् अचेत करके उसकी योनिमें अरने बीज का संचार करा, तिस अवसरमें मुज्येशकों इतुधर्म आ गया था, इस बान्ने गने रह गया तब सायकी साध्वीयोंमें गर्भकी चर्चा होने लगी, पीछे अत्रि

शय ज्ञानीने कहा कि सुज्येष्ठानें विषयजोग किसीसें नहीं करा, अरु तिस विद्याधरका सर्व वृत्तांत कहा, तब सर्वकी शंका दूर हो गई पीछें समयमें सुज्येष्ठके पुत्र जन्मा, तब तिस लनकेको आवकने अपने घरमें ले जाके पासा, तिसका नाम सत्यकी रखा, एकदा समय सत्यकी साध्वियोंके साथ श्रीमहावीर जगवानके समवसरणमें गया, तिस अवसरमें एक कालसंदीपक नामा विद्याधर, श्रीमहावीरको वंदना करके पूठने लगा कि मुज्जकों किससें जय है, तब जगवंत श्रीमहावीर स्वामीने कहा कि, यह जो सत्यकी नामा लनका है, इससें तुज्जकों जय है. तब कालसंदीपक सत्यकीके पास गया, अ वझासें कहने लगा कि अरे तूं मुज्जकों मारेगा ? ऐसे कह कर जोरावरीसें सत्यकीको अपने पगोंने गेरा तब तिसके पिता पेडाखने सत्यकीका पालन करा, और अपनी सर्व विद्याओंको सत्यकीको दे दई. सत्यकी महारोहिणी विद्याका साधन कर रहा था, इस सत्यकीका यह सातमा नव रोहिणी विद्या साधनमें लग रहा था, रोहिणी विद्याने इस सत्यकी के जीवकों पांच नवमें तो जानसें मार गेरा और ठेठ नवमें ठे महीने शेष आयुके रहनेसें सत्य कीके जीवने विद्याकी इच्छा न करी परंतु इस सातमें नवमें तो तिस रोहि णी विद्याको साधनेका आरंभ करा तिसकी विधि लिखते हैं.

अनाथ नृतक मनुष्यों चितामें जलावे और गीसे (आले) चमडेको शरीर उपर लपेटके पगके वामें अंगूठेसें खना होकर जहां लग वो चिता का काष्ठ जखे तहां लग जाय करे, इस विधितें सत्यकी विद्या साध रहा था, उहां कालसंदीपक विद्याधरजी आ गया, और चितामें काष्ठ प्रक्षेप करके सात दिन रात्री तक अग्नि बुजने न दीनी, तब सत्यकीका सत्य देखके रोहिणी देवी आप प्रगट हो कर कालसंदीपकको कहने लगी कि संत विघ्न कर:-क्योंकि मैं इस सत्यकीके तिख होने वाली हूं, इस वास्ते मैं तिख हो गई हूं, तब रोहिणी देवीने सत्यकीको कहा, कि मैं तेरे शरीरमें किधरसें प्रवेश करूं ? सत्यकीने कहा मेरे मस्तकमें हो कर प्रवेश कर, तब रोहिणीने मस्तकमें हो कर प्रवेश करा, तिस्सें मस्तकमें खना पन गया तब देवीने तुष्टमान हो कर तिस मस्तककी जगों तीसरे नेत्रका आकार बना दीया तबतो सत्यकी तीन नेत्रवाला प्रसिद्ध हुआ. पीछें सत्यकीने शोचाकि पेडाखने मेरी माता राजाकी कुमारी बेटीको विगाना है, ऐसा

शोच कर अपने पिता पेढालकों मार दीया, रुद्र (जयानक) रख दीया, क्योंकि जिसने अपना पिता मार दीया और जयानक कौन है? पीठें सत्यकीने विचारा कि कालसंदीपक मेरा कहां है? जब सुना कि कालसंदीपक अमुक जगामें है, तब सत्यकी तिसके पास पहुंचा, फेर कालसंदीपक विद्याधर तहांसे जाग निकला तोत्री सत्यकी तिसके पीठें लगा, तब कालसंदीपक हेट ऊपर जागता रहा, परंतु सत्यकीने तिसका पीठा न ठोसा, फेर कालसंदीपकने सत्यकीके जुसाने वास्ते तीन नगर घनाये, तब सत्यकीने विद्यासें तीनो नगरजी जलादीये तब कालसंदीपक दोरुके खणसमुद्रके पाताल कलशमें चला गया, सत्यकीने तहां जा कर कालसंदीपककों मार माला, तिस पीठें सत्यकी विद्याधर चक्रवर्ति हूथ्या, तीन संध्यामें सर्व तीर्थकरोंकों बंदना करके नाटक करता हूथ्या, तब इंद्रने सत्यकीका नाम महेश्वर दीया, तिस महेश्वरके दो शिष्य हूये, एक नंदीश्वर, दूसरा नादीया, तिनमें नादीया तो विद्यासें ब्रह्माका रूप बना लेता था, और तिस ऊपर चढ़के महेश्वर अनेक क्रीडा कुतूहल करता था, महेश्वर श्रीमहावीर जगवंतका अविरति सम्पद्दक्षि आयक था, परंतु बना जारी कामीथा और ब्राह्मणोंके साथ उसका बना जारी बर हो गया, तब विद्याके बलसें सेकनों ब्रह्मणोंकी कुमारी कन्यायोंकों विषय सेवन करके विगाना, और लोक तथा राजा प्रमुखकी बहु घेटीयोंसें काम क्रीडा करने लगा, परंतु उसकी विद्यायोंके जयसें उसे कोई कुठ कहता नहीं था, जेकर कोई मनानी करता था, सो मारा जाताथा, महेश्वरने विद्यासें एक पुष्पक नामा विमान बनाया तिसमें बैठके जहां इठा होती तहां चला जाता था, ऐसे उसका काल व्यतीत होता था, एकदा प्रस्तावे महेश्वर उज्जयिन नगरमें गया. तहां चंद्रप्रद्योतकी एक शिष्या नामा राणीकों ठोके दूसरी सर्व राणीयोंके साथ विषय जोग करा, और रनी सबलोंकोंके बहु घेटीयोंकों विगाननां शुरु करा, तब चंद्रप्रद्योतकों परी चिन्ता हूइ, थरु विचाराकी कोइ येना उपाय करीये कि जिसें इस महेश्वरका विनाश (मरणां) हो जावे:—परंतु तिसकी विद्याके आगेकिंसीकोइ उपाय नहीं चपताथा, पीठें तिस उज्जयिन नगरमें एक उमा नामा वेद्या बनी रूपवंत रहतीथी, उसका यह कौलथा कि जो कोइ इतना धन

मुझे देवे, सो मेरेसें जोग करे, जो कोइ उसके कहे मूजब धन देता था सो उसके पास जाता था, एक दिन महेश्वर उस वेश्याके घर गया, तब तिस उमावेश्याने महेश्वरके सन्मुख दो फूल करे एक विकशा हूआ दूसरा मिचा हूआ, तब महेश्वरने विकशे फूल (खिडे फूलकी) तर्फ हाथ पसारा तब उमावेश्याने मिचा हूआ कमल महेश्वरके हाथमें दीया, और कहा कि यह कमल तेरे योग्य है, तब महेश्वरने कहा क्यों यह कमल मेरे योग्य है ? तब उमानें कहा इस मिचे हुए कमल समान कुमारी कन्या है, सो तुज्को जोग करने वास्ते बल्लन है, और मैं खिले हुए फूल समान हूँ, तब महेश्वरने कहा तूजी मेरेको बहुत बल्लन है, ऐसा कह कर महेश्वर उसके साथ जोग जोगने लगा, और तिसकेही घरमें रहने लगा, तिस उमाने महेश्वरको अपने वशमें कर लीया उमाका कहना महेश्वर उल्लंघन नहीं कर सकता था, ऐसे जब कितनाकि काल व्यतीत हुआ तब चंद्रप्रद्योतने उमाको बुलायके उसको बहुत धन, और आदर सन्मान देकर कहा कि तू महेश्वरसें यह पूछे कि—ऐसाजी कोइ काल है कि जिस कालमें तुमारे पास कोइजी विद्या नहीं रहती ? तब उमाने महेश्वरको पूर्वोक्त रीतिसें पूछा, तब महेश्वरने कहा कि जब मैं मैथुन सेवता हूँ तब मेरे पास कोइजी विद्या नहीं रहती, अर्थात् कोइ विद्या चलती नहीं तब उमाने चंद्रप्रद्योतराजाको सर्व कथन सुना दीया, तब राजाने उमासें कहा कि जब महेश्वर तेरेसें जोग करेगा, तब हम इसको मारेंगे तब उमाने कहा कि मुज्को मत मारना तब चंद्रप्रद्योतने कहा कि तुज्को नहीं मारेंगे ? पीठें चंद्रप्रद्योतने अपने सुजटोंको गुप्त (ठाना) उमाके घरमें ठिपारखा, जब महेश्वर उमाके साथ विषय सेवनमें मग्न होके दोनोका शरीर परस्पर मिलके एक शरीरवत् हो गया, तब राजाके सुजटोंने दोनों हीको काट नाला, और अपने नगरका उपद्रव डूर करा, पीठें महेश्वरकि सर्व विद्यायोंने उसके नंदीश्वर शिष्यको अपना अधिष्ठाता बनाया जब नंदीश्वरने अपने गुरुको इस विटंबनासें मारा सुना, तब विद्यासें उल्लासके उपर शिला बनाइ, और कहने लगा कि हे मेरे दासो ! अब तुम कहाँ जा उगे ? मैं सबको मारुगा क्योंकि मैं सर्वशक्तिमान् ईश्वर हूँ किसीका मारा मैं मरता नहीं हूँ, मैं सदा अविनाशी हूँ, यह सुनकर बहुत लोक नरे और

सर्वलोक विनती करके पगोंमें पड़े, श्वर कहने लगेकि, हमारा अपराध क्षमा करो, तब नंदीश्वरने कहाकि जे कर तुम उसी श्वरस्यामें श्रयातु माकी जगमें महेश्वरका लिंग स्थापन करके पूजो, तो में तुमको जीता ठोडेगा, तब लोकोने तैसेही बना कर पूजा करी, पीठे नंदीश्वरनेजी ऐसे ही गाम गाममें नगर नगरमें लोकोकों डरा डरा करके मंदिर बनवाये ति नमें पूर्वोक्त आकारे जगमें लिंग स्थापन कराके पूजा कराई, यह श्रीमहा वीरके अविरतिसम्यग्दृष्टि श्रावक महेश्वरकी उत्पत्ति हे.

तथा श्रीमहावीर स्वामीके विद्यमान होते राजगृह नगरमें श्रेणिकरा जाकी चेलणा राणीके कोणिक नामा पुत्र हुआ, परंतु कोणिकका श्रेणिक के साथ पूर्व जन्मका वैर था, इस वास्ते कोणिक राजानें श्रेणिक राजा को पकड़के पिंजरेमें दे दीया और राज सिंहासन ऊपर आप बैठा, जब अपनी माता चेलनाके मुखसे सुना कि श्रेणिकको जैसा तूं बल्लज था, ऐसा कोइजी पुत्र बल्लज नहीं था, क्योंकि जब तूं बालक था तब तेरी श्रं गुल्ली पक गई थी, तिससें तुजे रात्रिमें निंद नहीं आती थी, और तूं सर्व रात्रिमें रोता था, तब तेरा पिता तेरी अंगुलीको अपने मुखमें ले कर चू सके उसकी राध रुधिरको थुंकता था, इत्यादि तेरे पितानें तेरे साथ राग (स्नेह) करा है, और तुमने उस उपकारके बदले अपने पिताको पिंजरेमें बंद कीया, वाह रे पुत्र ! तेरी लायकी ! यह सुनके कोणिक राजा बड़ा दुःखी हुआ, और रोता हुआ आप कुहाड़ा लेकर दौड़ा कि में अपने हाथसें पिताका पिंजरा काटके बाहिर निकालूंगा और राजसिंहासन ऊपर बैठाउंगा परंतु जब श्रेणिकराजाने देखा कि कोणिक कुहाड़ा लेकर दौड़ा थाता है, तब विचार करा कि क्याजाने मुझे किस कुमोतसें मारेगा ? तब श्रेणिक राजा कुठ खाके मर गया, जब कोणिकने आकर देखा कि पिता तो मर गया तब बहुत रोया पीटा, महाशोकसें वाह लग गया, जब राज गृहके श्रंदर बाहिर श्रेणिकके मकान महिला सिंहासनादि देखता है, तब बना दिलगीर (शोकवन्त) होता है, इस दुःखसें राजगृह नगरको ठोड़के चंपा नगरी अपनी राजधानी बनाके रहने लगा, तोजी पिताके वियोगसें सेवान करनेसें दुःखी रहने लगा, तब प्रधान (मंत्रीयो)ने मता करके एक ठाना पुस्तक बनवाया, उसमें ऐसा कथन लिखवाया कि:-जो पुत्र अपने

मरे हुये पिताकों पिरु प्रदान वस्त्र जोडे, आभूषण, शय्या प्रमुख ब्राह्मणोंको देता है, वो सर्व श्राद्धादि सामग्री उसके पिताकों प्राप्ति होते हैं, तिस पुस्तककों धुंयेके मकानमें रखके धुंयेसे पुराने पुस्तकवत् बना दीया, तब कोणिक राजाकों सुनाया कोणिकनेत्री पिताकी चक्तिवास्ते पिरु प्रदानादि बहुत धन लगा करके करा, तबहीसे मृतकोंको पिरु प्रदान श्राद्धादि प्रवृत्त हुये हैं. क्योंकि जगत्में प्रसिद्ध है कि कर्ण राजाने श्राद्ध चलाये हैं, तो इसी कोणिक राजाका नाम लोकोने कर्ण राजा करके लिखा है.

तथा अन्निका सुत जैनाचार्य अत्यंत बृद्ध गंगा नदी उतरतेको केवल ज्ञान हुआ, और जहां प्रयाग है, तहां शरीर ठोडके मोक्ष हुआ, तिस जगे देवताओंने तिस मुनिकी महिमा करी तबसे प्रयाग तीर्थकी मानता चली, अर्थात् प्रयाग तीर्थकी उत्पत्ति हुई, महावीर स्वामीके बखतमें जो स्वरूप राजादि व्यवहोरोका था तथा जैनमतका जहां तक विस्तार था तो आवश्यकसूत्र वीरचरित्र तथा बृहद्कल्पादि शास्त्रोंसे जान लेना.

तथा श्रीमहावीरके समयमें राजगृह नगरीका राजा श्रेणिक तिसके पीठे कोणिक हुआ जिसने श्रेणिकके मरनेसे पीठे चंपानगरीको अपनी राजधानी बनाई तिसका बेटा उदायी हुआ जिनके कोणिकके मरे पीठे उदासीसे चंपाकों ठोडके पान्दवी पुत्र नगर (पटना) बसाके अपनी राजधानी बनाया.

श्रीमहावीर जगवंत विक्रम संवत्से (४७७) वर्ष पहिलां पावापुरी नगरीमें हस्तपाल राजाकी पुराणी राजसत्तामें बहत्तर वर्षकी आयु जोगके कार्तिक वदि अमावास्याकी रात्रिके पीठसे प्रहरमें पद्मासन अर्थात् चौकडी मारे हुये, शरीरादि चार कर्मकी सर्व उपाधी ठोन्के निर्वाण हुये (मोक्ष पहुंचे) तिस समयमें गौतमस्वामी और सुधर्म स्वामी यह दो बडे शिष्य जीतेये, शेष नव बने शिष्य तो श्रीमहावीरजीके जीते हुयेही एक मासका अन्नशन करके केवलज्ञान पाके मोक्ष चले गये थे, यह इग्यारहवीं बडे शिष्य जातिके तो ब्राह्मण थे, चार वेद और ठे वेदांगादि सर्वशास्त्रोंके जानकार थे, इन इग्यारहोके चौतासीससे (४४००) विचार्यी थे.

इनोका संबंध ऐसे है. कि:- जब जगवंत श्रीमहावीरजीको केवलज्ञान हुआ, तिस अवसरमें मध्यपाषा नगरीमें सोमस नाना ब्राह्मणके यज्ञ करनेका आरंभ करा था, और सब ब्राह्मणोंने श्रेष्ठ विद्वान् जान कर इन पु

बोक्त गौतमादि इग्याराही आचार्योंकों बुझायाथा तिस समय तिस यह पाडाके ईशान कृष्णमें महासेन नामा उद्यानमें श्रीमहावीर जगवंतका स मवसरण रत्न सुवर्ण रौप्यमय क्रमसें तीन गडं संयुक्त देवोंने बनाया ति सके बीचमें बैठकें जगवंत श्रीमहावीरस्वामी उपदेश करने लगे, तब आकाश मार्गके रस्ते सैंकड़ो विमनोमें बैठे हुये चार प्रकारके देवता जगवंत श्रीमहावीरके दर्शनकों और उपदेश सुननेकों आते थे, तब तिनों यह करने वाले ब्राह्मणोंने जाना कि यह देव सब हमारे करे हुये यज्ञकी आहुतियों देने आये हैं, इतनेमें देवता तो यज्ञ पाडेकों ठोमके जगवानके चरणोंमें जाकर हाजर हुये, तथा और लोकनी श्रीमहावीर जगवंतका दर्शन करके और उपदेश सुनके गौतमादि पंक्तियोंके आगे कहने लगे, कि:-आज इस नगरके बाहिर सर्वज्ञ सर्वदर्शी जगवान् आया है, नतो उसके रूपकी कोई तारीफ कर सका हैं, अरु न कोई उसके उपदेशसें संशय रहता है, और लाखों देवता जिनोके चरणोंकी सेवा करते हैं, ताते हमारे बड़े जग्योदय हैं, जो ऐसे सर्वज्ञ अरिहंत जगवंतका हमने दर्शन पाया ऐसा जब गौतमजीने सुना कि सर्वज्ञ आया तब मनमें ईर्ष्याकी अग्नि जलकी अरु ऐसे कहने लगा कि:-मेरेसें अधिक और सर्वज्ञ कौन है? मैं आज इसका सर्वज्ञ पणा उमा देता हूं? इत्यादि गर्व संयुक्त जगवान् श्रीमहावीरके पास पहुंचा, और जगवान्को चोत्तिश अतिशय संयुक्त देखा, तथा देवता, इंद्र, मनुष्योंसें परिवृत देखा, तब बोखनेकी शक्तसें हीन हुवा जगवंतके सन्मुख जाके खना हो गया तब जगवंतने कहा कि:- हे गौतम इंद्र भूति ! तू आया ? तब गौतमजीने मनमें विचारा कि जो मेरा नामजी ये जानते हैं, तोजी मैं सर्व जगे प्रसिद्ध हूं मुझे कौन नहीं जानता ? तो इन्हे मेरा नाम लीया, इस बातमें कुछ आश्चर्य और सर्वज्ञ इसको नहीं मानता हूं, किंतु मेरे मनमें जो संशय है तिसको दूर कर देवें तो मैं इसको सर्वज्ञ मानूं, तब जगवंतने कहा, हे गौतम ! तेरे मनमें यह संशय है:-जो जीव है कि नहीं ? और यह संशय तेरेको वेदोंकी परस्पर विरुद्ध श्रुतियोंसें हुआ है, वो श्रुतियों यह हैं सो कहते हैं.

“विज्ञानधनपवेत्तेज्योभूतेज्यः समुवाय तोन्येवानुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञास्तीतीत्यादि” इस्सें विरुद्ध यह श्रुति हैं:- सवे अयमात्मा ज्ञानमय

इत्यादि इन श्रुतियोंका अर्थ जैसा तेरे मनमें जासन होता है, तैसाही प्रथम श्रुतिका अर्थ कहते हैं. नीलादि रूप होनेसे विज्ञानही चैतन्य है, चैतन्य विशिष्ट जो नीलादि तिससे जो धन सो विज्ञानधन सो विज्ञानधन इन प्रत्यक्ष परिच्छिद्यमान रूप पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश, इन पांच जूतोंसे उत्पन्न हो कर फेर तिनके साथही नाश हो जाता है. अर्थात् जूतोंके नाश होनेसे उनके साथ विज्ञानधनकाजी नाश हो जाता है, इस हेतुसे प्रेत्यसंज्ञा नहीं अर्थात् मरके फेर परलोकमें और कोई नर नार कका जन्म नहीं होता, इस श्रुतिमें जीवकी नास्ती सिद्ध होती है, और दूसरी श्रुति कहती है कि:-यह आत्मा ज्ञान मय अर्थात् ज्ञान स्वरूप है, इससे आत्माकी सिद्धी होती है, अब ये दोनों श्रुतियों परस्पर विरोधी होनेसे प्रमाण नहीं हो सकती हैं, और बहुत परस्पर आत्माके स्वरूपमें विरोधी मत है, कोइ कहता है कि:-एतावानेव पुरुषो, यावानिन्द्रियगोचरः ॥ जडे वृक्षपदं पश्य, यद्गदं त्यवदुश्रुता ॥ १ ॥ इस श्लोकका अर्थ चार्वाकमतमें लिख आये हैं यहजी एक आगम कहता है, तथा “न रूपं जिह्मवः पुञ्जलः” अर्थात् आत्मा अमूर्ति है, यहजी एक आगम कहता है, तथा “अकर्त्तानिर्गुणो ज्ञोक्ता आत्मा” अर्थ:-अकर्त्ता सत्त्व, रज, अरु तम, इन तीनों गुणोंसे रहित सुख दुःखका जोगने वाला आत्मा है, यहजी एक आगम कहता है. अब इनमेंसे किसको सच्चा और किसको जूठा माने? परस्पर विरोधी होनेसे सर्व तो कुछ सच्चे होही नहीं शके हैं, तथा युक्ति प्रमाणसेजी मरके परलोक जाने वाली आत्मा सिद्ध नहीं होती है, ताते हे गौतम ! यह तेरे मनमें संशय है, अब इसका उत्तर कहता हूं कि तूं वेद पदोंका अर्थ नहीं जानता है इत्यादि श्रीगौतमजीके संशयकों दूर करा, ये सर्व अधिकार मूलावश्यक और श्रीविशेषावश्यकसे जान लेना, मैंने ग्रंथके जारी और गहन हो जानेके सबवसे यहां नहीं लिखा क्योंकि सब इग्यारह गणधरोंके संशय दूर करनेका कथनके चार हजार श्लोक हैं. पीठें जब गौतमजीका संशय दूर हो गया, तब गौतमजी पांचसौ थप ने विद्यार्थियोंके साथ दीक्षा लेके श्रीमहावीर जगवंतका प्रथम शिष्य हुआ.

इसीतरें इंद्रज्यूतियों दीक्षित सुनके दूसरा जाई अग्निज्यूति बडे अदिमा नमें जर कर चला और कहने लगा कि:- मेरे जाईकों इंद्रजालीयेने अद्वसं

जीतके अपना शिष्य बना लीया, तो मैं श्रवी उस इंद्रजातीके जीतके अपने जाईकों पीठा लाता हूं, इस विचारसे जगवंत श्रीमहावीरजीके पास पहुंचा, जब जगवानकों देखा, तब सर्व आश्चर्य झूल गया मुखसे बो लनेकीजी शक्ती न रही और मनमें बड़ा अचंचा हुआ क्योंकि ऐसा रूप न उसने कबी सुनाथा और न कबी देखा था, तब जगवानने उसका नाम लीया, अग्निभूतिने विचारा कि यह मेरा मानजी जानते हैं, अथवा मैं प्रसिद्ध हूं, मुझे कौन नहीं जानता है? परंतु मेरे मनका संशय दूर करे तो मैं इसका सर्वज्ञ मानूं, तब जगवंतने कहा है अग्निभूति! तेरे मनमें यह संशय है कि:- कर्म है किंवा नहीं? यह संशय तेरेकों विरुद्ध वेदपदोंसे हुआ है, क्योंकि तूं वेद पदोंका अर्थ नहीं जानता है, वे वेदपद यह हैं- "पुरुषएवेदंभिसर्वयद्भूतं यच्च जाव्यं उतामृतत्वस्येशानोयदन्नेनाऽतिरोहति यदेजति यन्नैजति यदूरेयद्रुथंतिके पदंतरस्य यद्रुत सर्वस्यास्य बाह्यतश्च त्यादि" इस्से विरुद्ध यह श्रुति है:- "पुण्यः पुण्येनेत्यादि" और इनका अर्थ तेरे मनमें ऐसा जासन होता है कि:- पुरुष अर्थात् आत्मा एव शब्द अवधारणके वास्ते है, सो अवधारण कर्म और प्रधानादिकोंके व्यवहेद वास्ते हैं, "इदं सर्वं" अर्थात् यह सर्व प्रत्यक्ष वर्तमान चेतन अचेतन वस्तु "मि" यह वाक्यालंकारमें है, यदभूतं अर्थात् जो पीछे हुआ है और आगेकों होवेगा जो मुक्ति तथा संसार सो सर्व पुरुष आत्मा ब्रह्मही है, तथा उतशब्द अतिशब्दके अर्थमें है और अपि शब्द समुच्चय अर्थमें है, अमृतत्वस्य अमरणजावका अर्थात् मोक्षका ईशानः प्रभुः अर्थात् स्वामी (माखक) है, "यदिति यच्चेति" च शब्दके लोप होनेसे यदिति बना इसका अर्थ जो अन्न करके वृद्धिकों प्राप्त होता है, "यदेजति" जो चलता है ऐसे पशुआदिक और जो नहीं चलता है ऐसे पर्वतादिक और जो दूर हैं मेरे आदिक "यत्तुज्यंतिके" उ शब्दअवधारणार्थमें है जो समीप अर्थात् नेडे है, सो सर्व पूर्वोक्त पदार्थ पुरुष अर्थात् ब्रह्मही है, इस श्रुतिसं कर्मका अभाव होता है. अरु दूसरी श्रुतिसं तथा शास्त्रांतरोंसे कर्मसिद्ध होते हैं, तथा युक्तिसं कर्मसिद्ध होते नहीं क्योंकि अमूर्ति आत्माको मूर्ति कर्म लगते नहीं, इस वास्ते में नहीं जानता कि कर्म है वा नहीं यह संशय तेरे मनमें है, ऐसा कह कर जगवानने वेदश्रुतियोंका अर्थ

बराबर करके तिसका पूर्वपद खंन करा, सो विस्तारसें मूलावश्यक तथा विशेषावश्यकसें जानलेनां. अग्निभूतिनेजी गौतमवत् दीक्षालीनी॥२॥

अग्निभूतिकी दीक्षा सुनके तीसरा वायुभूति आया परंतु आगे दोनो जा ईयोंके दीक्षा ले लेनेसें इसकों विद्याका अजिमान कुठजी न रहा, म नमें विचार कराकि मैं जा कर जगवानकों वंदना (नमस्कार) करंगा ऐसा विचारके, आया आ कर जगवंतकों वंदना (नमस्कार) करी तब ज गवंतने कहा तेरे मनमें संशयतो है परंतु दोजसें तूं पूठ नहीं शक्ता है. सं शय यह है कि:-जो जीव है सो देहही है और यह संशय तेरेकों विरुद्ध वेदपदश्रुतिसें हुआ है, और तूं तिन वेदपदोंका अर्थ नहीं जानता है वे वेद पद ये हैं:-“विज्ञानघनइत्यादि” पहिले गणधरकी श्रुति जाननी इससें देहसें न्यारा जीव (आत्मा) सिद्ध नहीं होता है, और इस श्रुतिसें वि रुद्ध यह श्रुति है,-“सत्येन लज्यस्तपसा ह्येपब्रह्मचर्येण नित्यज्योतिर्मयो हिशुद्धोयं पश्यंति धीरायतयः संयतात्मानइत्यादि” इस श्रुतिसें देहसें जिन आत्मा सिद्ध होती है, इस वास्ते तुजकों संशय है, पीठें जगवानने यह सर्व संशय दूर करे, तब तीसरा वायुभूतिनेजी अपने पांच सौ विद्यार्थियोंके साथ दीक्षा लीनी ॥ ३ ॥

वायुभूतिकी तरें शेष आठ गणधर क्रमसें आये, तिसमें चौथा अव्य कजी आया तिनके मनमें यह संशयथा कि:-पांचभूत हैं कि नहीं? यह संशय विरुद्ध श्रुतियोंसें हुआ, वे परस्पर विरुद्ध श्रुतियों यह हैं:-“स्वप्नो पम वै सकलमित्येव ब्रह्मविधिरंजसाविज्ञेयइत्यादीनि” तथा इससें विरुद्ध यह श्रुति है-“द्यावापृथिवी जनयन्देवइत्यादि” तथा पृथिवीदेवता, अपो देवता, इत्यादीनि इनका अर्थ तेरे मनमें ऐसा जासन होता है:-अर्थ-स्वप्न सरीखा वेनिपात अवधारणार्थे संपूर्ण जगत है “एष ब्रह्मविधि” अ र्थात् यह परमार्थ प्रकार है, अंजसा सीधेन्यायसें जाननां योग्य है, यह श्रुति पांचभूतका अज्ञाव कहती हैं, और श्रुतियों पांचभूतकी सत्ताकों क हतीयों हैं, इस वास्ते तेरेकों संशय है, तेरे मनमें यहजी है कि:-युक्तिसें पांचभूत सिद्ध नहीं होते हैं. पीठें जगवानने इसका पूर्वपद खंडन करा वेद पदोंका यद्यर्थ अर्थ कराये, यह अधिकार उक्त ग्रंथोंसें जान लेनां यह सुन कर चौथा वायुभूतिनेजी अपने पांचसौ शिष्योंके साथ दीक्षा लीनी ॥४॥

तव पांचमा सुधर्म नामा गणधर आया इसकाजी उसी तरें सर्वाधि कार जानलेनां, यावत् तेरे मनमें यह संशय है किः—मनुष्यादि सर्व जैसें इस जन्ममें हैं तेसैंही अगले जन्ममें होते हैं ? कि मनुष्य कुछ और पशुया दिजी बन जाते हैं ? यह संशय तेरेकों परस्पर विरुद्ध वेद श्रुतियोंसैं दूआ है सौ वेद श्रुतियों यह हैंः—“पुरुषोवैपुरुषत्वमश्रुते पशवः पशुत्वं इत्यादीनि” यह श्रुति जैसा इस जन्ममें पुरुष स्त्री आदि हैं वे पर जन्ममेंजी ऐसेही हो वेंगे इस्सैं विरुद्ध यह श्रुति हैं—“अगाधोवैपपजाहते यः सपुत्रीपोदह्यत इत्यादि इन सर्व श्रुतियोंका जगवानने अर्थ करकें संशय दूर करा, तव अपने पांच सौ शिष्यके साथ दीक्षा लीनी ॥ ५ ॥

तिस पीठें ठठा मंडिक पुत्र आया, तिसके मनमें यह संशय था, कि बंध मोक्ष है, वा नहीं है ? यह संशयजी विरुद्ध श्रुतियोंसैं दूआ है, सौ श्रुतियों यह हैंः—“स एष विगुणोविजुर्न बध्यते, संसरति वा न मुच्यते सो चयति वा ॥ एष बाह्यमज्यंतरं वा वेदइत्यादीनि” इस श्रुतिका अर्थ तेरे मनमें जासन होता है, “एषअधिकृतजीवः” अर्थात् यह जीव जिसका अधिकार है “विगुणः” अर्थात् सत्त्वादि गुण रहित सर्वगत सर्वव्या पक पुण्य पाप करकें इसकों बंध नहीं होता है, और संसारमें ब्रमणजी नहीं करता है, और कर्मोंसैं बूटताजी नहीं है, बंधके अज्ञाव होनेसैं इस रोंकों कर्मबंधसैं जुडाताजी नहीं है, इस कहनेसैं आत्मा अकर्ता है, सोई कहता है।—यह पुरुष अपनी आत्मासैं बाहिर महत् अहंकारावि और अज्यंतर स्वरूप अपना जानता नहीं क्योंकि जानना ज्ञानसैं होता है, और ज्ञान जो है, सो प्रकृतिका धर्म है, और प्रकृति अचेतन है, बंध मोक्ष नहीं इस श्रुतिसैं बंध मोक्षका अज्ञाव सिद्ध होता है, अब इस्सैं विरुद्ध श्रुति यह है सो कहते हैंः—“नही वैसशरीरस्य, प्रिया प्रिययोरपहतिरस्ति अशरीरं वा वसंतं प्रिया प्रिये नस्पृशत इत्यादीनि” इसका अर्थ कहते हैंः—सशरीरस्य अर्थात् शरीरसहितकों सुख दुःखका अज्ञाव कदापि नहीं होता है, तात्पर्य यह है किः—संसारी जीव सुख दुःखसैं रहित नहीं होता है, और अमूर्त आत्माकों कारणके अज्ञावसैं सुख दुःख स्पर्श नहीं कर शकें हैं, इस श्रुतिसैं बंध मोक्ष सिद्ध होते हैं, तथा तेरे मनमें यहजी बात हैः—किः—युक्तिसैंजी बंध मोक्ष सिद्ध नहीं होते हैं इत्यादि संशय कह कर जग

वान्ने तिसके पूर्वपक्षोंको खंडन करके संशय दूर करा, तब मंजितपुत्र साठे तीनसौ विद्यार्थियोंके साथ दीक्षित जया ॥ ६ ॥

७ तिस पीठें सातवां मोर्यपुत्र आया तिसके मनमें यह संशय था कि:- देवता हैं किंवा नहीं हैं? यह संशय परस्पर विरुद्ध श्रुतियोंसे हुआ वो श्रुतियों यह हैं:-सण्पयज्ञायुधीयजमानोंज सात्त्विकोंके गठति इत्यादि श्रुतियों स्वर्ग तथा देवताओंकी सिद्धि करतीयां हैं, इस्सें विरुद्ध श्रुति यह हैं:-अपामसोमं अमृता अचूम, अगमामद्योतिर्विदामदेवान् ॥ किंनूनम स्मान्तृणवदरातिः किमुभूर्ति रमृतमर्त्यस्येत्यादीनि “तथा कोजानाति मा योपमान् गीर्वाणानि इयमवरुणकुवेरादीन् इत्यादि” इनका ऐसा अर्थ तेरे मनमें जासन होता है कि:- पाणीकों पीते दूधे एतावता सोमलताका रस पीते दूधे अमृत (अमरण) धर्मवाले हम दूधे हैं, ज्योति स्वर्ग और देवताको हम नहीं जानते हैं तथा देवता हम दूधे हैं, यहजी नहीं जान ते देवता तृणकी तरें हमारा क्या कर शक्ते हैं? यह श्रुति अज्ञाव प्रतिपादन करती है, और यह जावकी प्रतिपादक है, “धूर्तिजराअमृतमर्त्यस्य” अमृतत्व प्राप्त पुरुषको क्या कर सकती है? इन श्रुतियोंका यथार्थ अर्थ करके और तिसका पूर्वपक्ष खंडन करके जगवंतने इनका संशय दूर करा, तब यहजी साठे तीनसौ ठात्रोंके साथ दीक्षित जया ॥ ७ ॥

८ तिस पीठें आठमा अकंपिक आया उसके मनमेंजी वेदकी परस्पर विरुद्ध श्रुतियोंके पदोंसे नरकवासी है कि नहीं? यह संशय उत्पन्न हुआ था, वो परस्पर विरुद्ध श्रुतियों लिखते हैं:-“नारको वै एष जायतेयः श्रुद्धान्न मश्नाति इत्यादि” इसका अर्थ:- यह ब्राह्मण नारक होवेगा जो शूद्रका अन्न खाता है, इस श्रुतिसें नरक सिद्ध होता है, तथा “नह वैप्रेत्यनरके नारकाः संतीत्यादि सुगमार्थः इस श्रुतिसें नरकका अज्ञाव सिद्ध होता है इनका अर्थ करके और पूर्वपक्ष खंडन करके जगवान्ने तिसका संशय दूर करा तब अकंपिकनेजी तीन सौ ठात्रोंके साथ दीक्षा लीनी ॥ ८ ॥

९ तिस पीठें नवमा अचलज्जाता आया तिसकोजी परस्पर वेदकी विरुद्ध श्रुतियोंके पदोंसे पुण्य पाप है, कि नहीं? यह संशय था, सो वेद पद यह हैं:-“पुरुषएवेदंघ्नितर्व इत्यादि दूसरे गणधर वत् इस्सें विरुद्धपद यह हैं:-“पुण्य पुण्येन कर्मणा जवति, पापं पापेन कर्मणा जवति इत्यादि” इस्सें

पुण्यपाप सिद्ध होते हैं, यह संशयजी जगवान्ने छूर करा; तब यह तीन सौ ठाग्रोंके साथ दीक्षित जया ॥ ९ ॥

१० तिस पीठें दशमा मेतार्य आया उसकोंजी वेदकी परस्पर वि श्रुतियोंसे यह संशय दूआ था, कि:-परलोक है किंवा नहीं है? वो श्रुति यह हैं:-“विज्ञानघन इत्यादि प्रथम गणधरवत् अज्ञाव कथक श्रुति ननी” तथा “स वैश्वयं आत्मा ज्ञानमय इत्यादि” परलोक जाव प्र पादक श्रुति जाननी इनका तात्पर्य जगवान्ने कहा तब मेतार्यजीने निःशंक होंगे तीन सौ ठाग्रोंके साथ दीक्षा लीनी ॥ १० ॥

११ तिस पीठें इग्यारहवा प्रजास नामा गणधर आया, तिसके मनमें वेद श्रुतियोंके परस्पर विरुद्ध होनेसे यह संशय था कि निर्वाण है कि न है? वो श्रुतियों यह हैं:-“जरामयं वा एतत्सर्वं यदग्नि होत्रं” इससे वि रुद्ध श्रुति यह हैं:-“छेत्रह्यणी वेदितव्ये परमपरं च तत्र परं सत्यं ज्ञा मनंतयह्येति” इनका यह अर्थ तेरी बुद्धिमें जासन होता है कि:-अग्नि होत्र जो है, सो जीव हिंसा संयुक्त है, और जरा मरणका कारण है, अरु वेदमें अग्नि होत्र निरंतर करणों कहा है, तब ऐसा कौनसा काव है, कि जिसमें मोक्ष जानेका कर्म करीयें? इस वास्ते आत्माकों मोक्ष (निर्वाण) कदापि नहीं हो सकता है, अरु दूसरी श्रुति मोक्ष प्राप्तिनी क हती है, इस वास्ते संशय दूआ है इसका जब जगवान्ने उत्तर दे के निर्वा क करा तब तीनसौ ठाग्रोंके साथ दीक्षा लीनी.

यह श्रीमद्दावीर जगवंत के वेशाखशुद्धि दशमीके दिनमध्यपापा नग रीके महामेन वनमें (४४००) शिष्य दृये. तिस पीठें राजपुत्र श्रेष्ठिपुत्रादि तथा राजपुत्री श्रेष्ठिपुत्री राजाकी राणीयां आदिकने दीक्षा लीनी. तथा जब जगवंत श्रीमद्दावीरजी पावापुरीमें मोक्ष गये, तिसही रात्रिमें इंद्र बुनि अर्थात् गौतमगणधरकों केवय ज्ञान दूआ, तब इंद्रोंने निर्वाण म दांसव करा, और सुधर्मान्वामीजीकों श्रीमद्दावीर न्यामीजीकी गद्दी ऊपर बैठाया श्रीगौतमजीकों गद्दी इस वास्ते न दूई की केवयज्ञानी पुत्र कोइ पाट ऊपर नहीं बैठता है, क्योंकि केवयों तो जो पूरे उसका उत्तर करने ज्ञानमेही देता है, परन्तु ऐसा नहीं कहना है कि:-मैं अमुक नी पैरुके कहनेमें कहता हूं, इस वास्ते केवयज्ञानी पाट ऊपर नहीं बैठता

है, जेकर बैठे तो तीर्थकरका शासन दूर हो जावे, यह कभी हो न शक्ती जो अनादि रितिकों केवली जंग करे, इस वास्ते श्रीगौतमजी केवल ज्ञानी था सो गद्दी ऊपर नहीं बैठे और सुधर्म स्वामी बैठे.

१ श्रीसुधर्म स्वामी पचास वर्ष तो गृहस्थावाप्त (घरमें) रहे, और तीस वर्ष श्रीमहावीर जगवंतकी चरण सेवा करी, जब श्रीमहावीर निर्वाण हुआ, तिस पीठें चारों वर्ष तक ठग्नस्थ रहे, और आठ वर्ष केवली रहे, क्योंकि श्रीमहावीर अर्हंतके पीठें केवली हो कर चारों वर्ष श्रीगौतमजी जीते रहे, और श्रीगौतमजीके निर्वाण पीठें श्रीसुधर्म स्वामीजीकों केवलज्ञान हुआ, केवली हो कर आठ वर्ष जीते रहे, श्रीसुधर्म स्वामीजीकी सर्वायु एक सौ (१००) वर्षकी थी, सो श्रीमहावीरजीके पीठें बीस वर्ष मोक्ष गये. २

२ श्रीसुधर्म स्वामी के पाट ऊपर श्रीजंबूस्वामी बैठे सो राजगृह नगरका वासी श्रीरूपजदत्तश्रेष्ठिकी धारिणी नामा स्त्रीसँ जन्मेये निनानवे कोड सोनइये और आठ स्त्रीयोंकों ठोड कर दीक्षा लेता गया, सो लां वर्ष गृहस्थ वास्तमें रहे, बीस वर्ष व्रतपर्याय, और चौतालीस वर्ष केवलपर्याय पालके श्रीमहावीरके निर्वाण पीठें चौशठमें वर्ष मोक्ष गये.

यह श्रीजंबूस्वामीके पीठें जरतक्षेत्रमें दश बातें विच्छेद हो गई तिसका नाम लिखते हैं— १ मनःपर्याय ज्ञान, २ परमावधि ज्ञान, ३ पुलाक लब्धि, ४ आहारकशरीर, ५ क्षपकश्रेणि, ६ उपशमश्रेणि, ७ जिनकदपमु निकी रीति, ८ परिहारविशुद्धिचारित्र, तथा सूदमसंपराय और यथाख्यात, यह तीन तरेंके संयम, ९ केवलज्ञान, १० मोक्ष होनां, यह दश वस्तु विच्छेद हो गई, श्रीमहावीर जगवंतके केवली हुये पीठें जब चौदह वर्ष जीते थे, तब जनाली नामा, प्रथम निन्हव हुआ, और सोलां वर्ष पीठें तिप्य गुप्त नामा दूसरा निन्हव हुआ. श्री जंबूस्वामीकी आयु एंसी वर्षकी थी.

३ जंबूस्वामीके पाट ऊपर प्रजवा स्वामी बैठे. निनकी उत्पत्ति ऐसे हैं— विंध्याचल पर्वतके पास जयपुर नामा पत्तन था. तिसका विंध्य नामा राजा था तिसके दो पुत्र थे एक वना प्रजव दूसरा ठोटा प्रजु, विंधराजाने किसी कारणसे ठोटे पुत्र प्रजुकों राज निवृत्त दे दीया, तब बड़ा बेटा प्रजव गुस्ते हो कर जयपुर पत्तनसे निकल कर विंध्याचलकी विषम जगामें गान बसा कर रहने लगा. और खात्रखनन, वंदिप्रदण,

रस्ते लूटनादि, अनेक तरंकी चोरीयोंसं अपने परिवारकी आजीविका करता था, एक दिन पांच सौ चोरोंको ले कर राजगृह नगरमें जंबूजीके रकों लूटने आया, तहां जंबूस्वामीने तिसकों प्रतिबोध करा, तब तिसने पांच सौ चोरोंके साथ दीक्षा श्रीजंबूजीके साथ लीनी. इत्यादि जंबूजीका और प्रजवजीका अधिकार जंबूचरित्र तथा परिशिष्ट पत्रादि ग्रंथोंसे जान लेना. प्रजव स्वामी तीस वर्ष गृहस्थ पर्याय, चौतालीश वर्ष व्रतपर्याय, तथा एकादश वर्ष युगप्रधान पदवी, सर्व पंचाशी वर्षकी आयु पूरी करके श्री महावीरसे पंचहत्तर वर्ष पीठें स्वर्ग गया.

४ श्रीप्रजवस्वामीके पाट ऊपर श्रीशिव्यंजव स्वामी बैठे, जिनोने मनक साधुके वास्ते दशवैकालिक सूत्र बनाया, तिनकी उत्पत्ति ऐसे है: एकदा प्रस्तावे प्रजवस्वामीने रात्रिमें विचार कराकि मेरे पाट ऊपर कौन बैठेगा? पीठें ज्ञान बलसे अपने सर्वसंधमें पाट योग्य कोइ न देखा, तब परदर्शनीयोंको ज्ञान बलसे देखने लगा तब राजगृह नगरमें शिव्यंजव ब्रह्मकों यज्ञ करते दूयोंको अपने पाट योग्य देखा, पीठें प्रजव स्वामी विहार करके सपरिवार राजगृह नगरमें आये उहां दो साधुओंको आदेश दीयाकि तुम यज्ञ पाडेमें जाकर जिहाके वास्ते धर्म लाज कहो, और यज्ञ करने वालोंको ऐसे कहो:— “अहोकष्ट महोकष्ट तत्त्वं विज्ञायते नहि” तब तिन साधुओंने पूर्वोक्त गुरुका कहना सर्व कीया, जब ब्राह्मणोंने “अहोकष्ट” इत्यादि सुना और तिस यज्ञ पाडेमें शिव्यंजव ब्राह्मणने यज्ञ दीक्षा लीनी थी, तिसने यज्ञ पाडेके दरवाजेमें खड़ेन अहोकष्ट इत्यादि मुनियोंका कहना सुनके विचार करने लगा कि ऐसा उपशम प्रधान साधु होते हैं, इस वास्ते यह असत्य (जुठ) नहीं बोलते हैं, इससे मनमें संशय होगया, तब उपाध्यायकों पूठा कि तत्त्व क्या है? तब उपाध्यायने कहा कि चार वेदमें जो कथन करा है, सो तत्त्व है, क्योंकि वेदोंके शिवाय और कोइ तत्त्व नहीं है? तब शिव्यंजवने कहा कि तूं दक्षिणाके लोचसे मुँहको तत्त्व नहीं बतलाता है, क्योंकि राग द्वेष रहित, निर्मम, निःपरिग्रह, शांत, दांत, महांत मुनियोंका कहना जूठा नहीं होता है, और तूं मेरा गुरु नहीं तेने तो जन्मसे इस जगत्को गगनांही सीखा है, इस वास्ते तूं जिहाके योग्य है इस वास्ते यातो मुँह

तत्त्व कह दे? नहीं तो तत्त्ववारसें तेरा शिर भेद करुंगा ऐसें कहके जब मियानसें तत्त्ववार काढी तब उपाध्यायने प्राणांत कष्ट देखके कहा हमारे वेदोंमेंजी ऐसें लिखा है और हमारी आम्नायजी यही है, जब हमारा कोइ शिर छेदे, तब तत्त्व कहनां, नहीं तो नहीं कहनां तिस वास्ते में तुम को तत्त्व कह देता हूं कि इस यज्ञ स्थंजके हेठ अहंतकी प्रतिमा स्थापन करी है, और नीचेही तिसको प्रवन्न हो कर पूजते हैं, तिसके प्रजा वसें यज्ञके सर्व विघ्न दूर हो जाते हैं, जेकर यज्ञस्थंजके नीचे अहंतकी प्रतिमा न राखें तो महातपा सिद्ध पुत्र और नारद ये दोनो यज्ञको विध्वंस कर देते हैं, पीठें उपाध्यायने यज्ञ स्थंज उखानके अहंतकी प्रतिमा दिखाइ और कहा कि यह प्रतिमा जिस देवकी है, तिस अहंतका कहा हुआ धर्म जीवदया रूप तत्त्व है, और यह जो वेद प्रतिपाद्य यज्ञ हैं, वे सर्व हिंसात्मक रूप होनेसें बिडंबना रूप हैं, परंतु क्या करें? जेकर हम ऐसें न करें तो हमारी आजीविका नहीं चलती है, अब तूं तत्त्व जानले और मुझको ठोस दे अरुतुं परमाहंत होजा क्योंकि मैंने अपने पेटके वास्ते तुझको बहुत दिन बहकाया है, तब शिष्यंजवने नमस्कार करके कहा तूं यथार्थ तत्त्वके प्रकाश करनेसें सब्बा उपाध्याय है, ऐसा कह कर शिष्यंज दने तुष्टमान हो कर यज्ञकी सामग्री जो सुवर्णपात्रादि थे, वे सर्व उपाध्यायको दे दइ, और प्रजवत्सामीके पास जा कर तत्त्वका स्वरूप पृथ कर दीक्षा ले लीनी, शेष इनका वृत्तांत परिशिष्टपर्व ग्रंथसें जान लेनां. शिष्यंज वत्सामी अष्टादश वर्ष गृहस्थावासेमें रहे, इग्यारह वर्ष सामान्य साधु व्रत में रहे, और तेइस वर्ष युगप्रधानाचार्य पदवीमें रहे, इत्तीतरे सर्वायु वा शत वर्ष जोगके श्रीमहावीर जगवंतके अठानवे वर्ष पीठें स्वर्ग गये.

५ श्रीशिष्यंजवत्सामीके पाट उपर यशोज्ञ स्वामी बैठे, सो बावीस वर्ष गृहस्थावासेमें रहे, और चौदह वर्ष व्रत पर्यायमें रहे अरु पंचास वर्ष तक युगप्रधान पदवीमें रहे, इत्तीतरे सर्वायु व्याप्ती वर्षकी जोगके श्रीमहावीरसें एक सौ अड़तालीस (१४८) वर्ष पीठें स्वर्गमें गये.

६ श्रीयशोज्ञवत्सामीके पाट ऊपर एक संज्ञूतविजय और दूसरे श्रीजज्ञ बाहु, यह दोनो बैठे, तिनमें संज्ञूतविजय तो बैतालीस वर्ष तक गृहस्थ रहे, और चालीस वर्ष व्रत पर्याय तथा आठ वर्ष युगप्रधान पदवी, त

वायु नवे वर्ष जोगके स्वर्गमें गये, और जङ्गवाहुस्वामीने १. आवश्यक निर्युक्ति, २ दशवेकाहिकनिर्युक्ति, ३ उत्तराध्ययन निर्युक्ति, ४ आचारांगकी निर्युक्ति, ५ सूत्रकदम्ब निर्युक्ति, ६ सूर्यप्रज्ञप्ति निर्युक्ति, ७ रुपिजापित निर्युक्ति, ८ कल्प निर्युक्ति, ९ व्यवहार निर्युक्ति, १० दशा निर्युक्ति, ये दश निर्युक्तियों और १ कल्प, २ व्यवहार, ३ दशाश्रुतस्कंध, यह नवमे पूर्वसे उच्चार करके बनाये और एक बहुत बना जङ्गवाहु नामे संहिता ज्योतिष शास्त्र बनाया, उपसर्गहर स्तोत्र बनाया, जैनमतीयां उपर बहुत उपकार करा इनही जङ्गवाहुजीका सगा जाइ वराहमेहर हुआ, वो पहिलें तो जैनमतका साधु हुआ था, फेर साधुपणां ठोडके वराही संहिता बनाइ और जो वराहमिह्वर विक्रमादित्यकी सजाका पंडित था, वो दूसरा वराहमिह्वर था, संहिता कारक वो नहीं हुआ, इसका संपूर्ण वृत्तांत परिशिष्ट पर्यसे जान लेनां. श्रीजङ्गवाहुस्वामी गृहस्थावासमें पेंतालीश वर्ष रहे, सत्तारे वर्ष व्रतपर्याय, थरु चौदह वर्ष युगप्रधान, सब मिल कर उद्भूत वर्ष की आयु जोगके श्रीमहावीरसे एकसौ सत्तर (१७०) वर्ष पीठें स्वर्ग गये.

७ यह श्रीसंज्ञूतविजय थरु जङ्गवाहुस्वामीके पाठ ऊपर श्रीस्यूखजङ्गवाहुस्वामी बैठे इनका बहुत वृत्तांत है, सो परिशिष्टपर्यग्रंथसे जान लेनां, १ प्रजवस्वाम, २ शिष्यजवस्वामी, ३ यशोजङ्गस्वामी, ४ संज्ञूतविजय, ५ जङ्गवाहुस्वामी, ६ स्यूखजङ्ग, यह वहाँ आचार्य चौदह पूर्वके बैठा थे, श्रीस्यूखजङ्गस्वामी तीस वर्ष गृहस्थावासमें रहे, चौबीश वर्ष व्रतपर्याय, थरु पेंतालीश वर्ष युगप्रधान पदवी, सबायु निनानवें वर्षकी जोगके श्रीमहावीरके पीठे (११५) वर्ष स्वर्ग गये श्रीमहावीरसे दोसौ चौदह वर्ष पीठें आपाठाचार्यके शिष्य तीसरे निन्द्य हूये.

स्यूखजङ्गके वस्त्रतमें नवनंदोंका एक सौ पंचावन (१५५) वर्षका राज्य उभेद करके चाणाक्य ब्राह्मणने चंद्रगुप्तराजाको राजसिंहासन उपर बैठाया, और चंद्रगुप्तके संतानोंने एक सौ आठ वर्ष तक राज्य कीया चंद्रगुप्त मौरपाखका बेटा था, इस वास्ते चंद्रगुप्तका मौर्यवंश कहते हैं. यह चंद्रगुप्त जैनमतका धारक आवश्यक राजा था, यह चंद्रगुप्त तथा नवनंदका वृत्तांत देखनां होवे, तदा परिशिष्ट पर्य, उत्तराध्ययन श्रुति तथा आवश्यक श्रुतिसे देख लेनां.

श्री स्थूलजडस्वामीके पीठें उपरखे चार पूर्व, प्रथम सहनन, प्रथम संस्थान, व्यवच्छेद हो गये, तथा श्रीमहावीरसें दोसो बीस (२२०) वर्ष पीठे अश्वमित्र नामा चौथा कृष्णिकवादि निन्हव हूआ, और श्री स्थूलजडजीके समयमें वारां वर्षका दुर्जिह (काल) पमा उस समयमें चंडगुप्तका राज था. तथा श्री महावीरके पीठें (२२०) वर्ष व्यतीत हुए गंग नामा पांचमा निन्हव हूआ.

७ श्री स्थूलजडके पीठे श्री स्थूलजडजीके दो शिष्य एक आर्यमहा गिरि, और दूसरा सुहृत्ति सूरि, आठमें पाट उपर बैठे, तिसमें आर्यमहा गिरिके शिष्य १ बहुल, २ वलिस्तह, फेर वलिस्तहका शिष्य श्री उमा स्वातीजी जिसनें तत्त्वार्थादि सूत्र रचे हैं, और उमास्वातीका शिष्य श्यामाचार्य जिसने प्रज्ञापना (पद्मवर्णासूत्र) बनाया, यह श्यामाचार्य श्रीमहावीरसें तीन सौ त्रिहत्तर वर्ष पीठें स्वर्ग गया, और आर्य महागिरिजी तीस वर्ष गृह्वात्तमें रहे, चालीस वर्ष व्रत पर्याय अरु तीस वर्ष युगप्रधान पदवी, सर्वायु एक सौ वर्षकी जोगके स्वर्ग गया.

और दूसरा आठमें पाटवाला सुहृत्तिसूरि, जिसनें एक जिखारीकां दीक्षा दीनी वो जिखारी काल करके चंडगुप्तका घेठा बिंहुतार और बिंहुतारका घेठा अशोक और अशोकका घेठा कुणाल तिस कुणालका घेठा संप्रति राजा हूआ, तिस संप्रति राजाने जैनधर्मकी बहुत वृद्धि करी, क्योंकि कल्प सूत्रके प्रथम उद्देशमें श्रीमहावीरके सनयमें अथकी नित्यत बहुत थोडे देशोंमें जैनधर्म सिखा है, मारवान, गुजरात, दक्षिण, पंजाब वगैरे देशोंमें जो जैनधर्म है, सो संप्रति राजाहीसें फैला है, यद्यपि इसका लमें जैनी राजाके न होनेसें जैनधर्म सबे जगें नहीं, परंतु संप्रति राजाके सनयमें बहुत उत्पत्ति पर था, क्योंकि संप्रति राजाका राज्य मध्यखंड और गंगापार और सिंधु पारके सबे देशोंमें था, संप्रति राजाने अपने नौकरोंको जैनके साधुओंका वेस बना कर अपने नेवक राजाओंके जो शक, यवन, फारसादि देशों में, तिन देशोंमें जेजे, तिनोने तिन राजाओंको जैनके साधुओंका आहार बिहार आचारादि सबे बनाया, और सनजाया पीठें साधुओंका बिहार तिन देशोंमें करार कर जोकोंको जैन धर्मी करा. और संप्रति राजाने (६६०००) निनानवे हजार जीर्ण (पु

राने) जिनमंदिरोंका उद्धार कराया अर्थात् पुराने टूटोफूटोंको नवा बनाया, और उनीस हजार (२६०००) नवीन जिनमंदिर बनवाये, और सोने, चांदी, पीतल, पाषाण, प्रमुखकी सवा फोड प्रतिमा बनवाई, तिसके बनवाये मंदिर नमोल, गिरनार, शत्रुंजय, रतखाम, प्रमुख अनेक स्थानोंमें खड़े हमने अपनी आंखोंसे देखे हैं, और संप्रतिकी बनवाई विप्रतिमा तो हमने सैंकड़ों देखी हैं, इस संप्रति राजाका वृत्तांत परिशिष्ट पत्रादि ग्रंथोंसे समग्र जान लेनां.

तिसही सुहृस्ती सूरि आचार्यने उजयनकी रहने वाली जइसेवानीका पुत्र अवंती सुकुमालको दीक्षा दीनी. और जहां उस अवंती सुकुमालने काल करा था, तिस जगे तिस अवंती सुकुमालके महाकाल नाम पुत्रने जिनमंदिर बनवाया, और तिस मंदिरमें अपने पिताके नामसे अवंति पार्श्वनाथकी मूर्ति स्थापन करी, कालांतरमें ब्राह्मणोंने आपना जोर पाकर तिस मंदिरमें मूर्तियोंके हेठ दाव कर उपर महादेवका लिंग स्थापना करके महाकाल (महादेवका) मंदिर प्रसिद्ध कर दीया, पीछे जब राजा विक्रम उजयनमें राजा हुआ, तिस अवसरमें कुमुदचंद्र अर्थात् सिद्धने न दिवाकर नामा जैनाचार्यने कल्याणमंदिर स्तोत्र बनाया, तब शिवका लिंग फटकर बीचमेंसे पूर्वोक्त पार्श्वनाथकी मूर्ति फिर प्रगट हुई.

इसका संबंध ऐसा है कि:-विद्याधर गद्यमें स्कंदिसाचार्य तिनका शिष्य वृद्धवादि आचार्य था, तिस अवसरमें उजयनका राजा विक्रमादित्य था, तिसका मंत्री काल्याण गोत्री देवद्विपिनामा ब्राह्मण तिसकी देवसिका नामा स्त्री, तिनका पुत्र सिद्धसेन सो विद्याके अजिमानसे सारे जगतके लोकोंको तृणवत् (घासफूसशमान) समझता था, और ऐसा जानता था कि:-मेरे समान बुद्धिमान् कोइनी नहीं, और जो मुझको बादमें जीत लेवे, तो मैं उसकाही शिष्य बन जाऊंगा पीछे तिसने वृद्धवादीकी बहुत कीर्ति सुनी उनके सन्मुख जाने वास्ते सुखासन ऊपर बैठके नृपकण्ठ (जमौंच) की तरफ चला जाता था, तिस अवसरमें वृद्धवादीजी रस्तेमें सन्मुख आता हुआ मिला, तब आपसमें दोनोंका आलाप संलाप हुआ पीछे सिद्धसेनजीने कहा कि मेरे साथ तुम वाद करो, तब वृद्धवादीने कहा कि वाद तो करूं, परंतु इस जंगलमें जीते हारेका कहनेवाला कोइ शाही

नहीं, तब सिद्धसेनजीने कहा कि यह जो गौ चरानेवाले गोप हैं, येही मेरे तुमारे साक्षी रहे, ये जिसकों कहेंगे हारा सो हारा, तब वृद्धवादीने कहा बहुत अच्छा, येही साक्षी रहे, अब तुम बोलो तब सिद्धसेनजीने बहुत संस्कृत जापा बोली और चुप करी तब गोपोंने कहा यह तो कुठजी नहीं जानता, केवल ऊंचा बोलके हमारे कानोंकों पीडा देता है, तब गोप कहने लगे हे वृद्ध ! तू बोल ? पीठें वृद्धवादी अवसर देख के कछा बांध कर तिन गोपोंकी जापामें कहने लगे, और थोड़े थोड़े कूदनेजी लगे, जो ठंड उच्चारण सो कहते हैं. “नविमारिये नविचोरियें, परदारागमणनिवारियें ॥ थोवाथोवदाश्यें, सग्गिमट्टेमट्टेजाश्यें ॥ १ ॥ फेरजी बोले और नाचने लगे ॥ ठंड ॥ कालो कंचल नीचोवट्ट, ठाठें जरिउ दीवडो थट्ट ॥ एवर पडीउ नीले जाड, अवरकिसोठे सग्ग निलाड ॥ २ ॥ यह सुनकर गोप बहुत खुशी हुये और कहने लगेकि वृद्धवादी सर्वज्ञ है, इसने कैसा मीठा कानोंकों सुखदायी हमारे योग्य उपदेश कहा, और सिद्धसेन तो कुठ नहीं जानता तब सिद्धसेनजीने वृद्धवादीकों कहा कि हे जगवन् ! तुम मुझकों दीक्षा देके अपना शिष्य बनाउ क्योंकि मेरी प्रतिज्ञा थी के जो गोप मुझे हारा कहेंगे, तो मैं हारा, और तुमारा शिष्य बनूंगा यह सुनकर वृद्धवादीने कहा कि जूयुपुरमें राजसजाके बीच तेरा मेरा वाद होवेगा, परंतु यह गोपोंकी सजामें वादही क्या है ? तब सिद्धसेनने कहा मैं अब सर नहीं जानता, तुम अवसरके ज्ञाता हौ, इस वास्ते मैं हारा पीठें वृद्धवादीने राजसजामें उसको पराजय करा, तब सिद्धसेनने दीक्षा लीनी, गुरुने उनका नाम कुमुदचंद्रजी दीया, पीठें जब आचार्य पदवी दीनी, तब फिर सिद्धसेन दिवाकर नाम रखा. पीठें वृद्धवादी तो और कहींकों विहार कर गये, और सिद्धसेन दिवाकर अवन्ती (उज्जयिनमें) गये, तब उज्जयिनका संघ सन्मुख आया, और सिद्धसेन दिवाकरकों सर्वज्ञ पुत्र ऐसा विरुद दीया, ऐसा विरुद बोलते हुए अवन्ती नगरीके चौकमें लाये, तिस अवसरमें राजाविक्रमादित्य हाथी ऊपर चढा हुआ सन्मुख मिला तब राजानें सर्वज्ञ पुत्र ऐसा विरुद सुनके तिनकी परिक्षा वास्ते हाथी ऊपर बैठेहीनं मनसें नमस्कार करा तब आचार्यने धर्मलाज कहा, तब राजाने पूछा कि बिनाही वंदना करे, आप मेरेकों धर्मलाज क्यों कर कहा ? क्या यह

धर्मखाज बहुत सस्ता है ? तब आचार्यने कहा यह धर्मखाज कोइचित्ता मणि रत्नोंसेंजी अधिक है. जो कोइ हमको वंदना करता हैं, उसको हम धर्मखाज कहते हैं. और ऐसेंजी नहीं, जो तुमने हमको वंदना नहीं करी ! तुमनेजी अपने मनसें वंदना करी, तो मनही सर्व कार्योंमें प्रधान है, इस वास्ते हमने धर्मखाज कहा है, और तुमनेंजी मेरी परीक्षा वास्तेही मनमें नमस्कार करा है, तब विक्रमराजा तुष्टमान हो कर हाथीसें नीचे उतर कर सूर्यसंघकी समक्ष वंदना करी, और एक कोड अशर्फी दीनी परंतु आचार्यने अशर्फीयों नहीं लीनी क्योंकि वे त्यागी थे, और राजाजी पीठा नहीं लेता, तब आचार्यकी आज्ञासें संघपुरुषोंने जीर्णोद्धारमें लगा दीनी, राजाके दफतरमें तो ऐसा लिखा है ॥श्लोक॥ धर्मखाज इतिप्रोक्ते, दूरा दुर्नि तपायये ॥ सूरये सिद्धसेनाय, ददौकोटि धराधिपः ॥ १ ॥ श्रीविक्रमराजाके आगे सिद्धसेन दिवाकरने ऐसेंजी कहा था कि ॥गाथा॥ पुष्पे वास सहस्रं, सयंमि वरिसाण नवनवशकषि प ॥ होइ कुमार नरिंदो, तुहविक्रम राय सारिंदो ॥ १ ॥ अन्यदा सिद्धसेन चित्रकूटमें गये तहां बहुत पुराने जिनमंदिरमें एक बड़ा मोटा स्थंज देखा, तब किसीको पूछा कि यह स्थंज किसतरांका है ? एह सुन कर किसीने कहा कि यह स्थंज थोपध इव्यमय जलादि करके अनेक बज्रवत् है. इस स्थंजमें पूरा चारोंनि बहुत रहस्य विद्याके पुस्तक स्वापन करे है, परंतु किसीसें यह स्थंज लुप्तता नहीं, यह सुन कर सिद्धसेन आचार्यने तिस स्थंजको सुंघा तिसकी गंधसें तिसकी प्रतिपक्षी थोपधीयोंका रस वांटा तिससें वो स्थंज कमलकी तरें खिड गया, तब तिसमें पुस्तक देखा तिनमेंसुं एक पुस्तक खे कर वांचा, तिसके प्रथम पत्रमें दो विद्या लिखी पाइ, एक सरसां विद्या और दूसरी सुवर्णविद्या, तिसमें सरसां विद्या उसको कहते है, कि जो काम पडे तब मंत्रवादी जितने सरसांके दाने जपके जलाशयमें गेरे उतनेही अश्वार वेताखीश प्रकारके आयुधों सहित बाहिर निकलके मैदानमें खडे हो जाते हैं, तिनोसें शत्रुकी सेना जंग हो जाती है, पीठें जब वो कार्य पूरा हो जाता है, तब अश्वार अदृश्य हो जाते हैं, और दूसरी हेनविद्यासें विनामेहनतके जितना चाहे, उतना सुवर्ण हो जाता है, ये दो विद्या सिद्धसेनने खेजीनी, पीठें जब आगे वांचने लगा तब

स्थंज मिल गया सर्व पुस्तक बीचमें रह गये और आकाशसें देव वाणी
हूँ कि तू इन पुस्तकोंके वाचने योग्य नहीं आगे मत वांचना, वांचंगा
तो तत्काल मर जायगा तब सिद्धतेनने डरके विचार करा कि दो विद्या मि
ली दोही सही. पीठें चित्रोत्तसें विहार करके पूर्वदेशमें कुमार पुरमें गये,
तहां देवपाल राजा था तिसकों प्रतिबोधके पक्का जैनधर्मी करा, तहां वो
राजा सिद्धांत श्रवण करता है, जब अैसे कितनाक काल व्यतीत हुआ,
तब एकदा समय राजा ठाना आया, और आंसुसें नेत्र भर कर कहने
लगा कि:-हे जगवन्! हम बड़े पापी हैं, क्योंकि आपकी अैसी उत्तम गो
ष्ठिका रत्न नहीं पीसके हैं? कारण कि हम बड़े संकटमें पड़े हैं, तब आ
चार्यने कहा तुमकों क्या संकट हुआ? राजा कहने लगा कि बहुत मेरे
वैरीराजे एकिछे हो कर मेरा राज्य ठीना चाहते हैं, तब फेर आचार्यने
कहा कि हे राजन्! तू आकुल व्याकुल मत हो, जब मैं तेरा साहायक हूं
तो फेर तुझे क्या चिंता है? यह बात सुन कर राजा बहुत राजी हुआ,
पीठें आचार्यने राजाकों पूर्वोक्त दोनो विद्यायोंसें समर्थ कर दीया, तिन
विद्यायोंसें परदल जंग हो गया, तिनका डैरा नंना सर्व राजानें खूंट ली
या, तब राजा आचार्यका अत्यंत नक्त हो गया उस्सें आचार्य सुखोंमें पडके
शिथिलाचारी हो गया यह स्वरूप बृद्धवादीजीनें सुना, पीठें दया करके
तिनका उच्चार करने वास्ते तहां आये, दरवाजे आगे खडे हो कर कह
वा जेजा कि एक बूढा वादी आया है, तब सिद्धतेनने बुझा कर अपने
आगे बैठाया, बृद्धवादी सर्व अपना शरीर वस्त्रसें ढांक कर बोले:-“अण
फुल्लियफुल्लमतो नहिं, मारोवामो निहिं मणकुसुमेहिं ॥ अच्चिनिरंजणं जिण, हिं
नहिकाश्चणेषण ॥१॥ इत गाथाकों सुणकर सिद्धतेनने विचारची करा
परंतु अर्थ न पाया तब विचार करा कि क्या यह मेरे गुरु बृद्धवादी हैं? जिनके
कहेका मैं अर्थ नहीं जानता हूं पीठें जब बार बार देखने लगा तब जाना
कि यह मेरा गुरु है पीठें नमस्कार करके क्षमापन मांगा, और पूर्वोक्त श्लोक
का अर्थ पूठा, तब बृद्धवादी कहने लगे “अणफुल्लियेत्यादि” अणफुल्लिय
फुल्ल प्राकृतके अनंत होनेसें अप्राप्त फल फलोंको मत तोन, जावार्थ यह
है कि योग जो है, सो कल्पवृक्ष है, कित तरे कि जित योग रूप वृक्षमें यम
नियम तो मूल है, और ध्यान रूप बना स्कंध है, तथा समतापणां, कवि

पणां, वक्तापणां, यशः, प्रतापः, मारण, उच्चाटन, स्तंजन, वशीकरणादि सिद्धियों कि जो सामर्थ्य सो फूल है, अरु केवलज्ञान फल है, अजी तो योगकल्पवृक्षके फूलही लगे हैं सो केवल ज्ञानरूप फल करके आगे पढ़ेंगे इस वास्ते तिन अग्राप्त फल पुष्पोंकों क्यों तोड़ता है? अर्थात् मत तोरु ऐसा जावार्थ है, तथा “मारोवा मोहिहि” जहां पांच महाव्रत आ रोपा है तिनकों मत मरोरु “मणुकुसुमेत्यादि” मनरूप फूलें करी निरंजनं जिनं पूजय (निरंजन जिनकों पूज) “वनात् वनं किं हि नसे” राजसे वादि घुरे नीरस फल क्यों करता है? इति पथार्थ. तब सिद्धसेनसूरिने गुरु शिक्षाकों अपने शिर उपर धरके और राजाकों पूठके वृद्धवादी गुरुके साथ विहार करा, और निविड चारित्र धारण करा, अनेक आचार्योंसं पूर्वोक्त ज्ञान सीखा, वृद्धवादी स्वर्गवास हूए पीठे एकदा सिद्धसेनजीने सपर्यंत एकिछा करके कहा कि जेकर तुम कहोतो सर्वांगमोंकों में संस्कृतजापा में करदेउं तब श्रीसंधने कहा क्या तीर्थंकर गणधर संस्कृत नहीं जानते थे? जो तिनहोंने अर्द्धमागधीजापामें आगम करे? ऐसी बात कहनेसे तुमकों पारांचिक नाम प्रायश्चित्त आवेगा हम तुमसे क्या कहें? तुम आपही जानते हो, तब सिद्धसेनने विचार करके कहा कि, मैं मौन कर के वारांवर्षका पारांचिक नाम प्रायश्चित्त लेके गुप्त मुख वस्त्रिका, रजोहरणादि लिंग करके और अवधूत रूप धारके फिरंगा, ऐसे कह कर गठकों ठोडके नगरादिकोंमें पर्यटन करने लगे, वारां वर्षके पर्यंतमें उज्जयिन नगरी में महाकालके मंदिरमें शैफालिकाके फूलों करके वस्त्ररंगे पहने हूए सिद्धसेनजी जाके बैठे तब पूजारी प्रमुख लोकोंने कहा तुम महादेवकों नमस्कार क्यों नहीं करता? सिद्धसेन तो धोखतेही नहीं हैं? ऐसे लोकोंकी परंपरासे सुन कर विक्रमादीत्यनेजी तहां आ कर कहा “क्षीरलिखितो जिह्वोकिमितित्वया देवो न वंच्यते” तब सिद्धसेनने कहा मेरे नमस्कारसे तुमारे देवका लिंग फट जायगा फेर तुमकों महादुःख होवेगा मैं इस वास्ते नमस्कार नहीं करता हूं तब राजाने कहा लिंग फटे तो फट जानेयो परंतु तुम नमस्कार करो, पीठें सिद्धसेनजी पद्मासन बैठके कहने लगा, सुनो तब छान्निशका करके देवका स्तवन करने लगा, तथा हि ॥ श्लोका ॥ इन्द्रवज्रवृत्तम् ॥ स्वयंभूवं भूतसहस्रनेत्र, मनेकमेकाक्षरजावलिङ्गं शब्दयकम

व्याहत विश्वलोक, मनादिमध्यांतमपुण्यपापं ॥१॥ इत्यादि प्रथमही श्लोक पढ़नेसें लिंगमेंसे धूआं निकला तब लोक कहने लगे शिवजीका तीसरा नेत्र खुला है, अब इस जिक्रकों अग्निनेत्रसें जस्म करेगा तबतो विजलीके तेजकी तरें तरुतराट करता प्रथम अग्नि निकला पीछें श्रीपार्श्वनाथजीका विंव प्रगट हुआ, तब वादी सिद्धसेननें कल्याण मंदिरादि स्तवनों करी स्तवन करकें क्षमापन मागा, तब राजा विक्रमादित्य कहने लगाकि हे जगवन् ! यह क्या अदृश्यपूर्व देखनेमें आया ? यह कौनसा नवीन देव है ? और यह प्रगट क्यों कर हुआ ? तब सिद्धसेनजीनें अवंतीसुकुमाल और तिसके पुत्र महाकालने पिताके नामसें अवंती पार्श्वनाथका मंदिर और मूर्ति बनाइ स्थापन करी, तिसकी कितनेक वर्ष लोकोने पूजा करी अवसर पाकर ब्राह्मणोंने जिनप्रतिमाकों हेठ दावके ऊपर यह शिवलिंग स्थापन करा इत्यादि सर्व वृत्तांत कहा, और हे राजन् ! इस मेरी स्तुतिसें शासनदेवताने शिवलिंग फाड़के बीचमेंसें यह प्रतिमा प्रगट कर दीनी, अब तूं सत्यासत्यका निर्णय कर ले तब विक्रमादित्यने एक सौ गाम मंदिरके खरच वास्ते दीये, और देवके समक्ष गुरु मुखसें बारां व्रत ग्रहण करे, और सिद्धसेनकी बहुत महिमा करी, अपने स्थानमें गया और वादीछ (सिद्धसेनदिवाकरकों) संघने जिनधर्मकी प्रज्ञावनासें तुष्टमान होकर संघमें लीया. अरु पूर्ववत् आचार्य बनाया.

एकदा प्रस्तावे सिद्धसेन दिवाकर विहार करते हूये मालवेके देशमें जो उँ कारनामें नगर है, तहां गये, तिस नगरके जक्त श्रावकोनें आचार्यकों विनती करी, जैसें हे जगवन् ! इसी नगरके समीप एक गाम था, तिसमें सुंदर नामा राजपुत्र ग्रामणी था, तिसकी दो स्त्रीयां थी, एक स्त्रीके प्रथम पुत्री जन्मी वो स्त्री मनमें खीजी तिस अवसरमें उसकी सौकनजी प्रसूत होने वाली थी, तब तिस बेटीवालीनें विचारा कि इसके पुत्र न होवे, तां ठीक है, क्योंकि नहीं तो यह पतिकों बह्वज्र हो जावेगी, तब दाइसें मिलके उससें पैदा हुआ पुत्रकों बाहिर गिरा दीया, और तत्कालका मरा हुआ लरुका उसके आगे रख दीया पीछें जौनसा लरुका बाहिरगेरा गया था, उसकों कुलदेवीनें गौका रूप करकें पाला जब आठ वर्षका हुआ तब इस उँकार नगरके शिवजब नके अधिकारी जरटनें देखा और अपना चेला बना लीया. एकदा प्रस्तावे

पणां, वक्तापणां, यशः, प्रताप, मारण, उच्चाटन, स्तंजन, वशीकरण
 सिद्धियों कि जो सामर्थ्य सो फूल है, थरु केवलज्ञान फल है, अत्री के
 योगकदम्बवृक्षके फूलही लगे हैं सो केवल ज्ञानरूप फल करके आगे
 लेंगे इस वास्ते तिन अप्राप्त फल पुष्पोंकों क्यों तोडता है? अर्थात् म
 तोरु ऐसा जावार्थ है, तथा “मारोवा मोरिहिं” जहां पांच ..
 रोपा है तिनकों मत मरोरु “मणुकुसुमेत्यादि” मनरूप फूलें करी नि
 जनं जिनं पूजय (निरंजन जिनकों पूज) “वनात् वनंकिहिंरुसे” रात्रसे
 बादि बुरे नीरस फल क्यों करता है? इति पद्यार्थ. तव सिद्धसेनसूरिने गु
 शिक्षाकों अपने शिर उपर धरके और राजाकों पूठके वृद्धवादी गुरुके साथ
 विहार करा, और निविड चारित्र धारण करा, अनेक आचार्योंसं पूर्वां
 ज्ञान सीखा, वृद्धवादी स्वर्गवास हुए पीठे एकदा सिद्धसेनजीने सर्वसं
 एकिछा करके कहा कि जेकर तुम कहोतो सर्वांगमोंकों में संस्कृतजाप
 में करदेउं तव श्रीसंधने कहा क्या तीर्थकर गणधर संस्कृत नहीं जानते
 थे? जो तिनहोंने अर्द्धमागधीजापामें आगम करे? ऐसी घात कहनेसे
 तुमकों पारांचिक नाम प्रायश्चित्त आवेगा हम तुमसें क्या कहें? तुम
 आपही जानते हो, तव सिद्धसेनने विचार करके कहा कि, मैं मौन क
 के बारांवर्षका पारांचिक नाम प्रायश्चित्त लेके गुप्त मुख वस्त्रिका, रजोह
 रणादि लिंग करके और अवधूत रूप धारके फिरंगा, ऐसे कह कर गडकों
 ठोडके नगरादिकोंमें पर्यटन करने लगे, बारां वर्षके पर्यंतमें उज्जयिन नगरी
 में महाकालके मंदिरमें शेषालिकाके फूलों करके वस्त्ररंगे पहने हुए सिद्ध
 सेनजी जाके बैठा तव पूजारी प्रमुख लोकोंने कहा तुम महादेवकों नम
 स्कार क्यों नहीं करता? सिद्धसेन तो बोलतेही नहीं हैं? ऐसे लोकोंकी
 परंपरासें सुन कर विक्रमादीत्यनेजी तहां आ कर कहा “क्षीरलिखिहो
 जिहोकिमितित्वयादेवोनवयते” तव सिद्धसेनने कहा मेरे नमस्कारसें तु
 मारे देवका लिंग फट जायगा फेर तुमकों महादुःख होवेगा मैं इस वा
 स्ते नमस्कार नहीं करता हूं तव राजाने कहा लिंग फटे तो फट जानेयो
 परंतु तुम नमस्कार करो, पीठें सिद्धसेनजी पद्मासन बैठके कहने लगा,
 सुनो तव छात्रिशका करके देवका स्तवन करने लगा, तथा हि ॥श्लोका॥
 इंद्रवज्रवृत्तम् ॥ स्वयंभूवं भूतसहस्रनेत्र, मनेकमेकाक्षरजावलिगं शब्दयकम

सेनकी गछ पास खबर करनेकों जेजा, तिस जट्टने सूरियोंकी सजामें आधा श्लोक पढा और बार बार पढताही रहता है, वो आधा श्लोक यह है:-स्फुरन्ति वादिखद्योताः, सांप्रतं दक्षिणापथे ॥ जब बार बार यह अर्धा श्लोक सुना तब सिद्धसेनकी वहिन साधवीनें सिद्ध सारस्वत मंत्रसें अर्ध श्लोक पूरा करा “नूनमस्तगतोवादी, सिद्धसेनोदिवाकरः ॥१॥” पीठे तिस जट्टने सर्ववृत्तांत सुनाया तब संघकों वना शोक हुआ ॥ इति सिद्धसेन दिवाकरका प्रसंगसें संबंध कथन करा ॥

यह सुहस्ति आचार्य तीस वर्ष गृहस्थावासमें रहे और चौबीस वर्ष व्रत पर्याय, तथा ठैतालीश वर्ष युगप्रधान पदवी, सब मिलकर एक सौ वर्षकी आयु जोगके श्रीमहावीरसें पीठें दोसौ एकानवे (१९१) वर्ष पीठे स्वर्ग गये, ये आठमें पाट आर्यमहागिरि और सुहस्ति आचार्य हुए. ए श्रीसुहस्तीसूरिके पाट उपर श्रीसुस्थित और सुप्रतिवद्ध नामा दो शिष्य बैठे, तिनोंने क्रोडों बार सूरिमंत्रका जाप करा, इसवास्ते गठका कोटिक. ऐसा दूसरा नाम श्रीसंघने रखा, क्योंकि सुधर्मस्वामीसें ले कर आठपाट तक तो अनगर निर्ग्रंथगठ नाम था पीठे दूसरा कोटिक नाम हुआ.

१० श्रीसुस्थितसूरिके पाट उपर श्रीइंद्रदिप्तसूरि हुआ इस अवसरमें श्री महावीरसें चारसौ त्रेपन (४५३) वर्ष पीठे गर्दजिह्वराजाके उठेद कर ऐंवाला दूसरा कालिकाचार्य हुआ, इसकी कथा कल्पसूत्रमें प्रसिद्ध है, और श्रीमहावीरसें (४५३) वर्ष पीठे जृगुकठ (जनोंचमें) श्रीआर्य ख पुटाचार्य विद्याचक्रवर्ती हुआ, इनका प्रबंध श्रीप्रबंधचिंतामणिग्रंथ तथा हारिजड्डी आवश्यककी टीकासें जान लेना. और प्रजावक चरित्रमें ऐसा लिखा है कि:-श्रीमहावीरसें (४७४) वर्ष पीठे खपुटाचार्य और (४६४) (४६९) वर्ष पीठे आर्यमंगु, वृद्धवादि, पादलित तथा कल्याण मंदिरका कर्ता उपर जिसका प्रबंध लिख आये सो सिद्धसेन दिवाकर हुआ जिनोंने विक्रमा दित्यको जैनधर्मी करा सो विक्रमादित्य श्रीमहावीरसें (४९०) वर्ष पीठे हुआ सो (४९०) वर्ष ऐसे हुए हैं:-जिस रात्रिमें श्रीमहावीरजी निर्वाण हुए उस दिन अवन्ति नगरीमें पालक नामा राजेकों राज्याभिषेक हुआ, यह पालक चंद्रप्रद्योतका पोता था तिसका राज्य (६०) वर्ष रहा, तिसके पीठें श्रेणिकका वेटा कोणिक और कोणिकका वेटा उदायी जब वि.

कन्य कुब्ज देशका राजा आंखोंसें आंधाने दिग् विजय
करा तब रात्रिमें उस ठोटे चेखेकों शिवजक्त व्यंतर देवतानें कहा
जोगराजाकों देनां, उसकी आंख अछी हो जावेंगी, तैसेही करा
आंख अछी हो गइ तब राजाने सो गाम मंदिरके खरच वास्ते दी
बना ऊंचा जो शिवका मंदिर हे सोजी उसीनिं बनवाया, और हम इस
गरमें रहते हैं परंतु मिथ्यादृष्टियोंके बखवान् होनेसें हम जिनमंदिर
नहीं पातेहें, इस वास्ते आपसें विनति करते हैं, कि इस मंदिरसें अधिक
मारा मंदिर यहां बने तो ठीक हे, और आप सर्वतरसें सामर्थ हों, तिनका
बचन सुनकर वादिंजने अवंतीमें आकर चार श्लोक हाथमें ले कर कि
मादित्यके द्वार पास थाये दरवाजे दारके मुखसें राजाकों कहाया "शिव
निष्ठुरायातस्तिष्ठति द्वारवारितः हस्तन्यस्तचतुः श्लोकः उतागच्छतु गच्छतु ॥
तिस श्लोककों सुनकर विक्रमादित्यनें बढलेंका श्लोक लिखकर जेजा
दत्तानिदशवक्त्राणि, शासनानिचतुर्दश ॥ हस्तन्यस्तचतुः श्लोकः, उतागच्छ
गच्छतु ॥ २ ॥ तिस श्लोककों सुनकर आचार्यने कहा जेजा कि निष्ठु तु
महों मित्रा चाहता हे, परंतु धन नहीं लेता तब राजाने सन्मुख पुत्रशाय
और पित्रानके कहने खगा कि गुरुजी बहुत दिनों पीठें दर्शन दीया तब आ
चार्य कहने सगे धर्मकार्यके करनेसें बहुत दिन हूये फिरसें आना दूया अब
चार श्लोक तुम सुनो ॥ अपूर्वं धनुर्विद्या, नवताशिखिता कुतः ॥ मार्गशोकः
समन्येति, गुणोपातिदिगंतरे ॥ १ ॥ सरस्वतीस्थितावके, सद्मीकरसंगे
रहे ॥ कीर्तिः किंकुपित राजन्, येन देशांतरंगता ॥ २ ॥ कीर्तिस्तेजांतया
ज्येव, चतुरं नो धिमज्जनान ॥ आतपायधरानाय, गतामालं कर्मं रुद्धं ॥ ३ ॥
सर्वदासर्वदोमीति, मिथ्या संस्तूयसे जनेः ॥ नारयो जेजिरे पृष्ठं, नवद्वार
योपितः ॥ ४ ॥ यह चारों श्लोक सुनके राजा बहुत खुश दूया, और
आचार्यकों कहने खगा जो मेरा राज्यमें सार हे, सो मांगो तो देदुं तब
आचार्यने कहा मुफेतो कुछनी नहीं चाहिता, परंतु "ठेकार नगरमें चतु
द्वार जैनमंदिर शिवमंदिरसें ऊंचा बनाउ और प्रतिष्ठाजी कराउ तब ग
जाने वैसेही करा तब जिनमत प्रभावना देखके संघ तुष्टमान दूया, इ
त्यादि प्रकारसें जैनधर्मकी प्रभावना करते दृष्ट दक्षिणदेशमें प्रतिष्ठानपुरमें
जा कर थनशन करके देवशोक गये, तब तहांमें संघने एक नटकों सिद्ध

सेनकी गङ्गा पास खबर करनेकों जेजा, तिस जहने सूरियोंकी सजामें
आधा श्लोक पडा और बार बार पडताही रहता है. वो आधा श्लोक
यह है:-स्फुरन्ति वादिखयोताः, सांप्रतं दक्षिणापथे ॥ जब बार बार यह
अर्धा श्लोक सुना तब सिद्धसेनकी बहिन साधवीनें सिद्ध सारस्वत में
ब्रतें अर्ध श्लोक पूरा करा “नूनमस्तगतोवादी, सिद्धसेनोद्दिवाकरः ॥१॥”
पीठे तिस जहने सर्ववृत्तांत सुनाया तब संघकों बना शोक हुआ ॥ इति
सिद्धसेन दिवाकरका प्रसंगतें संबंध कथन करा ॥

यह सुहृत्ति आचार्य तीस वर्ष रहत्यावातमें रहे और चौबीस वर्ष
व्रत पर्याय, तथा ठैतालीश वर्ष युगप्रधान पदवी, तब निवकर एक सौ
वर्षकी आयु जोगके श्रीमहावीरतें पीठें दोस्रो एकानवे (१९१) वर्ष पीठे
स्वर्ग गये, ये आठनें पाट आर्यमहागिरि और सुहृत्ति आचार्य हुए.
ए श्रीसुहृत्तीसूरिके पाट उपर श्रीसुत्थित और सुप्रतिबद्ध नामा दो शिष्य
बैठे, तिनोंने क्रोड़ों बार सूरिमंत्रका जाप करा, इतवास्ते गङ्गाका कोटिक
अंता इतरा नाम श्रीसंयने रक्ता, क्योंकि सुधर्मस्वामीतें ये कर आठपाट
तक तो अनगरा निर्ग्रंथगङ्गा नाम था पीठे इतरा कोटिक नाम हुआ.

१० श्रीसुत्थितसूरिके पाट उपर श्रीइंद्रिजसूरि हुआ इत अवतरमें
श्री महावीरतें चारसौ त्रेपन (४५३) वर्ष पीठे गईजिह्वाराजाके उठेद कर
एँवावा इतरा काशिकाचार्य हुआ, इतकी कथा कल्पसूत्रमें प्रसिद्ध है,
और श्रीमहावीरतें (४५३) वर्ष पीठे जृगुक्छ (जनोंचमें) श्रीआर्य त
पुटाचार्य विद्याचक्रवर्ती हुआ, इनका प्रबंध श्रीप्रबंधचिंतामणियंत्र तथा
हारिचंद्री आवश्यक्की टीकातें जान लेना. और प्रजावक चरित्रमें अंता
लिखा है कि:-श्रीमहावीरतें (४७४) वर्ष पीठे खपुटाचार्य और (४३४)
(४६७) वर्ष पीठे आर्यनंगु, वृद्धवादि, पादविस्त तथा कड्याण मंदिरका कर्त्ता
उपर जितका प्रबंध लिख आये सो सिद्धसेन दिवाकर हुआ जिनोंने विक्रमा
दित्यको जैनधर्मी करा सो विक्रमादित्य श्रीमहावीरतें (४७०) वर्ष पीठे
हुआ सो (४७०) वर्ष अंते हुए हैं:-जित रात्रिमें श्रीमहावीरजी निर्वाण
हुए उस दिन अवन्ति नगरीमें पाञ्चक नाना राजेकों राज्याभिषेक हुआ,
यह पाञ्चक चंद्रप्रद्योतका पोता था तितका राज्य (६०) वर्ष रहा, ति
सके पीठें श्रेणिकका बेटा कोणिक और कोणिकका बेटा उदायी जब वि.

कन्य कुब्ज देशका राजा आंखोंसे आंधाने दिग् ।
 करा तब रात्रिमें उस ठोटे चेलों शिवजक्त व्यंतर देवतानें कहा ।
 जोगराजाकों देना, उसकी आंख थड़ी हो जावेंगी, तेसेही करा ।
 आंख थड़ी हो गइ तब राजाने सो गाम मंदिरके खरच वास्ते दीये
 वना जंचा जो शिवका मंदिर है सोजी उसीने वनवाया, और हम इस
 गरमें रहते हैं परंतु मिथ्याष्ट्रियोंके बलवान् होनेसे हम जिनमंदिर बनने
 नहीं पाते हैं, इस वास्ते आपसे विनति करते हैं, कि इस मंदिरसे अधिक
 मारा मंदिर यहां बने तो ठीक है, और आप सर्वतरसे सामर्थ हों। तिनका
 वचन सुनकर वादिऊने अघंतीमें आकर चार श्लोक हाथमें ले कर विक्र
 मादित्यके द्वार पास आये दरवाजे द्वारके मुखसे राजाकों कहाया "विक्र
 मजिहुरायातस्तिष्ठति द्वारवारितः हस्तन्यस्तचतुः श्लोकः उतागद्यतुगद्यतु ॥ १ ॥
 तिस श्लोककों सुनकर विक्रमादित्यने बदलेंका श्लोक लिखकर जेजा
 दत्तानिदशखक्षाणि, शासनानिचतुर्दश ॥ हस्तन्यस्तचतुः श्लोकः, उतागद्य
 तुगद्यतु ॥ २ ॥ तिस श्लोककों सुनकर आचार्यने कहा जेजा कि जिह्वा तु
 मकों मिखा चाहता है, परंतु धन नहीं लेता तब राजाने सन्मुख बुलवाये
 और पिठानके कहने लगा कि गुरुजी बहुत दिनों पीछे दर्शन दीया तब आ
 चार्य कहने लगे धर्मकार्यके करनेसे बहुत दिन दूये फिरसे आना दूया अब
 चार श्लोक तुम सुनो ॥ अपूर्वेयं धनुर्विद्या, जवताशिक्षिता कुतः ॥ मार्गणौः
 समन्येति, गुणोयातिदिगंतरे ॥ १ ॥ सरस्वतीस्थितावके, लक्ष्मीकरसरो
 रुहे ॥ कीर्त्तिः किंकुपित राजन्, येन देशांतरंगता ॥ २ ॥ कीर्त्तिस्तेजांतज
 ज्येव, चतुरंजोधिमज्जनात् ॥ आतपायधरानाथ, गतामार्त्तममं नलं ॥ ३ ॥
 सर्वदासर्वदोसीति, मिथ्या संस्तूयसे जनैः ॥ नारयोलेजिरे पृष्ठं, नवद्वार
 योपितः ॥ ४ ॥ यह चारों श्लोक सुनके राजा बहुत खुश हुआ, और
 आचार्यकों कहने लगा जो मेरा राज्यमें सार है, सो मांगो तो देदुं तब
 आचार्यने कहा मुफेतो कुठजी नहीं चाहिता, परंतु उकार नगरमें चतु
 द्वार जैनमंदिर शिवमंदिरसे जंचा वनाउ और प्रतिष्ठाची कराउ तब रा
 जानें वैसेही करा तब जिनमत प्रजावना देखके संघ तुष्टमान हुआ, इ
 त्यादि प्रकारसे जैनधर्मकी प्रजावना करते हुए दक्षिणदेशमें प्रतिष्ठानपुरमें
 जा कर अनशन करके देवलोक गये, तब तहांसे संघने एक जहकों सिद्ध

सेनकी गठ पास खबर करनेकों जेजा, तिस जट्टने सूरियोंकी सजामें आधा श्लोक पढा और बार बार पढताही रहता है, वो आधा श्लोक यह है:-स्फुरंति वादिखयोताः, सांप्रतं दक्षिणापथे ॥ जब बार बार यह अर्धा श्लोक सुना तब सिद्धसेनकी बहिन साधवीनें सिद्ध सारखत में त्रसें अर्ध श्लोक पूरा करा “नूनमस्तगतोवादी, सिद्धसेनोदिवाकरः ॥१॥” पीठे तिस जट्टने सर्ववृत्तांत सुनाया तब संघकों बना शोक दूया ॥ इति सिद्धसेन दिवाकरका प्रसंगसें संबंध कथन करा ॥

यह सुहृत्ति आचार्य तीस वर्ष रहत्यावातमें रहे और चौबीस वर्ष व्रत पर्याय, तथा ठेतालीश वर्ष युगप्रधान पदवी, सब मिलकर एक सौ वर्षकी आयु जोगके श्रीमहावीरसें पीठें दोसो एकानवे (१९१) वर्ष पीठें स्वर्ग गये, ये आठमें पाट आर्यमहागिरि और सुहृत्ति आचार्य हुए. ए श्रीसुहृत्तिसूरिके पाट उपर श्रीसुस्तित और सुप्रतिवद्ध नामा दो शिष्य बैठे, तिनोंने कौडों बार सूरिमंत्रका जाप करा, इतवास्ते गठका कोटिक ऐत्ता इतरा नाम श्रीसंघने रक्का, क्योंकि सुधर्मस्वामीसें छे कर आठपाट तक तो अनगार निर्ग्रंथगठ नाम था पीठे इतरा कोटिक नाम दूया.

१० श्रीसुस्तितसूरिके पाट उपर श्रीइंद्रद्विजसूरि दूया इत अवतरमें श्री महावीरसें चारसो त्रेपन (४५३) वर्ष पीठें गईजिज्वराजाके उठेद कर ऐवाजा इतरा काविकाचार्य दूया, इतकी कथा कल्पसूत्रमें प्रसिद्ध है, और श्रीमहावीरसें (४५३) वर्ष पीठें जूगुक्त (जनोंचनें) श्रीआर्य त्र पुटाचार्य विद्याचक्रवर्ती दूया, इनका प्रबंध श्रीप्रबंधविंतामणिग्रंथ तथा हारिचर्री आवश्यककी टीकासें जान जेना. और प्रभावक चरित्रमें ऐत्ता लिखा है कि:-श्रीमहावीरसें (४७४) वर्ष पीठें त्रपुटाचार्य और (४६४) (४६७) वर्ष पीठें आर्यनंगु, वृद्धवादि, पादक्षित तथा कड्याण मंदिरका कर्ता उपर जितका प्रबंध लिख आये तो सिद्धसेन दिवाकर दूया जिनोंने विक्रमादित्यको जेनधर्मी करा तो विक्रमादित्य श्रीमहावीरसें (४७७) वर्ष पीठें दूया तो (४७७) वर्ष ऐसे हुए हैं:-जित रात्रिमें श्रीमहावीरजी निर्वाण हुए उस दिन अवंति नगरीमें पाण्डक नामा राजेको राज्याभिषेक दूया, यह पाण्डक चंद्रप्रयोतका पोता था तितका राज्य (६०) वर्ष रहा, तितके पीठें श्रेणिकका बेटा कोणिक और कोणिकका बेटा उदायी जब वि

कन्य कुब्ज देशका राजा आंखोंसे आंधाने दिग्
 करा तब राजिमें उस ठोटे चेलों शिवनक्त व्यंतर देवतानें कहा
 जोगराजाकों देनां, उसकी आंख थड़ी हो जावेंगी, तैसेही करा
 आंख थड़ी हो गई तब राजाने सौ गाम मंदिरके खरच वास्ते
 वना ऊंचा जो शिवका मंदिर है सोनी उसीने वनवाया, और हम
 गरमें रहते हैं परंतु मिथ्यादृष्टियोंके बलवान् होनेसे हम जिनमंदिर
 नहीं पाते हैं, इस वास्ते आपसे विनति करते हैं, कि इस मंदिरसे अधिक
 मारा मंदिर यहां बने तो ठीक है, और आप सर्वतरसे सामर्थ्य हैं, तिन
 वचन सुनकर वादिंजने अवंतीमें आकर चार श्लोक हाथमें ले कर
 मादित्यके द्वार पास आये दरवाजे द्वारके मुखसे राजाकों कहाया "विष्णु
 जिह्वारायातस्तिष्ठति द्वारवारितः हस्तन्यस्तचतुः श्लोकः उतागष्ठतुग
 तिस श्लोककों सुनकर विक्रमादित्यने वदलेंका श्लोक लिखकर जेजा
 दत्तानिदशखक्षाणि, शासनानिचतुर्दश ॥ हस्तन्यस्तचतुः श्लोकः, उतागष्ठ
 गष्ठतु ॥ १ ॥ तिस श्लोककों सुनकर आचार्यने कहा जेजा कि जिह्व
 मकों मिला चाहता है, परंतु धन नहीं लेता तब राजाने सन्मुख बुझा
 और पिठानके कहने लगा कि गुरुजी बहुत दिनों पीछें दर्शन दीया तब
 आचार्य कहने लगे धर्मकार्यके करनेसे बहुत दिन हूये फिरसे आना हुआ
 चार श्लोक तुम सुनो ॥ अपूर्वेयं धनुर्विद्या, जवताशिहिता कुतः ॥ मार्गयोग
 समज्येति, गुणोयातिदिगंतरे ॥ १ ॥ सरस्वतीस्थितावके, लक्ष्मीकरस
 रुहे ॥ कीर्त्तिः किंकुपित राजन्, येन देशांतरंगता ॥ २ ॥ कीर्त्तिस्तेजांत
 ज्येव, चतुरंजोधिमज्जनात् ॥ आतपायधरानाय, गतामार्तममंरुसं ॥ ३ ॥
 सर्वदासर्वदोसीति, मिथ्या संस्तूयसे जनेः ॥ नारयोलेजिरे पृष्ठं, नवद्वार
 योपितः ॥ ४ ॥ यह चारों श्लोक सुनके राजा बहुत खुश हुआ, और
 आचार्यकों कहने लगा जो मेरा राज्यमें सार है, सो मांगो तो देदुं तब
 आचार्यने कहा मुझे तो कुठजी नहीं चाहिता, परंतु उकार नगरमें चतु
 द्वार जैनमंदिर शिवमंदिरसे ऊंचा बनाऊ और प्रतिष्ठाजी कराऊ तब
 जानें वैसेही करा तब जिनमत प्रजावना देखके संघ तुष्टमान हुआ,
 त्यादि प्रकारसे जैनधर्मकी प्रजावना करते हुए दक्षिणदेशमें प्रतिष्ठानपुरमें
 जा कर अनशन करके देवलोक गये, तब तहांसे संघने एक जटकों सिद्ध

सेनकी गड पास खबर करनेकों जेजा, तिस जट्टने सूरियोंकी सजामें आधा श्लोक पडा और बार बार पढताही रहता है, वो आधा श्लोक यह है:-स्फुरन्ति वादिस्त्रयोताः, सांप्रतं दक्षिणापथे ॥ जब बार बार यह अर्धा श्लोक सुना तब सिद्धसेनकी बहिन साधवीनें सिद्ध सारस्वत मंत्रसें अर्ध श्लोक पूरा करा “नूनमस्तगतोवादी, सिद्धसेनोदिवाकरः ॥१॥” पीठे तिस जट्टने सर्ववृत्तांत सुनाया तब संघकों बना शोक हुआ ॥ इति सिद्धसेन दिवाकरका प्रसंगसें संबंध कथन करा ॥

यह सुहृत्ति आचार्य तीस वर्ष यहस्थावासमें रहे और चौबीस वर्ष व्रत पर्याय, तथा ठैंतालीश वर्ष युगप्रधान पदवी, सब मिलकर एक सौ वर्षकी आयु जोगके श्रीमहावीरसें पीठें दोसो एकानवे (१९१) वर्ष पीठे स्वर्ग गये, ये आठमें पाट आर्यमहागिरि और सुहृत्ति आचार्य हुए. ए श्रीसुहृत्तीसूरिके पाट उपर श्रीसुस्थित और सुप्रतिवद्ध नामा दो शिष्य बैठे, तिनोंने क्रोडों बार सूरिमंत्रका जाप करा, इस्वास्ते गडका कोटिक ऐसा दूसरा नाम श्रीसंघने रक्का, क्योंकि सुधर्मस्वामीसें ले कर आठपाट तक तो अनगार निर्ययगड नाम था पीठे दूसरा कोटिक नाम हुआ.

१० श्रीसुस्थितसूरिके पाट उपर श्रीइंद्रदिन्नसूरि हुआ इत अवतरमें श्री महावीरसें चारसो त्रेपन (४५३) वर्ष पीठे गर्देजिल्लराजाके उठेद कर ऐंवाला दूसरा कालिकाचार्य हुआ, इतकी कथा कल्पसूत्रमें प्रसिद्ध है, और श्रीमहावीरसें (४५३) वर्ष पीठे जृगुकठ (जनोंचमें) श्रीआर्य ख पुटाचार्य विद्याचक्रवर्त्ती हुआ, इनका प्रबंध श्रीप्रबंधचिंतामणिग्रंथ तथा हारिजड्डी आवश्यक्की टीकासें जान लेना. और प्रभावक चरित्रमें ऐसा लिखा है कि:-श्रीमहावीरसें (४०४) वर्ष पीठे खपुटाचार्य और (४६४) (४६९) वर्ष पीठे आर्यमंगु, वृद्धवादि, पादलिख तथा कल्याण मंदिरका कर्त्ता उपर जितका प्रबंध लिख आये सो सिद्धसेन दिवाकर हुआ जिनोने विक्रमादित्यको जैनधर्मी करा सो विक्रमादित्य श्रीमहावीरसें (४९०) वर्ष पीठे हुआ सो (४९०) वर्ष अँते हुए हैं:-जित रात्रिमें श्रीमहावीरजी निर्वाण हुए उस दिन अवन्ति नगरीमें पालक नामा राजेकों राज्याभिषेक हुआ, यह पालक चंद्रप्रद्योतका पोता था तिसका राज्य (६०) वर्ष रहा, तिसके पीठें श्रेणिकका वेढा कोणिक और कोणिकका वेढा उदायी जब वि

कन्य कुब्ज देशका राजा आंखोंसे आंधाने दिग् नि
करा तब रात्रिमें उस ठोटे चेलकों शिवन्नक्त व्यंतर देवतानें कहा
जोगराजाकों देना, उसकी आंख अंधी हो जावेंगी, तैसेही करा नि
आंख अंधी हो गई तब राजाने सो गाम मंदिरके खरच वास्ते दीये
यना ऊंचा जो शिवका मंदिर है सोजी उसीनं वनवाया, और हम
गरमें रहते हैं परंतु मिथ्याहृष्टियोंके बलवान् होनेसे हम जिनमंदिर
नहीं पातेहैं, इस वास्ते आपसे विनति करते हैं, कि इस मंदिरसे अधिक
मारा मंदिर यहां बने तो ठीक है, और आप सर्वतरसे सामर्थ्य हों, नि
वचन सुनकर वादिंऊने अग्रंतीमें आकर चार श्लोक हाथमें ले कर कि
मादित्यके द्वार पास आये दरवाजे दारके मुखसे राजाकों कहाया "रि
जिष्टुरायातस्तिष्ठति द्वारवारितः हस्तन्यस्तचतुः श्लोकः उतागष्टुगष्टु
तिस श्लोककों सुनकर विक्रमादित्यनें बंदलेंका श्लोक लिखकर जेजा
दत्तानिदशखण्डाणि, शासनानिचतुर्दश ॥ हस्तन्यस्तचतुः श्लोकः, उतागष्टु
गष्टु ॥ २ ॥ तिस श्लोककों सुनकर आचार्यने कहा जेजा कि जिष्टु
मकों मिला चाहता है, परंतु धन नहीं लेता तब राजाने सन्मुख बुधवार
और पित्रानके कहने लगा कि गुरुजी बहुत दिनों पीछें दर्शन दीया तब आ
चार्य कहने लगे धर्मकार्यके करनेसे बहुत दिन हूये फिरसे आना दूया अब
चार श्लोक तुम सुनो ॥ अथर्वयं धनुर्विद्या, जवताशिक्षिता कुतः ॥ मार्गणो
समन्येति, गुणोयातिदिगंतरे ॥ १ ॥ सरस्वतीस्थितायके, खदमीकरसर्प
रुहे ॥ कीर्त्तिः किंकुपित राजन्, येन देशांतरंगता ॥ २ ॥ कीर्त्तिस्तेजावता
ल्येव, चतुरंजोधिमज्जनात् ॥ आतपायधरानाथ, गतामार्त्तकर्ममज्जं ॥ ३ ॥
सपेदासर्वदोसीति, मिथ्या संस्तूयसे जनेः ॥ नारयोलेजिरे शृष्टं, नवरुप
योपितः ॥ ४ ॥ यह चारों श्लोक सुनके राजा बहुत खुश हुआ, और
आचार्यकों कहने लगा जो मेरा राज्यमें सार है, सो मांगो तो देदुं व
आचार्यनें कहा मुझे तो कुत्रनी नहीं चाहिता, परंतु उकार नगमें व
द्वार जैनमंदिर शिवमंदिरसे उंचा बनाउं और प्रतिष्ठाजी कराउं तब ग
जानें वैसेही करा तब जिनमत प्रभावना देखके संघ तुष्टमान हुआ, इ
त्यादि प्रकारसे जैनधर्मकी प्रभावना करतेहुए दक्षिणदेशमें प्रतिष्ठानपुरने
जा कर अनशन करके देवसोक गये, तब तहांसे संघने एक जटकों सिद्ध

सेनकी गङ्गा पास खबर करनेकों जेजा, तिस जटनें सूरियोंकी सजामें आधा श्लोक पढा और बार बार पढताही रहता है, वो आधा श्लोक यह है:-स्फुरन्ति वादिखद्योताः, सांप्रतं दक्षिणापथे ॥ जब बार बार यह अर्धा श्लोक सुना तब सिद्धसेनकी वहिन साधवीनें सिद्ध सारस्वत मंत्रसें अर्ध श्लोक पूरा करा “नूनमस्तगतोवादी, सिद्धसेनोदिवाकरः ॥१॥” पीठे तिस जटने सर्ववृत्तांत सुनाया तब संघकों वमा शोक हुआ ॥ इति सिद्धसेन दिवाकरका प्रसंगसें संबंध कथन करा ॥

यह सुहृस्ति आचार्य तीस वर्ष गृहस्थावासमें रहे और चौबीस वर्ष व्रत पर्याय, तथा ठेतालीश वर्ष युगप्रधान पदवी, सब मिलकर एक सौ वर्षकी आयु जोगके श्रीमहावीरसें पीठें दोसौ एकानवे (१९१) वर्ष पीठे स्वर्ग गये, ये आठमें पाट आर्यमहागिरि और सुहृस्ति आचार्य हुए. ए श्रीसुहृस्तीसूरिके पाट उपर श्रीसुस्थित और सुप्रतिवद्ध नामा दो शिष्य बैठे, तिनोंने क्रोडों बार सूरिमंत्रका जाप करा, इसवास्ते गठका कोटिक ऐसेा दूसरा नाम श्रीसंघने रखा, क्योंकि सुधर्मस्वामीसें ले कर आठपाट तक तो अनगार निर्ग्रंथगठ नाम था पीठे दूसरा कोटिक नाम हुआ.

१० श्रीसुस्थितसूरिके पाट उपर श्रीइंद्रदिनसूरि हुआ इस थवसरमें श्री महावीरसें चारसौ त्रेपन (४५३) वर्ष पीठे गद्दिनिह्वराजाके उठेद कर ऐंवाला दूसरा कालिकाचार्य हुआ, इसकी कथा कल्पसूत्रमें प्रसिद्ध है, और श्रीमहावीरसें (४५३) वर्ष पीठे जृगुक्ठ (जनोंचमें) श्रीआर्य ख पुटाचार्य वियाचक्रवर्ती हुआ, इनका प्रबंध श्रीप्रबंधचिंतामणिग्रंथ तथा हारिजड्डी आवश्यक्की टीकासें जान लेना. और प्रजावक चरित्रमें ऐसेा लिखा है कि:-श्रीमहावीरसें (४७४) वर्ष पीठे खपुटाचार्य और (४६४) (४६७) वर्ष पीठे आर्यमंगु, वृद्धवादि, पादलिप्त तथा कल्याण मंदिरका कर्ता उपर जिसका प्रबंध लिख आये सो सिद्धसेन दिवाकर हुआ जिनोने विक्रमा दित्यको जैनधर्मी करा सो विक्रमादित्य श्रीमहावीरसें (४७०) वर्ष पीठे हुआ सो (४७०) वर्ष ऐसे हुए हैं:-जिस रात्रिमें श्रीमहावीरजी निर्वाण हुए उस दिन थवंति नगरीमें पाषक नामा राजेकों राज्यानिपेक हुआ, यह पाषक चंद्रप्रद्योतका पोता था तिसका राज्य (६०) वर्ष रहा, तिसके पीठें श्रेणिकका बेटा कोणिक और कोणिकका बेटा उदायी जब वि

कन्य कुब्ज देशका राजा आंखोंसे आंधाने दिग् विजय
करा तब रात्रिमें उस ठोटे चेलेकों शिवजन्म व्यंतर देवतानें कहा
जोगराजाकों देनां, उसकी आंख अंधी हो जावेंगी, तेसेही करा तिसमें
आंख अंधी हो गइ तब राजाने सो गाम मंदिरके खरच वास्ते दीये और
वना जंचा जो शिवका मंदिर हे सोजी उसीने वनवाया, और हम इस
गरमें रहते हैं परंतु मिथ्यादृष्टियोंके बलवान् होनेसे हम जिनमंदिर बना
नहीं पातेहैं, इस वास्ते आपसे विनति करते हैं, कि इस मंदिरसे अधिक
मारा मंदिर यहां बने तो ठीक है, और आप सर्वतरसे सामर्थ हों, तिन
वचन सुनकर वादिन्द्रने अवंसीमें आकर चार श्लोक हाथमें ले कर
मादित्यके द्वार पास आये दरवाजे द्वारके मुखसे राजाकों कहाया
त्रिकुरायातस्तिष्ठति द्वारवारितः हस्तन्यस्तचतुः श्लोकः उतागधतुगधतु ॥
तिस श्लोककों सुनकर विक्रमादित्यने वदलेंका श्लोक लिखकर जेजा
दत्तानिदशलक्षणि, शासनानिचतुर्दश ॥ हस्तन्यस्तचतुः श्लोकः, उता
गधतु ॥ १ ॥ तिस श्लोककों सुनकर आचार्यने कहा जेजा कि त्रिकु
मकों मिला चाहता है, परंतु धन नहीं लेता तब राजाने सन्मुख
और पिठानके कहने लगा कि गुरुजी बहुत दिनों पीठें दर्शन दीया
चार्य कहने लगे धर्मकार्यके करनेसे बहुत दिन हूये फिरसे आना हूया अब
चार श्लोक तुम सुनो ॥ अपूर्वेयं धनुर्विद्या, जवताशिक्षिता कुतः ॥ मार्गलोके
समज्येति, गुणोयातिदिगंतरे ॥ १ ॥ सरस्वतीस्थितावक्रे, खदमीकरसो
रुहे ॥ कीर्त्तिः किंकुपित राजन्, येन देशांतरंगता ॥ २ ॥ कीर्त्तिस्तेजांतज्ञा
उभेव, चतुर ॥

॥ आतपायधरानाथ, गतामार्त्तममंजलं ॥ ३ ॥

मिथ्या संस्तूयसे जनैः ॥ नारयोलेजिरे पृष्ठं, नवद्वार
यह चारों श्लोक सुनके राजा बहुत खुश हुआ, और
लगा जो मेरा राज्यमें सार है, सो मांगो तो देदुं तब
कहा मुझेतो कुठजी नहीं चाहिता, परंतु उकार नगरमें चतु
द्वार शिवमंदिरसे जंचा बनाउ और प्रतिष्ठाजी कराउ तब
वेसेही करा तब जिनमत प्रजावना देखके संघ तुष्टमान हुआ,
प्रकारसे जैनधर्मकी प्रजावना करते हुए दक्षिणदेशमें प्रतिष्ठानपुरमें
जा कर अन्नशन करके देवलोक गये, तब तहांसे संघने एक जटकों सिद्ध

सेनकी गड्ड पास खबर करनेकों जेजा, तिस जट्टनें सूरियोंकी सजामें
आधा श्लोक पढ़ा और बार बार पढ़ताही रहता है, वो आधा श्लोक
यह है:-स्फुरंति वादिस्त्रयोताः, सांप्रतं दक्षिणापथे ॥ जब बार बार यह
अर्धा श्लोक सुना तब सिद्धसेनकी वहिन साधवीनें सिद्ध सारस्वत मं
त्रसें अर्द्ध श्लोक पूरा करा “नूनमस्तगतोवादी, सिद्धसेनोदिवाकरः ॥१॥”
पीठे तिस जट्टनें सर्ववृत्तांत सुनाया तब संघकों बना शोक हुआ ॥ इति
सिद्धसेन दिवाकरका प्रसंगसे संबंध कथन करा ॥

यह सुहृत्ति आचार्य तीस वर्ष रहस्यावातमें रहे और चौबीस वर्ष
व्रत पर्याय, तथा ठेतालीश वर्ष युगप्रधान पदवी, सब मिलकर एक सौ
वर्षकी आयु जोगके श्रीमहावीरसें पीठें दोसौ एकानवे (१९१) वर्ष पीठें
स्वर्गे गये, ये आठमें पाट आर्यमहागिरि और सुहृत्ति आचार्य हुए.
ए श्रीसुहृत्तीसूरिके पाट उपर श्रीसुस्थित और सुप्रतिबद्ध नामा दो शिष्य
बैठे, तिनोने क्रोडों बार सूरिमंत्रका जाप करा, इतवास्ते गड्डका कोटिक
थेता दूसरा नाम श्रीसंघने रक्ता, क्योंकि सुधर्मस्वामीसें ले कर आठपाट
तक तो अनगार निर्ग्रथगड्ड नाम था पीठें दूसरा कोटिक नाम हुआ.

१० श्रीसुस्थितसूरिके पाट उपर श्रीइंद्रद्वित्रसूरि हुआ इत अवतरमें
श्री महावीरसें चारसौ त्रेपन (४५३) वर्ष पीठें गर्दनिखुराजाके उठेद कर
ऐवाया दूसरा काविकाचार्य हुआ, इतकी कथा कल्पसूत्रमें प्रसिद्ध है,
और श्रीमहावीरसें (४५३) वर्ष पीठें जृगुच्छ (जनोंचनें) श्रीआर्य त
पुटाचार्य विद्याचक्रवर्ती हुआ, इनका प्रबंध श्रीप्रबंधचिंतामणिग्रंथ तथा
हारिचंद्री आवश्यककी टीकासें जान लेना. और प्रजावक्र चरित्रमें थेता
लिखा है कि:-श्रीमहावीरसें (४७३) वर्ष पीठें तपुटाचार्य और (४३४)
(४३९) वर्ष पीठें आर्यमंगु, वृद्धवादि, पादचित तथा कड्याण मंदिरका कर्त्ता
उपर जितका प्रबंध लिख आये सो सिद्धसेन दिवाकर हुआ जिनोने विक्रमा
दित्यको जैनधर्मी करा सो विक्रमादित्य श्रीमहावीरसें (४९०) वर्ष पीठें
हुआ सो (४९०) वर्ष थेते हुए हैं:-जित रात्रिमें श्रीमहावीरजी निर्वाण
हुए उस दिन अवंति नगरीमें पाञ्चक नामा राजेकों राज्याजिपेक हुआ,
यह पाञ्चक चंद्रप्रयोतका पोता था तितका राज्य (६०) वर्ष रहा, ति
तके पीठें श्रेणिकका बेटा कोणिक और कोणिकका बेटा उदायी जब वि

ना पुत्रके मरा तब तिसकी गद्दी उपर नंद नामा नाइ बैठा, तिनकी ग
में सर्व नंदनामा नव राजे हुए तिनका राज्य (१५५) वर्ष तक रहा
वमें नंदकी गद्दी उपर मौर्यवंशी चंद्रगुप्त राजा हुआ तिसका बेटा बिं
सार तिसका बेटा अशोक तिसका बेटा कुणाल तिसका बेटा संप्रति
हाराजादि हुए, इन मौर्यवंशीयोंका सर्व राज (१७७) वर्ष तक रहा य
पूर्वोक्त सर्वराजे प्रायें जैनमत वाले थे तिनके पीठे तीस वर्ष तक पु
मित्र राजाका राज्य रहा, तिस पीठें बलमित्र, जानुमित्र, यह दोनों :
जाका राज्य (६०) वर्ष तक रहा, तिस पीठे नजवाहन राजाका राज
(४०) वर्ष तक रहा, तिस पीठें तेरां वर्ष गर्दजिह्वाका राज्य रहा, और
चार वर्ष शकोंका राज्य रहा, पीठे विक्रमादित्यने शकोंको जीतके अ
ना राज्य जमाया यह सर्व (४७०) वर्ष हुए.

११ श्रीइंद्रविघ्न सूरिके पाट ऊपर श्रीविघ्नसूरि हुये. १२ दिन सूरिके पा
उपर श्रीसिंहगिरि सूरि हुये. १३ श्रीसिंहगिरिजीके पाट ऊपर श्रीवज्र
स्वामी हुये, जिनको वाख्यावस्थासें जातिसरण ज्ञान था, जिनको आक
शगमन विद्याजी थी, जिनोंने दूसरे वारां वर्षी कालमें संघकी रक्षा करी
तथा जिनोंने दक्षिणपथमें बौधोंके राज्यमें श्रीजिनेंद्रपूजा वास्ते फूल लावे
दीये, बौद्धराजाको जैनमती करा, यह आचार्य पीठका दशपूर्वका पाठ
हुआ, जिनोसें हमारी वज्री शाखा उत्पन्न हुई, इनका प्रबंध आवश्यक
तिसें जान लेना. सो वज्रस्वामी श्रीमहावीरसें पीठें चार सो ठानवे और
विक्रमादित्यके संवत् ठवीसमें जन्मे, और आठ वर्ष घरमें रहे, चौतालीस
वर्ष समान साधुव्रतमें रहे और उत्तीस वर्ष युगप्रधान पदवीमें रहे, सर्वायु
अष्टाशी वर्षकी जोगी, तथा इन आचार्यके समयमें जावडशाह सेठने श्री
शत्रुंजय तीर्थका संवत् (१७७) में तेरहवा बना उद्धार करा, तिसकी श्री
वज्र स्वामीने प्रतिष्ठा करी यह श्रीवज्र स्वामी श्रीमहावीरसें (५०४) वर्ष
पीठें स्वर्ग गये, इन श्रीवज्र स्वामीके समयमें दशमा पूर्व और चौथा सं
हनन् और चौथा संस्थान व्यवष्टेद होगये, यहां श्रीसुहृस्ती सूरि आठमें
और श्रीवज्र स्वामी तेरहवे पाटके घीचमें अपर पटावलियोंमें १ श्रीगुण
सुंदरसूरि, २ श्रीकालिकाचार्य, ३ श्रीस्कंधिलाचार्य, ४ श्रीरेवतमित्रसूरि
५ श्रीधर्मसूरि, ६ श्रीजगन्नाथचार्य, ७ श्रीगुप्ताचार्य, यह सात क्रमसें युग

प्रधान आचार्य हूये तथा श्रीमहावीरसें पांचसौ तैतीस (५३३) वर्ष
पीठें श्रीआर्यरक्षितसूरिने सर्व शास्त्रोंका अनुयोग पृथक् पृथक् कर दीयें,
ये प्रबंध आवश्यक वृत्तिसें जान लेनां. तथा श्रीमहावीरसें (५४०) में
वर्ष त्रैराशिके जीतने बाधे श्रीगुप्त सूरि हूये, तिनका प्रबंध उत्तराध्ययनकी
वृत्ति तथा श्रीविशेषावश्यकसें जान लेनां, जिसने त्रैराशिक मत निकाला
तिसका नाम रोहगुप्त था, वो श्रीगुप्तसूरिका चेलाथा, जिसका उल्लूक गोत्र
था जब रोहगुप्त गुल्फे आगे हारा, और मत कदाग्रह न ठोडा, तब अं
तरंजिका नगरीके बख्शीराजाने अपने राज्यसें बाहिर निकाल दीया, तब
तिस रोहगुप्तने कणाद नाम शिष्य करा, उसको १ अव्य, २ गुण, ३ कर्म,
४ सामान्य, ५ विशेष, ६ समवाय. इन पद पदार्थोंका स्वरूप बतलाया,
तब तिस कणादने वैशेषिक सूत्र बनाये. तहांसें वैशेषिक मत चला.

१४ श्रीवज्र स्वामीके पाट ऊपर चौदवें श्रीवज्रतेन सूरि बैठे, वे दु
भिक्कुमें श्रीवज्र स्वामीके वचनसें सोपारक पत्तनमें गये तहां जिनदत्तके ध
रने ईश्वरी नामा तिसकी जायाने लाख रूपके खरचनेसें एक हांकी अ
न्नकी रांधी, जिसमें त्रिप (जहर) मालने लगी, क्योंकि उनोंने विचाराथा
कि अन्न तो निवृत्ता नहीं तिस वाले जहर खाके सर्व घरके आदमी मर
जायेंगे, तिस अवसरमें श्रीवज्रतेन सूरि तहां आये. वो उनको कहने
लगे कि तुम जहर मत खाउं कबको सुगास हो जावेगा तैसेही हूआ तब
तिन रोठके चार पुत्रोंने दीक्षा लीनी, तिनके नाम लिखते हैं:- १ नागें
ज. २ चंद्र, ३ निवृत्त, ४ विद्याधर, तिन चारोंसें स्व स्व नामके चार कुल
बने. यह वज्रतेन सूरि नव वर्ष तक गृहस्थावस्थामें रहे और (११६)
वर्ष समान साधुव्रतमें रहे तथा तीन वर्ष युग प्रधान पदवीमें रहे सर्वायु
(१३०) वर्षकी जोगके श्री महावीरसें (६३०) वर्ष पीठें स्वर्ग गये,
यहां श्रीवज्रस्वामी और वज्रतेन सूरिके बीचमें आर्य रक्षित सूरि तथा श्री
दुर्वाधिका पुष्य सूरि. यह दोनो युग प्रधान हूये. श्रीमहावीरसें (५०४) वर्ष
पीठें सातवा निन्द्व हूआ, तथा श्रीमहावीरसें (६०९) वर्ष पीठें श्री
कृष्ण सूरिका शिष्य शिवभूति नामें था तिनें दिगंबर मत प्रवृत्त करा, सो
अधिकार विशेषावश्यकदिकोंसें जान लेनां.

१५ श्रीवज्रतेन सूरिके पाट ऊपर श्रीचंद्रसूरि बैठा. तिनके नामसें गठ

का तीसरा नाम चंद्रगुह हूया, १६ श्रीचंद्रसूरिके पाट ऊपर श्रीसमंतजद्रसूरि हूये, वे पूर्वगत श्रुतके जानकार थे, वैरागके रंगसें निर्मल हूये, जंगलोंमें रहते थे, तब लोकोंने चंद्रगुहका नाम वनवासी गुह रखा. १७ श्रीसमंतजद्र सूरिके पाट ऊपर श्रीवृद्धदेव सूरि हूये, तथा श्रीमहावीरसें (५९५) वर्ष पीठें कोरंट नगरमें नाहड नामा मंत्रीने तथा सत्यपुरमें नाहडमंत्रीने मंदिर बनवाया, प्रतिमाकी प्रतिष्ठा जज्ञक सूरिनें करी, प्रतिमा श्री महावीरकी स्थापन करी जिसकों "जयउवीरसच्चउरिमंगण" कहते हैं. १८ श्रीवृद्धदेव सूरिके पाट ऊपर श्री प्रद्योतन सूरि हूये.

१९ श्री प्रद्योतन सूरिके पाट ऊपर श्रीमानदेव सूरि हूये, इनके सूरिपद स्थापनावसरमें दोनो स्कंधोंपर सरस्वती और लक्ष्मी साक्षात् देखके यह चारित्रसें ब्रह्म हों जावेगा? ऐसे विचार करके खिलचित्त गुरुकों जानके गुरुके आगे ऐसा नियम करा कि:- जक्तिवाले घरकी जिज्ञा और झूठ, बर्ही, घृत, मीठा, तेल, शरु सर्व पक्वान्नका, त्याग कीया, तब तिनके तपके प्रज्ञावसें नडोल पुर जो पाटीके पास है तिसमें १ पद्या, २ जया, ३ विजया, ४ अपराजिता, ए चार नामकी चार देवी सेवा करती देखी, कोई मूर्ख कहने लगा कि ए आचार्य स्त्रीयोंका संग क्यों करता है? तब तिन देवीयोंने तिसकों सिद्धा दीनी, तथा तिसके समयमें तिद्धिला (गजनी) नगरीमें बहुत श्रावक थे तिनमें मरीका उपद्रव हूया तिसकी शांतिके वास्ते श्री मानदेव सूरिने नडोल नगरीसें शांतिस्तोत्र बना कर जेजा.

२० श्री मानदेव सूरिके पाट ऊपर श्री मानतूंग सूरि हूये जिनोने जका मर स्तवन करके वाण शरु मयूर पंडितोंकी विद्या करके चमत्कृत हूया जो वृद्ध भोजराजा तिनकों प्रतिबोधा, और जयहर स्तवन करके नागरा जा वश करा, तथा जतिजरेत्यादि स्तवन जिनोनें करे हैं, प्रज्ञावक चरित्रमें प्रथम श्रीमानतूंग सूरिका चरित्र कहा, और पीठें देवसूरिका शिष्य श्री प्रद्योतनसूरि तिनका शिष्य श्रीमानदेव सूरि ज्ञाप्रबंध कहा. परंतु तहां संकानकर नी चाहिये क्योंकि प्रज्ञावक चरित्रमें औरजी कई प्रबंध आगे पीठें कहे हैं.

२१ श्रीमानतूंगसूरिके पाट ऊपर श्रीवीरसूरि वेगा, सो वीरसूरिनें श्री महावीरसें (७७०) वर्षमें तथा विक्रम संवत्के तीन सौ वर्ष पीठें नागपुरमें श्रीनमि अर्हंतकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करी, यदुक्तं ॥ आर्या ॥ नागपुरे

नमिजवन, प्रतिष्ठयामहितपाणिसौजाग्यः ॥ अजवधीराचार्य, स्त्रिजिः शतैः
साधिकै राइः ॥ १ ॥

१२ श्रीवीरसूरिके पाट ऊपर श्रीजयदेवसूरि बैठे. १३ श्रीजयदेवसूरिके पाट ऊपर श्रीदेवानंदसूरि बैठे, इस अवसरमें श्रीमहावीरसें (७४५) वर्ष पीठे बलजी नगरी जंग हूइ, तथा (७७२) वर्ष पीठे चैत्येस्थिति तथा (७७६) वर्ष पीठे ब्रह्मद्विपिका. १४ श्रीदेवानंदसूरिके पाट ऊपर श्रीविक्रमसूरि बैठे. १५ श्रीविक्रमसूरिके पाट ऊपर श्रीनरसिंहसूरि बैठे, यतः ॥ नरसिंहसूरिरासी, दतोऽखिलग्रंथपारगोयेन ॥ यक्षोनरसिंहपुरे, मांस रतिंस्त्याजितास्त्रगिरा ॥ १ ॥ १६ श्रीनरसिंहसूरिके पाट ऊपर श्रीसमुद्रसूरि बैठे ॥ श्लोक ॥ वसंततिलकावृत्तम् ॥ खोमीणराजकुलजोपि समुद्रसूरि, गंधं शशास किद यः प्रवणः प्रमाणी ॥ जित्वातदाक्षपनकान् स्ववशं वि तेने, नागझदेजुजगनाथनमस्त्यतीर्थम् ॥ १ ॥ १७ श्रीसमुद्रसूरिके पाट ऊपर श्रीमानदेवसूरि हूए ॥ श्लोक ॥ वसंततिलकावृत्तम् ॥ विद्यासमुद्रहरिजडमुनीं डमित्रं, सूरिर्वज्रूव पुनरेव हि मानदेवः ॥ मांयात्प्रयातमपियोनधसूरिमंत्रं, खेजंवि कामुखगिरा तप सोज्जयंते ॥ १ ॥ श्री महावीरसें एक हजार वर्ष पीठे सत्यमित्र आचार्यके साथ पूर्वाका व्यवछेद हूया, यहां १ श्रीनाग हस्ति, २ रेवतीमित्र, ३ ब्रह्मद्वीप, ४ नागार्जुन, ५ जूतदिन, ६ श्रीकाळ कसूरि, ये ठे युगप्रधान यथाक्रमसें श्रीवज्रसेनसूरि और सत्यमित्रके बीचमें हूए, इन पूर्वांक ठे युगप्रधानोंमेंसें शक्तानिबंदित और प्रथमानु योग सूत्रोंका सूत्रधारकल्प श्रीकाशिकाचार्य श्रीमहावीरसें (९९३) वर्ष पीठे पंचमीसें चौथी संवत्सरी करी. तथा श्रीमहावीरात् (१०५५) वर्ष पीठे और विक्रमादित्यसें (५७५) वर्ष पीठे बकती साधवीका धर्म पुत्र श्रीहरिजडसूरि स्वर्गवाप्त हूए, तथा (१११५) वर्ष पीठे श्रीजिनज डगणि युगप्रधान हूया. और यह जिनजडीय ध्यानशतकका कर्त्ता होने से और हरिजडसूरिके टीका करनेसे दूसरा जिनजड है, यह कथन पहा वसिमें है, परंतु श्रीजिनजडगणिकमाध्रमणकी आयु (१०४) वर्षकी थी, इस बातसे जे ऊर हरिजडसूरिके बचनमें जीते होवें नाजी विगंध नहीं. २० श्रीमानदेवसूरिके पाट ऊपर श्रीविबुधप्रजन्सूरि हूया. २१ श्रीविबुधप्रजन्सूरिके पाट ऊपर श्रीजयानंदसूरि हूया. २२ श्रीजयानंदसूरिके पा

ट ऊपर श्रीरविप्रजसूरि दृष्ट्या, सो महावीरसें पीठें (११७०) वर्ष विक्रमसंवत्सें (७००) वर्ष पीठें नमोल नगरमें श्रीनेमिनाथका प्रास्ता (मंदिरकी) प्रतिष्ठा करी तथा श्रीवीरात् (११७०) वर्ष पीठें उमास्वामि युगप्रधान दृष्ट्या. ३१ श्रीरविप्रजसूरिके पाट ऊपर श्रीयशोदेव सूरि बैठे, वहां श्रीमहावीरसें (११७१) वर्ष पीठें थोर विक्रम संवत्सें (७०१) के साक्षमें अणहल पुर पट्टन वनराज राजेने वसाया वनराज जैनी रा जा था, तथा श्रीवीरात् (११७०) थोर विक्रमादित्यके संवत् (७००) के साक्षमें जाडपद शुक्ल तीजके दिन वष जट्ट आचार्यका जन्म दृष्ट्या, जिस ने गरासियरके थाम नाम राजाको जैनी बनाया. इनका विशेष चरित्र ग्रंथधर्मात्मणि ग्रंथसें जान लेनां.

३२ श्रीयशोदेवसूरिके पाट ऊपर श्रीप्रद्युम्नसूरि दृष्ट्या. ३३ श्रीप्रद्युम्नसूरिके पाट ऊपर श्रीमानदेव सूरि उपधानवाच्यग्रंथका कर्ता दृष्ट्या. ३४ श्रीमानदेवसूरिके पाट ऊपर श्रीविमलचंद्र सूरि दृष्ट्या. ३५ श्रीविमलचंद्रसूरिके पाट ऊपर श्रीउद्योतनसूरि दृष्ट्या, सो उद्योतनसूरि अर्धुदाचधे (थाचू) के पदार्थ ऊपर यात्रा करणे आये थे, जहां टेली गामके पास बनी बडगुफकी गायामें बैठेनें अपने पाटकी गृहि वास्ते अष्टा मुहूर्त देख करके श्रीमहावीरसें (१४६४) वर्ष थोर विक्रमसें (९९४) वर्ष पीठें अपने पाट ऊपर श्रीसर्वदेव प्रमुख थाव आचार्य स्थापे कोइ पदसें सर्वदेव मूर्तिकांडी कहते हैं, वडे वरके देग सूरि पदवी देनेसें तहांमें वन वासी गत्रका पांचमा नाम बडगग्न दृष्ट्या, "प्रधानशिष्यसंतत्या, ज्ञानारि गुणैः प्रधानचरित्तिश्चकृत्वा दृढकृत्तद्वयपि "

३६ श्री उद्योतनसूरिके पाट ऊपर श्रीसर्वदेवसूरि दृष्ट्या, यहां कोइ नो श्रीप्रद्युम्नसूरि थोर उपधान ग्रंथका कर्ता श्रीमानदेवसूरि इन दोनोंमें पदधर नहीं मानते हैं, तिनके अनिप्रायमें सर्वदेवसूरि चौतीसमें पाट दृष्ट्या, सो सर्वदेवसूरि श्रीगौतमस्वामीकी तरं मुशिष्य अग्निमान विक्रमसें वने (१०१०) वर्ष पीठें रामसेन्य पुरमें श्रीरूपनक्षत्र तथा चंद्रप्रतपस्यकी प्रतिष्ठा करी, तथा चंडावतीमें कुंकणमंत्रिकां प्रतिशोधके दीक्षा दीनी, जि सनेही चंडावतीमें जैनमंदिर बनवाया था, तथा विक्रमसें (१०२१) वर्ष पीठें वनराज पंडितने देशी नाम भाषा बनाइ तथा विक्रमसें (१०२३)

वर्ष पीठें श्रीउत्तराध्ययनकी टीका करने वाला शिरापड़ीयगठमें वादी बैताल श्री शांति सूरि हूये.

३७ श्री सर्वदेवसूरिके पाट ऊपर श्री देवसूरिके रूपश्री ऐसा राजानें विरुद दीया, ३७ श्री देवसूरिके पाट ऊपर फिर श्री सर्वदेवसूरि नामा हूये जितने यशोज्ञज्ञ नेमिचंज्रादि आठ आचार्योंको आचार्य पदवी दीनी, तथा श्री महावीरसें (१४९६) वर्ष पीठें तक्षिलाका नाम गजनी रखा गया. ३९ श्री सर्वदेवसूरिके पाट ऊपर श्री यशोज्ञज्ञ अरु नेमिचंज ये दो गुरु ज्ञाई आचार्य हूये, तथा विक्रमसें (११३५) वर्ष पीठें कोई कहता है, (११३९) वर्ष पीठें नवांगीवृत्ति करने वाला श्री अजयदेवसूरि स्वर्ग वास हूये, तथा कूर्चपुरगठ्रीय चैत्यवासि जिनेश्वरसूरिका शिष्य श्री जिन वल्लभसूरिनें चित्रकूटमें श्री महावीरके पद कव्याणक प्ररूपे.

४० श्री यशोज्ञज्ञसूरि तथा श्री नेमिचंजसूरिके पाट ऊपर श्री मुनिचंजसूरि हूये, जिनोंने जावज्जीव एकसौवीर पाणी पीना रखा, और सर्व विगयका त्याग करा, तथा जिनोंने श्रीहरिज्ञज्ञसूरिकृत अनेकांत जयपताकादि अनेक ग्रंथोंकी पंजिका करी, उपदेशपदकी वृत्ति, योगविंदुकीवृत्ति, इत्यादिकोंके करनेसें तार्किक शिरोमणि जगतमें प्रसिद्ध हुआ, और यह आचार्य बना त्यागी निस्पृह हुआ. यहां विक्रम राजासें (११५९) वर्ष पीठें चंजप्रज्ञसें पौर्णिमीयक मतौत्पति हुआ तिस चंजप्रज्ञके प्रतिबोधने वास्ते श्री मुनिचंजसूरिजीने पादिक सप्ततिका करी है, तथा श्री मुनिचंजसूरिका शिष्य श्री अजितदेवसूरि वादी अरु श्री देवसूरि प्रमुख हूये तहां वादी श्री अजितदेव सूरिजीनें अणहल पुर पाटणमें श्रीजयसिंह देवराजाकी सजामें अनेक विद्वज्ज्ञान संयुक्त चोराशी वाद वादियोंसें जीते, दिगंबरमतका चक्रवर्ती कुमुदचंज आचार्योंको जिनोंने वादमें जीता, और दिगंबरोंका पटनमें प्रवेश करना बंद कराया, सो आज तक प्रसिद्ध है. तथा विक्रमसें (१२०४) वर्ष पीठें फलवर्द्धिग्राममें चैत्यविंवकी प्रतिष्ठा करी, सो तीर्थ आजगी प्रसिद्ध है, तथा आरासणमें श्री नेमिनाथकी प्रतिष्ठा करी, तथा जिनोंने (७४०००) चोरासी हजार श्लोक प्रमाण त्याछादरत्नाकर नामा ग्रंथ बनाया, तथा जिनोंने बडे नामावर चौबीस आचार्योंकी शाखा हुआ, इनांका जन्म संवत् (११३४) में हुआ, (११५२) में दीक्षा लीनी, (११७४) में सूरिपद

मिला, (१२२०) की श्रावणकृष्णसप्तमी गुरुवारें स्वर्गकां प्राप्त हूये, तिनोके समयमें श्री देवचंद्रसूरिका शिष्य तीन क्रोर ग्रंथका कर्ता, कबि कालमें सर्वज्ञ विरुदका धारक, पाटणके राजा कुमारपालका प्रतिबोधक, सवा लक्ष श्लोक प्रमाण पंचांग व्याकरणका कर्ता, श्री हेमचंद्रसूरि पि या समुद्र हुआ, तिनका विक्रमसंवत् (११४५) में जन्म (११५०) में दीक्षा (११६६) में सूरिपद अरु (१२२७) में स्वर्गवास हुआ, इनोका संपूर्ण प्रबंध देखनां होवे, तदा श्री प्रबंध चिंतामणि तथा कुमारपाल चरित्रसे देख लेनां. ४१ श्री मुनिचंद्रसूरिके पाट ऊपर श्री अजितदेव सूरि हूये, तिनोके समयमें संवत् (१२०४) में खरतरोत्पत्ति, संवत् (१२३३) वर्षे आंचलिकमतोत्पत्ति, संवत् (१२३६) वर्षे सार्द्धपौर्णिमी यकमतोत्पत्ति, संवत् (१२५०) वर्षे आगमिकमतोत्पत्ति हुई, तथा श्री वीरजगवानसे (१६७२) वर्षे वागजट मंत्रीने शत्रुंजयका चौदहमां उद्धार कराया, साठे तीन क्रोर रूपक लगाया.

४२ श्री अजितदेव सूरिपदे श्री विजयसिंह सूरि हूये, जिनोनें विवेकमें जरी शुरू करी, जिनोका वना शिष्य श्री सोमप्रज सूरि शतार्थितया अर्थात् जिनोके बनाये एकेक श्लोकोके सौ सौ तरेंके अर्थ निकलें और दूसरा मणि रत्न सूरिथा. ४३ श्री विजयसिंह सूरिपदे श्री सोमप्रज सूरि और मणिरत्न सूरि हूये. ४४ श्री सोमप्रज तथा श्री मणिरत्न सूरिके पाट ऊपर श्री जग चंद्रसूरि हूये, जिनोनें अपणें गद्यकों शिथिल देखकें और गुरुकी आज्ञासे वैराग्य रसका समुद्र चैत्रवालगभीय श्री देवजद्र उपाध्यायके सहायसे क्रिया उद्धार कीया, और हीरलाजगचंद्र सूरि विरुद पाया, क्योंकि जिनोनें चितोमके राजाकी राजधानी अघाट अर्थात् (अहममें) बत्तीस दि गंवराचार्योके साथ वाद करता हुआ, हीरेकी तरें अजेय रहा, तब रा जाने हीरलाजगचंद्र सूरि ऐसा विरुद दीया तथा जिनोने यावज्जीव आचाम्बलतपका अग्निग्रह करा तब वारा वर्षे तप करता हुआ तब चितो मके रानाने तपा विरुद दीया, संवत् (१२०५) के वर्षमें वनगद्यका नाम तप गद्य हुआ, यह उद्या नाम हुआ. १ निर्ग्रंथ, २ कोटिक, ३ चंद्र, ४ वनवासी, ५ वडगद्य, ६ तपागद्य, इन उद्यो नामोके प्रवृत् होनेके ठे आचार्य हेतुरूप हूये हैं, तिसका नाम अनुक्रमसे लिखते

हैं:- १ श्री सुधर्मस्वामी, २ सुस्थित सूरि, ३ श्रीचंड सूरि, ४ सामंतज
ड सूरि, ५ श्रीसर्वदेव सूरि, ६ श्रीजगचंड सूरि.

४५ श्री जगचंड सूरि पढ़े श्री देवेंड सूरि डूये, सो माखवेकी उज्जय
नी नगरीमें जिनचंड नामा बडे शेरका वीरधवल नामा पुत्र तितके विवा
ह निमित्त नहोत्तव हो रहा था, तब वीरधवल कुमारकों प्रतिबोध क
रकें संवत् (१३०१) वर्षमें दीक्षा दीनी, तित पीठें तितके जाइकोंजी
दीक्षा देकर चिरकाय तक नाखव देशमें विचरे, तित पीठें गुंझर देशमें
देवेंड सूरि श्री स्तंज तीर्थमें आये, तहां पहिलां श्री विजयचंड सूरि गी
तायोंको पृथक् पृथक् वस्त्रके पोडये देता है, और नित्य विगय खानेकी
आज्ञा देता है, और वस्त्र धोनेकी तथा फल, शाक खेनेकी और निर्वृक्त
तके प्रत्याख्यानमें विगयगतका खेना कहता है. और आयांका व्याया
आहार साधु खावे, यह आज्ञा देता है, और दिनप्रत्यं द्विविध प्रत्या
ख्यान और गृहस्थोंके अवर्जिने वास्ते प्रतिक्रमण करणेकी आज्ञा देता
है, और संविज्ञागके दिनमें तितके घरमें गीतायं जावे, खेपकी संनिधि
रखनी, तत्कालोष्णोदका ग्रहण करणां इत्यादि काम करनेमें कितनेक
साधु शिष्याचार्योंको साथ लेकर सदाय पापधशालामें रहा.

इन विजयचंडाचार्यकी उत्पत्ति अंतें हैं. मंत्री वस्तुपात्रके घरमें विजय
चंड नामा दफतरी था, वो किसी अपराधमें जेहख खानेमें कैद हुआ, तब
श्री देवजड उपाध्यायने दीक्षा देनेकी प्रतिज्ञा करवा कर बुना दीया, पीठें
तितने दीक्षा दीनी, सो बुद्धिबलमें बहुश्रुत हो गया, तब मंत्री वस्तुपात्र
ने कहाकि ये अजिमाानी हैं, इत वास्ते नूरिपदके योग्य नहीं हैं. इत तरं
नने करते हुए तोजी श्री जगचंड सूरिजीने श्री देवजड उपाध्यायके कह
नेमें नूरिपद दे दीया, क्योंकि यह देवेंड सूरिका साहायक होवेगा अंता
जान कर नूरिपद दीया. पीठें वो विजयचंड बहुत काय तक श्री देवेंड
नूरिके साथ विनयवान् शिष्यकी तरं वर्तता रहा परंतु जब नाखव देशमें
श्री देवेंड नूरि आये. तब बंदना करनेकोजी नहीं थाया, नव देवेंड नूरि
जीने कहाजा जेजा कि एक बलिमें तुम बागं वर्ष कैसे रहे? नव विजय
चंडने कहाकि शान्त शान्तको बारां वर्ष एक जगेने रहनेने कुछ दोष नहीं.
संविज्ञतापु तब देवेंड नूरिके साथ रहे, और देवेंड नूरिजी नो अनेक नं

विश्व साधुके समुदाय साथ उपाश्रयमें रहे, तब लोकोने वमीशांलामें रहनेसें विजयचंद्रसूरिके समुदायका नाम वृद्धपोशाखिक रक्खा और देवेंद्र सूरिजीके समुदायका लघुपोशाखिक नाम दीया, और स्थंजतीर्थके चौकमें कुमारपालके विहारमें धर्मदेशा नामे मंत्रि वस्तुपालने चारोघेदोंका निर्णय दायक स्वसमय परसमयके जानकार श्रीदेवेंद्रसूरिजीकों बंदना देके बहुमान दीया, और श्रीदेवेंद्रसूरिजी विजयचंद्रकी उपेक्षा करके विचरते हुए क्रमसें पाटहणपुरमें आये, तहां चौरासी इच्छसेठ अनेक पुरुषोंके साथ परिवरे, सुखासन उपर बैठे हुए शास्त्रके बडे श्रोता व्याख्यान सुनने आते थे, और पाटहणपुरके विहारमें रोजकी रोज एक मूढक प्रमाण अक्षत और सोलां मण सोपारी दर्शन करनेवाले श्रावकोंकि चढाइ चढती होती थी, इत्यादि घने धर्मी लोकोनें गुरुकों विनति करी कि हे जगवन् ! यहां थाप किसीकों आचार्य पदवी देउं हमारा मनोरथ पूरो तब गुरुने उचित जानके पाटहणपुरमें विक्रम संवत् (१३२३) में वर्षे श्रीविद्यानंद सूरि नाम देके वीरधवलकों सूरिपद दीनां, और तिसके अनुज जीमसिं हकों धर्मकीर्त्ति उपाध्यायकी पदवी दीनी, तिस अवसरमें प्रह्लादनविहारके सौवर्ण कपिशिपे मंरुपसें कुंकुमकी चर्पा हूइ, तब सर्व लोकोकों बना आश्चर्य हूआः—श्री विद्यानंद सूरिजीने विद्यानंद नाम नवीन व्याकरण बनाया ॥ घडुके ॥ विद्यानंदाजिधं येन, कृतं व्याकरणं नवं ॥ ज्ञाति सर्वोत्तमं स्वल्प, सूत्रं बहुर्थसंग्रहं ॥ १॥ पीठें श्री देवेंद्र सूरिजी फेर मालवकों गये श्री देवेंद्र सूरिजीके करे हूये ग्रंथोंका नाम लिखते हैं. १ आरुदिन कृत्यसूत्रवृत्ती, २ नव्यकर्मग्रंथपंचकसूत्रवृत्ती, ३ सिद्धपंचाशिकासूत्रवृत्ती, ४ धर्मरत्नवृत्ती, ५ सुदर्शनचरित्र, ६ तीनज्ञाप्य, ७ वृंदारवृत्ती, ८ सिरिउ स्तववृत्तमात्र प्रमुख स्तवन, कोइ कहते हैं कि आरुदिनकृत्यसूत्रतो चिरंतन आचार्योंका करा है. विक्रम संवत् (१३२७) में वर्षे मालवदेशमें देवेंद्र सूरि स्वर्गवास हूये, देवयोगसें विद्यापुरमें तेरह दिनों पीठें श्रीविद्यानंद सूरिजी स्वर्गवास हूये, तब ठे मास पीठें सगोत्र सूरिने श्रीविद्यानंद सूरिके जाइ श्री धर्मकीर्त्ति उपाध्यायकों सूरिपद देके धर्मघोष सूरि नाम दीया.

४६ श्री देवेंद्र सूरि पडे श्री धर्मघोष सूरि हूये, जिनोंने मंरुपाचलमें शा० श्री पृथ्वीधरकों पंचमानुव्रत लेतेकों ज्ञानसें निषेध करा, क्योंकि

आचार्यने ज्ञानसे जाना कि यह पुरुषके व्रत जंग होजावेगा ? इस जयसे निषेध करा, पीछे वो पृथ्वीधर, मंनपाचक्षके राजाका मंत्री हुआ, और धन करके तो धनद समान हो गया, पीछे तिसने चौरासी जिनमें द्दिर और सात ज्ञानके पुस्तकोंके मंगारे बनाये और श्री शत्रुंजयमें इक्षी स भडी प्रमाण सोना खरचके रूपे मय श्री रूपजदेवजीका मंदिर बन बाया, कोइ कहते हैं कि ठप्पन भडी सुवर्ण खरचके इक्षमाखा पहिर तथा धरती नगरमें कित्ती साधुमीनि ब्रह्मचारीका वेप देनेके अवसरमें पृथ्वीधर को नहाधनाय्य जानके तिसकी जेट करा, तब पृथ्वीधरने बोड़ी वेप डेकर तिस दिनसे व्रत्तीत वर्षकी उमरमें ब्रह्मचर्य व्रत धारण करा, तिसके एकही जांजण नान पुत्र था, जिसने श्री शत्रुंजय, उज्जयंतगिरिके शिखर उपर बारह योजन प्रमाण सुवर्ण रूपमय एकही ध्वज चडाइ, जिसने सारंगदेव राजासे कर्पूरका महसूल बुनाया, तथा जिसने मंनपा चक्षमें बहत्तर हजार (९२०००) रूपक गुरुके प्रवेशके उत्सवमें खरच करे.

तथा श्री धर्मघोष सूरिने देवपत्तनमें शिष्योंके कहनेसे मंत्रमय स्तुति बनाइ तथा देवपत्तनमें जिनोके लब्ध्यानके वखसे नवीनोत्पन्न हुये कपर्दी यक्षने वज्र स्वामीके महात्मसे पुराने कपर्दी मिथ्यादृष्टिको निकासया, इनो ने उत्तको प्रतिबोधके श्री जैनविवांका अधिष्ठाता करा, तथा जिनो आगे सनुजके अधिष्ठाताने अपने सनुजके तरंगोसे रख डोकन करे, एकदा समय कित्ती दुष्टस्त्रीने कर्मण संयुक्त बडे बनाकर साधुओंको दीए परं श्री धर्म घोष सूरिजीने वे बडे धरती उपर गिराए, अत उत स्त्रीको मंत्रसे पकना पीछे जब बहु दुःखी हुआ तब दया करके गोनदीनी, तथा विद्यापुरमें प कांतरीयांकी स्त्रीयोंने धर्मघोषजीके व्याख्यान रसके जंग करने वास्ते के उनें मंत्रसे केश गुच्छक कर दीया पीछे श्री धर्मघोष सूरिजीने जब जाना, तब तिन स्त्रीयांको स्तंजन कर दीया, तब तिन स्त्रीयांने विनति करी कि आज पीछे हम तुनारे गच्छको उपद्रव न करेंगे, तब गुरुजीने श्री सं धके बहुत आग्रहसे गोडी, तथा उज्जयनीने एक योगी जैनके साधुओंको रहने नहीं देता था. जब श्री धर्मघोष सूरि तहां आये तब उस योगीने साधुओंको कहा कि अब तुम इहां आये हो तो तकडे हो कर रहनां तब साधुओंने कहा हमनी देखेंगे कि तूं क्या करेगा ? पीछे उत्तने साधु

ओंकों दांत दिखलाये, तब साधुओंने कफोणि (कूहनी) दिखलाइ पीठे साधुओंने जा कर यह सर्व समाचार अपने गुरुकों कहा, उहां योगी नेत्री धर्मशालामें विद्याके धलसं बहुत चूहे बनादीये, तब साधु बहुत डरे पीठे गुरुजीनें घडेका मुख, वस्त्रसें ढांककें ऐसा मंत्र जपा कि जितसे योगी आराटि करता हूया आके पाऊमें पना, और अपने अपराधका क्षमापना मांगा, तथा किसी नगरमें शाकनीयोंके मंत्रसें मंत्रके कपाट दीये जाते थे, एक दिन बिना मंत्रे कपाट दीये गये, तब रात्रिकों शाकनीयोंनें उपद्रव करा, गुरुने उनकों विद्यासें स्तंभित करा, एकदा रात्रिमें गुरुकों सर्पके काटनेसें जब जहर चढा, तब गुरुने संघकों विधुर देखके कहा कि दरवाजेमें किसी पुरुषके मस्तकोपरि काष्ठकी जरीमें विषापहार एक घेसडी आयेगी वो घेसडी घसके डंकमें देदेनी उत्सें जहर उतर जायगा, संघनें तैसेंही करा गुरु राजी हो गये, पीठे तिस दिनसें जावझीव ठे विषयका त्याग करा, और सदा जुयारकी रोटी नीरस जानके खाते रहे, श्री धर्मघोष सूरिजीके करे ये ग्रंथ हैं:- सो कहते हैं:- १ संघाचारभाष्यवृत्ती, २ सुश्रधम्मतिस्तव, ३ कायस्थिति जवस्थिति, ४ चौबीश तीर्थकरोंके चौबीश स्तवन, तथा ५ स्वस्ताशमेंत्यादिस्तोत्र, ६ देवेंद्रेनिशंइति श्लेषस्तोत्र, ७ वृयं युवात्वमिति श्लेषस्तुतीयां, ८ जयवृषनेत्यादि स्तुति, यह जयवृषनेत्यादि स्तुति करणेका यह निमित्त था कि:- एक मंत्रीने आठयमक काव्य कह करके कहा, कि ऐसे काव्य अब कोइ नहीं बना सकता तब गुरुने कहा कि ना स्ति नहीं तब तिसने कहा तो हमकों कर दिखलाउ तब गुरुजीनें जयवृषनेत्यादि ठे स्तुति एक रात्रिमें बना कर जीतां पर लिखकें दिखाइ तब तिसने बड़ा चमत्कार पाया, गुरुजीने तिसकों प्रतिबोधके जैनी करा, ये श्री धर्मघोष सूरि विक्रम संवत् (१३५९) में स्वर्ग गये.

१८११ आः श्री धर्मघोष सूरि पढ़ें श्री सोमप्रज्ञ सूरि हूये, जिनोंनें नमि सूरि स्व जणइणवमित्यादि आराधना सूत्र करा, तिनका संवत् (१३९०) रिजी स्तम्भ, (१३२१) में दीक्षा, (१३३२) में सूरिपद, जिनोके इग्याइ ३ श्री सूत्रार्थ कंठ थे, तथा "गुरुजिगीयमानायां मंत्रपुस्तकायां यद्यतचरित्रं ४६ भित्ति कां च" ऐसा कह कर तिसमंत्र पुस्तकाकों ग्रहण करा, क्योंकि शा० श्री पु० नदी या यही श्री सोमप्रज्ञ सूरिने जलकुंकणदेशमें थ

पञ्चके विराधनाके जयसें और मरुदेशमें शुद्धजन्मकी दुर्लभतासें साधुओं का विहार निषेध करा तथा जमीपल्लीमें दो कार्तिक मास हुये तब सोमप्रज्जी प्रथम कार्तिककी एकादशीको विहार कर गए क्योंकि उनोंने जानाकी जमीपल्लीका जंग होगा अरु जंग हुए पीठें जो रहे वो, दुःखी हुए, सोमप्रज्ज सूरिके करे ग्रंथ जितकल्पसूत्र, यत्राखिलेत्यादि स्तुतीयां, जितेन येनेतिस्तुतीयां, श्री नठस्मेत्यादि, तिनके करे बडे शिष्य विमलप्रज्ज सूरि, श्री परमानंद सूरि, श्री पद्मतिष्ठक सूरि, अरु श्री सोमविमल सूरि ये, जिस दिन पूर्वोक्त श्री धर्मघोष सूरि, देवगत हुए तिस दिनही (१३५७) वर्षे श्री सोमप्रज्ज सूरिजीने श्री विमलप्रज्ज सूरिकों सूरिपद दीया क्योंकि तिनोंने अपना स्वल्पही आय जानां श्री सोमप्रज्जजी (१३७३) वर्षे देवलोक गए.

४७ श्रीलोकप्रज्ञसूरि पढे श्रीलोकतिलकसूरि द्रष्टु, तिनोका (१३५५) में
वषे नाथे जन्म, (१३३६) वषे दीक्षा, (१३७३) वषे सूरिपद, (१४२४)
वषे स्वर्गगमन, तवायु (६५) वर्षकी जाननी, तिनके करे ग्रंथ लिखते हैं:-
१ वृद्धव्यक्तेरत्नमास सूत्र, तत्परित्यगाणं, यत्राखिलजयवृषभलत्ताशर्म०
प्रमुखकी वृत्ति, श्रीतीर्थराज०, चतुरश्रीस्तुतितद्वृत्ति, शुभभावागत० श्रीम छी
रस्तुवेदित्वादिकमलबन्धस्तवःशिवशिरसि श्रीनाभिसंभव० श्रीशैवेय० इत्यादि
लवन, श्रीलोकतिलकसूरिकनकरके १ श्रीपद्मतिखकसूरि, २ श्रीचंद्रशेखरसूरि,
३ जयानंदसूरि, ४ श्रीदेवसुंदरसूरियोंको सूरि पद दीया, तिनमें श्रीपद्मतिखक
सूरि, लोकतिलक सूरिसे पर्यायमें बडे थे, सो एक वषे जीते रहे, और बडे
बेतागी थे तथा श्रीचंद्रशेखर सूरि, विक्रमसंवत् (१३७३) में जन्मे, (१३७५) में
दीक्षा, (१३८३) में सूरिपद, इनके करे ग्रंथ:- १ उपनिषोजनकथा, यवराजक
पिकथा, श्रीनल्लंजकद्वारबंधादिलवन है, जिनोके मंत्रों सो मंत्री राजहो
वे तिनसेही उपद्रव करनेवासे यह, हरिका, दुर्जर नृगराज, श्वान, सुरिनि
हर हो जाते थे तथा श्रीजयानंदसूरिका विक्रम संवत् (१३७७) वषे जन्म,
(१३८२) वषे आपाड सुदित्तातम सुक्रवारके दिन धारानगरीमें वनप्रवृत्त,
(१३८७) में सूरिपद, (१४४१) में स्वर्ग गये, तिनके करे ग्रंथ १ श्री
वृषभज चरित्र, २ देवाः प्रजोपे प्रमुख लवन है.

४२ श्री लोनलिकर सुरि पदे श्री देवकुंजर सुरि कुम्भ. निनका (१३२२)
 श्री वन्न, (१४३४) वर्षे दीक्षा, (१४२३) वर्षे अष्टदशव्रतनर्मे सुरिपदे,

यह देवसुंदर सूरि बड़ा योगाज्यासी और मंत्र तंत्रकी रुझिका मंदि, स्यावर जंगमविपापहारी, जनानल, व्याल अरु हरि, जयका तोडनेवाला, अतीतानागत निमित्तका वेत्ता, राजमंत्रि प्रमुखोंका पूज्यनीक, यह श्री देव सुंदर सूरिके शिष्य १ श्रीज्ञानसागर सूरि, २ श्री कुलमंनन सूरि, ३ श्री गुणरत्न सूरि, ४ श्री सोमसुंदर सूरि, ५ श्री साधुरत्न सूरि, यह पांच बड़े शिष्य थे, तिनमें श्री ज्ञानसागरजीका (१४०५) में वर्षे जन्म, (१४१७) में दीक्षा, (१४४१) में सूरिपदं, (१४६०) में स्वर्गगमनं, तिनके करे ग्रंथ श्री आवश्यक, उगनियुक्त्यादि अनेक ग्रंथावचूरी, श्री मुनिसुव्रत स्तवन, घनोघनखंरु पार्श्वनाथादि स्तवन, दूसरा श्री कुलमंनन सूरिजीका (१४००) में जन्म, (१४१७) में दीक्षा, (१४४२) में सूरिपदं, (१४५५) में स्वर्गगमनं, जिनोंके करे ग्रंथ सिद्धांतालापकोद्धार, विश्वश्रीधरेत्यादि, अष्टादशारचक्रस्तव, गरीयो और हारस्तवादय हे, तीसरा श्री गुणरत्न सूरि तिनके करे ग्रंथ १ क्रियारत्न समुच्चय, २ पददर्शनसमुच्चय बृहद्भूति है, चौथा श्री साधुरत्न सूरिजीके करे ग्रंथः— १ यतिजीतकव्यवृत्ति है.

५० श्री देवसुंदर सूरि पढ़े श्री सोमसुंदर सूरि दूष तिनका (१४३०) में जन्म, (१४३७) में दीक्षा, (१४५०) में वाचक पद, (१४५७) में सूरिपदं, जिसके (१०००) अठारहसो साधु क्रिया पात्र परिवार देखकें कितनेक लिंगी पाखंभीयोंनिं पांचसो (५००) रूपक देके एक स हस्त पुरुषोंको उनके वध करने वास्ते भेजे, तब वे जिस मकानमें गुरु थे तिस मकानमें रातको ठीप रहे, जब मारनेको उद्यत हुए तब चंड माके उद्योतमें श्री गुरुजीनं रजोहरणसें पूंजके जब पासा पसटा, तब देखकें तिनके मनमें ऐसा विचार आया किः— ए नींदमेंनी कुछ प्राणि योंकी दया करते हैं, और हम इनको मारने आए हैं, यह कितना अंतर है ? तब मनमें रुके और गुरुके पायोंमें पड़के अपराध क्षमा कराया, इनोंके करे ग्रंथः— योगशास्त्र, उपदेशमात्रा, पडावश्यक, नवतत्त्वादि वा सावधोप, नाप्यावचूर्णी, कल्याणिकस्तोत्रादि. जिनोंके शिष्य श्री मुनिसुंदर सूरि, कृष्णसरस्वती विरुद धारक श्री जयसुंदर सूरि, और महाविद्या विडम्बन टिप्पनक कारक श्री जयन सुंदर सूरि, जिनके कंठ एकादशांगी सूत्रा थे थे, और चौथा जिनसुंदर सूरि ये चार जिनके प्रतापी शिष्य दूष, जिनोंने

राष्ट्रक पुरमें श्री धनकृत चौमुखविहारेमें रूपजादि अनेक शत विंव प्रतिष्ठित करी, ये विक्रम संवत् (१४९९) में स्वर्ग गये.

५१ श्री सोमसुंदर सूरि पढ़े श्री मुनिसुंदर सूरि हूये, जिनोंने अनेक प्रसाद, पद्मचक्र, पट्टकारक, क्रियायुक्तक, अर्द्धचक्र, सर्वतोन्नत, मुरज, सिंहासन, अशोक, जेरी, समवसरण, सरोवर, अष्टमहाप्रातिहार्यादि नवीन प्रशस्तिबंध तर्क प्रयोगादि अनेक चित्राक्षर, छल्लकर, पंचवर्ग परिहारादि अनेक स्तवमय त्रिदशतरंगिणीनामा एक सौ आठ हाथ लंबी पत्रिका लिखकें श्री गुरुकों जेजी तथा चातुर्वेद्यविशारद निधि, उपदेश रत्नाकर प्रमुख अनेक ग्रंथोका कर्ता, तथा जिनकों श्री स्तंजतीर्थमें दफतर खाननेवादी गोकुलसंड, ऐसा नाम कहा, तथा जिनोंने दक्षिणसं कालसरस्वती ऐसा विरुद पाया, आठ वर्ष गणनायक, पीठे तीन वर्ष युगप्रधान पद, लोकोंने प्रसिद्ध करा. एक सौ आठ वर्तुलिकानादौपलक्षक, बाध्यावस्था मेंजी एक सहस्र श्लोक नवीन कंठ कर लेते थे तथा संतिकर नामा महिम स्तवन करनेसे योगिनी कृत मरीका उपद्रव दूर करा चौबीस वार विधिते सूरि मंत्रकों आराधा, तिनमेंजी चौदह वार जिनके उपदेशसे धारादि नगरीयोंके स्वामी पांच राजाओंने अपने अपने देशोंमें अमारिका डंगोरा फिराया, तथा तिरोही देशमें सहस्रमहाराजानेंजी प्रभार प्रवृत्त करी तीडका उपद्रव टाला, इनका विक्रम संवत् (१४३६) में जन्म, (१४४३) में दीक्षा, (१४६६) में वाचक पद, (१४७०) में वत्तीस सहस्र रूपक खरचके बृद्धनगरीके शाह देवराजने सूरिपदका महोत्सव करा, (१५०३) वर्षे कार्तिकशुदि पडिवाके दिन स्वर्गवास हुआ.

५२ श्री मुनिसुंदर सूरि पढ़े श्री रत्नशेखर सूरि हुए, तिनका (१४५७) वर्षे जन्म, (१४६३) वर्षे दीक्षा, (१४७३) वर्षे पंडितपद, (१४९३) वर्षे वाचकपद, (१५०२) वर्षे सूरिपद, (१५१७) वर्षे पोषवदिष्ठ दिनें स्वर्गवास हुआ, जिसका स्तंजतीर्थमें बांवी नामा जटनें वाल सरस्वती नाम दीया, तिनके करे ग्रंथः-आरूपप्रतिक्रमणवृत्ति, आरूपविधिसूत्रवृत्ति, लघुक्षेत्र समाप्त, तथा आचारप्रदीपादि अनेक ग्रंथ जान लेनां, तथा जिनोंके समयमें हुंका नामक बिल्वारीने संवत् (१५००) में जिनप्रतिमाका उठापक हुंका नामा मत चलाया और तिसके मतमें वेपका धर

ने वाला संवत् (१५३३) में जाणा नामा प्रथम साधु हुआ, इस उत्पत्ति ऐसे हुए हैं, सो लिखते हैं:-

गुजरात देशमें अहमदाबादमें जातिका दशाश्रीमालि लुंका नामें (खारी वसता था, सो ज्ञानजी जतीके ऊपाश्रयमें पुस्तक लिख कर उस आसदनीसैं गुजारा कराताथा, एक दिन एक पुस्तककों लिख रहा था, समेंसैं सात पत्रे बिना लिखे ठोम दीये, जब पुस्तक वालेने पुस्तक देत तब पूठाकि इस पुस्तकके सात पत्रे क्यों ठोम दीये ? तब लुंका उस साथ छरने लगा तिस वखत लोकोंने मार पीटके उपाश्रयसैं बाहिर काल दीया, और नगरमें कह दीयाकि इस्ते कोइ जनजी पुस्तक न लिखावे, तब लुंका साचार और क्रोधमें भरकर अहमदाबादसैं ठेतालीस क सके लग जग नीवडी गाममें चला गया, उस गाममें लुंकेकी विरादरीक एक लखमसी नामा बणिया राजमें कारजारी था, तिसके आगे बहुत रोया पीटा, जब तिसने पूठा क्या हुआ ? तब लुंकेने कहाकि मैं जगवानका सब मत कहने लगा था, तब तपगछके आवकोंने मुझे पीटा, अब मैं तेरे पास आया हूं, जेकर तूं मेरा मददकार बने, तो मैं सच्चा मत प्रगट करूं, तब तिस लखमसीने कहाकि नीवडीके राज्यमें तूं वेशक अपने सच्चे मतके प्रकट कर, मैं तेरा मददगार हूं, खाने पीनेकोंजी देजंगा, और तेरा शास्त्र सुनुंगा, तब लुंका तो श्रीमहावीरके साधुओंकी और श्रीजिनप्रतिमाकी दृष्टापना करने लगा, अरु कहने लगा कियह साधु नहीं हैं, ब्रह्मचारी हैं, निर्दयी हैं, उलटाज्ञान सुनाते हैं, इत्यादि जो आपके मनमानी सो निंदा करी और शास्त्रोंमेंसेंजी जिन जिन शास्त्रोंमें जिनप्रतिमाका जिकर नहीं था वो शास्त्रकों सच्चे माने, और जिनोमें थोडासा जिनप्रतिमाका कथन था, तिन पाठोंके अर्थ कुयुक्तिसैं औरके और सुनाने लगा, अरु कहने लगा कि एकतीस शास्त्र सच्चे हैं, तिनमेंजी आवश्यकसूत्रकों तो बिलकुल बिगाडके लोकोंने स्वकपोलकल्पित औरका थोर बना दीया है, क्योंकि श्रीआवश्यकमें बहुत जगें जिनप्रतिमाका अधिकार चलता है, पीठें एक दिन तिस लुंकेको कि सीने कहा कि बिना जैनदीक्षाके लीए शास्त्र पढनेका तो व्यवहारसूत्रमें निषेध करे हैं, तो फेर तुम गृहस्थ हो कर शास्त्र क्यों कर पढते हो ? तब लुंकेने कहा मैं व्यवहारसूत्रकोंही सच्चा नहीं मानता हूं ? इत्यादि प्ररूपणा

बसीस वर्ष तक करी, परंतु बुंकेके उपदेशसें साधु कोइजी न हुआ, जब संवत् (१५३३) का शाल आया तब, एक जाणा नामा वनीयेके वेटेनें बुंकेके उपदेशसें वेप पहना, उसकों रुषिजूणा नाम दीना, तिसका शिष्य संवत् (१५६०) में रूपजी हुआ, तिसका शिष्य संवत् (१५९०) में जी बाजीरुषि हुआ, तिसका शिष्य (१५९९) में बृद्धवरसिंहजी हुए, तिसका शिष्य संवत् (१६०६) में वरसिंहजी हुआ, तिसका शिष्य संवत् (१६४९) में जसवंतजी हुआ, इस बुंपक मतके तीन नाम हुए, १ गुजराती, २ नागोरी, ३ उत्तराधी. ॥ इति बुंपक मतोत्पत्ति ॥

५३ श्रीरत्नशेखरसूरि पढ़े श्रीलक्ष्मीसागरसूरि हुए, तिनका (१४६४) में वषे जन्म, (१४९०) में वषे दीक्षा, (१५०१) वषे वाचक पद, (१५०७) में सूरिपद. ५४ श्रीलक्ष्मीसागरसूरि पढ़े श्रीसुमतिताधुसूरि हुआ. ५५ श्रीसुमतिताधुसूरि पढ़े श्रीहेमविमलसूरि हुए, शिथिलताधुओंके बीचमेंजी रहे, तोजी जिनोंने साधुका आचार उल्लंघन न करा, तब कितनेक दिन पीठें बहुत साधुओंनें शिथिलपणां ठोना, तथा रुषिहरगिरि, रुषिश्रीपति, रुषिगणपति, प्रमुख बहुत जनोंनें बुंपक मत ठोड के श्रीहेमविमलसूरिके पास दीक्षा लीनी, तिस अवसरमें संवत् (१५६२) में कसुये नामक एक बणियेने कसुयामत निकाला और तीन थूइ मानी अरु इस काखमें साधु कोइजी नहीं दीखता, औसा पंथ निकाला, परंतु इसग्रंथके लिखनेवालेके समयमें ये मत नहीं है, व्यवछेद हो गया है, तथा संवत् (१५९०) में बुंका मतसें निकलके बीजा नामा वेपधरने बीजामत चलाया, जिसकों लोक विजय गठ कहते हैं तथा संवत् (१५९२) वषे नागपुरीया तपगछसें निकलके उपाध्याय पार्श्वचंद्रने अपने नामका मत अर्थात् पातचंदीया मत चलाया.

५६ श्रीहेमविमलसूरि पढ़े श्रीसुविहितमुनि चूनामणि कुमत तमके मथनेकों सूर्यसमान श्रीध्यानंदविमलसूरि हुआ तिसका विक्रम संवत् (१५४९) में जन्म (१५५२) में दीक्षा (१५९०) में सूरि पद तथा आनंदविमलसूरिके साधु शिथिलाचारीजी थे. तोजी तिनके बेरागरंगका जंग नहीं हुआ और जय उनोंनें देखाकि जिनप्रतिमाके निषेधने बाडे बहुत पड़े और कुछ साधु तुलनात्र रह गए अरु उन्मुख प्ररूपण रूप जसमें जव्यजन बह चडे तब मनमें दयादृष्टि छाके और अपने गुरुकी आज्ञासें

कितनेक संविम साधुओंकों साथ ले कर संवत् (१५७२) में परिहार रूप क्रियाउद्धार करा, देशमें विचरके बहुत जयजनोंका और अनेक इन्धोंके पुत्रोंकों धन कुटुंबका मोह त्याग कराके दीक्षा और सोरठके राजा पासों खत लिखवाया कि जो जीते सो मेरे देशमें रहे थरु जो हारें सो निकाला जावे, तूणसिंह नामा श्रावक जिसकों वादशाहनें घेरने वास्ते पालकी दीनी हूइथी, और वादशाहनें जिसकों मलिक श्रीनग खधिरुद दीयाथा ओसा तूणसिंह श्रावकने गुरुकों विनति करीकि साधुओंकों सोरठदेशमें विहार कराउं, तव श्रीगुरुजीनेगणि जगर्पिकोंसाधुओंकेसाथ सोरठदेशमें विहार कराया, तथा जेसखमेरादि मारवारु देशमें जख दुर्लज मि खता है, इस वास्ते पूर्वे श्रीसोमप्रज सूरिनें साधुओंकों मने कर दीया था कि मारवाडमें न जानां, सो विहार कुमतिव्याप्त न हो जावें, तिन जीवोंकी अनुकंपा कर कें और खान जान कर साधुओंकों आझा दीनी कि तुम मारवाडमें जा कर कुमतिमतकों खंडन करो, तव सधु वयमें शीघ्र करके श्रीसुखिनइसमान वैराग्यनिधि निस्पृहावधि जावज्जीव जघन्यसें जघन्य जी पठ थयात् दोदिनका उपवास करणां थरु पारणोके दिन आभास करणां ओसे अतिमद्धारीमहोपाध्यायश्रीविद्यासागरगणिनें मारवारुदेशमें विहार करा, तिनोंनें जेसखमेरादिकोंमें खरतरांकों और मेवात देशमें श्रीजामनि पोंकों और मोखी आदिकमें हुंकामतीपोंकों प्रबोधके श्रावक बनाए सो आजतक प्रसिद्ध है, तथा पार्श्वचंद्रके व्युदगाहे वीरमगाममें पार्श्वचंद्रके साथ वाद करके पार्श्वचंद्रकों निरुत्तर करा, तव बहुत जनोंनें जैनधर्म थंगीकार करा, ओसेही माखवेमें थरु उज्जयनी प्रमुख देशोंमें किरंके प मेकी प्रवृत्ति करी, यह श्रीविद्यासागर उपाध्यायजीने तपगच्छकी किरगृद्धि करी, और क्रियाउद्धार करा पीठे श्रीथ्यानंदविमलसूरिजी चौदह वर्षे तह जघन्यसेंनी नियत तप व्रजके वेखेसें कम तप नहीं करा, तथा जिनोंनें चतुर्थ, पठ तप करके बीस स्थानककी आराधना करी, यह संवत् (१५७६) वर्षे नवदिनका अन्नशन करिकें सगे गए.

५३ श्रीथ्यानंदविमलसूरि पढ़ें श्रीविजयदानसूरि दृष्ट्या, जिनोंनें स्तंभ तीर्थ, अहमदाबादपत्तन, मन्दीशानकगाम, गंधार बंदिरादिमें महा महोत्सव पूर्वक अनेक जिनविघोंकी प्रतिष्ठा करी, तथा जिनोंके उपदेशसें वाइसाद

अहमदाका मान्य मंत्री गलराजा दूसरा नाम मलिक श्रीनगदखनें श्रीशत्रुंज का बड़ा संघ निकाला. तथा जिनोंके उपदेशसे गांधार नगरके श्रावक रामजीने तथा अहमदावादी साह कुंश्चरजी प्रमुखोंने श्रीशत्रुंजय चौमुख अष्टापदादि जिनमंदिर बनवाए, गिरनार ऊपर जीर्ण प्रासादोद्धार करा तथा जिनके सूर्यकी तरें उदय होनेसे वादी रूपीये तारे अदृश्य हो गये, श्रीविजयदान सूरि सर्व सिद्धांतका पारंगामी, अखंनित प्रताप वाला तथा अप्रमत्त पणे रूप करके श्रीगौतममुनिवत् था, तथा गूर्जार, माखवक, कठ, मरुस्थली, कुंकणादि देशोमें अप्रतिवद्ध विहार करता हुआ, महातपस्वी, छावजीव एक घृतविगय विना सर्व विगयका त्यागी था, जिनोंने एकादशांग सूत्र अनेक बार शुद्ध करे, और जिनोंने बहुत जीवोंको धर्मप्राप्त करा, तिनका संवत् (१५५३) वर्षे जामलामें जन्म, (१५६२) वर्षे दीक्षा, (१५७७) में सूरिपदं, (१६२२) वर्षे, वटपल्लीमें अनशनें स्वर्ग प्राप्त हुआ.

५७ श्री विजयदान सूरिपट्टे श्री हीरविजय सूरि हुआ, जिनका संवत् (१५७३) वर्षे मार्गशीर्षशुद्धि नवमी दिनें प्रव्हादन पुरका वासी जके जाती साठ कुरा चार्या नाथी ग्रहे जन्म हुआ, (१५९६) वर्षे का चिकवदि झूज दिनें पत्तन नगरें दीक्षा, (१६०७) वर्षे नारदपुरीमें श्रीरूपज देवके मंदिरमें पंजित पदं, (१६०७) माघशुक्लपंचमीदिने नारदपुरीमें श्री वरकाणक पार्श्वनाथसनाथे नेमिजिन प्राप्तादे वाचकपदं, (१६१०) वर्षे सिरोही नगरे सूरिपदं, तथा जिनका सौजाग्य वैराग्य निःस्पृहतादि गुणोंको वचन गोचर करनेको बृहस्पतिजी चतुर नहीं था तथा श्री स्तंजतीर्थमें जिनोंके रहनेसे श्रद्धावानोंने एक क्रोड रूपक प्रज्ञावनादि धर्मकृत्योंमें खरच करा, तथा जिनोंके चरण विन्यासके प्रतिपदमें दो मोहर और एक रूपक मोचन करा, और जिनोंके आगे श्रद्धाबुद्धिने मोतीयोंसे साध्ये करे, तथा जिनोंने तिरोही नगरमें श्री कुंधुनाथ विंवोकी प्रतिष्ठा करी तथा नारदपुरीमें अनेक सहस्रविंवोकी प्रतिष्ठा करी, तथा जिनोंके विहारादिमें युगप्रधान अतिशय देखनेमें आती थी, तथा अहमदावादमें बुंके मतका पूज्य रुपि मेघजी नामा था तिसने अपने बुंके मतको दुर्गतिका हेतु जान कर रजकी तरें आचार्य पद ठोक्के पच्चीश यतियोंके साथ सकल राजा विराज वादशाह श्रीअकबर राजाकी आज्ञा पूर्वक वादशाही वाजंत्र व

जते हुये, महामहोत्सवसें श्री हीरविजय सूरिजीके पास दीक्षा
ऐसा किसी आचार्यके समयमें नहीं हुआ था, तथा जिनोंके
अकब्बर बादशाहने अपने सर्व राज्यमें एक वर्षमें ठे महिनें तक
हिंसा बंद करी, जिजय ठोड़ाया, इसका विशेष स्वरूप देखनां होवे, श्री
हीरसौजाग्यकाव्यमेंसें देख लेनां.

थोर संक्षेपसें यहाँजी लिखते हैं:- एकदा कदाचित् प्रधान पुरुषोंके
मुखसें अकब्बरशाहनें श्री हीरविजय सूरिके निरुपम शमदम संवेग वेत्ता
ग्यादि गुणो सुणके बादशाह श्री अकब्बरनें अपने नामांकित कुरमान
प्रेज के बहुमान पुरस्सर गंधार बंदिरसें आगरेके पास फतेपुर नगरमें
शान करनेकां बुलाया, तब गुरुजी अनेक जट्यजीवांकां उपदेश देते हुये,
क्रमसें बिहार करते हुये विक्रम संवत् (१६३९) वर्षे ज्येष्ठदि त्रयोदशी
दिनें तहां थाए तिसमें बादशाह शिरोमणी प्रधान अखुल फजल नाम
द्वारा उपाध्याय श्री विमलहर्षगणि प्रमुख अनेक मुनियोंसें परिवरे हुये
बादशाहकां मिसे तिस अवसरमें बादशाहने बड़ी खातरसें अपनी सनामें
बैठाए, थोर परमेश्वरका स्वरूप गुरुका स्वरूप अरु धर्मका स्वरूप पूठा,
थोर परमेश्वर कैसे प्राप्त होवे ? इत्यादि धर्मविचार पूठा, तब श्री गुरुनें म
धुर बाणीसें कहा कि जिसमें अछारह रूपण न होवें, सो परमेश्वर है,
तथा पंचमहाव्रतादि धारक गुरु है, थोर आत्माका शुद्धस्वभाव जो ज्ञान,
दर्शन, चारित्र्यरूप है, सो धर्म है; तब अकब्बरशाहनें ऐसा धर्मोपदेश सु
नके आगरासें अजमेर तक प्रतिकोश कूवा मनार सहित घनाए, थोर जी
बहिंसा ठोडके दयावन् हो गया, तब अकब्बरशाह अतीव तुष्टमान
होके कहनें लगा कि हे प्रभु ! थाए पुत्र, कलत्र, धन, स्वजन, देहाविमेंती
ममत्व रहित हो, इस वास्ते थापकां सोनां, चांदी, देनां तो ठीक नहीं,
परंतु मेरे मकानमें जैनमतके पुराने पुस्तक बहुत हैं, सो थाए सीजीये,
थोर मेरे ऊपर अनुग्रह करीयें जब बादशाहका बहुत थापह देखा, तब
श्री गुरुजीनें सर्व पुस्तक ले के श्री आगरा नगरके ज्ञानजंमारेमें स्थापन
कर दीए, तब एक ग्रहर तक गुरुजी धर्मगोष्ठि करके बादशाहकी थाप
सेके बडे आनंदसें ऊपाश्रयमें थाए, उस वखतमें खोकांमें जैनमतकी
उन्नति स्फीती हुई, तिस वर्षमें आगरे नगरमें चौमासा करके सोरीपुर न

परम श्री नेमिजिनकी यात्रा वास्ते गये, तहां श्री रूपनदेव और नेमिना
 बड़ी की बड़ी और बहुत पुरानी दोनो प्रतिमा और उस तत्कावके व
 षष्ठ श्री नेमिनायके चरणोंकी प्रतिष्ठा करी, फिर आगरेमें शा० गानासिंह
 झाधमझका कराया (बनवाया) श्री चिंतामणि पार्श्वनाथादि विंवांकी
 प्रतिष्ठा करी, सो आज तक आगरेमें श्री चिंतामणि पार्श्वनाथ प्रतिष्ठा
 है. पीछे श्री गुरुजी फेर फतेपुर नगरमें गए और अकबर बादशाहसे
 मित्रे तहां एक प्रहर धर्मगोष्ठि धर्मोपदेश करा, तब बादशाह कहने लगा
 कि:- मैंने आपको दर्शनके उत्कंठित हो कर पूरदेशसे बुझाए हैं, और
 आप हमसे कुछजी नहीं लेते हो, इस वास्ते आपका जो लुचे सो मेरेसे
 मांगना चाहिये, जिस्से मेरे मनका मनोरथ सफल होवे, तब सन्यग्वि
 षार करके गुरुजीने कहा कि तेरे सर्वराज्यमें पर्युषणोंके आठ दिनोंमें
 कोई जानवर न मारा जाय और बंदिजन ठोडे जाय मैं यह मागा चाहता
 हूं, तब बादशाहने गुरुको निलोजी, शांत, दांत, जान करके कहा कि आठ
 दिन तुमारी तर्फसे और चारदिन मेरी तर्फसे सब मित्रकर बारहदिन तक
 अर्घात् चाडवावदि दशमीसे ले कर चाडवावदि ठठ तक कोई जानवर न
 मारा जायगा, पीछे बादशाहने सोनेके हफोंसे खिलवा कर ठे फूरमान
 श्री गुरुजीको दीए, ठे फूरमानकी व्यक्ति ये हैं:-प्रथम श्री गुरुदेवदेशका,
 दूसरा नासवेदेशका, तीसरा अजनेरदेशका, चौथा दिल्लीफतेपुरके देशका,
 पांचवां छाहोर मुखतान मंनसका, और ठठा श्री गुरुके पात रखनेका,
 पूर्वोक्त पांचोदेशका साधारण फूरमान पांच, तो तिन तिन देशोंमें जेजके
 अनारि पटह बजवा दीया, तब तो बादशाहकी आज्ञासे जो नहींनी जा
 नते ये अते सर्व आर्य अनार्य कुछ मंनपने दवारूपिणी बैसडी विस्तार
 पाव हो गई, और बंदिवान जनजी बादशाहने गुरुपाससे उग्र कर तत्काव
 गड दीए, और एक कोशका जीअ अर्घात् तप्रावमें थाप जा कर बादशाहने
 अपने हाथसे नानाजातिके नानादेशवालोंने जो जो जानवर बादशा
 हको जेट कर हुए थे. वे सब ठोड दीए. बादशाहमें गुरुजी अनेकवार
 मित्रे और अपनेक जिनमंदिर अरु उपाध्योंके उपजग करे, और जब
 श्री श्रीगुरुजी नूरि अरु देशको जाने लगे, तब बादशाहमें अता
 मान भिन्नता के रूप. तिलकी नकब में जग गुरुदेव विद्यता है.

जलालुद्दीन वादशाह.
थकब्बर वादशाह.
गाजीका फुरमान.

सूये मालवा तथा थकब्बरावाद,
खाहोर, मुलतान, अहमदावाद, अज
मेर, मीरत, गुजरात, बंगाला, तथा
और जो हाल मेरे ताबेके मुखक हैं
तथा थापदा, मुतसद्दी, सूबा, करोरी

थकब्बरमोहरकी वंशावली.
जलालुद्दीनथकब्बर वादशाह.
हुमायुन वादशाहका बेटा,
बाबरशाहका बीन बेटा,
उमरशेख मीरजांका बेटा.
मुलतान थबुस इदका बेटा.
मुलतान महम्मदशाहका बेटा
मीर शाहका बेटा.
थमीर तैमुरसाहि किरानका बेटा.

तथा जगीरदार इन सयोंकों माझुम रहे, कि जो हमारा पूरा इरादा यह
है कि सर्व रइयतका मन राजी रखनां, क्योंकि रइयतका जो मन है सो
परमेश्वरकी एक वनी अनामत है, और विशेष करके गृह्ण अवस्थामें मे
रा यही इरादा है, कि:- मेरा जसा बांठने वाली रइयत सुखी रहे तिस
वास्ते हरेक धर्मके लोकोंमेंसे जो थठे विचार वास्ते परमेश्वरकी जक्ति क
रनेमें अपनी उमर पूरी करते हैं, तिनकों दूर दूर देशोंमेंसे अपने पास
बुखवाये, और तिनकी परीक्षा करके अपनी सोयतमें रखता हूं, और
तिनकी बातें सुनके मैं बहुत खुश होता हूं, तिस वास्ते हमारे सुननेमें
आया है कि श्रीहीरविजय सूरि जैन श्वेतांबरमतका आचार्य गुजरातके बंद
रोमें परमेश्वरकी जक्ति करता है, मैंने तिनको अपने पास बुखवाया, और
तिनकी मुखाकात करके हम बहुत खुश हुए, कितनेक दिन पीछे जब ति
नोंमें अपने वतन जानेकी रजा मांगी, तब अरज करी कि जो गरीबपर
रकी मरजीसें ऐसा द्रुकुम दोना चाहियें कि:- सिद्धाचखजी, गिरना
रजी, तारंगाजी, केसरीथानाथजी, तथा थायुजीका पद्मान, जो गुजरातमें
है, तथा राजगढ़के पांच पद्मान तथा समेत शिखर उरफे पार्श्वनाथजी जे
बंगालके मुखकमें हैं, तथा पद्माड देवजी सर्व मंदिरोंकी कोठीयां तथा सर्व
जक्ति करनेकी जगायोंमें, तथा तीर्थकी जगायोंमें जो जैनश्वेतांबरी धर्मकी
जगायों सर्व मेरे ताबेके मुखकोंमें जिस निकाने दायें, ऊन पद्माडों तथा मं
दिरोंकी आस पास कौन्सी आदमी, कौन जानवरकों न मारे, यह अरज

नी अथ ये बहुत दूरमें हमारे पास आये हैं. और इनकी अरज वाजवी
 (नयी) है यद्यपि यह अरज मुनिलुमानी महजयमें (ननसें) विरुद्ध नाहुन
 (नयी) है, मोती परमेश्वरके पित्रानने वाले आदमियोंका यह इस्तर होता है,
 कि—कोई किसीके धर्ममें इन्वज न देवे, और तिनोंके स्वाज बढ़ाव रखे
 (नये) गस्ते यह अरज मेरी सनजमें नयी नाहुन दुइ, जे सवे पहाड तथा
 पूजाकी जगा बहुत अरमेंमें जेनश्वेतांवरी धर्मवालोंकी है, तिस गस्ते इ
 नकी अरज कबुल करी गइकि, सिद्धाचलका पहाड, तथा गिरनारका पहाड,
 तथा तारंगार्जीका पहाड, तथा केदारीगार्जीका पहाड, तथा व्यावुका पहाड,
 जो गुजरानके मुलकमें है तथा राजरइके पांच पहाड तथा समेतशिवर
 उरफे पार्श्वनाथका पहाड, जो बंगालके मुलकमें है, ये सवे पूजायांकी ज
 गायां तथा पहाड नीचे तीर्थकी जगायां जो मेरे राज्यमें हैं, चाहों किसी
 ठिकाने जेनश्वेतांवरी धर्मकी जगायां होये, सो हीरविजय जेनश्वेतांवरी आचा
 र्यकोदेनने आइ है, और इनोंने अछीतरसें परमेश्वरकी नफि करनी चाहिये.

और एक बात यहनी याद रखनी चाहियें जो कि ये जेनश्वेतांवरी ध
 र्मकी पहाड तथा पूजाकी जगा तथा तीर्थकी जगा, जे मेनें श्रीहीरविजय
 सुरि आचार्यको दीनी हैं, परंतु इकीकतमें ये पूर्वांक सवे जगायां जेन
 श्वेतांवरी धर्मवालोंकीही हैं, और जहांतक सूर्यसें दिन रोशन रहे, तथा
 जहांतक चंद्रमासें रात रोशन रहे, तहां तक इस फुरमानका हुकम जेन
 श्वेतांवरी धर्मके लोकमें सूर्य तथा चंद्रमाकी तरें प्रकाशित रहे, और
 कोई आदमी तिनको हरकत न करे, और किसी आदमीने तिन पहाडों
 उपर तथा तिनके नीचे तथा तिनकी आस पास पूजाकी जगायांमें तथा
 तीर्थकी जगायांमें जानवर नहीं मारनां, और इस हुकम ऊपर अमज क
 रनां, इस हुकमसें फिरनां नहीं, तथा नवीन सणंद मांगनी नहीं. खिन्ना
 तारीक ९ मी माह उरदी वहेस मुतावेक माह रबीयुल अखर तन् २३
 जुलसी. यह अकबर बादशाहके दीये फुरमानकी नक़्क़ है.

तथा बानसिंधकी कराइ अपर साहू इजलमलकी कराइ श्रीकृतेपुरमें
 अनेक लाख रुपइये लगाके बडे महोत्सवसें श्री जिनप्रतिमाकी प्रतिष्ठा
 करी, प्रथम चातुर्मास आगरेमें करा इत्तरा कृतेपुरमें करा तीसरा जिरा
 नाम नगरमें करा, चौथा फेर आगरेमें करा, फेर वहां बादशाहकी नक़्क़

श्रीशान्तिचंद्र उपाध्यायकों ठोड गये, और थाप गुरुजी मेहडते, नागपुर चौमासा करकें सिरोंही नगरमें गये, तहां नवीन चतुर्मुख प्रासादमें श्री आदिनाथके विंव तथा श्री अजितनाथके प्रासादमें श्री अजितनाथके विंवोकी प्रतिष्ठा करकें अर्बुदाचलमें यात्रा करनकों गये, और पीठें श्री शान्तिचंद्र उपाध्यायने नवीन कृपारस कोश नामा ग्रंथ बनाके अकबर बादशाहकों सुनाया, तिसके सुननेसे बादशाहने दयाकी बहुत वृद्धि करी, तिसका स्वरूप यह है कि:- बादशाहके जन्मके दिनसे एक मास अरु पर्युषणके वारां दिन, तथा सर्व रविवार, तथा सर्वसंक्रांतिके दिन, नवरोजका मास, सर्व इदके दिन, सर्व मिहूर वासरा, सर्व सोफी अनादिन इत्यादि सब मिलकर एक वर्षदिनमें ठे महीनें तक जीवहिंसा बंद कराइ, तिसके फुरमान लिखवाए सो फुरमान अवतक हमारे लोकोंके पास हैं, इसमें कुछ शंका नहीं कि श्री हीरविजय सूरिजीने जैनमतकी वृद्धि और उन्नति बहुत करी ? मुसलमानोंकोज्जी जिनोंने दयावान् करा तथा स्थंजस्तीथें संवत् (१६४६) में स्थंजतीर्थवासी शा० तेजपालके बनवाये मंदिरकी प्रतिष्ठा करी.

५९ श्री हीरविजय सूरि पट्टे श्री विजयसेन सूरि हुए इनका (१६०४) वर्षे जन्म (१६१३) वर्षे मातापिता सहित दीक्षा, (१६२६) वर्षे पंक्ति पद, (१६२७) वर्षे उपाध्याय पद पूर्वक आचार्य पद, (१६५२) वर्षे जट्टारक पद, (१६७१) वर्षे स्थंजस्तीथें स्वर्गवास. जिनके वेखहरख, अरु परमानंद ये दो शिष्योंने अकबर बादशाहके बेटे जाहांगीरकों धर्म सुनाके प्रतियोधा, और जाहांगीर बादशाहसे फुरमान कराया तिसकी नकल यह है.

गुरुदीन महम्मद.
जहांगीर बादशाह.
गाजीका फुर
मान.

जहांगीरकी मोहरमें वंशावलि.
गुरुदीनमहम्मद जहांगीर बादशाह.
अकबर बादशाह.
हुमायुन बादशाह.
बाघर बादशाह.
मीरजा उमरशेप.
सुलतान अबुसइस.
सुलतान मीरजामोहम्मदशाह. मीरांशाह.
अमीरतेमुर साहिब. किरान.

मेरे सर्वराजके विशेष करके गुजरातके सूबे, मोटे हाकिम तथा कीफायत करने वाले आमील तथा जांगीरदार तथा करोरी तथा सर्व खातोंके कार कुनोंको मायूम होवे कि जो परमेश्वरके पिठानने वाले लोक हैं, तिनका यह दस्तूर है, कि हरेक मत तथा कोमके लोक इतनाही नहीं बलकि सर्व जीव सुखी रहें, और अब वेखहरख तथा परमानंद यतीयोंनें पुनी यांकी रक्षा करने वालोंकी दरवारमें आकर तखतके पास खडेरहनें वालोंमें अरज करी कि विजयसेन सूरि तथा विजयदेव सूरि और जे अठ्ठी बुद्धि वाले लोक हैं, तिनकी हरेक जगें तथा हरेक सहरोमें देहरा अर्थात् जिन मंदिर तथा धर्मशाखा हैं, तिनमें ये लोक ईश्वरकी नक्ति करते हैं और प्रार्थना करते हैं, और वेखहरख तथा परमानंद यतीकी परमेश्वरको राजी रखनेंकी इकीगत हमने अठ्ठी तरेंते जान लीनी है, तिस वास्ते पुनीयांको तावे करने वाला हुकम हुआ कि:—कोइ आदमीने इन जैनलोकोंके मंदिर तथा धर्मशाखामें उतरना नहीं तथा कारन बिना अडचल नहीं करनी और जेकर ये लोक फिरकर नवा बनाया चाहेंतो तिनको किस्तीतरेंकी मनाई तथा हरकत नहीं करणी और तिनके साधुओंके उपाश्रयोंमें कोइनेजी उतरणां नहीं, और जो ये लोक तोरठके मुखकमें शत्रुंजय तीर्थकी यात्रा करने वाले जावें तो कोइनी आदमी तिन यात्राबुओंसे कुछ न मांगे ला उच न करे, और पूर्वोक्त वेखहरख अरु परमानंद यतिकि अरज तथा लाहि त ऊपर हुकम बडा जारी हुआ कि दर अठवाडेमें रविवार तथा गुरुवार तथा दर सहिनमें शुदि पडिवाका रोज तथा इदके दिन तथा दर वर्षमें न वरोज तथा माइशहरपुरमा जे हनारा सुवारक दिन है तिनमें एक एक व पके हिसाब प्रमाण मेरे सर्व राज्यमें कोइ जीवकी हिंसा न होवे, तथा श कार करना तथा पक्षीयांका पकडनां, मारनां, तथा मछलीयांका मारनां, ये बंद कीया जावे तथा इत तरेंके औरजी काम इन पूर्वोक्त दिनोमें न होने चाहियें, ये बात जरूर है, जे पूर्वोक्त हुकम प्रमाण हमेशां चसानेकी को शिक करके मेरे फुरमानके हुकमसे कोइ फिरे नहीं, बिरुद्ध चले नहीं छि ला ता० माइ तहर पुरमें तन् ३ जुलसी. यह फुरमान खाजाहांनके चो पानीयां तथा तेवक अझी तकीके वर्तमान पत्रमें दाखल हुआ तरजुना करनेवाला मुनशी तश्चद अबजुजानीयां साहिव उरजी.

श्रीशान्तिचंद्र उपाध्यायकों ठोड गये, और आप
चौमासा करकें सिरोंही नगरमें गये, तहां नवीन
दिनाथके विंव तथा श्री अजितनाथके प्रासा-

प्रतिष्ठा करकें अर्बुदाचलमें यात्रा करनेकों
ध्यायने नवीन कृपारस कोश नामा

नाया, तिसके सुननेसे वादशाह

यह है कि:- वादशाहके ज-

दिन, तथा सर्व रविवार, त

के दिन, सर्व मिहर वासरा, स-

वर्षदिनमें ठे महीने तक जीवहिंसा

सो फुरमान अवतक हमारे लोकोंके पा-

श्री हीरविजय सूरिजीने जैनमतकी वृद्धि

लमानोंको ज्ञी जिनाने दयावान् करा तथा स्थं

में स्थंजतीर्थवासी शा० तेजपालके बनवाये मंदिरकी :

५९ श्री हीरविजय सूरि पट्टे श्री विजयसेन सूरि हुए

वर्षे जन्म (१६१३) वर्षे मातापिता सहित दीक्षा, (१६२६)

मित पद, (१६३०) वर्षे उपाध्याय पद पूर्वक आचार्य पद, (१६५५)

जट्टारक पद, (१६७१) वर्षे स्थंजस्तीर्थे स्वर्गवास. जिनके वेखहरख, अर

रमानंद ये दो शिष्योंने अकबर वादशाहके वेटे जाहांगीरकों धर्म सुनाके प्र

तिबोधा, और जाहांगीर वादशाहसे फुरमान कराया तिसकी नकल यह है.

नुरुदीन महम्मद.
जहांगीर वादशाह.
गाजीका फुर
मान.

जहांगीरकी मोहरमें वंशावलि.
नुरुदीन महम्मद जहांगीर वादशाह.
अकबर वादशाह.
हुमायुन वादशाह.
वावर वादशाह.
मीरजा उमरशेव.
सुलतान अयुसस.
सुलतान मीरजामोहम्मशाह. मीरांशाह.
अमीरतैमुर साहिव. किरान.

मेरे सर्वराजके विशेष करके गुजरातके सूबे, मोटे हाकिम तथा कीफायत करने वाले आमील तथा जांगीरदार तथा करोरी तथा सर्व खातोंके कार कुओंको मायुम होवे कि जो परमेश्वरके पिठानने वाले लोक हैं, तिनका यह दस्तूर हैं, कि हरेक मत तथा कोमके लोक इतनाही नहीं बल्कि सर्व जीव सुखी रहें, और अब वेखहरख तथा परमानंद यतीयोंनें जुनी बांकी रह्या करने वालोंकी दरवारमें आकर तखतके पास खड़ेरहनें वालोंसे अरज करी कि विजयसेन सूरि तथा विजयदेव सूरि और जे अछी बुद्धि वाले लोक हैं, तिनकी हरेक जगें तथा हरेक सहरोमें देहरा अर्थात् जिन मंदिर तथा धर्मशाला है, तिनमें ये लोक ईश्वरकी जक्ति करते हैं औ प्रार्थना करते हैं, और वेखहरख तथा परमानंद यतीकी परमेश्वरकों राजी रखनेकी इकीगत हमने अछी तरेंसें जान लीनी है, तिस वास्ते जुनीयांकों तावे करने वाला हुकम हुआ कि:-कोइ आदमीने इन जैनलोकोंके मंदिर तथा धर्मशालामें उतरना नहीं तथा कारन विना अडचल नहीं करनी और जेकर ये लोक फिरकर नवा बनाया चाहेंतो तिनकों किसीतरेंकी मनाई तथा हरकत नहीं करणी और तिनके साधुओंके उपाश्रयोंमें कोइनेजी उतरणां नहीं, और जो ये लोक सोरठके मुखकमें शत्रुंजय तीर्थकी यात्रा करने वास्ते जावें तो कोइजी आदमी तिन यात्रालुओंसे कुछ न मांगे ला बचन करे, और पूर्वोक्त वेखहरख अरु परमानंद यतिकि अरज तथा खाहि स ऊपर हुकम बडा जारी हुआ कि दर अठवाडेमें रविवार तथा गुरुवार तथा दर महिनेमें शुदि पडिवाका रोज तथा इदके दिन तथा दर वर्षमें न बरोज तथा माहशहरयुरमा जे हमारा मुवारक दिन है तिनमें एक एक व पैंके हिसाव प्रमाण मेरे सर्व राज्यमें कोइ जीवकी हिंसा न होवे, तथा श कार करना तथा पक्षीयोंका पकडनां, मारनां, तथा मछलीयोंका मारनां, ये बंद कीया जावे तथा इस तरेंके औरजी काम इन पूर्वोक्त दिनोमें न होने चाहियें, ये बात जरूर है, जे पूर्वोक्त हुकम प्रमाण हमेशां चलानेकी को शिक करके मेरे फुरमानके हुकमसें कोइ फिरे नहीं, विरुद्ध चले नहीं लि ला ता० माह सहर युरमें सन् ३ जुलसी. यह फुरमान खाजांहांनके चौ पानीयां तथा सेवक अली तकीके वर्तमान पत्रमें दाखल हुआ तरजुमा करनेवाला मुनशी सइयद अबडुलामीयां साहिब उरैजी.

केर फिरेके गुजरात देशसेही निकले हैं. पीठें तिस लवजीका शिष्य अहम
दादके कालुपुरेका वासी उत्तवाल सोमजी हुआ, तिसने सूर्यकी आत
ला बहुत करी. तिसके चेलोंका नाम १ हरिदासजी, २ प्रेमजी, ३ गि
ररजी, ४ कान्हजी, प्रमुख और बुंकेमति कुंवरजीके चेलेजी इनके शिष्य
वने तिनके नाम १ श्रीपाल, २ अमीपाल, ३ धर्मसी, ४ हरजी, ५ जी
वाजी, ६ समरथ, ७ तोमुजी, ८ मोहनजी. ९ सदानंदजी, १० गोधा
जी थे, एक गुजरातका वासी धर्मदास ठीपीने मुंरुमुंराके मुख ऊपर पट्टी
नाथके अपने आपको ठुंडिया साधु मशाहूर कीया, तिनमें हरिदासका
पेठा हुंदावन हुआ. और हुंदावनका चेला जुवानीदास हुआ, और जु
वाजीदासका चेला लाहोरका वासी मयूकचंद हुआ, मयूकचंदका महा
सिंह, और महासिंहका कुशालराय और कुशालरायका ठजमल, और ठ
जमलका रामलाल. और रामलालके शिष्य रामरत्न, और अमरसिंह, ये
दोनों नेने देखे हैं. अब इन दोनोंके चेले वसंतराय. और रामवक्त वगैरे
भीते हैं. ये पंजाब देशमें आज काल पडे फिरते हैं.

और जीवाजीका चेला लालचंद हुआ. लालचंदका अमरसिंह हुआ
तो नारवाड देशमें आया तिनके पग्वारमें नानकजी जिनोके चेले अब
अजमेर और कृष्णगढके जिल्लेमें बहुत रहते हैं. और श्यामिदास जि
नोके परिवारके कन्हीगम. खन्वराज. तख्तमल. प्रमुख अब मारवानमें
रहते हैं. और जो कोटचंदीमें तथा मालवेमें लालचंद. गणेशजी. गोवि
ंदरामजी. दूवे, तथा अमीचंद. हुकमचंद. उदयचंद. फतेचंद. ग्यानजी, ठ
गन. मगन. देवकरण. और पन्नालाल प्रमुख फिरते हैं. येजी हरिदास
केही चेले हैं. तथा अमरगन्धिक का चेला दीपचंद. दीपचंदका चेला धर्म
दास. धर्मदासका जोगराज. जोगराजका हजारीमल्ल. हजारीमल्लका ला
लजीराम. लालजीरामका गंगागम. गंगागमका जीवणमल्ल. जो इस व
क्त दील्लीके आम्पानके गानमें फिरते हैं. तथा अमरगन्धिकके पग्वि
में धनजी. मनजी. नागगम और नागचंदादि. जिनाके चेले
रतीगम. नंदलाल. इन नंदलालका चेला रूपचंद. रूपचंदका विहारी.
जोकि पंजाबमें कंठ जदगवाडि गानमें रहते हैं. तथा कानजी और ध
र्मदास ठीपीके चेलेयमेंसे दीपचंद. पालजी प्रमुख ये खानकी. यह

६० श्री विजयसेन सूरि पढ़े श्री विजयदेव सूरि हूये तिनका (१६३ वर्षे जन्म, (१६४३) वर्षे दीक्षा, (१६५५) वर्षे पंडित पदं, (१६५६ वर्षे उपाध्याय पद पूर्वक आचार्य पद, (१६७१) वर्षे स्वर्ग. श्री विजयदेव सूरि पढ़े श्री विजयसिंह सूरि हूये तिनका (१६४४) जन्म, (१६५४) में वर्षे दीक्षा, (१६७१) वर्षे वाचक पद, (१६७१) सूरि पदं, (१७००) वर्षे स्वर्गगतं. ६१ श्री विजयसिंह तथा श्री विजयसेन सूरि पढ़े श्री विजयप्रज्ञ सूरि हूये, तिनका (१६७५) वर्षे जन्म, (१६७ वर्षे दीक्षा, (१७०१) वर्षे पंडित पदं, (१७१०) वर्षे उपाध्याय प (१७१३) वर्षे नटारक पदं, (१७४७) वर्षे स्वर्गगमनं, इनोके समयमें हवधे ढूंढीयोका पंथ निकला तिसकी उत्पत्ति ऐसे हैं—

सुरत नगरमें वोहरा धीरजी साहुकार दशाश्रीमाखि वसता था, सकी फूलां नामें वालविधवा एक वेटीथी, तिसने एक लवजी नामा रुका गोदी लीया, तिस लवजीको लुंकेके उपाश्रयमें पढ़ने वास्ते जेज तहां यतीयोकी संगतसे वैराग्य उत्पन्न हुआ, और लुंकेके यती वजर जीका शिष्य हुआ, तब दो वर्ष पीठें अपने गुरुको कहने लगा कि जे शास्त्रोंमें साधुका आचार है वैसा तुम क्यों नही पालते हो ? तब गुरु कहा पंचमकालमें शास्त्रोक्त सर्व किया नहीं हो सकि है, तब लवजी कहा तुम ब्रह्मचारी मेरे गुरु नहीं मेंतो आपही संयम फेरकें लेजंगा इ तरेंका क्लेश करकें रुपि लवजीने लुंके मतकी गुरु शिक्षा ठोडके अपने सा दो यति और लीप तिसमें एकका नाम जूणा, दूसराका नाम सुखजी इन नोंहीने अपने आपहीको दीक्षित करा. और मुंहके ऊपर कपडेकी पट बांधी, तब इनका नवीन वेष देखकें गामोंमें किसी आबकने इन रहनेको जगा न दीनी, तब ये उजडे हूये मकानोंमें जा रहें, गुजरात देश फूटे टूटे मकानको ढूंढ कहते है, इस वास्ते लोकोने इनका नाम ढूंढि रखा, इन तीनोंको नवे मत चलानेमें बडे बडे क्लेश भोगने पडे परंतु इन त्यागको देखकें कितनेक लुंकेमति इनको माननेजी लगे, क्योंकि यह जेव ल जगतमें प्रसिद्ध है, और जोले लोक तो ऊपरली चूरां फूलां देखकें राग हो जाते हैं, और गुजरातके बहुत लोक ऐसे हव ग्राही हैं कि:-जो बात कड लेवे उस बातको बहुत मुसकलसें गोखते हैं, इसी वास्ते जैनमतमें

फिरके गुजरात देशसेही निकले हैं. पीछें तिस लवजीका शिष्य अहम
कादके काबुपुरेका वासी उसवाल सोमजी हुआ, तिसने सूर्यकी आत
का बहुत करी, तिसके चेलोंका नाम १ हरिदासजी, २ प्रेमजी, ३ गि
रारजी, ४ कान्हजी, प्रमुख और बुंकेमति कुंवरजीके चेलेजी इनके शिष्य
ने तिनके नाम १ श्रीपाल, २ अमीपाल, ३ धर्मसी, ४ हरजी, ५ जी
राजी, ६ समरथ, ७ तोरुजी, ८ मोहनजी, ९ सदानंदजी, १० गोधा
जी ये, एक गुजरातका वासी धर्मदास ठोपीने मुंनमुंनके मुख ऊपर पट्टी
बांधके अपने आपको हुंढिया साधु मशाहूर कीया, तिनमें हरिदासका
बेटा हुंदावन हुआ, और हुंदावनका चेला जुवानीदास हुआ, और जु
वानीदासका चेला लाहोरका वासी मलूकचंद हुआ, मलूकचंदका महा
सिंघ, और महासिंघका कुशाखराय और कुशाखरायका ठजमल, और ठ
जमलका रामलाख, और रामलाखके शिष्य रामरख, और अमरसिंह, ये
दोनों मैंने देखे हैं. अब इन दोनोंके चेले वसंतराय, और रामवक्त वगैरे
बैते हैं. ये पंजाब देशमें आज काल पडे फिरते हैं.

और जीवाजीका चेला लालचंद हुआ, लालचंदका अमरसिंह हुआ
जो भारवाड देशमें आया तिसके परिवारमें नानकजी जिनोके चेले अब
प्रजनेर अरु कृष्णगढके जिल्लेमें बहुत रहते हैं, और श्यामिदास जि
नोके परिवारके कन्हीराम, खेहराज, तखतमल, प्रमुख अब भारवानमें
हते हैं. और जो कोटेबुंदीमें तथा मालवेमें लालचंद, गणेशजी, गोविं
रामजी, हूये, तथा अमीचंद, हुकमचंद, उदयचंद, फतेचंद, ग्यानजी, ठ
न, मंगन, देवकरण, अरु पन्नालाख प्रमुख फिरते हैं, येही हरिदास
ही चेले हैं. तथा अमरसिंघका चेला दीपचंद, दीपचंदका चेला धर्म
सि, धर्मदासका जोगराज, जोगराजका हजारीमल, हजारीमलका ला
जीराम, लालजीरामका गंगाराम, गंगारामका जीवणमल, जो इस व
त दील्लीके खासपातके गानोंमें फिरते हैं, तथा अमरसिंघके परिवा
में धनजी. मनजी. नाधुराम. अरु ताराचंदादि हूये, हैं, जिनोके चेले
जीराम, नंदलाख हूये. नंदलाखका चेला रूपचंद, रूपचंदका विहारी,
येकि पंजाबमें कोट जगरावादि गानोंमें रहते हैं. तथा कानजी और ध
दास ठोपीके चेलेयोंमें दीपचंद. गुणजजी प्रमुख ये जीमनी, यद

६० श्री विजयसेन सूरि पढ़े श्री विजयदेव सूरि हूये तिनका (१६४३) वर्षे दीक्षा, (१६५५) वर्षे पंडित पद, (१६५८) वर्षे उपाध्याय पद पूर्वक आचार्य पद, (१६७१) वर्षे स्वर्ग, श्री विजयदेव सूरि पढ़े श्री विजयसिंह सूरि हूये तिनका (१६४४) जन्म, (१६५४) में वर्षे दीक्षा, (१६७२) वर्षे वाचक पद, (१६७२) सूरि पद, (१७०७) वर्षे स्वर्गगतं. ६२ श्री विजयसिंह तथा श्री विजय सूरि पढ़े श्री विजयप्रज्ञ सूरि हूये, तिनका (१६७५) वर्षे जन्म, (१६७५) वर्षे दीक्षा, (१७०१) वर्षे पंडित पद, (१७१०) वर्षे उपाध्याय प (१७१३) वर्षे जज्ञरक पद, (१७४९) वर्षे स्वर्गगमनं, इनांके समयमें हवधे ढूंढीयोंका पंथ निकला तिसकी उत्पत्ति ऐसे हैं—

सुरत नगरमें वोहरा धीरजी साधुकार दशाश्रीमालि बसता था, सकी कृष्ण नामें बालविधवा एक बेटीथी, तिसने एक लवजी नामा रुका गोदी लीया, तिस लवजीकों लुंकेके उपाश्रयमें पढ़ने वास्ते जे तहां यतीपांकी संगतसें वैराग्य उत्पन्न हूया, और लुंकेके यती वजर जीका शिष्य हूया, तब दो वर्ष पीठें अपने गुरुकों कहने लगा कि जे शास्त्रोंमें साधुका आचार है वैसा तुम क्यों नही पाखते हो ? तब गुरु कहा पंचमकालमें शास्त्रोक्त सर्व क्रिया नहीं हो सकति है, तब लवजी कहा तुम ब्रह्मचारी मेरे गुरु नहीं मेंतो आपही संयम फेरकें सेऊंगा इ तरेंका क्लेश ककें रूपि लवजीने लुंके मतकी गुरु शिक्षा ठोडके अपने सा दो यति और लीए तिसमें एकका नाम जूणा, दूसराका नाम सुखजी इन नोंहीने अपने आपहीको दीक्षित करा. और मुंहके ऊपर कपड़ेकी पट बांधी, तब इनका नवीन वेष देखकें गामोंमें किसी श्रावकने इन रहनेकों जगा न दीनी, तब ये उजड़े हूये मकानोंमें जा रहें, गुजरात देश फूट टूट मकानकों ढूंढ कहते है, इस वास्ते लोकोंने इनका नाम ढूंढि रक्खा, इन तीनोंकों नवे मत चखानेमें बड़े बड़े क्लेश जोगने पने परंतु इन त्यागकों देखकें कितनेक लुंकेमनि इनकों माननेजी खगे, क्योंकि यह जेन ख जगत्में प्रसिद्ध है, और नोखे लोक तो ऊपरली वृत्तां कृपां देखकें राग हो जाते हैं, और गुजरातके बहुत लोक ऐसें हठ घाही हैं कि—जो यान कट खेवे उस यानकों बहुत मुसकयसें गोमते हैं, इसी वास्ते जैनमत

ये तिसके गुजरात देशसेही निकले हैं. पीछें तिस खज्जीका शिष्य अहम
 तिसके कामपुरेका वात्सी उतवाज सोमजी हुआ. तिसने सूर्यकी आत
 का बहुत करी. तिसके चेजोंका नाम १ हरिदासजी, २ प्रेमजी. ३ नि
 रपरजी, ४ कान्हजी, प्रमुख और बुंकेमति कुंवरजीके चेजेजी इनके शिष्य
 बने तिनके नाम १ श्रीपाज, २ अमीपाल, ३ धर्मस्ती, ४ हरजी, ५ जी
 कजी, ६ समरथ, ७ तोरुजी, ८ मोहनजी, ९ सदानंदजी, १० गोधा
 बी ये, एक गुजरातका वात्सी धर्मदास ठीपीने मुंरुमुंनके मुख ऊपर पट्टी
 लपके अपने आपकों हंडिया ताधु मशादूर कीया, तिनमें हरिदासका
 चेला वृंदावन हुआ, और वृंदावनका चेला जुवानीदास हुआ, और जु
 वानीदासका चेला लाहोरका वात्सी मलूकचंद हुआ, मलूकचंदका महा
 सिंघ. और महासिंघका कुशालराय और कुशालरायका ठजमल, और ठ
 जमलका रामलाल, और रामलालके शिष्य रामरत्न, और अमरसिंह, ये
 दोनों मने देखे हैं. अब इन दोनोंके चेले वसंतराय, और रामवक्त बगैरे
 बीते हैं. ये पंजाब देशमें आज काल पडे फिरते हैं.

और जीवाजीका चेला लालचंद हुआ, लालचंदका अमरसिंह हुआ
 सो मारवाड देशमें आया तिसके परिवारमें नानकजी जिनोके चेले अब
 अजमेर और कृष्णगडके जिल्लेमें बहुत रहते हैं, और श्यामिदास जि
 नोके परिवारके कन्हाराम, लेखराज, तखतमल, प्रमुख अब मारवाडमें
 रहते हैं. और जो कोटेबुंदीमें तथा मालवेमें लालचंद, गणेशजी, गोवि
 दरामजी, हूये, तथा अमीचंद, हुकमचंद, उदयचंद, फतेचंद, ग्यानजी, ठ
 गन, मगन, देवकरण, अरु पन्नालाल प्रमुख फिरते हैं, येजी हरिदास
 केही चेले हैं. तथा अमरसिंघका चेला दीपचंद, दीपचंदका चेला धर्म
 दास, धर्मदासका जोगराज, जोगराजका हजारीमल्ल, हजारीमल्लका ला
 लजीराम, लालजीरामका गंगाराम, गंगारामका जीवणमल्ल, जो इस व
 खत दील्लीके आसपासके गामोंमें फिरते है, तथा अमरसिंघके परिवा
 रमें धनजी, मनजी, नाधुराम, अरु ताराचंदादि हूये, हैं, जिनोके चेले
 रतीराम, नंदलाल. हूये. नंदलालका चेला रूपचंद, रूपचंदका विहारी,
 जोकि पंजाबमें कोट जगरावांदि गामोंमें रहते हैं. तथा कानजी और ध
 र्मदास ठीपीके चेलेयोमेंसे दीपचंद, गुपालजी प्रमुख ये लीममी, वर

बाण, मोरवी, गांमुख, जैतपुर, राजकोट, अमरेली, धांगधरा, प्रमुख जा
खावाड, काठीयावार, महुकांवा प्रमुख देशोंके गामोंमें फिरते रहते हैं. और
धर्मदास ठीपिका चेला धनाजी, धनाजीका जूदरजी, जूदरजीका रघुनाथजी,
जैमलजी, गुमानचंद, दुर्गदास, कन्हाराम, रत्नचंद, हमीरमल्ल, कचोनी
मल्ल प्रमुख जो अब मारवाडदेशमें रहते हैं सो प्रसिद्ध हैं.

और रघुनाथजीका चेला जीखमजी संवत् (१७१७) में हुआ, जिसने
तेराहपंथ निकाला तिसके चेले चारमल, हेमजी, रायचंद, जीतमल्ल,
जीतमल्लकी गद्दी उपर अब मेघजी है, ये पट्टीबंध जितने साधु हैं, इनका
पंथ संवत् (१७०९) के सालसे चला है, और इनका मत जयसे निकला
है, तबसे लेकर आजपर्यंत इनके मतमें कोईही विद्वान नहीं हुआ है,
क्योंकि ये लोक कहते हैं कि:- व्याकरण, कोश, काव्य, ठंड, अलंकार,
पढनेसे तथा तर्कशास्त्र पढनेसे बुद्धि मारी जाती है, इस वे इलमीकेही
सबबसे ये लोक परस्पर बग़ा छेप रखते हैं, केइ मनमानी कल्पित बातें
बना लेते हैं, एक दूसरेके पग नहीं जमने देते, मनमें जानते हैं कि:-
मेरे गृहस्थ चेलोंको बह लेवेगा? इत्यादि मेरे लिखनेमें किसीको शंका
होवे तो मारवानमें जाकर प्रत्यक्ष देख लेवे, इनका आचार, व्यवहार,
वेप, श्रद्धा, प्ररूपणा, प्रमुख है सो जैनमतके शास्त्रानुसार नहीं है, और
दूसरे मतोंवालेजी जो बहुत जैनमतको बुरा जानते हैं, वो इन ठुंडीयोंके
हीके आहार व्यवहारके देखनेसे जानते हैं. परंतु यह लोक तो सर्व जैन
मतसे विपरीत चलने वाले हैं, इति ठुंडकमतोत्पत्ति ॥

६३ श्रीविजयप्रज्ञसूरिपट्टे श्रीविजयरत्न सूरि हुए. ६४ श्रीविजय
रत्नसूरिपट्टे श्रीविजयदमासूरि हुए. ६५ श्रीविजयदमा सूरिपट्टे श्रीवि
जयदयासूरि. ६६ श्रीविजयदयासूरिपट्टे श्रीविजयधर्मसूरि, ६७ श्री
विजयधर्मसूरिपट्टे श्रीजिनेंद्रसूरि. ६८ श्रीजिनेंद्रसूरिपट्टे श्रीदेवेंद्रसूरि.
६९ श्रीदेवेंद्रसूरिपट्टे श्रीविजयधरेंद्रसूरि, जोकि इस वर्तमान कालमें
विद्यमान विचरते हैं.

तथा एकसठमे पाटें जो श्रीविजयसिंह सूरि थे तिनका शिष्य श्रीसत्य
विजयगणि हुए और महोपाध्याय पट्टशास्त्रवेत्ता, न्यायविशारद विरुद धा
रक महावेय्याकरण, तार्किकशिरोमणि, बुद्धिका समुद्र महोपाध्याय श्री

यशोविजयगणि इन दोनोंने श्रीविजयसिंहसूरिकी आज्ञा लेके गछमें क्रि-
शशिथिल साधुओंको देखके और ढूँढकमतके पाखंड अंधकारके दूर क-
रणे वास्ते क्रिया उद्धार करा, और जिनोंने काशीके पंक्तियोंमें जयपता-
काका जन्म पाया, और गुजरात प्रमुख देशोंमें प्रतिमा उठापक कुलिंगी-
योंके मतरूप अंधकारको दूर करा, और जिनके रचे हुये (१००) ग्रंथ
अध्यात्मसार, स्याद्धादकल्पलता, शास्त्रसमुच्चयकीवृत्ति, मल्लवादी सूरिकृत
नयचक्र उद्धारादि, अनेक वडेवडे एक सौ ग्रंथ हैं.

श्रीगणिसत्यविजयजी क्रिया उद्धार करके श्रीआनंदधनजीके साथ व-
हुत वर्ष लग वनवासमें रहे, और वनी तपस्या योगाज्यासादि करा, जब
बहुत वृद्ध हो गए, जंधामें चलनेका बल न रहा, तब अणहल पट्टनमें
जा रहे तिनके उपदेशसें तिनके दो शिष्य हुए, एक गणिकपूरविजय पं-
क्ति, और दूसरा पंक्ति कुशलविजयजी, तिनमें गणिकपूरविजयजीनेतो
अनेक अर्हत विवोंकी प्रतिष्ठा करी, और अनेक ग्राम नगरोंमें धर्मकी
वृद्धि करी, वडे प्रजावक हुए, श्रीगणिकपूरविजयजीके दो शिष्य हुए,
एक पंक्ति वृद्धिविजय गणि, दूसरा पंक्ति क्षमाविजयगणि, श्रीपंक्ति
क्षमाविजयगणिके शिष्य पंडित श्रीजिनविजय गणि, तिनका शिष्य पंक्ति
उत्तमविजयगणि, तिनका शिष्य पंडित पद्मविजयगणि, तिनका शिष्य पं-
डित रूपविजयगणि, तिनका शिष्य पंडित कीर्त्तिविजयगणि तिनका शिष्य
पंडित कस्तूरविजयगणी, तिनका शिष्य मुनिमणिविजयगणि, तिनका शिष्य
मुनि बुद्धिविजय गणि, तिनका शिष्य पंडित मुक्तिविजय गणि, तिनको
हाथका दीक्षित लघु गुरु ब्राह्मण इस जैनतत्त्वादशग्रंथके लिखनेवाला मुनि
आत्माराम आनंदविजय नामक हूँ. इतिगुरावलिसंपूर्ण ॥

अब इस ग्रंथके लिखनेवालेके समयमें इतने नवीनपंथ निकले हैं सो
लिखते हैं:- गुजरातदेशमें स्वामी नाराणका पंथ, और बंगालदेशमें ब्रह्म
समाजीयोंका पंथ, और पंजाबदेशमें लोदीहानोंसें दश कोशके अंतरे एक
जयणी नामा गाम है तिसमें रहनेवाला जातिका ब्रह्माणसिक्क तिसके
उपदेशसें कूका नामे पंथ, और कोइलमे नौखवी अहमदशाहका नवीन
फिरका, तथा दयानंदसरस्वतीस्वामीका निकाशा आर्यसत्ताजका पंथ,
इत्यादि अनेकमत पुराने मतोंको ठोकरे निकाले हैं, क्योंकि इनोंने अ

पनी बुद्धि समान प्राचीनोंके करे पुस्तक तथा वेदार्थोंको नही समजा, जेकर इसीतरें नवीन नवीन मत निकलते रहेतो कौइकदिनमें ब्राह्मणादि मताधिकारीयोंकी रोजी भारी जायगी, थोर धर्म थरु नियम किसिकि सिका कायम रहेगा ?

इति श्रीतपगुणीय मुनिगणिश्री मणिविजय तछिप्य मुनि श्रीबुद्धिविजय छिप्य मुनि आत्माराम आनंदविजय विरचिते जैनतत्त्वादर्शे गुरुआवलि क थन रूप छादशः परिच्छेदः संपूर्णः ॥ १२ ॥

॥ इति मुनि श्री आत्माराम आनंद
विजयजी विरचित छादश परिच्छेद
रूप जैनतत्त्वादर्श ग्रंथः समाप्तः ॥

